Ayurveda Digital Library

भैषज्य-रत्नावली ।

प्रथमो भागः ।

Collections By

Dr G Shrinivasa Acharya
Professor and Head
Post Graduate Department of Kayachikitsa
SDM College of Ayurveda
Udupi
gsa.ayurved@gmail.com

भैषज्य-रत्नावली ।

प्रथमो भागः ।

कविराज श्रीरसिकलालगुप्तेन

बहून्यादर्शपुस्तकान्यालोच्य

निदानेन सह भाषायामनूदितः संशोधितः प्रकाशितश्च ।

VAISHAJYA RATNABALI.

A WELL-KNOWN SANSKRIT

TREATISE ON PRACTICAL

THERAPEUTICS AND PATHOLOGY.

PUBLISHED WITH A HINDI TRANSLATION

BY

KAVIRAJ RUSSICKLALL GUPTA.

PART I.

कलिकाताराजधान्याम् ।

तुलापट्टीस्थ ७५ संख्यकभवने

नारायणयन्त्रे

श्रीरामनारायणपालेन मुद्रितः ।

इं १८९४

नमो गणेशाय ।

भैषज्यरत्नावली ।

भक्त्यानमत्त्रिदशराजकिरीटकोटि-
रत्नावलीकिरणराजिविराजमानम् ।
श्रीमत्करीन्द्रवदनस्य पदारविन्द-
द्वन्द्वं सदा जयति सिद्धिकरं क्रियाणाम् ॥ १ ॥

वन्देऽम्बिकाचन्द्रचूडौ जननीजनकावुभौ ।
निपत्य धरणौ भक्त्या प्रत्यूहव्यूहशान्तये ॥ २ ॥

(दोहा) सिद्धिकरण गणपतिचरण विघ्नहरण सुखदान ।
कंजवरण अघरण शरण विनवौं करण विधान ॥
नन्दनदनव्रजचन्दके पद अरविन्द अमंन्द ।
वंदि द्वंदहर चंदसमशीतलदान अनन्द ॥

श्रीगोविन्ददासवैद्य आरम्भ किये हुए ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये शिष्योंको शिक्षा और प्राचीन वैद्योंके आचार पालनके लिये ग्रंथके आदिमें श्रीगणेशजीको प्रणाम करते हैं ।

भक्तिसे प्रणाम करते हुए देवराज इन्द्रके किरीट में विराजित रत्नोंके समूह की किरणसे विराजमान सब क्रियाओंके सिद्धि करनेवाले श्रीमान् गजमुख गणेशजीके कमलरूपी चरणों की जय होय ॥ १ ॥

हम विघ्न समूह को नाश करनेके लिये जगतके माता

श्रीगोबिन्दपदारविन्दयुगलं वन्दारुवृन्दारव
श्रेणीनम्रशिरःकिरीटवलभिन्नीलोत्पलेन्दि
नत्वा सद्भिषजां मुदे वितनुते गोविन्ददासं
नानाग्रन्थमहाब्धिलब्धसगुणां भैषज्यरत्नाव
यदि प्रियतमा न स्याद्बुधानां भि[illegible] नामियं
तथापि नव्या नव्यानामानुकू[illegible] (१) विधा
ब्रह्मा स्मृत्वायुषोवेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्

पिता पार्वती और शिवको भक्ति सहित साष्ट
करते हैं ॥ २ ॥

प्रणाम करते हुए देवभक्त समूहके शिरके किरीट
मान नीलम नामक मणिरूपीकमल के भौंरेरूपी
चरणारविन्दको प्रणाम करके अनेक ग्रंथरूपी समुद्रों
वैद्योंकी प्रसन्नताके लिये मैं गोविन्ददास नामक वै
रत्नावली नामक पुस्तक बनाता हूं ॥ ३ ॥

यद्यपि यह नवीन भैषज्यरत्नावली विद्वान वैद्योंक
प्यारी होने योग्य नहीं है तो भी वैद्यशास्त्र पढ़नेवा
विद्यार्थियों को तो अवश्यही सहायता करेगी ॥ ४ ॥

पहले ब्रह्माने आयुर्वेद बनाकर दक्षप्रजापति को
उन्होंने अश्विनिकुमारोंको, अश्विनिकुमारोंने इन्द्रको औ
आत्रेय आदि मुनियोंने पढ़ाया ॥ ५ ॥

---

(१) आनुकूल्यं साहाय्यम् । नव्यानां छात्राणाम् ।

धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्या(१)ऽपहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥ ६ ॥
शारीरमानसागन्तुसहजा व्याधयो मताः।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा स्मृताः ॥७॥
आगन्तवोऽभिशापोत्थाः सहजाः क्षुत्तृषादयः।
दोषैस्त्वां साम्यमारोग्यं(२) वैषम्यं व्याधिरुच्यते ॥८॥
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।
व्याधीरोग आमयश्च गदोवाधैस्तुनामभिः ॥ ९ ॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सब वही मनुष्य कर सक्ता है जिसके शरीर में कुछ रोग न हो अर्थात् इन चारोंका मूल सुखही है परन्तु रोग उस सुख, जीवन और कल्याण का नाश करदेते हैं ॥ ६ ॥

सो रोग चार प्रकारके होते हैं शारीरक, (वात पित्त और कफसे उत्पन्न हुए शरीरके रोग) मानसिक (जो मनमें उत्पन्न होते हैं) आगन्तुक और सहज (जो जन्महो से मनुष्यके संग उत्पन्न होकर आते हैं) ॥ ७ ॥

ज्वर कुष्ट आदि शारीरिक, क्रोध आदि मानसिक, शाप आदि से उत्पन्न हुए आगन्तुक, और भूख प्यास आदि सहज रोग कहाते हैं ॥ ८ ॥

वात, पित्त और कफका अपने२ प्रमाणोंसे ठीक रहना

---

(१) मूलं कारणम् तस्यारोग्यस्य।

(२) दोषाणां वातपित्तश्लेष्माणां साम्यं स्वप्रमाणावस्थानं न तु तुल्य समानत्वम्।

साध्योऽसाध्य इतिव्याधिर्द्विधातोऽपि पुनर्द्विधा ।
सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो याप्यो यश्चाऽप्रतिक्रियः ॥१०॥
तत्रैकः पापजो व्याधिरपरः कर्मजो मतः ।
पापजः प्रशमं याति भैषज्यसेवनादि [illegible] ॥ ११ ॥
यथाशास्त्रविनिर्णीतो यथाव्याधिचि [illegible]त्सितः ।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः॥१२॥
न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यामेव जायते ।
अतो मृत्युरवार्य्यः स्यात् किन्तु रोगो निवार्य्यते ॥१३॥

आरोग्य वा सुख और उन्हीं का न्यूनाधिक होना व्याधि, रोग, विकार वा दुःख कहता है ॥ ९ ॥

सो रोग साध्य और असाध्य भेदसे दो प्रकार का होता है फिर साध्यरोगके भी सुखसाध्य ([illegible]स की चिकित्सा करने में वैद्यको अधिक कष्ट न हो) और कृच्छ्रसाध्य (जिसको वैद्य बहुत कष्टसे दूर कर सके) ये दो भेद हैं। असाध्य रोग याप्य और असाध्य भेदसे दो प्रकार का होता है उसमें वैद्यको कुछ चिकित्सा न करनी चाहिये॥ १० ॥

फिर रोगोंके और भी दो भेद हैं एक पापसे उत्पन्न हुए और दूसरे कर्मसे उत्पन्न हुए पापसे उत्पन्न हुए रोग औषधि से अच्छे होजाते हैं ॥ ११ ॥

परंतु जो शास्त्र में लिखे निदानसे निश्चय करके अनुकूल औषधि देने पर भी अच्छे न हों उन्हें पण्डित कर्मसे उत्पन्न रोग जाने ॥ १२ ॥

यह ईश्वर का नियम है कि जगत में कोई उत्पन्न होनेवाला

याप्यत्वं याति साध्यस्तु याप्योगच्छत्यसाध्यताम् ।
जीवितं हन्त्यऽसाध्यस्तु नरस्याऽप्रतिकारिणः ॥ १४ ॥
याप्याः केचित्प्रकृत्यैव केचिद् याप्या उपेक्षया ।
प्रकृत्या व्याधयोऽसाध्याः केचित् केचिदुपेक्षया(२)॥ १५॥
एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन् देहे प्रतिष्ठितम् ।
तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥ १६ ॥
ये त्विहागन्तवः प्रोक्ता स्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः ।
जपहोमप्रदानैश्च कालो मृत्युर्न शाम्यति ॥ १७ ॥

अमर नहीं हो सक्ता इस लिये कोई वैद्य मृत्युको निवारण नहीं कर सक्ता परन्तु रोगोंको दूर कर सक्ता है ॥ १३ ॥

चिकित्सा न करनेसे मनुष्यके साध्य रोग याप्य और याप्य असाध्य होजाते हैं, असाध्य होनेसे रोगी नहीं जीता ॥ १४ ॥

कोई रोग चिकित्सा न करनेसे और कोई स्वभावहीसे याप्य और असाध्य होते हैं ॥ १५ ॥

इस शरीरमें एक सौ एक मृत्यु सदा रहती हैं तिनमें एक का नाम काल है उसीकी चिकित्सा नहीं है शेष सौ आगन्तुक मृत्यु कहाती हैं ॥ १६ ॥

जो सौ आगन्तुक मृत्यु कहाती है वे औषधि और जप होम तथा दान आदि उपायोंसे शान्त होजाती हैं परन्तु काल नामक मृत्यु किसी प्रकार से शान्ति नहीं होती ॥ १७ ॥

---

(२) उपेक्षयासाध्यावस्थायामचिकित्सया ।

पीड़ितं रोगसर्पाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् ।
सुस्थीकर्त्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं हि देहिनम् ॥१८॥

तथाच ज्योतिस्तत्त्वे ।

"आयुष्ये कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं दृश्यते मया ।
नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः ॥१९॥
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम्" ॥ २० ॥

तत्रैव

"वर्त्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः ।
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥ २१ ॥
व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः" ॥ २२ ॥

जिस रोगरूपी सर्पके काटनेसे रोगीका काल आ जाता है उसे साक्षात धन्वन्तरि भी अच्छा नहीं कर सक्ते ज्योतिषतत्वमें लिखा है कि जब मनुष्यके कर्म और आयु नष्ट होजाते हैं तब कोई मन्त्र, और औषधि, होंम और जप भी उसे कालसे नहीं बचा सक्ता ॥ १८—२० ॥

जैसे तेल और बत्ती दियेका जीवन है ऐसे ही आयु मनुष्य के जीने का आधार है परन्तु कभी २ ऐसा भी देखा जाता है कि तेल और बत्ती रहने पर भी दिया बुझ जाता है ऐसे ही कभी २ अवस्था रहने पर भी मनुष्य मर जाता है इसे ही अकाल मृत्यु कहते हैं ॥ २१ ॥

रोग के तत्व को जानना और पीड़ा को बन्द कर देना

याहच्छिको(१)मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः (२)।
वैरी च वैद्यविद्वेषी श्रद्धाहीनः सशङ्कितः ॥ २३ ॥
भिषजामनियम्यश्च नोपक्रम्यो भिषग्विदा ।
एतानुपाचरन् वैद्यो बहून् दोषानवाप्नुयात् ॥ २४ ॥
यावत् कण्ठगताः प्राणा यावन्नास्ति निरिन्द्रियः ।
तावच्चिकित्सा कर्त्तव्या कालस्य कुटिला गतिः ॥२५॥
जातमात्रे चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः ।
वह्निशस्त्रविषैस्तुल्यं स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥२६॥

बस वैद्यकी वैद्यता इतनी ही है वैद्य जिलाने और मारने का स्वामी नहीं है ॥ २२ ॥

जो रोगी इच्छानुसार खाने पीने का व्यवहार करे मूर्ख हो, जिस के पास, धन या मनुष्य आदि चिकित्सा करने के साधन न हों, जो वैद्यका वैरी द्वेषी श्रद्धा हीन शंकावान और वैद्य की आज्ञा में न चलने वाला हो पण्डित वैद्य को उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये क्योंकि उसकी चिकित्सा करने से वैद्य को बहुत दोष होते हैं ॥ २३—२४ ॥

जब तक रोगीके कण्ठ में प्राण रहें और इन्द्री नष्ट न हों तब तक भी चिकित्सा करनी चाहिये क्योंकि काल की गति बहुत टेढ़ी है जैसे आग, विष, और शस्त्र थोड़े होने पर भी मनुष्य का नाश कर सक्ते हैं ऐसे ही रोग भी थोड़ा ही होने से मनुष्यको मारडालता है इस लिये उसके उत्पन्न होते ही मनुष्य

(१) अपथ्यभोजी। (२) करणैर्धनजनादिभिः।

यथा स्वल्पेन यत्नेन छिद्यते तरुणस्तरुः ।
स एवातिप्रवृद्धस्तु छिद्यतेऽतिप्रयत्नतः ॥ २७ ॥
ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेषजम् ।
ते भेषजानां वीर्य्याणि हरन्ति बल थ्यपि ॥ २८ ॥
प्रतिकृत्य ग्रहानादौ पश्चात् कुर्य्याच्चिकित्सितम् ।
आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता ॥२९॥
शस्त्रैः कषायैर्लोहाद्यैः क्रमेणान्त्या सुपूजिता ।
याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ॥ ३० ॥

को रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये रोगको थोड़ा समझ कर छोड़ना उचित नहीं ॥ २५—२६॥ ॥

जैसे थोड़े दिन के वृक्ष को मनुष्य थोड़े यत्नसे उखाड़ कर फेंक देसक्ता है परन्तु बड़ा होने पर उसी के काटने को बड़े यत्न करने पड़ते हैं इसी प्रकार रोगों की गति को भी जानो ॥ २७ ॥

यदि रोगी की ग्रहदशा अच्छी न हो तो औषधि उत्तम होने पर भी उसे सुखी नहीं कर सक्ती क्योंकि ग्रहों के प्रभाव से औषधियों की बलवान् शक्ति कम हो जाती है ॥ २८ ॥

इस लिये पहले ग्रहों को देख कर चिकित्सा करनी चाहिये। चिकित्सा आसुरी, मानुषी, और दैवी भेद से तीन प्रकार की है ॥ २९ ॥

जिस में शस्त्र आदि से चिकित्सा कीजाय वह आसुरी, जिसमें काढ़े आदि दिये जांय वह मानुषी, जिसमें लोहा आदि धातु दीजाय उसे दैवी चिकित्सा कहते हैं और यही दैवी तीनों

सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम्।
तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन कर्म कुर्य्यादशङ्कितः ॥ ३१ ॥
क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चापि चिकित्सा नास्ति निष्फला॥३२॥
अन्यजातिकृतः पाको ह्यस्पृश्यः सर्वजातिभिः।
इति विज्ञाय मतिमान् वैद्यं पाके नियोजयेत् ॥३३॥
मोहाद्द्विजातिवर्णाद्यैः पाचिते खादिते सति।
प्रायश्चित्ती भवेच्छूद्रो जाति हीनो भवेद्द्विजः ॥३४॥

चिकित्साओं में श्रेष्ट है। जिस कर्म से शरीर की रस आदि धातु अपने २ प्रमाण से ठीक रहैं उसे चिकित्सा कहते हैं॥३०॥ और वही वैद्यका कर्म भी है इस लिये वैद्य शंका त्याग कर चिकित्सा करै चिकित्सा करने से कहीं धर्म कहीं मित्रता कहीं धन कहीं यश और कहीं कर्म में अभ्यासही होता है चिकित्सा किसी अवस्था में भी निष्फल नहीं ॥ ३१ ॥

दूसरी जाति का बनाया हुआ पाक सवजाति के मनुष्यों के खाने योग्य नहीं होता इसं लिये वैद्य को पाक बनाना चाहिये ॥ ३२ ॥

यदि ब्राह्मण का बनाया पाक भूलसे शूद्र खाले तो उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये और ब्राह्मण भी पाक करने से जातिभ्रष्ट होजाता है ॥ ३३ ॥

चिकित्सा के चार चरण हैं वैद्य, औषधि, बनानेवाला और रोगी ये चारों चरण अपने २ गुणों से भरे होने चाहिये ॥ ३४ ॥

भिषग्द्रव्यमुपस्थाता (१) रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये ॥ ३५ ॥
श्रुते पर्य्यवदातत्वं (२) बहुशो दृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥ ३६ ॥
प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ।
अल्पमात्रं महावीर्य्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ।
समीक्ष्य काले दत्तञ्च भेषजं परमं मतम् ॥ ३७ ॥
उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागश्च भर्त्तरि ।
शौचञ्चेति चतुर्थोऽयं गुणः परिचरे जने ॥ ३८ ॥
स्मृतिर्निर्द्देशकारित्वमभीरुत्वमथापि च ।

वैद्य में शास्त्रकी विद्या, बहुत कर्मों की निपुणता, सब से श्रेष्ठगुण और पवित्रता ये चार गुण होने चाहिये। उत्तम देश में उत्पन्न हुई और उत्तम दिन में उखाड़ी औषधि में थोड़ी मात्रा बहुत वीर्य, उचित गन्ध, तथा रस ये गुण होने चाहिये तब भी वह औषधि समय पर रोग के अनुकूल खाने से गुण करती है ॥ ३५ ॥

कर्म करनेवाले मनुष्य में रोगीके कर्मों को जानना, निपुणता, वैद्यकी भक्ति और पवित्रता ये चार गुण होने चाहिये॥३६

रोगी में स्मरण शक्ति, वैद्यकी आज्ञापालना, बेडर होना और वैद्य से रोग संबन्धी कोई बात न छिपाना ये चार गुण होना चाहिये ॥ ३७ ॥

---

(१) उपस्थातापरिचारकः। (२) पर्य्यवदातत्वं नैपुण्यम् ।

ज्ञापकत्वञ्च रोगाणामातुरस्य गुणा मताः ॥ ३९ ॥
मृद्दण्डचक्रसूत्राद्याः कुम्भकाराद्दते यथा।
नावहन्ति गुणं वैद्याद्दते पादत्रयं तथा ॥ ४० ॥
यस्तु रोगमविज्ञाय कर्म्माण्यारभते भिषक्।
अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ ४१ ॥
यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः।
साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥४२॥
दृष्टकर्म्मा च शास्त्रज्ञो वैद्यः स्यात् सिद्धिभागसौ।
एकाङ्गहीनो न श्लाघ्य एकापक्ष इव द्विजः ॥ ४३ ॥

जैसे कुम्हार के बिना चाक डंडा, सूत (डोरा) और मिट्टी आदि सब सामग्री से घड़ा नहीं बन सक्ता ऐसे ही वैद्य के बिना शेष तीन चरण निष्फल हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

जो वैद्य औषधियों का विधान जाननेवाला होकर भी बिना रोग जाने चिकित्सा करता है उसके कर्मकी सिद्धि का कुछ निश्चय नहीं अर्थात् कभी होती है कभी नहीं ॥ ४१ ॥

जो वैद्य रोगोंके सब भाव, औषधियोंके सब विधान और साध्य असाध्य रोगोंकी परीक्षा को जानता है उसके हाथ में सिद्धि समझनी चाहिये ॥ ४२ ॥

जैसे एक पंखका पक्षी सब कामोंमें असमर्थ होता है ऐसे ही केवल शास्त्र जाननेवाला या केवल क्रिया जाननेवाला वैद्य भी प्रशंसा करने योग्य नहीं होता जो शास्त्र भी पढ़ा हो और कर्मोंमें भी पूरा अभ्यासवाला हो वही कर्मसिद्धि करनेवाला श्रेष्ठ कहाता है ॥ ४३ ॥

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ।
यः कर्म्मकुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥ ४४ ॥
अविज्ञाय तु शास्त्राणि भेषजं कुरुते तु यः ।
यम एव स विज्ञेयो मर्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ॥ ४५ ॥
कुचेलः कर्कश(१)स्तब्धः(२)कुग्रामी स्वयमागतः (३)।
पञ्चवैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा अपि ॥ ४६ ॥
नाड़ीजिह्वास्य मूत्राणां परीक्षां यो न विन्दति ।
मारयत्याशु जन्तूंश्च स वैद्यो न च शोभनः ॥ ४७ ॥
अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम् ।
आयुर्वेदप्रसादेन किं न दत्तं भवेद्भुवि ॥ ४८ ॥

जो पहले गुरु मुखसे शास्त्र पढ़ाता है पीछे कर्मोंमें अभ्यास करके चिकित्सा करता है उसे ही वैद्य कहना चाहिये और जो वैद्य ऐसे न होवें. वैद्य नहीं वरन चोर हैं ॥ ४४ ॥

जो वैद्य बिना शास्त्र पढ़े चिकित्सा करता है उसे मनुष्य भेषधारी यमराज समझना.चाहिये ॥ ४५ ॥

मैले वस्त्र पहननेवाला, कठोर बचन कहनेवाला, कठोर चित्तवाला, गाँवका रहनेवाला और बिना बुलाये आया ये पाँचो वैद्य साक्षात् धन्वन्तरीके समान होने पर भी प्रतिष्ठा नहीं पाते ॥ ४६ ॥

जो नाड़ी, मूत्र और जिह्वा आदि की परीक्षाको नहीं जानता वह मूर्ख केवल मनुष्योंका नाश करता है ॥ ४७ ॥

---

(१) कर्कशः कठोरवाक् । (२) स्तब्धः कठोरचित्तः । (३) अनाहूतः ।

नन्दिपुराणे।

"कपिलाकोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्त्तितम्।
फलं तत्कोटिगुणितमेकातुरचिकित्सया" ॥ ४९ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं कारणं यतः।
तस्मादारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदः ॥ ५० ॥
अप्येकं नीरुजीकृत्य व्याधितं भेषजैर्भिषक्।
प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः ॥ ५१ ॥
अपि मूलेन केनापि मर्द्दनाद्यैरथापि वा।
सुस्थीकृत्य लभेन्मर्त्यः पूर्वोक्तं लोकमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
चिकित्सितशरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः।

जो वैद्य अपनी चिकित्सा और आयुर्वेदकी कृपासे एक रोगी को भी रोगसे छुड़ा देता है उसने जगत में कौनसा दान नहीं किया? नंदीपुराण में लिखा है कि जो फल करोड़ कपिलागौ दान करनेसे होता है उससे करोड़ गुणा फल एक रोगीको अच्छा करनेसे होता है ॥ ४८—५० ॥

जगत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल सुखसे रहना ही है इस लिये जो वैद्य रोगीको सुख दान करता है वह सब दान करनेवाला कहाता है ॥ ५१ ॥

एक रोगीको अच्छा करनेसे वैद्य सात पुरुषोंके सहित ब्रह्मलोक को जाता है ॥ ५२ ॥

स यत्करोति सुकृतं तत् सर्वं भिष[illegible]ते ॥ ५३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामु[illegible]ताधिकारः

प्रथमः समाप्तः ।

अथ ज्वराधिकारः ।

तत्रादौ ज्वरनिदानं तत्र नवीनाः श्लोकाः ।

देहेन्द्रियमनस्तापः स्वेदरोधोऽङ्गपीड़नम् ।
भवन्ति युगपद्यस्मिन् तं ज्वरं मुनयो विदुः ॥ १ ॥
स दोषैर्द्वन्द्वजः सर्वैरागन्तुश्चाष्टधा मतः ।
नरदेवेतरासह्यो रुद्रकोपाग्निसम्भवः ॥ २ ॥

चाहे किसी जड़ी बूटीसे रोगको अच्छा करे या लगाने आदि की औषधिसे तोभी वैद्यको ब्रह्मलोक मिलता है ॥५३॥

जो मूर्ख दुर्बुद्धि वैद्य रोगीके शरीरकी रक्षा नहीं करता वह रोगीके किये सब पापोंका फल भोगता है ॥ ५४ ॥

भैषज्यरत्नावली में प्रथम अधिकार समाप्त ।

आगे ज्वराधिकार लिखते हैं ।

जिसरोग में देह, इन्द्री और मनका सन्ताप, पसीना रुकना और सब शरीरकी पीड़ा एक संग ही हो उसे मुनियोंने ज्वर कहा है ॥ १ ॥

सो वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, वातपित्तज्वर, वातकफज्वर, पित्तकफज्वर, सन्निपातज्वर और आगन्तुके ज्वरके भेदसे आठ प्रकारका होता है ॥ २ ॥

प्रतिकूलविहारान्न दुष्टाः दोषा निरस्य च ।
अन्तर्वह्निं रसाढ्याश्च भवन्ति ज्वरदाः बहिः ॥
वैरस्यं विरतिः श्रमोऽङ्गगुरुता वैवर्ण्यनेत्रस्रवौ
जृम्भाशीतमहर्षणञ्च शिरसः पीड़ाङ्गमर्दस्तमः ।
क्षोभा यं वेपथुरोमहर्षदहनासादाविबन्धस्तथा
शीतेच्छा च भवन्ति तस्य प्रथमं चिह्नान्यमून्येव हि ॥३॥

वातज्वरे जृम्भणमादितस्तु
दाहस्तथाक्ष्णोः खलु पित्तजाते ।
अन्नारुचिः श्लेष्मभवे वदन्ति
द्वन्द्वे द्वयोः सर्वभवेऽखिलानाम् ॥ ४ ॥

दर्शन-स्पर्शन-प्रश्नैर्व्याधिज्ञानं त्रिधामतम् ।

मुखका स्वाद बिगड़ना, किसी वस्तु में इच्छा न होनी थकाई, शरीर भारी होना, मुखका रंग बदल जाना, आंखोंसे पानी गिरना, अधिक, जभुआई, शीत, रोएं खड़े होने, चित्त प्रसन्न न रहना, शिर और सब शरीर में पीड़ा, शरीर कांपना, अग्निमन्द होजाना, दस्त न आना और ठण्डी वस्तुकी इच्छा ये लक्षण सामान्यज्वर होनेसे पहले होते हैं ॥ ३ ॥

वातज्वर होनेके पहले अधिक जभुआई, पित्तज्वर होनेके पहले आंखों में जलन और कफज्वर होने के पहले अन्नकी अनिच्छा होजाती है दो और तीन दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वरसे पहले दो वा तीन दोषोंके लक्षण दिखाई देने लगते हैं ॥४॥

वैद्यको रोगोंका ज्ञान नेत्रसे देखने हाथसे छूने और प्रश्न

दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शनान्नाड़िकादिभिः ॥ ५ ॥
प्रश्नैर्दूतादिवचनादिति त्रेधा समुच्यते ॥ ६ ॥
रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्म्म भिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ७ ॥
यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥ ८ ॥
पूर्वरूपे प्रयुञ्जीत ज्वरस्य लघुभोजनम् ॥ ९ ॥
लङ्घनञ्च यथा दोषं विरेकं वातिके पुनः ।
पाययेत् सर्पिरेवाच्छं पैत्तिके तु विरेचनम् ॥ १० ॥

करने इन्हीं तीन यत्नों से होसक्ता है जिह्वा और मूत्र आदि देखने की वस्तु हैं नाड़ी आदिका ज्ञान छूनेसे होता है ॥ ५ ॥

और दूतसे रोगीका समाचार पूछना या रोगी हीसे रोग की गुप्तबात पूछनी प्रश्न परीक्षा कहाती है ये ही रोगीकी तीन परीक्षा हैं ॥ ६ ॥

वैद्यको उचित है कि पहले रोग और औषधियोंका निश्चय करके फिर शास्त्रके अनुसार कर्म करे ॥ ७ ॥

जैसे शस्त्र, विष, अग्नि और बिजली मनुष्यका नाश कर देती हैं ऐसे ही बिना जानी औषधि भी रोगीका सर्वनाश कर देती हैं और जानी हुई औषधि अमृत के समान गुण करती है ॥ ८ ॥

ज्वरके पूर्वरूप में हलका भोजन करना चाहिये ॥ ९ ॥

वातज्वर में तीन पित्तज्वर में पांच तथा कफज्वर में सात लङ्घन करने चाहिये वातज्वर में विरेचन भी दिया जाता है

मृदुप्रच्छर्दनं तद्वत् कफजे तु विधीयते।
द्वन्द्वजेषु द्वयं कुर्य्याद् बुध्वा सर्वन्तु सर्वजे ॥ ११ ॥
नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम्।
क्रोधप्रवातव्यायाम(१)कषायांश्च विवर्जयेत् ॥ १२ ॥
कषायं (२) यः प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे।
स सुप्तं कृष्णसर्पन्तु कराग्रेण परामृषेत् ॥ १३ ॥
न कषायं प्रयुञ्जीत नराणां तरुणे ज्वरे।
कषायेणाकुलीभूता (३) दोषा जेतुं सुदुस्कराः ॥१४॥

पित्तज्वरके पूर्वरूप में निर्मल घी किञ्चित गर्म करके पिलावे या विरेचन दे ॥ १० ॥

कफज्वर में थोड़ा वमन कराना चाहिये दो दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वर में दोषोंको जानकर दो विधि करे और तीनों दोषसे उत्पन्न हुए ज्वर में तीनों विधि करे ॥ ११ ॥

नये ज्वर में दिनका सोना, नहाना, उपटन लगाना, मैथुन, क्रोध अधिक वायु में रहना, व्यायाम और काढ़े वा कसैलीवस्तु छोड़ देना चाहिये ॥ १२ ॥

जो वैद्य नये ज्वर में काढ़ा पिलाता है वह सोते हुए काले सांपको हाथसे पकड़ कर जगाता है इस लिये नये ज्वर में कदापि काढ़ा नहीं देना चाहिये ॥ १३ ॥

क्योंकि काढ़ा देनेसे दोष बिगड़ जाते हैं और फिर उनका जीतना बहुत ही कठिन हो जाता है ॥ १४ ॥

---

(१) व्यायामः परिश्रमः प्रवातोऽधिकवातः। (२) वक्ष्यमाणलक्षणम्। (३) अतिवृद्धाः।

चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोड़शगुणाम्भसा (१) ।
स कषायः कषायः स्यात् सवर्ज्यस्तरुणे ज्वरे ॥ १५ ॥
न द्विरद्यान्न (२) पूर्वाह्णे नाभिष्यन्द(३)कदाचन ।
न नक्तं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी ॥ १६ ॥
परिषेकान् प्रदेहांश्च स्नानं संशोधनानि च (४) ।
दिवास्वप्नं व्यवायञ्च (५) व्यायामं शिशिरं जलम् ॥ १७ ॥
क्रोधप्रवातभोज्यानि वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥ १८ ॥
शोषच्छर्दिमदं मूर्च्छा भ्रमतृष्णाद्यरोचकान् ।

जो औषधिसे सोलह गुणे पानी में पका हो और चतुर्थांश रहने पर लिया जाय उसे काढ़ा कहते हैं उसीका नवीनज्वर में निषेध है ॥ १५ ॥

नवीनज्वरवाला मनुष्य दो समय न खाय दो पहरके पहले न खाय अभिष्यन्दी * वस्तु न खाय रातको न खाय और भारी वस्तुको न खावे ॥ १६ ॥

नवीन*ज्वरवाले को परिषेक, प्रदेह, स्नान, संशोधन, दिनमें सोना, मैथुन; व्यायाम, ठंडाजल, अधिक वायु और बहुत भोजन ये सब वस्तु छोड़ देनी चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

---

(१) द्रव्यापेक्षया षोड़शगुणेन तज्जलापेक्षया चतुर्भागावशिष्टमित्यर्थः ।
(२) न वारद्वयमश्नीयात् । (३) दध्यादिगौरवकारद्रव्यम् । (४) विरेचनादीनि ।
(५) मैथुनम् ।

---

* जो वस्तु अपने चिकने और भारी पनसे रसवाहिनी नाड़ियोंका मुखबन्द करके शरीरको भारी करदे उसे अभिष्यन्दी कहते हैं जैसे (दही) ।

* । नवीनज्वर ७ दिन तक रहता है ।

प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिषेकादिसेवनात् ॥ १९ ॥
ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ २० ॥
आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन्(१)।
विदधाति ज्वरं दोष(२)स्तस्माल्लङ्घनमाचरेत् ॥ २१ ॥
अनवस्थितदोषाग्ने(३)र्लङ्घनं दोषपाचनम्।
ज्वरघ्नं दीपनं (४) काङ्क्षारुचिलाघवकारकम् ॥ २२ ॥

ऊपर लिखे परिषेक आदि करनेसे नवीन ज्वरवाले को शोष, वमन, घूमनी, मूर्छा, भ्रम, प्यास और अरोचक आदि अनेक उपद्रव होजाते हैं ॥ १९ ॥

क्षय, वायु, भय, क्रोध, काम, शोक और परिश्रमसे उत्पन्न हुए ज्वरको छोड़कर और सब ज्वरों में पहले लङ्घन देना चाहिये ॥ २० ॥

आमाशय में स्थिर दोष आमके सहित अग्निको मन्द करके और उसके मार्गोंको बन्द करके ज्वर उत्पन्न करते हैं इस लिये ज्वरमें लङ्घन देना उचित है ॥ २१ ॥

नवीनज्वर में अग्निमन्द होजाती है वही अग्नि लङ्घनसे तेज होकर दोषोंको पचाती है तब रोगीका ज्वर नाश होता है अग्नि बढ़ती है दोष पचते हैं अन्न खानेकी इच्छा होती है और शरीर हलका होता है ॥ २२ ॥

---

(१) पिधापयन्नाच्छादयन्। (२) दोषः वातपित्तकफाः जातावेकवचनम्।
(३) अनवस्थिता अस्वस्थाः दोषाग्नयो यस्य। (४) अग्नेः।

प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः (१) ॥ २३ ॥
तत्तु(२)मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते ।
कार्य्यं न बाले नो वृद्धे न गर्भिण्यां न दुर्बले ॥ २४ ॥
वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे (३) गात्रलाघवे ।
हृदयोद्गारकण्ठास्य शुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ २५ ॥
स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये ।
कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ २६ ॥
पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च ।

रोगीको बलके अनुसार ही लङ्घन देने चाहिये अर्थात् वैद्य इतने लङ्घन दे जिसमें रोगी अत्यन्त दुर्बल न होजाय क्योंकि बलही निरोग का आश्रय है और निरोग हो के लिये सब चिकित्सा कीजाती है परन्तु वातज्वर भूख प्यास, मुख-शोष, भ्रम, रोगोंमें बालक, बूढ़े गर्भिणी स्त्रीको और दुर्बल को न दे ॥ २३ ॥ २४ ॥

जब वात, मूत्र और विष्टा, सुखसे आने लगे शरीर हलका होजाय, हृदय, डकार और कंठ और मुख शुद्ध होजाय शरीर में व्याकुलता न रहै और जंभुआई न आवें पसीना आने लगे रुचि बढ़े एक समय भूख और प्यास लगने लगी और जब जी अत्यन्त प्रसन्न हो तब जाने कि लङ्घन ठीक हुआ है ॥ २५ ॥ २६ ॥

---

(१) चिकित्साक्रमः । (२) तल्लङ्घनम् । (३) आदिशब्दोद्गारादीनां विसर्गे सम्यग्गते ॥

क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ २७ ॥
मनसः सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्धवातस्तमो हृदि।
देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥ २८ ॥
सद्योभुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते।
वमनं वमनाऽर्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥ २९ ॥
कफप्रधानानुत्क्लिष्टान् दोषानामाशयोत्थितान्।
बुद्ध्वा ज्वरकरान् काले वम्यानां (१) वमनैर्हरेत् ॥३०॥
अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे।

शरीर की सन्धियों में पीड़ा, हड़फूटन, स्वांस, मुंहसूखना, भूख न लगना अरुचि, प्यास, कान और नेत्रोंका दुर्बल होना, मनकी अत्यन्त व्याकुलता, ऊपरको वायु उठना, हृदय में अन्धकारसा जान पड़ना, देहकी दुर्बलता, और अग्निका मन्द होना ये लक्षण बहुत लंघन करनेसे होते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

वाग्भटने लिखा है कि यदि खाते ही ज्वर आजाय या सन्तर्पण अर्थात् लंघन में भोजन देते ही ज्वर आजाय और रोगी वमन देनेके योग्य हो तो वमन देना उचित है ॥ २९ ॥

यदि वैद्य जाने कि आमाशय में दोष बहुत बढ़ रहे हैं और उन में कफ प्रधान है तथा उन्हींसे यह ज्वर उत्पन्न हुआ है तो समयके अनुसार वमन देने योग्य रोगी को वमन देकर शुद्ध करे ॥ ३० ॥

क्योंकि नवीनज्वर में वमन देने योग्य मनुष्यको वमन

---

(१) वमनयोग्यानाम्।

हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहञ्च कुरुते भृशम् ॥ ३१ ॥
तृष्यते सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे ।
मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ ३२ ॥
दीपनं पाचनञ्चैव ज्वरघ्नमुभयञ्च तत् ।
स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ ३३ ॥
मुस्तपर्पटकोशीर चन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतं (१) जलं देयं पिपासाज्वरशान्तये ॥ ३४ ॥

षड़ङ्गपानीयम् ।

मुख्यभेषजसम्बन्धो (२) निसिद्धस्तरुणे ज्वरे ।
तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तेन भेषजम् ॥ ३५ ॥

करानेसे हृदय में पीड़ा श्वास आनाह और मूर्छा आदि उपद्रव होजाते हैं ॥ ३१ ॥

वात और कफके ज्वरमें प्यास लगनेसे रोगीको गर्मजल पिलावे परन्तु पित्तज्वर और मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वरमें तिक्त औषधियों में पका हुआ ठंडा जल देना चाहिये ॥ ३२ ॥

ये दोनों जल अग्निको दीपन करनेवाले ज्वरनाशक दोष पाचक मार्गोंको शुद्ध करनेवाले बलबर्द्धक तथा रुचि और पसीने को बढ़ानेवाले हैं ॥ ३३ ॥

मौथा, पित्तपापड़ा, खस, चंदन, हाऊबेर और सौंठि इनमें पकाहुआ जल देनेसे प्यास और ज्वर शान्ति होते हैं ॥३४

इसका नाम षड़ङ्ग पानीय है नवीन ज्वर में कोई काढ़ा

(१) क्वाथो शृतं पश्चाच्छीतम् । (२) कषायशीलनम् ।

यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादिप्रयुज्यते।
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ३६ ॥
अर्द्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥ ३७ ॥
लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः शृताम्।
पिबेज्ज्वरी ज्वरहरां क्षुद्वानल्पाग्निराशुदितः ॥३८॥
पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्ववस्तिशिरोरुजि।
श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरां पिबेत् ॥३९॥
षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मता।
यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भाग(१)कृतां वदेत् ॥ ४० ॥

आदि मुख्य औषधि नहीं देनी चाहिये केवल भोजन या पीनेकी और वस्तुओंमें दोष रहित औषधि मिलाकर देनी चाहिये ॥ ३५ ॥

ऊपर लिखी षड़ङ्ग पानीय आदि औषधियोंमें जो औषधि पका कर दीजाती हैं वह एक कर्ष एक प्रस्थ जलमें डाली जाती हैं जब पकते२ आधा जल रहजाय तब वही जल ठंडा करके रोगीको दिया जाता है ॥ ३६—३७ ॥

यदि ज्वरीको थोड़ी भूख लगी तो शीघ्र पचने वाली पीपल और सौंठिके काढ़े में पकी ज्वर नाश करनेवाली धानके लावे की पेया पिलाने आदि पसली मूत्राशय और शिरमें पीड़ा हो तो ज्वर नाश करनेवाली गोखरू और कटेलीके काढ़े में पकी लाल धानके चावलोंकी पेया पिलावे ॥ ३८—३९ ॥

---

(१) षष्ठभागैः।

सिक्थकैरहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता।
यवागूर्बहुसिक्थास्यात् विलेपी विरलद्रवा॥ ४१॥
अन्नं पञ्चगुणे (१) साध्यं विलेपी च चतुर्गुणे।
मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि॥ ४२॥
श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः।
मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमन्विते॥ ४३॥
स एव (२) सितयायुक्तः शीतपित्तज्वरे हितः।
रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्टिकैः सह॥ ४४॥
यवाग्वौदनलाजाश्च ज्वरितानां ज्वरापहाः॥ ४५॥

जो एक कर्ष अन्न एक प्रस्थ जलमें पकाया जाय वह पेया कहाती है, अन्नसे चौगुणे जलमें पकी यवागू कहाती है॥४०॥

जिसमें कुछ गाढ़ा भाग न हो उसे मांड़ कहते हैं। पेया मांड़से कुछ गाढ़ी और यवागू पेयासे भी गाढ़ी होती है॥४१॥

साधारण अन्न पांच गुणे जलमें विलेपी चौगुणे जलमें मांड़ चौदह गुणे जलमें और यवागू छः गुणे जलमें पकाये जाते हैं॥ ४२॥

परिश्रम, लंघन और वायुसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मूंगका जूस और भात और शीत पित्तज्वरमें चीनीके साथ भात पथ्य है। ज्वरमें लाल धान, पुराने साठी और धानकी खील इन्होंकी यवागू या भात देने चाहिये इनसे ज्वर शान्त होता है॥ ४३—४४—४५॥

---

(१) साध्यद्रव्यापेक्षया। (२) औदनः।

मुद्गान्मसूरान् चणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान् ।
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ४६ ॥
पटोलपत्रं वार्त्ताकुं कुलकं कारवेल्लकम् ।
कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम् ।
पत्रं गुडूच्याः शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ४७ ॥
ज्वरितो हितमश्नीयात् (१) यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ।
अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपि वा ॥ ४८ ॥
सातत्या(२)त्स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् (३) ।
कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः ॥ ४९ ॥
ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु ।

मूंग, मसूर, चना, कुलथी और मोंठ इनका जूस ज्वरीको भोजनके समय दे ॥ ४६ ॥

शाकोंमें परवरके पत्ते, बेंगन, कुलकू, करेला, ककोरा, पित्तपापड़ा, भातल, नईमूली और गुरिच (गिलोय) के पत्ते देय ॥ ४७ ॥

चाहे ज्वरीको थोड़ी भी भूख हो तो भी समय पर थोड़ा पथ्य भोजन करे क्योंकि समय पर न खानेसे बल नष्ट होता है और रोगी मर भी जाता है ॥ ४८ ॥

जो पथ्य कहे जाते हैं सो सब सदा खाने और मीठा रस न रहने के कारण तथा अनेक प्रकारसे बनानेके कारण ये ही पथ्य कहे जाते हैं परन्तु और भी हित वस्तु पथ्य है ॥ ४९ ॥

---

(१) पथ्यम् । (२) सात्मतां निरन्तरं प्रयोगात् । (३) अननुकूलत्वम् ।

ऽेऽपचये विदग्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ५० ॥
गुर्वभिष्यन्दिकाले च ज्वरीनाद्यात् कथञ्चन ।
न हि तस्याहितं (१) भुक्तमायुषे वा सुखाय वा ॥५१
लङ्घनं स्वेदनं काले यवागूस्तिक्तको रसः ।
पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणे ज्वरे ॥ ५२ ॥
सप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
ध्यं द्वादशरात्रन्तु पुराणमत उत्तरम् ॥ ५३ ॥
रितं षड़हेऽतीते लघ्वन्नं (२) प्रतिभोजितम् ।
चनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम् ॥ ५४ ॥

रात्रिको कफ घट जाता है गर्मी बढ़ती है इस लिये न बलवान रहती है इस लिये रोगी और सुखीको रात्रिके य हलका ही भोजन करना चाहिये ॥ ५० ॥

ज्वरी भारी और अभिष्यन्दी भोजन कभी न करे और ा समय भी न खाय क्योंकि अपथ्य भोजन करना आयु र सुखको नहीं बढ़ाता इस लिये अच्छा नहीं है ॥ ५१ ॥

नवीन ज्वरमें लंघन, पसीना लेना, समय पर भोजन करना : कड़वी औषधियों में पका पानी पीनेसे बिना पके दोष जाते हैं ॥ ५२ ॥

महात्मा मुनियोंने सात दिन तक नवीन बारह दिन तक मध्यम और उसके पश्चात् पुराना ज्वर कहा है ॥ ५३ ॥

जब ज्वर आये छः दिन बीत जांय अर्थात् सातवें दिन

(१) अपथ्यम् । (२) लाजादि ।

सप्ताहात् परतोऽस्तब्धे सामे स्यात् पाचनं ज्वरे।
निरामे शमनं स्तब्धे सामेनौषधमाचरेत् ॥ ५५ ॥
लालाप्रसेको हृल्लास हृदयाशुद्ध्यरोचकाः।
तन्द्रालस्याविपाकास्य वैरस्यं गुरुगात्रता ॥ ५६ ॥
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता (१) बलवान् ज्वरः।
आमंज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ५७ ॥
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयतिज्वरम् ॥ ५८ ॥
मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च।
पक्वं दोषं विजानीयात् ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ ५९ ॥

ज्वरीको हलका भोजन करावे और दोष पचानेवाला या दोषोंको शान्ति करनेवाला काढ़ा देय यदि दोष छः दिनमें न पचे हों तो पाचन और जो पचगये हों तो वमन करनेका काढ़ा देय परन्तु आमज्वरमें कदापि नहीं देना चाहिये ॥ ५४—५५ ॥

मुखसे राल गिरना हृदगमें कफका अधिक होना हृदयकी अशुद्धि, अरोचक, जभुआइ, आलस, अजीर्ण, मुखकी कठिनता, बहुत मूत्र आना, शरीरोंकी कठिनता और ज्वरका अधिक वेग रहना ये आमज्वरके लक्षण हैं इसमें काढ़ा न देय क्योंकि आमज्वरमें काढ़ा देनेसे ज्वर बहुत तेज होता है ॥५७—५८॥

जब ज्वरका वेग कम हो, शरीर हलका हो, पेटमें मल चलते जानपड़ें, तब जानेकि दोष पच गये उसी समय औषधि

(१) देहस्य।

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः ।
न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरात् (१) ॥ ६० ॥

वीर्य्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनम्
हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव ।
तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतम्
ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयञ्च ॥ ६१ ॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता ।
लघुत्वमथ चोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ ६२ ॥
क्लमोदाहोऽङ्गसदनं भ्रमोमूर्च्छाशिरोरुजा ।
अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः (२) ॥ ६३ ॥

देनी चाहिये जिसने अधिक जल पिया हो, लंघन किये हों, जिसको बल न हो, अजीर्ण हो, भोजन कर चुका हो और जिसे प्यास लगी हो उसे संशोधन अर्थात् वमन और विरेचनीय औषधि न दे ॥ ५९—६० ॥

अन्न रहित औषधि अधिक बलवान होती है वह शीघ्र रोगोंका नाश करती है परन्तु बालक बूढे, स्त्री और कोमल मनुष्योंको देनेसे अधिक ग्लानि उत्पन्न करती है इस लिये इन्हें नहीं देनी चाहिये ॥ ६१ ॥

वायुका निकलना, शरीरका स्वस्थ होना, भूख प्यास लगनी, इन्द्रियोंका हलका होना, शुद्ध डकार आनी ये औषधि पचनेके चिन्ह हैं ॥ ६२ ॥

---

(१) संशोधनं विनासंशोधनं पिबेदित्यर्थः इतरादिति विभक्तिप्रतिरूपकोऽव्ययः ।
(२) अजीर्णौषधचिह्नम् ।

औषधशेषे भुक्तं पीतञ्च तथौषधं सशेषेऽन्ने ।
न करोति गदोपशमनं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ ६४ ॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या
दन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ।
प्राग्भक्तसेवितमहौषधमेतदेव
दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्य: ॥ ६५ ॥

मात्राया नास्त्यवस्थानं (१) दोषमग्निं बलं वय: ।
व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीच्यमात्रां प्रयोजयेत् ॥६६॥

आलस्य, जलन, शरीरमें पीड़ा, भ्रम, मूर्च्छा, शिरमें पीड़ा, किसी वस्तुकी इच्छा न होना और बलनाश होना, ये औषधिके न पचनेके चिन्ह हैं ॥ ६३ ॥

औषधि न पचने पर भोजन करने या भोजन न पचने पर औषधि खानेसे कुछ रोग नाश नहीं होता बरन ये रोग उत्पन्न होजाते हैं भोजनसे पहले खाई औषधि शीघ्र पचती है बलको नाश नहीं करती डकारके संग मुखसे बाहर नहीं निकलती इस लिये भोजनसे पहले ही औषधि खानी चाहिये। बालक, बूढ़े, डरपोक और स्त्रीको भी उसी समय औषधि देनी चाहिये ॥ ६४—६५ ॥

मात्राका कुछ नियम नहीं है इस लिये दोष, अग्नि, बल अवस्था, रोग, औषधि, और कोष्ठ अर्थात् पेटको विचार कर मात्राका प्रमाण बनाले ॥ ६६ ॥

---

(१) अप्रमाणम् ।

भैषज्यरत्नावल्याम्।

सर्वज्वरेषु साधारणं कषायमाह।
दीपनं कफविच्छेदि वातपित्तानुलोमनम्।
ज्वरघ्नं पाचनं भेदि शृतं धान्यपटोलयोः ॥ ६७ ॥

इति धान्यपटोलम्।

अथ वातिकज्वरनिदानम्।

रौक्ष्यं वेगस्य विषमः कम्पस्तम्भोऽथ जृम्भणम्।
शिरःपीडाथ वैरस्यं ओष्ठकण्ठास्यशोषणम् ॥ ६८ ॥
अनिद्रत्वं बद्धविट्कत्वं हृद्गात्राणाञ्च पीडनम्।
आध्मानमुदरे शूलं भवञ्च वातिके ज्वरे ॥ ६९ ॥

अथ चिकित्सा।

किराताब्दामृतोदीच्य बृहतीद्वयगोक्षुरैः।

धनियां और परवरके पत्तोंका काढ़ा वात और पित्तको अनुलोम गति करता है ज्वरको नाश करता है विष्टा लाता है अग्निको बढ़ता है और कफका नाश करताहै ॥ ६७ ॥

शरीरमें रूखापन, विषम वेग, अर्थात् कभी तेज होना और कभी मंद होजाना, शरीर कांपना, स्तंभित होना, अधिक जमुआई आनी, शिरमें पीड़ा, मुखका रस बिगड़ना, कण्ठ और मुंह सूखना, निद्रा न आनी, विष्टा सूखजाना, हृदय और शरीर में पीड़ा होनी, पेट फूलना और शूल ये वातज्वरके लक्षण हैं ॥ ६८——६९ ॥

चिरायता, मोथा, गिलोय, नेत्रवाला, छोटी बड़ी कटेली

स्थिराकलसी विश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ ७० ॥

इति किरातादिः।

अथ पित्तज्वरलक्षणम्।

वमिर्निद्राल्पत्वं नयनगलदाहः प्रलपनम् (१)
अतीसारस्तीव्रोज्वर इह च स्वेदोऽपि भवति।
भ्रमोमूर्च्छादाहः कटुकमुखता पीतमलता (२)
मदस्तृष्णापाको भवति खलु पित्तप्रजनिते ॥७१॥

तच्चिकित्सा।

पटोलयवनिःक्वाथो मधुनामधुरीकृतः।
तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशनः ॥ ७२ ॥

यवपटोलम्।

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः।

सालपर्णी, पृष्टिपर्णी और सौंठिका काढ़ा वातज्वरका नाश करता है इसका नाम किरातादि क्वाथ है ॥ ७० ॥

वमन होना, नींद कम आनी, आंख और गलेमें जलन होनी, वृथा बकना, अधिक दस्त आने, ज्वरका अधिक बेग, पसीना, भ्रम, मूर्च्छा, शरीरमें दाह, मुंहका कडुवा स्वाद, विष्टा और मूत्रादि कोंका पीलापन, मद और प्यास ये पित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ७१ ॥

परवरके पत्ते और इन्द्रजौका काढ़ा मधु मिलाकर पीनेसे तीव्र पित्तज्वरका नाश होजाता है। तृष्णा और दाह भी जाते रहते हैं इसका नाम यवपटोल क्वाथ है ॥ ७२ ॥

---

(१) प्रलापनम्। (२) मूत्रादिपीतत्वम्।

किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥ ७३ ॥

पर्पटकादिः ।

व्युषितं (१) धान्यकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् ।
अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद् दूरप्ररूढमपि ॥ ७४ ॥

धान्यशर्करा ।

पित्तज्वरेण तप्तस्य क्रियां शीतां समाचरेत् ॥ ७५ ॥

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-
कांस्यादिपात्रं विनिधाय नाभौ ।
तत्राम्बुधारा बहुलापतन्ती
निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥ ७६ ॥

एकले पित्तपापेड़का काढ़ाही पित्तज्वरको नाश कर सक्ता है फिर लालचन्दन, नेत्रवाला और सोंठि मिलाकर पीनेसे तो बहुत ही गुणदायक है इसका नाम पर्पटादि क.थ है ॥ ७३ ॥

रातको धनियेंको पानीमें भिगो रक्खे प्रातःकाल उसके पानीमें शक्कर मिलाकर पीने से बहुत दिनका उत्पन्न हुआ मनुष्यके हृदयका दाह शीघ्रही चला जाता है इसका नाम धान्य शर्कर योग है ॥ ७४ ॥

पित्तज्वरमें दाहहोनेसे ठंडी क्रिया करनी चाहिये रोगीको सीधा सुलाकर उसकी नाभिपर कांसे या तांबे आदिका गहरा बर्त्तन रखकर उसमें ऊपरसे ठंडे जलकी धारा छोड़नेसे उसी समय दाह शान्त होजाता है ॥ ७५—७६ ॥

---

(१) पर्य्युषितम् ।

अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पलाशतरुजैर्द्दिहेत् ॥ ७७ ॥
बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य वा ॥ ७८ ॥

अथ कफज्वरनिदानम् ।

स्तैमित्यं मन्दवेगो मुखमधुररसो गौरवं स्तम्भतृप्ती
आलस्यं मूत्रशौक्ल्यं कसनश्वसनको शीतमुत्क्लेदनञ्च ।
हर्षो रोम्णाञ्च श्वैत्यं नयनरसनयोर्जृम्भणञ्चातिनिद्रा
अन्नाकांक्षा च चिह्नं प्रभवति कफजे पूर्ववैद्यैर्निरुक्तम् ॥७९

अथ चिकित्सा ।

निम्बविश्वामृतादारु शठीभूनिम्बपौष्करम् ।

खटाईके जलसे पलासके पत्तोंको पीस कर हाथ पैरसे लगावे अथवा बेरीके पत्तोंका या रीठोंका झाग लगावे ॥ ७७ ॥

वमनोपस्थान, अर्थात् ऐसा जान पड़ना कि अभी वमन हुआ चाहता है, ज्वरका बेग कम, मुखका मीठा स्वाद, शरीरका भारी पन, स्तम्भ, तृप्ति, आलस्य, सफेद मूत्र होना, खांसी, सांस, जाड़ा लगना, शरीर का गौलापन, जभुआई, रोंए खड़े होने, नेत्र और जीभका सफेद होना, बहुत निद्रा आना और अन्न खानेकी इच्छा न होना ये कफज्वरके लक्षण हैं ॥ ७८ ॥

नीम, सोंठ, गिलोय, देवदारु, कचूर, चिरायता, पुष्कर-मूल, छोटी बड़ी पीपल और कटेलीका काढ़ा कफज्वरका नाश करता है इसका नाम निम्बादि क्वाथ है ॥ ७९ ॥

सिनवारके पत्तोंका काढ़ा पीनेसे कफज्वरमें कफ सूखजाता

पिप्पल्यौ बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥८०

इति निम्बादिः।

सिन्दुवारदलक्वाथं सोषणं कफजे ज्वरे।
जङ्घयोश्च बले क्षीणे कर्णे वा पिहिते पिबेत् ॥ ८१

इति सिन्दुवारक्वाथः।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुनासह।
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ८२ ॥

इति चातुर्भद्रावलेहिका।

ऊर्द्ध्वजत्रुजरोगघ्नी सायं स्याद [illegible]लेहिका।
अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं [illegible]जनान्मता ॥ ८३ ॥
क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासका[illegible]ज्वरापहः।
प्लीहानं हन्ति हिक्काञ्च बालानाञ्चापि शस्यते ॥८४॥

इति मधुपिप्पली।

है जब जांघोंका बल नष्ट होजाय और कान बंद होजांय तब यह काढ़ा देना चाहिये इसे सिनवार क्वाथ कहते हैं ॥८०॥

कायफर, पुष्करमूल, कांकड़ासिंगी और छोटीपीपल इनको पीषकर मधुमें मिलाकर अवलेह (चटनी) बनावे इसके चाटनेसे खांसी, श्वास और कफज्वरका नाश होता है इस का नाम चतुर्भद्र अवलेह है ॥ ८१—८२ ॥

अवलेह कण्ठसे ऊपरके रोगोंमें सन्ध्या समय और कण्ठसे नीचेके रोगमें भोजनसे पहले खाना चाहिये मधु और पीपल

अथ वातपित्तज्वरलक्षणम्।

वातपित्तज्वरे दाहो भ्रमोमूर्च्छारुचिस्तमः।
गलास्यशोषो भवति कम्पस्तृषाङ्गगौरवम्॥
वेपथुर्जृम्भणं चैव रोमहर्षो शिरोरुजा॥ ८५॥

अथ चिकित्सा।

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः।
कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम्॥ ८६॥

इति नवाङ्गः।

गुडूचीनिम्बधान्याकं पद्मकं रक्तचन्दनम्।
एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडुच्यादिस्तु पाचनः।

मिला अवलेह खांसी, स्वास, ज्वर, प्लीहा और हिचकीको नाश करता है यह बालकोंकोभी दिया जाता है इसका नाम मधुपिप्पली, अवलेह है॥ ८३—८४॥

वातपित्तज्वर में दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, अन्धकारमें जानेके समान ज्ञान, कण्ठ सूखना, अधिक थूक आना, शरीर कांपना, प्यास, शरीरोंका भारीपन, रूंए खड़े होने, और जमुआई बहुत आना ये लक्षण होते हैं॥ ८५॥

सोंठि, गुरिच, मोंथा, चिरायता और पञ्चमूल इनका काढ़ा पीनेसे वातपित्तज्वर शीघ्र नाश होता है इसका नाम नवाङ्ग क्वाथ है॥ ८६॥

गिलोय, नीमकी छाल, पद्माख और लालचन्दन यह काढ़ा सब ज्वरोंको नाश करता है और दोषोंको पचाता है

हृल्लासारोचकच्छर्दि पिपासादाहनाशनः ॥ ८७ ॥

इति गुडूच्यादिः ।

गुडूचीचन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम् ।
अभयारग्वधोदीच्य पाठाधान्याब्दरोहिणी ॥ ८८ ॥
कषायं पाययदेषां पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।
कासश्वासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनः ॥ ८९ ।
विण्मूत्रानिलविष्टम्भे त्रिदोषप्रभवेऽपि च ॥ ९० ॥

इति बृहत् गुडूच्यादिः ।

घनचन्दनपर्पटकं कटुकं
समृणालपटोलदलं सजलम् ।
शृतशीतसितायुतपित्तहरं
ज्वरछर्दितृषारुचिदाहहरम् ॥ ९१ ॥

इति घ[न]चन्दनादिः ।

इससे हृल्लास, अरोचक, प्यास और दाहका नाश होता है इस का नाम गुरुच्यादि क्वाथ है ॥ ८७ ॥

गिलोय, चन्दन, पद्माख, सोंठि, इन्द्रजौ, हर्र, किरवाला, नेत्रवाला, पाढ़ा, धनियां, मोथा और कुटकी इनका काढ़ा पकाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे खांसी, श्वास, ज्वर, प्यास, दाह, मूत्रबंध, विष्टाबंध, वायुबंध, और सन्निपात ज्वरका नाश होजाता हैं इसका नाम बृहत् गुडुच्यादि क्वाथ है ॥ ८८—८९—९० ॥

मोथा, चन्दन, पित्तपापड़ा, कुटकी, कमलकेपत्ते,

मुस्तपर्पटकोत्पलकिराततोशीरचन्दनात्कर्षः ।
शर्करया च क्रियते वातपित्तज्वरे बहुधा दृष्टफलः ॥९२॥

इति मुस्तादिः ।

अथ पित्तश्लेष्मज्वरनिदानम् ।

संतापश्च शिरःपीड़ा शीतोष्णाद्वेष एव च ।
कासः स्वेदाप्रवृत्तिश्च (१) पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥९३॥

अथ चिकित्सा ।

अमृतेन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ।
नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ ९४ ॥

परवरकेपत्ते, और खस इनके काढ़ेको पकाकर ठण्डा करके मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर, वमन, प्यास, अरुचि और दाह जाते रहतेहैं इसका नाम घन चन्दनादि क्वाथ है ॥ ९१॥

मोंथा, पित्तपापड़ा, कमल, चिरायता, खस और चन्दन ये सब एक कर्ष और एक कर्ष शक्कर इस काढ़ेके पीनेसे वात पित्तज्वरका नाश होता है इसका फल अनेक बार देखा है इसका नाम मुस्तादि क्वाथ है ॥ ९२ ॥

शरीरमें जलन, शिरमें पीड़ा, गर्मी और शर्दी की अनिच्छा, खांसी और अधिक पसीना आना ये पित्तकफज्वरका लक्षण हैं ॥ ९३ ॥

गिलोय, इन्द्रजौ, नीम, परवर, कुटकी, सोंठि, चन्दन,

(१) आसर्मता, प्रवृत्तिः प्रवर्त्तनं न अप्रवृत्तिः ।

अमृताष्टक इत्येष पित्तश्लेष्मज्वरापहः ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ ६५ ॥

इति अमृताष्टकः ।

कण्टकार्य्यमृताभार्गी नागरेन्द्रयवासकम् ।
भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ ६६ ॥
कषायं पाययेदेतं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
दाहतृष्णाऽरुचिच्छर्दि कासहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ६७ ॥

इति कण्टकार्य्यादिः ।

अथ वातश्लेष्मज्वरनिदानम् ।

कासस्तृष्णाऽरुचिर्मोहः शीतदाहौ मुहुर्मुहुः ।
लिप्तत्वं तिक्तता चास्ये पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ६८ ॥

मोथा इनके काढ़े में पीपल का चूर्ण मिलाकर पीनेसे पित्त कफज्वर, हृल्लास, अरोचक, वमन, प्यास और दाह का नाश होता है इसका नाम अमृताष्टक है ॥ ६४—६५

कटहली, गुरिच, भारंगी, सोंठि, इन्द्रजौ, चिरायता चन्दन मोथा और कुटकी इनका काढ़ा पीनेसे पित्तकफज्वर, दाह, प्यास, अरुचि, वमन, खांसी, तथा हृदय और पसुलीकी पीड़ा जाती रहती है इसका नाम कंटकार्यादि क्काथ है ॥६६—६७॥

पित्त कफज्वर में खांसी, प्यास, अरुचि, मूर्च्छा कभी जाड़ा लगना और कभी गर्मी लगनी, मुंह कड़ुआ और लाटासा होना ये लक्षण होते हैं ॥ ६८ ॥

अथ चिकित्सा ।

कफवातज्वरे स्वेदान् कारयेद्रुक्षनिर्म्मितान् ।
स्रोतसां मार्द्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ।
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदोज्वरमपोहति ॥ ९९ ॥
खर्परभृष्टस्थितकाञ्जिकसिक्तो हि बालुकास्वेदः ।
शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ १०० ॥
वीच्यस्वेदविधिं कुर्य्यात् स्वेदनं बालुकादिभिः ।
सर्वाङ्गे यदि वा यत्र वेदाना संप्रजायते ॥ १०१ ॥
शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।
सञ्जातमार्द्दवे स्वेदे स्वेदानाद्विरतिर्मता ॥ १०२ ॥
आमज्वरे वातबलासजे वा
कफोत्थिते मारुतसम्भवे वा ।

वातकफ ज्वर में पहिले रूखी औषधियों से पसीना देना उचित है क्योंकि पसीना सब रोगों को कोमल करके वायुको उसके आशयमें लेजाकर वायु और कफ का नाश करके ज्वर को दूर करता है ॥ ९९ ॥

मिट्टीके ठीकरे में बालू भरके उसपर कांजी छिड़के फिर उसे आग पर चढ़ाकर उससे रोगी का शरीर सेकने से वात कफके रोग, शिरका शूल और अंगभंग दूर होते हैं ॥१००॥

स्वेदविधिको पढ़कर बालू आदिसे स्वेदन करे स्वेदन,उसी शरीर में करना चाहिये जहां पीड़ा हो सबशरीरमें पीड़ा होनेसे सब शरीरमें भी किया जाता है। जब स्वेदन करतेर शीत, शूल,

त्रिदोषजे स्वेदमुदाहरन्ति
स्तम्भप्रमोहाङ्गरुजाप्रशान्त्यै ॥ १०३ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्।
दीपनीयः स्मृतोवर्गः कफानिलगदापहः ॥ १०४ ॥

इति पञ्चकोलम्।

रास्नाद्राक्षावचापथ्या यमानीमधुयष्टिका।
मधूरिकेन्द्रबीजञ्च तिक्ताविश्वं गुडूचिका ॥ १०५ ॥
द्विमाषमेषां प्रत्येकं ग्राहयेत् कुशलो भिषक्।
पचेदष्टपले तोये ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १०६ ॥
शीते च मधुनश्चात्र पलार्द्धं प्रक्षिपेत् सुधीः।
मुहुर्दण्डान्तरैः(१)पानात् ज्वरो या[ति] न संशयः॥१०७

स्तम्भ, भावोपद्रव दूर होजांय पसीन[े] आने लगे और शरीर कोमल होजाय तब उसे छोड़ना चाहिये। आमज्वर, वातकफ ज्वर, कफज्वर, वातज्वर, त्रिदोषज्वर, स्तम्भ, मूर्छा और शरीर पीड़ामें स्वेद विधान कियाजाता है ॥ १०१—१०३ ॥

पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीता, और सोंठि इन सबको एक२ कोल लेकर काढ़ा बनाकर पीनेसे अग्नि बढ़ती है। और वातकफज्वर का नाश होता है [।] इसका नाम पंचकोल कषाय है ॥ १०४ ॥

रायसन, दाख, वच, हर्र, अजवायन, जेठीमधु, इन्द्रजो मुरहर, कुटकी और गिलोय इनसब को दोर माशे लेकर

(१) मुहुर्मुहुर्वारम्।

पिप्पलीभिः शृतं तोय मनभिष्यन्दिदीपनम् ।
वातश्लेष्मविकारघ्नं प्लीहाज्वरविनाशनम् ॥ १०८ ॥
इति पिप्पलीक्वाथः ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता-
हरीतकीभिः क्वथितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातयुक्ते
ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ १०९ ॥
इति आरग्वधादिक्वाथः ।

क्षुद्रामृता नागरपुष्कराह्वयैः
कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे ।

बुद्धिमान वैद्य आठ गुणे जलमें पकावे जब चौथाभाग रहजाय तब उतारकर ठण्डाहोने पर आधापल शहत डाले इसको एक२ घडी में पीने से निःसन्देह ज्वर जाता रहता है इसका नाम रास्नादि काढ़ा है ॥ १०५—१०७ ॥

केवल पीपलका काढ़ा देनेसे ही वातकफज्वर और प्लीह युक्त ज्वरका नाश होता हैं यह काढ़ा अग्निको तेज करता है और अभिष्यन्दी भी नहीं है ॥ १०८ ॥

किरवाला, पीपलामूल, कुटकी और हर्र, इनका काढ़ा आम और शूलयुक्त कफवातज्वरमें देना चाहिये इससे अग्नि बहुत बढ़ती और दोष पचते हैं इसका नाम आरग्वधादि क्वाथ.हैं ॥ १०९ ॥

कटेली, गिलोय, सोंठ और पुहकरमूल इनका काढ़ा

सश्वासकासारुचिपार्श्वरुग्ज्वरे
ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ॥ ११० ॥

इति क्षुद्रादिक्काथः ।

दशमूलीरसः (१) पेयः कणायुक्तः कफानिले ।
अविपाकेऽतितन्द्रायां पार्श्वरुक् श्वासकासके ॥ ११

इति दशमूलीक्काथः ।

अथ सन्निपातज्वरनिदानम् ।

सर्वेषां चात्र चिह्नानि दोषाणां प्रभवन्ति हि ।
सन्निपातज्वरः सोऽयं कालादपि सुदारुणः ॥ ११२
भिषग्यो मोचयेदस्मात् स वैद्यः ...र्हमर्हति ।
रोगिणं किं पुनः स्वञ्च सर्वलोकप्रपूजितः ॥ ११३ ॥

खांसी, सांस और पसलीके शूलयुक्त कफवातज्वर और सन्निपातज्वरमें देना चाहिये इसका नाम क्षुद्रादि क्काथ है ॥ ११० ॥

दशमूल काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर अन्न न पचने, जभुआई, पसलीकी पीड़ा, खांसी और सांसयुक्त वातकफज्वरमें देना चाहिये इसका नाम दशमूली क्काथ है ॥ १११ ॥

सन्निपातज्वरनिदान ।

सन्निपात अर्थात् वात, पित्त और कफ इन तीनोंदोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें तीनोंदोषोंके लक्षण इकट्ठे होजाते हैं यह सन्निपातज्वर महा भयानक और कालके समान घोर है ॥११२॥

जो सबसे पूजापाने योग्य वैद्य इस मृत्युरूप घोर सन्निपात

यस्मिन् दाहश्च शीतञ्च शिरोरुक् सन्धिपीड़नम्।
कासश्वासौ प्रमोहश्च भ्रमस्तन्द्राऽरुचिः क्लमः ॥११४॥
रक्ते स्रावयुते नेत्रे कर्णौ सस्वनपीड़ितौ।
स्तब्धाङ्गत्वं खराजिह्वा परिदग्धा च जायते ॥११५॥
रक्तपित्तष्ठीवनञ्च शिरसश्चालनं तथा।
निद्राविनाशो हृत्पीड़ा तृष्णा कण्ठस्य कूजनम् ॥११६॥
मलानामल्पतारोधो स्वेदस्य मूकता तथा।
गुरुत्वमुदरस्यापि दोषा पाकश्च स्रोतसाम् ॥११७॥
पाकश्च स्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम्।
भवन्ति सभिषक् श्रेष्ठैः सन्निपातज्वरो मतः ॥ ११८ ॥

से रोगीको कुड़ावे वह रोगीका सर्वस्वपासक्ता है और धनकी तो कथाही क्या है ? ॥ ११३ ॥

जिस रोगमें क्षण२ भरमें जाड़ा और गर्मी लगे, शिर और सन्धियोंमें पीड़ा हो, खांसी, सांस, मूर्च्छा, भ्रम, जभुआई, अरुचि, परिश्रम हों, नेत्रोंसे पानीगिरे और लाल हों, कानमें कुछ शब्द सुनाई दे और पीड़ा हो, थूकके संग रुधिर और पित्त आवे, रोगी सिरधुने, शरीरकठोर होजाय, जीभ खर-खरी और जलती सी हो, नींद नआवे, हृदयमें पीड़ा हो, प्यास लगे, कण्ठमें कूजने कासा शब्द हो, मल बहुतही थोड़े आवें, पसीना बन्द होजाय, रोगी गूंगा होजाय, पेट भारी हो, दोष न पके, शरीरके सब मार्ग पकेसे जान पड़े, शरीरमें कुछ लाल कुछ काले मंडल दिखाई देने लगें, उसे सन्निपातज्वर कहते हैं ॥ ११४——११८ ॥

दोषे बलवत्यग्नौ च नष्टे सम्पूर्णलक्षणः ।
असाध्यः कृच्छ्रसाध्यश्च सन्निपातज्वरोऽन्यथा ॥११९
सप्तमे दशमे चापि द्वादशे दिवसेऽपि वा ।
सन्निपातज्वरो हन्ति रोगिणं वा विमुञ्चति ॥१२०॥
धातुपाकान्निहन्त्येष मलपाकाच्च मुञ्चति ।
मुन्यंक रुद्रदिवसाः यर्य्यादा तस्य कीर्त्तिता ॥१२१॥

अथ सन्निपातज्वरचिकित्सा ।

लङ्घनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ।
अवलेहाञ्जने चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥१२२॥

सन्निपातज्वरमें जब दोष बलवान हो, अग्नि नष्ट होजाय और ऊपर लिखे सब लक्षण रोगीमें दिखाई दें तो असाध्य जानो और यदि ये चिह्न न हों अर्थात् दोष न [illegible] हों, अग्नि बलवान हो और सब लक्षण भी न मिलते हैं [illegible] तो कृच्छ्रसाध्य जानो। सन्निपातज्वर सुखसाध्य कभी नहीं होता ॥ ११९ ॥

सन्निपातज्वरमें यदि वात अधिक हो तो सात, पित्त अधिक हो तो दस और कफ अधिक हो तो बारह दिनकी मर्यादा है अर्थात् इतने ही दिनोंमें या तो अच्छा ही होजाता है या रोगीको मारही डालता है। यदि इस [illegible]अवधिके भीतर मल पाक हुआ तो रोगी अच्छा होजाता है और जो धातु पाक हुआ तो मरजाता है॥ किसी किसी आचार्य्यने इस ज्वरकी मर्यादा सात, नौ और ग्यारह दिनकी भी कही है॥ १२०—१२१ ॥

सन्निपातज्वरमें पहले अपक्व कफको शान्त करे उसके

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्य्यादामकफापहम् (१) ।
पश्चात् श्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ ॥१२३॥
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा (२) ।
लङ्घनं सन्निपातेषु कुर्य्यादारोग्यदर्शनात् ॥ १२४ ॥
दोषाणामेव सा शक्तिर्लङ्घने या सहिष्णुता ।
नहि दोषक्षये कश्चित् सहते लङ्घनादिकम् ॥१२५॥
न स्वेदव्यतिरेकेण सन्निपातः प्रशाम्यति ।
तस्मान्मुहुर्मुहुः कार्य्यं स्वेदनं सन्निपातिनाम् ॥१२६॥
सन्निपाते जलमयो नराणां विग्रहो (३) भवेत् ।
विना वह्न्युपचारेण कस्तं शोषयितुं क्षमः ॥१२७॥

पश्चात् बात और पित्तकी चिकित्सा करे। तीन पांच दस या जब तक रोगी अच्छा न हो तबतक लङ्घन दे क्योंकि कोई मनुष्य दोष नाश होनेपर लङ्घन नहीं सह सक्ता लङ्घन सहना केवल दोषों होकी शक्ति है। स्वेदनके बिना सन्निपातज्वर अच्छा नहीं होता इस लिये सन्निपातमें बार२ स्वेदन करना चाहिये, सन्निपातमें रोगीका शरीर जलसे भर जाता है आगके संयोग बिना उस जलको वैद्य किसी प्रकार नहीं सुखा सक्ता; यद्यपि विषैली और विष रहित और भी अनेक प्रकारके प्रयोग हैं परन्तु अग्नि के बिना उनमें से कोई भी अपना बल नहीं दिखा सक्ता इस लिये स्वेदन करना ही सन्निपातमें उत्तम है; यदि ऐसी ऐसी

(१) अपक्वकफनाशनं कर्म्म। (२) क्रमाद्वातपित्तकफोल्वणे। (३) वपुः।

प्रयोगा बहवः सन्ति सविषा निर्विषा अपि ।
बह्न्युष्माणं विना प्रायो न वीर्य्यं दर्शयन्ति ते ॥१२८
प्रतिक्रियाविधावेवं यस्य संज्ञा न जायते ।
पादतले ललाटे वा दहेल्लोहशलाकया ॥ १२९ ॥

नस्यमाह ।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च ।
वस्तमूत्रेण संपिष्य नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ १३० ॥
मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः ।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं कुर्यात् [illegible] प्रबोधनम् ॥१३१॥
षडग्रन्थिसैन्धवकणाः सम[illegible]सारा:
पिष्टाः समेन(१)मरिचेन जलैः कदुष्णैः (२) ।

क्रिया करने पर भी रोगीको चैतन्यता न आवे तो माथे या पैरके तलुवेमें लोहकी सलाई तपाकर दाग दे ॥ १२२—१२९ ॥

सेंधानमक, सफेद मिर्च (सहंजनेकेबीज) सरसों और कूट इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर सूंघनेसे जमुहाई नहीं आती ॥ १३० ॥

जेठी मधुका सार, सेंधानमक, बच, मिर्च और पीपल इन सबको समान लेकर पानीमें अधिक पीसे इसके सूंघनेसे मूर्छित मनुष्य चैतन्य होजाता है ॥ १३१ ॥

सेंधानमक, पीपल, जेठीमधुका सार, बच और मिर्च इनको

---

(१) सर्वतुल्येन । (२) ईषदुष्णैः ।

नस्यं निवारयति शीघ्रमचेतनत्वं
तन्द्राप्रलापसहितं शिरसो गुरुत्वम् ॥१३२॥
लशुनं मरिचं पिष्टं नस्यं स्यात् श्लेष्मनाशनम् ॥१३३॥
सितकुक्कुटिकाण्डजजलपानान्नस्यादप्यञ्जनाच्च
दुःसाधनसन्निपातः प्रबलोऽप्याश्वेव सममेति ॥१३४॥

निष्ठीवनमाह।

आर्द्रकस्वरसो (१) पेतं सैन्धवं सकुटत्रिकम्।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ १३५ ॥
तेनास्य हृदयात् श्लेष्मामन्यापार्श्वशिरो गलात्।
लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवञ्चास्य जायते ॥१३६॥

समान लेकर थोड़े उष्ण जलमें पीसे इसे सूंघनेसे शीघ्र ही मूर्च्छा दूर होजाती है तथा जभुआई, प्रलाप (बहुत बकना) और शिरका भारीपन भी दूर होजाता है॥ १३२ ॥

केवल लशुन और मिर्चको पीसकर सूंघननेसे कफका नाश होता है ॥ १३३ ॥

सफेद मुर्गीके अण्डेका पानी पीने, सूंघने और आंखमें आँजनेसे घोर कठोर सन्निपात भी शीघ्र अच्छा होजाता है ॥ १३४ ॥

सन्निपात रोगीके मुखमें सोंठ, मिर्च, पीपल और सेंधानमक को अदरकके रसमें पिसवाकर मुखमें रखवादे और बार२ थूकनेको कहै इस थूकनेसे हृदय, कंठ और गलेकी नाड़ियोंमें

(१) अत्रीणमार्द्रकरसंयाह्यम्।

पर्वभेदो ज्वरोमूर्च्छा निद्राकाशगलामयाः ।
मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेदश्चोपशाम्यति ।
एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ १३७ ॥

इति निष्ठीवनम् ।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतञ्चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ १३८ ॥
एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च कण्ठरोधं नियच्छति ॥१३९॥
ऊर्द्ध्वगश्लेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकर्म्मणि ।
विरोध्युष्णे (१) मधुत्यक्त्वा कार्य्यैषा[illegible] कजै रसैः ॥१४०॥

इति [illegible]ावलेहिका ।

लगा सूखा हुआ कफ भी खिंचकर निकल जाता है उससे रोगीका शरीर हलका होजाता है, संधियोंकी पीड़ा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, खांसी, गलेके रोग, मुख और आंखोंका भारीपन, जड़ता और गीलापन शान्त होजाते हैं, सन्निपात रोगके लिये आचार्योंने इसे परम औषधि कहा है ॥ १३५—१३७ ॥

कांयफल, पुष्करमूल, कांकड़ासिङ्गी, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवासा, और कलोंजी, इन सबको पीसकर मधुमें मिलाकर चाटनेसे घोर सन्निपातका नाश होता है । हिचकी, खांसी और

(१) उष्णे सन्निपाते विरोधी शीतं मधु तदुक्तम् "शीतोपचारीक्षौद्रं स्यात् शीतं चात्र विरुध्यते" इति अत्र सन्निपाते एषा अवलेहिकेत्युपलक्षणमात्रम् सर्वत्रैव कषायादिष्वपि सन्निपाते क्षौद्रमदेयमित्यर्थः ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः।
अञ्जनं स्यात् प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः॥ १४१ ॥
असुराह्वपतङ्गस्य विट्चूर्णं मधुसंयुतम्।
अञ्जनाद्बोधयेन्मुग्धं (१) तन्द्रितं सन्निपातिनम्॥१४२
बिल्वश्योनाकगाम्भारी पाटला गणिकारिका।
दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत्॥ १४३ ॥
शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम्।

कण्ठका रुकना भी दूर होजाते हैं यदि रोगीके ऊपरके शरीर से अधिक कफ निकालना हो या उष्ण औषधियोंसे स्वेदादि कर्म करने हों तो सन्निपातमें उष्णताके विरोधी मधुको छोड कर इस चटनीमें अदरक का रस डाले इसका नाम अष्टाङ्गावलेह है॥ १३८—१४० ॥

शिरीषके बीज, गोमूत्र, पीपल, मिर्च, सेंधानमक, लशुन, कपूर और वच इनका अञ्जन लगानेसे मूर्च्छाका नाश होता है॥ १४१॥

कांसेकीभस्म, पक्षीकी विष्टाका चूर्ण इनको शहतमें मिला कर आंखमें अञ्जन करनेसे मूर्छित और निन्द्रित सन्निपाती भी चैतन्य होजाता है॥ १४२ ॥

बेल, सोनापाढ़ा, खम्हारी, पाड़र, अरणी, यह महापञ्चमूल काढ़ा अग्निको बढ़ाता है कफ और वातका नाश करता हैं॥ १४३ ॥

शालपर्णी, पृष्टिपर्णी, दोनोंकटेली और गोखुरू यह लघु

(१) मूर्च्छितम्।

वातपित्तापहं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ १४४ ॥
उभयं दशमूलं हि सन्निपातज्वरापहम्।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥ १४५ ॥

इति दशमूलम्।

चिरज्वरे वातकफोल्वणे वा
त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः।
किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः
शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ १४६ ॥

इति चतुर्दशाङ्गक्वाथः।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द
तिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः।

पञ्चमूल कहलाता है इससे वातपित्तका नाश होता है और वीर्य्य बढ़ता है। इन दोनोंको मिलानेसे दशमूल होता है सो सन्निपातज्वर, खांसी, सांस, पसुलियोंकी पीड़ा, जँभुआई नाश होजाते हैं। यदि इसमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाया जाय तो कण्ठ और हृदयके रोगोंका नाश करता है ॥ १४४—१४५ ॥ इति दशमूल।

जीर्णज्वर, वातकफज्वरमें और सन्निपातज्वरमें किरात तिक्तादिगणदे और विरेचनके लिये निसोत मिलाकर पिलावे ॥ १४६ ॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठि, मोथा, कुटकी,

तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोह
श्वासादियुक्तमखिलज्वरमाशु हन्ति(१)॥१४७॥

इति भूनिम्बाद्यष्टादशाङ्गक्वाथः ।

कट्फलाब्दवचापाठा पुष्कराजाजिपर्पटैः ।
शृङ्गीकलिङ्गधान्याक शटीभृङ्गकणाह्वयम् ॥ १४८ ॥
तिक्ताभयाम्बुकैरातं भार्गीरामठकं बला ।
दशमूलीकणामूलं निःक्वाथ्यक्वाथमुत्तमम् ॥ १४९ ॥
हिङ्ग्वार्द्रकरसोपेतं सन्निपातविनाशनम् ।
गलगण्डं गण्डमालां स्वरभेदं गलामयान् ॥ १५० ॥
कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्याद्धनुमुखामयान् ।
कफवातज्वरं कासं तथा हन्ति शिरोगदान् ॥
शिरोगुरुत्वं बाधिर्य्यं निहन्ति कफवातिकम् ॥१५१॥

इति बृहत्कट्फलादिक्वाथः ।

इन्द्रजौ, धनियां और गजपीपल इनका काढ़ा पीनेसे प्रलाप, खांसी, श्वास, अरुचि, मूर्च्छायुक्त सन्निपातज्वरका शीघ्र नाश होता है इसका नाम भूनिम्बादि अष्टाङ्ग क्वाथ है ॥ १४७ ॥

कांयफल, मौथा, वच, पाढ़ा पुष्करमूल, अजवायन, पित्त-पापड़ा, कांकड़ासिंगी, इन्द्रजौ, धनियां, कचूर, भांगरा, पीपल कुटकी, हर्र, नेत्रवाला, चिरायता, बम्हनेटी (भारंगी) हींग, बरियारा, दशमूल इनके पके हुए काढ़े में हींग और अदरक का रस मिलाकर पिलानेसे सन्निपातज्वर गलगण्ड गण्डमाला,

(१) अखिलज्वरं सन्निपातोत्थम् ।

कारवीपुष्करैरण्ड त्रायन्तीनागरामृता ।
दशमूलीशटीशृङ्गीयासभार्गीपुनर्नवाः ॥ १५२ ॥
तुल्यामूत्रेण निःक्वाथ्य पीताः स्रोतो विशोधनाः ।
अभिन्यासं ज्वरं घोरमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥१५३॥
इति कारव्यादिक्वाथः ।

निद्रोपेतमभिन्यासं क्षीणं विद्याद्गतौजसम् ।
सन्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलम्पन्तं न लंघयेत् ॥ १५४ ॥
तृष्णादाहाभिभूतेषु न दद्यात् शीतलं जलम् ।
वातपित्तोल्बणे चैवं (१) घृतं योज्यं पुरातनम् ॥१५५॥

स्वरभङ्ग, गलेकेरोग, कर्णमूल, ठोडी और मुखकेरोग, कफवातज्वर, खांसी, शिरकेरोग, शिरकाभारीपन और कफवातका बहरापन शीघ्र अच्छे होजाते हैं इस नाम बृहत् कटुफलादि क्वाथ है ॥ १४८—१५१ ॥

कलौंजी, पुहकरमूल, अरण्ड, त्रायमाणा, सोंठि गिलोय, दशमूल, कचूर, कांकड़ासिंगी, जवासा, भारंगी और गधापुन्ना इन सबको समान लेकर गोमूत्रमें काढ़ा पकाकर पीनेसे घोर अभिन्यासज्वरका शीघ्र नाश होता है और सबमार्ग शुद्ध होजाते हैं जिस सन्निपातके रोगी, अभिन्यास रोगी, अधिक निद्रायुक्त, बलक्षीण और शरीर कांपनेवालेरोगीके जीनेकी आशा न समझनी चाहिये और उसे कोई लंघन औषधि भी नहीं देनी चाहिये। जिस सन्निपातके रोगीको प्यास और

(१) एवमेवानुयाम्यं वर्जनम् ।

अभ्यङ्गात् शमयत्याशु सन्निपातं सुदारुणम्।
स्वेदोद्गमे ज्वरे देय: चूर्णों भृष्टकुलत्थज: ॥ १५६ ॥
सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुण:।
शोथ: सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ १५७ ॥

ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा
ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथ:।
क्रमादसाध्य: खलु कृच्छ्रसाध्य:
सुखेन साध्य: कथितो भिषग्भि: ॥१५८॥

रक्तावसेचनै: (१) पूर्वं सर्पि: पानैश्च तं जयेत्।
प्रदेहै: कफवातघ्नैर्वमनै: कवड़ग्रहै: ॥ १५९ ॥

दाह अधिक हो उसे ठण्डा जल न दे बातपित्तोल्वण सन्निपात में पुराना घी लगावे क्योंकि लगानेकी औषधियोंसे भी सन्निपातका नाश होजाता है यदि पसीना अधिक आता होतो भुनो हुई कुलथीका चूर्ण शरीरमें मले ॥ १५३—१५६ ॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें जो कानकी जड़में जो सूजन होजाती है वह बड़ी भयानक है उससे कोई ही रोगी बचता है यदि यह सूजन ज्वरके आदिमें हो तो असाध्य मध्यमें हो तो कृच्छ्र साध्य और जो अन्तमें हो तो वैद्योंने सुखसाध्य कहा है ॥ १५७—१५८ ॥

इससे पहले जौंक लगाकर रुधिर निकाले रोगीको पीनेके लिये कुछ गर्म घी दे वमन करावे और वातकफ नाशक औषधि

(१) जलौकयारक्तमोक्षणै:।

कुलत्थकट्फले शुण्ठी कारवी च समांशिकैः।
सुखोष्णं लेपनं दद्यात् कर्णमूले मुहुर्मुहुः॥ १६०॥
गैरिकं पांशुजं शुण्ठी वचकट्फलकाञ्जिकैः।
कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे नृणाम्॥ १६१॥
सुखोष्णदशमूलेन प्रलेपोऽपि महाफलः।
बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थं तथैव च॥ १६२॥
सनागरं देवदारुचव्यचित्रकपेषितम्।
प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं गले श्वयथुनाशनम्॥ १६३॥

पूर्ववल्लेपः।

सोंका लेप करे और खानेको भी कफनाशक हो सकता है॥ १५८॥

कुल्थी, कांयफल, सोंठि, और कलौंजी इन सबको समान लेकर सहने योग्य उष्णजलमें पीसकर बार बार लेप करे गेरु, खारीनमक, सोंठि, बच, कांयफल इनको कांजीमें पीस कर लेप करनेसे सन्निपातज्वरमें उत्पन्न हुआ कर्णमूलका नाश होता है॥ १६०—१६१॥

दशमूलको उष्णजलमें पीसकर लगानेसे भी कर्णमूलका नाश होता है॥ १६२॥

बिजोरेनीबूकीजड़, अरणी, सोंठि, देवदारु, चाभ और चीता इनको पीसकर लेप करनेसे कर्णमूलका नाश होता है॥ १६३॥

अथ जीर्णज्वरादौ।

निदिग्धिकानागरकाऽमृतानां
क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम्।
जीर्णज्वरारोचककासशूल
श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १६४ ॥

इति निदिग्धिकादिक्वाथः।

हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ॥ १६५ ॥

इति चक्रः।

एतद्रात्रिज्वरे सायमन्यत्र प्रातरिष्यते।
पित्तानुबन्धे सन्त्यज्य पिप्पलीं प्रक्षिपेन्मधु (१) ॥१६६॥

इति वृद्धाः।

अथ जीर्णज्वरचिकित्सा।

कटेली और गिलोय इनके काढ़े में पीपलका चूर्ण मिला कर पीनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, खांसी, शूल, श्वास, मन्दाग्नि, अर्दित और पीनस इन सब रोगोंका नाश होजाता है यह काढ़ा गलेसे ऊपरके रोगोंको प्रायः अच्छा करता है इस लिये सन्ध्या समय पिलाया जाता है ॥ १६४—१६५ ॥

यदि पित्तज्वर हो तो इसमें पीपल न डालकर शहत डालना चाहिये यदि रात्रिको ज्वर आता हो तो सन्ध्याको और नहीं तो प्रातःकाल देना चाहिये यह वृद्ध वैद्योंका सिद्धान्त है इसका नाम निदिग्ध क्वाथ रक्खा है ॥ १६६ ॥

(१) पैत्तिके पिप्पलीस्थाने मधुक्षिपेत् अन्यत्र तु कर्षेव।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नरुहोद्भवः ।
जीर्णज्वरे कफध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा ॥ १६७ ॥
पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत् ।
जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ १६८ ॥
निदिग्धिकागणः पथ्या तथा रोहितको मतः ।
क्वाथं कृत्वा क्षिपेत्तत्र यवक्षारं कणायुतम् ॥
एतस्य पानमात्रेण प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ १६९ ॥

निदिग्धिकागणः स्वल्पपञ्चमूलम् ।

इति प्लीहज्वरे निदिग्धिकादिः ।

अस्थिकर्कटपञ्चाङ्गं शुण्ठ्याचिरज्वरप्रणुत् ॥ १७० ॥

गिलोयके काढ़ेमें पीपल मिलाकर पीनेसे जीर्णज्वर और कफका नाश होता है और पंचमूल काढ़ेमें भी यही गुण है ॥ १६७ ॥

गिलोयको कूटकर अर्क निकाले उसमें शहत और पीपल मिलाकर पीनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, खांसी और अरुचिका नाश होजाता है ॥ १६८ ॥

ऊपर लिखे लघुपञ्चमूलमें हर्र, गम्भलण, मिलाकर काढ़ा पकाकर जवाखार और पीपल मिलाकर पीनेसे प्लीहा (तापतिल्ली) युक्त ज्वरका नाश होता है इसका नाम निदिग्धकादि काढ़ा है ॥ १६९ ॥

अस्थिकर्कटका पंचांग सोंठिके सङ्ग खानेसे जीर्णज्वरका नाश करता है ॥ १७० ॥

अस्थिककर्कटस्य मूलवल्कलपत्रपुष्पफलं संचुद्य
पोटलीं बद्ध्वा दग्ध्वारसं गृहीत्वा शुण्ठ्यापेयम् ॥७१॥
गुडूचीपर्पटं भेकपर्णी च हिलमोचिका ।
पटोलं पुटपाकेन रसमेषां मधुप्लुतम्
वातंपित्तज्वरं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १७२ ॥

अथ विषमज्वरलक्षणम् ।

ज्वरे निवृत्ते मन्देऽग्नौ वर्त्तमानेऽथवा पुनः ।
आसाद्यधातून्दोषोऽल्पो विषमज्वरदो भवेत् ॥१७३॥
सततः सन्ततश्चैव अन्येद्युष्कस्तथैव च ।
तृतीयकचतुर्थौ च पञ्चैते विषमज्वराः ॥ १७४ ॥

अस्थिकर्कटकके जड़, छाल, पत्ते, फूल और फलोंको कूट कर पोटली बांधकर पुटपाककी रीतिसे अर्क निकाले फिर सोंठ मिलाकर पीये ॥ १७१ ॥

इसी प्रकार गिलोय, पित्तपापड़ा, ब्राह्मी, चूका और परवर इन सबका रस निकाल कर शहत मिलाकर पीनेसे बहुत दिनका उत्पन्न हुआ घोर वातंपित्तज्वर भी नाश होजाता है ॥ १७२ ॥

विषमज्वर निदान ।

ज्वरशान्त होने पर और कहीं २ प्रथम ही से जब अग्नि मन्द होजाता है तब थोड़ा दोष भी धातुओं में प्राप्त होकर विषमज्वरको उत्पन्न करता है ॥ १७३ ॥

सतत, सन्तत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ये पांच

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नरुहोद्भवः ।
जीर्णज्वरे कफध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा ॥ १६७ ॥
पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत् ।
जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ १६८ ॥
निदिग्धिकागणः पथ्या तथा रोहितको मतः ।
क्वाथं कृत्वा क्षिपेत्तत्र यवक्षारं कणायुतम् ॥
एतस्यपानमात्रेण प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ १६९ ॥
निदिग्धिकागणः स्वल्पपञ्चमूलम् ।
इति प्लीहज्वरे निदिग्धिकादिः ।
अस्थिकर्कटपञ्चाङ्गं शुण्ठ्याचिरज्वरप्रणुत् ॥ १७०

गिलोयके काढ़ेमें पीपल मिलाकर पीनेसे जीर्णज्वर कफका नाश होता है और पंचमूल काढ़ेमें भी यही है ॥ १६७ ॥

गिलोयको कूटकर अर्क निकाले उसम शहत और पीपल मिलाकर पीनेसे जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, खांसी और अरुचि नाश होजाता है ॥ १६८ ॥

ऊपर लिखे लघुपञ्चमूलमें हर्र, गन्धतृण, मिलाकर पकाकर जवाखार और पीपल मिलाकर पीनेसे प्लीहा (तिल्ली) युक्त ज्वरका नाश होता है इसका नाम निदिग्ध काढ़ा है ॥ १६९ ॥

अस्थिकर्कटका पंचांग सोंठिके सङ्ग खानेसे जीर्णज्वर नाश करता है ॥ १७० ॥

अस्थिककर्कटस्य मूलवल्कलपत्रपुष्पफलं संचुद्य
पोटलीं बद्ध्वा दग्ध्वारसं गृहीत्वा शुण्ठ्यापेयम् ॥१७१॥
गुडूचीपर्पटं भेकपर्णी च छिलमोचिका।
पटोलं पुटपाकेन रसमेषां मधुप्लुतम्
वातपित्तज्वरं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १७२ ॥

अथ विषमज्वरलक्षणम्।

ज्वरे निवृत्ते मन्देऽग्नौ वर्त्तमानेऽथवा पुनः।
आसाद्यधातून्दोषोऽल्पो विषमज्वरदो भवेत् ॥१७३॥
सततः सन्ततश्चैव अन्येद्युष्कस्तथैव च।
तृतीयकचतुर्थो च पञ्चैते विषमज्वराः॥ १७४ ॥

अस्थिककर्कटकके जड़, छाल, पत्ते, फूल और फलोंको कूट कर पोटली बांधकर पुटपाकको रीतिसे अर्क निकाले फिर सोंठ मिलाकर पीये॥ १७१ ॥

इसी प्रकार गिलोय, पित्तपापड़ा, ब्राह्मी, चूका और परवर इन सबका रस निकाल कर शहत मिलाकर पीनेसे बहुत दिनका उत्पन्न हुआ घोर वातपित्तज्वर भी नाश होजाता है॥ १७२ ॥

विषमज्वर निदान।

ज्वरशान्त होने पर और कहीं २ प्रथम ही से जब अग्नि मन्द होजाता है तब थोड़ा दोष भी धातुओं में प्राप्त होकर विषमज्वरको उत्पन्न करता है॥ १७३ ॥

सतत, सन्तत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ये पांच प्रकारके विषमज्वर होते हैं॥ १७४ ॥

सततं रसगं विद्धि सन्ततं रक्तसंश्रयम् ।
अन्येद्युष्कं मांसगतं मेदोस्थञ्च तृतीयकम् ॥ ७५ ॥
घोरमस्थिगतं प्राहुश्चातुर्थिकमसंशयम् ॥ १७६ ॥
अहोरात्रान्न यो देहं मुञ्चत्यथ कदाचन ।
सततः स तु विज्ञेयो सन्ततं शृणु चापरम् ॥ १७७ ॥
अहोरात्राद् द्विवारं हि सन्ततस्तु प्रवर्त्तते ।
अन्येद्युष्कस्त्वेकवारं पीडयत्येव रोगिणम् ॥ १७८ ।
अतीत्यदिनमेकन्तु भवत्येव तृतीयकः ।
दिनद्वयमतीत्यैव मायाति च चतुर्थिकः ॥ १७९ ॥
यथा क्षेत्रे स्थितं वीजं काल एव प्ररोहति ।
तथा देहे स्थितो दोषः काल एव प्रकुप्यति ॥१८०॥

सतत रस में, सन्तत रक्त में, अन्येद्युष्क मांस में, तृतीयक मज्जा में और घोर चतुर्थक ज्वर हड्डी में दोष अर्थात वातपित्त कफ प्राप्त होने से होता है ॥ १७५—१७६ ॥

जो ज्वर रातदिन में किसी समय न उतरे अर्थात् हर समय चढ़ा ही रहे उस का नाम संतत है ॥ १७७ ॥

जो ज्वर एकवार दिन में और एकबार रात्रि में आवे उसे संतत ज्वर कहते हैं और जो रातदिन में एक ही वार आवे वह अन्येद्युष्क कहा जाता है ॥ १७८ ॥

जो एकदिन बीच में देकर तीसरे दिन आवे उसे तृतीयक और जो दो दिन बीच में देकर आवे उसे चतुर्थक ज्वर कहते हैं ॥ १७९ ॥

जैसे खेत में पड़ा बीज अपने समय ही पर उत्पन्न होता है

आमाशयश्च हृत्कण्ठौ शिरश्च श्लेष्मसंश्रयाः।
एषु स्थितः क्रमेणैव विषमं प्रकरोति सः॥ १८१॥
विषमः सूक्ष्मरूपेण वपुषि स्थित एव हि।
स्वकाले कोपमापन्ना रोगिणं पीड़यत्यसौ॥१८२॥
कृशता गौरवं ग्लानिर्यतो मुञ्चन्ति नातुरम्।
ततोऽनुमीयते सोऽपि रोगिणं न विमुञ्चति॥१८३॥
द्विदोषप्रभवाः प्रायः पञ्च स्युर्विषमज्वराः।
उररीकृतमेवं हि सुश्रुताद्यैर्महर्षिभिः॥ १८४॥

ऐसे ही शरीर में स्थित दोष भी अपने समय ही पर बलवान् होता है॥ १८०॥

आमाशय, हृदय, कण्ठ और शिर ये कफके स्थान हैं इन में स्थित दोष क्रमसे विषमज्वरोंको उत्पन्न करता है अर्थात् जब दोष शिर में रहता है तब पहले दिन शिरसे कण्ठ में दूसरे दिन कण्ठसे हृदय में आता है इन्हीं दोनों दिनों में ज्वर नहीं बढ़ता फिर जब चौथे दिन हृदय से चलकर आमाशय में आता है तब फिर ज्वर बढ़ता है ऐसे ही पांचों में जानो॥ १८१॥

विषमज्वर सूक्ष्मरूप से शरीर में हर समय ही बना रहता है परन्तु अपने समय पर पहले कहे दृष्टान्तके अनुसार बढ़ जाता है॥ १८२॥

विषमज्वरी किसी समय भी दुर्बलता, शरीरका भारीपन और ग्लानिसे नहीं छूटता और ये सब लक्षण बिना ज्वरके नहीं होसक्ते इससे अनुमान होता है कि ज्वर उस मनुष्य का

अथ चिकित्सा ।

मधुना सर्वज्वरनुत् शेफालीदलजो रसः ।
अजाजीगुड़संयुक्ता विषमज्वरनाशिनी ॥ १८५ ॥
अग्निसादं जयेत् सम्यक् वातरोगांश्च नाशयेत् ॥१८६॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं
योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः ।
विमुच्यते सोऽप्यचिराज्ज्वरेण
वातामयैश्चापि सुघोररूपैः ॥ १८७ ॥

गुड़प्रगाढ़ां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः ।
शीघ्रमेव शमं याति ज्वरो विषमसंज्ञकः ॥ १८८ ॥

कभी नहीं छोड़ता अर्थात् सूक्ष्मरूपसे बना ही रहता है सुश्रुत आदिक ऋषियोंने यही लिखा है कि विषमज्वर प्रायः दोदोषों से उत्पन्न होते हैं ॥ १८३—१८४ ॥

सिनुवारके पत्तोंका रस शहत मिला कर पीनेसे विषमज्वरका नाश होता है। गुड़ मिला कर अजवायन को खाने से भी ज्वर चला जाता है, इससे मन्दाग्नि और वातरोगोंका भी नाश होजाता है ॥ १८५—१८६ ॥

जो विषमज्वरी प्रतिदिन लशुनकी कल्क में तिलका तेल मिलाकर खाय वह शीघ्र ही विषमज्वर और भयानक वातरोगोंसे छूटजाता है विषमज्वर रोगी त्रिफलेके पानी में गुड़ मिलाकर पिये तो विषमज्वर शीघ्र ही शान्त होजाता है। १८७—१८८ ॥

तृतीयके।

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः।
क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः॥ १८९॥

महौषधादि क्वाथः।

तृतीयकेऽत्यन्तसिद्धिफलः।

उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम्।
अम्भसा क्वथितं पेयं शर्करा मधुयोजितम्॥ १९०॥
ज्वरे तृतीयके देयं तृषादाहसमन्विते॥ १९१॥

इति उशीरादि क्वाथः।

पटोलारिष्टमृद्वीका श्यामाकं (१) त्रिफलावृषम्।
क्वाथ ऐकाहिकं हन्ति शर्करामधुयोजितः॥ १९२॥

इति पटोलादि क्वाथः।

सोंठ, गिलोय, मोंथा, चन्दन, खस और धनियां इनके काढ़े में शक्कर और शहत मिलाकर पीनेसे विषमज्वर जाता रहता है इसका नाम महौषधादि काढ़ा है यह काढ़ा तृतीयक ज्वरमें बहुत ही लाभदायक है॥ १८९॥

खस, चन्दन, मोंथा, गिलोय, धनियां, सोंठ इन सबका काढ़ा पकाकर शहत और शक्कर मिलाकर पीनेसे तृतीयकज्वर प्यास और जलनके सहित जाता रहता है इसका नाम उशीरादि काढ़ा है॥ १९०—१९१॥

परवर, नीमकीछाल, दाख (मुनक्का) किरवाला, त्रिफला

(१) कृतमालम्।

वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः ।
सितामधुयुतः क्वाथः चातुर्थकविनाशनः ॥ १८३ ॥

इति वासादि क्वाथः ।

चातुर्थके ।

महाबलामूलमहौषधाभ्यां
क्वाथो निहन्याद्विषमज्वरञ्च ।
शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं
विनाशयेद्द्वित्रिदिनप्रयुक्तः ॥ १८४ ॥

इति महाबलादि क्वाथः ।

गुडूचीमुस्तभूनिम्बधात्रीक्षुद्रा च नागरम् ।
बिल्वादिपञ्चमूलञ्च कटुकेन्द्रयवासकम् ॥ १८५ ॥

और बासा इनका काढ़ा करके शक्कर और शहत मिलाकर पीनेसे एकाहिकज्वरका नाश होता है इसका नाम पटोलादि क्वाथ है ॥ १८२ ॥

बासा, आमला, शालपर्णी, देवदारु, सोंठ और हर्र इनके काढ़ेमें शहत और शक्कर मिलाकर पीनेसे चातुर्थकज्वर जाता रहता है इसका नाम वासादि काढ़ा है ॥ १८३ ॥

कंघीकी जड़ और सोंठ इनका काढ़ा दो तीनदिन पीनेसे शीत और कम्पयुक्त विषमज्वरका नाश होता है इसका नाम महाबलादि क्वाथ है ॥ १८४ ॥

गिलोय, मोंथा, चिरायता, आमला, छोटीकटेली, सोंठ, बेल आदि पञ्चमूल, कुटकी, इन्द्रजौ और जवासा इनका काढ़ा

निशाभवं ज्वरं वात कफपित्तसमुद्भवम्।
चिरोत्थं द्वन्द्वजं हन्ति सकणां मधुसंयुतम्॥ १८७॥
इति रात्रिज्वरे गुडूच्यादि क्वाथः।

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्वाथः॥
पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति॥ १८७॥
इति मुस्तादि क्वाथः।

मधुकं चन्दनं मुस्तं धात्रीधान्यमुशीरकम्।
छिन्नोद्भवं पटोलञ्च क्वाथः समधुशर्करः॥ १८८॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सन्तताद्यं सुदारुणम्।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सन्निपातिकम्॥१८९॥
इति मधुकादि क्वाथः।

पीनेसे वातपित्त और कफज्वर, और रात्रिज्वरका नाश होता है इसमें शहत और पीपल मिलाके पीनेसे जीर्णज्वर और दो दोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर जाता रहता है इसका नाम गुडूच्यादि काढ़ा है॥ १८५—१८६॥

मोंथा, आमला, गिलोय, सोंठ और कटेलीकाढ़ा पीपल और शहत मिलाकर पीनेसे विषमज्वरका नाश होता है इसका नाम मुस्तादि क्वाथ है॥ १८७॥

जेठीमधु, चन्दन, मोंथा, आमला, धनियां, खस, गिलोय और परवरकी पत्तीका काढ़ाकर शहत और शक्कर मिलाकर पीनेसे आठो प्रकारके ज्वर और सततादि विषमज्वर जाते रहते

भार्ग्यब्दपर्पटकपुष्करशृङ्गवेर
पथ्याकणामृतदशमूलकृतः कषायः ।
सद्यो निहन्ति विषमज्वरसन्निपात-
जीर्णज्वरश्वयथुशीतकवह्निसादान् ॥२००॥

इति भार्ग्यादि क्वाथः ।

भार्गीपथ्याकटुः कुष्ठं पर्पटं मुस्तकं कणा ।
अमृता दशमूलञ्च नागरं क्वाथयेद्भिषक् ॥ २०१ ॥
हन्ति धातुगतं सर्वं बहिःस्थं शीतसंयुतम् ।
सततादं ज्वरं घोरं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ २०२ ॥
प्लीहानं यकृतं गुल्मं श्वयथुञ्च विनाशयेत् ।
एष भार्ग्यादिको नाम सर्वज्वरहरः परः ॥ २०३ ॥

इति भार्ग्यादि क्वाथः ।

हैं ; इससे वात, पित्त, कफ और सन्निपातज्वर भी दूर होजा है इसका नाम मधुकादि क्वाथ है ॥ १९८— ॥

भारंगी, मोंथा, पित्तपापड़ा, पुष्करमूल, सोंठ, हर्र, पीप और दशमूल इनका काढ़ा पीनेसे बहुत शीघ्र विषमज्वर सन्नि पात, जीर्णज्वर, स्वयथु, शीतज्वर और मन्दाग्निका नाश हो है इसका नाम भार्ग्यादि क्वाथ है ॥ २०० ॥

भारंगी, हर्र, कुटकी, कूट, पित्तपापड़ा, मोंथा, पीप गिलोय, दशमूल और सोंठ, वैद्य इनका काढ़ा बनाकर रो को दे इससे धातु या बाहरके ज्वर, शीतलज्वर, सततादि विष ज्वर, मन्दाग्नि अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म, स्वयथु रोगों

दार्वीदारुकलिङ्गलोहितलताश्यामाकपाठाशटी
विश्वोशीरकिरातकुञ्जरकणा (१) त्रायन्तिकापद्मकैः ।
वत्सीधान्यकनागराब्दसरलैः शिग्र्वम्बुसिंहीशिवा
व्याघ्रीपर्पटदर्भमूलकटुकानन्तामृतापुष्करैः ॥ २०४ ॥
धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं द्व्याहिकम्
कामे शोकसमुद्भवञ्च विविधं यं छर्दियुक्तं नृणाम् ।
भीतोहन्ति चयोद्भवं सततकं चातुर्थकं भूतजम्
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितो जीर्णज्वरे दुस्तरे॥२०५

इति दार्व्यादिक्वाथः ।

नाश होता है इस सर्वज्वर नाशक काढ़ेका नाम महाभार्ग्यादि क्वाथ है ॥ २०१—२०३ ॥

कटसरैया देवदारु, इन्द्रजौ, मजीठ, किरवाला, पाढ़ा, कचूर, सोंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायन्ती, पद्माख, सोभ, धनियां, नागरमोथा, सरल, (श्रीवेष्ट: तारपीन तेलका वृक्ष) सहंजना, नेत्रवाला, छोटीकटेली, हर्र, बड़ीकटेली, पित्तपापड़ा, दाभकीजड़, कुटकी, सरिवन और पुष्करमूल इनके काढ़ेसे धातुमें प्राप्तज्वर, विषमज्वर, सन्निपात, एकाहिक, द्व्याहिक, कामज्वर, शोकज्वर और भी जो वमनयुक्त अनेक प्रकारके ज्वर हैं भयसे उत्पन्नहुआ ज्वर सततज्वर, चातुर्थकज्वर, भूतज्वर आदिका नाश होता है प्राचीन मुनियोंने इस काढ़ेको दुःसाध्य जीर्णज्वरमें भी देना लिखा है इसका नाम दार्व्यादि क्वाथ है ॥ २०४—२०५ ॥

(१) गजपिप्पली ।

दार्वीकलिङ्गमञ्जिष्ठा ब्राह्मी दारु गुडूचिका ।
भूधात्री पर्पटं श्यामा तगरं करिपिप्पली ॥ २०६ ॥
क्षुद्रा निम्बं घनं व्याधि नागरं पद्मकं शटी ।
रामठारुष्करसरलं त्रायमाणास्थि सन्धिकम् ॥ २०७ ॥
भूनिम्बारुष्करं पाठा कुशः कटुकरोहिणी ।
मागधीधान्यकं चेति क्वाथं मधुयुतं पिबेत् ॥ २०८ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपात्तिकम् ।
द्वन्द्वजं विषमं घोरं सततायं सुदारुणम् ॥ २०९ ॥
अन्तःस्थञ्च बहिःस्थञ्च धातुस्थञ्च विशेषतः ।
सर्वज्वरं निहन्त्याशु तथाच दैर्घरात्रिकम् (१) ॥२१०॥
शीतं कम्पं भ्रमं दाहं कार्श्यं घर्मस्रुतिं (२) वमिम् ।
ग्रहणीमतिसारञ्च कासं श्वासं सकामलम् ॥ २११ ॥

दारुहल्दी, इन्द्रजी, मजीठ, ब्राह्मी, देवदारु, गिलोय, भूआमला, पित्तपापड़ा, पीपल, तगर, गजपीपल, कटेली, नीम, मोथा, कूट, सोंठ, पद्माख, कचूर हींग, रूषा, देवदारु, त्रायमणा, हड़जोड़ी, चिरायता, भिलावा, पाढ़ा, कुटकी, पीपल और धनियां इनका काढ़ा शहत मिलाकर पीनेसे वात, पित्त, कफ, सन्निपात, द्वन्द्वज, सततादिक घोर विषमज्वर, अन्तर गत, बहिर्गत, धातुओंमें प्राप्त जीर्णज्वर आदि सब ज्वरोंका नाश होता है यह काढ़ा विशेष कर धातु प्राप्तज्वरोंमें दिया जाता है इससे शीत, कम्प, दाह, दुर्बलता, अधिक पसीना

(१) जीर्णम् । (२) अतिस्वेदम् ।

शोषं हन्यात्तथा शोथं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
शूलमष्टविधं हन्ति प्रमेहानपि विंशति ॥ २१२ ॥
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च हलीमकम् ।
पृथक् दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्॥२१३॥
तान् सर्वान्नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१४ ॥

इति दार्व्यादिक्काथः ।

तिक्तागुडूचीमधुकं एलापर्पटकं तथा ।
प्रत्येकं शाणमानेन तिक्ताया अर्द्धशाणकम् ॥ २१५ ॥
सार्द्धतोलकमेवञ्च शोणामुख्याश्च ग्राहयेत् ।
मत्स्यण्डिकायास्तोलञ्च प्रक्षिप्य पाययेद्भिषक् ॥२१६॥
वातपित्तज्वरं घोरं नाशयेन्नात संशयः ।
रसायनकृते चापि ज्वरो यस्य न हीयते ॥ २१७ ॥

आना, वमन, संग्रहणी, अतिसार, खांसी, श्वास, कामला, शोष, शोथ, मन्दाग्नि, अरुचि, आठोंप्रकारके शूल, बीसप्रकारके प्रमेह, प्लीहा, अधिक मांस बढ़ना यकृत्, हलीमक और अनेक प्रकारके अलग अलग दोष, मिले दोष, विषमज्वर रोगोंका इस प्रकार नाश होजाता है जैसे बिजलीके गिरनेसे वृक्षोंका होता है इसका नाम दार्व्यादि क्वाथ है ॥२०६—२१४॥

मुलहटी, गिलोय, कुटकी, इलायची, पितपापड़ा, ये सब एक२ शाण, कुटकी आधी शाण १॥ तोला सोणामुखी इनका काढ़ा करके उसमें १ तोला मिश्री डालकर रोगीको पिलावे तो इससे निःसन्देह वात और पित्तसे उत्पन्न हुए भयानक

तं ज्वरं नाशयेदेतद्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१८ ॥

इति मधुकादिक्काथः ।

धान्यकं मधुकं रास्ना पथ्याद्राक्षामधूरिका ।
गुडूचीपर्पटश्चैव समभागांश्च कारयेत् ॥ २१९ ॥
शोणामुखीसर्वतुल्या ग्राह्या वैद्येन धीमता ।
पचेदष्टपले तोये पलशेषेऽवतारयेत् ॥ २२० ॥
मत्स्यण्डिकायास्तोलञ्च प्रक्षिप्य पाययेत् सुधीः ।
वातपित्तज्वरं घोरं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ २२१ ॥

इति धान्यादिक्काथः ।

अथ मूलिकाधारणाय प्रयोगाः ।

काकजङ्घाबलाश्यामा ब्रह्मदण्डीकृताञ्जलिः ।

ज्वरका नाश होजाता है जो ज्वर रसायन औषधियोंमे भी नष्ट न हो वह इस काढ़ेसे इस प्रकार नष्ट होजाता है जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष नष्ट होजाता है इसका नाम म[illegible]ादि काढ़ा है ॥ २१५—२१८ ॥

धनियां, जेठीमधु, रास्न, हर्र, मुनक्का मुरहर, गिलोय, पितपापड़ा ये सब समान भाग लेय सोणामुखी सबके समान लेकर बुद्धिमान वैद्य आठपल पानीमें पकावे जब एकपल रह जाय तब उतार कर फिर एक तोला मिश्री डालकर रोगीको पिलावे इसका नाम धान्यकादि क्काथ है ॥ २१९—२२१ ॥

आगे ऐसी औषधि लिखी जाती है जिनको शरीरमें बांधनेसे ज्वर जाता रहै।

काकजङ्घा, सहदेई, कालीमरिचन, ब्रह्मनेटी, लजालू,

पृश्निपर्ण्यप्यपामार्गस्तथा भृङ्गरजोऽष्टमम् ॥ २२२ ॥
एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः।
रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य बद्धमैकाहिकं जयेत् ॥ २२३ ॥
(१) अपामार्गजटाकट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः।
बद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ २२४ ॥
उलूकदक्षिणं पक्षं सितसूत्रेण वेष्टयेत्।
बन्धयेद् वामकर्णे तु हरत्यैकाहिकं ज्वरम् ॥ २२५ ॥
कार्कटस्य विलोद्भूतमृदा तत्तिलकं कृतम्।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति नात्र कार्य्या विचारणा ॥२२६॥
कर्णस्य मलजालेन वर्त्तिं कृत्वा प्रयत्नतः।

पृश्निपर्णी, गधापुन्ना और भांगरा पुष्य नक्षत्रमें इन आठोंमें से किसीको जड़ लाकर लालसूतमें लपेट कर शरीरमें बांधनेसे एकाहिकज्वर जाता रहता है ॥ २२२—२२३ ॥

गधापुन्नाकी जड़को सात लालडोरोंमें लपेट कर रविबारके दिन कमरमें बांधनेसे तृतीयक ज्वरका नाश होता है ॥ २२४ ॥

उल्लूके दहने पंखको सफेद डोरेमें लपेटकर बायें कानमें बांधनेसे एकाहिक ज्वर दूर होजाता है ॥ २२५ ॥

कैंकड़ेके बिलकी मिट्टी लाकर उसका तिलक लगानेसे निस्सन्देह एकाहिकज्वर चला जाता है ॥ २२६ ॥

कानके मैलकी बत्ती बनाकर तिलके तेलमें जलावे फिर

(१) बन्धनविधिरायुर्वेदसारे यथा। अपामार्गस्य मूलन्तु सम्यगक्षालिताननः। बध्नीयाद् वामहस्ते च सर्वज्वरविमोक्षणम्।

ज्वालयेत्तिलतैलेन कज्जलं ग्राहयेच्छनैः ॥
अञ्जयेन्नेत्रयुगलं त्र्याहिकज्वरशान्तये ॥ २२७ ॥
गङ्गाया उत्तरे तीरे अपुत्रस्तापसो मृतः ।
तस्मै तिलोदकं दद्यान् मुञ्चत्यैकाहिको ज्वरः ॥२२८॥
एतन्मन्त्रेण अश्वत्थपत्रहस्तः तर्पयेत् ।
ओं बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभे ॥
जातोऽसौ सुमहावीर्य्यो मुञ्चत्वैकाहिको ज्वरः ॥२२९॥
लिखित्वाश्वत्थपत्रे तु बाहौ मन्त्रं प्रधापयेत् ॥ २३० ॥
समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु पश्यति ॥२३१॥

उसका काजल पाड़ उस काजलको आंखमें लगानेसे तृतीयक ज्वरका नाश होता है ॥ २२७ ॥

गङ्गाके उत्तर तीरपर एक पुत्र रहित तपस्वी मर गया था उस को तिलाञ्जली देनेसे एकाहिकज्वर शान्ति होजाता है ॥ २२८ ॥

पीपलके पत्तेपर नीचे लिखा मन्त्र लिखकर हाथमें बांधनेसे एकाहिकज्वर जाता है ।

"ॐ बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभे ।
जातोऽसौ सुमहावीर्य्योमुञ्चत्वैकाहिकोज्वरः" ॥२२९—२३०॥

द्विविद नामक कपि जो समुद्रके उत्तरकिनारेमें रहता उसके चित्रको लिखकर दिखाने और नीचे लिखे मन्त्र एकाहिकज्वरका नाश होजाता है ।

श्वेतार्कं करवीरञ्च अश्विन्यां मूलमुद्धरेत्।
तण्डुलोदकपानेन पृथक् चातुर्थनाशनम् ॥ २३२ ॥

शैलूषमण्डनरजः पुरुषानुरूपं
शुक्लाङ्गवत्ससुरभी पयसा निपीतम्।
आदित्यवारभवपालिदिने नराणां
चातुर्थकं हरति कष्टमपि क्षणेन ॥२३३॥

कृष्णाम्बरदृढाबद्धगुग्गुलूलूकपुच्छजः।
धूपश्चातुर्थकं (१) हन्ति तमः सूर्य्य इवोदितः॥२३४॥
शिरीषपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसंयुतः।

"लङ्का दक्षिण द्वापर दुविद नाम कपि आय।
ताको सुमिरण करतही तुरत इकतरो जाय" ॥ २३१ ॥

अश्वनी नक्षत्रमें सफेद आकयाकनेरकी जड़ लावे उसे चावलके पानीमें पीसकर पीनेसे चातुर्थकज्वरका नाश होजाता है ॥ २३२ ॥

रविवारके दिन जब पारी होय तब रोगीके बलके अनुसार वेलका बकुला पीसकर सफेद बछड़ेवाली गायके दूधके संग पिलानेसे घोर चातुर्थकज्वर भी उसीदिन दूर होजाता है ॥ २३३ ॥

जैसे सूर्य्य उदय होकर अपने तेजसे अन्धकारका नाश करता है ऐसेहीकाले कपड़ेमें बांधकर गुग्गुल और उल्लूकी पूंछकी धूप चातुर्थकज्वरका नाश करती है ॥ २३४ ॥

---

(१) भृङ्गराजादिकृष्णीकृतवस्त्रदृढबद्धगुग्गुलुलूकपुच्छाभ्यां निर्धूमाङ्गारस्थाभ्यां पालिदिने ज्वरिणः सर्वाङ्गमाच्छाद्य धूपो देयः।

नस्यं सर्पिः समायोगात् चातुर्थकज्वरं जयेत् ॥२३५॥
नस्यं चातुर्थकं हन्ति रसोवागस्त्यपत्रजः ॥ २३६ ॥
अम्लोटजसहस्रेण दलेन मुक्ततां पिबेत् ।
पेयां घृताप्लुतां जन्तुश्चातुर्थकहरीं त्र्यहम् ॥ २३७ ॥
कर्म्मसाधारणं जह्यात् तृतीयकचतुर्थकौ ।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायसो विषमज्वरे ॥ २३८ ॥
मूलं जयन्त्याः शिरसि धृतं सर्वज्वरापहम् ॥ २३९ ॥
मूलकं केशराजस्य कृत्वा तत् सप्तखण्डकम् ।
आर्द्रकैः सह भुञ्जीत सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २४० ॥

भँागरेके रसमें भिंगाकर कपड़ेको काला करे फिर उसमें उल्लूकी पूंछ और गुग्गुल बांधकर रोगीको पारीके दिन कपड़ा उढाकर उस पोटलीको धुआं रहित कोयलोंपर रखकर धूप देनी चाहिये शिरषके फूलोंके रसमें हल्दी, दारुहल्दीका चूर्ण और घी मिलाकर सूंघनेसे चातुर्थिकज्वर जाता रहता है इसी प्रकार अगस्तके पत्तोंके रसका नास लेनेसे भी चातुर्थकज्वरका नाश होजाता है ॥ २३५—२३६ ॥

चातुर्थिकज्वररोगी अम्लोटजके सहस्र पत्तोंके सहित बनाकर तीनदिन तक यवागू पिये तो चातुर्थकज्वर जाता रहता है ॥ २३७ ॥

चातुर्थिक और तृतीयक ज्वरमें साधारण कर्म भी छोड़देने चाहिये क्योंकि विषमज्वर प्रायः आगन्तुक होजाता है ॥२३८॥

जयन्तीकी जड़को शिरमें बांधनेसे विषमज्वर जाता रहता है भांगरेकी जड़के सात टुकड़े करके प्रतिदिन एक एक

काकमाचीभवं मूलं कर्णे बद्धं निशिज्वरम्।
निहन्ति नात्र सन्देहो यथा सूर्य्योदयस्तमः ॥२४१॥
ओं नमो भगवते छिन्दि छिन्दि अमुकस्य ज्वरस्य शिरः
प्रज्ज्वलितपरशुपाणये पुरुषाय फट्।
एतन्मन्त्रस्य धारणात् ज्वरः सर्वो विनश्यति ॥२४२॥
ओं विद्युदानल क्रुं फट् स्वाहा।
एतन्मन्त्रं ताम्बुलीपत्रे चूर्णलिप्ते लिखित्वा तत् पत्रं सञ्चर्व्य भक्षयित्वा दिनत्रयाभ्यन्तरे ज्वरस्य शान्तिर्भवति ॥ २४३ ॥
सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम्।
पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ २४४ ॥

टुंकड़ेको अदरकके रसके साथ खानेसे सब प्रकारके ज्वर जाते रहते हैं ॥ २३९—२४० ॥

जैसे सूर्य्य उदय होकर सब अंधकारका नाश करता है तैसेही छोटीमकोयकी जड़ कानमें बांधनेसे रात्रिके ज्वरका नाश करती है नीचे लिखा मन्त्र लिखकर शरीरमें बांधनेसे सर्वज्वर नाश होजाते हैं ॥ २४१ ॥

"ओं नमो भगवतेछिन्दिछिन्दि अमुकस्य ज्वरस्य शिरः।
प्रज्वलित परशुपाणये पुरुषाय फट् ॥"

नीचे लिखे मन्त्रको लगे पानपर लिखकर तीनदिन खानेसे ज्वर शान्त होजाता है ॥ २४२ ॥

"ओं विद्युदानल क्रुं फट् स्वाहा" ॥ २४३ ॥

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति॥ २४५॥
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्षं हिमाचलम्।
गङ्गां मरुद्गणांश्चेष्टान् पूजयन् जयति ज्वरम्॥ २४६॥
भक्त्यामातुः पितुश्चैव गुरूणां पूजनेन च।
ब्रह्मचर्य्येण तपसा पुराणश्रवणेन च॥ २४७॥
जपहोमप्रदानेन सत्येन नियमेन च।
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च॥ २४८॥

अथ धूपः।

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी।

विषमज्वरी पार्वती, नन्दी आदिगण और मातृगणके सहित प्रतिदिन भगवान् शिवकी पूजा करनेसे विषमज्वरसे छूट जाता है॥ २४४॥

चराचरके स्वामी जगत् व्यापक सहस्र शिरवाले भगवान् विष्णुका सहस्रनाम पढ़नेसे सब ज्वर दूर होजाते हैं॥२४५॥

ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमाचल, गङ्गा, मरुद्गण और इष्टदेवकी पूजासे भी ज्वरका नाश होता है॥२४६॥

भक्ति सहित मातापिता और गुरुकी सेवा, ब्रह्मचर्य्यसे रहना, पुराणोंका सुनना, तप, जप, होम, दान, सत्यबोलना, नियमसे रहना और साधुओंका दर्शन करना इनसे भी शीघ्रही ज्वर जाता रहता है॥ २४७—२४८॥

आगे धूप लिखते हैं।

लाख, नीमकेपत्ते, बच, कूट, हर्र, इन्द्रजौ और सरसों

सयवा: सर्षपा: सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ २४९ ॥

इति अष्टाङ्गधूप:।

पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभि:।
सर्वज्वरहरो धूप: कार्य्योऽयमपराजित: ॥ २५० ॥

इत्यपराजितधूप:।

हिङ्गुलं देवकाष्ठञ्च श्रीवेष्टं घृतमेव च।
गव्यास्थीनि तथाध्यामं निर्माल्यं कटुरोहिणी ॥२५१॥
सर्षपं निम्बपत्राणि पिच्छाहिकञ्चुकं तथा।
मार्जारविष्ठा गोशृङ्गं मदनस्य फलानि च ॥ २५२ ॥
द्वे बृहत्यौ वचा चैव कार्पासास्थितुषास्तथा।
छागगोमायुविट् चैव हस्तिदन्तस्तथैव च ॥ २५३ ॥
एतत् सर्वं समाहृत्य छागमूत्रेण भावयेत्।

इनको घी में मिलाकर धूप देनेसे ज्वर दूर होता है इसका नाम अष्टांग धूप है ॥ २४९ ॥

गुग्गुल, सुगन्धतृण, वच, राल, नीमकेपत्ते, आककीजड़, अगर और देवदारु इनको धूप देनेसे भी ज्वरका नाश होजाता है इसका नाम अपराजित धूप है ॥ २५० ॥

सिंगरफ, देवदारु, मक्खन, गायकी हड्डी, सुगन्धतृण, निर्माल्य कुटकी, सरसों, नीमकेपत्ते, मोरकेपंख, सांपकी कांचली, बिल्लीकीविष्टा, गायका सींग, मैनफल, दोनोंकटेली, बिनौलेकी मिगी, धानकी भूसी, भेड़ा और स्यारकी विष्ठा और हाथी दांत इन सबको पीसकर या ओखलीमें कूटकर

उदूखले तु सङ्कुच्यस्थापयेन्मृण्मये शुभे ॥ २५४ ॥
घ्राणमात्रेण धूपोऽयं दीयते यत्र वेश्मनि ।
न तत्र सर्पास्तिष्ठन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ॥२५५॥
एष माहेश्वरो धूपः सर्वज्वरविनाशनः ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्च चतुर्थकम् ॥२५६॥
एवमादीन् ज्वरान् सर्वान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥२५७॥
ॐ नमो भगवते रुद्राय उमापतये समपन्नाय नन्दि-
केश्वराय । इति मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ।

इति माहेश्वरधूपः ।

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः ।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम्॥२५८
निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलङ्घितम् ।

भेड़ाके मूत्रमें मिट्टीके वर्त्तनमें भिगोवे ; यह धूप जिस घरमें जलाई जाय वहां सांप किसी प्रकार नहीं रह सक्ते ; वहांसे पिशाच और राक्षस भी भाग जाते हैं ; इससे एकाहिक, द्वाहिक तृतीयक और चातुर्थक आदि सब ज्वर निःसन्देह दूर हो जाते हैं इसका नाम माहेश्वर धूप है इस धूपके देते समय यह मन्त्र पढ़े । "ॐ नमो भगवत्ते रुद्राय उमापतये समपन्नाय नन्दिकेश्वराय" ॥ २५१—२५७ ॥

आगे घीका प्रकरण लिखते हैं ।

जिस रूखे शरीरवाले मनुष्यका ज्वर काढ़े, वमन, औ हलके भोजनसे न जाय तो वैद्य उसे घी पिलावे ॥२५८॥

न सर्पिः पाययेत् प्राज्ञः शमनैस्तमुपाचरेत् ॥२५९॥
यावल्लघुत्वमशनं दद्यान्मांसरसेन तु।
बलं ह्यलं निग्रहाय दोषाणां बलकृच्च तत्॥ २६० ॥
मांसार्थमेनलावादीन् युक्त्या दद्याद्विचक्षणः।
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकान्।
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचित् चिकित्सकाः॥२६१॥
लङ्घनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत्।
भिषङ्मात्रा विकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित्॥२६२॥
पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी।
कलिङ्गकस्तामलकी शारिवातिविषास्थिरा ॥२६३॥
द्राक्षामलकनिम्बानि त्रायमाणा निदिग्धिका।

यदि रोगीके ज्वरको दसदिन न वीते होंय या कफज्वर होय और लंघन न किये होंय तो बुद्धिमान वैद्य घी न पिलाकर संशमन औषधि दे ॥ २५९ ॥

ज्वरीको हलके अन्नमें मिलाकर मांसका रस दे क्योंकि उससे बल बढ़ता है और बलहीसे दोष शान्त होते हैं ॥२६०॥

ज्वरीको हरिण और लवे का मांस दे। मुर्गी, मोर, तीतर, कुरच और वत्तक इनके मांस भारी और उष्ण हैं इस लिये कोई२ वैद्य कहते हैं कि इनका मांस ज्वरवालेको न दें ॥२६१॥

परन्तु यदि लंघन देनेसे ज्वरमें वायु बहुत बढ़ जाय तो मात्रा और दोष जाननेवाला वैद्य इन मांसोको भी देय ॥२६२॥

पीपल, चन्दन, मोंथा, खस, कुटकी इन्द्रजौ, आमला,

सिद्धमेतद् घृतं सद्यो ज्वरं जीर्णमपोहति ॥ २६४ ॥
चयं श्वासं शिरः शूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ।
अङ्गाभितापमग्निञ्च विषमं संनियच्छति ॥ २६५ ॥
पिप्पल्याद्यमिदं क्वापि तन्त्रे चीरेण पच्यते ।
"यत्राधिकरणे नोक्तिर्जले स्यात् स्नेहसंविधौ ।
तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना" ॥ २६६ ॥
एतद्वाक्यवलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम् ॥ २६७ ॥
जलस्नेहौषधनाञ्च प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥२६८॥

सरिवन, अतीस, शालपर्णी, दाख, भूआवला, नीम, त्रायमाण और कटेली, इन सबमें घी पकाकर देनेसे जीर्णज्वर, चय, श्वास, और पसुलीका शूल, अरोचक, शरीरकी जलन, और विषमाग्निका नाश होजाता है ॥ २६३—२६५ ॥

इस पिप्पल्यादि घृतको किसी२ वैद्यक पुस्तकमें दूधके संग पकाना लिखा है परन्तु "जहां घी वा तेल पकाने की विधिमें अमुक२ वस्तु डालकर पकावे ऐसा स्पष्ट लिखा हो तो उसी स्थान पर कल्क और काढ़े का विधान है" ॥ २६६ ॥

इस वचनके प्रमाणसे घी में कल्कही डालकर पकाना चाहिये ॥ २६७ ॥

जहां जल, घी और तेलका प्रमाण न लिखा हो तह औषधिसे चौगुणी चिकनाई और चिकनाईसे चौगुणा जल डालकर पकाना चाहिये ॥ २६८ ॥

द्रवकार्य्येऽप्यनुक्ते च सर्वत्र सलिलं मतम् ॥ २६९ ॥
घृततैलगुडादींस्तु नैकाहादवतारयेत् ।
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥ २७०॥
स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत् ।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत्॥२७१॥
शब्दे व्युपरमे (१) प्राप्ते फेणस्यो परमे तथा ।
गन्धवर्णरसादीनां निष्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ २७२ ॥

इति पिप्पल्यादिघृतम् ।

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पलिकैः पयसासमम् ।

जहां केवल द्रव लिखा हो और स्पष्ट नाम न लिखा हो तहां जल डालना चाहिये ॥ २६९ ॥

घी, तेल और गुड़को एकही दिनमें नहीं पकाना चाहिये क्योंकि बासी होनेसे इनमें गुण बढ़ता है ॥२७०॥

जब चिकनाईमें पड़ा कल्क बत्तीके समान होजाय अङ्गुली में चिपकने लगे आगमें डालनेसे शब्द न होय तब जानेंकि पकचुका ॥ २७१ ॥

जब कड़ाहीमें से पकनेका शब्द न आवे फेन शांत होजाय चिकनाईमें गन्ध, वर्ण और रस ठीक होजाय तब जानेंकि सिद्ध होगया इसका नाम पिप्पल्यादि घृत है ॥ २७२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीता, सोंठ और सेंधानमक,

---

१) शब्दे कटाहपाकध्वनौ ।

सर्पिः प्रस्थं शृतं प्लीहविषमज्वरगुल्मनुत्॥ २७३॥

इति क्षीरषट्पलघृतम्।

अत्र द्रवान्तरानुक्तेः (१) क्षीरमेव चतुर्गुणम्।

द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत्॥ २७४॥

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरं पञ्चकोलकैः।

सक्षारैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमान्द्यताः।

वातपित्तकफव्याधीन् प्लीहानञ्चापि पाण्डुताम्॥२७५॥

इति दशमूलषट्पलकं घृतम्।

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्।

इनको दो दो तोले लेकर १२ तोले दूधमें एकप्रस्थ घी डाल कर पकावे, इस घीसे विषमज्वर, प्लीहा और गुल्म रोगदूर होजाते हैं। इसका नाम क्षीर षट्पलक घृत है॥ २७३॥

दशमूलकारसमें घी, दूध, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीता, सोंठ और खार डालकर पकावे इस घीसे ज्वर, खांसी, मन्दाग्नि, वात, पित्त, कफकेरोग, प्लीहा और पाण्डुरोग दूर होजाते हैं। इस घीमें दूधको छोड़कर और कोई द्रव वस्तु नहीं लिखी इसी लिये यहां दूध औषधियोंसे चौगुणा डालना चाहिये परन्तु जहां दूसरी द्रव वस्तु लिखी हो तहां दूध औषधियोंके समान ही पड़ता है इसका नाम दसमूल षट् पलक घृत है॥२७४—२७५॥

जिन औषधियोंका काढ़ा पकाकर चिकनाईमें डालना

(१) अस्मिन् घृते द्रवान्तरानुक्तेः जलाद्यभावे।

स्नेहात् स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः॥२७६॥
चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत् (१)।
पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ ॥ २७७ ॥
तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम्।
ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम्॥२७८॥
षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य च।
ज्वरिभ्यो बहुदोषिभ्य ऊर्द्धं चाधश्च बुद्धिमान् ॥ २७९ ॥

उस समय उन औषधियोंसे चौगुणा पानी चढ़ाना चाहिये जब चौथाई रह जाय तब उतार कर चिकनाईमें डाले वह चौथाई बचा हुआ जल भी इस चिकनाईसे चौगुणा होना चाहिये ॥ २७६ ॥

दूध चिकनाईके समान और कल्क औषधिसे चौथाई होना चाहिये जहां दुगुणी द्रव वस्तु लिखी हो तहां जो वस्तु चौगुणी लिखी हैं वह अठगुणी डालनी चाहिये ॥ २७७ ॥

जिस चिकनाई पकानेकी विधिमें पांच द्रव वस्तु हों, तहां एक एक वस्तु चिकनाईके समान पड़ती है परन्तु जहां एकही द्रव वस्तु हो तहां वही चौगुणी डाली जाती है ॥ २७८ ॥

वैद्य छः दिन बीतने पर समय और दोषको देखकर ज्वरमें यवागू, काढ़े, घी, दूध, विरेचन और वमनकी औषधि दे ॥ २७९ ॥

---

(१) यत्र द्रवद्वैगुण्यं स्नेहापेक्षया भवेत्तत्र चतुर्गुणं कषायादिवस्तु स्नेहापेक्षयाऽष्टगुणं क्षिपेदित्यर्थः।

दद्यात् संशोधनं काले (१) कल्पे यदुपदेक्ष्यते ।
मदनं (२) पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा ।
युक्तमुष्णाऽम्बुना पेयं वमनं ज्वरशान्तये ॥ २८० ॥
आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा ।
त्रिवृतां त्रायमाणां वा पयसाज्वरितः पिबेत् ॥२८१॥
ज्वरक्षीणस्य (३) न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामन्तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ २८२ ॥
प्रयोजयेज्ज्वरहरान्निरूहान् सानुवासनात् ।
पक्वाशयगते दोषे वक्ष्यन्ते ये च सिद्धिषु ॥ २८३ ॥

ज्वरमें बहुत दोष देखकर बुद्धिमान वैद्य वमन और विरेचन विधिमें लिखी औषधि उचित समय पर शरीर शुद्ध होनेके लिये दे ॥ २८० ॥

मैंनफलके संग मिर्च, इन्द्रजौ और जेठीमधु मिलाकर, क्रमसे वात, पित, कफज्वरमें वमन होनेके लिये गर्म जलके संग दे। इसी प्रकार विरेचनके लिये किरवाला दूधके संग; मुनक्काके रसके संग दूधके संग त्रायमाणा या निसोत पिलावे ॥२८१॥

जो ज्वरी ज्वरसे बहुत दुर्बल होगया हो, उसे वमन और विरेचन न दे उसके मलोंको निरूह बस्तिसे और इच्छानुसार दूधपिलाकर निकाले ॥ २८२ ॥

जब दोष पक्वाशयमें प्राप्त हुआ हो तब ज्वरनाशक औषधियोंके संग सिद्धिस्थानमें लिखी विधिसे अनुवासन और निरूह

---

(१) वमनविरेचनयोग्यावस्थायाम् । (२) मदनफलं पिप्पलीयुक्तं वाते इन्द्रयवयुक्तं कफे यष्टिमधुयुक्तं दाहप्रयुक्तं पित्तज्वरे इति दीपिका । (३) ज्वरेण क्षीणस्य ।

जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ २८४ ॥

अथ दुग्धप्रकरणम्।

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ २८५ ॥
चतुर्गुणेनाम्भसा च शृतं ज्वरहरं पयः।
धारोष्णं वा पयः शीतं पीतं सद्यो(१)ज्वरं जयेत्॥२८६॥

भेषजसिद्धमपि यदाह,

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्।
पेयं तदुष्णं शीतं वा यथास्वमौषधैः शृतम् ॥ २८७ ॥

बस्ति दे जब शिरभारी हो, शिरमें शूल हो, इन्द्री शिथिल होगई हों, तब शीर्ष विरेचन देना चाहिये ॥ २८३—२८४ ॥

आगे दूधका प्रकरण लिखते हैं।

जीर्णज्वरमें और कफ क्षीण होनेमें दूध अमृतके समान गुण दायक है वही दूध नवीनज्वरमें पीनेसे रोगीको विषके समान मार डालता है ॥ २८५ ॥

एक भाग दूध चारभाग पानी मिलाकर पकावे जब सब पानी जल जाय तब वही दूध ज्वरीको ठण्डा करके देवे अथवा धारोष्ण (जो उसी समय दुहा जाय) दे इससे भी ज्वर शान्त होजाता है ॥ २८६ ॥

आगे औषधियोंमें पके दूधका वर्णन करते हैं।

दोषके अनुसार औषधियोंमें पकाकर ठण्डा करके या कुछ गर्मही पीनेसे सब प्रकारके जीर्णज्वर शांत होजाते हैं ॥२८७॥

कासात् श्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात् ।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ २८८ ॥
द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् ।
क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ २८९ ॥
त्रिकण्टकबलाव्याघ्री गुड़नागरसाधितम् ।
वर्च्चो मूत्रविबन्धघ्नं शोथज्वरहरं पयः ॥ २९० ॥
वृश्चीरबिल्ववर्षाभूपयश्चोदकमेव च ।
पचेत् क्षीरावशिष्टन्तु तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ २९१ ॥
शीतं वोष्णं ज्वरे क्षीरं यथास्वमौषधैः शृतम् ।
एरण्डमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्त्तिके ॥ २९२ ॥

पञ्चमूलकी औषधियोंमें पका दूध पीनेसे खांसी, श्वास, शिरकी पीड़ा पसुलीकी पीड़ा, और जीर्णज्वरका नाश होजाता है ॥२८८॥

दूध पकानेकी यह विधि है कि औषधिसे आठगुणा दूध और दूधसे चारगुणा जल मिलाकर पकावे जब दूध रह जाय तब उतारे ॥ २८९ ॥

गोखरू, बरियारा, कंटेली, गुड़, सोंठ इनमें पका दूध विष्टा, मूत्रके रुकने, शरीरकी सूजन और ज्वरको नाश करता है; गधापुन्ना, बेल, लालगधापुन्ना, दूध और जल इन्हें मिलाकर केवल दूध रहने तक पकावे इसके पीनेसे सब प्रकारके ज्वरका नाश होजाता है ज्वरमें अनुकूल औषधियोंमें पका दूध ठण्डा करके दे अथवा कुछ गर्मही पिलावे । परिकर्तिका अर्थात् पेटमें कैंचीसे काटनेके समान पीड़ायुक्त ज्वर में अरण्डकी जड़में पका दूध दे ॥ २९०—२९२ ॥

अथ चूर्णप्रकरणम् ।

संचूर्ण्यशुष्कद्रव्यन्तु श्लक्ष्णञ्च वस्त्रगालितम् ।
तत्स्याच्चूर्णं रजः चोदं तस्य मात्राबलानुगा ॥२८३॥
कालीयकन्तु रजनी देवदारुवचाघनम् ।
अभया धन्वयासश्च शृङ्गी चुद्रामहौषधम् ॥ २८४ ॥
त्रायन्तीपर्पटं निम्बं ग्रन्थिकं बालकं शटी ।
पौष्करं मागधीमूर्वा कुटजं मधुयष्टिका ॥ २८५ ॥
शिग्रूइवं सेन्द्रयवं वरी दार्वी कुचन्दनम् ।
पद्मकं सरलोशीरं त्वचं सौराष्ट्रिकास्थिरा ॥ २८६ ॥
यमान्यतिविषा विल्वं मरिचं गन्धपत्रकम् ।
धात्रीगुडूचीकटुकं सचित्रकपटोलकम् ॥ २८७ ॥
कलसी चैव सर्वाणि समभागानि कारयेत् ।
सर्वद्रव्यस्य चार्द्धन्तु कैरातं सम्प्रकल्पयेत् ॥ २८८ ॥

आगे चूर्ण प्रकरण लिखते हैं ।

जो सूखी औषधी पीसकर कपड़ेमें छानी जाय उसे चूर्ण, रज वा चोद कहते हैं; इसकी मात्रा रोगीके बलके अनुसार देनी चाहिये ॥ २८३ ॥

अगर, हलदी, देवदारु, वच, मोंथा, हर, जवासा, कांकड़ासिंगी, कटेली, त्रायमाणा, पित्तपापड़ा, नीम, करीर, नेत्रवाला, कचूर, पुष्करमूल, पीपल, मुरहर, कुरैया, मुलहटी, सफेदमिर्च, इन्द्रजौ, शतावर, दारुहल्दी, लालचन्दन, पद्माख, सरल, खस, तज, फिटकिरी, शालपर्णी, अजवायन, अतीस, बेल, मिर्च,

एतत् सुदर्शनं नाम ज्वरान् हन्ति न संशयः ।
पृथग्रोगांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥२९९॥
प्राकृतं वैकृतञ्चापि सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ।
अन्तर्गतं वहिःस्थञ्च निरामं साममेव च ॥ ३०० ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
नानादोषोद्भवञ्चैव वारिदोषभवं तथा ॥ ३०१ ॥
विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ३०२ ॥
यथा सुदर्शनं चक्रं दानवानां निसूदनम् ।
तथा ज्वराणां सर्वेषामिदमेव निगद्यते ॥ ३०३ ॥

इति सुदर्शनचूर्णम् ।

तेजपात, आमला, गिलोय, चिरायता, चीता, परवरपत्ती, और पृश्निपर्णी इन सब औषधियोंको समान ले और सबसे आधा चिरायता डाले ॥ २९४—२९८ ॥

इस चूर्णका नाम सुदर्शनचूर्ण है इससे अलग २ दोषोंसे उत्पन्न हुए ज्वर, विषमज्वर, दूर होजाते हैं। चाहे समयके अनुसार वा बे समय उत्पन्न हुआ ज्वर हो चाहे साधारण हो, चाहे कठोर हो, चाहे धातुओंमें हो, चाहे बाहर हो, चाहे आम रहित हो, वा आमसहित हो, चाहे साध्य हो, चाहे असाध्य हो, इससे अवश्यही आठो प्रकारके ज्वरनाश होजाते हैं। चाहे वातपित्त और कफसे उत्पन्न हुआ हो, चाहे प्रकृति विरुद्ध जलसे आया हो, चाहे विरुद्ध औषधियोंसे आया हो अर्थात् चाहे कैसाही ज्वर हो सभीका नाश होजाता है। प्लीहा, यकृत, गुल्म, रोगोंका भी इससे नाश होजाता

नागरं त्रायमाणा च पिचुमर्दं दुरालभा।
पथ्या मुस्तं वचादारु व्याघ्रीशृङ्गीशतावरी ॥ ३०४ ॥
पर्पटं पिप्पलीमूलं विशाला पुष्करं शटी।
मूर्वाङ्कुषाहरिद्रे द्वे लोध्रचन्दनमुत्पलम् ॥ ३०५ ॥
कुटजस्य फलं वल्कं यष्टीमधुकचित्रकम्।
शोभाञ्जनं बला चातिविषा च कटुरोहिणी ॥३०६॥
मुशलीपद्मकाष्ठञ्च यमानीशालपर्णिका।
मरिचं चामृता विल्वं बालं पङ्कस्य पर्पटी ॥ ३०७ ॥
तेजःपत्रं त्वचं धात्री पृश्निपर्णीपटोलकम्।
गन्धकं पारदं लोहमभ्रकञ्च मनःशिला ॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेवं विनिर्दिशेत् ॥ ३०८ ॥

है जैसे विष्णुका सुदर्शनचक्र, दानवोंका नाश करता है ऐसे ही ये सुदर्शनचूर्ण सब प्रकारके ज्वरोंका नाशकरदेता है ॥ ३०३ ॥

सोंठ, त्रायमाणा, नीम, जवासा, हर्र, मोंथा, बच, देवदारु, कटेली, कांकड़ासिंगी, शतावर, पित्तपापड़ा, पीपलामूल, इन्द्रायण, पुष्करमूल, कचूर, मुरहर, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, चन्दन, कमल, इन्द्रजौ, कुरैयाकी छाल, मुलहटी, चीता, सहंजना, बरियारा, अतीस, कुटकी, मूसली, पद्माख, अजवायन, मिर्च, शालपर्णी, गिलोय, बेल, नेत्रवाला, कमलकीडंडी, तेजपात, तज, आमला, पृश्निपर्णी, परवरपत्ती, गन्धक, शुद्धपारा, लोहा, अभ्रक और मैंनशिल इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे ॥ ३०४—३०८ ॥

तदर्द्धं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं भूनिम्बसम्भवम्॥ ३०९॥
मात्रामस्य प्रयुञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम्।
चूर्णं भैरवसंज्ञन्तु ज्वरान् हन्ति न संशयः॥ ३१०॥
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्।
द्वन्द्वजान् सन्निपातोत्थान् मानसानपि नाशयेत्॥३११
प्राकृतं वैकृतञ्चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा।
अन्तर्गतं वहिःस्थञ्च निरामं साममेव च॥ ३१२॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यन्न संशयः।
नानादोषोद्भवञ्चैव वारिदोषभवं तथा॥ ३१३॥
विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति।
अग्निमान्द्यं यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमरोचकम्॥३१४॥
श्वयथुञ्च शिरःशूलं वातामयरुजापहम्।

इस चूर्णमें सबसे आधा चिरायतेका चूर्ण मिलावे इसकी मात्रा दोष और बलके अनुसार बनाले; इसका नाम ज्वर भैरवचूर्ण है। इससे निस्संदेह सब प्रकारके ज्वर चाहे अलग २ दोषोंसे उत्पन्न हुए हों, चाहे सन्निपातसे उत्पन्न हुए हों, वा समयके अनुसार हों, वा बे समय उत्पन्न हुए हों, चाहे साधारण ज्वर हो, चाहे कठोर हो, चाहे धातुओंमें हो, चाहे बाहर हो, चाहे आम रहित हो, चाहे आम सहित, चाहे साध्य हो, चाहे असाध्य. इससे आठों प्रकारके ज्वरोंका नाश होजाता है प्रकृति विरुद्ध जलसे आया हो, चाहे विरुद्ध औषधिसे, वा बात, पित्त, कफदोषोंसे हो, यह चूर्ण उन सबका नाश करता है। मन्दाग्नि, यकृत्, प्लीहा

ज्वरभैरवसंज्ञन्तु भैरवेण कृतं शुभम् ॥ ३१५ ॥

इति ज्वरभैरवचूर्णम्।

लोहाभ्रटङ्कणं ताम्रं तालकं वङ्गमेव च।
शुद्धसूतं गन्धकञ्च शिग्रुबीजं फलत्रयम् ॥ ३१६ ॥
चन्दनातिविषापाठा वचा च रजनीद्वयम्।
उशीरं चित्रकं देवकाष्ठञ्च सपटोलकम् ॥ ३१७ ॥
जीवकर्षभकाजाज्यस्तालीशं वंशलोचना।
कण्टकारीफलं मूलं शटी पत्रं कटुत्रयम् ॥ ३१८ ॥
गुडूचीसत्त्व धन्याके कटुकी चैत्रपर्पटी।
मुस्तकं बालकं बिल्वं यष्टीमधु समं समम् ॥ ३१९ ॥
भागाच्चतुर्गुणं देयं कृष्णजीरस्य चूर्णकम्।
तत्समं तालपुष्पञ्च(१)चूर्णं दण्डोत्पलाभवम्(२) ॥३२०॥

पाण्डुरोग,अरुचि,उदररोग, अन्त्रवृद्धि, रक्तपित्त,त्वचाकेरोग,श्वयथु, शिरकी पीड़ा और वातरोगभी इससे दूर होजाते हैं ॥३१०-३१५॥

लोहा, अभ्रक, सुहागा, तांवा, हरताल, बंग, शुद्धपारा गंधक, सफेदमिर्च, हर्र, बहेड़ा, आंवला, चन्दन, अतीस, पाढा, वच, हल्दी, दारुहल्दी, खस, चीता, देवदारु, परवरपत्ती, जीवक, बकरीका घी, तालीस, वंशलोचन, कटेलीकी जड़ और पत्ते, सोंठ, मिर्च, पीपल, गिलोयका सत्त, धनियां, कुटकी, चैत्रपर्पटी, मोंथा, नेत्रवाला, बेल और मुलहटी ये सब समान, कालेजीरेका चूर्ण चौगुणा उसके समान प्रपौण्डरीक, दण्डो-

(१) शालिपर्णीपत्रतुल्यपत्री द्रव्यः (२) श्वेतपुष्पी द्रव्यः।

कैरातं तत्समं देयं तत्समं चपलाभवम् ।
एतच्चूर्णं समाख्यातं ज्वरनागमयूरकम् ॥ ३२१ ॥
प्रातर्माषमितं खाद्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ।
सन्ततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥३२२॥
क्षयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकोद्भवज्वरम् ।
भूतावेशज्वरञ्चैवमभिचारसमुद्भवम् ॥ ३२३ ॥
दाहशीतज्वरं घोरं चातुर्थादिविपर्य्ययम् ।
जीर्णञ्च विषमं सर्वं प्लीहानमुदरं तथा ॥ ३२४ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं हन्ति न संशयः ।
भ्रमं तृष्णां च कासञ्च शूलानाहौ क्षयं तथा ॥३२५॥
यकृतं गुल्मशूलञ्च आमवातं निहन्ति च ।
त्रिकपृष्ठकटीजानु पार्श्वानां शूलनाशनम् ॥ ३२६ ॥
अनुपानं शीतजलं न देयमुष्णवारिणा ॥ ३२७ ॥

इति ज्वरनागमयूरचूर्णम् ।

त्पला, चिरायता और पीपल, इन सबका चूर्ण बनाकर ज्वरीको दे ; इसका नाम ज्वर नागमयूर चूर्ण है ॥ ३१६—३२१ ॥

इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एकमासा या मात्रा घटा बढ़ाकर खानेसे संततादि विषमज्वर, क्षयज्वर, साध्य, असाध्य-ज्वर, धातुमें प्राप्त, काम, शोक, भूत और पिशाचोंसे उत्पन्न ज्वर, दाहयुक्त, शीत युक्त, चातुर्थिकज्वर, विपर्य्ययज्वर, दाह, विषमज्वर और जीर्णज्वर नाश होजाते हैं प्लीहा, उदररोग, कामलवाय, पाण्डुरोग, शोथ, भ्रम, खांसी, शूल, प्यास, आनाह,

अथ तैलप्रकरणम्।

अभ्यङ्गांश्च प्रदेहांश्च सस्नेहान् सावगाहनान्।
विभज्यशीतोष्णकृतान्(१)दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥३२८
तैराशु प्रशमं याति बहिर्मार्गगतो ज्वरः।
लभन्ते सुखमङ्गानि बलं वर्णश्च जायते ॥ ३२९ ॥
मूर्वालाक्षाहरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी।
बृहतीसैन्धवं कुष्ठं रास्नामांसीशतावरी ॥ ३३० ॥
आरनालाढ़केनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ३३१ ॥

इति अङ्गारकतैलम्।

क्षय, यकृत्, गुल्म, आमवात, कमर, पेट, जांघ और पसुलीकी पीड़ा भी जाती रहती है इस चूर्णको ठण्डेजलसे दे गर्मसे कभी न देवे ॥ ३२२—३२७ ॥

तैल प्रकर्ण लिखते हैं।

वैद्य, जीर्णज्वरमें शरीरमें लगानेको उंपटन, स्नेहन और स्नान करनेके लिये तैल दे; परन्तु पहले शीत और उष्णका विचार करले उन (उपटन आदि) से बाहरके मार्गमें स्थितज्वर शीघ्रही शान्त होजाता है शरीर सुखी होते हैं बल और तेज बढ़ता है।

मुरहर, लाख, हल्दी, दारुहल्दी मजीठ, इन्द्रायण, कटेली, सेंधानमक, कूट, रहसन, जटामांसी, शतावर, इन सबको एक आढ़ककांजी और एकप्रस्थ तिलके तेलमें डालकर पकावे इस

(१) शीतोष्णकृतान् ज्वरान् विभज्यविचिन्त्य।

शुष्कमूलादिकस्याङ्गैरङ्गैरङ्गारकस्य च ।
पक्वं तैलं ज्वरहरं शोथपाण्डुामयापहम् ।
बृहदङ्गारकंतैलं जलमत्र चतुर्गुणम् ॥ ३३२ ॥

इति बृहदङ्गारकतैलम् ।

लाक्षाहरिद्रामञ्जिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचितम् ।
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ ३३३ ॥

इति लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसाढ़के प्रस्थं तैलस्य विपचेद् भिषक् ।
मस्त्वाढ़कसमायुक्तं पिष्ट्वा चात्र समापयेत् ॥ ३३४ ॥
शतपुष्पां हरिद्राञ्च मुर्वां कुष्ठं हरेणुकाम् ।
कटुकां मधुकं रास्नामश्वगन्धाञ्च दारु च ॥ ३३५ ॥

तेलसे सबप्रकारके ज्वरोंका नाश होजाता है इसका नाम अङ्गारक तेल है ॥ ३२८—३३१ ॥

इस अङ्गारक तेलमें कही औषधियोंमें शुष्क मूलादिगणकी औषधियां मिलाकर तेल पकावे उस तेलसे सब ज्वरोंका नाश होजाता है इसके पकानेमें औषधियोंसे चौगुणा पानी डालना चाहिये इसका नाम बृहत् अङ्गारक तेल है ॥ ३३२ ॥

लाख, हल्दी, मजीठ, इनके कल्कमें तेल पकाकर लगानेसे दाहयुक्त ज्वरका नाश होता है। इसके पकाने में तेलसे छःगुणी कांजी डालनी चाहिये इसका नाम लाक्षादि तेल है ॥३३३॥

एक आढ़क लाख, एक प्रस्थतेल और एक आढ़कमठा इन सबको मिलाकर पकावे पकाते समय सौंफ, हल्दी, मुरहर,

मुस्तकं चन्दनञ्चैव पृथगक्षसमानकैः।
द्रव्यैरेतैस्तु तत्सिद्धमभ्यङ्गान्मारुतापहम्।
विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वान् आश्वेव प्रशमं नयेत् ॥३३६॥
कासं श्वासं प्रतिश्यायं कण्डूदौर्गन्ध्यगौरवम्।
त्रिकपृष्ठकटीशूलं गात्राणां कुट्टनं तथा ॥ ३३७ ॥
पापालक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहनिवारणम्।
अश्विभ्यां निर्म्मितं श्रेष्ठंतैलं लाक्षादिकं महत् ॥३३८॥
लाक्षायाः षड्गुणं तोयं दत्वा विंशतिवारकम्।
परिस्राव्य जलं ग्राह्यं किंवा क्वाथ्यं यथोदितम् ॥३३९॥

यथोदितमिति,

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे।

कूट, रेणुका, कुटकी, मुलहटी, रहसन, असगन्ध, देवदारु, मोथा, चन्दन ये सब एक २ अक्ष लेकर पीसकर डाले यह पका हुआ तेल लगानेसे वायुका नाश होता है सब विषमज्वर, खांसी स्वांस, प्रतिश्याय खुजली, दुर्गन्ध, शरीरका भारीपन, पीठ, कमर और कन्धेकी पीड़ा, सब शरीरकी पीड़ा, दरिद्र, ग्रहरोग, शीघ्र ही नाश होजाते हैं इस तेलका नाम महालाक्षादि तेल है। इस को पहले समय में अश्विनीकुमारोंने बनाया था; इस तेल में लाख डालने की यह विधि है लाखको छःगुणे पानी में भिगो कर २१ बार छाने तब उस जलको तेलमें डाले अथवा पहले कही रीतिसे काढ़ा डाले जिस औषधि में से स्वरस अर्थात् गीलारस न निकलसके उसका रस निकालने की यह विधि

वारिण्यष्टगुणेसाध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ३४० ॥

इति बृहल्लाक्षादितैलम्।

सुवर्च्चिकानागरकुष्ठमूर्वा-
लाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः।
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्धम्
अभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥३४१॥

दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्टरमिष्यते ॥ ३४२ ॥

इति कट्टरतैलम्।

शुक्तारनालैर्दधिमस्तुतक्रैः
फलाम्बु भागेन समं हि तैलम्।
कृष्णादिकल्कैर्मृदुवह्निसिद्ध-
मभ्यञ्जनं वातकफज्वराणाम् ॥ ३४३ ॥

है कि उस सूखी औषधिको कूटकर आठगुणे पानी में पकावे जब चौथाभाग रहजाय तब उतार कर छानले फिर उसी रस को स्वरसके अस्थान पर व्यवहार करे ॥ ३३४—३४० ॥

सज्जी, सोंठ, कूट, मुरहर, लाख, हल्दी और मंजीठ इन सब को पहले कहे प्रमाणके अनुसार तेलमें मिलाकर उसमें छःगुणा घीयुक्त दहीका तोड़डाल कर पकावे इससे वात, कफज्वर, एकाहिक, द्वाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, पाक्षिक, मासिक और द्विमासिक आदि सब ज्वरोंका नाश होता है इसका नाम कट्टरतैल है ॥ ३४१—३४२ ॥

इसी कट्टरतैलकी औषधियों में वासीकांजी, दही, दहीका

ऐकाह्निकद्वित्रिचतुर्थकानां
मासार्द्धमासद्वयमासिकानाम् ।
निवारणं तद्विषमज्वराणां
तैलन्तु षट्कट्वरकं महत् स्यात् ॥ ३४४ ॥

कृष्णा चित्रक षड्ग्रन्था वासकं विकषा घनम् ।
ग्रन्थिकैले चातिविषा रेणुकञ्च कटुत्रयम् ॥ ३४५ ॥
यमानी गोस्तनीव्याघ्री भूनिम्बं बिल्वचन्दनम् ।
भार्गीश्यामाशिवाधात्री स्थिरामूर्वा स जीरका ॥३४६॥
सर्षपं हिङ्गुकटुकी विडङ्गञ्च समांशकम् ।
एष कृष्णादिकोनाम गणोज्वरविनाशनः ॥ ३४७ ॥

इति पिप्पल्यादिगणः ।

पिप्पलीमुस्तकं धान्यं सैन्धवं त्रिफलावचा ।
यमानी चाजमोदा च चन्दनं पुष्कराह्वयम् ॥ ३४८ ॥

तोड़, मठा, और खट्टे फलोंका रस, ये सब तेलकी बराबर डाल कर पीपल, चीता, बच, बासा, मंजीठ, मोथा, ग्रन्थिक इलायची, अतीस, रेणुका, सोंठ मिर्च, पीपल, अजवायन, मुनक्का, कटेली, चिरायता, बेल, चन्दन, भारंगी, निसोत, हर्र, आमला, शालपर्णी, मुरहर, जीरा, सरसों, हींग, कुटकी और विडंग इन सबको समान २ डालकर पकावे इस कल्कका नाम पिप्पल्यादिगण है इस एकलेसे भी सब ज्वरोंका नाश होता है ॥ ३३२–३४७ ॥

पीपल, मोंथा, धनियां, सैंधानमक, त्रिफला, बच अजवा-

शटीद्राक्षागवाक्षी च शालपर्णीविकण्टकम् ।
भूनिम्बारिष्टपत्त्राणि महानिम्बं निदिग्धिका ॥३४९॥
गुडूचीपृश्निपर्णी च वृहतीदन्तिचित्रकौ ।
दार्वीहरिद्रावृक्षाम्लं पर्पटं गजपिप्पली ॥ ३५० ॥
एतेषां कार्षिकैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
दधिकाञ्जिकतक्रैश्च मातुलुङ्गरसैस्तथा ॥ ३५१ ॥
स्नेहमात्रासमैरेभिः शनैर्मृदग्निना पचेत् ।
सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपोहति ॥ ३५२ ॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव दोषत्रयसमुद्भवम् ।
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥ ३५३ ॥
मासजं पक्षजञ्चैव चिरकालानुबन्धिनम् ।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु पिप्पल्याद्यमिदं महत् ॥ ३५४ ॥

इति महापिप्पल्याद्यं तैलम् ।

यन, अजमोदा, पुष्करमूल, कचूर, दाख, इन्द्रायण, शालपर्णी गोखरु, चिरायता, नीमकेपत्ते, बकायन, कटेली, गुरिच, पृश्निपर्णी, बड़ीकटेली, जमालगोटेकीजड़, चीता, दारुहल्दी, हल्दी, चोक, पित्तपापड़ा, और गजपीपल इन सबको एक २ कर्ष लेकर कल्क बनावे इस कल्क में एक प्रस्थतैल मिलाकर, दही, कांजी, मठ्ठा और नीबूका रस पहले कहे प्रमाणके अनुसार मन्द २ आगमें पकावे जब पकचुके तब ठण्डा करके रख छोड़े इससे जीर्णज्वर, एक दोषसे उत्पन्न हुआ, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ, तीन दोषोंसे उत्पन्न हुआ, संतत, सतत, अन्येद्युष्क,

रक्तकरवीरपुष्पं धात्रीफलं सधान्याम्लम्।
कल्कः सुखोष्णलेपाज्ज्वरेषु सिरसो रुजं जयति ॥३५५

आगन्तुकज्वरनिदानम्।

यद्यप्यागन्तुको व्याधिर्विनादोषैर्न जायते।
तथाप्युत्तरकाले सः दोषव्याप्तो भवेत्ततः ॥ ३५६ ॥
न तत्र पूर्वरूपाणि दोषाणां प्रभवन्ति च।
अत आगन्तुकः प्रोक्तो दोषजैर्भिन्न एव हि ॥ ३५७ ॥
शोकात् क्रोधात् भयात्कामात् विषाद्दुर्गंधितोऽपि च।
हेतुभिश्चाप्यसंख्येयैरित्याद्यैस्तस्य सम्भवः ॥ ३५८॥
कामशोकभयेभ्यस्तु वायुपित्तञ्च कोपतः।

तृतीयक, चातुर्थिक, पाक्षिक, मासिक और अजीर्ण आदि सब ज्वरोंका नाश होजाता है इसका नाम महापिप्पल्यादि तैल है॥ ३४८—३५४ ॥

लालकनेरके फूल और आमले इन दोनोंको कांजीमें पीस कर, थोड़ा गर्म करके लगानेसे शिरकी पीड़ा दूर होती है॥३५५

आगे आगन्तुकज्वरका निदान लिखते हैं।

यद्यपि आगन्तुक रोग भी वातपित्त और कफके विना नहीं होते तो भी इनमें रोग होनेके पश्चात् वात, पित्त और कफके चिह्न प्रगट होते हैं इसी लिये आचार्य्योंने आगन्तुक रोगोंको दोषजनित रोगोंसे अलग माना है। एक और भी यह कारण है कि आगन्तुकरोगों में पूर्वरूप नहीं होता ॥ ३५६—३५७ ॥

आगन्तुकज्वर, शोक, क्रोध, भय, काम, विष और दुर्गन्धि

भूतानुवेशात्कुप्यन्ति वातपित्तकफास्त्रयः ॥ ३५९ ॥
विषजे श्यावमुखता तृण्मूर्च्छान्नारुचिस्तथा ।
अतीसारश्च तोदश्च शिरसो भ्रमणं भृशम् ॥ ३६० ॥
गौरवं शिरसः शूलं मूर्च्छा वमथुरेव च ।
औषधीगन्धजे चिह्नं कामजे शृणु चापरम् ॥ ३६१ ॥
आलस्यं हृदये पीड़ा चित्तभ्रंशोऽरुचिस्तथा ।
तन्द्रा भवति गात्राणां शोषणं चास्य जायते ॥३६२॥
तृष्णाङ्गमर्दौ मूर्च्छा च कुचयोः स्फुरणं तथा ।
स्वेदो दाहश्च हृदये नेत्रचापल्यमेव च ॥ ३६३ ॥
कामज्वरे भवेत् स्त्रीणां चिकित्सा तत्र क्रीड़नम् ।
कोपात् कम्पः प्रलापश्च भयाच्छोकाच्च जायते ॥३६४॥

आदि अनेक कारणोंसे होता है, काम, क्रोध, और भयसे वायु, क्रोधसे पित्त, और भूत प्रवेश होनेसे तीनों दो बिगड़जाते हैं ; विषसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुंह सांवला होजाता है। प्यास, मूर्च्छा, अरुचि, अतीसार, शरीरमें पीड़ा और शिरघूमना ये लक्षण भी होते हैं। औषधिकी गन्धिसे उत्पन्न हुए ज्वरमें शरीरका भारीपन, शिरमें पीड़ा, अधिक थूक आना, और मूर्च्छा आदि होते हैं कामसे उत्पन्न हुए ज्वरमें आलस्य, हृदयमें पीड़ा, चित्त घवड़ाना, अरुचि, जंभुआई आदि चिह्न होते हैं और शरीर सूखता चला जाता है। स्त्रियोंको कामज्वरमें प्यास, शरीरमें पीड़ा, मूर्च्छा, स्तनोंका फड़कना, पसीना, हृदयमें जलन और आंखोंकी चञ्चलता ये लक्षण होते हैं। क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें

हसनं रोदनं कम्पो भूतेभ्यो वेग एव च ।
भूतोत्थं विषमं केचित् मन्यन्ते पण्डिताः भुवि ॥३६५॥

अथ चिकित्सा ।

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः ॥ ३६६ ॥
क्षतानां व्रणितानाञ्च क्षतव्रणचिकित्सया ।
औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबाधनैः ॥ ३६७ ॥
जयेत् कषायैर्मतिमान् सर्वगन्धकृतैस्तथा ।
अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत् ॥३६८॥
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पात(१)ग्रहपीड़जौ ।

काम्प ; भय और शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें वृथा बकना ; भूतोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें हसना, रोना, कांपना और इधर उधर दौड़ना, ये चिह्न होते हैं, कोई २ आचार्य्य विषमज्वरको भी भूतोंसे उत्पन्न हुआ कहते हैं ॥ ३५८—३६५ ॥

अथ आगन्तुकज्वर चिकित्सा ।

चोटसे उत्पन्न हुए ज्वरमें खाने, सूंघने और शरीरमें लगाने को घी देना चाहिये ॥ ३६६ ॥

घाव और शस्त्रादिसे उत्पन्न हुए घावके ज्वरमें क्षत और व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये । औषधीकी गन्धि और विषसे उत्पन्न हुए ज्वरको बुद्धिमानवैद्य सब सुगन्धियोंकी औषधि और पित्तनाशक काढ़ोंसे दूर करे ॥ ३६७ ॥

ग्रह और शाप आदिके ज्वरोंमें जप और होम करना चाहिये ॥ ३६८ ॥

---

(१) निर्घातादि ।

क्रोधजी पित्तजित् काम्या अर्थाः स्याद्वाक्यमेव च ॥३६९
आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ।
हर्षणैश्च समं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ ३७० ॥
कामात् क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात् कामसमुद्भवः ।
याति ताभ्यामुभाभ्यान्तु भयशोकसमुद्भवः ॥ ३७१ ॥
भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताड़नैः ।
जयेद्भूताभिसङ्गोत्थं मनः शान्तैश्च मानसम् ॥ ३७२ ॥
व्यायामञ्च व्यवायञ्च स्नानं चंक्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत् ॥ ३७३ ॥

उत्पात और ग्रहसे उत्पन्न हुए ज्वरमें दान, स्वस्तिवाचन और महात्माओंकी पूजा ही चिकित्सा है। क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें पित्तनाशक औषधि देनी चाहिये और उत्तम कथा सुनानी चाहिये ॥ ३६९ ॥

काम शोक और भयसे उत्पन्न हुए ज्वर, आश्वासन, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति, प्रसन्नता और वायुनाश करनेकी औषधियोंसे शान्त होजाते हैं ॥ ३७० ॥

कामसे क्रोधज्वर, क्रोधसे कामज्वर और इन दोनोंसे भय और शोकसे उत्पन्न हुए ज्वर दूर होजाते हैं ॥ ३७१ ॥

भूत विद्यातन्त्रमें लिखे बँधन, ताड़न आदि कर्मोंसे भूतज्वर दूर होजाता है; और मानसज्वर केवल शांतिसे दूर हो जाता है ॥ ३७२ ॥

ज्वरछूटने पर भी जब तक रोगी बलवान् न हो तब तक

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्।
स्वेदः क्षवः प्रकृतिगामिमनोऽन्नलिप्सा
कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥३७४॥

अथ नवज्वरादौ रसप्रकरणम्।

तत्र रसोपरस-धातूपधातु-विषोपविष-रत्नोपरत्नानाञ्च
संक्षिप्तशोधनविधिः तत्र मदीयाः श्लोकाः (१)।

रस्यते रोगिभिर्यस्मात् रसायनहितेप्सुभिः।
रसः पारदः एवातो वैद्यैराद्यैरुदीरितः॥ ३७५॥
हरजः पारदः शैवो रसः सूतो रसेश्वरः।

व्यायाम (कसरत) मैथुन, नहाना और अधिक घूमना आदि कर्म न करे॥ ३७३॥

जब शरीर हलका होजाय, परिश्रम दूर होजाय, मूर्छा न आवे, शरीरमें जलन न रहे, अन्नपचने लगे, सब इन्द्री हलकी होजांय, पीड़ाकानाश होजाय, पसीना और छींक आने लगे, मनस्वस्थ हो, भोजन करने की इच्छा हो, और जब शिरमें खुजली लगने लगे, तब जाने कि अब ज्वर नहीं है॥३७४॥

आगे रसोंका वर्णन करते हैं रस चिकित्सा में दोष, रोग, रोगी, देश और कालकी परीक्षा करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। जैसे धर्मरहित पण्डितकी सब हँसी करते हैं ऐसे ही सब शास्त्रोंके अर्थके सारांशको जानने पर भी जो वैद्य रसक्रिया नहीं जानता उसकी सर्वत्र हँसी होती है॥ ३७५॥

(१) अनुवादकस्य।

रसराट् चेति नामानि तस्योक्तानि महर्षिभिः ॥३७६॥

अथास्य संक्षिप्तशोधनविधिः ।

गृहकन्यामलं हन्ति त्रिफलाग्निञ्च चित्रकः ।
विषं हन्ति ततो वैद्यो मर्दयेदेभिरेव तम् ॥ ३७७ ॥

अथ सर्वदोषहरः संक्षिप्तशोधनविधिः ।

कन्याग्निसर्षपकृतैर्बृहतीसमन्वितैः
क्वाथैर्विमर्द्यो रसराड् दिनत्रयम् ।
वरारसेनापि विमर्दितोऽथ वा
शुद्धो भवेन्नात्र विचारणास्ति भोः ॥ ३७८ ॥
अथवैकरसोनोत्थस्वरसैर्मर्दितो रसः ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तो योगयोग्यो भवेद् ध्रुवम् ॥३७९॥

इति मर्दनम् ।

अथ रस प्रकरण ।

पारेको रसायन चाहनेवाले रोगी खाते हैं इस लिये प्राचीन वैद्योंने इसका नाम रस लिखा है। हरज, पारद, शिव, रस, सूत, रसेश्वर और रसराज ये पारेके नाम हैं ॥ ३७५—३७६ ॥

आगे संक्षेपसे पारा शुद्ध करनेकी विधि लिखते हैं।

घीकुआरसे मल, त्रिफलेसे आग और चीतेके रससे पारेका विषनष्ट होता है इस लिये वैद्य पारेको पहले इन्हीं तीनों वस्तुओंमें घोटे ॥ ३७७ ॥

घीकुआर, लालसरसों और दोनोंकटेली इनके काढ़ेमें तीन दिन तक पारेको घोटे अथवा त्रिफलेके रसमें घोटनेसे पारा

अथ मूर्च्छनम्।

धत्तूररजनीचित्रकन्यार्काणां फलत्रिकैः।
कटुकत्रयचुद्राढ्यैः क्वाथैः कर्कोटिका युतैः।
सप्तवारं मर्दयेत्त मुक्तः स्यात् सप्त कञ्चुकैः॥ ३८०॥

इति मूर्च्छनम्।

अथ स्वेदनम्।

बध्वातिगाढ़े वस्त्रे तु दोलायन्त्रेण तं भिषक्।
दिनैकं स्वेदयेत् प्राज्ञः काञ्जिके मन्दवह्निना॥३८१॥
तत्र चिपेद् वराव्योषचित्रकन्याः समांशिकाः।
अनेन दोषशान्तिः स्यात् रसस्य रसवित्तमाः॥३८२॥

निस्सन्देह शुद्ध होजाता है अथवा केवल लहशुनके अर्कमें घोटने से ही पारेके सब दोष दूर होजाते हैं॥ ३८१—३७८॥

अब पारेको मूर्छित करनेकी विधि कहते हैं।

धतूरा, हल्दी, चीता, घीकुआर, आक, जन, त्रिफला, त्रिकुटा, कटेली और ककोड़े के काढ़े में पारेको सातबार घोटने से इसकी सातकांचली दूर होजाती हैं॥ ३८०॥

अब स्वेदन विधि कहते हैं।

वैद्य पारेको मोटे कपड़े में बांधकर हांडीके मुंह पर एक लकड़ी रखकर उस पोटलीको इस प्रकार लटकादे जिसमें हांडीकी तलीमें न लगने पावे और न औषधियोंके ऊपर ही रहे अर्थात् बीचमें लटकी रहै फिर हांडीमें कांजी भरकर त्रिफला, त्रिकुटा, चीता, और घीकुआर इन सबको समान लेकर उसमें

अथ ऊर्द्ध्वपातनम् ।

स्वर्णमाक्षिकतुत्थाभ्यां मर्दयेद्रसनायकम् ।
कन्यास्वरसयुक्ताभ्यां यावत् सूतो न दृश्यते ॥ ३८३ ॥
ततो विद्याधरे यन्त्रे ऊर्द्ध्वपातनमाचरेत् ।
सावधानतया वैद्यः सम्यग्दोषप्रशान्तये ॥ ३८४ ॥

अथाधःपातनम् ।

वरासर्षपसिंह्रोत्थैः शिखण्डी लवणान्वितैः ।
सूतं संमर्दयेत् क्वाथैस्ततः पात्रं प्रक्षेपयेत् ॥३८५॥

डालकर तीनदिन तक धीरे २ मन्दाग्निसे पकावे इस स्वेदनसे पारेके सब दोष दूर होजाते हैं ॥ ३८१—३८२ ॥

ऊपरको पारा उड़ानेकी क्रिया ।

सोनामाखी और तूतियामें मिलाकर घीकुआरका रस डालकर पारेको जब तक घोटे जब तक औषधियोंमें न मलजाय। फिर विद्याधर* यन्त्रमें रखकर पांच पहर तक आंचदे फिर ठण्डा होने पर उतारले जो पारा ऊपरकी हांडीके तलेमें लगा हो उसे उतारले इस क्रियामें वैद्य सावधान रहै ॥३८३—३८४॥

अधःपातनकी क्रिया ।

त्रिफला, लालसरसों, सहंजना, लटजीरा और नमक इनके

---

* नीचेकी हांडीमें पारा रखकर उसके ऊपर दूसरी हांडी रक्खे इन दोनोंका मुंह ऊपरको रहेगा फिर दोनोंको जोड़दो और चूल्हे पर चढ़ादो पकाती समय ऊपरकी हांडीमें ठण्डापानी भरा रहना चाहिये ।

मन्दाग्निना ततः कुर्य्यादधःपातनमस्य तु।
भूधराख्ये क्रियां कुर्य्यादिमां यन्त्रे भिषग्वरः॥३८६॥

अथ तीर्य्यक् पातनम्।

घटे संस्थापतेत्सूतं अन्यं संपूर्य्यवारिणा।
द्वयोर्मुखं पिधायाथ तिर्य्यग्गत्या भिषग्वरः॥ ३८७॥
सूताधो ज्वालयेद्वह्निं यावत् सजलमाविशेत्।
एभिस्त्रिभिर्विशुद्धः स्यात् रसराड् नात्र संशय॥३८८॥

अथ प्रबोधनम्।

नपुंसको भवत्येभिः कर्मभी रसनायकः।

पानीमें पारेको घोंटकर हांडीमें लेप करे फिर उस हांडीको भूधर ‡ यन्त्रमें रक्खे॥ ३८५—३८६॥

तीर्य्यकपातन क्रिया।

एक घडेमें पारेको रखकर दूसरे घड़ेमें पानी भरे फिर उन दोनोंको टेढ़ा करके मुंह मिलाकर बन्द करदे और पारेवाले घड़के नीचे इतनी आंचदे कि वह पारा उस घड़ेसे निकल कर उस पानीवाले घड़ेमें आजाय इन क्रियाओंसे पारा अत्यन्त शुद्ध होजाता है॥ ३८७—३८८॥

प्रबोधनकी क्रिया।

इन सब क्रियायोंसे पारा नपुंसक होजाता है इस लिये

---

‡ भूधरयन्त्रका विधान यह है कि पृथ्वीमें गढ़ा करके उसके भीतर एक छोटा गढ़ा करे छोटे गढ़ेमें खालीबर्त्तन रखकर उसके ऊपर औषधिकी हांडी रक्खे परन्तु ऊपर वाली हांडीके तलेमें छेद करदे यह छेद नीचेके बर्त्तनके ठीक मंह पर रहना चाहिये फिर ऊपरकी हण्डीमें आंचदे।

समैन्धवेऽम्भसि पुनः स्वेद्यो वध्वा तु भूर्जके ॥ ३८९ ॥

अथ स्थिरीकरणम्।

धत्तूरभृङ्गकर्कोटी चिञ्चानागाचिजैर्जलैः।
स्वेदितो दिनमेकन्तु स्थिरतां व्रजति स्वयम् ॥ ३९० ॥

अथ दीपनम्।

स्वेदयेदह्निजैः क्वाथैस्त्रिदिनं रसनायकम्।
दीपनन्तु भवेत्तस्य ततः शुद्धो भवेद्रसः ॥ ३९१ ॥

अथानुवासनम्।

जम्बीरद्रवसंयुक्तं मृत्पात्रे घर्मसंस्थितम्।
अनुवासितं विजानीयाद्रसराजं भिषग्वरः ॥ ३९२ ॥

इसे भोजपत्रमें बांधकार संधेनमकके पानीमें पहले ... दोला यन्त्रसे फिर स्वेदन करे ॥ ३८९ ॥

आगे पारेको स्थिरकरनेकी रीति कहते हैं।

धतूरा, भांगरा, ककोड़ा, अमिली और सर्पाचीके (सरहटी) रसमें एक दिन भिगोनेसे पारा स्थिर होजाताहै ॥ ३९० ॥

दीपनविधि कहते हैं।

तीनदिन तक चीतेके काढ़ेमें स्वेदन करनेसे पारेमें अग्नि बहुत बढ़ जाती है ॥ ३९१ ॥

अथ अनुवासन।

एक मिट्टीके बर्त्तनमें जम्हीरी नीबूकारस डालकर उसमें पारेको रख धूपमें एकदिन भर रख दे यह अनुवासनकी

अथ षड्गुणगन्धकजारणम् ।

दत्वा सूतसमं गन्धं गौरीयन्त्रे भिषग्वरः ।
शनैः प्रज्वालयेदग्निं यावद्गन्धो विलीयते ॥ ३८३ ॥
विलीने गन्धके देयः पुनर्गन्धो भिषग्वरैः ।
एवं षड्गुणकं गन्धं दद्यादग्निञ्च ज्वालयेत् ।
एवं शुद्धो भवेत्सूतो सर्वकार्य्येषु योजयेत् ॥ ३८४ ॥

अथास्यमारणविधिः ।

पयोभिर्मर्दयेत्सूतं काष्ठोदुम्बरिका भवैः ।
तत्पयो हिंगुसंघृष्ट भूषा युग्मे क्षिपेत्ततः ॥ ३८५ ॥
ततो मुद्रां प्रदत्वात्तु मृण्मूषा संपुटे क्षिपेत् ।
मुद्रां तत्र दृढां दत्वा शोषयित्वानुयत्नतः ॥ ३८६ ॥
पचेद्गजपुटे तत्तु स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।

अथ षड्गुण गन्धक जारणविधि ।

पारेके बराबर गन्धक मिलाकर गौरीयन्त्रमें रक्खे फिर नीचे धीरे२ गन्धक जलने पर्य्यन्त आग जलावे जब गन्धक जल जाय तब उतनाही दूसरा गन्धक डाल दे इस प्रकार जब पारेसे ६ गुणा गन्धक जल चुके तब जानेंकि पारा शुद्ध होगया उसी पारेको सब रसोंमें डाले ॥ ३८३—३८४ ॥

पारामारनेकी विधि ।

कटूम्बरके रसमें पारेको घोटे फिर हींगको कटूम्बरके रस में घोटकर दो घरियां बनावे, पारेको उस घरियामें रखकर बंद करदे फिर उस घरियाको मिट्टीकी दो घरियाओंमें खूब

एवं मृतो भवेद्भस्म नात्र कार्य्या विचारणा ॥३८७॥

अथ रसस्य कर्पूरविधिः ।

गैरिकं स्फटिकां चैव सिन्धूत्थं लवणं तथा ।
इष्टिकां खटिकां चारं वल्मीकं लवणं तथा ॥३८८॥
भांडरञ्जनमृत्तिश्च प्रत्येकं पलसम्मितम् ।
एषां चूर्णं वस्त्रशुद्धे पलैकं शुद्धपारदम् ॥ ३८९ ॥
क्षिपेद् घृष्ट्वा दिनैकन्तु स्थालीमध्ये भिषग्वरः ।
तस्यां मुखे परां स्थालीं दत्वा मुद्रां प्रदापयेत् ॥४००॥
सवस्त्रमृत्तिका मुद्रामेकां दत्वा विशोषयेत् ।
शोष्यमुद्रां पुनर्दद्यात् पुनः संशोष्यमुद्रयेत् ॥४०१॥
एवं दद्यात् सप्त मुद्राः ततश्चूल्ह्यां निधापयेत् ।

बंद करके गजपुटमें फूंक दे जब आपसे आप ठण्डा होजाय तब निकाल ले इस प्रकार पारेकी भस्म होजाती है ॥ ३८ । ३८६ ॥ ३८७ ॥

आगे रसकपूर बनानेकी विधि कहते हैं ।

गेरू, फिटकिरी, सेंधानमक, पुरानोईंटका चूर्ण, खड़िया, जवाखार, बिलकीमिट्टी, नमक, वानी (जिस मिट्टीसे कुम्हार बर्तनके ऊपर रंग करते हैं) इन एक२ को पारेके समान लेकर पीसकर कपड़े में छान ले फिर शुद्धपारा मिला दे । और एक दिन तक घोंटे फिर हंडिया में रखकर दूसरी हंडियाका मुंह उस हंडियाके मुहसे मिलाकर जोड़ दे फिर एक कपरौटी देकर सुखावे इस प्रकार सात कपरौटी देकर चूल्हेपर चढ़ा दे

तदधो ज्वालयेद्वह्निं वैद्यो दिनचतुष्टयम् ॥ ४०२ ॥
निरन्तरं दिनैकन्तु ततो रक्षेद् भिषक्तमः ।
अङ्गारेषु दिनैकन्तु तत उद्घाटयेच्छनैः ॥ ४०३ ॥
ऊर्द्धस्थालीगतं सूतं कर्पूरसदृशं शुभम् ।
रसः कर्पूरसंज्ञोऽयं फिरङ्गव्याधिनाशनः ॥ ४०४ ॥

अथ कज्जलीकरणम् ।

शुद्धसूतसमं शुद्धं गन्धकं प्रक्षिपेद्बुधः ।
मर्द्दयेत् कज्जलीभूतं सूतं सर्वत्र योजयेत् ॥ ४०५ ॥

अथोपरसशोधनम् ।

तत्रोपरसानां गणना ।

गन्धो हिङ्गुलमभ्रतालकशिला स्रोतोऽञ्जनं टङ्कणं
राजावर्त्तकचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खः खटीगैरिकम् ।
कासीसं रसकं कपर्दसिकते तद्वच्च कङ्कुष्टकं
सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः॥४०६

और सातदिन तक निरन्तर आंच जलाता रहै फिर एकदिन तक उन्ही कोयलों पर रक्खा रहने दे फिर धीरे २ खोल कर ऊपरकी हंडियासे पारेको कुड़ा ले इसीका नाम रसकपूर है इससे फिरंगरोग शीघ्र चला जाता है ॥ ३९८—४०४ ॥

अथ कज्जलीकरण ।

शुद्धपारेके समान शुद्धगन्धक लेकर खरल में घोंटे जब वह कज्जलके समान हो जाय तब उसे रसों में डाले ॥ ४०५ ॥

गन्धक, सिंगरफ, अभ्रक, हरताल, शिलाजतु सुरमा,

अथ हिङ्गुलशोधनविधिः।

दरदं म्लेच्छमित्युक्तं इङ्गुलं हिंगुलं तथा।
रसेन्द्रनामसहितं चूर्णं शोधनमुच्यते॥ ४०७॥
अम्लौषधिकषाये तु मेषीक्षीरे च सप्तधा।
स्विन्नं शुध्यति चात्यर्थं दरदं नात्र संशयः॥४०८॥

अथास्माद्रसाकर्षणविधिः।

एके म्लेच्छोत्थितं शुद्धमशुद्धमपरे रसम्।
संस्काराः सूतवत्तत्र कर्त्तव्याश्चेति निश्चयः॥ ४०९॥

यदुक्तम्।

"दरदं रसगन्धोत्थं तस्मादाकर्षितो रसः।
भूयः शोध्यो भिषग्वर्यैः क्रिया तस्योच्यते मया" ॥४१०

सुहागा, राजावर्त्तक, चुम्बक, फिटकिरी, शङ्ख, खपरिया, गेरू, कसीस, खड़िया, कौड़ी, बालू, कंकुष्ठ, सौराष्ट्रदेश मिट्टी ये उपरस हैं इनमें भी पारेका कुछ२ गुण रहता है ॥४०६॥

सिंगरफशोधनविधि।

दरद, म्लेच्छ, ईङ्गुर, हिंगुल, रसेन्द्रचूर्ण ये सिंगरफके नाम हैं इसके शोधनकी यह विधि है कि सिंगरफको खट्टी औषधियोंके काढ़े में सातबार और भेड़के दूधमें सातबार स्वेदन करे तो शुद्ध होजाता है॥ ४०७—४०८॥

सिंगरफसे पारानिकालनेकी विधि।

कोई आचार्य्य कहते हैं कि सिंगरफसे निकला पारा शुद्ध होता है और कोई कहते हैं कि अशुद्ध होता है क्योंकि गन्धक

निम्बपत्ररसैर्म्लेच्छमथवा निम्बुजैः द्रवैः।
यामैकं मर्दयेद्युक्त्या ततः स्थाल्यां निधापयेत्।
पातयेदूर्द्ध्वपातोक्तरीत्या यन्त्रेण बुद्धिमान् ॥ ४११ ॥

अथ गन्धकः।

सर्पिः क्षिप्त्वा लोहपात्रे तत्समं गन्धकं क्षिपेत्।
वह्नौ विद्राव्य पयसि निक्षिपेत् सप्त वारकम्।
एवं गन्धकशुद्धिः स्यात् सर्वकार्य्येषु योजयेत् ॥४१२॥

अथाभ्रकम्।

कृष्णवर्णं गृहीत्वाभ्रं तत्तप्तं पयसि क्षिपेत्।
तण्डुलीयाम्लयोः क्वाथे अष्टयामन्तु भावयेत् ॥४१३॥

और पारेसे सिंगरफ बनता है और उसमें पारा शुद्ध करके नहीं डाला जाता इस लिये उससे निकले हुए पारेको भी शोधनाही चाहिये ॥ ४०९—४१० ॥

उसके निकालनेकी यह विधि है कि सिंगरफको एकपहरतक नीमकेपत्तोंके रसमें या नीबूकेरसमें घोंटकर पारेके संस्कारोंमें कहो ऊर्द्धपातन रीतिसे पारा उडाले ॥ ४११ ॥

अथ गन्धकशोधन।

एक लोहेकी करछीमें घी डालकर आगपर रक्खे फिर घी तपने पर घीके बराबर गन्धक छोड़दे जब गलजाय तब दूधमें बुझा दे इस प्रकार सातबार करनेसे गन्धक शुद्ध और सब औषधियोंमें डालने लाइक होजाता है ॥ ४१२ ॥

अथ अभ्रक शोधन।

काले अभ्रकको आगमें तपाकर दूधमें बुझावे फिर चौलाई

एवं तस्य विशुद्धिः स्यात् नात्र कार्य्या विचारणा ४१४

अथ धान्याभ्रविधिः ।

निजपादांशधान्याढ्यमभ्रं बध्वा तु कम्बले ।
त्रिरात्रमम्भसि क्षिप्त्वा ततः संमर्दयेत् करैः ॥४१५॥
वालुकारहितं शुद्धं कम्बलाद्गलितं वरम् ।
धान्याभ्रकं विजानीयात् तद्योज्यं सर्वकर्मसु ॥४१६॥

अथाभ्रकमारणविधिः ।

आर्द्रकस्वरसे शुद्धमभ्रकं मर्दयेद् भिषक् ।
यामैकं च ततो युक्त्या भिषग् गजपुटे [illegible]तः ॥४१७॥
अपामार्गरसे तद्वत् कन्यकायाश्च द्रवे तथा ।
यात्येवं भस्मतामभ्रं सर्वकार्य्येषु योजयेत् ॥ ४१८ ॥

और चूके (नोनियां) के अर्कमें आठप्रहर भिंगोवे ऐसे करनेसे अभ्रक निःसन्देह शुद्ध होजाता है ॥ ४१३ ॥ ४१४ ॥

धान्याभ्रक बनानेकी विधि कहते हैं ।

जितना अभ्रक हो उससे चौथाई धान मिलाकर कंबलमें बांध दे फिर तीनरात बंधे रहनेके पीछे पानीमें डालकर हाथसे मले जो बालू रहित शुद्ध अभ्रक कम्बलसे छने उसे धान्याभ्रक कहते हैं यही धान्याभ्रकही सब औषधियोंमें डालना चाहिये ४१५ ॥ ४१६ ॥

अभ्रक भस्मविधि ।

शुद्ध अभ्रकको अदरकके अर्कमें एकदिन घोटकर गजपुटमें फूंक दे इसी प्रकार गधापुन्ना और घीकुवारके अर्कमें घोटकर अलगर फूंक दे तो भस्म होय ॥ ४१७ ॥ ४१८ ॥

अथ हरितालम्।

आरनाले क्षिपेच्चूर्णं दोलायन्त्रेण तालजम्।
प्रपचेद्याममेकन्तु ततः कूष्माण्डवारिभिः॥ ४१९॥
तैले च त्रिफलाक्वाथे पूर्ववत् स्वेदयेद्भिषक्।
एवं शुध्यति तालन्तु तद् योज्यं सर्वकर्मसु॥ ४२०॥

अथास्य मारणम्।

रसैः कूष्माण्डजैर्द्यो मर्दयेत्तालकं ततः।
चक्राकारं तु तं कृत्वा मूषायुग्मे निधापयेत्॥४२१॥
मुद्रां दृढतरां दत्वा शोषयित्वा तथातपे।
कूष्माण्डखण्डकैः स्थालीं दृढां संपूरयेत्ततः॥४२२
तन्मध्ये संपुटं तच्च स्थापयित्वा तु मुद्रयेत्।
वह्निं निरन्तरं दद्यात् तदधः पञ्च वासरम्॥४२३॥

हरताल शोधन।

एक कपड़ेमें हरतालका चूर्ण बांधकर फिर कांजीसे भरी हड़ियाके मुंहपर लकड़ी रख उस पोटलीको लटका दे फिर एक पहर तक उस हांडीके नीचे मन्द२ आग जलावे ऐसेही एक पहर कुम्हड़ा (पेठा) के रसमें, एक पहर तिलके तेलमें और एकपहर त्रिफलाके काढ़े में पकानेसे हरताल शुद्ध हो जाती है॥ ४१९॥ ४२०॥

हरतालमारणविधि।

प्राणनाथवैद्यने अपने वैद्यदर्पण ग्रन्थमें हरताल मारनेकी विधि इस प्रकार लिखी है कि शुद्ध हरतालको पेठेके रसमें घोटे

एवं व्रजति भस्मत्वं प्राणनाथोदिता क्रिया।
तद्भस्म हन्ति कुष्ठन्तु रक्तरोगांश्च सर्वशः॥ ४२४॥

अथ मनःशिला।

मूत्रे पचेदजायास्तु पूर्ववद् भावयेत्ततः।
मनःशिलामजापित्ते सप्तवारं विशुध्यति॥ ४२५॥

अथाञ्जनम्।

अञ्जनं चूर्णयित्वा तु भावयेन्निम्बुजैर्द्रवैः।
शुष्कं दिनैकं घर्मे तत् शुद्धिमायाति निश्चितम्॥४२६॥

अथ टङ्कणम्।

अग्नियोगेन संभृष्टं टङ्कणं शुद्धिमृच्छति॥ ४२७॥

फिर उसकी टिकिया बनाकर दो घड़ियोंमें रखके बंदकरके सुखाले फिर आधी हंड़िया में पेठेके टुकड़े भरे उनके ऊपर वह घड़िया रखकर बाकी हंड़ियाको पेठेके टुकड़ोंसे भरकर मुंह बन्दकर दे फिर पांचदिन तक उसके नीचे आंचजलाता रहै तो हरताल भस्म हो जाती है॥ ४२१—४२४॥

मैंनशिल।

मैंनशिलको सातवार बकरीके मूत्रमें हरतालके प्रकारके पकावे फिर सातवार बकरीके पित्तेमें घोटे तो शुद्ध होजाय॥ ४२५॥

अञ्जन।

अञ्जनको चूरा (टुकड़े) करके नीबूके अर्कमें भिगोकर एकदिन घाममें रक्खे तो शुद्ध होजाता है॥ ४२६॥

अथ रसकम् ।

दोलायन्त्रेण गोमूत्रे सप्ताहं प्रपचेद्भिषक् ।
खर्परं शुद्धतामेति सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ४२८ ॥

अथ शेषोपरसानां शोधनम् ।

शेषाः सर्वे विशुध्यन्ति जम्बीरद्रवस्वेदनात् ।
कोष्णाम्बु क्षालनाच्चैव वैद्यवेदविदो विदुः ॥ ४२९ ॥

अथ धातुप्रकरणम् ।

स्वर्णतारौ च ताम्रञ्च रङ्गं नागश्च सीसकम् ।
लोहान्विताश्च सप्तैते धातवः खनिजाः स्मृताः ॥४३०॥

सुहागाशोधन ।

एक बर्त्तन में घी आग पर चढ़ावे और उसमें सुहागा छोड़ दे जब भुनजाय तब काममें लावे ॥ ४२७ ॥

रसक ।

खपरियाको सातदिन तक दोला यन्त्रसे गोमूत्रमें पकावे तो शुद्ध होजाती है ॥ ४२८ ॥

शेष उपरसोंकी शुद्धि ।

और सब उपरस नीबूके रसमें स्वेदन करने और गर्मपानी से धोनेसे ही शुद्ध होजाते हैं ॥ ४२९ ॥

आगे धातुओंके शोधन और मारणविधि ।

सोना, चांदी, तांवा, रांगा, सीसा, जस्त और लोहा ये सात धातु हैं और खानसे उत्पन्न होती हैं ॥ ४३० ॥

तत्र सर्वेषां शोधनम् ।

तैले तक्रे चारनाले गोमूत्रे च त्रिधा त्रिधा ।
कुलत्थक्वाथे च त्रिधा शुद्धिमायान्ति धातवः ॥४३१॥
निशिं चान्निप्रपत्राणि तेषां वैद्यो विचक्षणः ।
नागवङ्गौ प्रगलितौ तप्तावेवनिषेचयेत् ॥ ४३२ ॥

अथ सुवर्णमारणम् ।

सुवर्णं शुद्धसूतेन समं खल्वे विमर्दयेत् ।
भूपायां गन्धकं चाधो दत्वा तद्गोलकं न्यसेत् ॥४३३॥
पुनर्गन्धोद्भवं चूर्णं दत्वोपरि च मुद्रयेत् ।
त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात् पुटं वैद्यः प्रयत्नतः ।
एवं चतुर्दशपुटैः स्वर्णं व्रजति भस्मताम् ॥ ४३४ ॥

अथ रूप्यमारणम् ।

तालं गन्धं पारदञ्च रूप्यतुल्यं विमर्दयेत् ।

धातुशोधन विधि ।

धातुओंके पतले २ पत्र करके आगमें तपाकर तीन २ बार तेल, मठा, कांजी, गोमूत्र और कुलथीके काढ़ेमें बुझावे रांगा और जस्ता गलाकर बुझाने चाहिये ॥ ४३१—४३२ ॥

सोनामारण ।

शुद्धसोना और उसके समान पारा लेकर खरलमें घोटे फिर नीचे ऊपर गन्धक देकर घड़ियां में बन्दकर दे फिर ३० आरने कंडोंमें रखकर फूंकदे इस प्रकार चौदहपुट देनेसे भस्म होजाता है ॥ ४३३—४३४ ॥

निम्बुद्रवैः पुटैश्चैवं त्रिभिर्भस्मप्रजायते ॥ ४३५ ॥

अथ ताम्रमारणम्।

न तथा धातवोऽन्ये तु ताम्रं कृच्छ्रतरं यथा।
मारकं सर्वजन्तूनां तस्माद्यत्नेन शोधयेत् ॥ ४३६ ॥

यथोक्तम्।

"न विषं विषमित्याहुस्ताम्रन्तु विषमुच्यते।
एकदोषो विषे सम्यक् ताम्रे त्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः" ॥४३७
सूक्ष्मपत्राणि ताम्रस्य रसगन्धकतालकैः।
जम्बीरद्रवसंपिष्टैर्लेपयेच्च पुटेत्ततः ॥ ४३८ ॥

चांदीमारण।

चांदीके समान २ गन्धक, हरताल, और पारा, नीबूका रस डालकर खरलमें घोटे फिर गजपुटमें फूंकदे इस प्रकार तीन पुट देनेसे चांदीभस्म होजाती है ॥ ४३५ ॥

ताम्रमारण।

जैसी कठिन तांबाधातु है ऐसी दूसरी नहीं, यदि यह अशुद्ध रहजाय तो खानेसे मनुष्य मरसक्ता है; इसलिये वैद्य इसको खूब सावधान होकर शुद्ध करे वैद्यकशास्त्र में लिखा है कि "विष को विष न कहना चाहिये बल्कि तांबे होको विष कहना उचित है क्योंकि विषमें केवल एक ही दोष है अर्थात् मनुष्य को मारडालता है परन्तु तांबेमें बमन आदि आठ दोष हैं" ॥ ४३६—४३७ ॥

शुद्धकिये तांबेके पतले २ पत्रों पर जम्भीरी नीबूके रसमें पिसे हरताल गन्धक और पारेका लेप करे फिर घड़ियामें रख

एवं पुटैस्त्रिभिस्ताम्रं म्रियते नात्र संशयः ।
सूतालाभे क्षिपेद्वैद्यो दरदं ताम्रमारणे ॥ ४३९ ॥

वङ्गमारणविधिः ।

लोहपात्रे क्षिपेद्वङ्गं लोहदार्व्या प्रचालयेत् ।
तदधो ज्वालयेद्वह्निं चूर्णान्येवं प्रदापयेत् ॥
आद्ये यामे निशायास्तु(१)द्वितीये दीप्यकस्य च ॥४४०॥
तृतीये जीरकस्यापि चतुर्थेऽश्वत्थचिञ्चयोः ।
एवं यामैश्चतुर्भिर्हि वङ्गं व्रजति भस्मताम् ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ४४१ ॥
वङ्गवद् यशदस्यापि विद्याच्छोधनमारणे ॥ ४४२ ॥

कर गजपुट में फूंकदे इस प्रकार तीनपुट देनेसे तांबाभस्म होजाता है यदि पारा न मिले तो सिंगरफ ही छोड़दे ॥ ४३८—४३९ ॥

वंगमारणविधि ।

शुद्ध रांगेको लोहेकी कड़ाही में डालकर नीचे आगजलावे लोहेको करछोसे चलाता रहे और नीचे लिखे चूर्णोंको डालता रहे पहले पहर में हलदीका चूर्ण, दूसरे में अजवायनका चूर्ण, तीसरेमें जीरेका चूर्ण और चौथे पहरमें पीपल और अमिलीकी छाल (ऊपरकी वकली) का चूर्णदे इस प्रकार चार प्रहर आंच देनेसे वंगभस्म होजाता है ॥ ४४०—४४१ ॥

अथ जस्त ।

जैसे वंगभस्म होता है ऐसेही जस्तेको भी भस्मकरले ॥४४२

(१) हरिद्रयाः ।

सीसकम्।

सीसकं लोहपात्रे तु क्षिप्त्वा चुल्ल्यां निधापयेत्।
तत्र क्षिपेद् यवक्षारं वारंवारं भिषग्वरः।
यावद्भवति रक्ताभं तावन्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४४३ ॥

अथ लोहः।

शुद्धलोहं धेनुमूत्रे मर्दयित्वा पुटेद्भिषक्।
शतशस्तु भवेद्भस्म सहस्रपुटनाद्वरम् ॥ ४४४ ॥

अथोपधातवः।

माक्षिकौ स्वर्णताराद्यौ तुत्थं कांस्यञ्च रीतिकम्।
सिन्दूरं च शिलोत्थं च अमी सप्तोपधातवः ॥४४५॥

सीसाभस्म।

सीसेको लोहेकी कड़ाही में रखकर चूल्हे पर चढ़ावे और जब तक लालरंगकी भस्म न हो तब तक जवाखार छोडता जाय ॥ ४४३ ॥

अथ लोहा।

शुद्ध लोहेको चूर्ण करके गायके मूत्रमें घोट २ कर सौवार गजपुट में फूंके तो भस्म होजाता है इसी प्रकार हजारपुट देनेसे अमृतके समान होजाता है ॥ ४४४ ॥

अथ उपधातु प्रकरण।

सोना मक्खी, रूपा मक्खी, तूतिया, कांसा, पीतल, सिंदूर, और शिलाजीत ये सात उपधातु कहाती है ॥ ४४५ ॥

अथ स्वर्णमाक्षिकम् ।

त्रयोभागा माक्षिकस्य एकः स्यात् सिन्धुजन्मनः ।
पचेल्लोहमये पात्रे मातुलुङ्गरसे भिषक् ।
पात्रं यदा लोहितं तु भवेत् सिद्धं तदाऽऽदिशेत् ॥४४६

अथ तारमाक्षिकम् ।

वंध्या शृङ्गी निम्बुरसैर्मर्दयित्वा विशो[illegible]त् ।
आतपे दिनमेकन्तु विमला शुद्धतां भजेत् ॥ ४४७ ॥

अ[illegible] तुत्थम् ।

दशांशटङ्कणायुतं तुत्थं मार्जारविष्टया ।
कपोतविष्टया चैव घृष्ट्वा लघुपुटे पुटेत् ।
दध्नः पुटं चौद्रपुटं दद्यादेवं विशुद्ध्यति ॥ ४४८ ॥

सोनामाखी ।

सोनामाखी तीनभाग सेंधानमक एकभाग इन दोनोंको लोहेकी कड़ाही में डालकर नीबूके रसमें पकावे जब कड़ाही लाल होजाय तब जाने कि सिद्ध होगया ॥ ४४६ ॥

रूपामक्खीको ककोडा, मेढ़ासिंगी और नीबूके रसमें एक दिन घोटकर घाममें सुखानेसे शुद्ध होजाती है ॥ ४४७ ॥

तूतियेसे दशवां भाग सुहागा मिलाकर बिल्ली या कबूतर की विष्टामें घोटे फिर थोड़ीसी आंचमें फूंकदे इसी प्रकार एकवार दही और एकवार शहत में घोटकर फूंकदेनेसे तूतिया शुद्ध होता है ॥ ४४८ ॥

अथ कांस्यम्।

धातुवत् कांस्यशुद्धिः स्यात् रीतेश्चापि न संशयः ॥४४९

अथ शिलाजतुः।

भृङ्गराजवराधेनुपयःपिष्टं शिलाजतु।
लोहपात्रस्थितं तत्तु दिनैकं शुद्धिमृच्छति ॥ ४५० ॥

अथ स्वर्णमाक्षिकमारणविधिः।

घृष्ट्वा कुलत्थक्वाथे तु तैले तक्रेऽथवा भिषक्।
अजमूत्रे पुटेत्सम्यक् गच्छतो माक्षिके मृतिम् ॥४५१॥

अथ कांस्यम्।

अर्कक्षीराम्लपिष्टेन गन्धकेन विलेपयेत्।
रीतिकांस्यकपत्राणि धृत्वा मूषापुटे पुटेत् ॥
एवं पुटद्वयाद्भस्म उभयोः संप्रजायते ॥ ४५२ ॥

-कांसा और पीतलधातुओंके समान शुद्ध करने चाहिये ॥ ४४९

भांगरेका अर्क, त्रिफलेका काढ़ा और गायके दूधमें पीस-कर शिलाजीतको एकदिन लोहेके बर्तनमें रक्खे तो शुद्ध हो जाता है ॥ ४५० ॥

सोनामक्खी और रूपामक्खीको शुद्धकरके कुलथीके काढ़े, तेल, मट्ठे या बकरीके मूत्रमें घोटकर फूंकदे तो भस्म होजाती है ॥ ४५१ ॥

कांसे और पीतलके पत्रों पर खटाईमें पीसे गंधकका लेप करे फिर घडियामें बन्दकरके गजपुटमें फूंकदे इस प्रकार दो पांच देने भस्म होजाते हैं ॥ ४५२ ॥

अथ विषोपविषशोधनम् ।

प्राणघ्नो गरलं क्ष्वेडं विषं प्राणहरं स्मृतम् ।
तदेव शुद्धं रोगघ्नं बलपुष्टिकरं परम् ॥ ४५३ ॥
हारिद्रो वत्सनाभश्च शृङ्गकः सक्तुकस्तथा ।
ब्रह्मपुत्रः कालकूटः सौराष्ट्रश्च प्रदीपनः ॥
हालाहलश्च विज्ञेया नवैव विषजातयः ॥ ४५४ ॥

अथ शोधनविधिः ।

दिनत्रयं स्थितं धेनुमूत्रे शुध्यति नान्यथा ।
सर्षपस्नेहक्लिन्ने च विषं शुध्यति वाससि ॥ ४५५ ॥

अथोपविषाणि ।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गलीकरवीरकः ।
गुञ्जा हि फेणधत्तूराः सप्तोपविषजातयः ॥ ४५६ ॥

प्राणनाशन गरल, क्ष्वेड, विष और प्राणहर ये वि॰ ॰ नाम हैं वही विष शुद्ध होने पर रोगोंको नाश करता है और बलको बढ़ाता है ॥ ४५३ ॥

हरिद्रा (हल्दी) वत्सनाग, (वच्छनाग) शृङ्गक (सिंगियावा मीठा) सक्तुप, ब्रह्मपुत्र, कालकूट, सौराष्ट्रक, प्रदीपन और हलाहल ये नौप्रकारके विष होते हैं ॥ ४५४ ॥

इन विषोंके शुद्ध करनेकी यह विधि है कि तीनदिन तक इन्हें गायके मूत्रमें भिगोवे । फिर सरसोंके तेलमें भीगे कपड़े में तीनदिन रखे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ ४५५ ॥

आकका दूध, थूहरका दूध, करिहारी, कनेर, घुंघची,

अथ शोधनविधिः ।

दोलायन्त्रेण पयसि स्थापयित्वा पचेद् भिषक् ।
एतेनैव विशुध्यन्ति सर्वाण्युपविषाणि तु ॥ ४५७ ॥

अथ रत्नानि ।

वैडूर्य्यमिन्द्रनीलञ्च गोमेदो मौक्तिकं तथा ।
माणिक्यं पुष्परागश्च रत्नं गारुत्मतं तथा ॥ ४५८ ॥
विद्रुमश्चेतिरत्नानां नवोक्ता जातयः पृथक् ॥ ४५९ ॥

अथ शोधनविधिः ।

जयन्ती स्वरसेनैव यामैकं प्रपचेद्भिषक् ।
दोलायन्त्रेण शुध्यन्ति रत्नानि हीरकं विना ॥ ४६० ॥

अफीम और धतूरा ये सात उपविष हैं इनके शोधन करनेकी यह विधि है कि किसी उपविषको पहले लिखी विधिसे दोला यन्त्रसे दूधमें पकावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ ४५६ ॥

हीरा, वैडूर्य्य (लहशनियां) नीलम, गोमेदक, मोती, माणिक, पुखराज, पन्ना और मूंगा ये नवरत्नों कीजाति हैं ॥ ४५७—४५८ ॥

इन रत्नोंके शोधनेकी यह विधि है कि हीराको छोड़ और सब रत्नोंको अरणीके अर्क में दोला यन्त्रकी रीतिसे एक पहर पकावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ ४५९ ॥

हीराको शुद्ध करनेकी यह विधि है कि हीरेको कटेलीके कन्दमें रखकर कुलथी और कोदोंके काढ़े में तीन दिन तक पकावे ॥ ४६० ॥

अथ हीरकशोधनम् ।

व्याघ्रीकन्दस्थितं वज्रं त्रिदिनं संपचेद्भिषक् ।
कुलत्थकोद्रवजले ततः शुध्यति नान्यथा ॥ ४६१ ॥

अथ हीरकस्य मारणविधिः ।

हिङ्गुसिन्धूत्थसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थके भिषक् ।
तप्तं तप्तं क्षिपेद्वज्रं एकविंशतिधा ततः ॥ ४६२ ॥
भस्मतां हीरवैक्रान्ते व्रजतो नात्र संशयः ।
अन्यान्यपि हि रत्नानि व्रजन्त्येवं हि भस्मताम् ॥४६३॥

अथोपरत्नानि ।

उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैव च ।
मुक्ताशुक्तिस्तथा शङ्ख इत्यादीनि बहून्यपि ॥४६४॥

अथ रसाः ।

तुल्यांशं मर्दयेत् खल्ले पिप्पलीहिङ्गुलं विषम् ।
द्विगुञ्जं मधुना देयं वातज्वरनिवृत्तये ॥ ४६५ ॥

इति हिङ्गुलेश्वरो रसः ।

कुल्थीके काढ़ेमें हींग और सैन्धानमक मिलाकर इक्कीस-वार बुझानेसे हीरा और वैक्रान्तमणि भस्म होजाते हैं और भी सब रत्न इसी प्रकार भस्म होजाते हैं ॥ ४६१—४६२ ॥

कांच, कपूरमणि, मुक्ताशुक्ति, (मोतीकीसीप) और शंख आदि अनेक उपरत्न कहाते हैं ॥ ४६३—४६४॥

सिंगियाबिष, पीपल और ईंगुर इन सबको समान लेकर खरलमें पीसे फिर रोगीको शहतके संग दोरत्ती भरदेय इससे

रसहिङ्गुलगन्धञ्च जैपालं मर्दितं त्रिभिः (१) ।
दन्तीक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः परः ॥ ४६६ ॥
आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्याममात्रतः ॥ ४६७ ॥
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः ।
शीतभञ्जीरसो नाम्ना सर्वज्वरकुलान्तकः ॥ ४६८ ॥

इति शीतभञ्जीरसः ।

जैपालगन्धं विषपारदन्तु
तुल्यं कुमारीस्वरसेन मर्द्यम् ।
अस्य द्विगुञ्जा हि सितोदकेन
ख्यातो रसोऽयं तरुणज्वरारिः ॥ ४६९ ॥

वातज्वरका नाश होता है इसका नाम हिंगुलेश्वर रस है ॥ ॥ ४६५ ॥

पारा, हिंगुर, गन्धक, ये समान २ और जमाल गोटेकी गिरी इन तीनोंके समान इन सबको खरलमें डालकर जमाल गोटेकी जड़के काढ़े में घोटे; फिर समय होने पर दोरत्ती रोगी को देय इससे महाघोर नवीनज्वर एकपहरके भीतर ही जाता रहता है। इसके ऊपर ठण्डापानी पिये, ऊखचूसे, मूंगकीदाल का पानीपिये इससे सब ज्वरोंका नाश होता है इसका नाम सूतभञ्जी रस है ॥ ४६६—४६८ ॥

जमालगोटा, विष, पारा इन सबको समान लेकर घीकु-

(१) सम्मर्मित प्रथः ।

दातव्य एषोऽहनि पञ्चमेवा
षष्ठेऽथवा सप्तम एवचापि ।
जाते विरेके विगतः ज्वरः स्यात्
पटोलमुद्गान्ननिषेवनेन ॥ ४७० ॥

इति तरुणा[illegible]रीरसः ।

शुद्धसूतं तथा (१) गन्धं लोहं ताम्रञ्च शीसकम् ।
मरिचं पिप्पली विश्वं समभा[illegible]ानि कारयेत् ॥४७१॥
अर्द्धभागं विषं दत्वा मर्दयेद् वासरद्वयम् ।
शृङ्गवेराम्बुपानेन दद्याद् गुञ्जाद्वयं भिषक् ॥४७२॥
नवज्वरे महाघोरे धातुस्थे ग्रहणीगदे ।
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ४७३ ॥

इति नवज्वरेभसिंहोरसः ।

आदके रसमें घोटे फिर रोगीको दोरत्ती प्रर्वत के संग खिलावे। यह रस ज्वर आनेसे पांचवें, छटवें, या सातवें दिन दिया जाता है। जब इसके खानेसे दस्त आजाय और ज्वरशान्त हो जाय तब रोगीको खानेके लिये परवर या मूंगके रसके संग भातदेय इसका नाम तरुणज्वरारि रस है ॥ ४६८—४७० ॥

पारा, गन्धक, लोहा, तांबा, सीसा ये सब शुद्ध एक २ भाग मिर्च, पीपल और सोंठ ये भी एक २ भाग विष आधा-भाग इन सबको खरल में डालकर दो दिनतक घोटे फिर घोर नवज्वर में, धातुगतज्वरमें और संग्रहणी में वैद्य दोरत्ती रोगी

(१) शुद्धम् ।

विषटङ्कबलिम्लेच्छदन्तीबीजं क्रमाद्वहु (१)।
दन्त्यम्बुमर्दितं यामं रसस्त्रिपुरभैरवः ॥ ४७४ ॥
वल्लं व्योषेन चार्द्रस्य रसेन सितयाऽथवा।
दत्तो नवज्वरं हन्ति मान्द्यामानिलशोथहा ॥ ४७५ ॥
हन्ति शूलं सविष्टम्भमर्शांसि कृमिजान् गदान्।
पथ्यं तक्रेण भोक्तव्यं रसेऽस्मिन् रोगहारिणि ॥४७६॥

इति त्रिपुरभैरवोरसः।

भवेत्समं सूतसमुद्रफेण
हिङ्गुलगन्धं परिमर्द्य यत्नात्।
नवज्वरे वल्लमितं त्रिघस्रम्
आर्द्राम्बुनायं ज्वरधूमकेतुः ॥ ४७७ ॥

इति ज्वरधूमकेतूरसः।

को देय इससे कोई ज्वरदोष नहीं रहता इसका नाम नवज्वरेभ सिंह रस है ॥ ४७१—४७३ ॥

विष एकभाग, सुहागा २ भाग, ईंगुर ३ भाग, जमालगोटा चारभाग इन सबको एकपहर तक जमालगोटेकी जड़के काढ़ेमें घोटे फिर रोगीको त्रिकुटा, अदरकका रस या चीनीके संग दोरत्ती देय इससे नवीनज्वर, मन्दाग्नि, वायुसे उत्पन्न हुआ सोथ, शूल, विष्टम्भ, अर्श और क्रिमिरोगका नाश होजाता है इसमें मट्ठे के संग भोजन करना चाहिये इसका नाम त्रिपुरभैरव रस है ॥ ४७४—४७६ ॥

पारा, समुद्रफेन, ईंगुर और गन्धक इनको समान लेकर

(१) क्रमवृद्धम्।

विषस्यैकं तथा भागं मरिचं पिप्पलीकणा (१) ।
गन्धकस्य तथा भागं भागं स्यात् टङ्कणस्य वै ॥
सर्वत्र समभागं स्यात् द्विभागं हिङ्गुलं ‍ ‍ चेत् ॥४७८॥
जम्बीरस्य रसेनात्र भाव्यं हिङ्गुलशो‍ ‍ म् (२) ।
रसश्चेत् समभागं स्यात् हिङ्गुलं नेष्य ‍ ‍ दा(३)॥४७९॥
गोमूत्रशोधितञ्चात्र विषं सौरविशो‍ ‍ ‍ ् ।
चूर्णयेत् खल्लमध्ये तु मुद्गमात्रां वटीं ‍ ‍ ् ॥४८०॥
मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरनिवृत्तये ।
दध्युदकानुपानेन वातज्वरनिवर्हणः ॥ ‍ १ ॥
आर्द्रकस्य रसे पानं दारुणे सन्निपातके
जम्बीररसयोगेन अजीर्णज्वरनाशनः ॥

घोटे फिर नवीनज्वर में अदरकके रसमें घो‍ कर रोगीको दो रत्ती देय इसका नाम ज्वरधूमकेतु रस है ॥ ४७७ ॥

एकभाग ‍ ष, १ भागमिर्च, २ भाग‍ पल, १ भागगन्धक, १ भागसुहागा, २ भाग ईंगुर, इसमें जो ईंगुर पड़ता है पहले उसे जम्बीरीके रसमें भिगोकर शुद्ध करले यदि वैद्यकी इच्छा इस रसमें पारा डालनेकी हो तो एकभाग पारा डाले परन्तु पारा डालने पर सिंगरफ न डाले। इस रसमें जो विष पड़ता है उसे गायके मूत्रमें या सौरनामक फलके रसमें शुद्ध करले फिर खरलमें डालकर घोटे और मूंगके समान गोली बनावे । इस

(१) द्विवारकथनात् पिप्पल्याः द्वौ भागौ ग्राह्यौ ।
(२) जम्बीरद्रवभावना शुद्धहिङ्गुलमित्यर्थः ।
(३) यदि रसं क्षिपेत्तदैकभागमितमेव तदा हिङ्गुलं न क्षिपेदिति भावः ।

अजाजीगुड़संयुक्तो (१) विषमज्वरनाशनः ॥ ४८२ ॥
जीर्णज्वरे महाघोरे पुरुषे यौवनान्विते ।
पूर्णमात्राप्रदातव्या पूर्णं वटिचतुष्टयम् ॥ ४८३ ॥
अतिक्षीणेऽतिवृद्धे च शिशौ चाल्पवयस्यपि ।
तूर्य्यमात्रा प्रदातव्या व्यवस्थासारनिश्चिता ॥ ४८४ ॥
नवज्वरे प्रदानेन यामैकान्नाशयेज्ज्वरम् ।
अक्षीणे च कफाभावे दाहे च वातपैत्तिके ॥ ४८५ ॥
सिता दद्यात् प्रयत्नेन नारिकेलाम्बु निर्भयम् ।
अयं मृत्युञ्जयो नाम रसः सर्वज्वरापहः ॥ ४८६ ॥

गोलीको सब ज्वरोंमें सहतके संग रोगीको देय, इसमें खानेको दही और ठण्डापानी पथ्य है। इसे वातज्वरमें दही या पानीके संग, घोर सन्निपातमें अदरकके रसके संग, अजीर्णज्वरमें जम्भीरी-नीबूके रसके संग, बिषमज्वरोंमें अजवायन और गुडके संगदेय। यदि रोगी जवान हो और ज्वर पुराना होगया हो, तो पूरी मात्रा देय ; इसकी पूरीमात्रा चारगोलीको होती है। यदि रोगी बहुत दुबला, बूढ़ा, बालक या थोड़ी अवस्थाका हो, तो एक गोली देय। नवीनज्वरमें देनेसे यह एक ही पहरमें ज्वरको दूरकर देता है ; यदि रोगी दुर्बल न हो, कफ अधिक न बढ़ा हो, रोगी के हृदयमें जलन हो, ज्वर वात और पित्तसे उत्पन्न हुआ हो, तो वैद्य निर्भय होकर इस रसके ऊपर नरियलका पानी और चीनी पिलावे, इसका नाम मृत्युञ्जय रस है। यह एकला ही

(१) रसः।

अनुपानप्रभेदेन निहन्ति सकलान् गदान् ॥ ४८७ ॥

इति मृत्युञ्जयोरसः ।

गन्धकं पारदं तुल्यं मरिचञ्च त्रिभिः समम् ।
वीजं नैकुम्भकं मर्द्यं दन्तीक्काथेन यामकम् ॥
द्विवल्लं शूलविष्टम्भानिलमामज्वरं जयेत् ॥ ४८८ ॥

इति श्रीरामरसः ॥

क्रमेण वृद्धान् रसगन्धहिङ्गुलान्
नैकुम्भवीजान्यथ दन्ति वारिणा ।
पिष्ट्वास्य गुञ्जा हि नवज्वरापहा
जलेन चाद्रा सितया प्रयोजिता ॥ ४८९ ॥

इति नवज्वराङ्कुशो रसः ।

अनेक अनुपानोंके संग देनेसे सब रोगोंका नाश करता है। ४७८—४८७ ॥

गन्धक और पारा एक २ भाग, जमालगोटा १ भाग; मिर्च ३ भाग, इन सबको खरलमें डालकर जमालगोटे की जड़के काढ़ेमें घोटे; फिर शूल, विष्टम्भ और बातसे उत्पन्न हुए आमज्वरमें चार रत्ती देय; इससे वमन होता है और उन रोगोंका नाश होजाता है इसका नाम श्रीराम रस है ॥ ४८८ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, ईंगुर ४ भाग, और शुद्ध जमालगोटेकी गिरी आठभाग इन सबको जमालगोटेके काढ़ेमें घोटे फिर नवीनज्वरमें रोगीको शक्करके संग एकरत्ती देय तो नवीनज्वरका नाश होजाता है इसका नाम नवीनज्वराङ्कुश रस है ॥ ४८९ ॥

अमृतं पारदं गन्धं मर्दयेत् प्रहरद्वयम्।
सिन्धुवाररसैः पश्चाद्भावयेदेकविंशतिम्॥ ४९० ॥
तिलप्रमाणं दातव्यं नवज्वरविनाशनम्।
उद्वेगे मस्तके तैलं तक्रञ्चापि प्रदापयेत्॥ ४९१ ॥
अनुपानमार्द्रकरसः।
इति प्रचण्डरसः।

भागं गन्धमथो रसस्य च तथा कृत्वा द्वयोः कज्जलीं
तिक्ताचूर्णमथात्तमेव सकलं रौद्रे त्रिधा भावयेत्।
पश्चात्तत् सुषवीरसेन (१) नतुवा क्वाथेऽमले त्रैफले
संशोष्या गुड़िका कलायसदृशी कार्य्या बुधैर्यत्नतः॥३९२
ज्ञात्वा दोषवलं रसेन सुषवीपत्रस्य पर्णस्य वा।
एकद्वित्रिचतुःक्रमेण वटिकां दद्यात्कदुष्णाम्बुना॥४९३

सिंगिया, पारा और गन्धक इनको समान २ भाग लेकर दो पहर सूखा घोटे, फिर सिनुवारके रसमें इक्कीस भावनादेय। फिर नवीनज्वरमें अदरकके रसके संग तिलके समान मात्रा रोगीको देय, यदि इससे शिरघूमने लगे तो शिरपर तेल या मठ्ठा मले इसका नाम प्रचण्डरस है॥ ४९०—४९१ ॥

गन्धक और पारा एक २ भाग इन दोनोंको पीसकर कज्जली करे, फिर एक भाग कुटकीका चूर्ण डाले, फिर ३ वार वनकरेलाया निर्मल त्रिफलेके रसमें भिगोकर घाममें सुखावे, जब सूखजाय तब उड़दके समान गोली बनाले; फिर वात, पित्त

(१) सुषवी कारवेल्लकम्।

हन्ति शूलनिचयं नवज्वरं
पाण्डुतामरुचिशोथसञ्चयम् ।
रेचने च दधिभक्तभोजनं
वैद्यनाथसुकुमाररेचनम् ॥ ४६४ ॥

भाव्यद्रव्यसमं(१)क्वाथ्यं क्वाथश्चाष्टावशेषितः ॥ ४६५ ॥

इति वैद्यनाथवटी ।

मरिचोग्राकुष्ठमुस्तैः सर्वैरेव समं विषम् ।
पिष्ट्वा चार्द्ररसेनैव वटिका रक्तिकामिता ॥ ४६६ ॥
आमज्वरे प्रथमतः शुण्ठ्या च मधुपिष्टया ।
आर्द्रकस्य रसेनापि निर्गुण्ड्याश्च कफज्वरे ॥ ४६७ ॥

कफ और सन्निपातज्वरमें क्रमसे एक, दो ; तीन और चार गोली देय. इससे शूल, नवीनज्वर, पांडुरोग और शोथका नाश होता है और कोमल विरेचन भी होजाता है इसका नाम वैद्यनाथवटी है इसमें रोगीको दही भात खिलाना चाहिये ॥ ४६२—४६४ ॥

भावना देनेकी यह विधि है कि जिन औषधियोंके काढ़ेमें भावना देनी हो, उन औषधियोंको भाव्य अर्थात् जिसको भावना देनी है उसके समान लेकर पानीमें(२)भिगोकर पकावे जब जलते जलते आठवां भाग शेष रहै तब उतार कर ठण्डा करके उसमें औषधीकी भावना दे ॥ ४६५ ॥

मिर्च, बच, कूट, मोंथा ये सब समान और इन सबके समान बिष डालकर अदरकके रसमें पीसकर एक २ रत्तीकी गोली

(१) भावितुं योग्यस्य चूर्णादेः । (२) आठगुने

पीनसे च प्रतिश्याये आर्द्रकस्य च वारिणा।
अग्निमान्द्ये लवङ्गेन शोथे सदशमूलकः॥ ४९८॥
ग्रहण्यां सहशुण्ठ्या च दशमूल्यतिसारके।
सामे च धान्यशुण्ठीभ्यां पक्के च कुटजं मधु॥ ४९९॥
सन्निपातज्वरारम्भे पिप्पल्यार्द्रकवारिणा।
कण्टकार्य्यारसैः कासे श्वासे तैलगुड़ान्वितम्॥५००॥
पीत्वा वटीद्वयं रोगी स्वास्थ्यं समुपगच्छति।
सर्वेषामेव रोगाणामामदोषप्रशान्तये॥ ५०१॥
अग्निवृद्धिकरो नाम्ना विख्यातोऽग्निकुमारकः॥५०२॥

इति अग्निकुमारोरसः।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रहाटकम्।

बनावे फिर इन गोलियोंको ज्वरमें मधु और सोंठके संग, कफ-ज्वरमें अदरक और भिनुवारके रसके संग, पीनस और प्रतिश्याय रोगमें अदरकके रसके संग, मन्दाग्निमें लौंगके संग, अतिसारमें दशमूल काढ़ेके संग, संग्रहणीमें सोंठके संग, आमातिसारमें धनियां और सोंठके संग, पक्वातिसारमें कुरैया और शहतके संग, सन्निपातज्वरके आरम्भमें पीपल और अदरकके रसके संग, खांसीमें कटेलीके रसमें, श्वासमें तेल और गुड़के संग देय, दो गोली खानेसे रोगी अच्छा होजाता है सब बिनापके दोष शान्त हो जाते हैं और अग्नि बहुत बढ़जाती है इसका नाम अग्निकुमार रस है॥ ४९६—५०२॥

शुद्धपारा, गन्धक, तांबा, अभ्रक, और सोनेकी भस्म. ये सब

प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात् सूतार्द्धं मृतलोहकम् ॥५०३॥
लोहार्द्धं मृतवैक्रान्तं मर्द्दयेद् भृङ्गजद्रवैः ।
पर्पटीरसवत्पाच्यं चूर्णितं भावयेत् पृथक् ॥ ५०४ ॥
शिग्रुवासकनिर्गुण्डी वचाग्निभृङ्गमुण्डिकैः ।
द्राक्षामृता जयन्तीभिर्मुनिब्राह्मीसुतिक्तकैः ॥ ५०५ ॥
कन्यायाश्च द्रवैर्भाव्यं प्रतिवारं त्रिधा त्रिधा ।
रुध्वा लघुपुटे पाच्या बालुकायन्त्रमध्यगा ॥ ५०६ ॥
यन्त्रं निरुद्य यत्नेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
चूर्णं नवज्वरे देयं माषमात्रं रसस्य वै ॥ ५०७ ॥
कृष्णाधान्यसमायुक्तं मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्वरम् ।
अयं रत्नगिरिर्नाम रसोयोगस्य वाहकः ॥ ५०८ ॥

इति रत्नगिरीरसः ।

औषधि पारेके समान, और लोहेकी भस्म पारेसे आधी, लोहेसे आधी वैक्रान्तमणिकी भस्म, इन सबको भांगरेके रसमें घोटे, फिर पर्पटी रसके समान पकाकर पीसले इस चूर्णको सहँजना, वासा, सिनुवार, बच, चीता, भांगरा, मुंडी, दाख, गुरिच, अरणी, दौना, ब्राह्मी, चिरायता और घीकुआरके रसमें तीन तीन भावना देय, फिर शीशीमें बंदकरके बालुका यन्त्रमें रख कर थोड़ी आंच देय शीशीका मुंह यत्नसे बंद करे; जब आपसे आप ठण्डा होजाय तब उतारले। इस चूर्णको एकमासा लेकर धनियां और पीपलके संग देय इससे क्षणभरमें ज्वर उतर जाता

विषहिङ्गुलजैपालटङ्कणं क्रमवर्द्धितम् ।
रसः प्रतापमार्त्तण्डः सद्योज्वरविनाशनः ॥ ५०९ ॥
इति प्रतापमार्त्तण्डोरसः ।

रसं गन्धं विषं ताम्रं मर्दयेदेकयामकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव मर्दयेत् सप्तवारकम् ॥ ५१० ॥
निर्गुण्ड्याः स्वरसे पश्चान्मर्दयेत् सप्तवारकम् ।
गुञ्जैकार्द्ररसेनैव दत्ता हन्ति ज्वरं क्षणात् ॥ ५११ ॥
वातपित्तश्लेष्मजातं द्विदोषजमपि क्षणात् ।
सुशीतलजले स्नानं तृषार्त्ते क्षीरभोजनम् ॥ ५१२ ॥
आम्रञ्च पनसञ्चैव चन्दनागुरुलेपनम् ।
एतत् समोरसो नास्ति वैद्यानां हृदयङ्गमः ॥ ५१३ ॥

है और यह रस योगवाही भी है इसका नाम रत्नगिरि रस है ॥ ५०३—५०८ ॥

विष, ईंगुर, जमालगोटा और सुहागा इन सबको समान लेकर पीसे इस रसका नाम प्रताप मार्तण्डरस है इससे नवीनज्वर शीघ्र ही दूर होजाता है ॥ ५०९ ॥

पारा, गन्धक, विष और तांवा इनको एक पहर तक सूखा घोटे, फिर सातदिन अदरकके रसमें और सातदिन सिनुवारके रसमें घोटे, इसको अदरकके रसके संग देनेसे; वातज्वर, पित्त-ज्वर, कफज्वर और द्विदोषज्वर शीघ्र दूर होजाते हैं। रोगीको ठण्डे जलमें स्नान करावे और प्यास लगे तब दूध पिलावे; खाने को भी दूधहीके संग भोजन दे, आम, कटहर, घी, खिलावे

एष चण्डेश्वरो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ५१४ ॥

इति चण्डेश्वरोरसः ।

सूतोगन्धष्टङ्कणं सोषणः स्यात्
एतैस्तुल्या शर्करामत्स्यपित्तैः ।
भूयो भूयो भावयेच्च त्रिरात्रं
वल्लो देयः शृङ्गवेरस्य वारा ॥
सम्यक्तापे वारिभक्तं सतक्रं
वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रदिष्टम् ।
घ्नन्त्याशो(१)ग्रं हन्ति सामं प्रभावात्
पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि वारिप्रयोगः (२) ॥५१५॥

इति उदकमञ्जरीरसः ।

शरीरमें चन्दन और अगर लगावे इसके समान प्यारारस वैद्योंको दूसरा नहीं है; इस रसका नाम चन्द्रेश्वररस है इससे सब ज्वरों का नाश होजाता है ॥ ५१०—५१४ ॥

पारा, गन्धक, सुहागा, और मिर्च ये सब समान इन सबके समान शक्कर इन सब औषधियोंको ३ दिनतक बार २ मछली के पित्तमें भिगोवे फिर अदरकके रसके संग दोरत्ती रोगीको देय। यदि प्यास लगे तो ठण्डापानी पिलावे ; खानेको मट्ठा भात और बैंगन दे, यह रस घोर ज्वरोंको आम सहित शीघ्र ही दूर कर देता है। यदि पित्त अधिक हो तो रोगीके शिरपर पानी डाले इसका नाम उदकमञ्जरी रस है ॥ ५१५ ॥

---

(१) घ्नन्त्याशु शीघ्रम् । (२) सेचनम् ।

पारदं गन्धकं तालं भल्लातञ्च तथैव च।
वज्रीक्षीरसमायुक्तमेकत्र च विमर्दयेत्॥ ५१६॥
मृत्तिकाभाजने स्थाप्यं मुद्रितव्यं विचक्षणैः।
अग्निं प्रज्वालयेत्तत्र प्रहरद्वयसंख्यया॥ ५१७॥
शीतलं खल्लये(१)त्तत्र भावना च प्रदीयते।
भृङ्गराजरसैरत्र गण्डदूर्वाभवैः रसैः॥ ५१८॥
चित्रकस्य रसेनापि भावना दीयते पुनः।
पश्चात्तच्चूर्णयेद्यत्नात् कूपिकायाञ्च धारयेत्॥ ५१९॥
ज्वर उत्पद्यते यस्य चतुर्थे चापरे पुनः।
माषैकश्च रसो देयस्तत्क्षणान्नाशयेज्ज्वरम्॥ ५२०॥
ज्वरे शान्ते परं पथ्यं देयं मुद्गौदनं पयः॥ ५२१॥

इति ज्वरसिंहोरसः।

पारा, गन्धक, हरताल, और भिलावा इन सबको समान समान लेकर थूहरके दूधमें घोट; फिर मिट्टीके बर्तनमें रखकर उसका मुंह बन्दकर दे। उसे चूल्हे पर चढ़ाकर उसके नीचे दो पहर आंच जलावे फिर ठण्डा होने पर उतारले। और खरलमें डालकर घोटे; फिर भांगरा, खरिका दूब और चीतेके रसमें भिगोदे। फिर चूर्ण करके शीशीमें भरके रखदे। जिसको चातुर्थकज्वर आता होय उसे एकमासा रस देय तो उसी समय ज्वरशान्त होजाता है, खानेको मूंगकी दाल भात और दूध देय॥ ५१६—५२१॥

(१) शीतलमुत्ताय्य खल्लयेत् चूर्णयेत्।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं प्रत्येकं माषकद्वयम् ।
भृङ्गकेशाख्यनिर्गुण्डीमण्डूकीपत्रसुन्दरः ॥ ५२२ ॥
श्वेतापराजितामूलं शालिञ्च काणमारिषम् ।
सूर्य्यावर्त्तः सितश्चैषां चतुर्माषकसम्मितैः ॥ ५२३ ॥
प्रत्येकं स्वरसैः खल्लशिलायामवधानतः ।
स्वर्णराज्जिकमाषञ्च दत्वा मरिचमाषकम् ॥ ५२४ ॥
नेपालताम्रदण्डेन घृष्ट्वा तत्कज्जलद्युति ।
वटीमुद्गोपमा कार्य्या छायाशुष्का तु रक्षिता ॥५२५॥
प्रथमे वटिकास्तिस्रः कृत्वा नवशरावके ।
ततः खसर्पणं सूर्य्यं पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ ५२६ ॥
वारिणा घोलयित्वा तु पातुं देया च रोगिणे ।
स्वेदोपवासरचिते क्लान्ते चात्यबले तथा ॥ ५२७ ॥
द्वितीयेऽह्नि वटीयुग्मं वटीमेकां तृतीयके ॥

पारा, गन्धक, ये दो २ मासे लागरा, सिनुवार, ब्राह्मीके पत्तोंका रस, सफेद कव्वाटोंटीकी जड़, धान, काणमारिष, सूरजमुखी और मूली इनका रस चार २ मासे लेकर पत्थरकी सिलापर रक्खे ; उसमें एकमासा सोनामक्खी और एकमासा, कालीमिर्च, मिलाकर नैपाली तांबेके डंडेसे रगड़े; फिर मूंगके समान गोली बनाकर उन्हें छांहमें सुखाले, फिर रोगीको देनेके समय तीन गोली नये सकोरेमें पानीमें घोलकर रोगीको पिलावे ; यदि रोगी पसीने और लंघन तथा थकाईसे अतिदुबला होगया हो तो भी यही मात्रा दे। गोली देते समय आकाशचारी

यावन्तो वटिका देयास्तावज्जलशरावकम् ॥ ५२८ ॥
क्षुधायाञ्च रसं दद्याज्जाङ्गलानां जलं तृषि।
तुलापदधिसंयुक्तं (१) भक्तं भोज्यं यथेप्सितम् ॥५२९॥
लावपक्षिरसो देयः संस्कृतः सैन्धवादिभिः।
पथ्यमग्निबलं वीक्ष्य वारिभक्तं रसं तथा ॥
शिरःशूलनशूलादौ तैलं नारायणादि च ॥ ५३० ॥

इत्यचिन्त्यशक्तीरसः।

अथ सन्निपातिकज्वरादौ।

गन्धेशौ लशुनाम्भोभिः मर्दयेद्याममात्रकम्।
तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत् प्रतिरोधयेत् ॥ ५३१ ॥

सूर्य्यको प्रणाम करे। दूसरे दिन दोगोलीदे और तीसरे दिन एक गोलीदे, जिस दिन जैगोली देनी होय, उस दिन गोलियोंके ऊपर उतने सकोरा जल पिलावे, भूख लगे तो जांगल अर्थात् जंङ्गलमें उत्पन्न हुवे हरिन आदिके मासका रस और प्यास लगे तो जल पिलावे, खानेको भैंसके दहीके संग भात, या जो इच्छा होय वही देय। अथवा लवेके मांसका रस, सैंधा आदि मिलाकर भातके संग देय, अथवा अग्नि और बलको देखकर वैद्य पथ्यकी कल्पना करले। अर्थात् जैसा उचित हो वैसा ही जल और भोजनदे यदि शिरकांपने लगे या पीड़ा होय तो नारायण तैल लगावे इसका नाम अचिन्त्य शक्तीरस है ॥ ५२२—५३० ॥

आगे सन्निपातज्वरोंके लिये रसोंका वर्णन करते हैं।

गन्धक और पारा इन दोनोंको समान लेकर एक पहर

(१) माहिषादधियुक्तम्।

मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्राप्रलापकम् ॥ ५३२ ॥

इति महागन्धसूर्य्योरसः ।

शुद्धसूतं मृतं नागं मृतं ताम्रं मनःशिला ।
तुत्थकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ५३३ ॥
मेषोत्तरवारिण्याश्चणमात्रा वटीकृता ।
सन्निपातं निहन्त्याशु नस्यमात्रेण दारुणम् ॥
एषा कुलवधूर्नाम जलैर्घृष्टा प्रदापयेत् ॥ ५३४ ॥

इति कुलवधूवटी ।

सौभाग्यामृतजीरपञ्चलवणव्योषाभयाचामला ।
निश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत् ॥
निर्गुण्डीयुगभृङ्गराजकटुषापामार्गपत्रोद्भव ।
प्रत्येकस्वरसेन सिद्धवटिका हन्ति त्रिदो... ...यम् ॥ ५३५

तक लहशुनके अर्कमें घोटे, फिर रोगीको लहशुनके अर्कमें घोलकर सुंघावे; परन्तु सुंघाते समय मिर्च मिलालेवे इससे रोगीकी निद्रा अभुआई और प्रलाप दूर होजाते हैं इसका नाम महागन्धक सूर्य्य रस है ॥ ५३१—५३२ ॥

शुद्धपारा, जस्तेकोभस्म, तांबेकीभस्म, मैंनशिल और तूतिया इन सबको समान लेकर एकदिन उन्हें उत्तरवारुणीके रसमें घोटे; फिर चनेके समान गोली बनावे फिर सन्निपातके रोगीको इसे जलमें घिसकर सुंघावे; तो घोर सन्निपात भी शीघ्रही दूर होजाता है इसका नाम कुलवधू वटी है ॥ ५३३—५३४ ॥

सुहागा, विष, जीरा ...

येषां शीतमतीवदाहमखिलं स्वेदद्रवार्द्रीकृतम्।
निद्रा घोरतरा समस्तकरणव्यामोहमूढं मनः॥
शूलं श्वासबलासकाससहितं मूर्च्छारुचितड्ज्वरम्।
तेषां वै परिहृत्य जीवितमसौ गृह्णाति मृत्योर्मुखात्५२६

इति सौभाग्यवटी।

रसं गन्धं विषञ्चैव मरिचञ्च समांशिकम्।
मर्दयेच्छिलया तावद् यावज्जायेत कज्जलम्॥५२७॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन हरेद् द्वादशसंज्ञकम्।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम्॥५२८॥

नमक, विडनमक, समुद्रनमक। सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेरा, आंवला, चन्द्रकरहित अर्थात् फुका हुआ अभ्रक, शुद्धगन्धक, और सुधा हुआ पारा इन सबको इकट्ठा करके दोनों निर्गुण्ठो, भांगरा, लटजीरा और वासेके पत्तोंके अर्कमें भावना देय, परन्तु सब रसोंकी भावना अलग२ देय, फिर गोली बनाले, फिर जिस रोगीको बहुत शीत हो, बहुत दाह हो, पसीनेसे सब शरीर भीगता हो, शूल हो, खांसी आती हो; कोई भी इन्द्री चैतन्य न हो, मूर्च्छा हो, अरुचि हो, श्वास आता हो, प्यास हो, और ज्वर अधिक हो, उसे यह मृत्युके मुखसे निकाल कर सुखो करती है इसका नाम सौभाग्यवटी है॥ ५२५···५२६॥

पारा, गन्धक, विष और मिर्च इन सबको समान लेकर कज्जली करे, फिर यह रस रोगीको दो रत्ती देय; इससे,

स्नानेषु निम्नदेहेषु मोहग्रहस्तेषु देहिषु।
दातुमर्हति वेतालो यमदूतनिवारकः॥ ५३९॥
इति वेतालोरसः।

रसं गन्धं विषञ्चैव धुस्तूरं मरिचं तथा।
शोधितञ्च तथा तालं माक्षिकञ्च समांशिकम् ॥५४०॥
दन्तीक्वाथेन संभाव्य गुञ्जामात्रा तु चक्रिका।
साध्यासाध्यान्निहन्त्याशु सन्निपातांस्त्रयोदश॥ ५४१ ॥
रसगन्धकामृत-धुस्तूरबीज-मरिचहरितालस्वर्णमाक्षिकं समभागं गृहीत्वा दन्तीक्वाथेन दिनत्रयम्। विभाव्य गुञ्जाप्रमाणा चक्रिका कार्य्या इति॥ ५४२ ॥
अनुपानमार्द्रकरसः। इति चक्ररसः।

हैं। जो मनुष्य बहुत मलीन हों, दुर्बल हों, और जिन्हें मूर्च्छा आती हो, उसे यह रस देना चाहिये इसका नाम वेताल रस है॥ ५३७—५३९॥

पारा, गन्धक, विष, धतूरेके बीज मर्च, शुद्धहरताल और सोना-माखी, ये सब शुद्ध एक एक भाग लेकर जमालगोटेकी जड़के काढ़े में घोटे फिर एक रत्तीकी गोली बनाले ; इससे साध्य वा असाध्य तेरहों प्रकारके सन्निपात दूर होजाते हैं इसके बनानेकी यह विधि है कि शुद्ध पारा, गन्धक, विष, धतूरेकेबीज, हर-ताल, सोनामाखी और मिर्च इन सबको समान लेकर तीनदिन जमालगोटेकी जड़के काढ़े में घोटकर भावना देकर गोली एक रत्ती प्रमाण बना ले॥५४०—५४२॥

विष, मिर्च, हरताल, पारा, गन्धक, जमालगोटेकी बीज

शम्भोः कण्ठविभूषणं(१)समरिचं तालं तथा पारदम्।
देवीवीजयुतं(२)सुशोधितमितं जैपालवीजोत्तमम्॥
दन्तीमूलयुतं समागधिफलं सर्वं समांशं नयेत्।
तत्सर्वं परिमर्द्य चार्द्रकरसैर्गुञ्जाप्रमाणं रसम्॥५४३॥
दद्याद्घोरतरे त्रयोदशविधे दोषे च चक्राह्वयम्।
तन्द्रादाहसमन्विते च तृषया सम्पीड़िते मानवे॥५४४॥

इति चक्रीरसः।

रसाभ्रगन्धकं तालं लिङ्गुलं मरिचं तथा।
टङ्कणं सैन्धवोपेतं सर्वांशममृतं (३) तथा॥ ५४५॥
सर्वपादसमोपेतं महिषीपित्तमर्दितम्।
ब्रह्मरन्ध्रे प्रयोक्तव्यं सन्न्यासज्ञानसङ्गमे॥ ५४६॥

और जमालगोटेकी जड़ और पीपल इन सबको समान लेकर अदरकके रसमें घोटके एक रत्ती प्रमाण गोली बनावे, इसको तेरहों प्रकारके घोर सन्निपातज्वर, दाह,(जुंभुआई और प्यासके सहित दूर होजाता है इसका नाम चक्री रस है॥५४३॥५४४॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, हरताल, ईङ्गुर, मिर्च, सुहागा और सेंधानमक ये सबसमान२ और इन सबके समान विष या सबसे चौथाई इन सबको भैंसके पित्तेमें रगड़े फिर रोगीको सुंघावे तो संन्यासकी मूर्च्छा भी दूर होजाती है रोगीको

(१) हालाहलम्। (२) गन्धकम्।
(३) सर्वतुल्यम्।

सहस्रकलसैः स्नानं लेपनं चन्दनादिभिः ।
इक्षुमुद्गरसं भोज्यं तक्रभक्तं यथेप्सितम् ॥ ५४७ ॥
इति ब्रह्मरन्ध्रोरसः ।

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्गणं मृतशुल्वकम् ।
धुस्तूरस्य च वीजानि हिङ्गुलं नवमं स्मृतम् ॥ ५४८ ॥
एतानि समभागानि दिनैकं विजयारसैः ।
मर्दयेच्चणकाभा तु वटिकाऽऽनन्दभैरवी ॥ ५४९ ॥
भक्षयित्वा पिबेच्चामुरविमूलकषायकम् ।
सव्योषं हन्तिनो चिवं सन्निपातं सुदारुणम् ॥५५०॥
इत्यानन्दभैरवीवटी ।

शुद्धसूतं द्विधागन्धं शिला च विषहिङ्गुलम् ।

सहस्र कलसे पानीसे स्नान करावे शरीरमें चन्दन आदि ठंडे लेप लगावे, खानेको मूंगके रसके सङ्ग अथवा मट्ठेके सङ्ग भात देय और ऊख चसनेको देय, इसका नाम ब्रह्मरन्ध्ररस है ॥५४५—५४७॥

विष, सोंठ, मिर्च, पीपल, गंधक, सुहागा, तांबेकोभस्म, धतूरेकेवीज और ईंगुर इन सबको समान लेकर एकदिन भांगके अर्कमें घोटे फिर चनेके समान गोलीबनाले और रोगीको खिलावे, ऊपरसे आकको जड़का काढ़ा पिलावे, इस गोलीके-सङ्ग त्रिकुटा भी देय इससे घोर सन्निपातका नाश होता है ; इसका नाम आनन्दभैरवी वटी है ॥ ५४८—५५० ॥

शुद्धपारा १ भाग शुद्ध गन्धक २भाग, मैंनशिल, विष, ईंगुर,

मृतकान्ताभ्रताम्राय: तालकं माक्षिकं समम् ॥५५१॥
अम्लवेतसजम्बीरचाङ्गेरीणां रसेन च ।
निर्गुण्डीहस्तिशुण्डोश्च द्रवैर्मर्द्यं दिनत्रयम् ॥ ५५२ ॥
रुद्ध्वा तु भूधरे पाच्यो दिनान्ते तं समुद्धरेत् ।
चित्रकस्य कषायेण मर्दयेत् प्रहरद्वयम् ॥ ५५३ ॥
माषमात्रं प्रदातव्यं हिङ्गुव्योषार्द्रकद्रवैः ।
सकर्पूरानुपानं स्यान्मृतस्योत्थापने रसे ॥ ५५४ ॥
पीड़ितं सन्निपातेन गतं वापि यमालयम् ।
तत्क्षणाज्जीवयत्येष पथ्यं क्षीरैः प्रयोजयेत् ॥५५५॥

इति मृतोत्थानो रसः ।

शुद्धसूतं द्विधागन्धं खल्ले तं कज्जलीकृतम् ।
अभ्रलौहकयोर्भस्म ताम्रभस्मसमं समम् ॥ ५५६ ॥

लोहा, अभ्रक, तांबा, कान्ति, हरताल, इनकीभस्म और सोना माखी इन सबको समान लेकर अमलवेत, जम्भीरीनीबू, चुका (नोनियां) के रसमें तीन२ दिन ; सिनुवार और इन्द्रायनके रसमें तीन२ दिन; घोटे और घड़ियामें बन्दकरके भूधरयन्त्रमें पकावे, फिर निकालकर दो पहर चीताके रसमें घोटे, फिर रोगीको एक मासा यह रस, हींग, सौंफ, मिर्च, और पीपलके सङ्ग दे ऊपरसे थोड़ा कपूर खिला दे। इससे घोर सन्निपात दूर होजाता है एकबार मरा हुआ रोगी भी जी उठता है इसमें दूध और भात पथ्य है, इसका नाम मृतोत्थापनरस है ॥ ५५१—५५५ ॥

शुद्ध पारा १ भाग शुद्धगन्धक २ भाग इन दोनोंको खरलमें

विषतालवराटी च शिलाहिङ्गुलचित्रकम् ।
इन्द्रवारुणी चातिविषा त्र्यूषणं हेममाक्षिकम् ॥५५७॥
चूर्णं विमर्दयेद्‌द्रावैरार्द्रकस्य दिनत्रयम् ।
निर्गुण्डीविजयाद्रावैस्त्रिदिनं मर्दयेत् पुनः ॥ ५५८ ॥
काचकुप्यां निवेश्याथ वालुकायन्त्रके पचेत् ।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥ ५५९ ॥
मृतसञ्जीवनो नाम रसोऽयं शङ्करोदितः ।
मृतोऽपि सन्निपातार्त्तो जीवत्येव न संशयः ॥ ५६० ॥
नातःपरतरं किञ्चित् सन्निपातहरो रसः ।
अघोरमन्त्रमुच्चार्य्य पूजां रक्षाञ्च कारयेत् ॥ ५६१ ॥

अघोरमन्त्रो यथा ।

ओं अघोरेभ्यश्च अघोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः इति मन्त्रेण

पीस कज्जलीकरे, फिर अभ्रक, लोहा, और तांबा इनकीभस्म एक२ भाग डाले ; विष, हरताल, कौड़ी,मैनशिल,ईंगुर, चीता, इन्द्रायण (इन्द्रायण) अतीस, मिर्च, पीपल और सोनामाखी-ये सब एक एक भाग इनको तीनदिन अदरकके रसमें घोटे, फिर तीनदिन सिंभुवार और भांगके रसमें घोटकर शीशीमें भर-कर दो पहर तक बालुकायन्त्रमें पकावे, फिर निकालकर अदरकके रसमें घोटे, इससे सन्निपात रोगी मरा हुआ भी एक-बार निःसन्देह जीजाता है । इसके समान सन्निपात नाशक कोई रस नहीं है इसको बनाते समय रक्षाके लिये ऊपर मूलमें

रक्षणं पूजनञ्च। अघोरमन्त्रेण अन्यत्रापि रसे कार्य्यम्
अन्यथा दोषोऽस्ति।

इति मृतसञ्जीवनो रसः।

हिङ्गुलस्य विशुद्धस्य सार्द्धतोलचतुष्टयम् (१)।
गन्धकस्य विषस्यापि प्रत्येकं तोलकद्वयम्॥ ५६२॥
(२) समांषकद्वयञ्चैव कणकात्तोलकत्रयम्।
माषैकाधिकतोलैकं टङ्कणस्य तथैव च॥ ५६३॥
संमर्द्य जम्बीररसैर्वटीश्छायाविशोधिताः।
गुञ्जैकपरिमाणास्तु कारयेत् कुशलो भिषक्॥५६४॥
एकान्तु भक्षयेत्तस्य गोलयित्वार्द्रकद्रवैः।
घोरे त्रिदोषे दातव्यः सन्निपातकभैरवः॥ ५६५॥

इति सन्निपातभैरवो रसः।

रसगन्धकनागञ्च विषं स्थावरजङ्गमम्।

लिखा अघोरमन्त्र पढ़े, इसका नाम शिवजीनीने मृतसञ्जीवन रस रक्खा है॥ ५५६—५६१॥

शुद्ध इंगुर ४॥ तोला, शुद्ध गन्धक और शुद्ध विष दो२ तोला सोना ३ तोला २ मासे सुहागा १ तोला १ मासा इन सबको जम्बीरीनीबूके अर्कमें घोटकर एक२ रत्तीकी गोलीबनावे, और उन्हें छायामें सुखाले फिर रोगीको अदरककेरसके संग घोर सन्निपातमें एकगोली खिलावे इसका नाम सन्निपात भैरवरस रस है॥ ५६२—५६५॥

(१) अर्द्धतोलकयुक्तं तोलकचतुष्टयम्। (२) मासकद्वयाधिकतोलकत्रयम्।

मत्स्यवराहमायूरच्छागपित्तैश्च भावयेत् ॥ ५६६ ॥
सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः ।
सूचिकाग्रेण दातव्यः सन्निपातकुलान्तकः ॥ ५६७ ॥

इति सूचिकाभरणो रसः ।

रसमाषकचत्वारि इष्टकागुण्डके ग्रहम् ।
शोधयित्वा ततः शोध्यं तीक्ष्णपर्णे तथार्द्रके ॥५६८॥
स्वर्णधुस्तूरसत्वे च वृद्धदारद्रवे तथा ।
कन्यकानिजसत्वे च रसशोधनमुत्तमम् ॥ ५६९ ॥
गन्धकं रसतुल्यन्तु प्रक्षाल्य तण्डुलाम्बुना ।
कृत्वा तैलसमं दर्व्यां निर्वाप्य चित्रकद्रवे ॥ ५७० ॥
द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा लोहचूर्णस्य माषकम् ।
सुवर्णमाक्षिकमपि तत्र लोहसमं ददेत् ॥ ५७१ ॥

पारा, गन्धक, सीसा, स्थावर और जङ्गम वि इन सबको मछली, सूअर, मोर और बकरेके पित्तोंमें घोटे, फिर रोगीको सुईके नाके पर रखकर देय, भैरवने इसका नाम सूचिकाभरण रस रक्खा है ॥ ५६६—५६७ ॥

चारमासे पारेको यष्टिकागुण्डमें डालकर शुद्ध करे फिर सहंजना, अदरक, धतूरा और बिधारेके रसमें शोधकर घीकुआरके रसमें शोधे; फिर पारेके समान गन्धक लेकर चांवलोंके पानीमें धोवे, फिर लोहेकी करछीमें उतनाही तेल डालकर गन्धकको डालकर गलाले; जब गल जाय तब चीतेके रसमें बुझाटे; फिर दोनोंकी कज्जली करके

कृत्वा कण्टकवेध्यन्तु ताम्रं कज्जललेपितम्।
मुहूर्त्तं धम्यतस्ताम्रं द्रुतचूर्णत्वमाप्नुयात्॥ ५७२॥
एकीकृत्य तु तत्सर्वं ततः प्रस्तरभाजने (१)।
मर्दयेत्ताम्रदण्डेन दत्वा चैषां निजद्रवम्॥ ५७३॥
प्रथमे केशराजस्य द्वितीये ग्रीष्मसुन्दरः।
तृतीये भृङ्गराजस्य चतुर्थे भेकपर्णिका॥ ५७४॥
पञ्चमे च निसुन्दारः षष्ठे च रसपूर्त्तिका।
सप्तमे पारिभद्रस्य अष्टमे रक्तचित्रकः॥ ५७५॥
शक्राशनञ्च नवमे दशमे काकमाचिका।
एकादशे तथा नीला द्वादशे हस्तिशुण्डिका॥५७६॥
अमीषामौषधनाञ्च प्रत्येकन्तु पलद्रवम्।
मर्दयेत्तु प्रयत्नेन द्वादशाहेन साधकः॥ ५७७॥

एक मासा लोहेका चूर्ण मिला दे, उसमें लोहेके चूर्णके समान सोनामक्खी डाले। फिर शुद्ध तांबेके कण्टक वेधोपत्र बनाकर उन पर इस कल्कका लेपकरे, फिर क्षणभर आगमें रक्खे तो तांबेका चूर्ण होजायगा। फिर सबको पीसकर पत्थरके खरलमें तांबेकी मूसलीसे घोटे और नीचे लिखे क्रमसे इन औषधियोंका रस दो२ पल डालता रहे। पहले भांगरा, फिर ग्रीष्मसुन्दर,(छोटानोनियां) फिर कालाभांगरा, फिर ब्राह्मी, फिर सिनुवार, पोईशाग फिर नीम, फिर लालचीता, फिर इन्द्रजौ, फिर काकमाची, (भँभोलम) फिर नीलनी, फिर इन्द्रायण, इन बारहों औषधियोंके रसमें १२

(१) खल्वे।

ततः पारदमानन्तु दत्त्वा त्रिकटुगुण्डकम् ।
वटिकां राजिकातुल्यां छायाशुष्कां समाचरेत् ॥५७८॥
ततः शम्बूकजे पात्रे कर्त्तव्या वटिकात्वियम् ।
शरावे शङ्खपात्रे वा कृत्वा सलिलगोलितम् ॥५७९॥
अत्यन्तदोषदुष्टाय ज्ञानशून्याय रोगिणे ।
ऊर्द्धयोनिं (१) समभ्यर्च्य प्रदद्याद्वटिकाद्वयम् ॥५८०॥
ढक्कयेत्तं (२) ततः पश्चान्नरं स्थूलपटादिभिः ।
मलमूत्रागमात् सद्यः स साध्यो भवति ध्रुवम् ॥५८१॥
दध्यन्नन्तु ततो दद्यात् पिबेत् वारि यथेच्छया ।
दद्याद्वातहरं तैलमभ्यङ्गाय सदैव हि ॥ ५८२ ॥
चिरज्वरे पिबेद्वारि पञ्चमूलोप्रसाधितम् ।
ग्रहण्यां रक्तपाते च पिबेदतिविषां गदी ॥ ५८३ ॥
पिबेत् पर्पटजं वारि घोरे कम्पज्वरे तथा ।

दिन तक घोटे फिर पारेके समान त्रिकुटा डालकर राईके समान गोली बनाकर छायामें सुखाले फिर घोंघे (कौड़ी) में भरे अथवा मिट्टीके बरतनमें या शंखमें रखकर पानीसे घोल-कर अत्यन्त बिगड़े दोषोंमें ज्ञान रहित रोगीको शिवका ध्यान करके दो गोली दे फिर रोगीको मोटे कपड़े उढ़ादे, तब रोगी को मल और मूत्र आवेंगे, इससे साध्य होजायगा, प्यास लगने से इच्छानुसार पानी और खानेको दही भातदे, तथा कोई वातनाशक तैल शरीरमें मलवावे, जीर्णज्वरमें पञ्चमूल काढ़े

(१) शिवम् । (२) आच्छादयेत् ।

तथा ज्वरातिसारे च जीरकस्य जलं पिबेत् ॥ ५८४ ॥
मन्दाग्नौ कामलायाञ्च संग्रहे (१) ग्रहणीगदे ।
कासे श्वासे सदा कार्य्या पानीयवटिकात्वियम्॥५८५

गन्धकं तण्डुलोदकेन प्रक्षाल्य लोहपात्रे तरलीकृत्य चित्रकपत्ररसे निर्वापयेत् द्वादशरसैर्द्वादशाहेन ताम्रदण्डेन मर्दयित्वा शोषयेत् ततः पारदसमेन त्रिकटुगुण्डकेन सह मिश्रीकृत्य पानीयेन पिष्ट्वा राजिकाप्रमाणाः छायाशुष्का वटिकाः कारयेत् ततः शुभदिने देवीपूजादिकं विधाय सन्निपातेन ज्ञानशून्याय रोगिणे बुद्धा मात्रां वटिकात्रयं दद्यात् स्थूलपटादिना रोगिणमाच्छाद्य मलमूत्रादिप्रवृत्तौ दोषलाघवं बुद्धा

संग्रहणी और रक्तातिसारमें अतीस, घोर कम्प सहित ज्वरमें पित्तपापड़े के जल और ज्वरातिसारमें जीरेके पानीके संग यह गोलीदे। यह गोली मन्दाग्नि, कामला, बिष्टाबकना, संग्रहणी खांसी और सांसमें देनी चाहिये। इसके बनाने की यह विधि है कि गन्धकको चांवलोंके पानीमें धोकर लोहेकी करछीमें पिघलाकर लालचीतेके पत्तोंके रसमें बुझादे, फिर ऊपर लिखे बारह रसोंमें १२ दिन तक लोहेकी मूसलीसे घोटे, फिर त्रिकुटा मिलाकर पानीमें पीस राईके समान गोली बनाकर छायामें सुखावे फिर उत्तम दिन देवीकी पूजा करके ज्ञान रहित सन्निपात रोगीको मात्रा समझकर तीनगोली दे, फिर रोगीको

(१) पुरीषादीनाम् रोधे।

दध्यन्नादिकं दद्यात् यथाव्याधि यथोक्तानुपानं च दद्यात् ॥५८६॥ इति पानीयवटिका ।

अनाथनाथो जगदेकनाथः
श्रीलोकनाथः प्रथमः प्रसन्नः ।
जगाद पानीयवटीं सुपट्वीम्
तामेव वक्ष्यामि गुरुप्रसादात् ॥ ५८७ ॥

जयार्कस्वरसञ्चैव निर्गुण्डी वासकं तथा ।
वास्यालकं करञ्जञ्च सूर्य्यावर्त्तकचित्रकौ ॥ ५८८ ॥
ब्रह्मी वनसर्षपञ्च भृङ्गराजं विनिक्षिपेत् ।
दन्ती च त्रिवृता चैव तथारग्वधपत्रकम् ॥ ५८९ ॥
सहदेवामरं भण्डी तथा त्रिपुरभण्डिका ।
मण्डूकपर्णीपिप्पल्यौ द्रोणपुष्पकवायसी ॥ ५ ॥

मोटे कपड़े उढ़ादे, फिर जब रोगीको मल और मूत्र आजुके और शरीर हलका होजाय, तब दही भात खिलावे और शेष रोगोंमें ऊपर कहे, अनुपानोंके संग गोलीदे, इसका नाम पानीय वटी है ॥ ५८६—५८६ ॥

अनाथोंके नाथ जगत् और सब लोगोंके नाथ भगवान् शिवने जो प्रसन्न होकर पानीय वटी कही है वही गुरुकी कृपा से हम यहां लिखते हैं। अरणी, आक, सिनुवार, वासा, वास्यालक, करंजुवा, सूर्यमुखी, चीता, ब्राह्मी, बनसरसों, भांगरा, अमालगीटेकी जड़, निसोत, किरवालेके पत्ते, सहदेई, देवदार, मजीठ, बड़ाभंटा, ब्राह्मी, पीपल, दोना, मकोय,

गुञ्जाकिनी केशराजस्तथा योजनमल्लिका ।
धासारनेति विख्यातो धुस्तूरकनकस्तथा ॥ ५८१ ॥
त्रैलोक्यविजया चैव तथाश्वेतापराजिता ।
प्रत्येकं कार्षिकञ्चैव रसमाकृष्यभाजने ॥ ५८२ ॥
एकैकस्य रसं दत्त्वा मर्दयेल्लौहदण्डतः ।
खण्डातपे च संशोष्य क्षीरं तत्र पुनः क्षिपेत् ॥५८३॥
स्नुहीक्षीरं चार्कदुग्धं वटदुग्धं तथैव च ।
प्रत्येकं कार्षिकं दत्त्वा मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥ ५८४ ॥
सुमर्दितस्य तं ज्ञात्वा यदा पिण्डत्वमागतम् ।
द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वस्त्रपूतानि कारयेत् ॥५८५ ॥
दग्धहीरं चातिविषा कोचिला चाभ्रकं तथा ।
पारदं शोधितञ्चैव गन्धकं विषमाधुरम् ॥ ५८६ ॥
हरितालं विषञ्चैव माक्षिकञ्च मनःशिला ।
प्रत्येकञ्च चतुर्माषं सर्वं चूर्णीकृतञ्च तत् ॥ ५८७ ॥

घुंघची, केशराज ; योजनमल्लिका, घमारिन, कालाधतूरा, भांग, सफेदकव्वाटोंटी इन सबका रस एक२ कर्ष निकालकर बर्त्तन में रक्खे ; फिर एक२का रस खरलमें डालकर लोहेकी मूसलीसे घोटे, फिर एक२ कर्ष थूहर, आक, और बड़गदका दूध डालकर बार२ घोटे, जब घुटते २ पिण्ड होजाय, तब नीचे लिखी औषधियोंका कपड़े में छानकर चूर्णडाले । हीराभस्म, अतीस, कुचला, अभ्रक, शुद्धपारा, गन्धक, बिष, हरताल, बछनाग, सोनामाखी और मैंनशिल इन सबको चार२ मासे डाले, परन्तु सब औषधियां शुद्ध हों अब

प्रक्षिप्य मर्दयेत् सर्वं शोधयित्वा पुनः पुनः ।
सुमर्दितञ्च तं दृष्ट्वा चाङ्गेरीस्वरसेन तु ॥ ५९८ ॥
उत्थाप्य भेषजं दृष्ट्वा यदा पिण्डत्वमागतम् ।
तिलप्रमाणा गुड़िका कारयेन्मतिमान् भिषक् ॥ ५९९ ॥
त्रिदोषज्वरितो वैद्यमुक्तोऽपि बहुसम्मतः ।
लङ्घनैर्वालुकास्वेदैः प्रक्रान्तो दीनदर्शनः ॥ ६०० ॥
संपूज्य करुणाधारं प्रणम्य च खसर्पणम् ।
शरावे वारिणा घृष्ट्वा विंशतिं वटिकाः पिवेत् ॥ ६०१ ॥
पीतं तद्भेषजं पश्चाद्वस्त्रैराच्छादयेन्नरम् ।
स्वेदलग्नं वपुर्ज्ञात्वा दद्याद्वारिसुशीतलम् ॥ ६०२ ॥
शरावप्रमितं वारि पातव्यञ्च पुनः पुनः ।
सन्निपातज्वरञ्चैव दाहञ्चैव सुदारुणम् ॥ ६०३ ॥
कासश्वासञ्च हिक्काञ्च विड्ग्रहं चाश्मरीं जयेत् ।

घुटचुके तब चुकेके रसमें फिर घोटे फिर खरलसे निकालकर बुद्धिमान् वैद्य तिलके समान गोली बनावे, जो रोगी सन्निपात से अत्यन्त व्याकुल हो, जिसे वैद्योंने छोड़ दिया हो, जो लङ्घन और बालुका स्वेद आदि उपायोंसे अच्छा न हुआ हो, उसे ऐसी बीसगोली मिट्टीके बर्तनमें पानीमें घोलकर पिलादे ; पहले शिव और सूर्य्यकी पूजाकर ले, औषधि पीनेके पश्चात् रोगीको कपड़े उढ़ादे ; जब जानेकि पसीना आगया तब ठंडा पानी पिलावे, बार बार एक२ शराव (सकोरा) पानी देता रहै । इस बटीसे घोर सन्निपात, दाह, श्वास, खांसी, हिचकी,

मूत्ररोगविबन्धे तु दातव्यं क्षीरसंयुतम् ॥ ६०४ ॥
पञ्चतृणकृतंक्वाथं दातव्यञ्च पुनः पुनः ।
पानीयवटिका ह्येषा लोकनाथेन निर्म्मिता ।
लोकानामुपकाराय सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ६०५ ॥

जयन्त्यादीनां श्वेतापराजितापर्य्यन्तानां कर्षप्रमाणं स्वरसमादाय प्रस्तरभाजने लौहदण्डेन एकैकं विमर्द्य तदनु शोषयेत्। तदनु स्नुह्यर्कवटानां क्षीरं प्रत्येकं कर्षप्रमाणं दत्वा पुनर्मर्दयेत्। पिण्डत्वे सति दग्धहीरकादिकं कज्जलीपूर्वकं सर्वमेकीकृत्य चाङ्गेरीरसेन मर्दयित्वा उत्थाप्य पिण्डीकृत्य तिलप्रमाणा वटिकाः कार्य्याः अस्या वटिकायाः विंशतिं वृद्धवैद्योपदेशात् आर्द्रकजलेन वारिणा वा गोलयित्वा शराविकया पाययेत् ॥ ६०६ ॥

विष्टा रुकना और अश्मरी दूर होजाती हैं। यदि मूत्र रुकगया हो तो ये गोली दूधमें पके पंचतृण काढ़े के संग देनी चाहिये, गोलीके ऊपर बार२ पञ्चतृणनामक काढ़ा देय, यह पानीय वटी भगवान् शिवने लोकोंके उपकार और वैद्योंकी सिद्धिके लिये बनाई है।

इसके बनानेकी यह विधि है कि अरणीसे लेकर सफेद कव्वाटोंटी तक सब औषधियोंका एक२ कर्ष रस निकाले, फिर एक२ को पत्थरके खरलमें डालकर लोहेके डण्डेसे घोटे। फिर थूहर, आक और बड़गद इनका एक२ कर्ष दूध डालर कर

मूत्रकृच्छ्रे पञ्चतृणसाधितं क्षीरं पाययेत्॥ ६०७॥

इति सिद्धफलायाः पानीयवटिकायाविधिः।

विषं पलमितं सूतः शाणकश्चूर्णयेद् द्वयम्।
तच्चूर्णं संपुटे कृत्वा काचलिप्तशरावयोः॥ ६०८॥
मुद्रां कृत्वाथ संशोष्य ततश्चूल्ल्यां निवेशयेत्।
वह्निं शनैः शनैः कुर्यात् प्रहरद्वयसंख्यया॥ ६०९॥
तत उद्घाट्य तां मुद्रामुपरिस्थशरावकात्।
संलग्नो यो भवेद्धूमः तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः॥ ६१०॥
वायुस्पर्शो यथा नस्यात्तथा कूप्यां निवेशयेत्।
यावत् सूच्या मुखे लग्नं कूप्या निर्याति भेषजम्॥६११॥
तावन्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि।
क्षुरेण प्रच्छिते मूर्ध्नि तत्राङ्गुल्या च घर्षयेत्॥६१२॥

घोटे; जब घुटतेर पिंडसा होजाय, तब हीरे आदिकीभस्म और पारा डालकर तुलसीके रसमें घोटे; कड़ा होने पर निकाल कर तिलके समान गोली बनावे, फिर बूढ़े वैद्यकी सम्मतिके अनुसार अदरकके रस, या पानीमें घोलकर रोगीको बीसगोली पिलादे, मूत्रकृच्छ्रमें पञ्चतृणमें पका दूध पिलावे, इसका नाम सिद्धि पानीय बटी है॥ ५८७—६०७॥

विष १ पल, शुद्ध पारा एक शाण, इन दोनोंको घोटकर कांचफिरे दो सरावोंमें बन्दकरे, फिर उनका मुंह बन्द करके सुखा कर चुल्हेपर चढ़ावे और नीचे दो पहरतक धीरे२ आग जलाता रहे; फिर ठंडा होनेपर खोलकर ऊपरके सरावेमें

रक्तभेषजसम्पर्कान्मूर्च्छितोऽपि हि जीवति ।
तथैव सर्पदष्टोऽपि मृतावस्थोऽपि जीवति ॥
यदा तापो भवेत्तस्य मधुरं तत्र दीयते ॥ ६१३ ॥
इति सूचिकाभरणो रसः ।

सूतं गन्धकमभ्रकं समलवं सूतार्द्धभागं विषं
तत्त्रांशं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम् ।
पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिजनितैर्निक्षिप्य खाते पुटं
दत्वा कुक्कुटसंज्ञकं सहदलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥ ६१४ ॥
भागार्द्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतं
गुञ्जार्द्धप्रमाणसिन्धुचित्रकयुतः सर्वान् ज्वरान्नाशयेत् ।

जो धुआं लगा हो, उसे धीरे २ खुरचले, परन्तु हवा न लगने पावे उतनेही समयमें उस रसको शीशीमें भर दे, फिर मूर्च्छित सन्निपातरोगी को जितना सुईके नाकेसे एकबार में निकल सके उतनाही दे, शिर मुड़वा कर छुरेसे खुरचकर यह रस अङ्गुलीसे मले ; इसके योगसे मरा हुआ सन्निपात रोगी भी अच्छा होजाता है। जो मनुष्य सांपके काटनेसे मरे हुए के समान होगया हो उसे भी यह रस जिला सक्ता है ; यदि इसके खानेसे गर्मी हो तो मीठा रस दे इसका नाम सूचिकाभरण रस है ॥ ६०८ ॥ ६१३ ॥

पारा, गन्धक और अभ्रक ये सब समान पारेसे आधा विष, और पारेसे तिहाई जमालगोटा, इन सबको चूकके रसमें घोटकर गोला बनावे ; इस गोलेको कोमल पानोंमें लपेट कर कुक्कुटपुट में फूंक दे, जब ठण्ढा होजाय तब पानोंके

शूलं संग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनाम्
तापे सेचनकारिणां गदवतां सूतस्य चिन्तामणेः ६१५
अयमेव रसो देयो मृतकल्पे गदातुरे ॥ ६१६ ॥

इति चिन्तामणीरसः ।

सूतस्य शुद्धस्य पलं पलं ताम्रमयो रजः ।
अभ्रं नागं पलं वङ्गं पलं गन्धकतालकम् ॥ ६१७ ॥
पलं शुद्धविषं चूर्णं सर्वमेकत्र कारयेत् ।
मर्दयेत् काकमाच्याश्च तत्र साररसेन च (१) ॥६१८॥
मत्स्यवाराहमायूरच्छागमाहिषपित्तकैः ।
मर्दयेच्छिन्नभिन्नस्य त्रिकटो(२)रम्बुभिस्तथा ॥ ६१९ ॥

सहित चूर्ण बनावे, फिर इन सबसे आधी जमालगोटे की गिरी और उतनाही विष, घुघुंची, सोंठ, मिर्च पीपल, सेंधा-नमक और चीता डाले, इस रससे सब प्रकारके ज्वर, संग्रहणी और पेटके रोग दूर होजाते हैं, इसमें दही भात खिलावे और गर्मी होनेमे ठण्डा जल शिरपर डाले ; यही मरे हुएके समान सन्निपात रोगीको भी देय इसका नाम चिन्तामणिरस है ॥ ६१४ ॥ ६१६ ॥

पारा तांबा, लोहा, अभ्रक, सीसा, रांगा, गन्धक, हरताल और विष, ये सब शुद्ध एक२ पल लेकर छोटी मकोय (भमोलन) के छोरजलमें घोटे; फिर मछली, सूअर, मोर,

(१) काकमाच्या: सारजलेनेत्यर्थः प्रकार: पादपूरणे ।
(२) [illegible]

आर्द्रकस्वरसैः पश्चात् शतवारान् मुहुर्मुहुः ।
सिद्धोऽयं रसराजेन्द्रो धन्वन्तरिप्रकाशितः ॥ ६२० ॥
गुञ्जामात्रं रसं दद्यात् सुरसा रससंयुतम् ।
मेघधाराप्रवाहेन (१) धारितं वारिमस्तके ॥ ६२१ ॥
अनिवारो यदा दाहस्तदा देया च शर्करा ।
भोजनं दधिसंयुक्तं वारमेकन्तु दापयेत् ॥ ६२२ ॥
ईश्वरेण हतः कामः केशवेन यथाऽसुरः ।
पावकेन हतं शीतं सन्निपाते रसस्तथा ॥ ६२३ ॥
इति रसराजेन्द्रो रसः ।

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना ।
जलसेकावगाहाद्यैः बलिनस्ते तु नान्यथा ॥ ६२४ ॥

बकरे और भैंसके पित्तमें अलग२ घोटे, फिर त्रिकुटेके रसमें घोटकर सौवार अदरकके रसमें घोटे; तब यह रस सिद्ध होता है। रोगीको तुलसीके रसमें एकरत्ती मिलाकर दे; जब अधिक दाह होय तब रोगीके शिरपर मेघकी धाराके समान जल छोड़े, यदि उससे भी दाह शान्त न हो तो शक्कर खिलावे, खानेको एकवार दही और भात देय। जैसे शिवने कामदेवको और विष्णुने दानवोंको मारा था तथा जैसे अग्नि शीतका नाश करती है ऐसे ही यह रससन्निपातका नाश करता है; धन्वन्तरिने इसका नाम रसराजेन्द्र रस लिखा है ॥६१७॥६२३॥

---

(१) मेघधारेव प्रवाहो यस्य तेन ।

रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको
मलयजघनसारालेपनं मन्दवाताः ।
तरुणदधिसिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भो
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ ६२५ ॥

ताम्रशुण्ठार्कमूलानि द्विनिष्काणि पृथक् पृथक् ।
ऐक्यतः पञ्चलवणात् पलं पिष्ट्वा पुटं ददेत् ॥ ६२६ ॥
गन्धेश शङ्खभस्मानि वेदनिष्कमितानि च ।
देवदालीरसैः पिष्ट्वा त्रिदिनं केकिपित्ततः ॥ ६२७ ॥
स्वेदशैत्यापनुत्यर्थं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ।
दध्ना संमर्दयेत् पात्रे जलयोगं समाचरेत् ॥ ६२८ ॥
पथ्यं घृतं सिन्धुमुद्ग इक्षुखर्जूरगोस्तनीः ॥ ६२९ ॥

इति शैत्यारीरसः ।

शिवने जिन रसोंको पित्तोंसे घोटना लिखा है ... सबका बल जलमें न्हाने बिना नहीं बढ़ता ॥ ६२४ ॥

यदि रस खानेसे दाह उत्पन्न हो तो रोगीके शिर पर ठण्डा जल छोड़े, ठण्डा चन्दन शरीर पर लगावे, ठंडी हवामें बिठलावे, ताजा दही और शक्कर मिलाकर नरियलका पानी दे, और २ भी मीठी और ठण्डी वस्तु दे ॥ ६२५ ॥

तांबा, सोंठ, आककीजड़, इन सबको दो२ निष्कले; संधा आदि पांचोनमक १ पल इन सबको मिलाकर पीसे फिर आगमें फूंक दे. फिर इसमें गन्धक, पारा और शङ्खकीभस्म चार२ निष्क मिलाकर विल्दालके रसमें घोटे, फिर तीन दिनतक

गन्धेशौ टङ्कमरिचं विषं धुस्तूरजैर्द्रवैः।
दिनं विमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्त्रो भवेद्रसः।
द्विगुञ्जमार्द्रनीरेण त्रिदोषज्वरहृत्परः॥ ६३०॥

इति पञ्चवक्त्रोरसः।

हिङ्गुलं गन्धकं ताम्रं मरिचं पिप्पलीविषम्।
शुण्ठीकनकबीजञ्च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ ६३१॥
विजयापत्रतोयेन त्रिदिनं भावयेत् सुधीः।
द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन अर्ककाथं पिबेदनु॥ ६३२॥
निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान्।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकञ्च निमेषतः॥ ६३३॥

इति सन्निपातसूर्य्यो रसः।

मोरके पित्तमें घोटे, फिर पसीना और शीत दूर होनेके लिये दहीमें घोलकर दो रत्ती यह रस दे, और शिरपर पानी डाले इससे पसीना और शीत बहुत शीघ्र दूर होजाता है। खानेको घी, सेंधानमक, जखका रस और मुनक्का दे इसका नाम स्वेद भैत्यारि रस है॥ ६२६॥ ६२८॥

पारा, गन्धक, विष और मिर्च, इन सबको एक २ टंक (४ मासे, लेकर एकदिन धतूरेके अर्कमें घोटे, फिर दोरत्ती अदरकके रसके संग देनेसे सन्निपात ज्वरका नाश होता है। इसका नाम पञ्चवक्त्ररस है॥६३०॥

इंगुर, गन्धक, तांबा, मिर्च, पीपल, विष, सोंठ और धतूरेके बीज इनको चूर्ण करके तीन दिन तक भांगके पत्तोंके रसमें

रसविषगन्धकटङ्कणताम्रयवक्षारकं व्योषम् ।
तालं फलत्रयञ्च क्षौद्रं दत्त्वा शतवारान् ॥ ६३४ ॥
संमर्द्य रक्तिकमिता वटिकाः कुर्य्याद्भिषक् प्राज्ञः ।
शुण्ठीपिष्टेन सममेका द्वे वाथ वा तिस्रः ॥ ६३५ ॥
संप्राश्य नारीकेलीजलमनुपेयं प्रयुञ्जीत ।
भक्तानन्तरमेव प्रक्षालितभक्ततक्रमुपयोज्यम् ॥ ६३६ ॥
शेषात् सैन्धवजीरं तक्रं भक्तं प्रयोक्तव्यम् ।
प्रशमयति सन्निपातज्वरं तथा जीर्णं विषमञ्च ॥६३७॥
प्लीहानञ्चाध्मानं कासं श्वासञ्च वह्निमान्द्यम् ।
चिन्तामणीरसोऽयं किलनियतं भैरवेण निर्दिष्टः ॥६३८

इति चिन्तामणीरसः ।

भिगोरक्खे, फिर पानमें रखकर दो रत्ती देय ; ऊपरसे चाक की जड़का काढ़ा देय ; इससे घोर भयानक सन्नि ज्वर दूर होजाता है । वात, पित्त और कफ भी क्षणमात्र में शान्त हो-जाते हैं । इसका नाम सन्निपात सूर्य्यरस है ॥६३१॥६३३॥

पारा, बिष, गन्धक, सुहागा, तांबा, जवाखार, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरताल, हर्र, बहेड़ा, और आंवला, इन सबको सौवार शहतमें घोटकर एकरत्तीकी गोली बनावे, फिर सोंठके कल्कके संग एक, दो वा तीन गोली देय । ऊपरसे नरियलका पानी पिलावे पीछे धोया हुआ भात (पल्ता भात) मट्ठे के संग खिलावे अथवा सेंधानमक और जीरा मट्ठे में मिलाकर उसके साथ भात देय, इससे सन्निपातज्वर, जीर्णज्वर, बिषमज्वर, प्लीहा,

भागैकं मृतताम्रस्य द्विभागं मृतलोहकम् ।
त्रिभागं मृतवङ्गस्य चतुर्भागं मृताभ्रकम् ॥ ६३९ ॥
माक्षिकं रसगन्धौ च तथा शुद्धा मनःशिला ।
चत्वार्य्येतानि ताम्रस्य प्रत्येकं तुल्यमेव च ॥ ६४० ॥
गरलं चाभ्रतुल्यं स्यात् त्रिकटुश्चाभ्रतुल्यकः ।
एतत् सर्वं समं देयं विषमाख्यं तथैव च ॥ ६४१ ॥
एतत् सर्वस्य द्विगुणं प्रदेयं कालकूटकम् ।
मत्स्यमाहिषमायूरच्छागि(१)पित्तैर्विभावयेत् ॥ ६४२ ॥
चित्रकस्य द्रवेणैव प्रत्येकं याममात्रकम् ।
सर्षपाभा वटी कार्य्या शोषयेदातपे ततः ॥ ६४३ ॥
दापयेद्वटिकामेकां पयः पेटीरसेन च ।
त्रयोदशसन्निपाते विसूच्यामतिसारके ॥ ६४४ ॥

आध्मान, खांसी, श्वास, और मन्दाग्निका नाश होजाता है। भगवान् शिवने इसका नाम चिन्तामणि रस लिखा है ॥ ६३४—६३८ ॥

एक भाग तांबेकीभस्म, दो भाग लोहाभस्म तीनभाग रांगाभस्म, चारभाग अभ्रकभस्म, सोनामाखी, पारा, गन्धक, शुद्ध मैनशिल ये चारो एक२ भाग, विष और त्रिकुटा अभ्रकके समान बेरकी मिगी भी उतनीही, कालकूट विष सबसे दूना इन सबको मछली, भैंस, मोर और एकबार छाग गौके पित्तमें भावना देय। और चीतेके रसमें भी भावना देय, इनमें

(१) [illegible]

त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत् कुशलो भिषक् ।
पयः पटोलजं दद्यात् भोजनं दधिभक्तकम् ॥ ६४५ ॥
तथा भर्जितमत्स्यञ्च लेपनं तिलचन्दनैः ।
रोगी वाञ्छति यद्द्रव्यं तत्सर्वं परिदापयेत् ॥६४६॥
घोरनृसिंहनामाऽयं रसानामुत्तमो रसः ॥ ६४७ ॥

घोरनृसिंहो रसः ।

गन्धकं हिङ्गुलं तालं सूतकं लौहटङ्कणम् ।
खर्परं स्वर्जिकाक्षारं माञ्जिष्ठं (१) हिङ्गुलं समम् ॥६४८॥
रसेन मर्दितं पिण्डं निर्गुण्डीहस्तिशुण्डयोः ।
अष्टयामं पचेत् कूप्यां निरुध्य सिकताह्वये ॥ ६४९ ॥

औषधोंको एक२ पहर भीगनेदे ; फिर सरसोंके समान गोली बनाकर घाममें सुखाले फिर रोगीको एकगोली पाटलाके रसके संग दे। इससे तेरहों प्रकारके सन्निपात, विसूचिका अतिसार और सन्निपातमें उत्पन्न हुई खांसी दूर होजाती है। खानेको दही भात और भुनी हुई मछली दे, शरीरमें तिल और चन्दन लगावे खानेको रोगीकी जो इच्छा हो सो दे, इस उत्तम रसका नाम घोर नृसिंह रस है॥ ६३८—६४७ ॥

गन्धक, ईंगुर, हरताल, पारा, लोहा, सुहागा, खपरिया, सज्जीखार ये सब समान२ और मजीठके रंगके समान लाल ईंगुर दोभाग, इन सबको, इन्द्रायण और सिनुवारके रसमें आठपहर घोटे, जब पिंड होजाय तब छोटा २ करके शीशीमें भरे, फिर

(१) माञ्जिष्ठमिति हिङ्गुलविशेषणम् मञ्जिष्ठारसाभमित्यर्थः, हिङ्गुलं द्विगुणम् ।

ततः सिद्धं समादाय रक्तिकामार्द्रकेन च ।
सन्निपातविनाशाय प्रतापतपनो रसः ॥ ६५० ॥
दधिभक्तं तथा दुग्धं छागमांसञ्च भोजयेत् ॥ ६५१ ॥

प्रतापतपनो रसः ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृताभ्रं विषसंयुतम् ।
समं तन्मर्दितं तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ॥ ६५२ ॥
पूरयेत् कूपिकान्तेन मुद्रयित्वा च शोषयेत् ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा च शोषयेत् ॥ ६५३ ॥
पचेत् कुक्कुटप्रमाणेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
गृहीत्वा कूपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः ॥ ६५४ ॥
अजाजी जीरकं हिङ्गुस्वर्जिकाटङ्कणं जगत् ।
गुग्गुलुः पञ्चलवणं यवक्षारो यमानिका ॥ ६५५ ॥

वालुका यन्त्र* में आठ पहर पकावे जब सिद्ध होजाय तब उतार कर रक्खे, फिर सन्निपातमें रोगीको अदरकके रसके संग एक रत्ती देय ; खानेको दही भात दूध और बकरेका मांस दे, इसका नाम प्रतापतपन रस है ॥ ६४८ ॥ ६५१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रककीभस्म और विष, इन सबको समान लेकर मूसली के रसमें घोटे फिर घड़ियोंमें बन्द करे और सातकपरोटी देकर सुखाले, फिर कुंड में रखकर फूंक दे, जब आपसे आप ठण्डा होय तब निकाल कर एक २

* शीशीमें औषधी भरकर कपरौटी करके मुंह बन्द करके बालू भरी हांडीमें रख नीचेसे आग लगावे परन्तु शीशीका गला बालूमें ऊपर रखना चाहिये ।

मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकं रससमानतः ।
एषां कषायेण पुनर्भावयेत् सप्तधातपे ॥ ६५६ ॥
नागवल्लीदलयुतं पञ्चगुञ्जं रसेश्वरम् ।
दद्यान्नवज्वरे तीव्रे कोष्णं वारिपिबेदनु ॥ ६५७ ॥
प्राणेश्वरो रसो नाम सन्निपातप्रकोपनुत् ।
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मशूले त्रिदोषजे ॥ ६५८ ॥
वाञ्छितं भोजनं दद्यात् कुर्य्याच्चन्दनलेपनम् ।
तापोद्रेकस्य शमनं बलाधिष्ठानकारकम् ॥ ६५९ ॥
भवेन्न नात्र सन्देहः स्वास्थ्यञ्च लभते नरः ॥ ६६० ॥

इति प्राणेश्वरो रसः ।

पारदं गन्धकं तालं वत्सनाभं त्रिभिः समम् ।

दिन अजवायनके रस, जीरेके रसमें, तथा हींग, सज्जी, सुहागा, सोंठ, गूगल, पांचोंनमक, जवाखार, अजमोदा, मिर्च और पीपल इनके काढ़ेमें सात २ बार घोट कर घाममें सुखावे, फिर रोगीको पानके संग पांचरत्ती देय, ऊपरसे गर्मपानी पिलावे इससे तीक्ष्ण नवीनज्वर, सन्निपातज्वर, दाहयुक्तशीतज्वर, गुल्म और त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ शूल शीघ्र दूर होजाता है, खानेको जो रोगीकी इच्छा हो सो देय, शरीरमें चन्दन लगावे चन्दन लगानेसे दाह शान्त होता है बल बढ़ता है और रोगीका चित्त सावधान होजाता है इसका नाम प्राणेश्वर रस है ॥ ६५२—६६० ॥

पारा, गन्धक और हरताल ये सब समान इन तीनोंके

दारुमूलञ्च गरलं सर्वञ्च समहिङ्गुलम् ॥ ६६१ ॥
मुद्गप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक् ।
सन्निपाते वटीमेकामार्द्रद्रावैः प्रदापयेत् ॥ ६६२ ॥
रसो महाप्रभावोऽयं सन्निपातस्य भैरवः ॥ ६६३ ॥

इति द्वितीयसन्निपातभैरवो रसः ।

रसं विषं गन्धकञ्च हरितालं फलत्रयम् ।
जयपालं त्रिवृत्स्वर्णं ताम्रशीसाभ्रलोहकम् ॥ ६६४ ॥
अर्कक्षीरं लाङ्गलीं च स्वर्णमाक्षिकमेव च ।
समं कृत्वा रसेनैषां त्रिंशद्वारञ्च मर्दयेत् ॥ ६६५ ॥
अर्कश्वेतालम्बुषा च सूर्य्यकान्तञ्च कारवी ।
काकजङ्घा शोणकञ्च कुष्ठं व्योषं विकङ्कतम् ॥६६६॥
सूर्य्यमणिश्चन्द्रकान्तो निर्गुण्डीरुद्रजटापि च ।

समान वच्छनाग, दारुमूलविष, पारेके समान और इन सबके समान हिंगुर इनको पीस कर वैद्य मूंगके समान गोली बनावे ; फिर सन्निपात रोगीको एकगोली अदरकके रसके संग देय, इस रसमें बड़े२ गुण हैं इसका नाम सन्निपातभैरव रस है ॥ ६६१—६६३ ॥

पारा, विष, गन्धक, हरताल, त्रिफला, जमालगोटा, निसोत, सोना, ताँबा, सीसा, अभ्रक, लोहा, आकका दूध, करिहारी और, सोनामाखी, इन सबको समान २ लेकर आककी जड़, सफेद फूलकी लजालु, सूर्य्यमुखी, सौंफ, काकजङ्घा, सोनापाठा,

धुस्तूरदन्तीपिप्पल्यो दशाष्टाङ्गमिदं शुभम् ॥ ६६७ ॥
रसतुल्यं प्रदातव्यं दत्त्वा तोयं चतुर्गुणम्।
शिष्टे तद्गुणतोयेन भावनाविधिरिष्यते ॥ ६६८ ॥
भावनायां भावनायां शोषणं मुहुरिष्यते।
ततश्च वटिकां कृत्वा भैरवाय बलिं ददेत् ॥ ६६९ ॥
रसोऽयं श्रीसन्निपातभैरवो ज्वरनाशनः।
सर्वोपद्रवसंयुक्तं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ ६७० ॥
सन्निपातज्वरं हन्ति जीर्णञ्च विषमं तथा।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थकमपि ध्रुवम् ॥ ६७१ ॥
ज्वरञ्च जलदोषोत्थं सर्वदोषसमाकुलम्।
भैरवस्य प्रसादेन जगादानन्दकन्थडी ॥ ६७२ ॥

कूट, सोंठ, मिर्च, पीपल, विकंकत (कटाई) सूर्य्यकान्त चन्द्रकान्तमणि, सिनुवार, रुद्रजटा, धतूरा, जमालगोटेकी जड़ और पीपलामूल इन अठारह औषधियोंके काढ़े में तीसवार भावना देय, भावना देनेकी यह विधि है कि रसोंके समान औषधि लेकर चौगुने पानीमें पकावे जब चौथाई रहजाय तब उतार कर औषधि उसमें भिगोवे जब वह रस सूख जाय तब दूसरी भावना देय, सब भावना समाप्त होनेके पश्चात् गोली बनाले और भैरवको बलि दे; इससे सब उपद्रवयुक्तज्वर, सन्निपात, जीर्णज्वर, विषमज्वर, अर्थात् एकाहिक, द्वाहिक, तृतीयक, चतुर्थक और जलके दोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर भी दूर हो जाता है यह रस भैरवकी कृपासे आनन्दकंथड़ीने कहा है। इसके बनाने

सर्वचूर्णं समं कृत्वा अर्कमूलादिपिप्पलीमूलान्तानाम् अष्टादशानां मिलित्वा रसादिसामग्रीतुल्यानां चतुर्गुणजलैकगुणशिष्टक्वाथेन त्रिंशद्वारानातपे भावनीयं प्रतिवारं यत्नेन शोषयित्वा कलायप्रमाणवटिकां कृत्वा व्याध्यनुरूपमार्द्रकरसेन ज्वरिणे दद्यात् । विरेकाद्यनन्तरं शुण्ठीजीरकतक्रप्रक्षालितान्नं दद्यात् अजाते विरेके पुनरपि रसं दद्यात् व्याधिनिवृत्तौ कदाचिद्वातपीड़ायां वातचिकित्सा कार्य्या अत्र भैरवं रुधिरवर्णं ध्यायेतत् ॥ ६७३ ॥

इति महासन्निपातभैरवो रसः ।

पटुना पूरयेत् स्थालीं तन्मध्ये पटमूषिका ।

को यह विधि है कि ऊपर लिखी औषधियोंको समान लेकर चूर्ण बनावे ; फिर इस चूर्णको आककी जड़से लेकर पीपलामूल तक जो अठारह औषधिया हैं, उनके चौगुने जलमें पके शेष चौथाई रहनेके काढ़े में तीसवार भिगोकर घाममें सुखावे ; फिर उड़दके समान गोली बनाकर रोगीको अदरकके रसके संग दे । जब विरेचन आदि होचुके तब सोंठ और जीरेके पानीसे धोया हुआ भात खिलावे; यदि विरेचन न हो तो रस फिर खिलावे रोग अच्छा होनेके पश्चात् यदि वात व्याधि होजाय तो उसकी चिकित्सा करे, इस गोलीको देते और बनाते वैद्य लालवर्ण वाले भैरवका ध्यान करे, इसका नाम महासन्निपात भैरव रस है ॥ ६६४···६७३ ॥

तन्मध्ये रामठीमूषा तन्मध्ये पारदं क्षिपेत् ॥ ६७४ ॥
विषं विघृष्य सूतांशं कारिण्यालोड्य सप्तभिः ।
कृते त्रिभिः संगुणिते तेन चैवं दृढैश्छदनैः ॥ ६७५ ॥
वह्निं प्रज्वालयेच्चुल्ल्यां हठाद् यामचतुष्टयम् ।
तद्भस्मतिलमात्रन्तु दद्यात् सर्वेषु पाप्मसु ॥ ६७६ ॥
ग्रहण्यां जठरे शूले मन्देऽग्नौ परिणामजे ।
युक्तमेतन्निहन्त्याशु कुर्य्याद्बहुतरां क्षुधाम् ॥६७७ ॥
तापे शीतक्रियां कुर्य्याद् वाड़वाख्यो महारसः ॥६७८॥

इति वाड़वो रसः ।

मनःशिला रसो गन्धः साम्लक्षारास्त्रतस्त्र वै ।
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेद् यत्नतो भिषक् ॥ ६७९ ॥
भावयेत् सप्तवारञ्च सप्तमाने दिने सुधीः ।

एक हांडोमें नमककी घड़िया रक्खे, फिर सातबार कारिणी से चलाकर सातबार बिषको घिसे, फिर इसके समान पारा लेकर एक हींगकी घड़ियामें रख दे ; फिर इस घड़ियाको उस नमककी हड़ियामें रखकर हड़िया नमकसे भर दे, और उसके नीचे चार प्रहर तक आग जलाता रहे, फिर इस भस्मको सब रोगोंमें तिल भर दे; इससे संग्रहणी, पेटकेबिकार, परिणाम शूल और मन्दाग्निका नाश होजाता है और रोगीको भूख बहुत बढ़ जाती है यदि गर्मी लगे तो ठंडी क्रिया करे इसका नाम बाड़व रस है ॥ ६७४—६७८ ॥

बैद्य खरलमें डालकर अदरकके रसके संग मैंनशिल, पारा,

वटिका सर्षपमिता कार्य्या वैद्येन धीमता ॥ ६८० ॥
एकविंशति वटिका कज्जलीमाषकेण च।
आर्द्रकस्वरसेनापि भक्षयेज्ज्वरशान्तये ॥ ६८१ ॥
स्वेदार्थं शाययेद्रौद्रे गाले दत्त्वा सुचेलकम्।
घर्म्मं दृष्ट्वा च तं वस्त्रं त्यजेत् खादेच्च मत्स्यकम् ॥६८२
स्विन्नमुद्गाम् तथा चेक्षुरसं दधि च शीतलम्।
तत्परेऽहनि च स्नानं कुर्य्यान्निर्भयमेव च ॥ ६८३ ॥
इति आर्द्रकवटी।

साम्लक्षारं गृहीत्वा च दाड़िमच्छदशोधितम्।
रसं गन्धं मर्दयेच्च आर्द्रकस्वरसेन च ॥ ६८४ ॥
भावयेत् सप्तवारन्तु एकस्मिन् दिवसे सुधीः।
अनुपानं प्रदातव्यं दाड़िमच्छदजं रसम् ॥

गन्धक, विष, खटाई और खार घोटे; फिर सातदिन तक अदरकके रसमें सात भावना देकर सरसोंके समान गोली बनाले, फिर इक्कीस गोली १ मासाभर कज्जलीके संग अदरकके रसमें घोलकर देय। इससे ज्वर शान्ति होजाता है, रोगीको पसीना, आनेके लिये थोड़ा कपड़ा उढ़ाकर घाममें सुलादे, जब पसीना आचुके तब रोगीको मछली, मूंग और ठण्ड़ा दही खानेको देय; ऊख चूसनेको और दूसरे दिन निर्भय होकर स्नान करा दे, इसका नाम आर्द्रकवटी है ॥६७८—६८३॥

जवाखार, अनारके बकलेमें शुधा पारा और गन्धक इन सबको अदरकके रसमें घोटे फिर एकदिन उसीके रसमें

तथा मधु च दातव्यं ज्वराणां कुलशान्तये ॥ ६८५ ॥

इति दाड़िमपत्रौषधम्।

सूतं गन्धकटङ्कणं शुभभविषं धूस्तूरवीजं कटु-
नीत्वा भाग यथोत्तरद्विगुणितं चोन्मत्तमूलाम्बुना।
कुर्य्यान्माषवटीं सुखातिसुखदां सर्वान् ज्वरान् नाशये-
देष श्रीशिवशासनात् प्रजनितः सूतश्च मृत्युञ्जयः॥६८६
नारिकेलसितायुक्तं वातपित्तज्वरं जयेत्।
मधुना श्लेष्मपित्तोत्थं ज्वरं संनाशयेद् ध्रुवम्॥ ६८७ ॥
सन्निपातज्वरं घोरं नाशयेदार्द्रनीरतः ॥ ६८८ ॥

इति मृत्युञ्जयो रसः।

विषं सूतकगन्धौ च पित्ते मत्स्यवराहयोः।

भिगोकर रख दे; इस प्रकार सात भावना दे, इसको शहत या अनारके बकलेके रसके संग देय, इसका नाम दाडि्मपत्रौषध रस है ॥ ६८४ ॥ ६८५ ॥

पारा एकभाग, गन्धक दो भाग, सुहागा ४ भाग, विष ८ भाग, धतूरेकेबीज १६ भाग, मिर्च ३२ भाग, इन सबको धतूरेकी जड़के रसमें घोटकर उड़दके समान गोली बनावे। भगवान् शिवने इस रसको सब प्रकारके ज्वर नाश करनेको बनाया था; यह रस नरियलके जल और चीनीके संग देनेसे सब प्रकारके वात और पित्तज्वरोंका नाश करता है। शहतके संग देनेसे वातपित्तज्वर और अदरकके रसके संग देनेसे घोर सन्निपातज्वरका नाश करता है। इसका नाम मृत्युञ्जय रस है ॥ ६८६—६८८ ॥

आजमायूरपित्ते च महिष्याश्चापि योजयेत् ॥ ६८९ ॥
हरितालश्च सव्योषं वानरीबीजसंयुतम् ।
अपामार्गं चित्रमूलं जयपालश्च कल्कयेत् ॥६९०॥
एतत्सर्वं (१) समांशेन अजामूत्रेण मर्दयेत् ।
माषेण सदृशी कार्य्या वटिका सद्भिषग्वरैः ॥ ६९१ ॥
महाज्वरे महाशीते महाशीतज्वरेऽपि च ।
मज्जागते सन्निपाते विसूच्यां विषमज्वरे ॥ ६९२ ॥
असाध्ये मानवे युञ्ज्यादेकाहाज्ज्वरनाशिनी ।
जलोदरश्लथाङ्गे च नासास्रावे च पीनसे ॥ ६९३ ॥
अजीर्णे मूर्च्छनाभावे श्लेष्मभावेऽतिदुर्जये ।
कामलाशोथपाण्ड्वादिसर्वरोगापहारकः ॥ ६९४ ॥

विष, पारा, गन्धक इन सबको मछली, सूअर, बकरी, मोर और भैंसके पित्तमें भिगो दे, फिर हरताल, सोंठ, मिर्च, पीपल और कमाचके बीज, लटजीरा, चीता और जमालगोटा इन सबको समान २ लेकर बकरीके मूत्रमें कल्क बनावे, फिर इस औषधिमें मिलाकर वैद्य एक उड़दके समान गोली बनावे। इस गोलीको घोर ज्वर, महाशीत ज्वर, मज्जागतज्वर, सन्निपात, विसूचिका, विषमज्वर और असाध्यज्वरमें देय, तो एकही दिनमें सबज्वरोंका नाश होजाता है। इससे जलोदर, शरीरकी शिथिलता, नाकसे पानी गिरना, पीनस, अजीर्ण, मूर्च्छा, अत्यन्तबढ़ा हुआ कफ, कामला, शोथ,

(१) सर्वं विषमारभ्य चित्रमूलपर्य्यन्तम् ।

मृत्युञ्जयः सन्निपाते ज्ञानज्योतिः प्रकाशितः ।
भृङ्गराजरसेनायं रसराजः प्रदीयते ॥ ६८५ ॥
निर्वाते निर्जनस्थाने बहुवस्त्रसमावृते ।
प्रस्वेदः क्षणमात्रेण जायते चिह्नमीदृशम् ॥ ६८६ ॥
मूर्च्छितः पतितो भूमौ दह्यमानः पुनः पुनः ।
एवं चिह्नं समालोक्य वदेन्नैरुज्यमातुरे ॥ ६८७ ॥
पथ्यं यद्याचते रोगी तद्दातव्यं प्रयत्नतः ।
दध्योदनं शीतजलं दातव्यं तद्विचक्षणैः ॥ ६८८ ॥
एषो महारसः श्रेष्ठः शम्भुना प्रेरितो भुवि ।
कृपया सर्वभूतानां ज्ञानज्योतिः प्रकाशितः ॥६८९॥

श्रीसन्निपातमृत्युञ्जयो रसः ।

रसाष्टको(१)ऽमृतं सप्त षड्गन्धं षट् च तालकम् ।

पाण्डु आदि सब रोग शीघ्र दूर होजाते हैं। यह उत्तम रस भांगरेके रसके संग दिया जाता है। इसके देनेके पीछे रोगीको वायु रहित एकान्त स्थानमें अधिक कपड़ा उढ़ाकर सुलादे; रोगीको क्षण२ भरमें पसीना आने लगे, मूर्च्छा हो और दाहसे व्याकुल होकर बार२ गिरने लगे तो जानेकि अब यह अच्छा होगया, तब वह जो कुछ खानेको मांगे वही देय, दही, भात, और ठण्डा पानी पथ्य है। भगवान् शिवने अपनी ज्ञान दृष्टिसे बनाकर और सब जगत्पर कृपाकरके इस उत्तम रसको पृथ्वी पर प्रकाशित किया है, इसका नाम सन्निपात मृत्युञ्जय रस है ॥ ६८८—६८९ ॥

(१) अष्टभागमिता ।

धूर्त्तबीजं चतुर्भागं व्योषञ्च त्रिफला तथा ॥ ७०० ॥
अग्निक्काथेन संभाव्य सप्तवारान् पृथक् पृथक् ।
शम्भुनाथस्त्वयं नाम्ना शम्भुनाथेन निर्मित: ॥ ७०१ ॥

इति शम्भुनाथरस: ।

रसेन गन्धं द्विगुणं कृशानु-
रसैर्विमर्द्याष्टदिनं सुघर्म्मे ।
रसाष्टभागं त्वमृतञ्च दद्यात्
विपाचयेद्वह्निरसेन किञ्चित् ॥ ७०२ ॥
पित्तैश्च सद्भावित एष देय
स्त्रिदोषनीहारविनाशसूर्य्य: ॥ ७०३ ॥
अत्र भैरवं रुधिरवर्णं ध्यायेत् ॥ ७०४ ॥

इति प्रभाकरो रस: ।

८ भाग पारा, सातभाग बिष, ६ भाग गन्धक, ६ भाग हर-ताल, ४ भाग धतूरेके बीज ४भाग त्रिकुटा और ४ भाग त्रिफला इन सबको घोटकर चीतेके काढ़ेमें सात भावना देय, भगवान् शिवने इसको प्रकाशित किया है। इसका नाम शम्भुनाथ रस है ॥ ७००—७०१ ॥

१ भाग पारा, २ भाग गन्धक और पारेसे आठवां भाग बिष इन सबको मिलाकर आठदिन तक चीतेके रसमें घोटे, फिर चीतेके रसमें भिगोकर घाममें पकावे, फिर पित्तोंमें भावना देकर रख छोड़े। इससे त्रिदोषज्वरका इस प्रकार नाश होता है जैसे सूर्य्यके निकलनेसे कुहरका, इस रसके देते समय

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्दयेद्गोक्षुरद्रवैः ।
भावितञ्च विशोष्याथ चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥७०५॥
चूर्णतुल्यं मृतं ताम्रादष्टांशिकं विषम् ।
हिङ्गुल रसभागञ्च द्वौ भागौ कनकस्य च ॥ ७०६ ॥
बाणभागोऽत्र गोदन्तः कणिभागा मनःशिला ।
टङ्कणं नेत्रभागञ्च ऋतुभागञ्च खर्परम् ॥ ७०७ ॥
ब्रह्मभागञ्च जैपालं नेत्रभागं हलाहलम् ।
माक्षिकं चाग्निभागञ्च लोहवङ्गञ्च भागिकम् ॥७०८॥
सर्वान् खल्लोदरे क्षिप्त्वा क्षीरेणार्कस्य मर्दयेत् ।
दशमूलकषायेण मर्दयेद् याममात्रकम् ॥ ७०९ ॥
पञ्चमूलकषायेण तथैव च विमर्दयेत् ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् ॥७१०॥

लाल रंगवाले भैरवका ध्यान करना चाहिये इसका नाम प्रभाकर रस है ॥ ७०२—७०४ ॥

शुधा हुआ पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, इन दोनोंको गोखुरूके रसमें घोटे फिर घाममें सुखाकर चिकना चूर्ण बनावे इस चूर्णके समान तांबेकी भस्म, तांबेकी भस्मसे आठवां भाग विष, पारेके समान इंगुर, इंगुरसे दूने धतूरेकेबीज, ५ भाग गोदन्ती हरताल १ भाग मैंनशिल, २ भाग सुहागा, ६ भाग खपरिया, १ भाग जमालगोटेके बीज, २ भाग हालाहल विष, ३ भाग सोनामाखी, १ भाग लोहा और १भाग वंग इन सबको खरलमें डालकर पहले आकके दूधमें और फिर एक पहर

ज्वरं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम्।
पूर्ववद्दापयेत्पथ्यं जलयोगञ्च कारयेत्॥ ७११॥
पथ्यं शाल्योदनं ज्ञेयं दधिभक्तसमन्वितम्।
कालाग्निभैरवो नाम रसोऽयं भुविपूजितः॥७१२॥
इति कालाग्निभैरवोरसः॥

रसभस्मत्रयोभागा द्विभागञ्च भुजङ्गमम्।
कालकूटञ्च षड्भागं भागैकं तालकं तथा॥७१३॥
गोदन्तं गगनं तुत्थं शिलागन्धकटङ्गणम्।
जयपालोन्मत्तदन्ती करवीरञ्च लाङ्गली॥ ७१४॥
पलाशमूलजैर्नीरैः सप्तधा भावितं दृढम्।
चित्रमूलकषायेण चार्द्रकस्य च वारिणा॥ ७१५॥

दशमूल काढ़ेमें घोटे, इसी प्रकार एक पहर पंचमूल काढ़ेमें घोटकर चनेके समान गोली बनावे। यह गोली रोगीका बल देख कर रोगीको खानेको देय इससे घोर सन्निपात दूर होजाता है। इसमें पहले रसके समान धानकाभात और और दही खानेको और ठण्डा पानी पीनेको देय, इस जगत् पूजित रसका नाम कालाग्निभैरव रस है॥ ७०५—७१२॥

पारेकीभस्म तीन भाग, सीसेकी भस्म, २ भाग, कालकूट विष ६ भाग, हरताल १ भाग, गोदन्ती, अभ्रक, तूतिया, मैनशलि, गन्धक, सुहागा, जमालगोटा, धतूरेके बीज, जमालगोटेकी जड़, कनेरकी जड़ और करिहारी इन सबको ढाककी जड़के रसमें, सात भावना देय; फिर चीतेके काढ़ेमें,

मत्स्यमाहिषमायूरछागवराहडुण्डुभम् (१) ।
प्रत्येकं दशधा मर्द्य शिलाखल्लेन संचयात् ॥ ७१६ ॥
धान्यद्वयां वटीं कुर्य्यात् शुद्धवस्त्रेण धारयेत् ।
दातव्यं चानुपानेन नारिकेलोदकेन च ॥ ७१७ ॥
ताम्बूलञ्च ततो दद्यात् भक्ष्यं शीतोपचारकम् ।
तिलतैले सदा स्नानं घृतमत्स्यादिभोजनम् ॥७१८॥
शीताम्लं दधिसंयुक्तं पुराणान्नञ्च भक्षयेत् ॥ ७१९ ॥
इति त्रैलोक्यचिन्तामणीरसः ॥

माधवस्तु वक्ष्यमाणं रसेश्वरमारभ्य त्रिदोष दावानल कालमेघान्तावातोल्वण सन्निपातचिकित्साऽस्तीत्याहातो वातोल्वणस्य सन्निपातविशेषस्य प्रसङ्गेन

अदरकके रसमें, मछली, भैंस, मोर, बकरा, सूअर और सांपके पित्तमें अलग२ दश२ भावना देय; और प॰ के खरल में घोटे; फिर शुद्धवस्त्रपर दो दो धान भर गोली बनाकर रक्खे। फिर नारियलके जलके संग रोगीको एक गोली खिलाकर पान खिला दे और ठण्डा भोजन दे; शरीरमें तेल लगावे, खानेको घी, मछली, पुराने चावलका भात, और दही आदि ठंडी और खट्टी वस्तु दे। इसका नाम त्रैलोक्यचिन्तामणीरस है ॥ ७१३ ॥ ७१९ ॥

माधवाचार्य्यने लिखा है कि आगे कहे रसेश्वररससे लेकर त्रिदोषदावानलकालमेघरस तक वातोल्वण सन्निपातकी चिकित्सा है।

(१) सर्पविशेषः।

वातोल्वणादि त्रयोदश सन्निपातानाम् समासेन निदानमुपदेक्ष्यामोवयम् (१)।

सन्निपातभेदाः।

भेदास्त्रयोदश भिषग्भिरुदीरितायै
एकोल्वणास्तेषु त्रयश्च द्व्युल्बणाः।
त्रयश्च सर्वोल्वण एक एव
एवं प्रभेदाः खलु सम्प्रदर्शिताः ॥७२०॥
मध्यप्रवृद्धै रथहीनयुक्तैः
षट्स्युश्च भेदाश्च त्रयोदशेमे।
तन्त्रान्तरेष्वत्र मत प्रभेदात्
अन्यानि नामान्यपि सन्ति चैषाम् ॥७२१॥

परन्तु हमने सन्निपातज्वरके निदानमें केवल सामान्य सन्निपातहीके लक्षण लिखे हैं। अर्थात् कोई भेद नहीं लिखा परन्तु वातोल्वण आदि तेरहों सन्निपातके अलग२ लक्षण जाने बिना वैद्यको चिकित्सा करनेमें बहुतही कठिनता होगी, इस लिये हम सबके लक्षण संक्षेपसे अलग२ लिखते हैं।

वैद्योंनि जो तेरह प्रकारके सन्निपात लिखे हैं। उनमें से तीन एकोल्वण अर्थात् वातोल्वण, पित्तोल्वण और कफोल्वण, तीन द्व्युल्वण अर्थात् वातपित्तोल्वण, वातकफोल्वण, पित्तकफोल्वण। और एक सर्वोल्वण, अर्थात् वात, पित्त, कफोल्वण इस प्रकार सात हुए और छः प्रवृद्ध, मध्य, और हीन भेदोंसे

---

(१) अनुवादका।

अथ तेषां नामानि भावप्रकाशे ।

"विस्फारकश्चाशुकारीकम्पनो बभ्रु संज्ञकः ।
शीघ्रकारी तथा भल्लुः सप्तमः कूटपालकः ॥७२२॥
सम्मोहकः पालकश्च याम्यः क्रकच इत्यपि ।
ततः कर्कटकः प्रोक्तस्ततो वैदारिकाभिधः" ॥७२३॥

अथ वातोल्वणस्य लक्षणम् ।

कम्पः प्रलापो मूर्च्छा च कासः श्वासो भ्रमोऽरुचिः ।
कषायत्वं मुखस्यापि जृम्भणं पार्श्ववेदना ॥ ७२४ ॥
वातोल्वणस्य चिह्नानि ज्वरस्यैतानि(१)लक्षयेत् ।

होते हैं। अर्थात् (१) प्रवृद्ध वात, मध्यपित और हीन कफ (२) मध्यवात प्रवृद्ध पित्त और हीनकफ (३) हीनवात प्रवृद्ध पित्त, मध्यकफ, (४) प्रवृद्धवात, हीनपित्त मध्यकफ, (५) मध्यवात हीनपित्त, प्रवृद्धकफ (६) हीनवात, मध्यपित्त और प्रवृद्धकफ ये छः और पहले कहे ७ सब मिलकर १३ हुए वैद्योंने अपनेर मतोंके भेदसे अपने अपने पुस्तकों में इन्हीं तेरहोंके अलगर नाम भी लिखे हैं ॥ ७२० ॥ ७२१ ॥

भावप्रकाशमें इन तेरहोंके नाम इस प्रकारसे लिखे हैं "बिष्फारक १ आशुकारी२ कम्पन ३ बभ्रु ४ शीघ्रकारी ५ भल्लु ६ कूटपालक, ७ संमोहक ८ पालक ९ याम्य १० क्रकच ११ कर्कटक १२ और वैदारिक १३ ।" आगे इनके लक्षण लिखते हैं ॥ ७२२ ॥ ७२३ ॥

(१) सन्निपातस्येति ग्रंथ ।

एष एव हि विख्यातो विस्फारक इति क्षितौ ॥७२५॥

अथ पित्तोल्वणस्य लक्षणम्।

भ्रमोऽतिसारो मुखपाकमूर्च्छे
रक्ताङ्गविन्दुप्रभवश्च गात्रे।
लिङ्गानि पित्तोल्वणसन्निपाते।
भवन्ति वैद्यैः कथितानि प्राच्यैः ॥७२६॥

अथ कफोल्वणस्य लक्षणम्।

कफोल्वणे कम्पनसंज्ञके वै
भवेज्जड़त्वं ह्यतिनिद्रता च।
गीर्गद्गदत्वं मुखमिष्टता च
स्तब्धे च नेत्रे भवतो नरस्य ॥ ७२७ ॥

विष्फारक नामक वातोल्वण सन्निपातमें कांपना, वृथा बकना, मूर्छा, खांसी, श्वास, भ्रम, अरुचि, जंभुआई, मुखका कसैला रस और पसुलीमें पीड़ा ये लक्षण होते हैं ॥७२४-७२५॥

भ्रम, अतिसार, मुखपाक, मूर्छा, शरीरमें लालबिन्दु ये लक्षण आशुकारी नामक पित्तोल्वण सन्निपातमें होते हैं ॥ ७२६ ॥

कम्पननामक कफोल्वण सन्निपातमें बहुतनिद्रा, संज्ञानाश, गद्गद वाणी, मुंहमीठा और नेत्र फैलना ये लक्षण होते हैं ॥ ७२७ ॥

अथ वातपित्तोल्वणस्य लक्षणम् ।

श्वसनमायुप्रकोपसमुद्भवे (१)
ज्वरमदौ मुखशोषतृषेऽधिके ।
अरुचिकासपरिश्रमजारुजः ।
कसनकोष्ठरुजोऽपि भवन्ति वै ॥ ७२८ ॥

अथ वातश्लेष्मोल्वणस्य लक्षणम् ।

वातश्लेष्मोल्वणे चिह्नं मूर्च्छाशूलश्च क्षुत्तृषा ।
पार्श्वपीड़ा स्वेदहानिः श्वासं तन्द्रा च जायते ॥७२९॥
अयं यथार्थनामा (२) वै सन्निपात उदीरितः ।
असाध्यः शीघ्रतारीति वैद्योऽत्र मधुसूदनः ॥७३०॥

अथ पित्तश्लेष्मोल्वणस्य लक्षणम् ।

पित्तश्लेष्माधिको भस्तुः सन्निपात उदीरितः ।

वातपित्तोल्वण बभ्रूनाम सन्निपातमें ज्वर, मद, मुख सूखना, अधिकप्यास, अरुचि खांसी, परिश्रम, श्वास और पेटकी पीड़ा ये लक्षण होते हैं ॥ ७२८ ॥

शीघ्रकारी नामक वात कफोल्वण सन्निपातमें मूर्च्छा, शूल, भूख, प्यास, पसुलीमें पीड़ा, पसीना न आना, स्वांस और जंभुआई ये लक्षण होते हैं वैद्योंने इस सन्निपातको असाध्य कहा है । इसमें ईश्वरही वैद्य है ॥ ७२९ ॥ ७३० ॥

---

(१) श्वसनो वायुर्मदः चित्तविभ्रमः ।

(२) आशुकारी शीघ्रमारकत्वात् ।

अन्तर्दाहो बहिःशीतं तस्मिन् श्वासश्च जायते ॥७३१॥
हिक्कातृष्णा च विड्भेदो गात्रे कोठा भवति हि।
पार्श्वे च दक्षिणेतोदो शीर्षरोगलनिग्रहः ॥७३२॥
ष्ठीवनं श्लेष्मपित्ताढ्यं मुनिभिः कथितं पुरा ॥७३३॥

अथ वातपित्तश्लेष्मोल्वणलक्षणम्।

समस्तदोषरोषोत्थे सन्निपातेऽतिदारुणे।
सर्वेषां तत्र दोषाणां लक्षणानि भवन्ति वै ॥ ७३४ ॥
स्तब्धनेत्रः स्तब्धदेहः श्वासैकपरमो नरः।
त्रिदिनादेवघोरोऽयं नरं हन्ति संशयः ॥ ७३५ ॥

अथ प्रवृद्धमध्यहीनवातादिजनितसन्निपातज्वराणां लक्षणानि। तत्र सम्मोहकस्य लक्षणम्।

कम्पप्रलापारतिमोहकासाः
आयासमूर्च्छा गलतालुशोषाः।

भल्लुनामक वातकफोल्वण सन्निपातमें शरीरके भीतर जलन बाहर शीतलता, श्वास, हिचकी, प्यास, अतिसार, शरीरमें मच्छरके काटनेके समान चिह्न, दहिनी पशुलीमें पीड़ा, शिर, हृदय और कण्ठका रुकना और थूकमें कफ पित्त आना ये लक्षण होते हैं ॥ ७३१ ॥ ७३३ ॥

सब दोषोल्वण कूटपालकनाम सन्निपातमें सब दोषोंके अलग२ लक्षण दिखाई देते हैं रोगीके नेत्र फैल जाते हैं; शरीर स्तब्ध होजाता है और केवल श्वास आता है यह घोर सन्निपात तीनही दिनके भीतर रोगीको मार डालता है ॥ ७३४ ॥७३५॥

पक्षाभिघातश्च विशेषतः स्यात्
सम्मोहके दारुणसन्निपाते ॥७३६॥

अथ पाकलस्य लक्षणम् ।

मन्यास्तम्भः शिरःस्तम्भो मूर्च्छाप्रलपनं हृदि ।
व्यथातन्द्राविनाशश्च संज्ञायाः कसनं भ्रमः ॥ ७३७ ॥
लौहित्यं स्तब्धता चैव नेत्रयोः रुधिरागमः ।
सर्वेभ्यो रोमकूपेभ्यो वाग्रोधश्चापि जायते ॥ ७३८॥
पाकलः सन्निपातोऽयं वैद्यैराद्यैरुदीरितः ॥ ७३९ ॥

अथ याम्यस्य लक्षणम् ।

दाहो हृदि यकृत् प्लीह फुस्फुसानां विशेषतः ।
पाको भवति चोर्द्धाधः पूयशोणितनिर्गमः ॥७४०॥

संमोहकनाम सन्निपातमें शरीरका कांपना, हथावकना, अरती, मोह, खांसी, परिश्रम, मूर्च्छा, कण्ठ और तालू सूखना, और पक्षाघात ये लक्षण होजाते हैं ॥ ७३६ ॥

पालकनामक सन्निपातमें प्राचीन वैद्योंने मन्यास्तम्भ अर्थात् गलेकी पिछली नाड़ियोंका इधर उधरको न चलना, शिरस्तम्भ, मूर्च्छा, तृथावकना, हृदयमें पीड़ा, अधिक जंभुआई आना, संज्ञानाश, खांसी, भ्रम, नेत्रोंका लाल होना, तथा अधिक फैलना, और सब मार्गोंसे रुधिर निकलना और वचन रुकना ये लक्षण कहे हैं ॥ ७३७—७३९ ॥

याम्य नामक सन्निपातमें हृदयमें जलन, यकृत् प्लीह और

दन्तानां पतनञ्चापि मृत्युश्च भवति ध्रुवम् ।
याम्योऽयं कथितो वैद्यैः सन्निपातः सुदारुणः ॥७४१॥

अथ क्रकचलक्षणम् ।

मूर्च्छारतिभ्रमः कम्पो श्रममोहप्रलापकाः ।
मन्यास्तम्भसमायुक्ताः भवन्ति क्रकचे भृशम् ॥७४२॥

अथ कर्कटकस्य लक्षणम् ।

वाग्रोधो रक्तमुखता श्वासो हिक्काऽरतिर्भ्रमः ।
अन्तर्दाहो व्यथा पार्श्वे कण्ठः शूकैरिवावृतः ॥७४३॥
दग्धाखरा च रसना विसर्गाज्ञानमेव च ।
तन्द्रानिद्रातियोगश्च हततेजस्कताऽपि च ॥ ७४४ ॥

फुसफुसों का पकना, नीचे और ऊपरके मार्गोंसे रुधिर निकलना, और दांत गिर जाना ये लक्षण होते हैं इससे रोगी किसी प्रकार नहीं बचता ॥ ७४० ॥ ७४१ ॥

क्रकच नामक सन्निपातमें मूर्च्छा, अरति, भ्रम, कांपना, मोह, थकाई, वृथाबकना और मन्यास्तम्भ ये लक्षण होते हैं ॥ ७४२ ॥

कर्कटक नामक सन्निपात में बचन रुक जाना, मुंहलाल होना, सांस, हिचकी, अरति, भ्रम, हृदयके भीतर जलन, गलेमें कांटेसे जान पड़ना, जलीसी और खरखरीसी जीभ होना, मूत्र और बिष्टा निकलने का ज्ञान न होना, अधिक नींद और जंभुआई आना, तेज नष्ट होजाना, कण्ठ और ताल

तालुकण्ठौष्ठशुष्कत्वं श्लेष्मपूर्णत्वमेव च ।
रक्तनिष्ठीवनञ्चापि कण्ठकूजनमेव च ॥ ७४५ ॥
विपरीतेच्छा च भवति कर्कटे सन्निपातके ।
नैष साध्यो भिषग् वृन्दैः सन्निपातोऽतिदारुणः ॥७४६॥

अथ वैदारिकलक्षणम् ।

दाहो भ्रमः कटीतोदो क्लमः श्वासो विसंज्ञता ।
जड़ता शूलमल्पञ्च हृच्छिरो वस्तिजारुजः ॥ ७४७ ॥
भवन्ति सन्निपातेऽस्मिन् अन्ते च पिडिकाभृशम् ।
कर्णमूले समुत्पन्ना हन्ति वैदारिकी नरम् ॥७४८॥

अथ चिकित्सा ।

रसेन गन्धं द्विगुणं गृहीत्वा
तत्पादभागं रवितालहेम ।

सूखना, कण्ठमें कफ भरना और विपरीत इच्छा होना ये लक्षण होते हैं यह घोर सन्निपात सहस्रों वैद्योंसे भी अच्छा नहीं होता ॥ ७४३—७४६ ॥

वैदारिक नामक सन्निपात में दाह, भ्रम, कमरमें पीड़ा, परिश्रम, सांस, संज्ञा और चैतन्यता का नाश थोड़ा शूल हृदय, शिर और मूत्राशयमें पीड़ा होती है यदि इससे रोगी बच जाय तो इसके अन्तमें जो कर्णमूल होते हैं उससे किसी प्रकार नहीं बचता है ॥ ७४७—७४८ ॥

एकभाग पारा, दोभाग गन्धक और गन्धक से चौथाई

भस्मीकृतं योजय मर्दयेत्तु
दिनत्रयं वह्निरसेन घर्मे ॥ ७४९ ॥
विषस्य दत्त्वाच कलाप्रमाणं
अजादिपित्तैः परिभावयेच्च ।
रक्तिद्वयं चास्य ददीत वह्नि-
कटुत्रयेणार्द्ररसप्रयुक्तम् ॥ ७५० ॥
तैलेन चाभ्यक्तवपुश्च कुर्य्यात्
स्नानं जलेनैव सुशीतलेन ।
यावद्भवेद्दुःसहमस्य शीतं
मूत्रं पुरीषञ्च शरीरकम्पः ॥ ७५१ ॥
पथ्ये यदिच्छा परिजायतेऽस्य
मरीचखण्डं दधिभक्तकञ्च ।

तांबा, हरताल और सोनेकी भस्म, इन सबको मिलाकर तीन दिनतक चीतेके रसमें घोटे और घाममें सुखावे, फिर इन सब औषधियों का १६ वां भाग विष मिलाकर बकरी आदिके पित्तमें भावना देय; फिर दो रत्तीकी गोली बना ले, इस गोलीको चीता, अदरक और त्रिकुटेके रसके सङ्ग देय, तेल लगाकर ठण्डे जलसे स्नान करना चाहिये। जबतक न्हाते २ अधिक जाड़ा न लगने लगे और मूत्र, विष्टा न आजाय तबतक न्हिलाताही रहै जो कुछ रोगीकी खानेकी इच्छा हो वही खानेको देय, इसमें पथ्य दही, खांड़, मिर्च और भात है। यदि खानेकी इच्छा हो तो थोड़ा अदरकका साग भी दे आठ दिनतक इसी

अल्पं ददीताद्र्दकमत्र शाकं
दिनाष्टकं स्नाननिदञ्च पथ्यम् ॥ ७५२ ॥

इति रसेश्वरो रसः ।

कान्तञ्च सूतं हरितालगन्धं
समुद्रफेणं लवणानि पञ्च ।
नीलाञ्जनं तुत्थकमेव रूप्य-
भस्मप्रवालानि वराटकाश्च ॥ ७५३ ॥
वैक्रान्तशम्बूकसमुद्रशुक्ति
सर्वाणि चैतानि समानि कुर्य्यात् ।
सूतो भवेद्द्वादशभागिकश्च
स्नुह्यर्कदुग्धेन विमर्दयेच्च ॥ ७५४ ॥
दिनत्रयं वह्निरसैस्ततश्च
निवेशयेत्ताम्रजसम्पुटे तत् ।
मृदा च संलिप्य रसं पुटेत्त-
द्रसस्ततः स्याद्वडवानलाख्यः ॥ ७५५ ॥

प्रकार स्नान करावे और यही पथ्य है, इसका नाम रसेश्वर रस है ॥ ७४८—७५२ ॥

लोहा, पारा, हरताल, गन्धक, समुद्रफेन, पांचोनमक, काला अञ्जन, तूतिया, चांदीकी भस्म, मूंगा, कौड़ी, विक्रान्त मणि, घोंघा (खोखना) और समुद्रकी सीप इन सबको समान ले और पारा, बारह गुणा डालकर थूहर और आकके दूधमें तीनदिन और तीनदिन चीतेके रसमें घोटे, फिर तांबेके

तत्पादभागेन विषं नियोज्य-
कृशानुतोयेन पचेत् चणं तत् ।
वातप्रधाने च कफप्रधाने
नियोजयेत् त्र्यूषणचित्रयुक्तम् ॥ ७५६ ॥
दोषत्रयोत्थेऽपि च सन्निपाते
वाताधिकत्वादिह सूतकोक्तः ॥ ७५७ ॥

इति वाडवानलो रस ।

लौहाष्टकं मारितमर्कभागं
सूतं द्विभागं समगन्धकञ्च ।
विमर्दयेद्वह्निरसेन तापे
दिनत्रयं चात्र विषं कलांशम् ॥ ७५८ ॥
विचिप्यपित्तैः परिभावितोऽयं
रसोऽर्कमूर्त्तिर्भवति त्रिदोषहा ।

संपुटमें रखकर बन्द करे, फिर कपरोटी देकर गज पुटमें फूंक दे, फिर इससे चौथाई विषमिलाकर चीतेके रसमें थोड़ी देर पकावे; फिर इस रसको वात और कफ प्रधान ज्वरमें त्रिकुटा और चीतेके संग दे, इसी प्रकार सन्निपातज्वरमें भी देय। यह रस वाताधिक रोगोंमें दिया जाता है। इस लिये इसमें पारा अधिक डाला जाता है। इसका नाम वड़वानल रस है॥ ७५३ ॥ ७५७ ॥

लोहा आठ भाग, तांबेकी भस्म एक भाग, पारा दो भाग, और गन्धक दो भाग, इन सबका सोलहवां भाग विष मिला-

ताम्रस्य पात्रे तु दिनैकमात्रं
निम्बूरसेनापि च पित्तवर्गैः ॥ ७५९ ॥
क्षुद्रार्द्रकोत्थेन रसेन सूत-
स्त्रिदोषदावानल एष सिद्धः ।
गुञ्जाद्वयं वा षणयुक्तमस्य
दद्यीत चित्रार्द्र रसेन वापि ॥ ७६० ॥
नाशापुटे चापि नियोजनीया
गुञ्जास्य शुण्ठीमरिचेन युक्ता ॥ ७६१ ॥
इत्यार्कमूर्त्तीरसः ।

यदि ताम्रपात्रे जम्बीरादिरसैः पुनरपि
भावयेत्तदा त्रिदोषदावानलो भवति ॥७६२॥
इति त्रिदोषदावानलोरसः ।

कर तीनदिन चीतेके रसमें घाममें बैठ कर घोटे ... पित्तोंमें भावना दे इसका नाम अर्कमूर्ति रस है इससे सन्निपात दूर होता है ॥ ७५८ ॥ ७६१ ॥

इसही अर्कमूर्ति रसको तांबेके पात्रमें डालकर एकदिन नीबूके रस, सब पित्त अदरकके रस और कटइलीके रसमें घोटे, तो इसका नाम त्रिदोष दावानल होजाता है। इसे त्रिकुटेमें मिलाकर चीते और अदरकके रसमें दो रत्ती खानेको देय, सूंघनेको भी यही एक रत्ती रस सोंठ और मिर्चके संग देय।

अर्थात् अर्कमूर्ति रसको ताँबेके पात्रमें डालकर नीबू आदिके रसमें फिर भावना देय, तो त्रिदोष दावानल रस सिद्ध होता है ॥ ७६२ ॥

तालं नवङ्गं शिलया च नागं
रसैः सुवर्णरवितारपत्रम् ।
गन्धेन लौहं दरदेन सर्वं
पुटेऽमृतं योजय तुल्यभागम् ॥ ७६३ ॥
तत्तुल्यसूतं द्विगुणञ्च गन्धं
तुल्यञ्च गन्धेन समानभागम् ।
निम्बूत्थतोयेन विमर्द्यसर्वं
गोलं प्रकृत्याथमृदाविलिप्य ॥ ७६४ ॥
पुटञ्च दत्त्वाथ विमर्दयेनं
गन्धेन तुल्येन कृशानुनीरैः ।
विषञ्च दत्त्वाथ कलाप्रमाणं
मीषत्कृशानूत्थरसैः पचेत्तु ॥ ७६५ ॥
पित्तैस्तथा भावित एष सूत
स्त्रिदोषदावानलकालमेघः ।

हरताल, वंग, मैनशिल, सीसा, पारा, सोना, ताँबा, चांदी, गन्धक, लोहा और इंगुर इन सबको समान लेकर घोटे; फिर इन सबके समान विष और पारा, पारेसे दूना गन्धक और गन्धकके समान तूतिया डालकर नीबूके अर्कमें घोटकर संपुटमें रखके कपरोटी करे। और गजपुटमें फूंक दे, फिर निकाल कर सबके समान गन्धक मिलाकर चीतेके रसमें घोटे और घोटनेके समय सबका सोलहवां भाग विष डालदे, फिर चीतेका रस डालकर थोड़ा पकावे और पित्तोंमें भावना

वल्लं ददीतास्य च पूर्वयुक्त्या-
दाहोत्तरेतं मधुपिप्पलीभिः ॥ ७६६ ॥
मुद्गश्च शाल्यन्नमिह प्रशस्तं
पथ्यं भवेत्कोष्णमिदं दिनान्ते ॥ ७६७ ॥

इति त्रिदोषदावानलकालमेघो रसः ।

रसेश्वरादिकालमेघान्ता रसा वातोल्वणे सन्निपाते
प्रयोज्या इति रत्नकौमुद्यां माधवः ॥ ७६८ ॥

अपामार्गस्य मूलानां चूर्णं चित्रकमूलजैः ।
वल्कलैर्मर्दयित्वाथ रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ७६९ ॥
तेन सूतसमं (१) गन्धमभ्रकं पारदं विषम् ।
टङ्कणं तालकञ्चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ ७७० ॥

देय । फिर इसे पहली रीतिसे दाहयुक्त ज्वरमें पीपल और शहतके सङ्ग देय । खानेको मूंग, धान और ठण्ढा या कुछ गर्मजल सन्ध्यासमय देय । इसका नाम त्रिदोष दावानल कालमेघ रस है ॥ ७६३ ॥ ७६७ ॥

लटजीरेकी जड़को चीतेकी जड़के वकलेके रसमें पीसकर कपड़ेमें छानकर अर्क निकालले, उस अर्कमें पारा, गन्धक, अभ्रक, विष, सुहागा और हरताल इनको समान लेकर सातदिनतक घोंटे, फिर तीनदिनतक मूसलीके अर्कमें भिगोकर घाममें रक्खे, फिर उस सबको लम्बी घड़ियामें रखकर ऊपर सात कपरोटी करके गजपुटमें फूंक दे, फिर पारेके समान फूंका हुआ लोहा,

(१) पारदसममिति न दोषः ।

त्रिदिनं मुशलीकन्दैर्भावयेद् घर्मरक्षितम्।
मूषाञ्च गोस्तनाकारामापूर्य्योपरिढक्कयेत् ॥ ७७१ ॥
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रै र्वेष्टयित्वा पुटेल्लघु।
रसतुल्यं लोहभस्म मृतवङ्गमहिस्तथा ॥ ७७२ ॥
मधूकसारजलदं रेणुकं गुग्गुलुं शिलाम्।
चाम्पेयञ्च समांशस्यादागार्द्धं शोधितं विषम् ॥ ७७३॥
तत्सर्वं मर्दयेत् खल्ले भावयेद्विषनीरतः।
आतपे सप्तधा तीव्रे मर्दयेद्घटिकाद्वयम् ॥ ७७४ ॥
कटुत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च।
फलत्रयकषायेण मुनिपुष्परसेन च ॥ ७७५ ॥
समुद्रफेणनीरेण विजयापत्रवारिणा।
चित्रकस्य कषायेण ज्वालामुख्यारसेन च ॥ ७७६ ॥
प्रत्येकं सप्तधा भाव्यं तद्वत्पित्तैश्च पञ्चभिः।
सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयेत् ॥ ७७७ ॥

वंग, शीसा, जेठीमधुका सार (मुलहटी) मोथा, रेणुका, गूगुल, मैंनशिल और नागकेसर ये सब एक एक भाग और आधा भाग शुद्ध विष इन सबको खरलमें डालकर दो घड़ी तक घोटे और विषके पानीमें भिगाकर सात बार तेज घाममें सुखावे, इसी प्रकार त्रिफलेके काढ़े में, त्रिकुटेके काढ़े में धतूरेके रसमें अगस्त फूलके रसमें समुद्रफेनके पानीमें भांगके पत्तोंके रसमें, चीतेके काढ़े में, ज्वाल इलके रसमें और पांचोंपित्तोंमें, सात सात भावना देय। फिर सबके समान विषको आगपर रखकर इस औषधीको धूप दे, फिर

विमर्द्यास्त्रचयित्वा च रचयेत्कूपिकोदरे ।
गुञ्जैकं वह्निनीरेण शृङ्गवेररसेन वा ॥ ७७८ ॥
दद्याच्च रोगिणे तीव्रमौढ्यविस्मृतिशान्तये ।
क्षुरेण तालुमाहत्य घर्षयेदार्द्रनीरतः ॥ ७७९ ॥
नोद्घटन्ते यथा दन्तास्तथा कुर्य्यादमुं विधिम् ।
सेचयेन्मन्त्रविद्वैद्यो वारिकुम्भशतैर्नरम् ॥ ७८० ॥
भोजनेच्छा यदा तस्य जायते रोगिणः परा ।
दध्योदनं सितायुक्तं दद्यात्तक्रं सजीरकम् ॥ ७८१ ॥
पाने पानं सिताजातं यदिच्छेत ददाति तत् ।
एवं कृतेन शान्तिः स्यात्तापस्य च रुजस्य च ॥७८२॥
सचन्द्रचन्दनरसालेपनं कुरु शीतलम् ।
यूथिकामल्लिकाजातीपुन्नागवकुलावृताम् ॥ ७८३ ॥

पीसकर शीशीमें भरकर रखदे । फिर चीतेके रस या अदरकके रसमें एकरत्ती प्रमाण देय ; इससे घोरमूर्छा और विस्मृतिका नाश होजाता है । छुरेसे तालुको खुरचकर अदरकके रसमें मिलाकर यह रस मले । इस रसको वैद्य इस युक्तिसे मले कि दांत न बजने पावें । फिर सौ घड़े पानीसे रोगीको स्नान करावे, जब रोगीको बहुत भूखलगे तब दही, चीनी, भात, या जीरा पड़ा मट्ठा और भात देय ; रोगीको यदि पानी-पीनेकी इच्छा होय तो शर्वत् पिलावे और जो कुछ खानेकी इच्छा हो वोही देय ; ऐसा करनेसे गर्मी और रोग शान्त होजाता है । शरीरमें कपूर, चंदन आदिका लेपकरे ; जुही,

विधाय शय्यां तत्रस्थां लेपनैश्चन्दनैर्मुहुः।
हावभावविलासोक्तैः कटाक्षैश्च सुलोचनैः॥ ७८४॥
पीनोत्तुङ्गकुचापीडैः कामिनीपरिरम्भणैः।
रम्यवीणानिनादोक्तैः गायनैः श्रवणामृतैः॥ ७८५॥
पुण्यश्लोककथाद्यैश्च सन्तापहरणं कुरु।
दद्याद्वातेषु सर्वेषु सिन्धुजैः सह वह्निभिः॥ ७८६॥
दद्यात्कणामाक्षिकाभ्यां कनकाह्वयपाण्डुषु (१)।
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योजयेत्॥ ७८७॥
अयं प्रतापलङ्केशः सन्निपातहरः परः॥ ७८८॥

इति श्रीप्रतापलङ्केश्वरोरसः।

निवारी, चमेली, पुन्नाग और मौलसिरीके फूलोंसे भरे पलङ्गपर रोगीको सुलाकर बार बार चन्दन शरीरमें लगावे, हावभाव और विलास भरी ऊंचे स्तनवाली नवीन स्त्रीको रोगीके शरीरसे लिपटावे; रमणीय वीन आदि बाजेबजाकर रोगीको मीठे मीठे गीत सुनावे, पुराने महात्माओंकी कथा सुनावे इस रसको वातसे उत्पन्न हुए रोगोंमें सेंधा और चीतेके रसके संग देय; पीतपांडु रोगमें पीपल, नागकेशर और शहतके संग देय; यह रस उचित अनुपानके संग देनेसे सब रोगोंका नाश कर देता है। इस सन्निपात नाशक रसका नाम प्रतापलङ्केश्वर रस है॥ ७६८—७८८॥

(१) पीतपाण्डुषु।

द्वौ भागौ मरिचस्यापि भागैकममृतस्य च ।
अर्द्धभागं वराटश्च जलेन वटिकां कुरु ॥ ७८९ ॥
भैरवेश्वरनामाऽयं श्लेष्मणां कुलनाशनः ।
शिरःशूलेषु सर्वेषु नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ ७९० ॥
सन्निपाते महाघोरे पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।
वटिकादत्तमात्रेण मुक्तो भवति नान्यथा ॥ ७९१ ॥

इति भैरवेश्वरोरसः ।

टङ्कणं मागधी शङ्खं वत्सनाभं समं समम् ।
आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद् भावनात्रयम् ॥ ७९२ ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यमार्द्रकस्वरसैर्युतम् ।
पीनसे श्वासकासे च शिरोरोगे गलग्रहे ॥ ७९३ ॥
कफरोगान्निहन्त्याशु कफकेतुरयं रसः ॥ ७९४ ॥

इति कफकेतुरसः ।

दो भाग मिर्च, एकभाग विष, आधा भाग कौड़ी, इन सबको जलमें पीसकर गोली बनाले ; इस रससे सब प्रकारके कफका नाश होजाताहै । इसे सब प्रकारके शिरःशूलमें सूंघनेको देय । इसकी एक गोली पीपलके संग देनेसे महा घोर सन्निपात भी दूर होजाता है । इसका नाम भैरवेश्वर रस है ॥ ७८९—७९१ ॥

सुहागा, पीपल, शङ्ख और बछनाग विष इन सबको समान समान लेकर अदरकके रसमें तीन भावना देय ; फिर रोगीको

दग्धशङ्खं त्रिकटुकं टङ्कणं समभागिकम् ।
विषञ्च पञ्चभिस्तुल्यमार्द्रतोयेन मर्दयेत् ॥ ७८५ ॥
वारत्रयं रत्तिकाञ्च वटीं कुर्य्याद्विचक्षणः ।
प्रातः सायञ्च वटिकाद्वयमार्द्रकवारिणा ॥ ७८६ ॥
कफकेतुः कण्ठरोगं शिरोरोगञ्च नाशयेत् ।
पीनसं कफसंघातं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ७८७ ॥

इति द्वितीयकफकेतूरसः ।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम् ।
तुल्यं मनोह्वा तालञ्च कट्फलं धूर्त्तबीजकम् ॥७८८॥
हिङ्गुं द्रमाचिकं कुष्ठं विहङ्गलोकटुत्रिकम् ॥
व्याधिघातफलं वङ्गं टङ्कणं समभागिकम् ॥ ७८९ ॥

पीनस, श्वास, खांसी, शिरोरोग, गलारुकजाना और कफके रोगोंमें एकरत्ती देय ; तो सब रोगोंका नाश होजाता है। इसका नाम कफकेतू रस है ॥ ७८२—७८४ ॥

शङ्खकी भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल और सुहागा ये सब एक२ भाग और बिष इनके समान लेकर तीनबार अदरकके रसमें घोटे, और एक एक रत्तीकी गोली बनाले, फिर रोगीको अदरकके रसमें घोलकर सन्ध्या और सवेरे एक एक गोली देय, इससे कण्ठरोग, शिररोग, पीनस, इकट्ठा हुआ कफ और घोर सन्निपातका नाश होजाता है। इसका नाम द्वितीय कफकेतू रस है ॥ ७८५ ॥ ७८७ ॥

हिंगुरसे निकला पारा, गन्धक, तांबेकी भस्म, तूतिया, मैंन

स्नुहीक्षीरेण वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक् ।
विज्ञाय कोष्ठं कालञ्च योजयेद्रक्तिकां क्रमात् ॥८००॥
वातश्लेष्मणि मन्दाग्नौ पित्तश्लेष्माधिकेऽपि च ।
जीर्णज्वरे च श्वयथौ सन्निपाते कफोल्वणे ॥ ८०१ ॥
बलासप्रबलं त्यक्त्वा धातुं वातात्मकं नयेत् ।
सेवनात्सर्वरोगघ्नः श्लेष्मकालानलो रसः ॥ ८०२ ॥

इति श्लेष्मकालानलो रसः ।

अथ मध्यज्वरादौ ।

पारदं गन्धकञ्चैव हरितालं समाक्षिकम् ।
कटुत्रयं तथा पथ्या क्षारौ द्वौ सैन्धवं तथा ॥ ८०३ ॥

शिल, हरताल, कायफल, धतूरेकेबीज, हींग, सोनामाखी, कूट, निसोत, जमालगोटेकी जड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, फिर वालेके फल, वंग और सुहागा इन सबको समान समान लेकर बुद्धिमान् वैद्य थूहरके दूधमें घोटकर एक रत्तीकी गोली बनाले, फिर पेट और समयके अनुसार एक एक गोली देय; इससे वात कफके रोग, मन्दाग्नि पित्तकफोल्वण सन्निपात, जीर्णज्वर, श्वयथु और कफोल्वण सन्निपातका नाश होजाता है। यह रस कफके बलको घटाकर वायुको बढ़ाता है। और सब रोगोंका नाश करता है। इसका नाम श्लेष्मकालानल रस है॥ ७९८॥८०२ ॥

आगे मध्यम ज्वरोंके लिये रस लिखते हैं ।

पारा, गन्धक, हरताल, सोनामाखी, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, नीमकेबीज, कुचिला,

निम्बस्य विषमुष्टेश्च वीजं चित्रकमेव च।
एषां माषोन्मितं भागं ग्राह्यं प्रति सुसंस्कृतम् ॥८०४॥
द्विमाषं कामकफलं विषञ्चापि द्विमाषिकम्।
निर्गुण्डीस्वरसेनैव शोषयेत्तत्प्रयत्नतः ॥ ८०५ ॥
सार्द्धरक्तिप्रमाणेन वटी कार्य्या सुशोभना।
सर्वज्वरहरी चैषा भेदिनी दोषनाशिनी ॥ ८०६ ॥
आमाजीर्णप्रशमनी कामलापाण्डुरोगहा।
वह्निदीप्तिकरी चैव जठरामयनाशिनी ॥ ८०७ ॥
उष्णोदकानुपानेन दातव्या हितकारिणी।
भाषितो लोकनाथेन ज्वरमातङ्गकेशरी ॥ ८०८ ॥

इति ज्वरमातङ्गकेशरी रसः।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धं विषञ्च दरदं पृथक्।
कर्षप्रमाणं कर्षार्द्धं लवङ्गं मरिचं पलम् ॥ ८०६ ॥

और चीता इन सबको एक२ मासा लेकर शुद्ध करे, इनमें दो दो मासे धतूरेके बीज और विष मिलाकर निर्गुण्डीके रसमें घोटकर सुखाले, फिर डेढ़ डेढ़ रत्तीकी गोली बनाले, इस गोलीसे सब दोष, सब प्रकारके ज्वर, आमाजीर्ण, कामला और पाण्डु-रोगका नाश होजाता है, अग्नि बढ़ती है, दस्त खुल जाता है, और पेटके सब रोग दूर होजाते हैं। इस गोलीको गर्मजलके संग देना चाहिये, भगवान् शिवने इसका नाम ज्वर मातङ्गकेसरी रस कहा है॥ ८०३ ॥ ८०८ ॥

शुद्धं कनकवीजञ्च पलद्वयमितं तथा ।
त्रिवृताकर्षमेकन्तु भावयेद्दन्तिकाद्रवैः ॥ ८१० ॥
सप्तधा च ततः कार्य्या गुडी गुञ्जामिता शुभा ।
ज्वरमुरारिनामायं रसोज्वरकुलान्तकः ॥ ८११ ॥
अत्यन्ताजीर्णपूर्णे च ज्वरे विष्टम्भसंयुते ।
सर्वाङ्गग्रहणे गुल्मे चामवातेऽम्लपित्तके ॥ ८१२ ॥
कासे श्वासे चये रोगेऽप्युदरे सर्वसम्भवे ।
गृध्रस्यां सन्धिमज्जस्थे वाते शोथे च दुस्तरे ॥८१३॥
यकृतिप्लीहरोगे च वातरोगे चिरोत्थिते ।
अष्टादशकुष्ठरोगे सिद्धो गहननिर्मितः ॥ ८१४ ॥

इति रसमङ्गलोक्तज्वरमुरारीरसः ।

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, विष और हिंगुर ये सब एकर कर्ष लौंग आधाकर्ष, मिर्च एकपल, शुद्धकिये हुए धतूरेके बीज दो दो पल और निसोत एककर्ष इन सबको जमालगोटेकी जड़के रसमें सात भावना देकर एकर रत्तीकी गोली बना ले; इससे सब प्रकारके ज्वर, घोर अजीर्ण, विष्टम्भ, सर्वांगपीड़ा, आमवात, अम्लपित्त, खांसी, श्वास, क्षय, सबदोषोंसे उत्पन्न हुए उदररोग, गृध्रसी, गठिया, मज्जागतवायु, घोरशोथ, यकृत्, प्लीह, पुराने वातरोग और अठारहों प्रकारके कुष्टरोग दूर होजाते हैं। यह औषधि रस मंगलनाम ग्रन्थमें लिखी है। इसका नाम ज्वरमुरारी रस है ॥ ८०८ ॥ ८१४ ॥

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं टङ्कणं नागराभया (१)।
जयपालसमायुक्तं सद्योज्वरनिवारणम् ॥ ८१५ ॥
सर्वचूर्णसमं जयपालचूर्णं सर्वं पिष्ट्वा कलाय-
प्रमाणा वटिका कार्य्या आर्द्रकस्वरसेन पिवेत् ॥ ८१६

इति द्वितीयो ज्वरमुरारीरसः।

शुद्धसूतं विषं व्योषं गन्धं त्रिफलमेव च।
जयपालसमं कृत्वा भृङ्गतोयेन मर्द्दयेत् ॥ ८१७ ॥
गुञ्जामात्रा वटी कार्य्या बालानां सर्षपाकृतिः।
सितया च समं पीता पित्तज्वरविनाशिनी ॥ ८१८ ॥
मरिचेन प्रयुक्ता सा सन्निपातज्वरापहा।
पिप्पलीजीरकाभ्याञ्च दाहज्वरविनाशिनी ॥ ८१९ ॥

हींगुर, विष, मिर्च, पीपल, सुहागा, हर्र, ये सब समान, सोंठ २ भाग और जमालगोटा इन सबके समान इन सबका चूर्ण बनावे, फिर रोगीको अदरक के रसमें घोलकर एक उड़द भर देय इससे नवीनज्वर शीघ्र नाश होजाता है इसका नाम द्वितीय ज्वरमुरारी रस है ॥ ८१५—८१६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धविष, सोंठ, मिर्च, पीपल, गंधक और त्रिफला ये सब समान और सबके समान जमालगोटा लेकर भांगरेके अर्कमें घोटकर एकरत्तीकी गोली बनावे, परन्तु बालकोंके लिये सरसोंके समान बनावे फिर उसे चीनीके संग देनेसे पित्तज्वर,

(१) गुञ्जा: इति भागौ।

ज्वरकेशरिनामाऽयं रसोज्वरविनाशनः ॥ ८२० ॥

इति ज्वरकेशरीरसः।

त्रिकटुत्रिफलाटङ्गं विषगन्धकपारदम्।
जैपालञ्च समं मर्द्यं द्रोणपुष्पीरसैर्दिनम् ॥ ८२१ ॥
ताम्बूलेन समं प्रातःखादेद् गुञ्जामितां वटीम्।
मुद्गयूषं शिखरिणी (१) पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥ ८२२ ॥
नवज्वरं त्रिदोषोत्थं जीर्णञ्च विषमज्वरम्।
दिनैकेन निहन्त्याशु रसोऽयं ज्वरभैरवः ॥ ८२३ ॥

इति ज्वरभैरवो रसः।

रसोगन्धस्ताम्रं त्रिकटुकटुकाटङ्गण वरा।

मिर्चके संग देनेसे सन्निपातज्वर, तथा पीपल और जीरेके संग देनेसे दाहयुक्त ज्वरका नाश होजाता है। इसका नाम ज्वर-केसरी रस है॥ ८१७॥ ८२०॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेरा, आंवला, विष, गन्धक, पारा जमालगोटा इन सबको समान लेकर देनेके रसमें घोटकर एकरत्तीकी गोली बनावे, फिर रोगीको एक गोली पानके संग प्रातःकाल देय, खानेको मूंगकी दालका पानी या सिकरन देय, इससे नवीनज्वर, सन्निपात, जीर्णज्वर और विष-मज्वर एकही दिनमें दूर होजाते हैं। इसका नाम ज्वरभैरव रस है॥ ८२१—८२३॥

पारा, गन्धक, तांबा, त्रिकुटा, कुटकी, त्रिफला, सुहागा,

(१) सिताम्बुमस्तु।

त्रिवृद्दन्तीहिमद्युतिमणिविषं तत् सममिदम् ॥
समस्तैस्तुल्यं स्याद् विमलजयपालोद्भवरजः।
ततो वर्च्चोचौरे प्रगुणमृदितं दन्तिसलिलैः ॥८२४॥
द्विगुञ्जास्य प्रौढ़ं जयति वटिका सर्वमतुलम् (१)।
ज्वरं पाण्डुं गुल्मं ग्रहणिगुदकीलोद्भवरुजः ॥
मरुत्कृत्याजीर्णं प्रबलमपि सामं क्रिमिगदम्।
विबन्धं प्लीहानं यकृतमपि विद्याधररसः ॥ ८२५ ॥

इति विद्याधरोरसः।

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं टङ्गणं नागराह्वयम्।
जयपालसमायुक्तं सद्योज्वरविनाशनम् ॥ ८२६ ॥

इति वृहद्धिङ्गुलेश्वरो रसः।

और निसोत, जमालगोटेकी जड़, सुवर्णकान्तमणि ये सब समान और इन सबके समान, शुद्ध जमालगोटेका चूर्ण लेकर थूहरके दूध और जमालगोटेकी जड़के पानीमें घोटकर एकरत्तीकी गोली बनावे; इस गोलीसे सन्निपात, पांडुरोग, गुल्म, ग्रहणी, गुदकील, वायुसे उत्पन्न हुआ शूल, अजीर्ण, आमयुक्त और कृमिरोग, विबंध, प्लीहा और यकृत् रोगोंका नाश होजाता है। इसका नाम विद्याधर रस है ॥ ८२४ ॥ ८२५ ॥

हिंगुर, विष, त्रिकुटा, सुहागा, सोंठ और जमालगोटा ये सब समभाग लेकर चूर्ण बना ले, इस चूर्णसे शीघ्र आया ज्वर दूर होजाता है। इसका नाम बृहत् हिंगुलेश्वर रस है ॥८२६॥

(१) सर्वमिति ज्वरस्य विशेषणं तेन सर्वदोषोत्थं ज्वरम्।

शम्भोः कंठविभूषणं समरिचं दैत्येन्द्ररक्तं रविः ।
पक्षौ सागरलोचनं शशियुगं भागोऽर्कसंख्यान्वितः ॥
खल्ले तत् परिमर्दितं रविजलैर्गुञ्जैकमात्रं ददेत् ।
सिद्धोऽयं ज्वरहस्तिदर्पदलनः पञ्चाननाख्योरसः ॥ ८२७

पथ्यञ्च देयं दधिभक्तकञ्च
सिन्धूत्थपथ्यामधुनासमेतम् ।
गन्धानुलेपोहिमतोयपानं
दुग्धञ्च देयं शुभदाडिमञ्च ॥ ८२८ ॥

इति पञ्चाननोरसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा ।
चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥८२९

बिष दो भाग, मिर्च ४ भाग, गन्धक २ भाग इंगुर दो भाग, तांबा १२ भाग इन सब ओषधियोंको खरलमें डालकर आकके काढ़े में घोटे फिर एकरत्तीकी गोली बनाले; इससे सब प्रकारके ज्वर दूर होजाते हैं। खानेको सेंधानमक और हर्रे मिलाकर दहीभात, देय; यदि मीठा खानेकी इच्छा हो तो शहत दे शरीरमें चन्दन आदि ठण्डी वस्तुएं लगावे, दूध और और पानी पिलावे अनार खिलावे इसका नाम पञ्चानन रस है ॥ ८२७—८२८ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक दो भाग, मिर्च २ भाग, सुहागा २ भाग और इन चारोंके समान चीनी डालकर मछलीके पित्तमें

त्रिदिनं मर्दयेत् तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः ।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं त्वनु ॥ ८३० ॥
तक्रभक्तञ्च वृन्ताकं पथ्यं तत्र प्रदापयेत् ।
त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युग्रं नाशयेज्ज्वरम् ॥८३१॥

इति चन्द्रशेखरो रसः ।

रसगन्धामृतञ्चैव समं शुद्धञ्च टङ्कणम् ।
मर्दयेत् खल्लमध्ये तु यावत्स्यात्कज्जलप्रभम् ॥ ८३२ ॥
नकुलारिमुखे क्षिप्त्वा मृदा संवेष्टयेद्बहिः ।
स्थापयेन्मृण्मये पात्रे ऊर्ध्वाधोलवणं क्षिपेत् ॥ ८३३ ॥
भाण्डवक्त्रं निरुध्याथ चतुर्यामं दृढाग्निना ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्लेकृत्वा तु कज्जलीम् ॥८३४॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं नस्यकर्म्मणि योजयेत् ।
वामभाग ज्वरं हन्ति तत्क्षणाल्लोक कौतुकम् ॥८३५॥

३ दिन घोटे फिर उसीमें भावना देय। यह रस ठंडे जलके संग दो रत्ती दिया जाता है इससे कफ और पित्तसे उपजा हुआ घोर ज्वर तीनही दिनमें शान्त होजाता है खानेको मठा भात और बैंगन देने चाहिये इसका नाम चन्द्रशेखर रस है ॥ ५२८—५३१ ॥

पारा, गन्धक, विष और सुहागा ये सब समान इन सबको खरलमें पीसकर कज्जली करे; फिर सांपके मुंहमें भरके कपरौटी करदे; फिर उसे मिट्टीके बर्त्तनमें ऊपर नीचे नमक भर

कुर्य्याद्दक्षिणभागेन चारोग्यं निश्चितं भवेत् ।
गोप्याद्गोप्यतमं गोप्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ८३६ ॥
अर्द्धनारीश्वरोनाम रसोऽयं कथितो भुवि ॥ ८३७ ॥

इति अर्द्धनारीश्वरो रसः ।

हिङ्गुलभागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयोमताः ।
द्वौ भागौ टङ्कणस्यापि भागैकममृतस्य च ॥ ८३८ ॥
तत्सर्वं मर्दयेच्छुष्कं याममेकं भिषग्वरः ।
शृङ्गवेराम्बुना मर्द्यो व्योषचित्रकसैन्धवैः ॥ ८३९ ॥
यामद्वयमितस्तापं हरत्येष न संशय ।
घनसारसमानेन चन्दनेन विलेपनम् ॥ ८४० ॥

कर बीच में रख दे ; फिर बर्तनके मुंहको बन्दकरके चारपहर तक उसके नीचे तेज आग देय । फिर जब आपसे आप ठण्डा होजाय तब पीस कर उठा रक्खे रोगीको सूंघनेके लिये एक रत्ती देय, यह ऐसा अद्भुत रस है कि यदि रोगीको दहने नाक के पुटमें सुंघावे तो उसी समय दहने ओरका और बांये ओरके पुटमें सुंघावे तो बांये ओरके सब शरीरोंका ज्वर उतर जाता है और जिधर न सुंघावे उधर वैसा ही बना रहता है इस रस को वैद्य बहुत छिपाकर रक्खे इसका नाम अर्द्धनारीश्वर रस है ॥ ८३२—८३७ ॥

ईंगुर ४ भाग, जमालगोटा ३ भाग, सुहागा २ भाग और विष १ भाग इन सबको एक पहर तक सूखा घोटे, फिर त्रिकुटा, चीता और सेन्धानमक डालकर अदरकके रसमें दो

विदध्यात्कांस्यपात्रेण वीजयेद्रोगिणं भिषक्।
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेदिन्दुसंयुतम् (१) ॥८४१॥
सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे।
आमवाते वातगुल्मे शूले प्लीहि जलोदरे॥ ८४२॥
शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सन्ततज्वरे।
अग्निमान्द्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसोत्तमः ॥८४३॥
मृतसञ्जीवनो नाम विख्यातो रससागरे॥ ८४४॥

इति मृतसञ्जीवनो रसः।

भागैकं रसराजस्य भागञ्च हेममाक्षिकात्।
भागद्वयं शिलायाश्च गन्धकस्य त्रयोमताः॥ ८४५॥
तालकाष्टादशभागाः शुल्वं स्याद्भागपञ्चकम्।
भल्लातकात् त्रयोभागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥८४६॥

पहर तक छोटे, इससे सब प्रकार का दाह दूर होजाता है, रोगीके शरीरमें चन्दन और कपूर लगावे; कांसेके बर्तनसे हाथ पैर घिसे पंखेसे हवा करे खानेको मट्ठा और भात कपूर मिलाकर देय इस रसको घोर सन्निपात, विषमज्वर, आमवात, वातगुल्म, शूल, प्लीहा, जलोदर, शीतज्वर, दाहज्वर, सततादिक विषमज्वर, मन्दाग्नि और वातरोगोंमें देय, रससिंगारग्रन्थमें इसका नाम मृतसञ्जीवनी रस लिखा है॥ ८३८—८४४॥

पारा १ भाग, सोनामाखी १ भाग मैनशिल २ भाग, गन्धक ३ भाग, हरताल अठारह भाग, तांबा ५ भाग और भिलावा ३

(१) कर्पूरदूरम्।

वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढ़े मृण्मयभाजने ।
विधाय सुदृढ़ीं मुद्रां पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ ८४७ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्लयेत्सुदृढं पुनः ।
गुञ्जाचतुष्टयञ्चास्य पर्णखण्डेन दापयेत् ॥ ८४८ ॥
रसराजः प्रसिद्धोऽयं ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥ ८४९ ॥
इति श्रीरसराजोरसः ।

पारदोगन्धकश्चैव त्रिक्षारं लवणत्रयम् ।
गुग्गुलुर्वत्सनाभश्च प्रत्येकन्तु द्विमाषकम् ॥ ८५० ॥
कृष्णोन्मत्तजटानीरै (१) र्भावयेत्सप्तवासरम् ।
गोक्षुरेन्द्रकमारीषं (२) करञ्जचित्रतेजिका ॥८५१॥
सुकुरवल्कलताभिश्च त्रिफलावृहतीरसैः ।

भाग, इन सबको थूहरके दूध में भिगोकर दृढ़ मिट्टीके बर्तनमें रक्खे और ऊपरसे बन्द करके पांच पहर तक पकावे, जब आप से आप ठण्डा होजाय तब उतार कर पीसले फिर पानके सङ्ग चाररत्ती देनेसे आठों प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है इसका नाम रसराज रस है ॥ ८४५ ॥ ८४९ ॥

पारा, गन्धक, तीनों खार, तीनों नमक, गूगुल और बछ-नाग इन सबको दो दो मासे लेकर कालेधतूरे की जड़के रसमें सात भावना देय, फिर गोखुरु, इन्द्रजौ, चौलाई, करंजुवा, चीता, तेजबल, भूकुरैया, त्रिफला और कटहलीके रसमें घोट

(१) कृष्णधतूरमूलरसैः ।
(२) तस्युत्तोयम् कृष्णोन्मत्तादिरसैः प्रत्येकं मर्दिता कृष्णलाफलसन्निभा गुटीर्भिन्नेत्यर्थः ।

मर्दिता वटिका कार्य्या कृष्णलाफलसन्निभा ॥८५२॥
ततो वटीद्वयं दत्त्वा यत्नैः पाठ्यादिभिर्व्रतः।
रसः सर्वज्वरं हन्ति क्षणमात्रान्न संशयः ॥८५३॥

इति मुद्राघोटको रसः।

पारदं गन्धकं टङ्कं शुद्धं चूर्णं समं समम्।
पारदाद्द्विगुणं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ८५४ ॥
सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वग्भस्मशर्करापि च।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ८५५ ॥
द्विगुञ्ज तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः।
रसः शीतारिनामाऽयं शीतज्वरहरः ॥ ८५६ ॥

इति शीतारीरसः।

समांशं मर्दयेत् खल्वे रसं गन्धं शिलाविषम्।

कर एक रत्तीकी गोली बनावे, फिर रोगीको दो गोली चौते आदिके रसके संग देय तो ज्वरका क्षणभर में नाश होजाता है इसका नाम मुद्राघोटक रस है ॥ ८५० ॥ ८५३ ॥

पारा, गन्धक, और शुद्ध सुहागा ये सब समान, जमालगोटेकी गिरी पारेसे दूनी, सेन्धा, मिर्च, इमिलीकी छालकी भस्म और शक्कर ये सब पारेके समान इन सबको एकदिन तक नीबूके अर्कमें घोटे, फिर वातकफज्वरमें गरम जलके संग दोरत्ती देय, इससे शीतज्वर बहुत शीघ्र अच्छा होजाता है। इसका नाम शीतारि रस है ॥ ८५४ ॥ ८५६ ॥

पारा, गन्धक, मैनशिल और विष इनको समान लेकर

निर्गुण्डीस्वरसैर्भाव्यं त्रिवारं चार्द्रकद्रवैः॥ ८५७॥
गुञ्जैकं भक्षयेत्पर्णै ज्वरं हन्ति महाद्भुतम्॥ ८५८॥
इति पर्णखण्डेश्वरो रसः।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धकम्।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्लारसैर्दिनम्॥ ८५९॥
मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत्।
अङ्गुलार्द्धार्द्धमानेन (१) तं पचेत्सिकताह्वये॥८६०॥
यत्नं यावत् स्फुटन्तीव व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः।
ताम्रपात्रं समुद्धृत्य चूर्णयेन्मरिचैः समम्॥८६१॥
शीतभञ्जीरसोनाम द्विगुञ्जं वातिके ज्वरे।

खरलमें घोटे, फिर निर्गुण्डी और अदरकके रसमें तीनर भावना देय, फिर रोगीको पानके संग एकरत्ती खिलानेसे ज्वर बहुत शीघ्र दूर होजाता है। इसका नाम पर्णखण्डेश्वर रस है॥ ८५७—८५८॥

पारा, खपरिया, हरताल, तूतिया, सुहागा और गन्धक ये सब शुद्ध एकर भाग लेकर करेलेके रसमें एकदिन घोटे, फिर उसी पिसे हुए कल्कको तांबेके बर्त्तनके भीतर लेपदे। लेप पाव अंगुल मोटा करना चाहिये; फिर इसे बालुकायन्त्रमें पकावे और हड़ियाके मुंह पर धान डाल दे, जब धान भुन-जांय तब जाने कि रसभी पकगया; फिर तांबेके बर्त्तनको

(१) अङ्गुल्यार्द्धेन।

दातव्यं पर्णखण्डेन मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्वरम् ॥ ८६२ ॥

शुद्धताम्रं षट्तोलकं तेन निर्मितं ताम्रखल्लं प्रत्येकं तोलमितेन पारदादि षड्द्रव्येन लिप्तम् अधोमुखं कृत्वा स्थाल्यां संस्थाप्य पात्रान्तरेणाच्छाद्य उपरि वालुकाभिः स्थालीं परिपूर्य्य तदुपरि व्रीहीन् दत्वा चुल्ल्यां निवेश्य तावदग्निज्वाला दातव्या यावद्व्रीहयो न स्फुटन्ति स्फुटितेषु व्रीहिषु रसः सिद्धो भवति पश्चान्मरिचानि षट्तोलकं सर्वमेकीकृत्य चूर्णयित्वा वल्लं द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन सह भक्षयेदित्युपदेशः ॥ ८६३ ॥

इति शीतभञ्जीरसः।

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूर्त्तबीजं त्रिभि समम्।

निकालकर उसमें छः मिर्च डालकर पीसले इस रसको पानके संग वातज्वरमें दो रत्ती दिये तो क्षणभरमें वातज्वर दूर हो जाता है। इसके बनानेकी यह विधि है कि छः तोले शुद्ध तांबे का बर्त्तन बनावे उसमें पारा आदि शु. एक २ तोला छै औषधियोंका लेप करे, फिर उस बर्त्तनको हडियाकी तलीमें उलटा रख कर दूसरे बर्त्तनसे ढक दे, फिर हांडीमें बालू भरकर मुंह पर धान डाल दे जब आंच लगते२ बालू इतना गर्म हो जाय कि धानभुन जांय तब जाने कि सिद्ध होगया तब उतार कर छः तोले मिर्च मिलाकर पीसले, फिर रोगीको पानके संग दो रत्ती खानेको देय। इसका नाम शीतभञ्जी रस है॥ ८५८-८६३ ॥

चतुर्णां द्विगुणं व्योषं (१) चूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥८६४॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम्।
ज्वराङ्कुशो रसो नाम्ना ज्वरान् सर्वान् विनाशयेत् ॥८६५
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्च चतुर्थकम्।
विषमञ्च त्रिदोषोत्थं हन्ति सद्यो न संशयः ॥८६६॥

इति ज्वराङ्कुशोरसः।

रसस्य द्विगुणं गन्धं गन्धतुल्यन्तु टङ्कणम्।
रसतुल्यं विषं योज्यं मरिचं पञ्चधा (२) विषात् ॥८६७॥
कट्फलं दन्तिबीजञ्च प्रत्येकं मरिचोन्मितम्।
ज्वराङ्कुशोरसोह्येष चूर्णयेद्दिनिचित्रकणम् ॥ ८६८ ॥
माषैकेन निहन्त्याशु ज्वरं जीर्णं त्रिदोषजम् ॥ ८६९ ॥

इति द्वितीय ज्वराङ्कुशोरस।

शुद्धपारा, विष, गन्धक, ये सब समान इन सबके समान धतूरेके बीज, चारोंसे दुगुणा त्रिकुटा इन सबको चूर्ण बनाकर जम्बीरी नीबूका मज्जा और अदरकके रसके संग रोगीको देय; इससे एकाहिक, द्वाहिक, चतुर्थक, विषम सन्निपात और नवीन आदि सब प्रकारके ज्वर दूर होजाते हैं इसका नाम ज्वरांकुश रस है ॥ ८६४—८६६ ॥

पारा एकभाग, गन्धक दोभाग, सुहागा२ भाग, विष एकभाग

---

(१) कटुत्रयं सर्वद्विगुणम्।

(२) पञ्चगुणम्।

ताम्रतो द्विगुणं तालं मर्दयेत्सुषवीद्रवैः।
प्रपुटेद्भूधरे शीते (१) वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ ८७० ॥
प्रपुटेद्भूधरे पश्चात्पञ्चगुञ्जामितं भजेत् (२)।
आर्द्रकस्य रसेनैव सर्वज्वरनिकृन्तनः ॥ ८७१ ॥
एकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकं चतुराहिकम्।
विषमञ्चापि शीताढ्यं ज्वरं हन्ति ज्वराङ्कुशः ॥८७२॥

इति तृतीयोज्वराङ्कुशो रसः।

शुद्धसूतं तथा गन्धं कर्षमानं (३) नयेद्बुधः।

मिर्च, कायफल और जमालगोटा ये तीनों पांच२ भाग, इन सबका अत्यन्त चिकना चूर्ण बनावे इससे जीर्णज्वर और सन्निपातज्वर शीघ्रही नाश होजाते हैं, इसका नाम द्वितीयज्वरांकुशरस है ॥ ८६७—८६९ ॥

तांबा एकभाग और हरताल २ भाग इन दोनोंको करेलेके रसमें घोटकर भूधरयन्त्रमें आंच देय, जब आपसे आप ठण्डा होजाय तब निकाल कर थूहरके दूधमें घोटकर फिर भूधरयन्त्रमें आंच देय; फिर चूर्ण बनाकर अदरकके रसके संग रोगीको पांचरत्ती देय इससे सब प्रकारके ज्वर अर्थात् एकाहिक, द्व्याहिक, चातुर्थिक और शीतज्वर आदि नाश होजाते हैं। इसका नामभी ज्वरांकुशरस है ॥ ८७०—८७२ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, एक२ कर्ष सोंठ, सुहागा, हरताल

(१) आम्रशीतला मते। (२) सेवेत। (३) ग्रन्थकर्षं रसांशम्।

महौषधं टङ्कणञ्च हरितालं तथा विषम्॥ ८७३॥
रसार्द्धं मर्द्दयेत् खल्ले भृङ्गराजरसेन तु।
त्रिदिनं भावनां दत्त्वा चतुर्थे वटिकां ततः॥ ८७४
कुर्य्याच्चणकमात्राञ्च पिप्पलीमधुसंयुतः।
एष ज्वराङ्कुशोनाम विषमज्वरनाशनः॥ ८७५॥

इति चतुर्थज्वराङ्कुशो रसः।

मरिचं टङ्कणं शङ्खचूर्णं पारदं गन्धकम्।
शोधितं ब्रह्मपुत्रञ्च भागमेकं विनिक्षिपेत्॥ ८७६।
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं नागवल्लीदलैः सह।
ज्वराङ्कुशोरसोह्येष ज्वरमष्टविधं जयेत्॥ ८७७॥

इति पञ्चम ज्वराङ्कुशो रसः।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मरिचं नागरं कण ।

और विष ये सब आधा२ कर्ष लेकर भांगरे रसमें, तीन दिनतक भावना देय; फिर चौथे दिन गोली बना ले; इस गोलीको पीपल और शहतके संग देनेसे विषमज्वर दूर होजाता है। इसका नाम ज्वरांकुशरस है॥ ८७३—८७५॥

मिर्च, सुहागा, शङ्खका चूर्ण, पारा, गन्धक और शोधा हुआ विष इन सबको एक२ भाग लेकर चूर्ण बनाले यह चूर्ण दो रत्ती पानके संग रोगीको देनेसे आठों प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं। इसका नाम ज्वरांकुशरस है॥ ८७६—८७७॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, मिर्च, सोंठ, पीपल, तज, जमाल-

त्वचं जैपालकं कुष्ठं भूनिम्बं मुस्तकं पृथक् ॥८७८॥
चूर्णयित्वा समांशन्तु कज्जल्याः सह मेलयेत्।
निर्गुण्ड्याः स्वरसेचापि आर्द्रकस्य रसे तथा ॥८७९॥
भावनां कारयित्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक्।
वटिकां भक्षयित्वा तु वस्त्रवेष्टञ्च कारयेत् ॥ ८८० ॥
एषा ज्वराङ्कुशवटी सर्वज्वरविनाशिनी।
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥८८१॥
प्राकृतं वैकृतं वापि वातश्लेष्मकृतञ्च यत्।
अन्तर्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव वा।
ज्वरमष्टविधं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८८२ ॥

इति सर्वज्वराङ्कुशवटी।

पारदं गन्धकं ताम्रं हिङ्गुलं तालमेव च।

गोटा, कूट, चिरायता और मोथा इन सबको एक२ भाग लेकर चूर्ण बनाकर पारे और गन्धककी कज्जलीमें मिला दे, फिर सिनुवार और अदरकके रसमें भावना देकर गोली बनाले ; फिर एकगोली खिलाकर रोगीको कपड़ा उढ़ादे, इस गोलीसे अलग अलग दोषोंसे उत्पन्नहुआ ज्वर, सन्निपात, विषमज्वर, प्राकृतज्वर, वैकृतज्वर, वातकफ ज्वर, अन्तर्गत-ज्वर, बहिर्गतज्वर, आमरहितज्वर और आमसहित आठों प्रकारके ज्वर इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष नष्ट होजाते हैं ॥ ८७८—८८२ ॥

लौहं वङ्गं माक्षिकञ्च खर्परञ्च मनःशिला ॥ ८८३ ॥
मृताभ्रकं गैरिकञ्च टङ्कणं दन्तिवीजकम्।
सर्वाण्येतानि तुल्यानि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥८८४॥
जम्बीर तुलसीचित्रविजयातिन्तिड़ीरसैः।
एभिर्दिनत्रयं (१) रौद्रे निर्जने खल्लगह्वरे ॥८८५॥
चणमात्रां वटीं कृत्वा छायाशुष्काञ्च कारयेत्।
महाग्निजननी चैषा सर्वज्वरविनाशिनी ॥ ८८६ ॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव चिरकालसमुद्भवम्।
ऐकाह्निकं द्व्याह्निकञ्च त्रिदोषप्रभव ज्वरम् ॥ ८८७ ॥
चतुर्थकं तथात्युग्रं जलदोषसमुद्भवम्।
सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥८८८॥

पारा, गन्धक, तांबा, ईंगुर, हरताल, लोहा, बंग, सोनामाखी, खपरिया, मैंनशिल, मरा हुआ अभ्रक, गेरू, सुहागा और जमालगोटा, इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे; इस चूर्णको नीबू, तुलसी, चीता, भांग और तिन्तड़ीकके रसमें भिगोकर तीन२ दिन तक एकान्तमें घाममें रक्खे, फिर चनेके समान गोली बनाकर छायामें सुखाले, इससे अग्नि बहुत बढ़ती है, सब प्रकारके ज्वर अर्थात् जीर्णज्वर, एक दोषसे उत्पन्नहुआ ज्वर, दो दोषसे उत्पन्नहुआ, तीनों दोषसे उत्पन्नहुआ ज्वर, घोर चातुर्थकज्वर, इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे सूर्यके उदय

(१) प्रत्येकं दिनत्रयं भावयेदित्यर्थः।

नातःपरं किञ्चिदस्ति ज्वरनाशाय भेषजम् ।
महाज्वराङ्कुशोनाम रसोऽयं मुनिभाषितः ॥८८९॥

इति महाज्वराङ्कुशोरसः ।

त्रिभाग (१) तालेन हतञ्च ताम्रं
रसश्च गन्धश्च समीनमायुः ।
विषं समं तद्द्विगुणञ्च ताम्रं
विमर्दवारञ्च दिवाकरातपे ॥ ८९० ॥
संमर्द्य निम्बुस्वरसेन चूर्णं
गुञ्जाप्रमाणं सितयासमेतम् ।
ज्वराङ्कुशोऽयं विविधप्रभावो
ज्वरं निहन्त्यष्टविधं समग्रम् ॥ ८९१ ॥

इति ज्वराङ्कुशोरसः ।

तन्त्रान्तरे रविसुन्दरनामाऽयम् ।

होनेसे अन्धकार नष्ट होजाता है मुनियोंने इसकी समान ज्वर की दूसरी औषधि नहीं कही इसका नाम महाज्वरांकुशरस है ॥ ८८३—८८९ ॥

तांबेके पत्रोंपर उससे तिगुनी हरतालका लेप करके फूक दे, यह फुका हुआ तांबा नीचे लिखी सब औषधियोंसे दुगुना, पारा, गन्धक, मछलीका पित्त, और विष ये सब एक२ भाग इन सबको पीस कर नीबूके रसमें भिगोकर इक्कीसवार घाममें

(१) त्रिगुणहरितालसेपपुटेन भस्मीकृतं ताम्रं सर्वस्य द्विगुणं मीनपित्तं भागैकम् एतत्सर्वमेकीकृत्य जम्बीरद्रवेणातपे भावनीयम् ।

२८

तुल्यशम्बूकतालानां द्विगुणानां यथोत्तरम् ।
चूर्णं कुमारिकाद्रावैः पिष्ट्वा गोलं प्रकल्पयेत् ॥८८२॥
शरावसम्पुटे धृत्वा पचेद् गजपुटेन तु ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वा निधापयेत् ॥ ८८३ ॥
गुञ्जामात्रं सितायुक्तं खादेत्सर्वज्वरापहम् ।
पथ्यं क्षीरौदनं देयं निहन्ति विषमज्वरम् ॥ ८८४ ॥

इति शीतभञ्जी रसः ।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं मृतमभ्रं फलत्रिकम् ।
त्र्यूषणं दन्तिबीजञ्च समं खल्ले विमर्दयेत् ॥ ८८५ ॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तदुपपालितम् ।
चिन्तामणिरसो ह्येष त्वजीर्णे शस्यते सदा ॥ ८८६ ॥

रक्खे, फिर रोगीको चीनीके संग एक रत्ती देय इससे सब प्रकारके ज्वर दूर होजाते हैं इसका नाम ज्वरांकुश है किसीर ग्रन्थमें इसका नाम रविसुन्दररस भी लिखा है ॥८८०—८८१॥

तूतिया एकभाग, घोंघा २ भाग और हरताल ४ भाग इन सब को घीकुआर के रस में पीस कर गोला बनावे, उसे संपुट में बन्द कर के गजपुट में फूंक दे ; जब आपसे आप ठण्डा हो जाय, तब निकाल कर पीसले फिर रोगीको चीनीके संग दो रत्ती देने से सब प्रकार के ज्वरोंका नाश होजाता है इसमें दूध भात पथ्य देने से विषमज्वर दूर हो जाता है इस का नाम शीतभंजी रस है ॥ ८८२—८८४ ॥

पारा, गन्धक, मरा हुआ तांबा, मरा हुआ अभ्रक, त्रिफला,

ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलनिसूदनम् ।
गुञ्जैकम्वा द्विगुञ्जम्वा देयमार्द्रकवारिणा ॥ ८९७ ॥
इति चिन्तामणी रसः

तालकं शुक्तिकाचूर्णं शिखिग्रीवं समांशकम् ।
सम्पिष्य कारयेत्सर्वं चक्रिकासन्निभं शुभम् ॥८९८॥
शरावपिहितं रात्रौ पचेद्गजपुटेन तु ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य भक्षयेन्माषमात्रकम् ॥ ८९९ ॥
शर्करासहितं सेव्यं सर्वज्वरहरं परम् ॥ ९०० ॥
इति चिन्तामणीरसः ।

रसकेन समं शङ्खं शिखिग्रीवञ्च पादिकम् ।
गोजिह्वया जयन्त्या च तण्डुलीयैश्च भावयेत् ॥९०१॥

सोंठ, मिर्च, पीपल और जमालगोटा इन सबको समान लेकर खरलमें पीसे, फिर दोनेके रसमें भावना देय; इसे रोगीको एक रत्ती वा दो रत्ती अदरकके रसके संग देय तो आठो प्रकारके ज्वर अजीर्ण और सब प्रकारके शूल दूर होजाते हैं, इसका नाम चिन्तामणि रस है ॥ ८९५ ॥ ८९७ ॥

हरताल, सीपका चूर्ण और तूतिया इन सबको समान पीस कर टिकिया बनावे ; इस टिकियाको संपुटमें बन्द करके रातको गजपुटमें फूंकदे, जब आपसे आप ठण्डा होजाय तब निकालकर शक्करके संग एकमासा खाय इससे सब प्रकारके ज्वर नाश होजाते हैं इस का भी नाम चिन्तामणि रस है ॥ ८९८ ॥ ९०० ॥

खपरिया एक भाग, शंख १ भाग, तूतिया चौथाई भाग, इन

प्रत्येकं सप्तसप्ताथ शुष्कं गुञ्जाचतुष्टयम् ।
जरणेन घृतेनाद्यात् त्र्याह्निकज्वरशान्तये ॥ ९०२ ॥

इति त्र्याह्निकारी रसः ।

हरितालं शिला तुत्थं शङ्खचूर्णञ्च गन्धकम् ।
समांशं मर्दयेत् खल्वे कुमारीरससंयुतम् ॥ ९०३ ॥
शरावसम्पुटे कृत्वा दत्त्वा गजपुटं पचेत् ।
कुमारिका रसेनैव वल्लमात्रा वटी कृता ॥ ९०४ ॥
दत्ता शीतज्वरं हन्ति चातुर्थं च विशेषतः ।
मरीचघृतयोगेन तक्रं पीत्वा चरेद्वटीम् (१) ॥ ९०५ ॥
एतस्या वसनं भूत्वा ज्वरस्तस्माद्विनश्यति ॥ ९०६ ॥

इति चातुर्थकारी रसः ।

सब को गोजी (भातलघास) अरनी और ... आदि के अर्क में सात २ भावना देय, जब सूख जाय तब चूर्ण बनाकर रखले फिर जिसे तृतीयक ज्वर हो, उसे पुराने घीके संग चार रत्ती खिलावे इसका नाम त्र्याह्निकारी रस है ॥ ९०१—९०२ ॥

हरताल, मैनशिल, तूतिया, शंखका चूर्ण और गन्धक इन सबको समान लेकर घीकुआरके रस में घोटे, फिर संपुटमें बन्द करके गजपुट में फूंक दे ; फिर निकालकर पीसकर घीकुआर के रसमें घोटकर दो २ रत्तीकी गोली बनाले इसे मिर्च और घीके संग रोगीको देय, तो शीतज्वर और चौथिया दूर होजाते हैं ; गोली खिलानेसे पहिले रोगीको मट्ठा पिलावे, इस गोलीसे

पारदं रसकं गन्धं तुल्यांशं मर्दयेद्रसे ।
अश्वत्थजे ताहं पश्चाद्रसे कोलकमूलजे ॥ ९०७ ॥
निदिग्धिकारसे काकमाचिका या रसे तथा ।
द्विगुञ्जम्वा त्रिगुञ्जम्वा गोक्षीरेण प्रदापयेत् ॥९०८॥
रात्रिज्वरं निहन्त्याशु नाम्ना विश्वेश्वरोरसः ॥९०९॥

इति रात्रिज्वरे विश्वेश्वरोरसः ।

शुल्वमेकं द्विधा तारं मर्दयेद्विधिवद्भिषक् ।
पश्चाद्विषं रसं गन्धं मेलयित्वा तु भावयेत् ॥९१०॥
नक्रांघ्रिगन्धिकांघ्र निम्पाकवल्कलद्रवैः (१) ।
रसः सिद्धः प्रदातव्यो गुञ्जामात्रोज्वरान्तकृत् ॥९११॥
सर्वज्वरहरः ख्यातो रसो विक्रमकेसरी ॥ ९१२ ॥

इति विक्रमकेसरीरसः ।

वमन होजाता है और ज्वर भी छूट जाता है इसका नाम चतुर्थकारी रस है ॥ ९०३ ॥ ९०६ ॥

पारा, खपरिया और गन्धक इन सबको समान लेकर पीपल, बेरीकी जड़, कटहली और मकोय के रसमें तीन २ दिन घोटे ; फिर दूधके संग २ या ३ रत्ती देय इससे रात्रिको आनेवाला ज्वर दूर होजाता है इसका नाम विश्वेश्वर रस है ॥ ९०७ ॥ ९०९ ॥

तांबा एक भाग, चांदी २ भाग इन दोनोंको वैद्य विधिके अनुसार घोटे ; पीछे विष, पारा और गन्धक मिलाकर इक्कीस-

(१) निम्बुत्वक्जलस्वरसैः ।

रसं विषं गन्धकताम्रकञ्च
मनःशिलापुष्करतालकञ्च ।
विमर्द्यवज्रीपयसा समांशम्
गजाह्वयं तत्पुटं विदध्यात् ॥ ८१३ ॥
द्विगुञ्जमस्यैव मधुप्रयुक्तं
ज्वरं निहन्त्यष्टविधं महोग्रम् ।
पुराभवान्यै कथितोभवेन
नृणां हिताय ज्वरकालकेतुः ॥ ८१४ ॥
इति ज्वरकालकेतूरसः ।

हुताशमुखसंशुद्धं रसं ताम्रञ्च गन्धकम् ।
लौहमभ्रं विषञ्चैव सर्वं कुर्य्यात् समांशकम् ॥८१५॥
रसार्द्धं मृतरूप्यञ्च शृङ्गवेराम्बुमर्दितम् ।
द्विगुञ्जं मधुना देयं सितयार्द्ररसेन वा ॥ ८१६ ॥

वार नीबूके बकलेके रसमें भावना देय, तब यह रस सिद्ध होजाता है, इससे सब ज्वर दूर होजाते हैं मात्रा इसकी एक रत्ती की और इसका नाम विक्रमकेसरी रस है ॥ ८१० ॥ ८१२ ॥

पारा, तांवा, विष, गन्धक, मैंनशिल, रसौत और हरताल इन सबको समान लेकर थूहरके दूधमें घोटकर गजपुटमें फूंक दे फिर शहत में मिलाकर, रोगीको दो रत्ती देनेसे आठों प्रकार का ज्वर दूर होजाता है, यह रस पहले समयमें शिवने पार्वती से कहा था इस का नाम ज्वर कालकेतू रस है ॥८१३—८१४॥

अनेकबार आगमें शुधाहुआ पारा अर्थात् शुधते २ जिस में

ज्वरमष्टविधं हन्ति वारिदोषभवं तथा।
प्लीहानमुदरं शोथमतीसारं विनाशयेत्॥ ९१७॥
रोगानेतान्निहन्त्याशु शङ्करस्त्रिपुरं यथा॥ ९१८॥
इति त्रिपुरारीरसः।

तारं कांश्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यञ्च गन्धकम्।
क्वाथेन मेघनादस्य पिष्ट्वा रुध्वा पुटे पचेत्॥९१९॥
षड्भिः पुटैर्भवेत्सिद्धो मेघनादो ज्वरापहः।
भक्तगैत्पर्णखण्डेन विषम ज्वरनाशनम्॥ ९२०॥
अस्य मात्रा द्विगुञ्जा स्यात्पथ्यं दुग्धौदनं हितम्।
नागरातिविषामुस्तभूनिम्बा मृतवत्सकैः॥ ९२१॥

मुख होजाता है, तांवा, गन्धक, अभ्रक, विष और लोहा, ये सब समान और चांदीकी भस्म पारेसे आधी, इनको अदरकके रस में घोटे, फिर रोगीको शहत या अदरकके रस या चीनी के संग दोरत्ती देय, इससे आठो प्रकारके ज्वर, दुष्ट पानीसे उत्पन्न हुआ ज्वर, प्लीहा, उदररोग, सोथ और अतीसार, इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे शिवसे त्रिपुरासुर नष्ट हुआ था इसका नाम त्रिपुरारी रस है॥ ९१५॥ ९१८॥

चांदी, कांसा, तांवेकी भस्म, ये सब समान और इन तीनों के समान गन्धक लेकर चौलाई के रसमें घोटे, फिर घड़िया में बन्द करके गजपुट में फूंक दे, इस प्रकार छः पांच देय तो यह रस सिद्ध होता है; फिर रोगीको पान में रखकर दे और ऊपरसे सोंठ, अतीस, मोथा, चिरायता, गुरिच और वाबेका

सर्वज्वरातिसारघ्नं क्राथमस्यानुपाययेत् ।
तरुणं वा ज्वरं जीर्णं तृष्णा दाहञ्च नाशयेत् ॥८२२॥
इति मेघनादो रसः ।

तालकं दरदोद्भूतः पारदो गन्धकः शिला ।
क्रमाद्भागार्द्धरहितं कारवेल्लाम्बुमार्दितम् ॥८२३॥
इदमस्य (१) प्रमाणेन ताम्रपात्रीं प्रलेपयेत् ।
अधोमुखीं दृढ़े भाण्डे तां निरुध्याऽथ पूरयेत् ॥८२४॥
चुल्ह्यां वालुकया घस्रमेकं प्रज्वालयेद्दृढ़म् ।
शीते संचूर्ण्य माषोऽस्य नागवल्लीदले स्थितः ॥ ८२५ ॥

काढ़ा पिलावे ; खानेको दूध भात पथ्य हैं, इससे नवीनज्वर, जीर्णज्वर, आदि सब प्रकारके ज्वर, ज्वरातिसार, प्यास और दाह दूर होजाते हैं इसका नाम मेघनाद रस है ॥८१८॥८२१॥

हरताल, ईंगुरसे निकला पारा, गन्धक और मैं ाल ये क्रम से एक दूसरे से आधे २ सबको खरल में डालकर करेले के रस में घोटे ; फिर इसी कल्कके समान तांबेका पात्र लेकर उसके भीतर इस कल्कको लेप दे, फिर एक हंडिया में उस पात्रको उलटा करके रखदे, उसके ऊपर दूसरा पात्र रखके हांडीको बालूसे भरदे, फिर चूल्हे पर चढ़ा कर एक दिन तक आंच दे, जब ठंडा होजाय, तब उसे निकालकर पीसकर रखले, फिर रोगीको पानमें रखकर १ मासा देय, इससे सब प्रकारके विषम ज्वर, दाह और शीत भी दूर होजाते हैं ; इस रसके संग मिर्च

(१) कल्कस्य ।

भक्षितो मरिचैः सार्द्धं समस्तान् विषमज्वरान् ।
दाहशीतादिकं हन्यात् पथ्यं शाल्योदनं पयः ॥८२६॥

एतत्सर्वं कारवेल्लीरसेन खण्डयित्वा अनेन कल्केन ताम्रखल्लाभ्यन्तरं लिप्त्वा ताम्रखल्लं स्थाल्या मधोमुखं संस्थाप्य तदुपरि शरावं दत्त्वा दृढं लिप्तां स्थालीं वालुकया प्रपूर्य्य स्थालीमुखमपि शरावेण दृढं विधाय प्रातरारभ्य सन्ध्याकालपर्य्यन्तं दृढज्वालां दद्यात् प्रातः सर्वमपनीय स्वाङ्गशीतं ताम्रखल्लं संचूर्ण्य हस्तिदन्तनलिकादौ संस्थापयेत् ततो रक्तिकापञ्चकं अनुरूपं वा समानमरिचचूर्णयुक्तं पर्णे निधाय संचर्व्य शीतं जलं किञ्चित्पेयम् ॥८२७॥

इति शीतारीरसः ।

भी खानी चाहिये, दूधभात पथ्य है इसके बनाने की यह विधि है कि इन सब औषधियों को लेकर करेले के रसमें घोटे ; इस कल्कको तांबेके पात्रमें लेपदे ; फिर इस पात्रकी तली लिपी दृढ़ हड़िया में उलटा करके रखदे, उसके ऊपर सकोरा रखके हड़ियाको बालूसे भरदे, फिर हांड़ीके मुखको सकोरेसे खूब बन्द करदे ; फिर चूल्हे पर चढ़ाकर सुबह से शाम तक उसके नीचे तेज आंच दे, फिर दूसरे दिन प्रातःकाल ठण्डा होने पर उतारे, फिर उस तांबेके पात्रको पीसकर हाथीदांतकी नली या और किसी बर्त्तन में भर रक्खे ; फिर ५ रत्ती अथवा रोगीके

समभागांश्च संगृह्य पारदामृतगन्धकान्।
सर्वार्द्धं पिप्पलीचूर्णं खल्लयित्वा निधापयेत् ॥९२८॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वापि नागवल्लीदलैः सह।
आर्द्रकस्य रसेनापि द्रोणपुष्पीरसेन वा ॥ ९२९ ॥
शीतज्वरे सन्निपाते विसूच्यां विषमज्वरे।
पीनसे च प्रतिश्याये ज्वरेऽजीर्णे तथैव च ॥ ९३० ॥
मन्देऽग्नौ वमने चैव शिरोरोगे च दारुणे।
प्रयोज्यो भिषजा सम्यग्रसः स्वच्छन्दभैरवः।
पथ्यं दध्योदनं दद्यादौच्यदोषबलाबलम् ॥ ९३१ ॥
इति स्वच्छन्दभैरवोरसः।

दरदबलिरसानां शुल्वनागाभ्रकानाम्
शुभगविटशिलानां सर्वमेकत्रयोज्यम्।

बलके अनुसार इस रसके समान मिर्च मिलाकर रोगीको खिलावे ऊपरसे थोड़ा ठंडाजल पिलावे, इनका नाम शीतारि रस है ॥९२२॥९२७॥

पारा, गन्धक, विष, ये सब समान और इन सबसे आधी पीपल लेकर खरल में पीसे, फिर अदरक या पान अथवा दौने के रस के संग दो रत्ती देनेसे शीतज्वर, सन्निपात, विषमज्वर, विसूचिका, पीनस, प्रतिश्याय, अजीर्ण, मन्दाग्नि, वमन और शिरके घोर रोग दूर होजाते हैं अग्निका बल देखकर दूधभात या जो उचित हो सो पथ्य दे, इसका नाम स्वच्छन्द भैरव रस है ॥ ९२८—९३१ ॥

विपिनन्तृपद्दलोत्थैर्भावितं शोषयेत्तम्
दिवसदशसमाप्तौ रक्तिकैकाञ्च कुर्य्यात् ॥८३२॥
एकैकां भक्षयेदस्य चार्द्रकस्य रसैर्युताम्।
इत्तनाशो ज्वरं हन्ति ज्वरारिः स निगद्यते।
सर्वशूलविनाशो च कफपित्तविनाशनः ॥८३३॥

इति ज्वरारीरसः।

रसं गन्धं सैन्धवञ्च विषं ताम्रं समं भवेत्।
सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं चूर्णमभ्रकम् ॥ ८३४ ॥
लौहे च लौहदण्डेन निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च।
मर्द्दयेद् यत्नतः पश्चान्मरिचं सूततुल्यकम् ॥८३५॥
पर्णेन सह दातव्यो रसो रक्तिकसम्मितः।

ईंगुर, गन्धक, पारा, तांवा, सीसा, अभ्रक, बिडनोन और मैनशिल इन सबको एकमें मिलाकर स्वर्नाल के पत्तोंके रसमें दश दिन भिगाकर सुखाले, फिर एक २ रत्तीकी गोली बनाले, अदरकके रसके संग एक गोली देनेसे ज्वर, सब प्रकारके शूल, कफ और पित्त दूर होजाते हैं इसका नाम ज्वरारी रस है ॥ ८३२—८३३ ॥

पारा, गन्धक, सेन्धानमक, विष और तांवा इन सबके चूर्ण के समान लोहे का चूर्ण और उतनाही अभ्रक लेकर सिनुवार का रस डालकर लोहेके पात्रमें लोहेके डंडेसे घोटे; और घोटते समय पारेके समान मिर्च भी डालदे, फिर पानके संग एकरत्ती

कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम् ॥९३६
धातुस्थं प्रबलं दाहं ज्वरदोषं चिरोद्भवम् ।
यकृद्गुल्मोदरं प्लीहं श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥९३७॥

इति ज्वराशनीरसः ।

भास्करो गन्धकः सर्वो(१)देवी(२)विहङ्ग(३)तीक्ष्णकम् ।
शोणितं(४)गगनञ्चैव पुष्करञ्च(५)महेश्वरम्(६) ॥९३८
भूनिम्बादिगणैर्भाव्यं मधुना गुड़िका दृढा ।
चातुर्थकं तृतीयञ्च ज्वरं सन्ततकं तथा ॥
आमज्वरं भूतकृतं सर्वज्वरमपोहति ॥ ९३९ ॥

इति ज्वरान्तकोरसः ।

इसके देनेसे खांसी, घोरश्वास, विषमज्वर, वमन, धातु प्राप्तज्वर, घोर दाह, सन्निपात, जीर्णज्वर, यकृत्, प्लीह, गुल्म और उदररोग और सोजन आदि रोगोंका नाश हो जाता है इसका नाम ज्वराशनी रस है ॥ ९३४—९३७ ॥

तांबा, गन्धक, पारा, फिटकिरी, सोनामाखी, लोहा, ईंगुर, अभ्रक, रसौत और सोना इन सबको समान लेकर चूर्ण बनाकर भूनिम्बादिगणके काढ़े में भावना देय, फिर शहतमें गोली बनाले इस रससे चतुर्थक, तृतीयक, सन्तत, आमज्वर और भूतज्वर आदि सब प्रकारके ज्वर नाश होजाते हैं इसका नाम ज्वरान्तक रस है ॥ ९३८ ॥ ९३९ ॥

---

(१) पारदः । (२) स्फटिका । (३) स्वर्णमाक्षिकम् । (४) हिङ्गुलम् ।
(५) रसाञ्जनम् । (६) सुवर्णम् ।

हिङ्गूलसम्भवं सूतं गन्धकं टङ्कणं तथा।
ताम्रं वङ्गं माक्षिकञ्च सैन्धवं मरिचं तथा॥ ८४० ॥
समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम्।
तदर्द्धं कान्तलौहस्य रूप्यभस्मापि तत्समम् ॥८४१॥
एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत्कणकद्रवैः।
शेफालीदलजैश्चापि दशमूलरसेन च ॥ ८४२ ॥
किराततिक्तकक्काथैस्त्रिवारं भावयेत् सुधीः।
भावयित्वा ततः कुर्य्याद् गुञ्जाद्वयमिता वटीः ॥८४३॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम्।
जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम् ॥ ८४४ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्॥८४५॥
मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जगतं तथा।

ईंगुरसे निकला पारा, गन्धक, सुहागा, तांबा, वंग, सोना-माखी, सेन्धानमक और मिर्च ये सब एक २ भाग सोनेकी भस्म सबसे दुगुनी कान्तलोह और चांदीकी भस्म उसेके समान इन सब का चूर्ण बना कर धतूरे, सेफाली (कालासिनुवार) दशमूल इनके रसमें और चिरायते के काढ़े में तीन २ भावना देकर दो रत्तीकी गोली बनाले, फिर एक गोली जीरे और शहतके संग देनेसे बहुत दिनका उत्पन्न हुआ महाघोर जीर्णज्वर अलग २ दोषों वा मिले हुए दोषोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर, विषमज्वर,

अन्तर्गतं महाघोरं बहि:स्थञ्च विशेषत: ॥ ८४६ ॥
नानादोषोद्भवञ्चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा ।
निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्रीशिवशासनात् ॥८४७॥
जयमङ्गलनामाऽयं रस: श्रीशिवनिर्मित: ।
बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिवर्हण: ॥ ८४८ ॥

श्रीजयमङ्गलोरस: ।

मूर्च्छितं रसकर्षैकं तदर्द्धं जारिताभ्रकम् ।
तारं ताप्यञ्च रसजं रसकं ताम्रकं तथा ॥ ८४९ ॥
मौक्तिकं विद्रुमं लौहं गिरिजं गैरिकं शिला ।
गन्धकं हेमसारञ्च (१) पलार्द्धञ्च पृथक् पृथक् ॥८५०॥
चोरारी सुरवल्ली च शोथघ्नी(२)गणिकारिका ।

असाध्यज्वर, साध्यज्वर, मांस, मेदा, अस्थि और मज्जाप्राप्तज्वर, अन्तर्गत घोरज्वर, बहिर्गतज्वर, अनेक दोषोंके कारण वीर्य्यप्राप्त ज्वर इससे अवश्य ही नष्ट होजाता है तथा बल और पुष्टि बहुत बढ़ती है इसका नाम भगवान् शिवने श्रीजयमंगल रस रक्खा है ॥ ८४० ॥ ८४८ ॥

मूर्च्छित पारा १ कर्ष, अभ्रमकी भस्म आधाकर्ष, चांदी, सोनामाखी, रसक, खपरिया, तांबा, मोती, मूंगा, लोहा, शिलाजीत, गेरू, मैनशिल, गन्धक और तूतिया इन सबको

(१) तुत्थम् । (२) पुनर्नवा ।

भाटामला(१)ज्योतिष्मिका(२)च सतिक्ता च सुदर्शना ८५१
अग्निजिह्वा(३)पूतितैला(४)सूर्पपर्णी(५)प्रसारणी।
प्रत्येकं स्वरसं दत्त्वा मर्दयेत्त्रिदिनावधि ॥ ८५२ ॥
भक्षयेत् पर्णखण्डेन चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः।
महाग्निकारकोरोगशङ्करघ्नः प्रयोगराट् ॥८५३॥
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान्।
सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ८५४ ॥
कासं श्वासं प्रमेहञ्च सशोथां पाण्डुकामलाम्।
ग्रहणीं क्षयरोगञ्च सर्वोपद्रवसंयुतम्।
ज्वरकुञ्जरपारीन्द्रः प्रथितः पृथिवीतले ॥ ८५५ ॥

इति ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररसः।

पारा २ पललेकर चूर्ण बनाकर खीरारी, गुरिच, गधापुन्ना, (पुनर्नवा) भरणी, भूआंवला, तोरई, कुटकी, सुदर्शन, कलिहारी, मालकांगनी, माषपर्णी (वनमूंग) और प्रसारणीनामक औषधीके रसमें तीन २ दिन घोटे; फिर पानमें रखकर चार रत्ती रोगीको देय, इससे अग्नि बहुत बढ़ती, मिले हुए रोग, संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक आदि सब प्रकार के ज्वर, खांसी, सांस, प्रमेह, शोथ, पांण्डु, कामला, संग्रहणी और सब उपद्रव युक्त क्षयरोग दूर होजाता है, इसका नाम ज्वरकुञ्जर, पारीन्द्ररस है ॥ ८४८ ॥ ८५५ ॥

---

(१) तामलकी। (२) पटोली। (३) लाङ्गली। (४) ज्योतिष्मती। (५) मुद्गपर्णी।

रसो म्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रेन्द्वग्न्यर्कभागिकाः ।
पिष्ट्वा तान् मुषवीतोयैस्ताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥८५६॥
न्यस्तं शरावे संरुध्य वालुकायन्त्रगं पचेत् ।
स्फुटन्ति व्रीहयो यावत् तच्छिरस्थाः शनैः शनैः॥८५७॥
संचूर्ण्य शर्करायुक्तं त्रिवल्लं भक्षयेत् ततः ।
विषमाख्यान् ज्वरान् हन्ति तैलाम्लादिविवर्जयेत् ८५८
इति विद्यावल्लभोरसः ।

कुष्माण्डक्षारचूर्णाद्दकतिलजपृथक् पाचितं शुद्धतालम्
तुल्यं सूतेन पिष्ट्वा त्रिदिवसममलत् कारवेल्लद्रवेण ।
क्षिप्त्वा तत् खर्परान्तर्दिनपतिपिहितं रन्ध्रमध्यस्थयेत्तम्
नीरन्ध्रं चूर्णपथ्यागुड़लवणखटीमृद्भिरप्यन्तरालम्॥८५९॥

पारा १ भाग, ईंगुर १ भाग, मैनशिल ३ भाग, और हरताल १२ भाग इन सबको करेलेके रसमें घोटकर तांबेके पात्रके भीतर लेपकरे फिर पहले कही रीतिसे हंडिया में बन्द करके बालुका यन्त्रमें पकावे ; जब उसके ऊपरके रक्खे धानभुन जांय, तब निकालकर चूर्ण बनाले, फिर शक्करमें मिलाकर टोरत्ती देय, इससे सब प्रकार के विषमज्वर दूर होजाते हैं जो रोगी इसे खाय सो खटाई और तेल छोड़दे, इसका नाम विद्यावल्लभ रस है ॥ ८५६ ॥ ८५८ ॥

कुम्हेड़े और तिलके खारका चूर्ण तथा हरताल इन तीनों को समान लेकर करेले के रसमें तीन दिन घोटे, इसमें हरतालके समान पारा भी डाले, इस कल्कको तांबेके संपुट पर

तद्वालुकापूर्णघटे निदध्यात्
शनैः पचेत् तावदुपर्य्यमुष्य।
व्रीहिर्विवर्णत्वमुपैति यावत्
ततस्तु शीतं विदधीतचूर्णम् ॥ ८६० ॥

सिद्धं तच्च समाददीत तुलसीतोयेन वल्लोन्मितम्
पश्चात् क्षौद्रकणासिताज्यपयसा कृत्वानुपानं गदी(१)
भुञ्जीताथ पयोऽन्नमुद्गसहितं साज्यञ्च हन्यान्नृणाम्
तापं कालवशेन सञ्चितमयं शीतारिनामा रसः ॥८६१॥
इति शीतारीरसः।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं भाण्डमध्यगाम्।
तत्राधोवदनां ताम्रपात्रीं संरुध्य शोषयेत् ॥ ८६२ ॥

लपटे; फिर उसके ऊपर छई, गुड़, नमक, खड़िया और मिट्टी का ऐसा लपटे कि कहीं छेद न रहने पावे; फिर इसे हँडिया में रख बालू भरकर नीचे आंचदे, जब ऊपरके धानभुन जांय, तब आंच बन्दकरदे, ठण्डा होने पर सबका चूर्ण करले, फिर रोगीको तुलसीके रसके संग दोरत्ती देकर ऊपर से शहत पीपल, मिसरी, घी, और दूध पिलावे; खानेको मूंगकी दाल, भात, दूध और घी दे, इससे शीतज्वर दाहके सहित दूर हो जाता है, इसका नाम शीतारीरस है ॥ ८५९ ॥ ८६१ ॥

पारे और गन्धककी कज्जली करके एक बर्त्तनमें रक्खे, उस

---

(१) सभाज्यो विषमभागो।

पादाङ्गुष्ठप्रमाणेन चूल्ल्यां ज्वालेन तां दहेत् ।
यामद्वयं ततस्तत्स्थं रसपात्रं समाहरेत् ॥ ८६३ ॥
चूर्णयेद्रक्तियुग्मं त्रयं वाऽपि विचक्षणः ।
ताम्बूलीदलयोगेन दद्यात्सर्वज्वरेष्वमुम् ॥ ८६४ ॥
जीरसैन्धवसंलिप्तवक्त्राय ज्वरिणे हितम् ।
स्वेदोद्गमो भवत्येव देवि ! सर्वेषु पाप्मसु ॥ ८६५ ॥
चातुर्थकादीन् विषमान् नवमागामिनं ज्वरम् ।
साधारणं सन्निपातं जयत्येष न संशयः ॥ ८६६ ॥

इति ज्वरशूलहरोरसः ।

आरं कांस्यं मृतं ताम्रं दरदं पिप्पली विषम् ।
तुल्यांशं मर्दयेत् खल्ले यामञ्च कुण्डलीरसैः ॥८६७॥
गुञ्जामात्रं रसं देयं गुञ्जामात्रं लिहेत्सदा ।

पर तांबेका पात्र उलटा करदे, फिर उसे चूल्हे पर चढ़ाकर दो पहर तक पैरके अंगूठेके समान मोटी आंच देय ; फिर उतार कर चूर्ण बनाले, फिर सबज्वरों में पान में रखकर दोरत्ती यह रस देय, रोगीको पहले जीरा और सेंधाखिलाकर यह रस खिलावे, इससे सबप्रकार के ज्वरोंमें पसीना आता है, चातुर्थक आदि विषमज्वर, नवीनज्वर, आनेवालाज्वर और साधारण सन्निपात इससे निस्सन्देह दूर होजाते हैं, इसका नाम ज्वर-शूलहर रस है ॥ ८६२—८६६ ॥

पीतल, कांसा, तांबेकी भस्म, ईंगुर, पीपल और विष इन सबको समान लेकर एक पहर तक गुरिचके अर्कमें घोटे, फिर

ज्वरे मन्दानले चैव वातपित्तज्वरेषु च ॥ ९६८ ॥
ज्वरे वैषम्यतरुणे ज्वरे जीर्णे विशेषतः।
मुद्गान्नं मुद्गयूषं वा तक्रं भक्तञ्च केवलम् ॥ ९६९ ॥
नारिकेलोदकं देयं मुद्गं पथ्यं विशेषतः।
षडाननोरसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ९७० ॥

इति षडाननोरसः।

रसं गन्धं विषं ताम्रं समभागं प्रचूर्णयेत्।
भावयेत्पञ्चभिः पित्तैः क्रमशः पञ्च वासरम् ॥ ९७१ ॥
निर्गुण्ड्याश्चरसेनैव मर्दयेत्सप्तवासरम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव भावयेच्च त्रिधा पुनः ॥ ९७२ ॥
सर्षपाभा वटी कार्य्या छायया परिशोषिता।
ततः सप्तवटी योज्या यावन्न त्रिगुणा भवेत् ॥९७३॥

साधारणज्वर, मन्दाग्नि, वातपित्तसे उत्पन्न हुए ज्वर, विषमज्वर, नवीनज्वर और जीर्णज्वर में एक रत्ती देय; खानेको मूंगकी दालका रस और भात या केवल मट्ठाभात अथवा केवल मूंगका पानी देय। इस रसमें विशेषकर मूंग पथ्य है पीनेको नरियलका पानीदे, इस सब प्रकारके ज्वरोंके नाश करने वाले रसका नाम षडाननरस है ॥ ९६७—९७० ॥

पारा, गन्धक, विष और तांबा इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे, फिर पांचो पित्तोंमें क्रमसे एकएकदिन भावना देय, फिर सातदिन सिनुवार के रसमें घोटकर तीनबार अदरकके रसमें भिगोवे, फिर सरसोंके समान गोली बनाकर छायामें

वयोऽग्निदोषकं वुद्धा प्रयोज्या भिषजांवरैः ।
अनुपानश्चोष्णजलं कज्जलीपिप्पलीयुतम् ॥ ८७४ ॥
पानावशेषे प्रस्थाप्य वस्त्रैराच्छादयेन्नरम् ।
घर्माम्बागमनं यावत् ततो रोगात् प्रमुच्यते ॥ ८७५ ॥
रोगिणं स्वपयित्वा तु भोजयेत्ससितं दधि ।
एष कल्पतरुर्नाम रसः परमदुर्लभः ॥ ८७६ ॥
असाध्यं चिरकालोत्थं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ।
हन्ति ज्वरातिसारौ च ग्रहणीं पाण्डुकामलाम् ॥ ८७७ ॥
न देयः श्वासकासे च शूलयुक्ते नरे तथा ।
गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्यचित् ॥ ८७८ ॥

इति कल्पतरुरसः ।

सुखावे ; फिर जब तक तिगुनी न होजाय, तब तक सात गोली खिलावे ; अर्थात् सातसे आरंभ करके इक्कीस गोली तक देय, वैद्यको उचित है कि इस रसकी मात्रा बल, अवस्था और अग्निके अनुसार दे ; यह गोली कज्जली, पीपल और गर्मजलके संग देनी चाहिये ; फिर रोगीको वस्त्र उढ़ादे, जब पसीना आजाय तब जाने कि रोगी रोगसे छूट गया, जब रोगी सोकर उठे तब दही और चीनी खिलावे, इससे असाध्यज्वर, बहुत कालका उत्पन्न हुआ जीर्णज्वर, विषमज्वर, ज्वर अतिसार, संग्रहणी, पाण्डुरोग और कामला रोग शीघ्र दूर होजाते हैं। जिस रोगीको खांसी और सांस हो उसे यह रस न दे, इस रसको वैद्य गुप्त करके रक्खे, सब किसीको न दे, इसका नाम कल्पतरु रस है ॥ ८७१–८७८ ॥

तालकस्य च भागौ द्वौ भागं तुत्थस्य शुक्तिका।
चूर्णकानां चतुर्भागं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः।
यामैकेन ततः पश्चाद् रुध्वा गजपुटे पचेत्॥ ९७९॥
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति वातिकं पैत्तिकं तथा।
शीतज्वरं विशेषेण तृतीयकचतुर्थकौ॥ ९८०॥

इति तालाङ्कोरसः।

अभ्रं ताम्रं रसं गन्धं विषञ्चेति समं समम्।
द्विगुणं (१) धुस्तूरबीजञ्च व्योषं पञ्चगुणं (२) मतम्॥९८१॥
जलेन वटिकां कुर्य्याद् यथा दोषानुपानतः।
अभ्रं ज्वरारिनामेदं सर्व्वज्वरविनाशनम्॥ ९८२॥
वातिकान् पैत्तिकांश्चैव श्लैष्मिकान् सान्निपातिकान्।
विषमाख्यान् द्वन्द्वजांश्च धातुस्थान् विषमज्वरान्॥९८३

दो भाग हरताल, एक भाग तूतिया और सीपका चूना ४ भाग इन सबको एक पहर तक घीकुआरके रसमें घोटे; फिर गजपुटमें फूंकदे, यह रस दोरत्ती देनेसे वातज्वर, पित्तज्वर, शीतज्वर, तृतीयकज्वर और चातुर्थकज्वरको दूरकर देता है, इसका नाम तालाङ्क रस है॥ ९७९—९८०॥

अभ्रक, तांबा, पारा, गन्धक और विष ये सब एक एकभाग, धतूरेके बीज २ भाग, त्रिकुटा ५ भाग, इन सबको जलमें पीस कर गोली बनाले; फिर दोषके अनुसार अनुपानके संग रोगी

(१) एकभागापेक्षया। (२) मिलित्वा पञ्चगुणमिति।

नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्निमान्द्यं सशोथकम् ॥९८४॥
कासं श्वासं तृषां कम्पं दाहं शीतं वमिं भ्रमम्॥९८५॥

इति ज्वराय्यभ्रम् ।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलीम् ।
पर्पटीरसवत्पाच्यं सूतांघ्रिहेमभस्मकम् ॥ ९८६ ॥
लौहं ताम्रमभ्रकञ्च रसस्य द्विगुणं तथा ।
वङ्गकं गैरिकञ्चैव प्रवालञ्च रसार्द्धकम् ॥ ९८७ ॥
मुद्राशङ्खं शुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम् ।
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥ ९८८ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणाहिङ्गुससैन्धवम् ॥ ९८ ॥

को खिलावे, इससे वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, दो दोषोंसे उत्पन्नहुआ ज्वर और धातुमें प्राप्त हुआ ज्वर निस्सन्देह नष्ट होजाता है, प्लीहा, यकृत् गुल्म, मन्दाग्नि, शोथ, खांसी, सांस, प्यास, कांपना, दाह, शीत, वमन और भ्रम इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे बिजली गिरने से वृक्षका नाश होजाता है इसका नाम ज्वरारि अभ्रक है ॥९८१॥९८५ ॥

ईंगुर से निकले पारेको, गन्धकमें मिलाकर कज्जली करे, फिर पारेसे चौथाई सोनेकी भस्म ; पारेसे दुगुणे लोहा, तांबा और अभ्रक, पारेसे आधे बंग, गेरू और मूंगा ; पारेसे चौथाई मुर्दासंख और सीपकी भस्म डाले, पहले पारे और गन्धककी

ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम् ॥ ९९० ॥
प्लीहानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्यमथापि वा ।
सन्ततं सतताख्यञ्च विषमज्वरनाशनम् ॥ ९९१ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मेहमरोचकम् ।
ग्रहणीमामदोषञ्च कासं श्वासञ्च तत्र तत् ॥ ९९२ ॥
मूत्रकृच्छ्रातिसारञ्च नाशयेदविकल्पतः ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णप्रसादनम् ॥ ९९३ ॥
विषमज्वरान्तकं नाम्ना धन्वन्तरिप्रकाशितम् ॥९९४॥

इति विषमज्वरान्तकलौहम् ।

वज्राभ्रं मारितं कृत्वा कर्षयुग्मं विचूर्णितम् ।
जीरं कनकबीजञ्च कर्षं वासारसेन च ॥ ९९५ ॥

कज्जलीको पर्पटी रसके समान पकावे ; फिर ये सब औषधि मिलाकर सीपमें बन्दकरके पुटपाककी रीतिसे पकाले; इसको प्रातःकाल पीपल, हींग और सेंधेनमक के संग दोरत्ती खाने से आठों प्रकारका ज्वर, वातसे उत्पन्नहुआ ज्वर, पित्तसे उत्पन्न हुआ ज्वर, कफसे उत्पन्न हुआ ज्वर, प्लीहा, यकृत्, साध्य वा असाध्य गुल्म, सन्तत और सतत आदि विषमज्वर, कामला, पांडुरोग, शोथ, प्रमेह, अरोचक, संग्रहणी, आमदोष, खांसी सांस, मूत्रकृच्छ्र और अतिसारका नाश होजाता है अग्नि, बल और तेज बहुत बढ़जाते हैं ; धन्वन्तरिने इसका नाम विषमज्वरान्तक लोह कहा है ॥ ९८६—९९४ ॥

हीरा, अभ्रक इन दोनोंको फूंक कर दो२ कर्ष ले, जीरा

कण्टकारीरसेनैव धात्रीमुस्तरसेन च ।
विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वान् प्लीहानं यकृतं वमिम् ॥९९६॥
रक्तपित्तं वातरक्तं ग्रहणीं श्वासकासकौ ।
अरुचिं शूलहृल्लासमावर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ९९७ ॥
जीवनानन्दनामेदमभ्रं वृष्यं बलप्रदम् ।
रसायनवरं श्रेष्ठमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ९९८ ॥

इति जीवनानन्दाभ्रम् ।

रक्तचन्दनह्रीवेरपाठोशीरकणाशिवा ।
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन(१) समन्वितः ॥९९९॥
लौहो(२)निहन्ति विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्॥१०००॥

इति चन्दनादिलौहः ।

और धतूरेके बीज एक २ कर्ष इन सबको बासा कटहली आंवला और मोथेके रसमें घोटे; फिर विषम ज्वर, प्लीहा, यकृत्, वमन, रक्तपित्त, वातरक्त, संग्रहणी, खांसी, सांस, अरुचि, शूल, हृल्लास और अर्शरोगमें देय, इससे बल और वीर्य्य बहुत बढ़ता है यह औषधी रसायन है इससे अग्निभी तेज होजाती है, इसका नाम जीवनानन्द अभ्रक है ॥९९५—९९८॥

लालचन्दन, नेत्रवाला, पाढ़ा, खस, पीपल, आंवला, सोंठ, कमल, हर्र, इनके समान लोहेकी भस्म डालकर मोथा, चीता और विड़ङ्ग मिलाकर घोटे, इससे सब प्रकारके विषमज्वर दूर होजाते हैं, इसका नाम चन्दनादिलोह है॥९९९—१००० ॥

(१) मुस्तकचित्रकविडङ्गेन। (२) सर्वद्रव्यसमानं लौहं दद्यात् ततो मधुनाद्यादिकर्मम् ।

चित्रकं त्रिफलाव्योषं विड़ङ्गं मुस्तकं तथा।
श्रेयसी पिप्पलीमूलमुशीरं देवदारु च ॥१००१॥
किराततिक्तकं बालं कटुकीकण्टकारिका।
शोभाञ्जनस्य वीजञ्च मधुकं वत्सकं समम् ॥१००२॥
लौहतुल्यं गृहीत्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक्।
सर्वज्वरहरो लौहः सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ १००३ ॥
वातिकं पैत्तिकं श्लेष्मद्वन्द्वजं सान्निपातिकम्।
जीर्णज्वरञ्च विषमं रोगसङ्करमेव च ॥१००४॥
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च विनाशयेत् ॥१००५॥

इति सर्वज्वरहरो लौहः।

द्विपलं जारितं लौहं रसं गन्धं द्वितोलकम्।
तोलकं त्रिफलाव्योषं विड़ङ्गं मुस्तकं तथा ॥१००६॥

चीता, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, विडंग, मोथा, रहसन, पीपलामूल, खस, देवदारु, चिरायता, नेत्रवाला, कुटकी, कटहली, सहंजनेके बीज, जेठीमधु और वासा ये सब समान२ और इन सबके समान लोहा डालकर वैद्य गोली बनाले, इससे वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर, प्लीहा, अग्रमांस और यकृत् रोग दूर होजाते हैं इसका नाम सर्वज्वरहर लोह है॥ १००१ ॥ १००५ ॥

लोहेकी भस्म २ पल, पारा, गन्धक ये दो दो तोले, हर्र,

श्रेयसी पिप्पलीमूलं हरिद्रे द्वे च चित्रकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥१००७॥
गुञ्जाद्वयवटीं कृत्वा भक्षयेदार्द्रकद्रवैः ।
सर्वज्वरहरो लौहः सर्वज्वरविनाशनः ॥ १००८ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
विषमज्वरभूतोत्थं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ १००९ ॥
मासजं पक्षजञ्चैव तथा संवत्सरोत्थितम् ।
सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१०१०॥

इति बृहत्सर्वज्वरहरोलौहः ।

पारदं गन्धकं शुद्धं ताम्रमभ्रञ्च माक्षिकम् ।
हिरण्यं तारतालञ्च कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥१०११॥

बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, बिडंग, मोथा, कूर, पीपलामूल, हल्दी, दारुहल्दी और चीता ये सब एक२ तोला इनको अदरख के रसमें घोटकर दो रत्तीकी गोली बनाले, फिर सब प्रकारके ज्वर नाश होनेके लिये अदरकके रसमें घोलकर रोगीको एक गोली देय, इससे वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, भूतोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर, प्लीहा, मासिक, पाक्षिक, वार्षिकज्वर इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्य्य निकलनेसे अन्धकारका नाश होजाता है इसका नाम बृहत् सर्वज्वरहर लोह है ॥ १००९ ॥ १०१० ॥

पारा, गन्धक, तांबा, अभ्रक, सोनामाखी, सोना, चांदी

मृतकान्तं पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम्।
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥ १०१२ ॥
कारवेल्लरसेनापि दशमूलरसेन च।
पुनर्नवाद्रकाम्भोऽभिर्भावनां परिकल्पय च ॥१०१३॥
रक्तिकादिक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक्।
पिप्पलीगुड़संयुक्ता वटिका वीर्य्यवर्द्धिनी ॥ १०१४ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति चिरकालसमुद्भवम्।
विविधं वारिदोषोत्थं नानादोषोद्भवं तथा ॥१०१५॥
सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि च।
क्षयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकभवं तथा ॥ १०१६ ॥
भूतावेशज्वरञ्चैव ऋक्षदोषभवं तथा।
अभिघातज्वरञ्चैवमभिचारसमुद्भवम् ॥ १०१७ ॥

और हरताल ये सब शुद्ध एक २ कर्ष, लोहेकी भस्म एकपल, इन सबको एक में मिलाकर नीचे लिखी औषधियों में अलग २ सात २ दिन भिगोवे ; करेला, दशमूल, गधापुन्ना और अदरक फिर एक २ रत्तीकी गोली बनाकर गुड़ और पीपलके संगदेय, इससे वीर्य्य बहुत बढ़ता है। आठों प्रकारके ज्वर, जीर्णज्वर, दुष्ट-पानीसे उत्पन्न हुआ ज्वर अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर, सत-तादि साध्य वा असाध्य विषमज्वर, क्षयसे उत्पन्न हुआ विषम-ज्वर धातुओं में प्राप्त ज्वर काम या शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर भूत या नक्षत्र दोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर, चोटसे उत्पन्न हुआ ज्वर

श्रेयसी पिप्पलीमूलं हरिद्रे द्वे च चित्रकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥१००७॥
गुञ्जाद्वयवटीं कृत्वा भक्षयेदार्द्रकद्रवैः ।
सर्वज्वरहरो लौहः सर्वज्वरविनाशनः ॥ १००८ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
विषमज्वरभूतोत्थं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ १००९ ॥
मासजं पक्षजञ्चैव तथा संवत्सरोत्थितम् ।
सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१०१०॥

इति बृहत्सर्वज्वरहरोलौहः ।

पारदं गन्धकं शुद्धं ताम्रमभ्रञ्च माक्षिकम् ।
हिरण्यं तारतालञ्च कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥१०११॥

बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, विडंग, मोथा, हर्र, पीपलामूल, हलदी, दारुहलदी और चीता ये सब एक२ तोला इनको अदरक के रसमें घोटकर दो रत्तीकी गोली बनाले, फिर सब प्रकारके ज्वर नाश होनेके लिये अदरकके रसमें घोलकर रोगीको एक गोली देय, इससे वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, भूतोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर, प्लीहा, मासिक, पाक्षक, वार्षिकज्वर इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्य्य निकलनेसे अन्धकारका नाश होजाता है इसका नाम बृहत् सर्वज्वरहर लौह है ॥ १००६ ॥ १०१० ॥

पारा, गन्धक, तांबा, अभ्रक, सोनामाखी, सोना, चांदी

मृतकान्तं पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम्।
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥ १०१२ ॥
कारवेल्लरसेनापि दशमूलरसेन च।
पुनर्नवार्द्रकाम्भोऽभिर्भावनां परिकल्पय च ॥१०१३॥
रक्तिकादिक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक्।
पिप्पलीगुड़संयुक्ता वटिका वीर्य्यवर्द्धिनी ॥ १०१४ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति चिरकालसमुद्भवम्।
विविधं वारिदोषोत्थं नानादोषोद्भवं तथा ॥१०१५॥
सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि च।
क्षयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकभवं तथा ॥ १०१६ ॥
भूतावेशज्वरञ्चैव ऋक्षदोषभवं तथा।
अभिघातज्वरञ्चैवाभिचारसमुद्भवम् ॥ १०१७ ॥

और हरताल ये सब शुद्ध एक २ कर्ष, लोहेकी भस्म एकपल, इन सबको एक में मिलाकर नीचे लिखी औषधियों में अलग २ सात २ दिन भिगोवे : करेला, दशमूल, गधापुन्ना और अदरक फिर एक २ रत्तीकी गोली बनाकर गुड़ और पीपलके संगदेय, इससे वीर्य्य बहुत बढ़ता है। आठों प्रकारके ज्वर, जीर्णज्वर, दुष्टपानीसे उत्पन्न हुआ ज्वर अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुआ ज्वर, सततादि साध्य वा असाध्य विषमज्वर, क्षयसे उत्पन्न हुआ विषमज्वर धातुओं में प्राप्त ज्वर काम या शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर भूत या नक्षत्र दोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर, चोटसे उत्पन्न हुआ ज्वर

अभिन्यासं महाघोरं विषमञ्च त्रिदोषजम् ।
शीतपूर्वं दाहपूर्वं विषमं शीतलं ज्वरम् ॥ १०१८ ॥
प्रलेपकज्वरं घोरं अर्द्धनारीश्वरं तथा ।
प्लीहज्वरं तथा कासं चातुर्थकविपर्य्ययम् ॥१०१९॥
पाण्डुरोगगणान् सर्वान् अग्निमान्द्यं महागदम् ।
एतान् सर्वान्निहन्त्याशु पक्षाद्धान्नात्र संशयः ॥१०२०॥
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्दिजसंयुतम् ।
ककारपूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः ॥ १०२१ ॥
मैथुनं वर्जयेत्तावद्यावन्न बलवान् भवेत् ।
सर्वज्वरहरं श्रेष्ठमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ १०२२ ॥

इति बृहत्सर्वज्वरहरलौहम् ।

कण्टकारी सिन्दुवारस्तथा पूतिकरञ्जकम् ।
एतेषां रसमादाय कृत्वा खर्परखण्डके ॥ १०२३ ॥

घोर अभिन्यासज्वर, शीतज्वर, दाहज्वर, प्रलेपकज्वर, अर्द्धनारीश्वरज्वर, प्लीहज्वर, खांसी, चातुर्थिक विपर्य्यज्वर, सब प्रकारके पाण्डुरोग और मन्दाग्नि आदि रोग निस्सन्देह एक ही पक्षमें दूर होजाते है इसमें महाभात और पथ्य हैं जिस वस्तुके पहले ककार हो उसे न खाय जब तक बलवान् न हो तब तक मैथुन नकरे, वैद्य रोगीके स्वभावानुसार अनुपान कल्पना करले इसका नाम भी बृहत् सर्वज्वर हर लोह हैं ॥ १०११ ॥ १०२२ ॥

कटेहली, सिनुवार और करंजुवा, इन सबका रस निकाल

प्रक्षिप्य गन्धकं तत्र ज्वालां मृदग्निना दहेत्।
गन्धके स्नेहतापन्ने तत्समं पारदं क्षिपेत् ॥ १०२४ ॥
मिश्रीकृत्य ततो हाभ्यां द्रुतं तमवतारयेत्।
आमर्दयेत्तथा तत्र यथा स्यात् कज्जलप्रभम् ॥१०२५॥
ततस्तु रक्तिकामस्य माषकं जीरकस्य च।
माषिकं लवणस्यापि पर्णे कृत्वा निधापयेत् ॥१०२६॥
ज्वरे त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिबेदनु।
छर्द्यां शर्करया दद्यात् सामे दद्यात्तथा गुड़म् ॥१०२७
क्षये छागीभवं क्षीरं प्रदद्यादनुपानकम्।
रक्तातिसारे कुटजमूलवल्कलजं रसम् ॥१०२८॥
रक्तवान्तौ तथा दद्यादुडुम्बरभवं जलम्।
सर्वव्याधिहरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः ॥ १०२९ ॥

कर एक मिट्टीके ठीकरे में रक्खे, उसमें गन्धक डालदे, फिर धीरे धीरे उसके नीचे आग दे, जब गन्धक गलजाय, तब उसी के समान पारा डालदे, जब दोनों मिलजांय, तब उतारकर घोटकर कज्जल बनाले, फिर एकरत्ती यह रस एकमासा जीरा और एक मासा नमक इन सबको पान में रखकर रोगीको खिलावे, ऊपरसे थोड़ा पानी गरम करके पिलादे, इससे घोर सन्निपातज्वर दूर होजाता है, वमनमें शक्करके संग, आमज्वरमें गुड़के संग, क्षयमें बकरीके दूधके संग देय और ऊपरसे थोडा जीरा खिलादे, रक्तातिसार में कुरैया की जड़की छालके रसमें, रक्त वमन होनेमें गूलरके रसके संग दे, यह गन्धककी कज्जली

आयुर्वृद्धिकरश्चैव मृतञ्चापि प्रबोधयेत् ॥ १०३० ॥

इति गन्धककज्जलिकाविधिः ।

अथ ज्वरबलिः ।

ज्वरामयगृहीतस्य मुष्टिभिर्नवभिः कृतम् ।
तण्डुलैरोदनं तेन कुर्य्यात्पुत्तलिकं शुभम् ॥ १०३१ ॥
तं हरिद्राबलिप्ताङ्गं चतुःपीतध्वजान्वितम् ।
हरिद्रारसपूर्णाभिः पुटिकाभिश्चतसृभिः ॥ १०३२ ॥
मण्डितं गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य विवर्जयेत् ।
एवं दिनत्रयं कुर्य्यात् ज्वररोगोपशान्तये ॥ १०३३ ॥

ओदनेन पुत्तलं निर्माय वीरणाचाचिकायां संस्थाप्य हरिद्रादिभिरवलिप्य चतुःपीतपताकाभि-

सबरोगको दूर करती है, इससे बल आयु, बुद्धि ब॰ बढ़ती हैं एकवार मरा हुआ रोगी भी चैतन्य होजाता है यह विधि गौरीकाञ्चलिका तन्त्रमें लिखी है ॥ १०२३—१०३० ॥

आगे ज्वरमें बलि देनेकी विधि कहते हैं ।

जिस मनुष्यको ज्वर आया हो उसके आठमुठी चावल ले कर पीसके एक पुतला बनाके उसके शरीर पर हल्दी लेपदे, उसे एकवर्त्तन में रखकर चारों ओर पीली ध्वजा लगावे, फिर उस वर्त्तन में हल्दीके रससे भरी चार कुल्हियां चारो ओर रक्खे, फिर सुगन्ध और फूल चढ़ाकर उसे जंगल में डाल आवे, इस प्रकार तीन दिन करनेसे ज्वर शान्त होजाता है इसको

रलङ्कृत्य गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य हरिद्रारसपूर्णाश्चतस्रः पुटिकाश्चतुःकोणे संस्थाप्य। विष्णुर्नामोऽद्येत्यादिना सङ्कल्प्य ज्वरं ध्यात्वा समावाह्य नवकपर्द्दकक्रीतगन्ध-पुष्पधूपदीपादिभिः संपूज्य सन्ध्यासमये ज्वरितं निर्मञ्छ्य मन्त्रमिमं पठित्वा दिनत्रयं बलिं दद्यात्। ओं नमो भगवते गरुडासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्त्यस्तु वस्तुतः स्वाहा। ओं कं टं पं शं वैनतेयाय नमः। ओं ह्रीं ठः ठः भो भो ज्वर शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चतुर्थकं साप्ता-हिकमर्द्धमासिकं मासिकं नैमेषिकं मौहूर्त्तिकं हुं फट फ्रं फट् फट् हन हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ स्वाहा इति पठित्वा एकवृक्षे श्मशाने चतुष्पथे वा विसर्जयेत्। एतत् कर्म्म वास्तु शुचि दक्षिण-प्रदेशे कुर्य्यात्॥ १०३४॥

विधि यह है कि चावलोंका पुतला बनाकर उसकी टोकरीमें रक्खे, फिर उसे हल्दीसे लेपकर चारोंकोनों पर हल्दीके रससे भरी चार कुल्हियां रक्खे, फिर ओं विष्णु २ आदि संकल्प पढ़ कर ज्वरका ध्यान करे, फिर नौ कौड़ीके गन्धककी धूपदे, फूल और सुगन्ध चढ़ाकर ज्वरीको पास बिठलाकर मूलमें लिखा मन्त्र पढ़कर तीन दिनतक इसी प्रकार बलि देय, गांवसे दक्षिण की ओर जंगलमें जहां एक वृक्ष हो वहां या श्मसान अथवा

अथ नक्षत्रजन्मफलम् ।

कृत्तिकायां यदा व्याधिरुत्पन्नो भवति स्वयम् ।
नवरात्रं भवेत्पीड़ा त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥१०३५॥
मृगशीर्षे सप्तरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः ।
पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रेण मोचनम् ॥१०३६॥
नवरात्रं तथा श्लेष्ये श्मशानान्तं मघासु च ।
द्वौ मासौ पूर्वफल्गुण्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥१०३७॥
हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् ।
मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशति ॥१०३८॥

चतुष्पथ (चौराहा) में उस पुतलेको रख आवे, इस कर्मको पवित्र होकर करे ॥ १०३१ ॥ १०३४ ॥

आगे नक्षत्रोंका फल लिखते हैं ।

यदि कृत्तिका नक्षत्रमें रोग हुआ हो तो ९ दिन, रोहिणीमें ३ दिन, मृगशिर में ७ दिन रहता है और आर्द्रा में होनेसे रोगी मरजाता है । पुनर्वसु और पुष्यमें ७ दिन, श्लेषामें ९ दिन की मर्य्यादा है, मघामें रोग होनेसे रोगी अच्छा नहीं होता, पूर्वाफाल्गुणी में दो महीने, उत्तराफाल्गुणीमें १५ दिन, हस्त में सात दिन, चित्रामें १५ दिन, स्वातिमें दो महीने, विशाखा में २० दिन, अनुराधा में दश दिन, ज्येष्टा में १५ दिन रोग रहता है मूल में होनेसे रोगी मरजाता है, पूर्वाषाढ़ में १५ दिन, उत्तराषाढ़ में २० दिन श्रवण में दो महीने, धनिष्टा में

मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम्।
मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढ़े त्रिपक्षकम् ॥१०३८॥
उत्तरे दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणे तथा।
धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुणे च दशाहकम् ॥१०४०॥
पूर्वभाद्रपदे देवि! ऊनविंशतिवासरम्।
त्रिपक्षञ्चाहिर्बुध्ने च रेवत्यां दशरात्रकम् ॥ १०४१ ॥
अहोरात्रं तथाऽश्विन्यां भरण्यान्तु गतायुषः।
एवं क्रमेण जानीयान्नक्षत्रेषु यथोचितम् ॥ १०४२ ॥
इति गौरीकञ्चुलिकायाम्।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च।
क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ १०४३ ॥
देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम्।

१५ दिन, शतभिषामें १० दिन पूर्वभाद्रपद में १८ दिन, उत्तरा-भाद्रपद में डेढ़ महीने, रेवती में दश दिन, अश्विनी में एकदिन रात रोग रहनेकी मर्य्यादा है, भरणी में रोग होनेसे किसी प्रकार नहीं जीता वैद्य इस विधिको भी विचारले; ये सब गौरीकाञ्चलिकातन्त्र में लिखा है ॥ १०३५—१०४२ ॥

अब रोगीको पसीना आने लगे, शरीर हलका होजाय, शिरमें खुजली लगे, मुख प्रसन्न हो, छींक आवें, भोजन करने की इच्छा हो, तब जाने कि अब ज्वर नहीं है ॥ १०४३ ॥

स्वेदः क्षवः प्रकृतिगामि मनोऽन्नलिप्सा
कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥१०४४॥
व्यायामश्च व्यवायश्च स्नानं चंक्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत् ॥१०४५॥

अथारोग्यस्नानविधिः ।

धनिष्ठा श्रवणा स्वाति ज्येष्ठा शतभिषा तथा ।
रविमन्दभौमवाराश्चन्द्रोऽथ शुभवर्जितः ॥ १०४६ ॥
केन्द्रस्थाश्चाशुभाः शस्ता व्यतीपातादिवासराः ।
तिथौ न शस्ता प्रतिपत्तृतीया नवमी तथा ॥१०४७॥
स्नानाय रोगमुक्तानां दशमी च त्रयोदशी ।

शरीर हलका हो, शरीरमें थकाई, मोह और गर्मी न हो, मुखका स्वाद ठीक हो, इन्द्री प्रसन्न हों, कुछ दुःख न जान पड़ता हो, पसीना आता हो, छींक आने लगी, मन सावधान होजाय, भूख लगी और शिरमें खुजली लगने लगी तो जाने अब ज्वर नहीं है ॥ १०४४ ॥

ज्वर छूटने पर भी जब तक रोगी बलवान् न हो तब तक व्यायाम (कसरत) मैथुन और स्नान न करे और न घूमे ॥१०४५॥

आगे आरोग्य स्नानकी विधि कहते ।

धनिष्टा, श्रवण, शतभिषा और जेष्टा ये नक्षत्र, रविवार, शनिश्चर, मंगल और सोम ये वार रोगीको स्नान कराने में वर्जित हैं । जब केन्द्रस्थान अर्थात् लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम

बुधेन्दुगुरुशुक्राणां वाराः स्नाने न शोभनाः ॥१०४८॥
रोगान्मुक्तस्य नाश्लेषा रोहिणी भद्रदायिनी ॥१०४९॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरचिकित्साधिकारो
द्वितीयः समाप्तः ।

अथ ज्वरातिसाराधिकारः ।

पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसारः
तथातिसारे यदि वा ज्वरः स्यात् ।
दोषस्य (१) दूष्यस्य (२) समानभावात्
ज्वरातिसारः कथितो भिषग्भिः ॥ १ ॥

स्थानों में पापग्रह अर्थात् शनि, राहु, केतु या मंगल हो तो उस दिन रोगीको स्नान करावे, परन्तु व्यतिपात, प्रतिपदा, तीज और नवमी तिथि न हो स्नान करने के लिये दशमी, त्रयोदशी, बुध, सोम, बृहस्पति और शुक्र अच्छे हैं; रोग छूटने पर श्लेषा और रोहिणी नक्षत्र में स्नान न करावे ॥ १०४६॥१०४९ ॥

भाषा भैषज्यरत्नावली में ज्वराधिकार समाप्त।

चाहे पित्तसे उत्पन्न हुए ज्वरमें पित्तका अतिसार हो और चाहे अतिसार में ज्वर हो गया हो तो उसे ज्वरातिसार कहते

(१) वातादिः । (२) रसादिधातवः ।

ज्वरातिसारयोरुक्तमन्योऽन्यं भेषजं पृथक् ।
नास्मिन् मिलितयोः कुर्य्यादन्योऽन्यं वर्द्धयेद्यतः ॥२॥
प्रायो ज्वरहरं भेदि स्तम्भनन्त्वतिसारनुत् ।
अतोऽन्योऽन्यविरुद्धत्वाद्वर्द्धनं तत्परस्परम् ॥ ३ ॥
ज्वरातिसारिणामादौ कुर्य्याल्लङ्घनपाचने ।
प्रायस्तावामसम्बन्धं विना न लभतो यतः ॥ ४ ॥
ज्वरातिसारे पेयादिक्रमः स्याल्लङ्घिते हितः ।

हैं इस ज्वरातिसार में दोष (वात पित्त कफ) और दृष्य (रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और वीर्य्य) समान हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ चिकित्सा ।

ज्वरातिसार में वैद्योंने ज्वर और अतिसारको अलग २ चिकित्सा कही है उसमें दोनोंकी एक चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ; क्योंकि ज्वरकी चिकित्सासे अतिसार और अतिसार की चिकित्सासे ज्वर बढ़ता है ॥ २ ॥

ज्वरनाश करनेवाली प्रायः सब औषधि दस्तलानेवाली होती है, और अतिसार की प्रायः सब औषधि दस्त बन्दकरने वाली होती हैं, इससे अतिसारकी चिकित्सा ज्वरको और ज्वर की चिकित्सा अतिसारको बढ़ाती हैं इसलिये दोनोंकीचिकित्सा अलग २ करनी चाहिये ॥ ३ ॥

ज्वरातिसारके रोगीको पहले लंघन दे, और फिर पाचन औषधिदे, क्योंकि ज्वरातिसार बिना आमदोषके नहीं होता ॥४

ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः॥ ५॥
ह्रीवेरातिविषामुस्तबिल्व(१)नागरधान्यकैः।
पिबेत् पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम्॥
सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम्॥ ६॥

इति ह्रीवेरादिकषायः।

उशीरं बालकं मुस्तं धान्याकं विश्वभेषजम्।
समङ्गा धातकीलोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम्॥ ७॥
हन्त्यरोचकपिच्छामविबन्धं सातिवेदनम्।
सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम्॥ ८॥

इति उशीरादिकषायः।

ज्वरातिसारवालेको लङ्घन देनेके पश्चात् खट्टी औषधियोंमें पकी खट्टी पेया पिलावे॥ ५॥

नेत्रवाला, अतीस, मोथा, कच्ची बेलकी गिरी, सोंठ और धनियां इनका काढ़ा पीनेसे शूल, आमदोष, ज्वर रहित अतिसार, ज्वर सहित अतिसार और रक्तातिसार दूर होजाते हैं, इसका नाम ह्रीवेरादि क्वाथ है॥ ६॥

खस, सुगन्धवाला, मोथा, धनियां, सोंठ, मजीठ, धायके फूल, लोध और बेलगिरी, इनका काढ़ा पीनेसे दोष पचते हैं और अग्नि बढ़ती है। अरोचक, विबन्ध, अधिक पीड़ा और रक्त वा ज्वरके सहित अतिसार दूर होजाते हैं इसका नाम उशीरादि क्वाथ है॥ ७—८॥

---

(१) बिल्वमामं गृह्णीतम्।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीविल्वाब्दबालकैः ।
पाठाभूनिम्बकुटज(१)चन्दनोशीरपद्मकैः ॥ ९ ॥
कषायः शीतलः पेयो ज्वरातिसारशान्तये ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहशान्तिकृत् ॥ १० ॥

इति गुडूच्यादिकषायः ।

पञ्चमूलीबलाविल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ।
पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैः (२) शृतम् ॥११॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोषं वमिं तथा ।
सशूलोऽपि द्रवं कासं श्वासं हन्यात् सुदारुणम् ॥१२॥
पञ्चमूली च सामान्यादेया पैत्ते कनीयसी ।

गुरिच, अतीस, धनियां, सोंठ, वेलगिरी, मोथा, नेत्रवाला, इन्द्रजौ, पाढ़ा, चिरायता, लालचन्दन, खस और पद्माख इनका शीत कषाय पीनेसे ज्वरातिसार हृल्लास, अरोचक, वमन और दाह शान्त होजाते हैं इसका नाम गुडूच्यादि क्वाथ है ॥९—१०॥

पञ्चमूल, बरियारा, वेलगिरी, गुरिच, मोथा, सोंठ, पाढ़ा चिरायता, नेत्रवाला, कुरैयाकी छाल और इन्द्रजौ इनका काढ़ा पीनेसे सब प्रकारके अतिसार, ज्वरदोष, वमन, शूल, खांसी और घोर स्वांस दूर होजाता है ।

यह नियम है कि पित्तसे उत्पन्न हुए ज्वरातिसार में छोटा

---

(१) इन्द्रबीजम् ।

(२) इन्द्रयवैः ।

महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मोत्तरे हिता ॥ १३ ॥

इति पञ्चमूल्यादिकषायः ।

पञ्चमूली शृङ्गवेरं शृङ्गाटं कञ्चट (१) घनम् ।
जम्बूदाड़िमपत्रञ्च वला वालं गुडूचिका ॥ १४ ॥
पाठा विल्वं समङ्गा च कुटजत्वक् फलं तथा ।
धान्यकं धातकीक्वाथं विश्वाजीरकसंयुतम् ॥ १५ ॥
पिवेत् ज्वरातिसारे च सरक्ते वाप्यरक्तके ।
अपि योगशतैस्त्यक्ते चासाध्ये सर्वरूपके ॥ १६ ॥

इति वृहत्पञ्चमूल्यादिकषायः ।

दशमूलीकषायेण विश्वमक्षसमं पिवेत् ।

पञ्चमूल और वात कफसे उत्पन्न हुए ज्वरातिसारमें बड़ा पञ्चमूल लिया जाता है इसका नाम पञ्चमूल्यादि क्वाथ है ॥ ११ ॥ १३ ॥

पञ्चमूल, अदरक, सिंघाड़ा, जलपीपल, मोथा, जामुन के पत्ते, अनारके पत्ते, वरियारा, सुगन्धवाला, गुरिच, पाढ़ा, वेल-गिरी, मजीठ, कुरैयाकी छाल, इन्द्रजौ, धनियां और धायके फूल इनके काढ़े में सोंठ और जीरेका चूर्ण डालकर पीनेसे रक्त सहित अथवा विना रक्त ज्वरातिसार दूर होजाता है सैकड़ों औषधि छोड़कर असाध्य सन्निपात के ज्वरातिसार में यही औषधि दे, इसका नाम वृहत्पञ्चमूल्यादि क्वाथ है ॥ १४ ॥ १६

(१) जलपिप्पली ।

ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ १७ ॥

इति शुण्ठीदशमूलम् ।

धान्याकं विश्वसंयुक्तमामघ्नं वह्निदीपनम् ।
वातश्लेष्मज्वरहरं शूलातिसारनाशनम् ॥ १८ ॥

इति धान्यशुण्ठी ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला विल्वं सदाड़िमम् (१) ।
विल्वपञ्चकमित्येतत् क्वाथं कृत्वा प्रदापयेत् ॥ १९ ॥
अतिसारे ज्वरे छर्द्यां शस्यते विल्वपञ्चकम् ॥ २० ॥

इति विल्वपञ्चककषायः ।

कलिङ्गविल्वनिम्बाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम् ।

दशमूलके काढ़ेमें एक अच्च सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे ज्वर, अतिसार, सोथ और संग्रहणी रोग दूर होते हैं इसका नाम शुंठीदशमूल योग है ॥ १७ ॥

धनियां, सोंठ इन दोनोंको पीनेसे अग्नि बढ़ती है वात, कफज्वर, शूल और अतिसार दूर होते हैं, इसका नाम धान्य-शुंठी योग है ॥ १८ ॥

शालिपर्णी, पृष्टपर्णी, बरियारा, बेलगिरी, अनार, इन सबका काढ़ा पका कर देनेसे अतिसार ज्वर और वमन होना बन्द होजाते हैं इसका नाम विल्वपञ्चक काढ़ा है ॥ १९ ॥ २० ॥

इन्द्रजौ, बेलगिरी, नीमके पत्ते आमके पत्ते, कैथके पत्ते,

(१) दाड़िमफलत्वचम् ।

लाक्षां हरिद्रे ह्रीवेरं कट्फलं शुकनासिकाम् ॥२१॥
लोध्रं मोचरसं शङ्खं धातकीं वटशुङ्गकम्।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ २२ ॥
छायाशुष्कान् पिबेत् क्षिप्रं ज्वरातीसारशान्तये।
रक्तप्रसाधना ह्येते शूलातीसारनाशनाः ॥ २३ ॥

इति कलिङ्गादिगुड़िका।

व्योषं वत्सकबीजञ्च निम्बभूनिम्बमार्कवम्।
चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमतिविषां समाम् ॥२४॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं तत्तुल्या वत्सकत्वचः।
सर्वमेकत्र संयोज्य पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ २५ ॥
सक्षौद्रं वा लिहेदेतत् पाचनं ग्राहिभेषजम्।
तृष्णारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ २६ ॥

रसौत, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, नेत्रवाला, कायफल, शुकनासा, लोध, मोचरस, शंख, धायकेफूल और बड़गदके अंकुर इन सबको चावलोंके पानीमें पीसकर एक २ अक्षकी गोली बनावे, छायामें सुखाकर ज्वरातीसार, रक्तातीसार, और शूलातीसार नाश करनेको देय, इसका नाम कलिंगादि बटी है॥ २१—२३॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, चिरायता, भंगरा, चीता, मजीठ, पाढ़ा, दारुहल्दी और अतीस इन सब को लेकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णके समान कुरैयाकी छाल डाल

प्रमेहं ग्रहणीदोषं गुल्मं प्लीहानमेव च ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥ २७ ॥

सर्वचूर्णसमं कुटजमूलवल्कलचूर्णं मिलितचूर्णम् अनुरूपं चतुर्गुणेन तण्डुलजलेन पिबेत् अथवा द्विगुणेन मधुना लिहेत् ॥ २८ ॥

इति व्योषादिचूर्णम् ।

कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण शर्करापलविंशतिम् ॥ २९ ॥
दत्वा पक्त्वा लेहपाके चूर्णानीमानि निक्षिपेत् ।
पठा समङ्गा विल्वञ्च धातकी मुस्तकं तथा ॥ ३० ॥

कर कपड़ेमें छान लें, इसचूर्णको चावलोंके जल अ॰॰वा शहतके संग खाय, तो दोष पच जाते हैं। और द॰॰ बन्द होजाते हैं। इससे प्यास, अरुचि, ज्वरातीसार, प्रमेह, ग्रहणी दोष, गुल्म, प्लीह, कामला, पाण्डुरोग और श्वयथु दूर होजाते हैं। इसकी विधि यह है कि सब औषधियोंके समान कुरैयाकी जड़की छाल डालकर चूर्ण बनावे इस चूर्णको रोगीके बलके अनुसार चौगुणे चावलके पानी अथवा दुगुणे शहतके संग खिलावे इसका नाम व्योषादि चूर्ण है ॥ २३—२८ ॥

कुरैयाकीछाल, सौपपल लेकर एक द्रोण पानीमें पकावे जब चौथाई रहजाय तब बीसपल शक्कर डालकर फिर पकावे, जब पकते२ अवलेह होजाय तब पाढ़ा, मजीठ, बेल-

दाड़िमातिविषा लोध्रं शाल्मलीवेष्टसर्ज्जकम्।
रसाञ्जनं धान्यकञ्च उशीरं वालकं तथा॥ ३१॥
प्रत्येकमेषां कर्षांशं निक्षिपेत्पाकविद्भिषक्।
शीते च मधुनस्तत्र कुड़वार्द्धं विनिक्षिपेत्॥ ३२॥
सर्वरूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम्।
रक्तस्रुतिं ज्वरं शोथं वविमर्शोगदं तृषाम्॥ ३३॥
अम्लपित्तं तथा शूलमग्निमान्द्यं नियच्छति।
अतीसारे ग्रहण्याञ्च दृष्टफलोऽयम्॥ ३४॥

इति बृहत् कुटजावलेहः।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्।
तेन पादावशेषेण शर्कराप्रस्थकं पचेत्॥ ३५॥

गिरी, धायकेफूल, मोथा, नागपाल, (अनारके फलका वकला) अतीस, लोध, सेमलका गोंद, राल, रसौत, धनियां, खस, और नेत्रवाला इन सबको एक२ कर्ष लेकर चूर्ण बनाकर उस पकते हुए अवलेह में डालदे, जब पक चुके तब उतार कर ठण्डा करले, ठण्डा होनेपर आधा कुड़व शहत डाले इससे सब प्रकारके अतीसार, सब प्रकारकी संग्रहणी रक्तातिसार, ज्वर, शोथ, वमन, अर्श, प्यास, अम्लपित्त, शूल और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं। अतीसार और संग्रहणी रोगमें अनेकवार इसका फल देखा गया है। इसका नाम बृहत् कुटजावलेह है॥ २८—३४॥

कुरैयाकी छाल सौपल लेकर एक द्रोण पानीमें पकावे,

ततो लेहे घनीभूते चूर्णानीमानि दापयेत् ।
लवङ्गं जीरकं मुस्तं धातकीविल्ववालकम् ॥ ३६ ॥
एला पाठा त्वचं शृङ्गी जातीफलमधूरिका ।
शक्राकातिविषाक्षारं काकोली च रसाञ्जनम् ॥३७॥
शाल्मलीवेष्टकं यष्टी समङ्गा रक्तचन्दनम् ।
वटशुङ्गं खदिरञ्च जम्ब्वाम्रपल्लवं तथा ॥ ३८ ॥
एषामक्षसमं चूर्णं प्रक्षिपेत्पाकविद्भिषक् ।
सिद्धेऽवतारिते शीते मधुनः कुड़वं न्यसेत् ॥ ३९ ॥
खादयेत् कर्षमात्रन्तु अनुपानविधिं शृणु ।
अनुपानं प्रदातव्यं दधिमस्तु त्वचापयः ॥ ४० ॥
चम्पकं कदलीमूलं स्वरसं कर्षमात्रतः ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ४१ ॥

जब चौथाई रह जाय तब एक प्रस्थ शक्कर डालकर फि पकावे ; जब पकतेर काढ़ा होजाय तब लौंग, जीरा, मोथा धायकेफूल, बेलगिरी, नेत्रवाला, इलायची, पाढ़ा, तज, काकड़ सिङ्गी, जायफल, गंभारी इन्द्रजौ, अतीस, खार, काकोली रसौत, सेमलका गोंद, जेठीमधु, मजीठ, लालचन्दन, बड़ गदके अंकुर, खैर, आमके पत्ते, और जामुनके पत्ते इन सबको एक एक अक्ष लेकर चूर्ण बनावे और उस अवलेहमें डाल दे जब पक चुके तब ठण्डा करके एक कुड़व शहत मिलादे, फि एक कर्ष खिलाकर दही, मट्ठा, तजका काढ़ा चंपाकेलेकी जड़का

रोगं रक्तातिसारञ्च चिरकालसमुद्भवम् ।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।
शोथातिसारसहितं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ ४२ ॥

तन्त्रान्तरे बृहत् कुटजावलेहः ।

अन्यत्रायं ग्रहणीगजेन्द्रावलेहः ।

आमरक्तातिसारे केवलातिसारे ग्रहण्याञ्च दृष्ट-
फलोऽयम् ॥ ४३ ॥

अथ रसप्रयोगः ।

गन्धेशाभ्र पृथग्वेदभागमन्यच्च भागिकम् ।
स्वर्जिटङ्कयवक्षाराः पञ्चैव लवणानि च ॥ ४४ ॥
वराव्योषेन्द्रबीजानि द्विजीराग्नियमानिका ।

अर्क एक कर्ष पिलादे, इसको प्रतिदिन प्रातःकाल देनेसे संग्रहणी पुराना रक्तातिसार, अनेक वर्ण और अनेक प्रकारकी पीड़ावाला पक्वातिसार और शोथातिसार सहित ज्वर शीघ्र दूर होजाता है। इसका नाम किसी पुस्तकमें बृहत् कुटजावलेह और किसीमें ग्रहणी गजेन्द्रावलेह लिखा है। आमातीसार, रक्तातीसार, अतीसार और संग्रहणीमें इसका फल देखा गया है ॥ ३५—४३ ॥

आगे रक्तातीसारके लिये रस चिकित्सा लिखते हैं।

गन्धक, पारा, अभ्रक ये चार चार भाग, सज्जी, सुहागा, जवाखार, पांचोनमक, त्रिफला, त्रिकुटा, इन्द्रजौ, दोनों जीरे,

सहिङ्गुबीजसारश्च शतपुष्पा सुचूर्णिता ॥ ४५ ॥
सिद्धः प्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः ।
माषैकं भक्षयेदस्य नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ ४६ ॥
उष्णोदकानुपानञ्च दद्यात्तत्र पलत्रयम् ।
ज्वरातिसारेऽतिसृतौ केवले वा ज्वरेऽपि च ॥ ४७ ॥
घोरे त्रिदोषजे रोगे ग्रहण्यामसृगामये ।
वातरोगे च शूले च शूले च परिणामजे ॥ ४८ ॥

इति सिद्धप्राणेश्वरो रसः ।

हिङ्गुलं मरिचं गन्धं पिप्पली टङ्कणं विषम् ।
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः ॥ ४९ ॥
मर्दयेद्याममात्रन्तु चणमात्रा वटी कृता ।
भक्षणाद् ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥ ५० ॥

चीता अजवायन, हींग, बीजसार, (बिड़ङ्ग) और सौंफ एक एक भाग इन सबका चूर्ण बनावे; फिर पान पर रखकर एकमासा खाय ऊपरसे छः तोले गरम पानी पिये, इससे ज्वरातिसार, ज्वर, सन्निपात संग्रहणी, रक्तातीसार वातरोग शूल, और परिणामशूल दूर होजाते हैं। इसका नाम सिद्ध प्राणेश्वर रस है ॥ ४४—४८ ॥

ईंगुर, मिर्च, गन्धक, पीपल, सुहागा, बिष और धतूरेके बीज इन सबको समान लेकर एकपहर तक भांगके रसमें घोट कर चनेके समान गोली बनाले, इस गोलीसे संग्रहणी,

अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतिसारञ्च नाशयेत् ।
पथ्यं दध्योदनं दद्याद् यद्वा तक्रौदनं चरेत् ॥ ५१ ॥

इति कनकसुन्दरोरसः ।

टङ्कणं दरदं गन्धमभ्रकञ्च समं समम् ।
दुग्धिकायारसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ५२ ॥
द्विगुञ्जं मधुना देयं श्वेतसर्जस्य वल्लकम् ।
विविधं नाशयेद्रक्तं ज्वरातीसारमुल्वणम् ॥ ५३ ॥
पथ्यं तक्रं पयश्छागमामशूलं विनाशयेत् ।
अग्निवृद्धिकरो ह्येष रसो गगनसुन्दरः ॥ ५४ ॥

इति गगनसुन्दरोरसः ।

मन्दाग्नि, ज्वर, और घोर अतीसार दूर होजाता है। खानेको दही, भात, अथवा मट्ठाभात देय, इसका नाम कनकसुन्दर रस है ॥ ४९—५१ ॥

सुहागा, ईंगुर, गन्धक, और अभ्रक इन सबको समान लेकर तीनदिन दुद्धीके रसमें भिगोवे, फिर दो रत्ती सफेदराल और दो रत्ती यह रस शहतमें मिलाकर रोगीको देय, तो अनेक प्रकारका रक्तातीसार और घोर ज्वरातीसार दूर हो-जाता है। खानेको मठाभात देय, बकरीके दूधके संग यह रस खानेसे आमशूल दूर होजाता है। और अग्नि बढ़ती है। इसका नाम गगनसुन्दर रस है ॥ ५२ ॥ ५४ ॥

सुवर्णबीजं मरिचं मराल-
पादं (१) कणा टङ्कणकं विषञ्च ।
गन्धं जयाद्भिर्दिवसं विमर्द्य
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विदध्यात् ॥ ५५ ॥
एषातिसारग्रहणीं ज्वराग्नि-
मान्द्यं निहन्यात्कनकप्रभेयम् ।
दध्योदनं पथ्यमनुष्णवारि
मांसं भजेत्तित्तिरिलावकानाम् ॥ ५६ ॥

इति कनकप्रभावटी ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरातिसारचिकित्साऽधिकारः समाप्तः ।

धतूरेके बीज, मिर्च, हंसपदी दृंगुग, सुहागा, विष और गन्धक इन सबको एकदिन भांगके रसमें घोटकर एक एक रत्तीकी गोली बना ले, इससे अतीसार संग्रहणी और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं। खानेको दहीभात तथा लवा और तीतरका मांसदे, रोगीको ठण्डा पानी पिलावे इसका नाम कनकप्रभावटी है ॥ ६३—५६ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें ज्वरातिसार अधिकार समाप्त ।

---

(१) हंसपदीहिङ्गुलम् ।

अथातीसाराधिकारः।

अतिशिशिरगुरूष्णस्थूलपिष्टद्रवान्नैः
अहितजलविषाद्यैः स्निग्धरूक्षातियोगैः।
श्रमभयगुरुभारैः स्नेहमिथ्याप्रयोगैः
अतिजलरमणैर्वैवेगघातैरयुक्तैः ॥ १ ॥
क्रमिदोषाच्च शोकाच्च दोषव्याप्तस्य देहिनः।
ऋतुसात्म्यविपर्य्यासादतीसारस्तु षड्विधः ॥ २ ॥
वातपित्तकफैः सर्वैं रामाच्छोकाच्च षड्विधः।
अतीसारः प्रभवति लक्षणं गदतः शृणु ॥ ३ ॥

बहुत ठण्ढी, बहुत गर्म, भारी, मीटीपिसी, पिट्ठी, बहनेवाली वस्तु, खट्टी, अति चिकनी और अति रूखी वस्तु खानेसे, अहित जल पीनेसे, विष खानेसे, श्रम करनेसे, शक्तिसे अधिक बोझ उठाने, वे समय स्नेह योग करनेसे, अर्थात् बिना समय या विपरीति ऋतु या देशमें तेल आदि लगानेसे, अथवा स्नेह वस्ति आदि क्रिया करनेसे, अधिक जल विहारसे, विष्टा, वायु, और मूत्र आदि रोकनेसे, किसी ऋतुमें विपरीति कर्म करनेसे और क्रमिरोग उत्पन्न होनेसे, जब मनुष्यका शरीर दोषोंसे पूर्ण होजाता है तब अतीसार नामक रोग उत्पन्न होता है। वह अतीसार छः प्रकारका है। उन छहोंके लक्षण अलगर कहते हैं। उसके वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार, सन्नि-

अथ संप्राप्तिः ।

जलधातुरतिस्तब्धो मन्दीकृत्य हुताशनम् ।
अधःसरत्यतीसारो (१) व्याधिमाहुर्विचक्षणाः ॥४॥

अथ पूर्वरूपम् ।

अविपाकस्तथाध्मानं विट्सङ्गो गात्रपीड़नम् ।
वातसंगश्च हृन्नाभि कुक्षिपायूदरव्यथा ।
अरुचिः पीड़नं देहे पूर्वरूपमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

अथ वातातिसारलक्षणम् ।

अल्पं रूक्षं फेनिलं चारुणाच्छं
शूलाविष्टश्चान्त्रकूजीमनुष्यः ।

वातातीसार, आमातीसार और शोकातीसार ये छः भेद हैं ॥ १—३ ॥

जब मनुष्यके शरीरमें ऊपर लिखे कारणोंसे जल बहुत बढ़ जाता है। तब वह बढ़ा हुआ जल जठराग्निको मन्द करके गुदाके मार्गसे निकलने लगता है। उसेही वैद्य अतीसार रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

अन्न न पचना, पेट फूलना, विष्टा और वायु बन्द होजाना, सब शरीर विशेषकर, कोख गुदा और पेटमें पीड़ा होना, ये लक्षण अतीसार होनेसे पहले ही होजाते हैं। अर्थात् जिसे ये लक्षण हों उसे वैद्य जानले कि इसे अतीसार होगा ॥५॥

वातातिसारमें थोड़ा, रुखा, फेनयुक्त, लाल, कुछ काला, ठण्डा,

(१) स एव जलधातुरधोगुदमार्गमाश्रित्यातिसरति नदीमिव वहति तं व्याधिमतीसारमाहुरित्यर्थः।

श्यावं शीतं मांसतोयाभवर्चः
उष्णं वातात् सार्य्यते कृच्छ्रतो हो ॥ ६ ॥

अथ पित्तातिसारलक्षणम्।

आलोहितं पीतमथापिनीलं
ज्वरोत्तदेहः खलु सृष्ट विट्कः।
भूयः सशंकः किल दाहमूर्च्छा
तृष्णान्वितो पित्तभवेऽतीसारे ॥ ७ ॥
निद्रातन्द्रादाहपाक गौरवोत् उत्क्लेशपीड़ितः।
पित्तातिसारे भवति तीक्ष्णावेगव्यथार्दितः ॥ ८ ॥

अथ कफातिसारलक्षणम्।

श्वेतं गाढ़ं श्लेष्मयुक्तञ्च वर्चः
तन्द्रामोहावास्य शोषश्च भूयो।
भक्तद्वेषोहृष्टरोमा मनुष्यः
श्लेष्मोद्भूते चातिसारे तृषार्तः ॥ ९ ॥

कुछ गर्म और मांसके धोये हुए पानीके समान वर्णवाला विष्ठा आता है। रोगी शूलसे व्याकुल रहता है और आंतमें शब्द होता है। कभी कभी विष्ठा भी कष्टसे होता है ॥ ६ ॥

पित्तातीसारमें लाल, पीला या नीला, विष्टा होता है। मनुष्यको दस्त होनेपर भी फिर दस्त होनेकी आशङ्का बनी रहती है। दाह, मूर्च्छा और प्यास से रोगी व्याकुल रहता है। नींद जंभुआई, दाह, पाक, शरीरकाभारीपन, पीड़ा और आलस्य बहुत होते हैं। दस्त भी बहुत वेगसे लगते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ सन्निपातातिसार लक्षणम् ।

दोषत्रयोत्थे खलु चातिसारे
लिङ्गानि सर्वाणि भवन्ति तेषाम् ।
बालेषु वृद्धेषु ह्यसाध्य एव
अन्येषु कृच्छ्रेण सुसिद्ध्यतीह ॥ १० ॥

अथ पित्तातिसार भेद रक्तातिसारलक्षणम् ।

पित्तवर्द्धन द्रव्याणि यदा अत्त्येव पैत्तिके ।
तदा भवत्यतीसारो रक्तपूर्वोऽतिदारुणः ॥ ११ ॥
तस्मिन् सरातिरक्तं हि मानवः पीड़ितो भृशम् ।
दाहपाकज्वरतृष्णा पीड़ितो मूर्च्छितो मुहुः ॥१२॥

कफातीसारमें सफेद, गाढ़ा और कफयुक्त विष्ठा आता है । रोगीको बार बार जंभुआई और मूर्च्छा आती है मुंह सूखता है । खानेकी इच्छा नहीं होती और रोएं खड़े होजाते हैं ॥९॥

सन्निपातसे हुए अतीसारमें तीनों दोषोंके लक्षण अलग २ दिखाई देते हैं ; यह बालक और बूढ़ोंको हो तो असाध्य और जवानको होतो कष्टसाध्य है । अर्थात् यह रोग सुखसाध्य कदापि नहीं ॥ १० ॥

जब मनुष्य पित्तातीसार होनेपर भी पित्त बढ़ानेवाले वस्तु खाता जाता है । तब उसे घोर रक्तातीसार होजाता है । रक्तातीसारमें रक्तही आता है रोगी दाह, पाक, ज्वर प्यास और मूर्च्छासे हर समय व्याकुल रहता है ॥ ११—१२ ॥

अथ शोकातिसारलक्षणम्।

जन्तो: शोकं कुर्वतो बाष्पवेग:
रुद्धो वह्निं व्याप्यकोष्ठञ्च गत्वा।
वक्र्‌ात्माढ्य: क्षोभयन् रक्तमस्य
रक्तञ्चाध: काकणतीसमंवै ॥ १३ ॥
बारम्बारं विड्‌विमिश्रं त्वविड्‌वा
गन्धाढ्यं वा गन्धहीनं क्वचिच्च।
शोकोत्पन्नं तं त्वतीसार माहु:
आद्यै वैद्यै: कृच्छ्र एषोपदिष्ट: ॥ १४ ॥

अथ भयातिसारलक्षणम्।

वातपित्तकफादिष्टि भयक्षुब्धा नरस्यतु।
तदा भवत्यतीसारो भयपूर्वो भयानक: ॥ १५ ॥
जलप्लवं तदावर्च उष्णं सरतिमानव:।

जब मनुष्य किसी शोकसे व्याकुल होकर आंसुओंको रोकता है। तब वही आंसू जठराग्निपर गिरते हैं फिर आंखकी गर्मीको संग लेकर घुंघचीके समान वर्णवाले रक्तके दस्तलाता है। इस रक्तके संग कभी कभी दुर्गन्धि सहित विष्ठा आता हैं और कभी कभी नहीं भी आता प्राचीन वैद्योंने इस शोकातीसारको कृच्छ्रसाध्य कहा है॥ १३ ॥ १४ ॥

जब मनुष्य किसी भयसे व्याकुल होता है और उसके तीनों

वातपित्तकफव्याप्तचिह्नं पीडार्दितो भृशम् ॥१६॥

अथातिसार भेदप्रवाहिका लक्षणम् ।

प्रद्धोतिवायुर्निचितं कफं वै
अधोऽनुदत्येव मलान्समाटौ ।
अपथ्यभोक्तुर्मनुजस्य चाल्पं
प्रवाहिकासा कथिता मुनीन्द्रैः ॥१७॥
शूलान्विता वातकृता च पित्तात्
दाहान्विता श्लेष्मभवा कफाढ्या ।
रक्तान्विता रक्तभवा मतास्ताः
सस्नेह रूक्षप्रभवाः समस्ताः ॥ १८ ॥

दोष बिगड जाते हैं तब उसे भयानक भयातीसार कहता है। उसमें जलके ऊपर तैरने योग्य गर्म विष्टा बार बार होता है। वात पित्त और कफके चिह्न तथा पीड़ा भी होती है ॥१५॥१६॥

जब वायु बहुत बढ़जाता है और मनुष्य अपथ्य भोजन करता है। तब वह वायु इकट्ठे हुए कफको गुदामार्गसे बार२ थोड़ा थोड़ा निकालने लगता है। इस रोगका नाम वैद्योंने प्रवाहिका कहा है। प्रवाहिकाकी उत्पत्ति अधिक चिकनी और अधिक रूखी वस्तुके खानेसे होती है। वातसे उत्पन्न हुई प्रवाहिकामें शूल, पित्तसे उत्पन्न हुईमें दाह, कफसे उत्पन्न हुईमें कफ सहित विष्टा और रक्तसे उत्पन्न हुईमें रक्त सहित विष्टा आता है ॥ १७—१८ ॥

अथातिसारचिकित्सा ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया(१)यतः ।
अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वामलक्षणम् ॥ १९ ॥
मज्जत्यामगुरुत्वाद्विट् पक्वा तूत्प्लवते जले ।
विनातिद्रवसङ्घातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ २० ॥
सकृद्दुर्गन्धि साटोपविष्टम्भार्त्तिप्रसेकिनः ।
विपरीतं निरामन्तु कफात्पक्वञ्च मज्जति ॥ २१ ॥
आमे विलङ्घनं(२) शस्तमादौ पाचन (३) मेव वा ।
कार्य्यञ्चानशनस्यान्ते प्रद्रवं (४) लघुभोजनम् ॥२२॥

अतीसारमें बिना आम और पक्वका ज्ञान हुए चिकित्सा नहीं हो सकती इस रोगकी चिकित्सा करने के पहले वैद्य आम और पक्व लक्षण देखले, जिसको आमातीसार होताहै, उसकी विष्टा पानीमें तैरती रहती है। आमातीसारमें पतली वस्तु शीत, और कफदोषके बिना ही रोगीका पेट फूलता है। और विष्टामें दुर्गन्धि आती है। यदि इससे उल्टे लक्षण हों, तो पक्वातीसार जानना चाहिये ; परन्तु कफातीसारमें आम पचने पर भी विष्टा पानीमें डूबता है ॥ १९ ॥ २२ ॥

---

(१) चिकित्सा । (२) विशेषलङ्घनम् दोषानुरूपमित्यर्थः ।

(३) पाचनद्रव्यम् ।

(४) प्रद्रवं यवाग्वादि नत्वधिकद्रवयुक्तं पथ्यं तस्य विरुद्धत्वात् यदुक्तम् "अतीसारी द्रवं सर्वमेवरोगी च लेखनम् । कृष्टोमांसं चर्यौ नार्यौ लघो सवं विवर्जयेत्" द्रवं दुग्धादि ।

लङ्घनमेकं त्यक्त्वा नान्यदस्तीह भेषजं बलिनः।
समुदीर्णं दोषचयं शमयति तत्पाचयत्यपि च ॥२३॥
ह्रीवेरशृङ्गवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा।
मुस्तोदीच्यशृतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥ २४ ॥
युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघून्यन्नानि (१) भोजयेत्।
औषधसिद्धा पेया लाजानां शक्तवोऽतिसारघ्निता: ॥२५॥
वस्त्रप्रस्रुतमण्डः पेया च मसूरयूषश्च।
न तु संग्रहणं दद्यात् पूर्वमामातिसारिणे ॥ २६ ॥

आमातीसारमें पहले दोषोंके अनुसार लङ्घन अथवा पाचन औषधि दे, जब उचित लंघन समाप्त होजांय तब थोड़ी पतली और हलकी यवागू आदि वस्तु खानेको देय, आमातीसारमें लंघनके सिवाय दूसरी औषधि नहीं है। इससे बढ़े हुए दोष शान्त होजाते और पचजाते हैं। परन्तु लंघन बलवान् रोगीको ही देना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥

प्यास लगनेसे हाऊबेर, सोंठ, मोथा, और पित्तपापड़ा अथवा मोथा और हाऊबेरमें पका हुआ पानी देय, भूखके समय भूख लगनेसे रोगीको यवागू आदि भोजन करावे; औषधियोंके पानीमें पकी धानके खावोंकी पकी यवागू अथवा सत्तू देय, कपड़ेमें छना माड़, यवागू अथवा मसूरका जूस दे ॥ २५ ॥ २६ ॥

(१) लघ्वन्नादीनि।

दोषाह्यादौ रुध्यमाना जनयन्त्यामयान् बहून् ।
शोथपाण्डवामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ॥ २७ ॥
दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा ।
क्षीणधातुबलार्त्तस्य बहुदोषोऽतिनिस्रुत: ॥ २८ ॥
आमोऽपि स्तम्भनीय: स्यात् पाचनान्मरणं भवेत् ।
स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्य्यते ॥२९॥
अभयापिप्पलीकल्कै: सुखोष्णै स्तं विरेचयेत् ।
धान्यकं नागरं मुस्तं बालकं बिल्वमेव च ॥ ३० ॥
आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ।
इदं धान्यचतुष्कं स्यात् पैत्ते शुण्ठीं विना पुन: ॥३१॥
इति धान्यपञ्चकं धान्यचतुष्कञ्च ।

आमातीसारमें पहले दस्त बन्द करनेसे शोथ, पाण्डु, प्लीह, कुष्ट, गुल्म, पेटके रोग, दण्डक, आलसक, ज्वर, आध्मान, अर्श और संग्रहणी रोग होजाते हैं। परन्तु जिस रोगीकी धातु क्षीण होगई हो, जिसका बल नष्ट होगया हो। दोष बहुत बढ़ गये हों उसके आमदस्त भी रोकदेने चाहिये क्योंकि पाचन देनेसे रोगी मरजाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

जिसे थोड़ा२ रुक२ कर दस्त आता हो, और पेटमें शूल होता हो, उसे पीपल, हर्र खिलाकर विरेचन दे, धनियां, सोंठ, मोथा, नेत्रबाला और बेलगिरी इन पांच औषधियोंका काढ़ा पीनेसे दस्त रुकना, दस्तोंका आना, आमदोष और शूल दूर होजाते हैं, दोष पकजाते हैं, और अग्नि बढ़ जाती है। इसका

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः ।
तृष्णाशूलातिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघु ॥ ३२ ॥

इति नागरादियोगः ।

पक्वोऽशकृदतीसारो ग्रहणी (१) मार्दवाद् यदा ।
प्रवर्त्तते तदा कार्य्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः ॥३३॥

कट्वङ्गदाडिमजम्बूशृङ्गाटकपत्रह्रीवेरम् ।
जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वेगिनीं रुध्यात् ॥३४॥

इति कट्वङ्गादिकषायः ।

नाम धान्यपञ्चक है, इसीमें से सोंठ निकाल कर चार औषधि पित्तातिसारमें देनी चाहिये तो इसका नाम धान्यचतुष्क कहा जाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

सोंठ, अतीस, और मोथा अथवा केवल सोंठ और धनियेका काढ़ा पीनेसे दोष पच जाते हैं, अग्नि बढ़ती है, प्यास, शूल और अतीसार दूर होजाते हैं। यह काढ़ा बहुत ही हलका है। इसका नाम नागरादि योग है ॥ ३२ ॥

जब पक्वातिसार संग्रहणी अर्थात् अग्नि वा पित्त धारिणी कटीकलाकी ओर जाय तब बहुत शीघ्र दस्त रोकनेकी औषधि दे ॥ ३३ ॥

जलपीपल, अनारके पत्ते, जामुनके पत्ते, सिघाड़ेके पत्ते, सुगन्धवाला, मोथा और सोंठ इन सबका काढ़ा पीनेसे गङ्गाके समान बहता हुआभी अतीसार दूर होजाता है। इसका नाम कट्वङ्गादि क्वाथ है ॥ ३४ ॥

(१) अग्निधरां कलाम् ।

कुटजं दाड़िमं मुस्तं धातकीविल्वबालकम्।
लोध्रचन्दनपाठाश्च कषायं मधुना पिबेत्॥ ३५॥
सामे शूले च रक्ते च पिच्छास्रावे च शस्यते।
कुटजादिरिति ख्यातः सर्वातीसारनाशनः॥ ३६॥
अतिदृष्टफलोऽयम्।

इति कुटजादिकषायः।

वत्सकः सातिविषः सविल्वः
सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः।
सामे सशूले सहशोणिते च
चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतीसारे॥ ३७॥

इति वत्सकादिक्वाथः।

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक्।

कुरैयाकी छाल, अनारका बकला, मोथा, धायकेफूल, वेलगिरी, नेत्रवाला, लोध, चन्दन और पाढ़ा इनके काढ़ेमें शहत मिलाकर आमातीसार, शूल, रक्तातीसार और पक्कातीसारमें देय, इससे सबप्रकारके शूल दूर होजाते हैं। इसका नाम कुटजादि काढ़ा है॥ ३५॥ ३६॥

कुरैयाकी छाल, अतीस, वेलगिरी, नेत्रवाला और मोथेका काढ़ा पीनेसे बहुतदिनसे उत्पन्न हुआ रक्तातीसार और शूल सहित आमातीसार दूर होजाता है। इसका नाम वत्सकादि क्वाथ है॥ ३७॥

आर्द्रकस्वरसेनाथ पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निवारयेत् ॥ ३८ ॥
इत्यार्द्रकयोगः ।

तथा जातीफलं पिष्ट्वा नाभौ दद्यात्प्रलेपनम् ।
दुर्निवारमतीसारं वारयत्यनिवारितम् ॥ ३९ ॥
इति जातीफललेपः ।

आम्रस्य वल्कलं पिष्टं काञ्जिकेन प्रयत्नतः ।
नाभिं संलेपयेत्तेन कल्केन मतिमान् भिषक् ॥ ४० ॥
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निवारयेत् ॥ ४१ ॥
इत्याम्रवल्कललेपः ।

बिल्वचूताास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः ।

रोगीके नाभिके ऊपर पिसे हुए आमलोंका एक मण्डल सा बनावे फिर उसमें अदरकका रस भरदे तो नदीके समान बहता हुआ घोर अतीसार भी दूर होजाता है । इसका नाम आर्द्रकयोग है ॥ ३८ ॥

जायफलको पीसकर नाभिके ऊपर लेपकरनेसे घोर अतीसार भी शीघ्र दूर होजाता है । इसका नाम जातीफललेप है ॥ ३९ ॥

आमके बकलेको कांजीमें पीसकर नाभीपर लेपकरनेसे नदीके वेगके समान बहता हुआ घोर अतीसार दूर होजाता है । इसका नाम आम्रवल्कल लेप है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

निहन्त्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ४२ ॥

इति बिल्वाम्रकषायः ।

पटोलयवधान्याकवासाक्वाथः पेयः सुशीतलः ।
शर्करामधुसंयुक्तश्छर्द्यतीसारनाशनः ॥ ४३ ॥

इति पटोलादि ।

ऊर्द्ध्वाधोवदनेन वल्कलयुगं शाखोटकस्यादरा-
दादायाशु यथाक्रमं कटितटे मौलेन बद्धं गले ।
हन्त्यतद् युगपत् प्रभूतवमनोत्क्लशातिसारामयान्
योगोऽयं परमेश्वरस्य न कदाप्युल्लङ्घनीयो बुधैः ॥४४॥

इति शाखोटकयोगः ।

बेलगिरी और आमकी गुठलीकी गिरी इन दोनोंके काढ़े में शहद और शक्कर मिलाकर पीनेसे वमन और अतीसार इस प्रकार नष्ट होजाते हैं। जैसे आगमें पड़नेसे आहुति, इसका नाम बिल्वाम्रकषाय है ॥ ४२ ॥

परवर, इन्द्रजौ और धनियां इनका काढ़ा ठण्ढा करके शहत और शक्कर मिलाकर पीनेसे वमन और अतीसार शीघ्र दूर होजाते हैं। इसका नाम पटोलादि क्वाथ है ॥ ४३ ॥

रोगी सिहोड़के वृक्षके पास जाकर आदर सहित अपने दांतोंसे उसकी छाल उतारले फिर उस छालको क्रमसे कमर, शिर और गलेमें बांधले तो भारी वमन और आलस्य सहित घोर अतीसार शीघ्र अच्छा होजाता है। इस योगको शिवने कहा

जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितञ्च
जीरञ्च टङ्कणयुतं मुनिभिः प्रणीतम् ।
एतानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
आमातिसारमखिलं गुरुमाशु हन्ति ॥४५॥

इति लवङ्गचतुःसमोयोगः ।

गुञ्जामितमहिफेणं छागलीदुग्धेन युञ्जानम् ।
अतिसरणं बहुवेगं दुर्वारं धारयत्याशु ॥ ४६ ॥
अहिफेनातियोगेन नातिसारो निवर्त्तते ।
किन्त्वस्य बहुभिर्योगैर्मामृतो मृत एव सः ॥ ४७ ॥

इत्यहिफेणयोगः ।

है । इस लिये वैद्योंको अवश्य करना चाहिये इसका नाम शाखोटक योग है ॥ ४४ ॥

जायफल, लौंग, जीरा और सुहागा इन सबको समान लेकर शहत और शक्कर मिलाकर खानेसे सब प्रकारका घोर आमातीसार दूर होजाता है । इसका नाम लवङ्गचतुःसम योग है ॥ ४५ ॥

एकरत्ती अफीम बकरीके दूधके सङ्ग खानेसे घोर अतीसार भी शीघ्र दूर होजाता है । यद्यपि केवल अफीमसे अतीसार दूर नहीं होता तो भी अनेक औषधियोंके संग देनेसे अफीम अतीसारमें अमृतके समान गुणदायक है । इसका नाम अहिफेण योग है ॥ ४६—४७ ॥

कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाड़िमवल्कलात्।
सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारकम् ॥ ४८ ॥

इति कुटजदाड़िमकषायः।

गुड़ेन खादितं विल्वं रक्तातीसारनाशनम्।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशकम् ॥ ४९ ॥

इति गुड़विल्वम्।

शल्लकीवदरीजम्बुपियालाम्रार्जुनत्वचः।
पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक्शोणितनाशनाः ॥५०॥

इति त्वग्योगाः।

जम्ब्वाम्रामलकानान्तु पल्लवानथ कुट्टयेत्।
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥

अनारके बकले और कुरैयाकी छालके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे घोर रक्तातीसार भी दूर होजाता है। इसका नाम कुटजदाड़िम क्वाथ है ॥ ४८ ॥

गुड़में बेलगिरी मिलाकर खानेसे रक्तातीसार, आमातीसार, शूल, विबन्ध और कोखकी पीड़ा दूर होजाती हैं। इसका नाम गुड़विल्व योग है ॥ ४९ ॥

शालई, बेल, जामुन, चिरौंजी, आम और कुरैया इन एक एककी छालके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे रक्तातीसारका नाश होजाता है। इसका नाम त्वगयोग हैं ॥ ५० ॥

तत्पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ५१ ॥

इति जम्ब्वादिस्वरसाः ।

बिल्वं छागपयः सिद्धं सितामोचरसान्वितम् ।
कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ५२ ॥

इति बिल्वछागीपयोयोगः ।

ज्येष्ठोऽम्बुना तण्डुलीयं पीतञ्च ससितामधु ॥ ५३ ॥

इति तण्डुलीययोगः ।

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा चीरभुग्जयेत् ।
रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ५४ ॥

इति शतावरीयोगः ।

जामुन, आम और आमलेके नये पत्ते ला॰ ॰ कूटकर कपड़ेमें छानकर रस निकाले उसमें बकरीका ॰ध और शहत मिलाकर पीनेसे रक्तातीसारका नाश होता है ॥ ५१ ॥

बेलको बकरीके दूधमें पकाकर चीनी, मोचरस और इन्द्रजौका चूर्ण मिलाके पीनेसे रक्तातीसार दूर होता है। इसका नाम बिल्वादि योग है ॥ ५२ ॥

ताजेजलमें चौलाई पीसकर शहत और शक्कर मिलाकर पीनेसे अथवा सतावरको दूधमें पीसकर पीनेसे घोर रक्तातिसार दूर होजाता है। इन्हीं औषधियोंमें पका घी खानेसे भी रक्तातीसार दूर होजाता है। इसका नाम तंडुली योग और शतावरी योग है ॥ ५३—५४ ॥

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम्।
तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम्।
यावत्स्यैव लसीकाभं शृतं तदुपकल्पयेत्॥ ५५॥
तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान्।
अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम्॥ ५६॥

इति कुटजयोगः।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुतः।
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति॥ ५७॥

इति तिलकल्कम्।

बिल्वाब्दधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसाः समाः।
पीता रुन्ध्यत्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम्॥ ५८॥

इति बिल्वादियोगाः।

एक पल कुरैयाकी छाल लेकर आठ पल पानीमें पकावे, इसी प्रकार एक पल अनारका बकला आठ पल पानीमें पकावे; फिर इन दोनोंको मिलाकर इतना पकावे कि अवलेह होजाय, फिर रक्तातीसारी इस अवलेहको आधाकर्ष खाय और ऊपरसे मट्ठापीले, इससे असाध्य रक्तातीसार भी अच्छा होजाता है॥ ५५॥ ५६॥

काले तिलोंको पीसकर शक्कर मिलाकर बकरीके दूधके सङ्ग पीनेसे रक्तातीसार बहुत शीघ्र अच्छा होजाता है। इसका नाम तिलकल्क है॥ ५७॥

बेल, मोथा, धायकेफूल, पाढ़ा, सोंठ और मोचरस इन सबको

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलत्वचम् ।
धातकीशृङ्गवेरञ्च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ५६ ॥
क्षौद्रयुक्तं प्रणुदति रक्तातीसारमुल्वणम् ॥ ६० ॥

इति रसाञ्जनादिचूर्णम् ।

निःक्वाथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः (१)
सम्यक् पलद्वितयमम्बुचतुःशरावे ।
तस्यादशेषसलिलं खलु शोषणीयं
क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः ॥ ६१ ॥
प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले ।
रक्तातिसारी तं पीत्वा नैरुज्यमधिगच्छति ॥ ६२ ॥

इति कुटजमूलयोगः ।

समान समान लेकर गुड़ और मठेके सङ्ग पीनेसे .र अतीसार भी दूर होजाता है। इसका नाम विल्वादि योग है ॥ ५८ ॥

रसौत, अतीस, कुरैयाकी छाल, इन्द्रजौ, धायके फूल और सौंठ इनको समान समान लेकर चूर्ण बनावे; इस चूर्णको शहतके सङ्ग खानेसे घोर रक्तातीसार भी दूर होजाता है। इसका नाम रसाञ्जनादि चूर्ण है ॥ ५६ ॥ ६० ॥

निर्मल कुरैयाकी जड़ दो पल लेकर बत्तीस पल पानीमें पकावे जब आठपल रहजाय तब बुद्धिमान् वैद्य दो पल बकरी का दूध मिलाकर फिर पकावे जब पकचुके तब आठमासे

(१) कुटजस्य ।

पीत्वा सशर्करं क्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना।
दाहं तृष्णां प्रमेहञ्च सद्यो रक्तं नियच्छति॥ ६३॥

इति शर्कराक्षौद्रचन्द्रयोगः।

नवनीतं मधुयुतं लिह्वा सितया सह।
नागकेशरसंयुक्तं रक्तसंग्रहणं परम्॥ ६४॥

इति नवनीतयोगः।

मधुपादं सिताद्धांशं नवनीतं चतुर्गुणम्।
गुददाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना॥ ६५॥
सेकादिके प्रशंसन्ति छागेन पयसाऽथवा।
गुदभ्रंशे तु कर्त्तव्या चिकित्सा सा प्रकीर्त्तिता॥६६॥

इति मध्वादियोगः।

शहत डालकर पोनेसे रक्तातीसारी सुखी होजाता है। इसका नाम कुटज मूल योग है॥ ६१॥ ६२॥

शक्कर और शहत खानेसे और चौलाईके रसमें पीसकर चन्दन खानेसे दाह, तृष्णा, प्रमेह और रक्तातिसार चला जाता है। इसका नाम शक्करयोग और चन्दनयोग है॥ ६३॥

मक्खन, शहत, चीनी और नागकेसर खानेसे रक्तातीसार दूर होजाता है। यदि रक्तातीसारमें गुदामें जलन न हो तो चारभाग मक्खन, दोभाग चीनी और एकभाग शहत डालकर परवरपत्ती और जेठीमधुका काढ़ा पिये, रोगी गुदामें जलन न होनेसे एक कपड़े को बकरीके दूधमें भिगोकर गुदाके ऊपर

गुडूचीन्द्रयवारस्य कुटजस्य फलं तथा।
बिल्वस्यातिविषाश्चैव भृङ्गराजस्य नागरम् ॥ ६७ ॥
शक्राशनस्य चूर्णञ्च सर्वमेकत्र मेलयेत्।
चूर्णमेतत् समं ग्राह्यं कुटजस्य त्वचोऽपि च ॥६८॥
गुडेन मधुना वापि लिहेयेद्भिषजांवरः।
शोथं रक्तातीसारं चिरजं दुर्जयं तथा ॥ ६९ ॥
ज्वरं तृष्णाञ्च कासञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम्।
मन्दानलं प्रमेहञ्च गुदजञ्च विनाशयेत् ॥ ७० ॥
एतन्नारायणं चूर्णं श्रीनारायणभाषितम् ॥ ७१ ॥

इति नारायणचूर्णम्।

अवेदनं सुसम्पक्कं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम्।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ७२ ॥

रक्खे, यदि गुदा बाहर निकलती होती गुदभ्रंशमें लिखी चिकित्सा करे इसका नाम मध्वादियोग है ॥ ६४ ॥ ६६ ॥

गुरिच, विधारा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, अतीस, भंगरा, भांग, सोंठ और कुरैयाकी छाल इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे इस चूर्णको शहत या गुड़के संग खानेसे शोथ, पुराना दुःसाध्य रक्तातीसार, ज्वर, प्यास, खांसी, पाण्डुरोग, हलीमक, मन्दाग्नि, प्रमेह और अर्शरोग दूर होजाते हैं। इस चूर्णको साक्षात नारायणने बनाया है इस लिये इसका नाम नारायण चूर्ण है ॥ ६७ ॥ ७१ ॥

जिस रोगीको बहुत दिनसे अतीसार हुआ हो पक गया

स्निग्धं घनं कुटजवल्कमजन्तुजग्धम् (१)
आदाय तत्क्षणमतीव च पोथयित्वा (२)
जम्बूपलाशपुटतण्डुलतोयसिक्तं
बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्कलिप्तम् ॥ ७३ ॥
सुस्विन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा
क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात्।
कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः
सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ ७४ ॥

इति कुटजपुटपाकः।

हो, कृशोंजाग्न हो और अग्नि तेज हो तो उसे पुट पाककी औषधि दे ॥ ७२ ॥

नवीन चिकनी करैयाकी छाल लाकरगीलीही कूटले और चावलोंका पानी डालता जाय फिर उस कल्कको जामुन और ढाकके पत्तोंमें लपेट कर कुशासे बांधे और ऊपर दो अंगुल मोटी मिट्टी लगाकर आगमें भुरता करले, फिर निकाल कर मिट्टी और पत्ते उतारकर कपड़ेमें रस छानले, उस रसको शहतके संग पीनेसे सब प्रकारके अतीसार दूर होजाते हैं। यह योग सब अतीसार दूर करनेको श्रेष्ठ है। भगवान् कृष्णात्रेयने इसकी बहुतही प्रशंसाकी है। इसका नाम कुटज पुटपाक है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

(१) कीटाद्यैरदूषितमित्येन नवमुपदिष्टम्। (२) संकुट्य।

स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाके पलं पिबेत् ।
पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारुण्यवर्णता ॥ ७५ ॥
त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य (१) काश्मरीपत्रवेष्टितम् ।
मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत् ॥ ७६ ॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नतः ।
शीतीकृतं मधुयुतं पाययेदुदरामये ॥ ७७ ॥

इति दीर्घवृन्तयोगः ।

दाड़िमस्य फलं पिष्ट्वा पचेत् पुटविधानतः ।
तद्रसं मधुसंमिश्रं पिबेत्सर्वातिसारजित् ॥ ७८ ॥

इति दाड़िमयोगः ।

गीली औषधिका कपड़ेमें छाना हुआ रस बहुत ही भारी होता है। इस लिये एकपलसे अधिक न खाना चाहिये, जब पुटपाकके गोलेकी मट्टी अति लाल होजाय तब जानेकि भुन गया सब पुटपाकोंकी यही विधि है ॥ ७५ ॥

सोनापाढ़ेकी छालको कूटकर पिंडबनावे और उसके ऊपर खम्हारीके पत्ते लपेट कर मिट्टी लपेट दे, फिर धुआं रहित अगारों पर रखकर भूनले, फिर ठण्डा करके अर्क निकाल ले, फिर शहत मिलाकर उदररोग और अतीसारमें दे, इसका नाम दीर्घवृन्त योग है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

दाड़िमी अनारके फलको पीसकर पुटपाककी रीतिसे रस

(१) श्योनाकस्य ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे (१) पचेत्।
क्वाथे पादावशेषेऽस्मिन् लेहीभूते पुनः पचेत् ॥७९॥
सौवर्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली।
धातकीन्द्रयवाजाजी चूर्णं दत्वा पलद्वयम् (२) ॥८०॥
लिह्याद्बदरमात्रन्तु (३) शीतं क्षौद्रेण संयुतम्।
पक्कापक्कमतीसारं नानावर्णं सवेदम् ॥ ८१ ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ८२ ॥

इति कुटजलेह।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः
संक्षुद्यपक्त्वारसमाददीत।

निकाल कर शहतके संग देनेसे सब प्रकारके अतीसार दूर होजाते हैं। इसका नाम दाड़िमी योग है ॥ ७८ ॥

सौपल कुरैयाकी जड़की छाल कूटकर एक द्रोण पानीमें पकावे, जब चौथाई रह जाय तब उतार कर छान ले और फिर पकावे जब कड़ाही लगने लगे तब सोंचल, (कालानमक) जवाखार, बिडनोन, सेंधानमक, पीपल, धायके फूल, इन्द्रजौ और जीरा ये दो दो पल डालकर अवलेह बनावे; फिर आठ-मासे अवलेह शहतके संग खानेसे पक्कातीसार, अनेक वर्ण और अनेक पीड़ावाला दुःसाध्य अतीसार संग्रहणी और प्रवाहिका रोग दूर होजाते हैं ॥ ७९ ॥ ८२ ॥

एकतुला कुरैयाकी गीली छाल कूटकर पानीमें पकाले जब

(१) जलद्रोणे। (२) प्रत्येकं पलद्वयम्। (३) माषाष्टकमितम्।

तस्मिन् सुपूते पलसम्मितानि
मृत्स्नानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ८३ ॥
पाठां समङ्गातिविषां समुस्तां
बिल्वस्य पुष्पाणि च धातकीनाम्।
प्रक्षिप्यभूयो विपचेत्तु तावद्
दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ ८४ ॥
पातस्त्वसौ कालविदाजनेन
मण्डेन वाजापयसाऽथवापि।
निहन्ति सर्वन्त्वतिसारमुग्रं
कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥ ८५ ॥
दोषं ग्रहण्याविविधञ्च रक्तैः
पित्तं तथार्शांसि सशोणितानि।
असृग्दरञ्चैवमसाध्यरूपं
निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ८६ ॥

इति कुटजाष्टकोऽवलेहः।

चौथाई रह जाय तब उतारकर छान ले, फिर एक एक पलसे मलका गोंद, पाढ़ा, मजीठ, अतीस, मोथा, बेलगिरी और धायके फूल पीसकर डालदे, फिर जबतक वह रस करछीमें न लगने लगे तबतक उस रसको पकावे, फिर समयके प्रभावको जाननेवाला वैद्य माड़ अथवा बकरीके दूधके संग रोगीको देय, इससे रक्त ग्रहणी, पित्त, अर्श, रक्तार्श और असाध्य रुधिर रोग दूर होजाते हैं ॥ ८३—८६ ॥

तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणद्रव्ये तुला मता ॥ ८७ ॥
जीर्णोऽमृतोपमं क्षीरमतीसारे विशेषतः ।
छागं तद्भेषजैः सिद्धं पेयं वा वारिसाधितम् ॥८८॥

अथ प्रवाहिकायाम् ।

बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकः ॥ ८९ ॥

इति बिल्वादियोगः ।

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः ।
त्र्यहात् प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥९०

इति पिप्पलीयोगः ।

जहां औषधि एक तुला हो तहां जल एक द्रोण और जहां औषधि एक द्रोण हो तहां तहां जल एक तुला। दूध पुराने रोगोंमें विशेष कर अतीसारमें अमृतके समान है बकरीका दूध औषधि या पानीमें पकाकर अतीसारमें देना चाहिये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

आगे प्रवाहिकारोगकी चिकित्सा कहते हैं ।

कच्ची बेलगिरी, गुड़, तेल, पीपल और सोंठ इनको खानेसे वायु रुकने, शूल और प्रवाहिकामें लाभ होता है, इसका नाम बालबिल्वादि योग है ॥ ८९ ॥

पीपल या मिर्चको पीसकर दूधके संग पीनेसे तीनही दिनमें पुरानी प्रवाहिका दूर होजाती है। इसका नाम पिप्पली और मिर्च योग है ॥ ९० ॥

कल्कः स्याद्बालविल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः ।
दध्नः सरोऽम्लः स्नेहाढ्यः खड़ोहन्यात् प्रवाहिकाम् ॥८१॥

इति बालविल्वयोगः ।

दध्नाससारेणसमाक्षिकेण
भुञ्जीतनिःसारकपीड़ितस्तु ।
सुतप्तकुप्यक्कथितेन वापि
क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ ८२ ॥

अथ रसप्रयोगाः ।

हिङ्गुलोत्थोरसोलौहं गन्धकं टङ्कणं शटी ।
धान्यकं बालकं मुस्तं पाठाजीरं घुणप्रिया ॥ ८३ ॥

कच्चीवेल और उसके समान कालेतिल इन दोनोका कल्क बनाकर दहीका तोड़ और घी डालकर पोनेसे प्रवाहिका दूर होती है। इसका नाम बालबिल्व योग है ॥ ८१ ॥

जो प्रवाहिकासे बहुत पीड़ित हो वह मलाई सहित दहीसे भोजन करे दहिमें शहत भी मिलाले, अथवा पके हुए दूध को ठण्ढाकर शहत मिलाकर पीये ॥ ८२ ॥

आगे रस लिखते है ।

सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, लोहा, गन्धक, सुहागा, कचूर, धनिया, सुगन्धवाला, मोथा, पाढ़ा, जीरा और अतीस

प्रत्येकं तोलकं चूर्णं छागीक्षीरेण पेषितम्।
माषैका वटिका कार्य्या रसोऽयममृतार्णवः ॥८४॥
वटिकां भक्षयेत्प्रातर्गहनानन्दभाषिताम्।
धान्यजीरकचूर्णेन विजयाशालबीजतः ॥ ८५ ॥
मधुना छागदुग्धेन मण्डेन शीतवारिणा।
कदलीमोचकरसैः कण्टकारीद्रवेण वा ॥ ८६ ॥
अतीसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा।
दोषत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमन्वितम् ॥ ८७ ॥
शूलघ्नोवह्निजननोग्रहण्यर्शोविकारनुत्।
अम्लपित्तप्रशमनः कासघ्नोगुल्मनाशनः ॥ ८८ ॥

इति अमृतार्णवोरसः।

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं जातीफलं समम्।

इन सबको एक एक तोला लेकर बकरीके दूधमें पीसकर एक एक मासेकी गोली बनावे, एक गोलीको प्रातःकाल खाय ऊपरसे धनिया, जीरा, भांग, शालके बीज, शहद, बकरीका दूध, मांड़, मोचरस, ठण्डापानी, केलेकी जड़का रस, कटेलीका काढ़ा या रस पीये; इससे एक वा दोवा तीनोंदोषो से उत्पन्न हुआ घोर अतीसार दूर होजाता है। शूल, संग्रहणी, अर्श, अम्लपित्त, खांसी और गुल्मरोग दूर भी होते हैं। और अग्नि बहुत बढ़जाती है। गहनानन्दने इसका नाम अमृतार्णव रस लिखा है॥ ८३ ॥ ८८ ॥

पारा, अभ्रक, सिन्दूर, गन्धक, जायफल, इन्द्रजौ, धतूरेके

कुटजस्य फलञ्चैव धूर्त्तबीजानि टङ्कणम् ॥९९॥
व्योषं मुस्ताऽभया चैव चूतबीजं तथैव च ।
बिल्वकं सर्ज्जबीजञ्च दाडिमीकल्कजीरकम् ॥१००॥
एतानि समभागानि निःक्षिपेत् खल्लमध्यतः ।
विजयास्वरसेनैव मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १०१ ॥
गुञ्जाफलप्रमाणास्तु वटिकाः कारयेद्भिषक् ।
एकां कुटजमूलत्वक् कषायेण प्रयोजयेत् ॥ १०२ ॥
आमातिसारं हरति कुरुते वह्निदीपनम् ।
मधुना बिल्वदुग्धेन रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥ १०३ ॥
शुण्ठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ ।
जातीफलरसो ह्येष ग्रहणीगदहारकः ॥ १०४ ॥

इति जातीफलरसः ।

दरदञ्च विषं व्योषं जीरकं टङ्कणं समम् ।

बीज, सुहागा, सोंठ, मिर्च, पीपल, मोथा, हर्र, आमकीगुठली, बेलगिरी, रालवृक्षके बीज, अनारकाकिल्का, जीरा और इन सबको समान लेकर भांगका रस डालकर घोटे, फिर एक एक रत्ती की गोली बनाले, फिर कुरैयाकी जड़की छालके काढ़ेके संग एकगोली रोगीको देय तो अतीसार दूर होजाता है। और अग्नि बढ़जाती है। शहत, बेलगिरी और दूधके संग देनेसे रक्त संग्रहणी दूर होती है। और सोंठ, धनियेके संग देनेसे अतीसार दूर होता है। इस संग्रहणी नाशक रसका नाम जातीफल रस है ॥ ९९ ॥ १०४ ॥

गन्धकञ्चाभ्रकञ्चैव भागैकं शुद्धसूतकम् ॥ १०५॥
भागद्वयं सर्वतुल्यं स्यान्मर्दयेन्निम्बुकाद्रवैः।
एकैकां भक्षयेच्चानुजीरकं मधुना सह ॥ १०६ ॥
त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं वाऽथ विज्वरम्।
सर्वरूपमतीसारं संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ १०७॥
रसोऽभयनृसिंहोऽयमतीसारे सुपूजितः ॥१०८॥

इति अभयनृसिंहोरसः।

दरदं मरिचं टङ्गममृतं मागधी समम्।
अम्लपिष्टन्तु गुञ्जैकं रसमानन्दभैरवम् ॥ १०९ ॥
लेहयेन्मधुना चानु कुटजस्य फलत्वचोः।
चूर्णितं कर्षमानन्तु त्रिदोषोत्थातिसारजित् ॥११०॥

ईंगुर, विष, त्रिकुटा, जीरा, सुहागा, गन्धक, अभ्रक और पारा एक एक भाग, मगद्दूर इन सबके समान लेकर नीबूके रसमें घोटे, फिर जीरा और शहतके संग एक एक गोली खिलावे तो ज्वर रहित और ज्वर सहित तीनोदोषोंसे उत्पन्न हुआ घोर अतीसार और संग्रहणी दूर होजाते हैं। इस रसको अतीसारमें अवश्य देना चाहिये इसका नाम अभयनृसिंह रस है ॥ १०५ ॥ १०८ ॥

ईंगुर, मिर्च, विष और पीपल, इन सबको एक एक टंक लेकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णको कुरैयाकी छाल और इन्द्रजौका चूर्ण एक कर्ष शहतमें मिलाकर और एकरत्ती रस डाल कर खानेसे तीनो दोषसे उत्पन्न हुआ अतीसार दूर होजाता है।

दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं दध्याजं तक्रमेववा ।
पिपासायां जलं देयं विजया च हिता निशि ॥१११॥

इति आनन्दभैरवोरसः ।

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं टङ्कणं गन्धकं समम् ।
जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेद्याममात्रकम् ॥ ११२ ॥
कासश्वासातिसारेषु ग्रहण्याञ्च हलीमके ।
अपस्मारेऽनिले मेहेऽप्यजीर्णे वह्निमान्द्यके ॥११३॥
गुञ्जामात्रः प्रदातव्योरस आनन्दभैरवः ॥११४॥

इति तन्त्रान्तरे द्वितीय आनन्दभैरवोरसः ।

ग्रहण्यां ये रसा वाच्या स्तेऽतिसारे नियोजिताः ।
हन्युः सर्वमतीसारं शिवस्याज्ञाविशेषतः ॥ ११५ ॥

खानेको दही, भात यामट्ठा भात देय, परन्तु दही मठा बकरी का होना चाहिये, प्यास लगने पर पानी देय और रातको रोगीको भाग पिलादे इसका नाम आनन्दभैरव रस है ॥ १०८ ॥ १११ ॥

ईंगुर, विष, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुहागा और गंधक, इन सबको समान लेकर एक पहर तक अदरकके रसमें घोटे; फिर खांसी, श्वास, अतीसार, संग्रहणी, हलीमक, अपस्मार, वातव्याधि, प्रमेह, अजीर्ण और मन्दाग्नि रोगोंमें एक रत्ती देय इसका ना द्वितीय आनन्दभैरव है ॥ ११४ ॥ ॥ ११४ ॥

हम जो संग्रहणी रोगमें रस लिखेंगे वे सब अतीसारमें भी

स्नानाभ्यङ्गावगाहांश्च गुरुस्निग्धातिभोजनम्।
व्यायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्जयेत् ॥११६॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् अतीसार चिकित्साधिकार
स्तृतीयः समाप्तः।

अथ ग्रहण्यधिकारः।

तत्र ग्रहणीरूपम्।

षष्ठीवह्निधराप्रोक्ता ग्रहणीतिकलाबुधैः।
पक्वाऽऽमाशयमध्यस्था सैवपित्तधराऽपि च ॥ १ ॥
साऽपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं त्यजतिचाप्यधः।
अन्तरग्निर्बलं तस्याः तस्मिन्दुष्टे प्रदुष्यति ॥ २ ॥

देने चाहिये शिवकी आज्ञासे उन्हींसे अतीसार दूर होजाता है ॥ ११५ ॥

अतीसारी उपटन, तेल लगाना, स्नान, बहुत भारी और चिकना, भोजन, कसरत और अग्निसन्ताप (तापना) आदि छोड़ दे ॥ ११६ ॥

भाषा भैषज्यरत्नावली में अतीसाराधिकार समाप्त।

अथ ग्रहणी लक्षण।

वैद्योंने अग्नि वा पित्तधरा छटी कलाका नाम ग्रहणी लिखा है। वह पक्काशय और आमाशयके बीचमें रहती है। वही

ग्रहणीनिदानम् ।

क्वचिज्जाताऽतिसारस्य चातीसारमृते क्वचित् ।
अपथ्यभोजिनोनुस्तु अन्तरग्निः प्रदुष्यति ॥ ३ ॥
प्रदुष्टो दूषयेद्भूयो ग्रहणीं दोष संश्रयात् ।
सादुष्टा पक्वमामम्वाभुक्तमेव विमुञ्चति ॥ ४ ॥
तमाहुर्ग्रहणीरोगं रोगज्ञानविशारदाः ।
द्रवं बद्धञ्च दुर्गन्धि पक्वमामं मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥
तस्मिन् (१)सकृत् प्रभति बहुचाल्पं रुजान्वितम् ।
वातपित्तकफैःसर्वै ग्रहणीरोगसम्भवः ॥ ६ ॥

कच्चे अन्नको पेटमें धारण करती है और पकेको गुदामार्ग द्वारा निकाल देती है। जठराग्निही उसका बल है। इस लिये जठराग्निमें कुछ भी दोष आनेसे वह भी बिगड़ जाती है। जब अतीसार अच्छा होजाता है और रोगी अप[illegible] भोजन करता है। तब वही अपथ्य जठराग्निको बिगा[illegible] देता है। जठराग्नि बिगड़नेसे ग्रहणी दूषित होकर अपनी पाचन शक्तिसे रहित होजाती है। तब मनुष्य जो खाता है, वही पका या कच्चा अन्नगुदामार्गसे निकल जाता है। आयुर्वेद जानने वालोंने इसे ही ग्रहणी रोग कहा है। इस रोगमें कभी बंधा और कभी पतला कभी कच्चा कभी पक्का कभी बहुत और कभी थोड़ा दस्त होता है। ग्रहणी रोग कभी कभी बिना अतीसारके भी होजाता है. सो वात, पित्त, कफ और सन्निपातके भेदसे चार प्रकारका होता है ॥ १ ॥ ६ ॥

---

(१) ग्रहणीरोगे ।

अथ वातग्रहणी लक्षणम् ।

कषायतिक्तरूक्षाम्ल कटुशीतल भोजनैः ।
व्यवाय वेगरोधैश्च अमितानशनकारणैः ॥ ७ ॥

वायुर्दुष्टः स्फादयन्नं तराग्निम्
ग्रहणी रोगं घोरमापादयेद्वै
कष्टेनान्नम् पक्तिमायातिजन्तोः ।
स्रस्तांगोऽसौ कण्ठ शोषार्दितोना
तृष्णा कर्णे मस्वने नेत्रयोश्च
शक्तेराल्पं कंठ हृत्पीडनश्च ॥ ८ ॥

रोगीसर्वरसगृद्धी आध्माना जीर्णपीडितः ।
गुल्महृद्रोगप्लीहाग्नि सादरोगैस्तु पीडितः ॥ ९ ॥
सकृच्चिराद्द्रवं शुष्कं फेनिलं शब्दसंयुतम् ।
मुहुर्मुहुः प्रभवति रोगीकाशार्दितोऽनिलात् ॥ १० ॥

जब मनुष्य कसैला, तीता, रूखा, खट्टा, कडुवा और अधिक ठण्डा भोजन करता है बहुत मैथुन करता है और विष्टा आदि के वेग रोकताहै। तब वायु बिगड़ कर जठराग्निको मन्द करके ग्रहणी रोगको उत्पन्न करता है। वातके ग्रहणी रोगमें रोगीको भोजन बहुत कष्टसे पचता है। सब शरीर शिथिल होजाता हैं। मुह और कण्ठ सूखते हैं, प्यास बहुत लगती है, कानमें कुछ शब्द सुनाई देता है और आंखकी शक्ति बहुत कम होजाती है हृदय और गलेमें पीड़ा होती है। रोगीको सब रस खानेकी इच्छा होती है, पेट फूलता है, अजीर्ण रहता

पित्तग्रहणी-निदानम् ।

पित्तं विदाहि कटुतिक्तकषाय भोजनैः
क्षाराम्ल सेवन परस्य नरस्य कोपम् ।
गत्वा हुताशमचिरादथ दूषयित्वा
आप्लावयन् हुतवहं ग्रहणीं करोति ॥ ११ ॥
पीतं नीलं सारयेत्तेन रोगी
श्यावाभंवा दाहतृष्णाज्वरार्तः ।
अम्लोद्गारा जीर्णा मदाग्नि युक्तः
रक्तं वास्यात् चातवर्चः कुवर्णाम् ॥ १२ ॥

अथ कफग्रहणी लक्षणम् ।

मैथुनायासशीतादिगुरु स्निग्धाऽति भोजनैः ।
भुक्तमात्रस्य स्वप्नानाच्च कफःप्रकुपितो भृशम् ॥ १३ ॥

है, गुल्म, हृद्रोग, प्लीह, मन्दाग्नि, खांसी और श्वास ये रोग होजाते हैं विष्टा बहुत देरमें सूखा पतला फेन और शब्द रहित होता है ॥ ७ ॥ १० ॥

जब मनुष्य अधिक विदाही, (जलनकरनेवाला) कडुआ, तीता, कसैला, खट्टा, और खार, भोजन करता है तब पित्त बिगड़ कर अग्निको दूषित कर और दबाकर ग्रहणीरोग को उत्पन्न करता है ; उस पित्त ग्रहणी रोगमें नीला, पीला या कुछ काला विष्टा होता है रोगीको दाह, प्यास, खट्टी डकार अजीर्ण और मन्दाग्नि होजाते हैं इस रोगमें लालविष्टा भी होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

करोत्यनलसादं स ग्रहणीरोगदो भवेत्।
हृल्लासा रोचकच्छर्दिः गौरवं मैथुनारतिः॥ १४॥
पीनसं मुखमाधुर्यं कासःश्वासो हृदिव्यथा।
उद्गारो मधुरो दुष्टः अजीर्णं चास्य जायते॥ १५॥
गुर्वामं श्लेष्मणाश्लिष्टं सकृद्भिन्नं प्रवर्त्तते।
आलस्यं व्यथितो जन्तु स्त्वकृशोऽप्यतिदुर्बलः॥ १६॥
भवन्ति ग्रहणीरोगे चिह्ना न्येतानि श्लेष्मजे॥ १७॥

त्रिदोष ग्रहणी लक्षणम्।

सन्निपात भवो यस्य जायते ग्रहणीगदः।
तस्य वातादि चिह्नानि पृथग्रूपेण लक्षयेत्॥१८॥

ग्रहणीभेद संग्रहणा लक्षणम्।

सकृद्द्रवं घनं स्निग्धं कटीतोदसमन्वितम्।

अधिक मैथुन करने, अधिक चिकना, ठण्डा और भारी भोजन करनेसे परिश्रम करनेसे और भोजन करते ही सोरहनेसे कफ बिगड़कर अग्निको मन्दकरके ग्रहणी रोगको उत्पन्न करता है; कफके ग्रहणी रोगमें अधिक थूक आना, अरुचि, वमन, शरीर भारी होना, मैथुनकी इच्छा न होना, पीनस, मुखमीठा होना, खांसी, श्वास, हृदय में पीड़ा, मीठी दुर्गन्धियुक्त डकार आना, अजीर्ण, विष्टाभारी; आम, कफयुक्त और थोड़ा थोड़ा होता है, रोगी आलस्यसे व्याकुल और अत्यन्त कृश न होने पर भी बलहीन होजाता है॥ १३—१७॥

आमं मितं सशब्दञ्च पिच्छलं बहुवेदनम् ॥ १९ ॥
द्वादशाहाद्दशाहाद्वापक्षान् मासादथापिवा ।
अंत्र कूजन संयुक्तं नित्यं वापि विमुञ्चति ॥ २० ॥
दौर्बल्यं सदनं वक्ष्म रालस्यं दुर्मनस्कता ।
रात्रौ शान्तिं प्रयात्येव दिने दोषः प्रकुप्यति ॥ २१ ॥
भवत्येषाऽऽमवातेन चिरोत्थाऽसाध्यतां व्रजेत् ।
दुर्विज्ञेया भिषग्वर्य्यै दुर्निवार्य्या च कथ्यते ॥ २२ ॥
सम्पूर्वा ग्रहणी चैषा भिषग्वर्य्यै रुदीरिता ॥ २३ ॥

घटीयन्त्र ग्रहणी लक्षणम् ।

अस्पर्शता पार्श्वयोस्तु शूलं जल घटीध्वनिः ।

सन्निपातसे उत्पन्न हुए ग्रहणी रोगमें वातपित्त और कफके अलग २ चिह्न दिखलायी दिया करते हैं ॥ १८ ॥

ग्रहणी भेद संग्रहणी लक्षण ।

संग्रहणी रोगमें विष्ठा कभी पतला, कभी कड़ा, चिकना कच्चा और प्रमाणसे आता है । रोगीको कमरमें बहुत पीड़ा होती है, विष्टा होनेमें भी पीड़ा होती है, इसके दस्त दशवें, बारवें, पंद्रवें दिन या महीने भरमें होते हैं, या सदा भी होते रहते हैं ; विष्टा होते समय आन्त से शब्द होता है ; यह रोग रात्रिको शान्त होजाता है और दिनमें फिर बढ़जाता है यह पुराना होनेसे असाध्य होजाता है, वैद्य इसको बहुत कठिनता से पहचान सक्ता और कठिनताहीसे चिकित्सा भी कर सक्ता है ॥ १९—२३ ॥

घटीयन्त्रं तमाहुर्वै असाध्यं ग्रहणीभवम् ॥ २४ ॥
ग्रहणी माश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
अतीसारोक्तविधिना तस्या मञ्च विपाचयेत् ॥ २६ ॥
शरीरानुगते सामे रसे लङ्घनपाचनम् ।
विशुद्धामाशयायास्मै पञ्चकोलादि भिर्युतम् ॥ २७ ॥
दद्यात्पेयादिलघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपनान् ।
ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवात् ॥२८॥
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ।
कषायोष्णविकाशित्वा द्रौक्षाच्चैव कफे हितम् ॥२९॥

घटी यन्त्र रोगके लक्षण ।

घटीयन्त्र रोगमे स्पर्शन जानपड़ना, पशुलियों में पीड़ा होना और पेटमें जलकी घड़ीके समान शब्द होना ये लक्षण होते हैं यह रोग असाध्य है और संग्रहणीका भेद है ॥ २४ ॥

जिस रोगीको ग्रहणी दोष हुआ हो उसकी चिकित्सा अजीर्णके समान करे और अतीसारमें लिखी विधिसे आमदोषों को पचावे ॥ २५ ॥

जब आम रस सब शरीरमें व्याप्त होजाय, तब रोगीको लङ्घन और पाचन देय, जब आमाशय शुद्ध होजाय, तब पहले लिखे पञ्चकोलके सहित हलके अन्नोंकी बनी यवागू देय और अग्नि बढ़ानेकी औषधि भी देय, ग्रहणीमें मट्ठा दोषोंको पचा देता है, क्योंकि वह बहुत हलका होता है ॥ २६—२७ ॥

वाते स्वाद्वम्लमान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहि तत् ।
चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ॥३०॥
व्योषं हिङ्ग्वजमोदाञ्च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ।
गुडिका मातुलुङ्गस्य दाड़िमस्य रसेन वा ॥ ३१ ॥
कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ।
सौवर्च्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च ॥ ३२ ॥
सामुद्रेण समं पञ्चलवणान्यत्र योजयेत् ॥ ३३ ॥
इति चित्रकगुडिका ।
नागरातिविषामुस्तं धातकी च रसाञ्जनम् ।
वत्सकत्वक्फलं पाठा विल्वं कटुकरोहिणी ॥३४॥

मठा पकते समय मीठा होजाता है इस लिये पित्तको नहीं बढ़ाता ; कसैला, गर्म, विकाशी और रूखा होने कारण कफमें पथ्य है, मीठा, खट्टा और कुछ पतला होनेके कारण वायुरोगोंमें भी हित है, परन्तु ताजा बहुत श्रेष्ठ है, उससे दाह नहीं होता ॥ २८ ॥

चीता, पीपलामूल, सज्जीखार, जवाखार, नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, अजमोद और चाभ इनको नीबू या अनारके रसमें पीसकर गोली बनाले, इससे आमदोष पच जाते हैं, अग्नि बहुत बढ़ जाती है। इस गोलीमें नमकके स्थानपर सोंचल, सेंधा, बिटनोन, उद्भिदनोन और समुद्रनोन ये पांचो नमक डालने चाहिये इसका नाम चित्रकादि वटी है ॥२९॥३५

सोंठ, अतीस, मोथा, धायके फूल, रसौत, कुरैयाकी छाल,

पिबेत्समांशं तच्चूर्णं स क्षौद्रं तण्डुलाम्बुना।
पैत्तिके ग्रहणीदोषे सरक्तेचैव शस्यते ॥ ३५ ॥
नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम्।
शीतकषायमानेन तण्डुलोदक कल्पना ॥ ३६ ॥
केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुल भावनाम् ॥ ३७ ॥

इति नागराद्यं चूर्णम्।

पाठा विल्वानलव्योष जम्बू दाड़िमधातकी।
कटुकातिविषा मुस्ता दार्वीभूनिम्बवत्सकैः ॥ ३८ ॥
सर्वैरेभिः समं चूर्णं कौटजं तण्डुलाम्बुना।
सक्षौद्रेण पिबेच्छर्दि ज्वरातीसार शूलवान् ॥ ३९ ॥
हृद्रोग ग्रहणीदोषारोचकानलसादजित् ॥ ४० ॥

इति पठाद्यं चूर्णम्।

इन्द्रजौ, पाढ़ा, बेलगिरी और कुटकी इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे इस चूर्णको पित्त ग्रहणीमें शहत और चावलोंके पानीके संग देय भगवान् कृष्णात्रेयने इस चूर्णकी बहुत ही प्रशंसा लिखी है।

जैसे शीत कषाय बनाया जाता है, वैसे ही चावलके पानीकी भी विधि जानो कोई आठगुणे पानीमें चावलोंको भिगो कर रख दे, फिर वही पानी छानकर काममें लावे ऐसा कहते हैं। इसका नाम नागरादि चूर्ण है ॥ ३६—३७ ॥

पाढ़ा, बेलगिरी, चीता, सौंठ, मिर्च, पीपल, जामुनकी गुठली, अनारदरका बकला, धायके फल, कुटकी, अतीस, मोथा,

चतुःपलं स्नुहीकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात् ।
वार्त्ताकु कुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ॥ ४१ ॥
दग्ध्वानि वार्त्ताकुरसे गुडिका भोजनोत्तरा ।
भुक्तं भुक्तं पचन्त्याशु कासश्वासार्शसां हिताः ॥४२॥
विसूचिका प्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ता मताः ॥४३॥

इति वार्त्ताकुगुडिका ।

मुस्त सैन्धव शुण्ठीभिर्धातकी लोध्रवत्सकैः ।
विल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयव वालकैः ॥ ४४ ॥
आम्रबीजमतिविषा लज्जा चेति सुचूर्णितम् ।

टावहन्दी, चिरायता और कुरैयाकी छाल इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे और इस चूर्णके समान इन्द्रजौका चूर्ण मिला कर चावलोंके पानी और शहतके संग दे इससे वमन, ज्वर, अतीसार, शूल, हृद्रोग, ग्रहणी, अरोचक और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं, इसका नाम पाठादि चूर्ण है ॥ ४० ॥

थूहरकी गांठि चार पल, तीनों नमक ३ पल बैगन एक कुड़व, आककी जड़ ८ पल, चीता २ पल इन सबको भस्म करके बैगनके रसमें गोली बनावे फिर भोजनके पीछे एक गोली खाय इससे खांसी, सांस, अर्श, विशूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग दूर होजाते हैं और सब भोजन पच जाता है। इसका नाम वार्त्ताकु गुटिका है ॥ ४१—४३ ॥

मोथा, सेंधा, सोंठ, धायके फूल, लोध, कुरैयाकी छाल, बेलगिरी, मोचरस, पाठा, इन्द्रजौ, नेत्रवाला, आमकी गुठली

क्षौद्रतण्डुलतोयाभ्यां जयेत्पीत्वा प्रवाहिकाम् ॥४५॥
सर्वातीसार शमनं सर्वशूल निसूदनम्।
संग्रह ग्रहणीं हन्ति सूतिकाऽऽतङ्कमेव च ॥ ४६ ॥
एतद्गङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगाऽवरोधनम् ॥ ४७ ॥

इति स्वल्पगङ्गाधरचूर्णम्।

बिल्वं शृङ्गाटकदलं दाडिमं दलमेव च।
समुस्तातिविषा चैव सर्जश्वेतस्य धातकी ॥ ४८ ॥
मरिचं पिप्पली शुण्ठी दार्वी भूनिम्ब निम्बकम्।
जम्बुरसाम्रनश्चैव कुटजस्य फलं तथा ॥ ४९ ॥
पाठा समङ्गा खदिरं शाल्मलीवेष्टमेव च।
शक्राशनं भृङ्गराजचूर्णं देयं समं समम् ॥ ५० ॥
कुटजस्य त्वचश्चूर्णं सर्वं चूर्णसमं मतम्।

अतीस और लज्जालु इन सबका चूर्ण बनाकर शहत और चाव-लोंके पानीके संग पीनेसे प्रवाहिका, सब प्रकारके अतीसार, शूल, संग्रहणी और सूतिका रोग दूर होजाते हैं, इससे नदीके समान वेगवाला अतीसार भी नष्ट होजाता है। इसका नाम गङ्गाधर चूर्ण है ॥ ४४—४७ ॥

बेलगिरी, सिंघाड़ेके पत्ते, अनारके पत्ते, मोथा, अतीस, सफेदराल, धायके फूल, मिर्च, पीपल, सोंठ, दारुहल्दी, चिरा-यता, नीमकी छाल, आमनकी गुठिली, रसौत, इन्द्रजौ, पाढ़ा, मजीठ, मिचवाला, सेमलका गोंद, भांग, भंगरा इन सबको

एतद्गङ्गाधरं नाम महच्चूर्णं महागुणम् ॥ ५१ ॥
नानावर्णमतीसारं चिरजं बहुरूपिणम् ।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति तृष्णां कासञ्च दुर्जयम् ॥५२॥
ज्वरञ्च विविधं हन्ति शोथञ्चैव सुदारुणम् ।
अरुचिं पाण्डुरोगञ्च हन्यादेव न संशयः ॥ ५३ ॥
छागीदुग्धेन मण्डेन मधुना वाऽथ लेहयेत् ॥५४॥

इति वृहद्गङ्गाधरचूर्णम् ।

लवङ्गातिविषामुस्तं विल्वं पाठा च शाल्मली ।
जीरकं धातकीपुष्पं लोध्रेन्द्रयववालकम् ॥ ५५ ॥
धान्यमर्जरसं शृङ्गी पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
समङ्गा यावशूकञ्च सैन्धवं सरसाञ्जनम् ॥ ५६ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शमयेदग्निमान्द्यञ्च संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ५७ ॥

समान लेकर चूर्ण बनावे; इस चूर्णके समान कुरैयाकी छालका चूर्ण डाले, इससे अनेकवर्णवाला पुराना अतीसार दुःसाध्य ग्रहणी, प्यास, खांसी, अनेक प्रकारका ज्वर, भयानक शोथ, अरुचि और पांडुरोग दूर होजाते हैं; इसे बकरीके दूध, मांड़ या शहतके संग खाना चाहिये इसका नाम वृहत् गङ्गाधर चूर्ण है ॥ ४८ ॥ ५४ ॥

लौंग, अतीस, मोथा, वेलगिरी, पाढ़ा, सेमलका गोंद, जीरा, धायके फूल, लोध, इन्द्रजौ, नेत्रवाला, धनिया, राल,

नानावर्णमतीसारं सशोथां पाण्डुकामलाम् ।
हृद्गमष्ठीलिकां हन्ति कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥५८॥
हृल्लासमम्लपित्तञ्च स शूलं सान्निपातिकम् ।
सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ५९ ॥

इति स्वल्पलवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

लवङ्गातिविषामुस्तं पिप्पली मरिचानि च ।
सैन्धवं हवुषा धान्यं कट्फलं पुस्करं तथा ॥ ६० ॥
जातीकोषफलाजाजीसौवर्चलरसाञ्जनम् ।
धातकी मोचकं पाठा पत्रं तालीशकेशरम् ॥ ६१ ॥
चित्रकञ्च विडङ्गञ्च तुम्बुरु बिल्वमेव च ।
त्वगेलापिप्पलीमूलमजमोदा यमानिका ॥ ६२ ॥

काकड़ासिंगी, पीपल, सोंठ, मजीठ जवाखार, सेंधानमक और रसौत इनको समान लेकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णसे मन्दाग्नि, ग्रहणी, अनेक वर्णयुक्त अतीसार, शोथ, पाण्डुरोग, कामला, अष्ठीला, खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, हृल्लास, सन्निपात, शूल और अम्लपित्त आदि सबरोग इसप्रकार दूर होजाते हैं जैसे सूर्य्य निकलनेसे अन्धकार इसका नाम स्वल्प लवङ्गादि चूर्ण है ॥ ५५ ॥ ५९ ॥

लौंग, अतीस, मोथा, पीपल, मिर्च, सेंधानमक, खुरासानी अजवायन, धनिया, कायफल, पुष्करमूल, जायफल, अजवायन, सोचल, रसौत, धायके फूल, मोचरस, पाढ़ा, तेजपात, इलायची, तालीस, केशर, चीता, विडनोन, धनिया, बेलगिरी,

समङ्गा वत्सकं शुण्ठी दाड़िमं यावशूकजम् ।
निम्बं मर्जरसं क्षारं सामुद्रं टङ्कणं तथा ॥ ६३ ॥
ह्रीवेरं कुटजञ्चैव जम्ब्वाम्रं कटुरोहिणी ।
अभ्रकं पुटितं लौहं शुद्धगन्धकपारदम् ॥ ६४ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
मधुना वा लिहेच्चूर्णं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ६५ ॥
सर्वदोषहरञ्चैव ग्रहणीं हन्ति दुस्तराम् ।
वातिकीं पैत्तिकीञ्चैव श्लैष्मिकीं सान्निपातिकीम् ॥६६॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।
कृष्णारुणञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम् ॥ ६७ ॥
ज्वरारोचकमन्दाग्निं कासं श्वासं वमिं तथा ।
अम्लपित्तं तथा हिक्कां प्रमेहञ्च हलीमकम् ॥ ६८ ॥

तज, पीपलामूल, अजमोदा, अजवायन, मजीठ, इन्द्रजौ, सोंठ, अनारका बकला, जवाखार, नीम, राल, जामुनकी गुठिली, आमकी गुठिली, सज्जीखार, समुद्रनोन, सहागा, सुगन्धवाला, कुरैयाकीछाल, कुटकी, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे, फिर शहत, या चावलोंके पानीके संग पीनेसे सब दोष, घोर वात, पित्त, कफ और सन्निपातकी ग्रहणी, अनेक वर्ण युक्त पक्व और अपक्व अतीसार, काला, लाल और मांस धोये पानीके रंगवाला अतीसार, पीड़ा सहित अतीसार, ज्वर, अरोचक, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिचकी, प्रमेह, हली

पाण्डुरोगञ्च विष्टम्भमर्शांसि विविधानि च।
प्लीहगुल्मोदरानाह शोथातीसार पीनसान् ॥ ६९ ॥
आमवातं तथाजीर्णं संग्रहग्रहणीं जयेत्।
उदरं प्रदरञ्चैव लवङ्गाद्यमिदं शुभम् ॥ ७० ॥

इति वृहल्लवङ्गाद्यं चूर्णम्।

लवङ्गं जीरकं कौन्ती सैन्धवं त्रिसुगन्धिकम्।
अजमोदा यमानी च मुस्तकं सकटुत्रयम् ॥ ७१ ॥
त्रिफला शतपुष्पा च पाठाभूनिम्बगोक्षुरम्।
जातीकोषफले दार्वी नलदं चन्दनं मुरा ॥ ७२ ॥
शटी मधुरिका मेथी टङ्कणं कृष्णजीरकम्।
क्षारद्वयं वालकञ्च विल्वं पौष्करकं तथा ॥ ७३ ॥
चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं मधनीयकम्।
रसाभ्रगन्धकं लौहं समं सर्वं विचूर्णितम् ॥ ७४ ॥

मक, पाण्डुरोग, विष्टम्भ, अनेक प्रकारके अर्श, प्लीह, गुल्म, पेटके रोग, आनाह, शोथातीसार, पीनस, आमवात, अजीर्ण संग्रहणी और आठोप्रकारके उदर रोग अच्छे होजाते हैं। इसका नाम वृहत् लवङ्गादि चूर्ण है ॥ ६० ॥ ७० ॥

लौंग, जीरा, रेणुका, सेंधानमक, त्रिसुगन्ध अर्थात् तज, तेजपात, इलाची, अजमोदा, अजवायन, मोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, सौंफ, पाढ़ा, चिरायता, गोखरू, जायफल, दारुहल्दी, खस, चन्दन, मुरहर, कचूर, खम्हारी, मेथी, सुहागा, स्याहजीरा, सज्जीखार, जवाखार, नेत्रवाला, बेलगिरी,

उष्णोदकानुपानेन मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ।
शीततोयानुपानैर्वा बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ७५ ॥
आमातिसारं ग्रहणीं चिरकालोत्थितामपि ।
शूलं विष्टम्भमानाहं विसूचीं शोथकामले ॥ ७६ ॥
हलीमकं पाण्डुरोगं हन्ति कासं विशेषतः ।
लवङ्गाद्यं महच्चूर्णं शर्करासहितं पिबेत् ॥ ७७ ॥
आध्मानं शमयेच्छीघ्रं लवङ्गस्यानुपानतः ।
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहहेतवे ॥ ७८ ॥

इति तन्त्रान्तरे वृहल्लवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

विशाणां पञ्चलवणं प्रत्येकं तूषणं पिचुः ।
गन्धकान्माषकानष्टौ चत्वारोमाषका रसात् ॥ ७९ ॥

पुष्करमूल, चीता, पीपलामूल, विड़ङ्ग, धनिया, पारा, ...अक, गन्धक और लोहा इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे फिर गर्म पानीके संग खानेमे मन्दाग्नि तेज होजाती है। ठण्डे जलके संग खानेसे आमातीसार, पुरानीग्रहणी, शूल, विष्टम्भ, अनाह, विशूचिका, सोथ, कामला, हलीमक और पाण्डुराग, अच्छे होजाते हैं, शक्करके संग खानेसे खांसी और लौंगके संग खानेसे आध्मान शीघ्र अच्छा होजाता है। वैद्य इस चूर्णको दोष देख कर दें; अश्वनी कुमारोंने जगतके उपकारके लिये इस चूर्णको बनाया था इसका नाम भी वृहत्लवङ्गादि चूर्ण है ॥ ७१ ॥ ७८ ॥

पांचोनमक और त्रिकुटा इनको प्रत्येक औषधि तीन तीन

इन्द्राशनात्पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते।
खादेन्मिश्रीकृताच्छाणमनुपेयञ्च काञ्जिकम्॥ ८०॥
माषकादिक्रमेणैवमनुयोज्यं रसायनम्।
अत्यन्ताग्निकरञ्चै तद्भोजनं सर्वकामिकम्॥ ८१॥
प्रसिद्धयोगिनीर्वाही तया प्रोक्तं रसायनम्।
ग्रहणीनाशनं ह्येतदग्निसन्दीपनं परम्॥ ८२॥

इति स्वल्पनायिकाचूर्णम्।

कर्षं गन्धकमर्द्धपारदयुतं कुर्य्याच्छुभां कज्जलीम्।
द्व्यंशांशं त्रिकटोश्च पञ्चलवणात्सार्द्धञ्च कर्षं पृथक्॥
सार्द्धाच्चं द्विपलं विचूर्ण्यमकलं शक्राशनान्मिश्रितात्।
खादेच्छाणमतोऽनुकाञ्जिकपलं मन्दाग्निसन्दीपनम्॥८३

शाण, नीम तीन शाण, गन्धक आठ मासा, पारा ४ मासा, भांग १ पल, ३ शाण इनका चूर्ण बनाकर प्रतिदिन एक शाण खाय और ऊपरसे कांजी पीवे; इसी प्रकार रसायनके लिये भी इस चूर्णको एक मासेसे आरम्भ करके एक शाणतक खाय तो अग्नि बहुत बढ़जाती है और भोजन पच जाता है। यह योग वाही और रसायन है, इससे ग्रहणी और मन्दाग्नि दूर होजाती हैं, इसका नाम स्वल्पनायका चूर्ण है॥ ७९—८२॥

गन्धक, १ कर्ष, आधाकर्ष पारा इन दोनोंको मिलाकर कज्जली बनावे सोंठ, मिर्च, पीपल, दो दो पल; पांचनमक डेढ़ डेढ़ कर्ष, भांग दोपल और आधा पल इनका चूर्ण बनाकर खाय और ऊपरसे एक पल कांजी पिये इससे

स्वेच्छाभोजनतो रसायनमिदं घूर्णादिकोपद्रवे।
पेयञ्चावतु काञ्जिकं वदति सा नारी महायोगिनी॥
हन्याद्वातञ्च पित्तं कफविकृतिमतीसारमेवं समस्तम्।
कासं श्वासञ्च शूलं ज्वरमुदररुजोराजयक्ष्माणमुग्रम्॥
प्लीहानञ्चामवातं षडपि च गुदजान् कुष्ठरोगं समग्रम्।
वातास्रं कण्ठरोगानिदमिह कथितं दीपनं जाठराग्नेः॥८४

इति मध्यमनायिकाचूर्णम्।

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं रजनीद्वयम्।
भल्लातकं यमानी च हिङ्गु लवणपञ्चकम्॥ ८५॥
गृहधूम वचा कुष्ठं घनमभ्रञ्च गन्धकम्।
क्षारत्रयञ्चाजमोदा पारदो गजपिप्पली॥ ८६॥
अमीषां चूर्णकं यावत्तावच्छक्राशनस्य च।

मन्दाग्नि बहुत बढ़जाती है। इच्छानुसार भोजन किया हुआ सब पच जाता है। घूर्णादि कुपद्रव वात, पित्त और कफके विकार, सब प्रकारके अतीसार, खांसी, श्वास, शूल, पेटके रोग घोर राजयक्ष्मा, प्लीहा, आमवात, छवों प्रकारकी अर्श अठारहों प्रकारके कुष्ट, वातरक्त और कण्ठ रोग दूर होजाते हैं। अग्नि बहुत बढ़जाती है। इसका नाम मध्यनयिका चूर्ण है॥ ८३—८४॥

चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेरा, आवला, विड़ङ्ग, हलदी, दारुहल्दी, भिलावा, वायम, हींग, पांचोनमक, गृह-धूम, वच, कूट, मोथा, अबरक, गन्धक, तीनोंखार, अजामोदा,

अभ्यर्च्य नायिकां प्रातर्योगिनीं कामरूपिणीम् ॥८७॥
विडालपदमात्रन्तु भक्षयेदस्य गुण्डकम् ।
मन्दाग्निकासदुर्नामप्लीहपाण्डुचिरज्वरान् ॥ ८८ ॥
प्रमेहशोथविष्टम्भसंग्रहग्रहणीं जयेत् ।
सर्वातीसारहरण: सर्वशूलनिसूदन: ॥ ८८ ॥
आमवातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशन: ।
न च ते व्याधय: सन्ति वातपित्तकफोद्भवा: ॥ ९० ॥
यान्नहन्यादसौसिद्धो गुण्डकोनायिकाकृत: ।
वर्ज्यन्नायासमभ्यङ्गस्नानं पिशितभोजनम् ॥ ९१ ॥
काञ्जिकाम्लं सदा पथ्यं दग्धमीनं तथा दधि ।
काष्ठमप्युदरे तस्य भक्षणाद्याति जीर्णताम् ॥ ९२ ॥

इति वृहन्नायिकाचूर्णम् ।

पारा और गजपीपल ये सब समान और इन सबके समान भांग मिलाकर चूर्ण बनावे, फिर प्रात:काल कामरूपिणी योगिनीकी पूजा करके एक मन्न रोगीको देय, इससे मन्दाग्नि, खांसी, अर्श, पाण्डुरोग, पुराना ज्वर, प्रमेह, शोथ, विष्टम्भ, संग्रहणी, सबप्रकारके अतीसार, सब प्रकारके शूल, आमवात और सूतिका रोग दूर होजाते हैं। ऐसा कोई वातपित्त और कफका रोग नहीं है। जो इससे दूर न हो सके, परिश्रम, स्नान, मांस भोजन भी नहीं छोड़ना चाहिये। इससे खटाई, कांजी, भुनीहुई मछली और दही सदा पथ्य हैं, जो रोगी इस चूर्णको खाता है वह काठको भी पचासकाहै। इसका नाम वृहत्नायका चूर्ण है ॥८५॥९२॥

रसगन्धकलौहाभ्रं हिङ्गुलवणपञ्चकम्।
हरिद्रे कुष्ठकञ्चैव वचामुस्तविडङ्गकम्॥ ९३॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रमजमोदा यमानिका।
गजोपकुल्या क्षाराणि तथैव गृहधूमकम्॥ ९४॥
एतेषां कार्षिकं चूर्णं विजयाचूर्णकं समम्।
माषद्वयमिदं चूर्णं शालितण्डुलवारिणा॥ ९५॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय ग्रहणीगदनाशनम्।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम्॥ ९६॥
सर्वातीसारशमनं तृष्णाज्वरविनाशनम्।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्॥ ९७॥
आमातिसारमखिलं विशेषात् श्वयथुं जयेत्।
असाध्यां ग्रहणीं हन्ति पाण्डुप्लीहचिरज्वरान्॥ ९८॥
चूर्णं ग्रहणिशार्दूलं सर्वरोगकुलान्तकम्॥ [illegible]॥

इति ग्रहणीशार्दूलचूर्णम्।

पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, हींग, पांचोनमक, हल्दी, दारुहल्दी, कूट, वच, मोथा, विडङ्ग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेरा, आवला, चीता, अजमोदा, अजवायन, गजपीपल, तीनों क्षार और गृहधूम ये सब एक२ कर्ष और इन सबके समान भांग डालकर चूर्ण बनावे, फिर धानके चावलोंके पानीके संग रोगीको दो माषा देय, उससे ग्रहणी दूर होजाती है और जठराग्नि बड़वानल (समुद्रकी अग्नि) के समान तेज होजाती है। सब प्रकारके अतीसार, प्यास, ज्वर, आमातीसार अनेक पीड़ा और

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तथा।
तालीशं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गञ्चोपकुञ्चिका॥ १००॥
कर्पूरञ्चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा।
एषामक्षसमान् भागान् चातुर्जातक संहितान्॥१०१
पलानि सप्त भाङ्गस्य सिता सर्वसमा तथा।
एतच्चूर्णं जयेत्कासं क्षयं श्वासमरोचकम्॥ १०२॥
ग्रहणीमतिसारञ्च वह्निमान्द्यं सपीनसम्।
वातश्लेष्मभवान् रोगान् प्रतिश्यायांश्च दुःसहान्॥१०३॥
इति जातीफलादिचूर्णम्।

जीरकं टङ्कणं मुस्तं पाठा विल्वं सधान्यकम्।

अनेक वर्णयुक्त पक्कातीसार, असाध्य ग्रहणी, सब प्रकारके आमातीसार, सूजन, पाण्डु, प्लीह और जीर्णज्वरादि सब रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम ग्रहणीशार्दूल चूर्ण है॥८३॥८८॥

जायफल, बिडङ्ग, चीता, तगर, तालीस, चन्दन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, कपूर, हर्र, आंवला, पीपल, मिर्च, वंशलोचन, चातुर्जात (तज, तेजपात, इलायची और नागकेशर) ये सब एक एक अक्ष, भांग सात पल और इन सबके समान शक्कर मिलाकर चूर्ण बनाले इस चूर्णसे खांसी, सास, क्षय, अरोचक, ग्रहणी, अतीसार, मन्दाग्नि, पीनस, वात कफसे उत्पन्न हुए रोग और कृच्छ्रसाध्य प्रतिश्याय दूर होजाते हैं। इसका नाम जातीफलादि चूर्ण है॥ १००—१०३॥

जीरा, सुहागा, मोथा, पाढ़, सुगन्धवाला, धनिया, बेल-

बालकं शतपुष्पा च दाडिमं कुटजं तथा ॥ १०४ ॥
समङ्गा धातकीपुष्पं व्योषञ्चैव त्रिजातकम् ।
मोचारसः कलिङ्गञ्च व्योम गन्धकपारदौ ॥ १०५ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि च ।
एतत् प्राशितमात्रेण ग्रहणीं दुस्तरां जयेत् ॥१०६॥
अतीसारं निहन्त्याशु सामं नानाविधं तथा ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च मन्दाग्निञ्च विशेषतः ।
जीरकाद्यमिदं चूर्णमगस्त्येन प्रकाशितम् ॥ १०७ ॥

इति जीरकाद्यं चूर्णम् ।

शुद्धसूतञ्च गन्धञ्च हिङ्गुलं टङ्कणं तथा ।
व्योषं जातीफलञ्चैव लवङ्गं तेजपत्रकम् ॥ १०८ ॥
एलाबीजं चित्रकञ्च मुस्तकं गजपिप्पली ।
नागरं सजलञ्चाभ्रं धातक्यतिविषा तथा ॥ १०९ ॥

गिरी, सौंफ, अनारका बकला, कुरैयाकी छाल, मजीठ, धायके फूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात, इलायची, मोचरस, इन्द्रजौ, अभरक, गन्धक और पारा ये सब समान और इन सबके समान जायफलका चूर्ण, इसके खानेसे घोर संग्रहणी, अतीसार, अनेकप्रकारका आमातीसार, कामला, पाण्डुरोग और विशेष कर मन्दाग्नि दूर होते हैं। इस जीरकादि चूर्णको भगवान् अगस्त्यमुनिने प्रकाश किया है ॥ १०४ ॥ १०७ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, हिंगुर, सुहागा, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, लौंग, तेजपात, इलायचीके बीज, चीता, मोथा, गज

शिग्रुजं शाल्मलञ्चैवमहिफेणं पलाशकम्।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥११०॥
खादेदस्मात्प्रतिदिनं माषकं सितया सह।
संग्रहग्रहणीं हन्ति मन्दाग्निञ्च विनाशयेत् ॥१११॥
धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलपुष्टिं करोत्यपि।
मार्कण्डेयमिदं चूर्णं महादेवेन निर्मितम् ॥ ११२ ॥

इति मार्कण्डेयचूर्णम्।

प्रस्थे पचेत् कच्छटतालमूल्योः
सिताऽर्द्धप्रस्थं शृतपादशेषे।
ततोऽत्रमातारिण समानिदद्यात्
चूर्णानिधीरोविधिवत्तदैषाम ॥ ११३ ॥

समङ्गा धातकी पाठा विल्वं मुस्तोग्रपीप्पली।
शक्राऽतिविषाच्चार सौवर्चलरसाञ्जनम् ॥ ११४ ॥
शाल्मलीविष्टकञ्चैव सर्वं सिद्धे निधापयेत्।

पीपल, नागरमोथा, खश, अभ्रक, धायके फूल, अतीस, सहजनेके बीज, सेमलका गोंद और अफीम ये सब एक२ पल इन सबका चूर्ण बनाकर चीनीके संग प्रतिदिन एकमासा खाय इससे संग्रहणी और मन्दाग्नि दूर होजाती है। अवस्था, धातु बल और पुष्टि बढ़जाती हैं। भगवान् शिवने इसका नाम मार्कण्डेय चूर्ण कहा है ॥ १०८ ॥ ११३ ॥

एक प्रस्थ मूसली और कचटकेसंग आधा प्रस्थ चीनी पानीमें पकावे जब चौथाई रह जाय तब मजीठ, धायके

शीते च मधुनश्चात्र कुड़वार्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ ११५ ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत यथाकालं प्रमाणतः ।
सर्व्वातिसारं शमयेत् संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ११६ ॥
अम्लपित्तकृतं दोषमुदरं सर्व्वरूपिणम् ।
विकारान् कोष्ठजान् हन्ति हन्याच्छूलमरोचकम्॥११७

इति कञ्चटावलेहः ।

दशमूलीपलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण पचेद्गुडतुलां भिषक् ॥ ११८ ॥
आर्द्रकस्वरसप्रस्थौ दत्वा मृद्वग्निना ततः ।
लेहीभूते प्रदातव्यं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ ११९॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।
हिङ्गु भल्लातकञ्चैव विडङ्गमजमोदकम् ॥ १२० ॥

फूल, पाढ़ा, बेलगिरी, मोथा, पीपल, इन्द्रजौ, अतीस, जवाखार, सौंचल, रसौत, और सेमलका गोंद, इनको समान लेकर चूर्ण बनाके डाले, जब ठराडा होजाय तब आधा कुड़व शहत डालदे, फिर वैद्य समयके अनुसार इसकी मात्रा रोगीको देय, इससे सब प्रकारकी संग्रहणी, अम्लपित्त, सब प्रकारके पेटरोग शूल और अरोचक दूर होजाते हैं। इसका नाम कंचटावलेह है ॥ ११४ ॥ ११७ ॥

सौपल दशमूलको एक द्रोण पानीमें पकावे, जब चौथाई रह जाय तब छान कर उसमें एक तुला गुड़ और दो प्रस्थ अदरकका अर्क डालकर मन्द आंच देकर पकावे जब अवलेह

द्वौ क्षारौ चित्रकं चव्यं पञ्चैव लवणानि च।
दत्वा सुमथितं कृत्वा स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥१२१
कोलमात्रां तत: खादेत् प्रात: प्रातर्विचक्षण:।
हन्ति मन्दानलं शोथमामजां ग्रहणीमपि ॥ १२२ ॥
आमं सर्वभवं शूलं प्लीहानमुदरं तथा।
मन्दानलभवं रोगं विष्टम्भं गुदजानि च ॥ १२३ ॥
ज्वरं चिरन्तनं हन्ति तमिस्रं भानुमानिव ॥ १२४ ॥
इति दशमूलगुड:।
तुलार्द्धं शुष्कबिल्वस्य तुलार्द्धं दशमूलत:।
जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ १२५ ॥
आर्द्रकस्य रसप्रस्थमारनालं तथैव च।

होजाय तब,पीपल, पीपामूल, मिर्च, सोंठ, हींग, भिलावा, पिड़ंग, अजमोद, सज्जीखार, जवाखार, चीता, चाभ, और पाचो-नमक, इन सबको एक एक पल पीसकर उसमें डाले, फिर मिलाकर चिकने बर्त्तनमें रख छोड़े, फिर रोगीको प्रतिदिन प्रात:काल एक कोल (दोटंक) देय, इससे मन्दाग्नि,शोथ,आम-ग्रहणी, आमातीसार सन्निपातातिसार, शूल, प्लीह, पेटके रोग, मन्दाग्निसे उत्पन्न हुए रोग विष्टम्भ, अर्श और पुराने ज्वर इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्य्य उदय होनेसे अन्धकारका नाश होजाता है। इसका नाम दशमूल गुड़ है ॥ ११८ ॥ १२४ ॥

आधा तुला सूखी बेलगिरी, आधा तुला दशमूल इनको एक द्रोण पानीमें पकावे जब चौथाई रह जाय तब उतार कर छान ले, फिर अदरकका रस एक प्रस्थ, कांजी, एक प्रस्थ,

तैलप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ १२६ ॥
धातकीविल्वकुष्ठञ्च शटी रास्ना पुनर्नवा ।
त्रिकटु पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली ॥ १२७ ॥
देवदारु वचाकुष्ठं मोचकं कटुरोहिणी ।
तेजपत्राजमोदा च जीवनीयगणस्तथा ॥ १२८ ॥
एषामर्द्धपलान् भागान् पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ।
एतद्धि विल्वतैलाख्यं मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ १२९ ॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति अतीसारमरोचकम् ।
संग्रहग्रहणीं हन्ति अर्शसामपि नाशकम् ॥ १३० ॥
श्लीपदं विविधं हन्ति अन्त्रवृद्धिञ्च नाशयेत् ।
कफवातोद्भवं शोथं ज्वरमाशुव्यपोहति ॥ १३१ ॥
कासं श्वासञ्च गुल्मञ्च पाण्डुरोगविनाशनम् ।
मक्कल्लशूलशमनं सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ १३२ ॥

तिलका तेल एक प्रस्थ, गायका दूध एक प्रस्थ, धायके फूल, बेलगिरी, कूट, कचूर, रास्ना, गधापुर्ना, त्रिकुटा, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, देवदारु, बच, कूट, मोचरस, कुटकी, तेजपात, अजमोद जीवनीयगण (काकोली, क्षीरकाकोली जीवक, ऋषभक, रिद्धि, वृद्धि, मेदा और महामेदा) इन सबको आधा आधा पल डालकर मन्द आंचसे पकावे; इससे मन्दाग्नि अनेक प्रकारकी ग्रहणी, अरोचक, संग्रहणी, अर्श श्लीपद, अन्त्र-वृद्धि, कफ और वातसे उत्पन्न हुआ शोथ, ज्वर, खांसी, श्वास, गुल्म, पाण्डुरोग मक्कलशूल, और सूतिकारोगोंका नाश होजाता

मूढगर्भे च दातव्यं मूढवातानुलोमनम् ।
शिरोरोगहरश्चैव स्त्रीणां गदनिसूदनम् ॥ १३३ ॥
रजोदुष्टाश्च यानार्य्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः ।
तेऽपि तारुण्यशुक्राढ्या भविष्यन्ति महाबलाः ॥१३४॥
वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमेव च ।
बिल्वतैलमिति ख्यातमात्रेयेण विनिर्मितम् ॥१३५॥

इति बिल्वतैलम् ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा ।
भल्लातकं यमानी च विडङ्गं हस्तिपिप्पली ॥ १३६ ॥
हिङ्गु सौवर्च्चलश्चैव विडसैन्धव मेव च ।
सामुद्रं सयवक्षारं चित्रकोवचया सह ॥ १३७ ॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दशमूलीरसे (१) सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ १३८ ॥

है शिरोरोग, और स्त्री रोगभी दूर होता है। मूढ़ गर्भ रोगमें देनेसे वायुको अधोगति करता है। जिस स्त्रीका रज बिगड़ गया हो और जिस पुरुषका वीर्य्य बिगड़ गया हो इसके खाने से वेभी महाबलवान् और महावीर्य्यवान् होजाते हैं बंध्यास्त्री कोभी बलवान, वीर और पण्डित पुत्र होता है। भगवान् आत्रेयने इसका नाम बिल्वतैल लिखा है ॥ १२५ ॥ १३५ ॥

मिर्च, पीपल, पीपलमूल, सोंठ, भिलावा, अजवायन, विड़ङ्ग, गजपीपल, हींग, सोंचल, विड़नोन, संधानोन, समुद्रनोन, जवा-

(१) प्रस्थचर्तुमिते ।

मन्दाग्नीनां हितं श्रेष्ठं ग्रहणीदोषनाशनम् ।
विष्टम्भमामदौर्बल्यं प्लीहानञ्चापकर्षति ॥ १३९ ॥
कासं श्वासं क्षयञ्चापि दुर्नाम सभगन्दरम् ।
कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् क्रिमिसम्भवान् ॥ १४० ॥
तान् सर्वान्नाशयत्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा ॥ १४१ ॥

इति मरिचाद्यं घृतम् ।

सौवर्चलं पञ्चकोलं (१) सैन्धवं हवुषं बिडम् ।
अजमोदां यवक्षारं हिङ्गुजीरकमौद्भिदम् ॥ १४२ ॥
कृष्णाजाजीं सभूतीकं कल्कीकृत्य पलार्द्धिकम् ।
आर्द्रकस्वरसं चुक्रं क्षीरमस्त्वारनालकम् ॥ १४३ ॥
दशमूलकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

खार, चीता, और बच, इन सबको आधा आधा पल लेकर एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दशमूलके काढ़ेमें पकावे इससे मन्दाग्नि ग्रहणी रोग, विष्टम्भ, आमरोग, दुर्बलता, प्लीह, खांसी, श्वास क्षय, अर्श, भगन्दर, कफ, वायु और कृमिसे उत्पन्न हुए रोग इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे सूखा काठ आगमें पड़नेसे नाश होजाता है। इसका नाम मिर्चादि घृत है ॥१३९॥१४१॥

सौंचल, पंचकोल, सेंधा, हाऊबेर, बिडनोन, अजमोदा, जवाखार, हींग, जीरा, उद्भिजनोन, कालाजीरा, भूतीक इन सबको आधा आधा पल लेकर कल्क बनावे इस कल्कमें

(१) पञ्चकोलं मिलित्वा पलार्द्धिकं आर्द्रकस्वरसादयो दशमूलीकषायश्च षड्द्रवाः प्रत्येकं घृतसमाः पञ्चप्रभृति यत्र द्रवाणि स्युरित्यादिपरिभाषया इति गोपालदासः ।

भक्तेन सह पातव्यं निर्भक्तं वा विचक्षणैः ॥ १४४ ॥
क्रिमिप्लीहोदराजीर्णज्वरकुष्ठप्रवाहिकाः।
वातरोगान् कफव्याधीन् हन्याच्छूलमरोचकम् ॥१४५॥
पाण्डुरोगं क्षयं कासं दौर्बल्यं ग्रहणीगदम्।
महाषट्पलकं नाम्ना वज्रमिन्द्रनिर्मितं यथा ॥ १४६ ॥

इति महाषट्पलकं घृतम्।

यन्मस्त्वादि (१) शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम्।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥१४७॥
द्विगुणं (२) गुडमध्वारनालमस्तु क्रमादिह ॥१४८॥

इति स्वल्पचुक्रसन्धानम्।

अदरकका रस, चुक्र, दूध, दहीका तोड़, कांजी, दशमूलका काढ़ा और घी एक एक प्रस्थ डाल कर पकावे. फिर बुद्धिमान् वैद्य, रोगीको भोजनके सग या विनाही भोजन खिलावे तो कृमि रोग, प्लीह, उदररोग, अजीर्ण, कुष्ट, प्रवाहिका, वातरोग, कफरोग, शूल, अरोचक, पाण्डुरोग, क्षय, खांसी, दुर्बलता और ग्रहणीरोग इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे बिजलीके गिरनेसे वृक्ष; इसका नाम महाषटपल घृत है ॥ १४२ ॥ १४६ ॥

गुड़, शहत और कांजी मिलाकर पवित्र बर्त्तनमें रखकर तीन दिन तक धानके ढेरमें गाड़ कर रख दे, उस लाहनका नाम शुक्त चुक्र है। चुक्रमें गुड़ एकभाग शहद दो भाग और कांजी आदि वस्तु ४ भाग पड़ते हैं यह स्वल्प चुक्र बनानेकी रीति हुई ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

(१) मस्त्वादिस्थाने ... (२) ... [illegible]

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुषजलात् (१) प्रस्थत्रयं चाम्लतः
प्रस्थार्द्धं दधितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके (२)।
मान्यौ शोधितशृङ्गवेरसकलात् द्वे सिन्धुजाज्योः पले
द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निःक्षिप्य भाण्डे दृढे॥१४६
स्निग्धधान्ययवादिराशिनिहितं वारत्रयं स्थापयेद्
ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरोऽत्रर्षासु पुष्पागमे।
षट्शीतेऽष्टदिनान्यतः परमिदं विश्राव्य संचूर्णयेत्
चातुर्जातपलेन मंहतमिदं शुक्तञ्च चुक्रञ्च तत्॥१५०॥
हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान्।
दुर्नामानि च शूलगुल्मजठरान् हत्वानलं दीपयेत्॥१५१

इति वृहच्चुक्रसन्धानम्।

एकप्रस्थ चावलका पानी, तुषोदक एकप्रस्थ, कांजी तीन प्रस्थ, दही आधाप्रस्थ, चुकेकी जड़ आठपल, गुड़ दो शराव, छिले हुए अदरकके टुकड़े दो शराव, सेंधानमक दो पल, जीरा २ पल, मिर्च २ पल, पीपल दो पल और हलदी २ पल इन सबको मिट्टीके दृढ़ और चिकने बर्तनमें भर कर तीन दिन तक धान या जौके ढेर मे गाड़ कर रख दे, फिर गर्मी, जाड़ा, वर्षा और बसन्त ऋतुमें खाय, शीतमें ६ दिन और अन्य अन्य ऋतुमें आठदिन तक रक्खे उसमें लौंग, तज तेजपात, इलायची और नागकेशर भी पीसकर डालदे, इससे वात, कफसे जन्य दोष, आमदोषसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके रोग, अर्श,

(१) सन्धानकाऽवस्थवसन्धानम (२) शरावौ।

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशिकम्।
लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत्॥ १५२॥
तक्रकं संयुतं जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नरः।
दीपनं शोथगुल्मार्शः क्रिमिमेहोदरापहम्॥१५३॥

इति तक्रारिष्टम्।

'वाय्यस्य (१) दद्याद्यवशक्तुकानां
पृथक् पृथक् चाढकसंमितन्तु।
मध्यप्रमाणानिच मूलकानि
दद्याच्चतुःषष्ठिसुकल्पितानि॥ १५४॥
द्रोणेऽम्भसः प्राग्घटे सुधौते
दद्यादिदं भेषजजातयुक्तम्।

शूल, गुल्म और उदर रोगोंका नाश होता है और अग्नि बहुत बढ़ जाती है। इसका नाम हृहत् चुक्रसन्धान है॥१४९॥१५१॥

अजवायन, आंमला, हरं और मिर्च, तीनर पल, पांचो ममक एक एक पल, पीसकर मट्ठे में मिलाकर अरिष्ट बनावे इस अरिष्टके पीनेसे अग्नि बढ़ती है, शोथ, गुल्म, अर्श, कृमि रोग, मोह और उदर रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम तक्रारिष्ट है॥ १५२॥ १५३॥

बाय्या, जौके सत्तू, एक एक आढ़क, न बहुत बड़ी न बहुत छोटी ६४ मूलियोंके टुकड़े इन सबको एक प्रस्थ पानीमें भिगो दे; फिर सज्जीखार, जवाखार, धनिया, अजमोदा, नेपाली

(१) तुषरहितकण्डितयवचतुर्थांशगणा (?) माषिलीमल्ली वाय्यः।

धान्यद्वयं तुम्बुरुवस्तगन्धा-
धनीयकं स्याद्विडसैन्धवञ्च ॥ १५५ ॥
सौवर्च्चलं हिङ्गुगिराटिकाञ्च (१)
चव्यञ्च दद्याद्द्विपलप्रमाणम् ।
इमानि चान्यानिपलोन्मितानि
विजर्जरीकृत्यघटेक्षिपेच्च ॥ १५६ ॥
कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकाञ्च-
तथासुरीकारविचित्रकञ्च ।
पक्षस्थितोऽयं बलवर्णदेह
वयस्करोऽतीवबलप्रदश्च ॥ १५७ ॥
कान्जीवयामीतियतः प्रवृत्त-
स्तत्काञ्जिकेतिप्रवदन्तितज्ज्ञाः ।
षायामकालाज्जरयेच्च भुक्त-
मायामकेति प्रवदन्ति चैनम् ॥ १५८ ॥
गुल्मं च प्लीहानमथोदरञ्च
हृद्रोगमानाहमरोचकञ्च ।

धनियां, बिडनोन, सेंधानोन, सौचल, हींग, गिराटिका (धनिया नेपाली) और चाभ इन सबको दो दो पल ले, काला जीरा, अजवायन, राई, सौंफ और चीता ये सब एक पल कूट कर घड़े में डाल दे, फिर एक पक्षतक रख छोड़े ; इससे शरीरके बल, वर्ण और यश बढ़ते हैं। मनुष्य जो भोजन

(१) कुम्भं बृहन्नचंद्रम् ।

मन्दाग्नितां कोष्ठगतञ्च शूल-
मर्शोविकारान्सभगन्दरांश्च।
वातामयानाशुनिहन्तिसर्वान्
संसेव्यमानोविधिवन्नराणाम् ॥ १५६ ॥

इति आयामकाञ्जिकम्।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य
शुद्धस्य दत्वार्द्धतुलां गुडस्य।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरव्य-
व्योषेभकृष्णाह्वयाजमोदैः ॥ १६० ॥
विडङ्गसिन्धु त्रिफलायमानी
पाठाग्निधान्यैश्चपलप्रमाणैः।
दत्वात्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टा-
वष्टौच तैलस्यपचेद्यथावत् ॥ १६१ ॥

करता है। सोकी पच जाता है। उर, गुल्म, प्लीहा, हृद्रोग, आनाह, अरोचक, मन्दाग्नि, कोष्ट, शूल, अर्शविकार, भगन्दर और सब प्रकारके वातरोग दूर होजाते हैं। कांजी कहती है कि मैं किसे जिनाज इसलिये इसका नाम कांजी है यह अन्नको बहुत शीघ्र पचा देता है इस लिये वैद्योंने इसका नाम आयाम कांजिक लिखा है ॥ १५४ ॥ १५८ ॥

आंवलोंका रस३ प्रस्थ, शुद्धगुड आधातुला, पीपलामूल, जीरा, चाभ, सोंठ, मिर्च, पीपल, गजपीपल, खुरासानीअजवायन, अजमोदा, विडङ्ग, सेंधा, हर्र, बहेरा, आंवला, अजवायन, पाढ़ा,

तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं
यथेष्ट चेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम् ।
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः
सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ १६२ ॥
शाम्यन्ति चायं चिरमन्तराग्ने-
र्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ।
स्त्रीणाञ्च वन्ध्यामयनाशनोऽयं
कल्याणकोनामगुडः प्रदिष्टः ॥ १६३ ॥
त्रिवृतां भर्जयन्त्यत्र मनाक्तैले चिकित्सकाः ।
तत्रोक्तमानसाधर्म्यात् त्रिसुगन्धिपलं पृथक् ॥१६४॥

इति कल्याणगुडः ।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतजर्ज्जितम् ।
समे शिलातले पश्चाच्चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ १६' ॥

चीता और धनियां ये सब एक एक पल निसोत आठ पल, तेल आठ पल, त्रिसुगन्ध अर्थात् तज, तेजपात और इलायची डालकर बिधि पूर्वक पकावे, फिर एक एक अक्ष खानेसे सब प्रकारके ग्रहणी विकार, खांसी, सांस, स्वरभेद, शोथ, नपुंसकता और मन्दाग्नि दूर होजाती हैं और वन्ध्यास्त्रियोंके सब रोग दूर होजाते हैं। इसमें थोड़े तेलमें भुनाहुआ निसोत पड़ता है। त्रिसुगन्ध की औषधि एक एक पल डालनी चाहिये क्यों कि तन्त्रमें समान तोल लिख आये है, इसका नाम कल्याण-गुड़ है ॥ १६०—१६४ ॥

त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी कुष्ठधन्याकसैन्धवम्।
शठी तालीशपत्रञ्च कट्फलं नागकेशरम्॥ १६६॥
अजमोदा यमानी च यष्टीमधुकमेव च।
मेथी जीरकयुग्मञ्च गृहीत्वा श्लक्ष्णचूर्णितम्॥१६७॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम् (१)।
तावदेव सिता देया यावद्गायाति बन्धनम्॥१६८॥
घृतेन मधुना मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत्।
त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणाधिवासयेत्॥ १६९॥
स्थापयेद्घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम्।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम्॥ १७०॥
कासघ्नं सर्वशूलघ्नं आमवातविनाशनम्।
सर्वरोगहरोह्येष संग्रहग्रहणीहरः॥ १७१॥
एतस्य सतताभ्यासाद्वृद्धोऽपि तरुणायते।
ब्रह्मणः प्रमुखाच्छ्रुत्वा वासुदेवे जगत्पतौ॥ १७२॥

भांगके पत्ते और बीजोंको घीमें भून कर सिलपर पीसले; त्रिकुटा, त्रिफला, कांकड़ासिङ्गी, कूट, धनिया, सेंधा, कचूर, तालीसपत्र, कायफल, नागकेशर, अजमोदा, अजवायन, जेठीमधु, मेथी, जीरा, और स्याहजीरा इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे और इस चूर्णके समान ऊपर लिखा भांगका चूर्ण मिलावे, इस चूर्णके समान चीनीकी चासनी बनाकर घी शहत डालकर लड्डू बनाले, बनाते समय त्रिसुगन्ध और कपूर

(१) विजयापत्रम्।

एष कामविवृद्ध्यर्थं नारदैः प्रतिपादितः ।
तेन लक्षं वरस्त्रीणां रेमे स यदुनन्दनः ॥ १७३ ॥
इति मदनमोदकः ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तजीरकद्वयधान्यकम् ।
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी यमानी सैन्धवं विडम् ॥ १७४॥
तालीशकेशरं पत्रं त्वगेला च फलं तथा ।
जातीकोषं लवङ्गञ्च मुरा कर्पूरचन्दनम् ॥ १७५ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तु मेथिका ।
सर्वसमो मोदकः कार्य्यः पुरातनगुडेन च ॥ १७६ ॥
घृतेन मधुना किञ्चित् खादेदग्निबलं प्रति (१) ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं मासि मैदे महौषधम् ॥ १७७ ॥

भी डालदे. फिर घीके बर्त्तन में भरकर रखदे इसके प्रातःकाल खानेसे वात कफके रोग, खांसी, सबप्रकारके शूल, आमवात, संग्रहणी, आदि सब रोग दूर होजाते हैं। नित्य खानेसे बूढ़ा भी जवान होजाता है, यह मोदक पहले ब्रह्माने नारदको बताया था, और नारदने काम बढ़नेके लिये श्रीकृष्णको बतलाया, इसीके प्रतापसे वे लाखों स्त्रियोंके संग विहारकरते थे, इसका नाम मदन मोदक है ॥ १६५ ॥ १७३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, दोनोजीरे, धनिया कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिङ्गी, अजवायन, सेंधानमक, बिडनमक, तालीसपत्र, केसर, तेजपात, तज, इलायची, जायफल, लौंग, मुरहर, कपूर और चन्दन ये सब समान और इन सबके समान

(१) आग्निबलानुसारम् ।

बलवर्णकरोह्येष संग्रहग्रहणीहरः।
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातं तथाश्मरीम् ॥१७८
पाण्डुरोगं तथा कासं यक्ष्माणं हन्ति कामलाम्।
स्तनौ च पतितौ गाढ़ौ स्यातां तालफलोपमौ ॥१७९
दृष्टिप्रसादनञ्चैव नारीणाञ्चैव पुत्रदः।
भाषितं कामदेवेन मेथीमोदकसंज्ञकः ॥ १८० ॥

इति मेथीमोदकः।

त्रिफला धान्यकं मुस्तं शुण्ठी मरिचपिप्पली।
कट्फलं सैन्धवं शृङ्गी जीरकद्वयपुष्करम् ॥१८१॥
यमानी केशरं पत्रं तालीशं विडमेव च।
जातीफलं त्वगेलाच जयतीन्दुलवङ्गकम् ॥ १८२ ॥

मेथी पीसकर पुराने गुड़में घी और थोड़े शहतमें मिलाकर लड्डू बनावे; इससे अग्निबल और वर्ण बहुत बढ़ते हैं; संग्रहणी, बीसो प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, पाण्डुरोग, खांसी, यक्ष्मा और कामलारोग भी दूर होजाते हैं इससे स्त्रियोंके गिरे हुए स्तनताड़के फलके समान कठोर होजाते हैं, बन्ध्याको पुत्र होता है। दृष्टि बहुत बढ़जाती है यह मोदक आम दोषके लिये बहुत उत्तम है कामदेवने इसका नाम मेथीमोदक लिखा है ॥ १७४ ॥ १८० ॥

धनियां, मोथा, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, कायफल, सेंधानमक, कांकड़ासिङ्गी, जीरा, स्याहजीरा, पुहकरमूल, अजवायन, केशर, तेजपात, तालीस, विडनोन, जायफल, तज,

शतपुष्पा मुरा मांसी यष्टीमधुकपद्मकम् ।
चव्यं मधूरिका दारु सर्वमेतत्समं भवेत् ॥ १८३ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रा तु मेथिका ।
सितया मोदकं कार्य्यं घृतमाध्वीकसंयुतम् ॥ १८४ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय यथादोषानुपानतः ।
हन्ति मन्दानलान् सर्वानामदोषं विशेषतः ॥ १८५ ॥
महाग्निजननं वृष्यमामवातनिसूदनम् ।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ॥ १८६ ॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति कासं श्वासञ्च दारुणम् ।
छर्द्यतीसारशमनं सर्वारुचिविनाशनम् ॥ १८७ ॥
मेथीमोदकनामेदं पातञ्जलिमुनेर्मतम् ॥ १८८ ॥

इति वृहन्मेथीमो[illegible] ।

लौंग इलायची, जवित्री कपूर, सौंफ, मरहर, जटामांसी, जेठीमधु, पदमाख, चाभ, खभारी और देवदारु ये सब समान और इन सबके समान मेथी पीसकर घी, शहत और चीनी मिलाकर लड्डू बनाले, फिर दोषके अनुसार अनुपानके संग प्रातःकाल खानेसे अग्नि और बल बहुत बढ़ जाते हैं। आमवात, ग्रहणीविकार, अर्श, श्लीहपद, पाण्डु, बीसो प्रकारके प्रमेह, खांसी, भयानक श्वास, वमन, अतीसार और सब प्रकारके अरुचि रोग दूर होजाते हैं। भगवान् पतञ्जली महामुनिने इसका नाम वृहत् मेथीमोदक कहा है ॥ १८१ ॥ १८८ ॥

धान्यकं त्रिफलाभृङ्गं त्रुटिः पत्रं लवङ्गकम्।
केशरं शैलजं शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि च॥ १८९॥
जीरकं कृष्णजीरञ्च यमानी कट्फलं जलम्।
धातकीपुष्पकं व्याधिर्जातीकोषफले त्वचम्॥१९०॥
मधुरिका चाजमोदा ह्वुषं नागपर्ण्यपि।
उग्रगन्धा शठी मांसी कुटजस्य फलं शुभम्॥१९१॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् कुशलोभिषक्।
सर्वचूर्णसमं देयं जलदस्यापि चूर्णकम्॥ १९२॥
सिता च द्विगुणा देया मोदकं परिकल्पयेत्।
महाग्निजननं ह्येतत् सरक्तां ग्रहणीं तथा॥ १९३॥
अतीसारं ज्वरं घोरं पाण्डुरोगं हलीमकम्।
क्रिमिरोगं रक्तपित्तमर्शरोगं सुदुर्जयम्॥ १९४॥
लोकानां गदशान्त्यर्थं भैरवेन प्रकाशितम्॥ १९५॥

इति मुस्तकादिमोदकः।

धनियां, हर्र, बहेड़ा, आमला, भंगरा, इलायची, तेजपात, लौंग, केसर, छरीला सोंठ, मिर्च, पीपल, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, कायफल, खस, धायके फूल, कूट, जायफल, तज, खम्हारी, अजमोदा, खुरासानी अजवायन, नागपर्णी, बच कचूर, जटामांसी और इन्द्रजौ, इन सबका चूर्ण बनावे और उस चूर्णके समान मोथे का चूर्ण मिलाकर, दूनी शक्कर डाल लड्डू बनाले इन लड्डूओंसे अग्नि बहुत बढ़ती है, रक्त सहित संग्रहणी, अतीसार, घोर

सूक्ष्मचूर्णीकृतं जीरं पलाष्टकमितं शुभम् ।
तदर्द्धं विजयाबीजं भर्जितं वस्त्रपूतकम् ॥ १९६ ॥
अयश्चूर्णं तथा वङ्गमभ्रकं कर्षमात्रतः ।
मधूरिका च तालीशं जातीकोशफले तथा ॥१९७॥
धन्याकं त्रिफला चैव चातुर्जातलवङ्गकम् ।
शैलेयं चन्दने द्वे च मांसी द्राक्षा शठी तथा ॥१९८॥
टङ्कणं कुन्दुरुर्यष्टी तुगाककोलवालकम् ।
गाङ्गेरुस्त्रिकटुश्चैव धातकी विल्वमर्ज्जुनम् ॥ १९९ ॥
शतपुष्पा देवदारु कर्पूरं सप्रियङ्गुकम् ।
जीरकं शाल्मलञ्चैव कटुका पद्मनालुके ॥ २०० ॥
एषां कर्षसमं चूर्णं गृह्णीयात् कुशलोभिषक् ।
शर्करामधुनाज्येन मोदकस्तु विनिर्मितम् ॥ २०१ ॥
खादेत् कर्षसमं तस्य प्रत्यहं प्रातरुत्थितः ।
शीततोयानुपानेन सर्वग्रहणिकां जयेत् ॥ २०२ ॥

ज्वर, पांडुरोग, हलीमक, क्रमिरोग, रक्तपित्त और घोरअर्श दूर होजाते हैं। जगतके उपकारके लिये भैरवने यह मोदक बनाया था इसका नाम मुस्तकादि मोदक है ॥१८८—१९५॥

अत्यन्त पिसा हुआ जीरा आठपल, घीमें भुने कपड़ेमें छने भांगके बीज ४ पल, लोहचूर्ण, वंग और अभ्रक ये तीनों एक एककर्ष, खम्हारी, तालीस, जायफल, जावित्री, धनिया, हर्र, बहेड़ा, आमला, तज, तेजपात, इलायची, नागकेसर, लौंग, छड़ीला, सफेदचन्दन, लालचन्दन, जटामासी, दाख कचूर, सुहागा,

आमदोषावृते पित्ते वह्निमान्द्ये तथैव च।
रक्तातिसारेऽतिसारे प्रयोज्यं विषमज्वरे॥ २०३॥
सशब्दं घोरगम्भीरं हन्ति सद्योन संशयः।
कफपित्तकृतं दोषमुदरं सर्वरूपिणाम्॥ २०४॥
सर्वातीसारशमनं संग्रहग्रहणीं जयेत्।
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव दोषत्रयकृतं तथा॥ २०५॥
विकारं कोष्ठजञ्चैव हन्ति शूलमरोचकम्।
भाषितं वृष्णिनाथेन जन्तूनां हितकारणम्॥२०६॥

इति जीरकादिमोदक।

मृदक, जेठीमधु, बंसलोचन, शीतलचीनी, नेत्रवाला, गंगेरुआ, सोंठ, मिर्च, पीपल, धायके फूल, बेलगिरी, अर्ज्जुन, सौंफ, देवदारु, कपूर, प्रियंगु, जीरा, सेमलका गोंद, कुटकी, नालुका और कमल ये सब एक एक कर्ष लेकर बुद्धिमान् वैद्य शहत और शक्कर मिलाकर एक एक कर्षके लड्डू बनावे, फिर रोगीको प्रातःकाल ठण्डे पानीके संग एक एक लड्डू खिलावे तो सब प्रकारके ग्रहणीदोष, आमदोष, पित्तदोष, मन्दाग्नि, रक्तातीसार, अतीसार, विषमज्वर, शब्द सहित घोर और गम्भीर पेटके रोग कफपित्तसे उत्पन्न हुए रोग, सब प्रकारके उदररोग, सब अतीसार, संग्रहणी एक, दो वा तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए पेटके विकार और शूल दूर होजाते हैं। भगवान् कृष्णने सब लोगोंके कल्याणके लिये इसका नाम जीरकादि मोदक लिखा है॥ १९६॥ २०६॥

जीरकं कृष्णजीरञ्च कुष्ठं शुण्ठी च पिप्पली ।
मरिचं त्रिफला त्वक् च पत्रमेला च केशरम् ॥२०७॥
शुभा लवङ्गं शैलेयं चन्दनं श्वेतचन्दनम् ।
काकोली चीरकाकोली जातीकोषफले तथा ॥२०८
यष्टी मधूरिका मांसी मुस्तं सचन्दनकं शठी ।
धन्याकं देवताडञ्च मुरा द्राक्षा नखी तथा ॥२०९॥
शतपुष्पा पद्मकञ्च मेथी च सुरदारु च ।
सजलं नालुका चैव सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २१० ॥
कर्पूरं वनिता चैव कुन्दखोटी समांशिकम् ।
अभ्रवङ्गकलौहानां द्विभागं तत्र दापयेत् ॥ २११ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
सर्वचूर्णसमं देयं भ्रष्टजीरस्य चूर्णकम् ॥ २१२ ॥
सिता द्विगुणिता देया मोदकं परिकल्पयेत्

जीरा, कालाजीर, कूट, सोंठ, पीपल, मिर्च, हर्र, बहेड़ा आमला, तज, तेजपात, इलायची, नागकेसर, शुभा, लौंग, छडीका, लालचन्दन, सफेदचन्दन, काकोली, चीर काकोली, जायफल, जेठीमधु, मोथा, जटामासी, कपूर, धनिया, देवदारु, मुरहर, दाख, नखी, सौंफ, पदमाख, मेथी, देवदारु, खस, नालुका, सेंधानमक, गजपीपल, कचूर, वनिता, कुन्दखोटी, इन सबको समान२ अभ्रक, वंग और लोहेको भस्म इनका समान डालकर चूर्ण बनावे इस चूर्णके समान भुने हुए जीरेका चूर्ण और सबसे दूनी शक्कर डालकर लड्डू बनाले और उसमें

घृतेन मधुना मिश्रं मोदकञ्च भिषग्वरः ॥ २१३ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय यथादोषबलाबलम्।
गव्यञ्च शशकञ्चैव अनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २१४ ॥
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१५ ॥
नानावर्णमतीसारं विशेषादामसम्भवम्।
शूलमष्टविधं हन्ति अर्शोरोगं चिरोद्भवम् ॥ २१६ ॥
जीर्णज्वरञ्च सततं विषमज्वरमेव च।
स्त्रीणामनपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् ॥ २१७ ॥
पुष्पकृत्पुत्त्रकृच्चैव बलवर्णकरं परम्।
सूतिकारोगमत्युग्रं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ २१८ ॥
प्रदरं नाशयत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदितः।
दाहं सर्वाङ्गिकञ्चैव वातपित्तोत्थितञ्च यत् ॥ २१९ ॥

घी शहत भी मिला ले, फिर बलके अनुसार प्रातःकाल रोगीको देय, ऊपरसे गायका दूध, या खरहेके मांसका रस देय, जैसे बिजलीके गिरनेसे वृक्ष जलजाते है ऐसे ही इसके खानेसे अस्सी प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग, अनेक वर्णवाला अतीसार, विशेषकर आमातीसार, आठों प्रकारका शूल, पुराना अर्शरोग, जीर्णज्वर, सततादि विषमज्वर, दुर्बल स्त्रियोंका बन्ध्यारोग, प्रसूति और प्रदर नष्ट होजाते हैं। दुर्बल स्त्रियोंका मासिक धर्मबन्द हुआ हो सोभी होने लगता है। बन्ध्याको पुत्र होता हैं इससे बल और वर्ण भी बहुत बढ़ते हैं।

अयं सर्वगदोच्छेदी जीरकाद्योहि मोदकः ॥ २२० ॥

इति बृहज्जीरकादिमोदकः ।

उशीरं बालकं मुस्तं त्वक्पत्रं नागकेशरम् ।
जीरद्वयञ्च शृङ्गी च कट्फलं पुष्करं शठी ॥ २२१ ॥
त्रिकटु बिल्वकं धान्यं जातीफललवङ्गकम् ।
कर्पूरं कान्तलौहञ्च शैलजं वंशलोचना ॥ २२२ ॥
एलाबीज जटामांसी रास्ना तगरपादुकम् ।
समङ्गाऽतिबला चाभ्रं मुरा वङ्गं तथैव च ॥ २२३ ॥
अस्य चूर्णसमा मेथी चूर्णार्द्धं विजयारजः ।
शर्करामधुसंयुक्तं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ २२४ ॥
कर्षमेकं प्रमाणन्तु भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ।
शीततोयानुपानेन आजेन पयसाऽथवा ॥ २२५ ॥

जैसे सूर्य निकलनेसे अन्धकार दूर होजाता है तसे ही इसके खानेसे वात और पित्तसे उत्पन्न हुआ सब शरीरका दाह नष्ट हो जाते हैं इस सब रोगनाशक औषधिका नाम बृहत् जीरकादि मोदक है ॥ २०७ ॥ २२० ॥

खस, नेत्रवाला, मोथा, तज, तेजपात, नागकेशर, जीरा, स्याहजीरा, कांकड़ासिङ्गी, कायफल, पुष्करमूल, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, बेलगिरी, धनिया, जायफल, लौंग, कपूर, कान्त-लोह, छड़ीला, वंशलोचन, इलायचीके बीज, जटामांसी, रासन सन, तगर, मजीठ, खरैठी, अभ्रक, मुरहर और वंगये सब समान और इन सबके समान मेथीका चूर्ण और इस सब चूर्णसे

ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति श्वासं कासमतीव च ।
आमवातमग्निमान्द्यं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥२२६॥
विबन्धानाहशूलञ्च यकृत्प्लीहोदराणि च ।
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि ग्रहणीदोषनाशनम् ॥ २२७ ॥
उदावर्त्तगुल्मरोगोदरामयविनाशनः ॥ २२८ ॥

इत्यग्निकुमारमोदकः ।

अथ रसप्रयोगाः ।

रसं गन्धं विषं व्योषं टङ्कणं लौहभस्मकम् ।
अजमोदाहिफेणञ्च सर्वतुल्यं मृताभ्रकम् ॥ २२९ ॥
चित्रकस्य कषायेण मर्दयेद्याममात्रकम् ।
मरिचाभां वटीं खादेद्जीर्णां ग्रहणीं तथा ॥ २३० ॥

आधी भांग मिलाकर शहत और शक्करमें मिलाकर एक एक कर्षके लड्डू बनावे फिर प्रातःकाल रोगीको ठण्डे जल या बकरीके दूधके संग देय इससे घोर संग्रहणी, खांसी, सांस, आमवात, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, विबंध, आनाह शूल, यकृत्, प्लीह, उदररोग, अठारों प्रकारके कुष्ट, ग्रहणीदोष, उदावर्त्त, गुल्मरोग और उदररोग दूर होजाते हैं, इसका नाम अग्निकुमार मोदक है ॥ २२१ ॥ २२८ ॥

आगे रसचिकित्सा लिखते हैं ।

पारा, गन्धक, विष, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुहागा, लोहेकी भस्म, अजमोदा अफीन ये सब समान और इन सबके समान अभ्रककी भस्म इन्हे खरलमें डालकर एक पहर तक चीतेके

नाशयेन्नात्र सन्देहो गुह्यमेतच्चिकित्सितम् ॥२३१॥

इत्यग्निकुमारोरसः ।

गिरिजाभवबीजकज्जली
परिमर्द्यार्द्ररसेन शोषिता ।
कुटजस्य तु भस्मना पुन-
र्द्विगुणेनाथ विमर्द्य मिश्रिता ॥ २३२ ॥

मर्द्दयित्वा प्रदातव्यमस्य गुञ्जाचतुष्टयम् ।
अजाक्षीरेण दातव्यं क्वाथेन कुटजस्य वा ॥ २३३ ॥
यूषं देयं मसूरस्य वारिभक्तञ्च शीतलम् ।
दध्ना सह पुनर्देयं ग्रासादौ रक्तिकाद्वयम् ॥ २३४ ॥
वर्द्धयेद्दशपर्य्यन्तं ह्रासयेत् क्रमशस्तथा ।
निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशेषात् कुक्षिमार्द्दवम् ॥२३५॥

इति ग्रहणीकपाटोरसः ।

रसमें घोटे फिर एक मिर्चके समान गोली बनावे इससे अजीर्ण और ग्रहणी रोग निस्सन्देह दूर होजाते हैं, इस गुप्त रसका नाम अग्निकुमार रस है ॥ २२९ ॥ २३१ ॥

भांगके बीज और कज्जली (गन्धक और पारा घुटा हुआ) इनको अदरकके रसमें घोटकर सुखावे फेर इससे दूनी कुरैयाकी छालके काढ़े के संग ४ रत्ती खिलावे खानेको मसूरका रसा, भात, दही देय ; पहले ग्रासमें दो रत्ती औषधी और भी मिला दे पीनेको ठण्डा पानी देय, इस प्रकार औषधी मिला ग्रास दस तक बढ़ावे और फिर एक २ घटाता जाय इससे सब

रसगन्धकयोश्चापि जातीफललवङ्गयोः।
प्रत्येकं शाणमानञ्च श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥ २३६ ॥
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च।
शृङ्गाटकस्य पत्राणां रसैः प्रत्येकशःपलैः ॥ २३७ ॥
चण्डातपेन संशोष्य वटिकां कारयेद्भिषक्।
बिल्वपत्ररसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ २३८ ॥
दध्ना च भोजनीयश्च ग्रहणीरोगनाशनः।
पाण्डुरोगमतीसारं शोथं हन्ति तथा ज्वरम् ॥ २३९ ॥
ग्रहणीकपाटनामायं रसः परमदुर्लभः ॥ २४० ॥

इति द्वितीय ग्रहणीकपाटः।

श्वेतसर्जस्य शुद्धस्य गन्धकस्य रसस्य च।
शुभेऽह्नि पृथगादाय चूर्णं माषचतुष्टयम् ॥ २४१ ॥

प्रकारकी संग्रहणी दूर होजाती है। कोख बहुत कोमल होजाती है। इसका नाम ग्रहणीकपाट रस है ॥ २३२॥२३५॥

पारा, गन्धक, जायफल और लौंग इनको समान लेकर चूर्ण बनावे फिर सूर्य्यमुखीके पत्ते बेलके पत्ते और सिंघाड़े के पत्तोंका एक एक पल रस डालकर घोटे और तेज घाममें सुखाले फिर बेलके पत्तेके रसके संग रोगीको दो रत्ती देय खानेको दही भात देय इससे ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, अतीसार, शोथ और ज्वर दूर होजाते हैं, इस दुर्लभ रसका नाम द्वितीय ग्रहणीकपाट रस है ॥ २३६ ॥ २४० ॥

सफेदराल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा इन सबको अच्छे

एकीकृत्य शिलाखल्ले दद्यात्तेषां तदा रसम् ।
सूर्य्यावर्त्तस्य विल्वस्य शृङ्गाटस्य च पत्रजम् ॥२४२॥
प्रत्येकं पलमेकैकं दापयेद्ग्रहणीगदे ।
दापयित्वा ततो यत्नाद् दधिभक्तं समाचरेत् ॥२४३॥
असम्वृतगुदद्वारं कपाटमिव ढक्कयेत् ।
अतश्च ग्रहणीरोगे कपाटोऽयं रसः स्मृतः ॥ २४४ ॥

इति तृतीय ग्रहणीकपाटोरसः ।

टङ्गणक्षारगन्धाभ्रसं जातीफलं तथा ।
विल्वं खदिरसारञ्च जीरकं श्वेतधूनकम् ॥ २४५ ॥
कपित्थस्तकवीजञ्च तथैव वकपुष्पिका ।
एषां भागं समादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥२४६॥
विल्वं पत्रककार्पासफलं शालिञ्चदुग्धिका ।
शालिञ्चमूलं कुटजत्वचः कञ्चटपत्रकम् ॥ २४७ ॥

दिन चार चार मासे लेकर चूर्ण बनावे, फिर खरलमें डालकर सूर्य्यमुखी, बेल और सिवाड़के पत्तोंका एक एक पल रस डालकर घोटे, रोगीको ग्रहणी रोगमें खिलाकर दही भात खिलावे इसके खानेसे गुदमार्ग इस प्रकार बन्द होजाता है। जैसे किवाड़ लगनेसे घर इस लिये वैद्योंने इसका नाम तृतीय ग्रहणीक पाटरस कहा है ॥ २४१ ॥ २४४ ॥

सुहागा, जवाखार, अभ्रभस्म, जायफल, वेलगिरी, कत्था, जीरा, सफेदराल, कपित्थस्तकके वीज और मौलसिरी इन सबको एक भाग लेकर चूर्ण बनावे बेलगिरी, तेजपात, बिनौलेकी

सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद्दिवसत्रयम् ॥ २४८ ॥
दधिमस्तु ततःपेयं पलमात्रप्रमाणतः ।
अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥ २४९ ॥
आमशूलं ज्वरं कास श्वासं शोथ प्रवाहिकाम् ।
रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्य्यं नैवात्र युक्तितः ॥ २५० ॥
कृष्णावार्त्ताकुमत्स्याश्च दधितक्रञ्च शस्यते ।
ज्ञात्वा वायोः कृतिं यत्र तैलं वारि च दापयेत् ॥२५१

इति चतुर्थ ग्रहणीकपाटोरसः ।

जातीफलं टङ्गणमभ्रकञ्च
धुस्तूरवीजं समभागचूर्णम् ।

गिरी, धानकी जड़, शालिंचकी जड़, कुरैयाकी छाल, कंचटके पत्ते इनका रस डालकर बुद्धिमान वैद्य एक एक रत्तीकी गोली बनाकर तीन दिन तक रोगीको खिलावे और ऊपरसे एक पल दहीका तोड़ पिला दे, जो रोगी सैकड़ों दवा खाकर भी अच्छान हुआ हो उसका ग्रहणी रोग इससे दूर होजाता है। आमशूल, ज्वर, खांसी, सांस, शोथ, प्रवाहिका दूर होजाता है। वैद्य रोगीको कोई ऐसा पथ्य न खिलावे जिससे रुधिर आनेकी शंका हो। खानेको कालेबैंगनका साग, मछली, दही और भात देय ; यदि वायु अधिक हो तो शरीरमें तेल लगावे और उसके अनुसार ही ठण्डा या गर्म पानी दे इसका नाम चतुर्थ ग्रहणीकपाटरस है ॥ २४५ ॥ २५१ ॥

भागद्वयं स्यात् फणिफेणकस्य
गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥ २५२ ॥
चणप्रमाणा वटिका विधेया
मधुप्रयुक्ता ग्रहणीगदेषु ।
रोगेषु दद्यादनुपानभेदै-
र्युक्त्या विदध्यादतिसारवत्सु ॥ २५३ ॥
सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु
पक्केष्वपक्केषु गुदामयेषु ।
पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं
रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥ २५४ ॥

इति पञ्चमग्रहणीकपाटरसः ।

विशुद्धसूतस्य च गन्धकस्य
प्रत्येकशो माषचतुष्टयन्तु ।

जायफल, सुहागा, अभ्रक और धतूरेके बीज ये एक एक भाग और अफीम दो भाग इन सबको गन्धालिकाके पत्तोंके रसमें घोटकर चनेके समान गोली बनाले और शहतमें घोलकर रोगीको देय, इससे ग्रहणी रोग दूर होजाता है और रोगोंमें भी अनुपानके संग देनेसे लाभ होता है। शूलयुक्त आमातीसार, रक्तातीसार, पक्कातीसार और अर्श रोगभी इससे दूर होजाते हैं, खानेको दही और भात देय इसका नाम पञ्चम ग्रहणीकपाटरस है ॥ २५२ ॥ २५४ ॥

शुद्धपारा, ४ मासे और शुद्ध गन्धक ४ मासे इन दोनोंको

निधाय शुद्धे दृढपात्रमध्ये
सुकज्जलीं वैद्यवरः प्रयत्नात् ॥ २५५ ॥
जातीफलं शाल्मलिवेष्टमुस्तं
सटङ्कणं मातिविषं सजीरम्।
प्रत्येकमेषां मरिचस्य भागा-
श्चत्वार एकं विषमाषकञ्च ॥ २५६ ॥
विमर्द्य सर्वं विदधीत पश्चा-
द्भिषग्वरः पक्वरसेन तेषाम्।
आम्ररसा जम्बुमलिते रसाल-
रम्भा च मद्राक्षकं (१) कच्छटी (२) च ॥ २५७ ॥
इन्द्राग्नि (३) रिन्द्राशनकं (४) सजम्बु
जयन्तिकादाडिमकेशराजौ (५)।
अपामार्गोऽपि (६) च भृङ्गराजो
विभाव्य सम्यग्वटिका विधेया ॥ २५८ ॥

निर्मल खरलमें डालकर बुद्धिमान् वैद्य कज्जली बनावे, फिर जायफल, सेमलका गोंद, मोथा, सुहागा, अतीस, जीरा, ये एक एक भाग और विष १ मासा इन सबको चूर्ण बनाकर आम, बांस, गन्धप्रसारणी, जल पीपल, सिनुवार, भांग, काला भंगरा, जामुन, अरणी, अनार, पाढ़ा और भंगरा इनके रसमें भावना देकर बेरकी गुठलीके समान गोली बनावे; इस गोलीको

(१) गन्धप्रसारिण्याम्। (२) पाठा। (३) सिन्धुवार। (४) विजया। (५) शाकविशेषः कृष्णभृङ्गराजः। (६) जलपिप्पली।

कोलास्थिमाना च बहुप्रकारं
सामं निहन्त्यत्र यथाऽनुपानम् ।
कुर्य्यादिशेषादनलावलम्ब'
कासञ्च पञ्चात्मकमम्लपित्तम् ॥ २५९ ॥
इयं निहन्ति ग्रहणीं प्रवृद्धां
अथाप्यजीर्णां ग्रहणीमसाध्याम् ।
चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं
शोथं समग्रं गुदजानसाध्यान् ॥ २६० ॥
आमानुबन्धातिसारमुग्र'
जयेद्भृशं योगशतैरसाध्यम् ।
विवर्जनीयास्त्विह भृष्टमत्स्याः
मत्स्यास्तथापाण्डुरवर्णा एव ॥ २६१ ॥
रम्भाफलं मूलमथो दलञ्च
बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र ।
जातीफलाद्यावटिकाविधेया
यशोऽर्थिनावैद्यवरेणहृद्या ॥ २६२ ॥

उचित अनुमानके संग देनेसे आमातीसार, खांसी, श्वास, अम्ल-पित्त, बढ़ा हुआ असाध्य ग्रहणीरोग, पुरानी ग्रहणी, पेटके दोष, सबप्रकारके शोथ, असाध्य अर्श और घोर आमातीसार दूर होजाते हैं, जो रोगी सैकड़ों औषधियोंसे अच्छा न हुआ हो वह इससे अच्छा जाता है ; जो रोगी इस औषधिको खाय

अनेकसम्भावितमर्त्यलोका-
नानाविधव्याधिपयोधिनौका ॥ २६३ ॥
इति जातीफलाद्या वटिका ।

रसगन्धकलौहानि शङ्खटङ्गणरामठम् ।
शठीतालीशमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम् ॥ २६४ ॥
धातक्यतिविषा शुण्ठी गृहधूमोहरीतकी ।
भल्लातकं तेजपत्रं जातीफललवङ्गकम् ॥ २६५ ॥
त्वगेला वालुकं विल्वं मेथी शक्राशनस्य च ।
रसैः संमद्य वटिका रसवैद्येन कारिता ॥ २६६ ॥
गहनानन्दनाथेन भाषितेयं रसायने ।
ग्रहणीगजेन्द्रसंज्ञेयं श्रीमता लोकरक्षणे ॥ २६७ ॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वरातीसारनाशिनी ।

वह भुनी हुई मछली, पाण्डुवर्णवाली मछली, केलेकी जड़, फल और पत्ते कभी न खाय, यश चाहनेवाला वैद्य इस गोलीको बनावे; इसकी जगतमें अनेक बार परीक्षाकी गई है; यह औषधि अनेक रोगोंको दूर करती है; इसका नाम जातीफलादि बटी है यह वटी रोगसमुद्रकेलिये नाव है ॥२५४॥२६३॥

पारा, गन्धक, लोहा, शङ्ख, सुहागा, हींग, कचूर, तालीस, मोथा, धनियां, जीरा, सेंधा, धायके फूल, अतीस, सोंठ, गृहधूम, हर्र, भिलावा, तेजपात, जायफल, लौंग, तज, इलायची, नालुका, वेलगिरी और मेथी इन सबको समान लेकर भांगके रसमें घोटकर वैद्य गोलीबनावे गहना नन्दने यह गोली रसायन

शूलगुल्माम्लपित्तांश्च कामलाञ्च हलीमकम् ॥२६८॥
बलवर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषी ।
कण्डूं कुष्ठं विसर्पञ्च गुदभ्रंशं क्रिमिं जयेत् ॥२६९॥
माषद्वयां वटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः ।
वयोऽग्निबलमालोच्य युक्त्या वा वृद्धिवर्द्धनम् ॥२७०॥

इति ग्रहणीगजेन्द्रवटिका ।

रसगन्धकयोः कर्षं ग्राह्यमेकं सुशोधितम् ।
ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन साधयेत् ॥२७१॥
जातीफलं तथा कोषं लवङ्गाष्टपलकं ।
एतेषां कर्षमात्रेण तोयेन सह मर्दयेत् ॥२७२॥
मुक्ताशुक्ते पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् ।
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥२७३॥

योगमें लिखी है। इससे अनेक प्रकारके ग्रहणी रोग, ज्वर, अतीसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और क्रिमि रोग दूर होजाते हैं इसके खानेसे बल, वर्ण, अग्नि और आयु बहुत बढ़ते हैं इसकी दो मासेकी गोली होती है। इसके ऊपर बकरीका दूध पीना चाहिये बुद्धिमान वैद्य अग्नि, बल और आयुके समान मात्रा देय, अथवा घटाना बढ़ाना रहे इसका नाम ग्रहणीगजेन्द्र वटिका है ॥ २६९ ॥ २७० ॥

पारा १ कर्ष, गन्धक शुद्ध १ कर्ष इन दोनोंकी कज्जली करके कोमल पाककरे; फिर जायफल, जावित्री, लौंग और

गगनप्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम् ।
ज्वरघ्नं दीपनञ्चैव बलवर्णप्रसादनम् ॥ २७४ ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव प्रवाहिकाम् ।
सूतिकाञ्च जयेदेतदपि वैद्यविवर्जिताम् ॥ २७५ ॥
कासश्वासातिसारघ्नं वाजीकरणमुत्तमम् ।
बालरोगं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ २७६ ॥
पिशाचा दानवा दैत्या बालानां ये विघातकाः ।
सर्वौषधवरस्यास्य ... सीमां त्यजन्ति ते ॥ २७७ ॥
बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणाञ्च विशेषतः ।
महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनिसूदनम् ॥ २७८ ॥

इति महागन्धकम् ।

सोमके पत्तोंका एक एक कर्ष रस निकाल कर इस औषधि को घोटे. फिर सीपमें भरकर पुटपाक विधिसे पकावे, फिर क्रमसे प्रतिदिन रोगीको देय, बालकोंकी रक्षाके लिये यह बहुत उत्तम औषध है; इससे बल, वर्ण और अग्नि बहुत बढ़ती है, ज्वर, दुःसाध्य ग्रहणी रोग, प्रवाहिका, असाध्य प्रसूत, खांसी, अतीसार, और सब उपद्रव सहित बालरोग नष्ट होजाते हैं, यह औषधि वाजीकरण भी है। जहां यह औषधि रक्खी रहती है उसके आसपास बालकोंको दुःख देनेवाले पिशाच, दानव और दैत्य नहीं आते रोगी बालक और रोगी स्त्रियोंको बहुत लाभ दायक है, इस सब रोग नाशक महौषधिका नाम महागन्धक है ॥ २७४॥२७८ ॥

रसस्य भागं संगृह्य काञ्जिकेन तु शोधयेत् ।
चित्रकस्य रसेनापि त्रिफलायाश्च बुद्धिमान् ॥२७९॥
रसार्द्धं गन्धकं शुद्धं भृङ्गराजरसेन वा ।
द्वाभ्यां समूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसंमितैः ॥२८०॥
खल्लयेत्तु शिलाखल्ले क्रमशोवच्यमाणजैः ।
निर्गुण्डीमण्डूकाश्वेताकुचेला ग्रीष्मसुन्दरैः ॥२८१॥
भृङ्गाह्वकेशराजैश्च जयेन्द्राशनकोत्कटैः ।
सर्षपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥२८२॥
सामवातेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे प्लीहोदरेषु च ।
वातश्लेष्मविकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ॥ २८३ ॥
दधिमस्तु विनिःक्षिप्य मर्दयित्वा यथाबलम् ।
पातव्या गुडिकाः सप्त रोगिणा ग्रहणीगदे ॥२८४॥
अम्बुतक्रादिसेवान्तु कुर्वीत स्वेच्छया बहु ।
श्रीमता वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा ॥२८५॥

बुद्धिमान् वैद्य एक भाग गन्धक लेकर, कांजी, चीते और त्रिफले के रसमें शोधे. फिर उससे आधा गन्धक मिलाकर भंगरेके रस में घोटे ; फिर सिनुवार, ब्राह्मी, सफेद अम्बाटोटी, कुचला, छोटा पुक्का (नोंनियां) भंगरा, कालाभंगरा, अरणी, भांग और उत्कट (तेजपात) के रसमें घोटकर सरसोंके समान गोली बनावे ; इससे ग्रहणी, आमवात, मन्दाग्नि, ज्वर, प्लीहोदर, वात कफरोग, दूर होजाते हैं. इसे दहीके तोड़में घोलकर खाय, मट्ठा और पानी

स्वप्रान्ते ब्राह्मणास्येयं भाषिता लिखिता न तु ॥२८६॥
इति श्रीवैद्यनाथवटिका।

पङ्केष्टकाहरिद्राभ्यामागार धूमकेन च।
शोधितं पारदञ्चैव कर्षार्द्धं तुलया धृतम् ॥ २८७ ॥
भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं रससम्मितम्।
द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा भावयेत्तत्तु भेषजैः ॥२८८॥
सिन्धुवारदलरसे मण्डूकपर्णिकारसे तथा।
केशराजरसे चापि गोष्ठमुन्दरजे रसे ॥ २८९ ॥
रसेऽपराजितायाश्च सोमराजीरसे।
रक्तचित्रकपत्रोत्थे रसे च परिभावितम् ॥ २९० ॥
रसमानसमानेन छायायां शोषयेद्भिषक्।
सर्षपाभाश्च गुडिकाः कारयेत् कुशलोभिषक् ॥२९१॥
ततः सप्तवटीर्दद्याद् दधिमस्तुसमाप्लुताः।

इच्छानुसार पिये श्रीमान् वैद्यनाथने सबलोगोंके लिये एक ब्राह्मणको स्वप्नमें बतलाई थी, इसका नाम श्रीवैद्यनाथ वटिका है ॥ २७८ ॥ २८६ ॥

पंकेष्टिका, हलदी, गृहधूम, शुद्धपारा आधा कर्ष, इन सबको भंगरेके रसमें डालकर घोंटे; और पारेके समानही शुद्ध गन्धक भी डाल ले, फिर सिनुवार, ब्राह्मी, कालाभंगरा, छोटा चूका कव्वाटोंटी, सोमराजी और लालचीतेके पत्तों रसमें भावना देय, बुद्धिमान वैद्य एक एक औषधिका रस सब औषधिके समान डाले फिर गोली बनाकर छायामें सुखाले, रोगीको दहीके तोड़में

नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं कोष्ठदुष्टिनिवृत्तये ॥ २८२ ॥
ग्रहणीमतिसारञ्च ज्वरदोषञ्च नाशयेत् ।
अग्निदार्ढ्यकरं श्रेष्ठस्वर्णपर्पटिकाह्वयम् ॥२८३॥

इति स्वर्णपर्पटिकारसः ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
प्रत्येकं कर्षमानन्तु ग्राह्यं रसगुणैषिणा ॥ २८४ ॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा व्योमचूर्णं प्रदापयेत् ।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याश्चित्रकस्य च ॥ २८५ ॥
वास्तुकस्य(?) रकस्याथ जयन्त्याः स्वरसं तथा ।
मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं तथा ब्राह्मीरसस्य च ॥ २८६ ॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् ।
दापयेत्तत्तत्तुल्यञ्च विधिवत् कुशलो भिषक् ॥२८७॥
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ।

घोलकर मातगोलो देय, और खानेको भी दही भात देय, इससे कोष्टविकार, ग्रहणीरोग, अतीसार और ज्वरदोष दूर होजाते हैं । अग्नि भी बहुत बढ़जाती है इसका नाम स्वर्णपटपटिका रस है ॥ २८१ ॥ २८३ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, अभ्रक, ये सब एक एक कर्ष, पारे और गन्धकको कज्जली करके उसमें अभ्रका चूर्ण मिलावे, फिर कालाभंगरा, भंगरा, सिनुवार, चीता, छोटाचुका, अरणी, ब्राह्मी भांग और सफेद कव्वाटोंटीके पत्तोंके रसमें घोटे : घोटते समय बुद्धिमान् वैद्य सब औषधियोंके समान मिर्च मिलाले और सबसे

देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कणसम्भवम् ॥ २९८ ॥
शुभे शिलामये पात्रे घर्षणीयं प्रयत्नतः।
शुष्काशातपसंशुद्धां वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ २९९ ॥
कलायपरिमाणान्तु खादेत्तान्तु प्रयत्नतः।
दृष्ट्वा वयश्चाग्निबलं यथा विध्यनुपानतः ॥ ३०० ॥
हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवं रुजम्।
परं वाजीकरः श्रेष्ठो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ३०१ ॥
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट्।
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यतेऽभ्ररसायणात् ॥ ३०२ ॥
चातुर्थके ज्वरे श्रेष्ठः सूतिकातङ्कनाशनः।
भोजने शयने पाने नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ ३०३ ॥
दधि चावश्यकं भक्ष्यं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ३०४ ॥

इति अभ्रवटिका।

आधा सुहागा मिलावे, फिर उत्तम खरलमें पीसकर उड़दके समान गोली बनाकर घाममें सुखाले, फिर अग्नि बल और रोगके अनुसार अनुपानके संग रोगीको दे, इससे खांसी, श्वास, वात-कफके रोग, ज्वर, अतीसार, चातुर्थकज्वर और प्रसूत रोग दूर होजाते हैं। इस महावाजीकरण औषधिके सेवनसे वर्ण और अग्नि बहुत बढ़ जाते हैं। इस अभ्रकके समान औषधि दूसरी नहीं है इसमें खाने पीने और सोनेका भी कुछ नियम नहीं है। दही अवश्य खाना चाहिये नागार्जुनने इसका नाम अभ्रक वटिका लिखा है ॥ २९४ ॥ ३०४ ॥

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम् ।
कुनटी टङ्गणं क्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥३०५॥
गरलस्य तथा माषचतुष्कञ्चैव चूर्णितम् ।
दृढ़पाषाणपात्रे च भूयोभूयः सुचूर्णितम् ॥ ३०६ ॥
तत्रैवं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ।
देवराजाशनाख्यस्य केशराजाख्यकस्य च ॥ ३०७ ॥
सोमराजस्य भृङ्गाख्यराजस्य श्रीफलस्य च ।
पारिभद्राग्निमन्थस्य वृद्धदारस्य तुम्बरोः ॥ ३०८ ॥
मण्डूकपर्णी निर्गुण्डी पूतिकोन्मत्तकस्य च ।
श्वेतापराजितायाश्च जयन्त्याश्चित्रकस्य च ॥ ३०९ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याटरूषकस्य रसेन तु ।
रसैस्ताम्बूलवल्ल्याश्च पलोत्थैर्भावयेत् पृथक् ॥ ३१० ॥
द्रवे किञ्चित् स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत्
ततश्चैव वटीं कुर्य्यान्मात्रां दद्याद् यथोचिताम् ॥३११॥

अभ्रकको भस्म, तांबेकी भस्म लोहा, गन्धक, पारा, सोनामाखी सुहागा, जवाखार, हर्र, बहेड़ा, आमला, इन सबको एक एक पल ले ; विष ४ मासे इन सबको दृढ़ खरलमें डालकर चूर्ण बनावे, फिर भांग, कालाभंगरा, खैर, भंगरा, बेल, नीम, छोटी अरणी, विधारा, धनिया, ब्राह्मी, सिनुवार, करंजवा, धतूरा, सफेद कव्वाटोटी, अरणी, चीता, छोटाचुवा, रूसा और पान इन सबका एक एक पल रस निकाल कर घोटे ; जब घोटते घोटते

ज्वरे चैवातिसारे च कासे श्वासे क्षये तथा ।
सन्निपातज्वरे चैव विविधे विषमज्वरे ॥ ३१२ ॥
क्षयरोगेषु सर्वेषु हीनशुक्रेच यक्ष्मणि ।
ग्रहण्यां चिरभूतायां सूतिकायां विशेषतः ॥ ३१३ ॥
शोथे शूले तथाऽसाध्ये स्थविरे चामवातके ।
मन्दानलेऽबले चैव सकले श्लेष्मजे गदे ॥ ३१४ ॥
पीनसेऽपीनसे चैव पक्केऽपक्के विशेषतः ।
वातश्लेष्मणि वाते वा विविधे चेन्द्रियस्थिते ॥३१५॥
वातवृद्धौ वृते पित्ते बलासेनावृतेपिच ।
अष्टसूदररोगेषु कण्ठरोगे प्रशस्यते ॥ ३१६ ॥
अजीर्णे कर्णरोगे च कृशे स्थूले च यक्ष्मणि ।
अयं सर्वगदेष्वेव रसोवै परिकीर्त्तितः ।
महाऽभ्रवटिकासेयं परं श्रेष्ठा रसायने ॥ ३१७ ॥

इति महाऽभ्रवटी ।

कुछ कड़ा होय तब एक पल मिर्चका चूर्ण डाले, फिर रोगीको बलके अनुसार इसकी गोली खिलावे तो ज्वर, अतीसार, खांसी, श्वास, सन्निपातज्वर, अनेक प्रकारके विषमज्वर, क्षयरोग, सब प्रकारके राजयक्ष्मा, वीर्य्यनाश, पुरानीग्रहणी, सूतिका रोग, शोथ, शूल, वृद्ध रोगीका असाध्य आमवात, मन्दाग्नि, दुर्बलता, सबप्रकारके कफरोग, पक्कपीनस, अपक्कपीनस, वातकफसे उत्पन्न हुए रोग, इन्द्रियोंमें स्थित अनेक प्रकारके वायु, वातवृद्धि, पित्तयुक्तवात, कफयुक्तवात, उदररोग, कण्ठरोग, कानके

सूतकं गन्धकञ्चाभ्रं तारं लौहं सटङ्कणम् ।
रसाञ्जनं माक्षिकञ्च भागमेकं पृथक् पृथक् ॥३१८॥
लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठा जीरकधान्यकम् ।
समङ्गाऽतिविषा लोध्रं कुटजेन्द्रयवं त्वचम् ॥ ३१९ ॥
जातीफलं विश्वबिल्वं कनकं दाडिमच्छदम् ।
समङ्गा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रससम्मितम् ॥ ३२० ॥
भावयेत् सर्वमेकत्र केशराजरसैः पुनः ।
चणकाभा वटी कार्य्या छागीदुग्धेन पेषिता ॥३२१॥
अनुपानं प्रदातव्यं दग्धबिल्वं समं गुडम् ।
अतीसारं ज्वरं तीव्रं रक्ताऽतीसारमुल्बणम् ॥ ३२२ ॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति शोथं दुर्नामकं तथा ।

रोग आदि सब रोग दूर होजाता है मोटारोगी पतला और पतला रोगी मोटा होजाता है इस रसायन औषधि का नाम महाभ्रक बटी है ॥ ३०५ ॥ ३१७ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, चांदी, लोहा, सुहागा, रसौत, सोना माखी, ये सब एक एक भाग, लौंग, चन्दन, मोथा, पाढ़ा, जीरा, धनियां, मजीठ, अतीस, लोध, कुरैयाकीछाल, इन्द्रजौ, तज, जायफल, सोंठ, बेल, धतूरा, अनारका बकला, मजीठ, धायके फूल और कूट ये भी एक एक भाग इन सबको पीस कर कालेभंगरेके रसमें भिगोदे ; फिर सूखने पर बकरीके दूधमें पीसकर चनेके समान गोली बनावे, रोगीको भुना, हुआ बेल और उसके समान गुड़में मिलाकर एक गोली दे ; इससे अतीसार, तेजज्वर, बढ़ा हुआ रक्तातीसार, पुराना ग्रहणीरोग,

आमशूलविबन्धघ्नः संग्रहग्रहणीहरः ॥ ३२३ ॥
पिच्छामदोषं विविधं पिपासादाहरोगकम्।
हृल्लासारोचकच्छर्दिगुदभ्रंशं सुदारुणम् ॥ ३२४ ॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्।
कृष्णारुणञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम् ॥ ३२५ ॥
प्लीहगुल्मोदरानाहसूतिकारोगसङ्करम्।
असृग्दरं निहन्त्येव बन्ध्यानां गर्भदः परम् ॥ ३२६ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहानपि विंशतिम्।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु मासार्द्धनात्र संशयः ॥३२७॥
पीयूषवल्ली वटिका अश्विभ्यां निर्मिता पुरा।
काश्यपाय ददावश्विभ्यां ततः प्रापप्रजापतिः ॥ ३२८ ॥
धन्वन्तरिस्ततः प्राप देवतानां पतिस्ततः।
परम्पराप्राप्त एष रसस्त्रैलोक्यदुर्लभः ॥ ३२९ ॥

इति पीयूषवल्लीरसः।

शोथ, अर्श, आमशूल, विबंध, अनेक प्रकारके आमदोष, प्यास, दाह, हल्लास, अरोचक, वमन, भयानक गुदभ्रंश, पक्वातीसार, अनेकवर्ण और अनेक पीड़ायुक्त आमातीसार, काला, लाल और मांसके धोये हुए पानीके समान रंगवाला अतीसार, प्लीह, गुल्म, उदररोग, आनाह, सूतिका रोग, रक्तरोग, कामला, पाण्डुरोग और बीसोंप्रकारके प्रमेह, इससे पंद्रहही दिनमें जाते रहते हैं। इसके खानेसे बन्ध्याके पुत्र होता है, यह गोली दक्षप्रजापतिने अश्विनीकुमारोंको उन्होंने इन्द्रको आर

श्रीविन्ध्यवासिपादान् नत्वा धन्वन्तरिञ्च सुरभिषजम्।
रसगन्धकपर्पटिकापरिपाटीपाटवं वच्ये ॥ ३३० ॥
मग्नं रसे जयन्त्याः पश्चादेरण्डसम्भूते ।
चार्द्रकरसे च सूतं पद्मरसे काकमाच्याश्च ॥ ३३१ ॥
मग्नमुदितानुपूर्वा(१)मर्दनशुष्कं(२)कारणं गृह्णीयात् ।
प्रस्तरभाजनमध्ये शुद्धिरियं पारदस्योक्ता ॥ ३३२ ॥
शुकपुच्छसमच्छायोनवनीतसमद्युतिः (३) ।
मसृणः कठिनः स्निग्धः श्रेष्ठोगन्धक दृष्यते ॥ ३३३ ॥
कृत्वाभद्रं गन्धकमतिकुशलः चुद्रतण्डुलाकारम् ।
तद्भृङ्गराजरसैरनन्तरं भावयेत्पात्रे ॥ ३३४ ॥

इन्द्रने धन्वन्तरिको बतलाई थी. इसी प्रकारसे यह परम दुर्लभ रस जगतमें प्रसिद्ध होगया इसका नाम पियूषवल्ली है ॥ ३१८ ॥ ३२९ ॥

हम विंध्यवासिनी और देवतोंके वैद्य धन्वन्तरिके चरणाविन्दों को प्रणाम करके गन्धकपर्पटी नाम रसकी विधि लिखते हैं पहले पारेको अरणीके रसमें फिर अरण्डके रसमें, फिर अदरकके रसमें और फिर मकोई के रसमें भिगोकर घोटे ; जब घोटते २ सूखजाय, तब जानिके पारा शुद्ध होगया, तब तोतेकी पूंछके समान हरा, मक्खनके समान चिकना, और कड़ा गन्धक लेकर चावलोंके समान टुकड़े करे, फिर भंगरेके रसमें भिगोकर सात

(१) क्रमेण। (२) घर्षणशुष्कं न तु घर्मादौ।
(३) अतिचिक्कणम्।

तदनु च शुष्कं कुर्य्याद्धूलिसरलश्च सप्तधा रौद्रे।
तदनु च शुष्कं चूर्णं कृत्वा विन्यस्य लौहिकामध्ये ३३५
निर्धूमं वदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम्।
पात्रस्थितभृङ्गराजरसमध्ये ढालयेन्निपुणः॥ ३३६॥
तस्मिन् प्रविष्टमात्रं कठिनत्वं याति गन्धकचूर्णम्।
पुनरपि रौद्रे शुष्कं केतकरजसा समानतां नीतम् ३३७
शुद्धे सूते शोधितगन्धकचूर्णेन तुल्यता कार्य्या।
तावन्मर्द्दनमनयोर्यावन्नकणोऽपि दृश्यते सूते॥३३८॥
पश्चात् कज्जलसदृशं चूर्णं लौहीस्थितं यत्नेन।
निर्धूमवदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम्॥३३९॥
सद्योगोमयनिहिते कदलदले ढालयेन्मृदुनि।
लौहे स्थितमवशिष्टं कठिनं तन्न गृहीतव्यम्॥३४०॥

बार घाममें सुखाले, अनन्तर सूखने पर लोहे के वर्त्तनमें घोट-कर चूर्ण बनाले, पश्चात् बेरीके कोयलों पर लोहेके बर्त्तनमें गन्धकके समान तेल डालकर गन्धक डालदे, जब वह गलजाय, तब भंगरेके रसमें बुझादे, फिर कड़ा होने पर पीस कर पहले लिखा पारा इसके समान मिलाकर ऐसा पीसे कि पारेका कनका भी न दीखे, फिर लिपी हुई पृथ्वीमें केलेका पत्ता बिछाकर उसके ऊपर गोबरका मण्डल बनावे, और बेरीके कोयलों पर लोहेका बर्त्तन चढ़ाकर गन्धक और पारेके चूर्णके समान तेल डाले, और इसीमें वह चूर्ण भी डालदे, जब गल जाय, तब बहुत शीघ्रतासे उस गोबरके मण्डलमें जो केलेके पत्ते पर बनाया है, उसमें छोड़

पश्चात् पर्पटिरूपा पर्पटिका कीर्त्त्यते लोकैः ।
मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं यत्र तु दृश्यते ॥ ३४१ ॥
तत्र सिद्धिं विजानीयाद्वैद्यो नैवात्र संशयः ।
समुदितमात्रे (१) भरणावदनीया पर्पटी मनुजैः॥ ३४२
जीरकगुञ्जे हिङ्गोरद्वे स्वादेच्च वातजे जठरे ।
जीरकहिङ्गोरशनेत्वनुपानं सलिलधारया कार्य्यम् ३४३
रसगन्धकपर्पटिका भक्षणमात्रे तु नाम्भसः पानम् ।
प्रथमं गुञ्जायुगलं प्रतिदिनमेकैकवृद्धितो भक्ष्यम् ॥ ३४४
दशगुञ्जापरिमाणान्नाधिकमदनीयमेकविंशतिदिनानि ।
वातातपकोपमनश्चिन्तनमाहारसमतवैषम्यम् ॥ ३४५ ॥
व्यायामश्चायासं स्नानं व्याख्यानमहितमत्यन्तम् ।

दे, छोड़ते २ जो कड़ाही में लगा रहजाय उसे फेंकदे. यदि वह रस मोरके पंखकी चन्द्रिकाओंके समान सुन्दर हो तो वैद्य जानले कि यह रस सिद्ध होगया, फिर इस रसको वायुसे उत्पन्न हुए रोगोंमें भरणी नक्षत्र में, जीरा दोरत्ती और एक रत्ती हींग में मिलाकर दे, हींग और जीरेके पीछे रोगीके ऊपर थोड़ा जल छोड़े रस गन्धक पर्पटी खानेके पीछे पानी न पिलावे, यह रस पहले दिन दोरत्ती देय और क्रमसे दशरत्ती तक बढ़ाता जाय, इस प्रकार इक्कीस दिन तक खिलावे. रोगी अधिक वायु, घाम, क्रोध. मनकी चिन्ता, बिपरीत भोजन, व्यायाम, परिश्रम, न्हाना, और अधिक बोलना छोड़दे, जब यह रस पचजाय. तब

(१) भरण्याम् ।

शाकै स्तोकं सर्पिर्जीरकधन्याकवेशवारैश्च ॥ ३४६ ॥
सिन्धूत्थेन स्न्धनमोदनधान्यानि शालयोभक्ष्याः।
कृष्णां वा तिङ्गणफलं अविहकणां वास्तुकम् ॥३४७॥
अक्षतमुद्गः सहितः फलदलसहितं पटोलञ्च।
क्रमुकफलशृङ्गवेरौ भक्ष्यौ शाकेषु काकमाची च ॥३४८
लावकवर्त्तकतित्तिरि मयूरमांसञ्च हिततरं भवति।
मद्गुरगोहितमीनावदनीयौ कृष्णमत्स्याश्च ॥ ३४९ ॥
नीरक्षीरं खञ्जनमदनीयं पक्ककदलञ्च।
रम्भाफलदलवल्कलमूलानां वर्जनं कार्य्यम् ॥३५०॥
तिक्तानिम्बादिकमपि नाद्यं नोष्णं तथान्नञ्च।
आनूपमांसजलचरपतत्रिपललञ्च सर्वथा त्याज्यम् ३५१
स्त्रीणां सम्भाषणमपि गडकश्च कृष्णमत्स्यं च।
नाम्लं न दधिशाकं पथ्या भक्षणा भक्ष्यम् ॥३५२॥

घी, जीरा और धनियां में पकी वेशवार * और सेन्धानमक आदि मिले और अन्न, भात देय, अथवा कालातिङ्गण फल, भंगरा, बथुवा, मूंग, और पत्ते सहित परवर, क्रमुक (सुपारी) अदरक, मकोय, लवा, वत्तक, तीतर इनके मांस का जल खानेको देय; मदगुर और रोहू या कालीमछली दे, पानी और दूधमें पकेअन्न पकाकेला खिलावे, केलेका बकला, पत्ता, जड़, नीम आदि तीतीवस्तु, गर्मअन्न, आनूप और जलमें उत्पन्न हुए जन्तुओंका मांस, स्त्रियोंसे वार्तालाप, गड़-

* लौंग, जीरा, मिर्च, इलायची आदि मसालों से मिली मासकी पिट्ठी।

गुडखण्डशर्करादिक इक्षुविकारोनभक्ष्य इक्षुश्च।
न दलं न फलं न लताप्यदनीया कारवेल्लस्य ॥३५३॥
स्तोकं घृतमिह भक्ष्यं पथ्ये साकाङ्क्षमुत्थानम्।
क्षुत्पीडायां भोजनमवश्यं कार्य्यं महानिशायाञ्च॥३५४॥
सजलमिश्रं पक्वं क्षीरं यद्वाऽधिकजलपक्वञ्च।
कथमपि भोजनसमयातिक्रमजाते ज्वरे विरेके च॥३५५
वमने च नारिकेलजलमिलितं दुग्धञ्च पातव्यम्।
स्वप्नजाते रमिते(१)विरेकतः क्षीरमेव पातव्यम् ॥३५६॥
नज्ञायते बुभुक्षा लक्ष्या प्रतीयते यदि वा।
अशान्तिभ्रान्तिभ्रान्तिमस्तकशूलाद्यैर्नूनमवधार्य्या ॥३५७॥
किम्बक्षुवाच्यं रोगी यदा यदा भवति साकाङ्क्षः।
पाययितव्यं दुग्धं तदा तदा निर्भयीभूयः ॥ ३५८ ॥

नामक कालीमकली, खटाई, दही, साग, गुड़, खांड़, शक्कर आदि मिठाई, ऊख, करेलेके फल, पत्ते, लता न खाय, पथ्यके संग भूख लगनेसे थोड़ा२ घी खाय, भूख लगनेसे कुछ भोजन अवश्य करे और रातको भी कुछ अवश्य खाय, एक भाग दूध और एक भाग पानी अथवा दूधसे पानी कुछ अधिक डालकर पकाकर पिये ; यदि भोजनका समय बीत जाय, ज्वर आजाय, दस्त आने लगे, या वमन होने लगे तो दूधमें नारियलका पानी मिलाकर पिलावे, यदि स्वप्नमें मैथुन होनेके कारण वमन हो जाय तो दूध पिलावे, यदि रोगीको भूख न जानपड़े तो

(१) स्वप्नजातरमणमन्यावरेत।

विहिताकरणे चास्यामपिहितकरणे च रोगखिन्नानाम् ।
व्यापत्तयोऽपि बहुधा दृष्टाः प्रमाणिकैर्बहुशः ॥३५९॥
तस्मादवधातव्यं भवितव्यं भोजने निपुणैः ।
एवमियं क्रियमाणा भवति श्रेयस्करी नियतम् ॥३६०॥
अर्शोरोगं ग्रहणीं सामां शूलातिसारौ च ।
कामलपाण्डुव्याधिं प्लीहानञ्चातिदारुणं हन्ति ॥३६१॥
गुल्मजलोदरभस्मकरोगं हन्यामवातांश्च ।
अष्टादशैवकुष्ठान्यपि शोथादिरोगांश्च ॥ ३६२ ॥
इयमम्लपित्तशमनी त्रिदोषदमनी सुधातिकमनीया ।
अग्निं निमग्नमुदरे ज्वालाजटिलं करोत्याशु ॥३६३॥
रसगन्धकपर्पटिकात्वपरास्ये व्याधिसंघातम् ।

दुर्बलता, कुनकुनी और शिरकी पीड़ा आदि से जान ले कि भूख लगी है । अधिक कहांतक कहैं रोगीको जब जब इच्छा हो तब तब निर्भय होकर दूध पिलावे, यदि रोगीको सब इन्द्री व्याकुल हों और पेट आमसे भरा हो तो इस रसको देय। प्रायः अनेक रोग केवल अपथ्यहीसे उत्पन्न होते देखे हैं इस लिये वैद्य सावधान होकर रोगीको पथ्य दे, इस प्रकार यह रस खानेसे अवश्यही कल्याण होता है। आमग्रहणी, ग्रहणी, शूल, अतीसार, कामला, पाण्डु, प्लीहा, भयानकगुल्म, उदररोग, भस्मक,, आमवात, अठारहों प्रकारके कुष्ट, सब प्रकारके शोथ और त्रिदोष,नाश होजाते हैं । रोगीको भूख बहुत लगती है, पेटकी अग्नि ज्वालाके समान बढ़ जाती है ; इससे असाध्य रोग भी

वलिपलितशून्यं पुरुषं दीर्घायुषं कुरुते ॥ ३६४ ॥
व्याधिप्रभावहरणाद्दपमृत्युविनाशकरणाच्च ।
मर्त्यानाममृतघटी रसगन्धकपर्पटी जयति ॥ ३६५ ॥
शम्भुं प्रणम्य भक्त्या पूजां कृत्वा च विष्णुचरणाञ्ज ।
रसगन्धकपर्पटिका भक्ष्या तेनेतिमिष्टिदा भवति॥३६६॥
नृणां सरुजां ध्रुवमियमारोग्यं सततशीलिता(१)कुरुते ।
श्रीवत्साङ्कविनिर्मितमस्त्यग्रसपर्पटी श्रेष्ठा ॥ ३६७ ॥
उत्तममेव हि कर्त्तव्यं सानुरागतया तथा ।
श्रीभैरवक्रियेयैवात कर्तव्या चोत्तरक्रिया ॥ ३६८ ॥
प्रत्यवायविनाशार्थं क्षेत्रपाल बलिन्यसेत् ।
कृतमङ्गलकः प्रातर्योगिनीनामतः परम् ॥ ३६९ ॥

दूर होजाते हैं, रोगीको खाल नहीं सिकुड़ती, बाल नहीं होता, अवस्था बहुत बढ़जाती है, यह रस सब रोगोंको दूर करता है, और अकालमृत्यु भी इससे दूर होजाती है, जब रोगी इसे खाय तब पहले शिव और विष्णुको प्रणाम कर ले, यदि रोगी इसको उत्तम रीतिसे नित्य खाय तो अवश्यही रोगसे छूट जायगा ; इस औषधिको विष्णुने बनाया है। इस लिये वैद्य इसको अनुरागके सहित उत्तमतासे बनावे ; वैद्य इसकी क्रिया बहुत सावधानतासे करें विघ्ननाश होनेके लिये मूलमें लिखा मन्त्र पढ़कर भैरव और योगिनीको बलि देय ।

(१) सेविता ।

भक्षणपूर्वबलिदानमन्त्रः।

ओं क्षं क्षेत्रपालायनमः क्षेत्रपालस्य सामान्य बलिमन्त्रः। ओं ह्रीं ह्रूं दिव्याभ्योयोगिनीभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रीभ्यो भूतेभ्यः शालिकीभ्यो योगिनीभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रीभ्यो भूतेभ्यः शालिकीभ्यो नमोनमोह्रीं सामान्यं योगिनीनां बलिः। ओं गन्धकमहाकालाय स्वाहा। ओं ब्रह्मकोषिणि रक्ष रक्ष स्वाहा। विशेषबलिः। अत्र पारदस्य नैसर्गिकदोषत्रयशोधनञ्चावश्यकं कार्य्यम् ॥ ३७० ॥

यदुक्तम्।

मलशिखिविषनामानोरसस्य नैसर्गिका दोषाः।
मूर्च्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विषेण हिक्काञ्च।
गृहकन्या हरति मलं त्रिफला वह्निं चित्रकश्च विषम्।
तस्मादेभिर्वारान् संमूर्च्छयेत् सप्त सप्तेव इति॥
गृहकन्या घृतकुमारी तस्या दलरसेन खल्लनम्।
त्रिफलायाश्चूर्णेन खल्लनं चित्रकस्य पत्ररसे नमूर्च्छनम्॥

पारेको संक्षेपसे शुद्ध करनेकी यह विधि है इसमें साधारण रीतिसे मल, अग्नि और विषनामक तीन दोष रहते हैं इसी लिये यदि अशुद्ध पारा रोगी खाय तो मलसे मूर्च्छा, अग्निसे जलन और विषसे हिचकी आने लगती हैं।

अतएव बुद्धिमान् वैद्य इसे शुद्ध कर ले, घीकुआरके रसमें घोटनेसे पारेका विष दूर होजाता है त्रिफलेसे अग्नि और

तदेव नैसर्गिकदोषापहारानन्तरं जयन्त्यादिद्रव्यचतुष्टयरसेन मूर्च्छनमधिगन्तव्यम् ॥ ३७१ ॥

इति रसपर्पटी ।

समौ रसगन्धौ कृत्वा कज्वली कृत्य यत्नतः ।
शुद्धलौहस्य चूर्णन्तु रसतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ३७२ ॥
एकीकृत्य ततोयत्नाल् लौहपात्रे प्रमर्द्दितम् ।
घृतप्रलिप्तदर्व्यास्तु स्वेदयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ३७३ ॥
द्रवीभूतं समाहृत्य ढालयेत् कदलीदले ।
चूर्णीकृत्य सुखार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥ ३७४ ॥
घोटनेसे मल, त्रिफलेमें घोटनेसे अग्नि और चीतेमें घोटनेसे
शीतोदकानुपानं वा क्वाथं वा धान्यजीरयोः ।

चीतेसे बिष दूर होजाते हैं इसलिये वैद्य सात सात बार इनमें घोटे, इनमें से घीकुआरके पट्ठे का रस, त्रिफलेका चूर्ण और चीतेके पत्तेका रस लिया जाता है इन्हीं तीनों ओषधियोंमें घोटनेसे पारेके तीनों दोष दूर होजाते हैं, फिर अरणी आदि चार ओषधियोंके रसमें घोटकर पारेको मुर्च्छित करे। इसका नाम अमृत पर्पटी और रसगन्धक पर्पटी रस है ॥३३०—३७१॥

पारा और गन्धक समान लेकर दोनोंकी कज्जली बनावे फिर शुद्ध लोहचूर्ण डालकर लोहेकी कड़ाहीमें घोटे और चूल्हे पर चढ़ाकर धीरे २ नीचे आग जलावे और घी लगी लोहेकी करछीसे चलाता रहै; जब गल जाय तब पहले लिखी रीतिके अनुसार केलेके पत्ते पर ढाल दे. जब ठण्डा होजाय

लौहेन पर्पटी ह्येषा भक्ष्या लोकस्य सिद्धिदा ॥३७५॥
रक्तिकैकां समारभ्य वर्द्धयेद्रक्तिकां क्रमात् ।
सप्ताहं वा द्वयं वापि यावदारोग्यदर्शनम् ॥ ३७६ ॥
सूतिकाञ्च ज्वरञ्चैव ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।
आमशूलातिसारांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥३७७॥
प्लीहानमग्निमान्द्यञ्च भस्मकञ्च तथैव च ।
आमवातमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ ३७८ ॥
एवमादींस्तथा रोगान् गराणि विविधानि च ।
हन्त्यनेन प्रयोगेन वपुष्मान् निर्मलः सुखी ॥ ३७९ ॥
जीवेद्वर्षशतं पूर्णं वलीपलितवर्जितः ।
भोजनं रक्तशालीनां त्यक्त्वा शाकं विदाहि च ॥३८०॥
वातमातपक्लेशञ्च चिन्तनं मैथुनं तथा ।
प्रातरुत्थाय संसेव्या विधिनायुःप्रवर्द्धिनी ॥ ३८१ ॥

इति लौहपर्पटी ।

सब पीस कर रख ले, फिर रोगीको ठण्डे जल या धनियां और जीरेके काढ़ेके संग दे, और रोगीको पथ्य भोजन करावे, इसे एकरत्तीसे खाना आरम्भ करे और सात या चौदह दिन तक अथवा जब तक रोग दूर न हो तब तक एक२ रत्ती बढ़ाता जाय इससे प्रसूत, ज्वर, कष्टसाध्य ग्रहणी, आमशूल, अतीसार, पांडुरोग, कामला, प्लीहा, मन्दाग्नि, भस्मक, आमवात, उदावर्त्त, अठारहों प्रकारके कुष्ट आदि सब रोग तथा अनेक प्रकारके विष नष्ट होजाते हैं इस औषधिसे रोगी बल-

रसोत्तमं पलं शुद्धं हेमतोलकसंयुतम् ।
शिलायां मर्दयेत्तावद्यावदेकत्वमागतम् ॥३८२ ॥
सुगन्धकं पलञ्चैकमयःपात्रे ततोदृढे ।
मर्दयेद् दृढपाणिभ्यां यावत् कज्जलतां व्रजेत् ॥३८३॥
ततः पाकविधानज्ञः पर्पटीं कारयेत् सुधीः ।
रक्तिकादिक्रमेणैव योजयेदनुपानतः ॥ ३८४ ॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति यक्ष्माणञ्च विशेषतः ।
शूलमष्टविधं हन्ति वृष्या सर्वरुजापहा ॥ ३८५ ॥
अत हेम्नोऽष्टमागिकत्वमुपलक्षणमिति प्रमाणिकाः ३८६

इति स्वर्णपर्पटी ।

वान्, निर्मल और सुखी होकर पूरे सौ वर्ष तक जीता है, खाल नहीं सिकुड़ती और बाल सफेद नहीं होते; इसमें खाने को लालधानके चावल दे; पोईसाग, दाह करनेवाली कोई वस्तु, अधिक वा वायुबढ़ानेवाली वस्तु न खाय इस औषधिको रोगी प्रातः काल उठकर विधिके अनुसार खाय। रोगी अधिक वायु, घाम, क्रोध, चिन्ता और मैथुन त्यागदे, इसका नाम लोहपर्पटी रस है ॥ ३७२—३८१ ॥

शुद्धपारा एकपल, शुद्धसोना एकतोला, इन दोनोंको ऐसा घोटे कि एक हो जाय, फिर एकपल शुद्धगन्धक डालकर बलसे घोटकर कज्जली बनाले; फिर बुद्धिमान् वैद्य पहले लिखी विधिसे इसे भी पकावे और अनुपानके सहित रोगीको एकरत्ती से देना आरम्भ करे; इससे अनेक प्रकारकी ग्रहणी, विशेष कर राजयक्ष्मा और आठों प्रकारके शूल आदि सब रोग दूर हो

अष्टौ गन्धकतोलका रसदलं(१) लौहं तदर्द्धं(२) शुभम्
लौहार्द्धस्य वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तदर्द्धार्द्धिकम्।
पात्रे लौहमये च मर्द्दनविधौ चूर्णीकृतस्त्वेकत:
दर्व्या वादरवह्निनातिमृदुना पाकं विदित्वा दले ३८७
रम्भाया लघु ढालयेत् पटुरियं पञ्चामृता पर्पटी
ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धित:।
लौहे मर्द्दनयोगत: सुविमलं भक्तक्रिया लौहव
द्गुञ्जाष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत् ॥३८८
नानाभ्रकामदाहमहाग्रहणी(?)मुद्रगे दुष्टदुर्नामकादौ।
... र्ग्रातिसार(४)ज्वरभरकलिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि३८८

जाते हैं रोगीका वीर्य्य बहुत बढ़ जाता है, वैद्य कहते हैं कि इसमें पारेसे आठवां भाग सोना डालना केवल उपलक्षणही है अर्थात् समान सोना डाले, इसका नाम स्वर्णपर्पटी रस है॥ ३८२—३८६॥

गन्धक आठतोले, पारा ४ तोले, लोहा दो तोले, अभ्रक एकतोला, तांवा आधातोला इन सबको लोहेके पात्रमें डालकर पीसते२ चूर्णकर डाले, फिर लोहेकी कड़ाहीमें चढ़ाकर वेरके काठकी मन्द अग्नि दे और करछीसे चलाता रहै, जब गलजाय तब उतार कर पहले कही रीतिके अनुसार केलेके पत्ते पर ढाल दे और रोगीको प्रतिदिन दो रत्तीसे आरम्भ करके आठरत्ती तक अथवा २१ दिन तक या सात दिन तक खिलावे ; यह रस लोहेकी कड़ाहीमें घोटा जाता है, इस लिये इसके खानेकी

(१) गन्धकार्द्धमित्यर्थ: । (२) रसार्द्धम: । (३) वदरकाष्ठाग्निना । (४) कोष्ठं इत्यर्थ: ।

हृष्याणां हृष्यराज्ञी वलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री ।
तुन्दं दीप्तस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहंकरोति३६०

इति पञ्चामृतापर्पटी ।

गन्धकं चूर्णितं (१) कृत्वा भाव्यं भृङ्गरसेन तु ।
सप्तधा वा त्रिधा वापि पश्चाच्छुष्कं विचूर्णयेत् ॥३६१॥
चूर्णयित्वाऽऽयसे पात्रे कृत्वा वह्निगतं सुधीः ।
द्रुतं भृङ्गरसे क्षिप्तं तत उद्धृत्य शोषयेत् ॥ ३६२ ॥
तच्च गन्धं पलञ्चैकं गन्धार्द्धं शुद्धपारदम् ।
सूतार्द्धं भस्मरौप्यञ्च तदर्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥ ३६३ ॥

विधि भी लोहके समान जानो ; इससे अनेक रंगवाली ग्रहणी, अरुचि, बिगड़ा हुआ अग्नि, वमन, पुराना अतीसार, घोरज्वर, रक्तपित्त, क्षय, और मन्दाग्निरोग दूर हो जाते हैं, यह औषध सब वीर्य बढ़ानेवाली औषधियोंमें श्रेष्ठ है, रोगोके बाल सफेद नहीं होते, खाल नहीं सिकुड़ती और नेत्रमें भी कोई रोग नहीं होता इस रसके खानेसे रोगीका शरीर नया हो जाता है, इसका नाम पंचामृतपर्पटी रस है ॥ ३८६—३६० ॥

गन्धकके छोटे२ टुकड़े करके, भंगरेके रसमें भिगो दे, इस प्रकार सात वा तीन भावना देकर लोहेके बर्त्तनमें पीस ले, फिर बुद्धिमान् वैद्य उसे लोहेके बर्त्तनमें रखकर गलाकर भंगरेके रसमें बुझा दे, फिर यह गन्धक एकपल, इससे आधा शुद्धपारा, पारेसे आधी चांदीकी भस्म और उससे आधी

(१) कणशः ।

तदर्द्धं मृतवैक्रान्तं मौक्तिकञ्च विनि:क्षिपेत् ।
एकीकृत्य तत: सर्व्वं कुर्य्यात् पर्पटिकां शुभाम् ॥३८४॥
लौहपात्रे समरसं मर्दितं कज्जलीकृतम् ।
वदराङ्गारवह्निस्थे लौहपात्रे द्रवीकृते ॥ ३८५ ॥
मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं वा यदि दृश्यते ।
आद्ययोर्दृश्यते सूत: खरपाके न दृश्यते ॥ ३८६ ॥
मृदौ नसम्यगभङ्ग: स्यान्मध्यभङ्गश्च रूप्यवत् ।
खरे लघु भवेद्भङ्गोरुक्तसूक्ष्मोऽरुणाच्छवि: ॥ ३८७ ॥
मृदुमध्यौ तथा ग्राह्यौ खरस्त्याज्योविषोपम: ।
जराव्याधिगतार्क्कोर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हर: ॥३८८॥
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणोऽमृतम् ।
आदौ शङ्करमभ्यर्च्य द्विजातीन् प्रणिपत्य च ॥३८९॥

सोनेकी भस्म और सोनेकी भस्मसे आधी विक्रान्तमणि और मोतीकी भस्म, फिर इन सबको पीसकर एक कर ले और पहले कही रीतिसे बेरके कोयलों पर लोहेका बर्त्तन चढ़ाकर गलाले ; जब मोरके पंखकी चंद्रिकाके समान दीखने लगे तब जाने कि सिद्ध होगया, मन्द और मध्य आंचमें पारा रहता है और तेज आंच होनेसे पारा नहीं रहता, अत्यन्त कोमल आंच में औषधि गलती नहीं, मध्य आंचमें चांदीके समान भंग (ताव) होजाता है, तेज आंचमें औषधि हलकी, लाल, रुखी और सूक्ष्म होजाती है ; कोमल और मध्यम आंच अच्छी है और तेजमें पकी पर्पटी विषके समान फेंक देनी चाहिये ; सब जगतको

प्रभाते भक्षयेदेनां प्रायत्तिद्वयसम्मिताम्।
रत्तिकादिक्रमादूर्ध्वभिर्भक्ष्या नैव दशोपरि ॥ ४०० ॥
आरोग्यदर्शनं यावत्तावत्ह्रासस्ततः परम्।
अजीर्णे भोजनं नैव पथ्यकाले व्यतिक्रमे ॥ ४०१ ॥
घृतसैन्धवधन्याकहिङ्गुजीरकनागरैः।
शस्यते व्यञ्जनं सिद्धं पित्ते स्वाद्वम्लमाक्षिकम् ॥४०२॥
कृष्णमत्स्येन मुद्गेन मांसेन जाङ्गलेन च।
जाङ्गलेषु शशच्छागौ मत्स्यौ रोहितमद्गुरौ ॥४०३॥
पटोलफलपत्रञ्च कृष्णाशाकङ्कुजालिका।
सुस्विन्नपुगैम्लाम्बु[illegible]नभि(१) कर्पूरसंयुतैः ॥ ४०४ ॥

रोगोंसे व्याकुल देखकर शिवने अमृतके समान इस औषधिको बनाया था। रोगी जब इसे खाय तब शिव और ब्राह्मणोंको दण्डवत् कर ले; इसे दो रत्तीसे आरम्भ करे और दशरत्ती तक एक २ रत्ती बढ़ाता जाय, परन्तु दशरत्तीसे अधिक न खाय, जब तक रोग दूर न होजाय तब तक खाय फिर दशरत्तीसे एक एक रत्ती घटाता जाय, अजीर्णमें भोजन न करे और खानेके समयको न बितावे, यदि समय बीतजाय तो घी, सेन्धा, धनिया, हींग, जीरा और सोंठ पड़ा हुआ भोजन करे यदि पित्त अधिक होतो मीठा, खट्टा और शहत खाय, भोजन कालो मछली और मूंगकी दालके संग खाय, जङ्गली जतुओंमें खरहा और ग्राम्यमें बकरा मछलीयोंमें रोहू और मदगुर पथ्य हैं, परवरके पत्ते,

(१) [illegible]

क्षुधाकाले व्यतिक्रान्ते यदि वायुः प्रकुप्यति।
झिञ्झिनीति शिरःशूले विरेके वमथौ तथा ॥४०५॥
तृष्णायाञ्चाधिके पित्ते नारिकेलाम्बु निर्भयम्।
नारिकेलपयः पेयं हिमंच्चं क्षीरमेव च॥ ४०६ ॥
स्वप्न शुक्रच्युतौ चैव चम्पकं कदलीफलम्।
वर्ज्यं निम्बादिकं शाकं पाकाम्लं(१)काञ्जिकं सुराम्४०७
कदलीफलपत्राम्बिवपुषालाबुकर्कटी।
कुष्माण्डं कारवेल्लञ्च व्यायामं जागरं निशि ॥४०८॥
न पश्येन्नस्पृशेद्गच्छेत् स्त्रियं जीवितुमिच्छति।
यद्यौषधे स्त्रियं गच्छेत् कर्त्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥४०९॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम्।
आमशूलमतीसारं सामञ्चैव सुदारुणम् ॥ ४१० ॥

फल, काला बैंगन और तोरई पथ्य हैं, खानेके पीछे सुपारी, पान और कपूर खाय, यदि भूखका समय बीतनेसे वायु बढ़जाय, हाथमें शरीरमें झिञ्झिनी होने लगे, शिरमें पीड़ा होय, दस्त होय, प्यास अधिक हो, वमन हो, या पित्त बहुत बढ़जाय तो वैद्य निर्भय होकर नरियलका पानी पिलावे। यदि स्वप्नमें वीर्य गिर जाय तो चंपाकेलेका फल खिलावे, नीम आदि साग, पाकमें खट्टी वस्तु, कांजी, मद्य, केलेके फल, पत्ते, जड़, खीरा, ककड़ी, लौकी, कुम्हड़ा, करेला, व्यायाम और रात्रिमें जागना छोड़ दे। इसको खानेवाला रोगी यदि जीनेकी इच्छा करे तो

(१) पाकेऽम्लम्।

अतीसारं षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ।
शोथञ्च कामलां पाण्डुं प्लीहानञ्च जलोदरम् ॥४११॥
पङ्क्तिशूलञ्चाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं क्रिमिम् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥ ४१२ ॥
वातपित्तकफोत्थांश्च ज्वरान् हन्ति सुदारुणान् ।
जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ।
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥ ४१३ ॥
प्रातः करोति सततं नियतं द्विगुञ्जाम् ।
यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य ।
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वम् ।
हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥ ४१४ ॥

इति विजयपर्पटी ।

स्त्रीको न छुवे, न देखे, न पास जाय, यदि स्त्रीके पास चला ही जाय तो किसी दूसरी औषधिसे उस दुर्बलताको दूर करनेका उपाय करे, इससे कृच्छ्रसाध्य अनेक वर्णकी ग्रहणी, आमशूल, भयानक आमातीसार, अतीसार, छहों प्रकारके अर्श, राजयक्ष्मा, परिग्रह, शोथ, कामला, पाण्डु, प्लीह, जलोदर, पंक्तिशूल, अम्ल-पित्त, वातरक्त, वमन, क्रिमिरोग, अठारहों प्रकारके कुष्ट, प्रमेह, विषमज्वर, वात पित्त और कफसे उत्पन्न हुआ घोर ज्वर दूर होजाते हैं। जीर्ण ज्वरमें भी बुद्धिमान् वैद्य इसे दे, इसके खानेसे रोगी सौ वर्ष जीता है। खाल नहीं सिकुड़ती, बाल नहीं सफेद होते हैं, जो इसे प्रतिदिन दो रत्ती प्रातःकाल खाय

रसं वज्रं हेम तारं मौक्तिकं ताम्रमभ्रकम्।
सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद्विजयपर्पटीम्॥ ४१५॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम्।
आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम्॥ ४१६॥
प्रवाहिकां षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम्।
शोथञ्च कामलां पाण्डुं प्लीहगुल्मजलोदरान्॥४१७॥
पङ्क्तिशूलमम्लपित्तं वातरक्तं वमिं भ्रमम्।
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान्॥ ४१८॥
चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः।
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः॥ ४१९॥

यह कामदेवके समान सुन्दर, बलवान और दीर्घायु होजाता है। इसका नाम विजयपर्पटी रस है॥ ३९१॥ ४१४॥

पारा, हीरा, सोना, चांदी, मोती, तांबा और अभ्रक ये सब समान और इन सबके समान गन्धक डालकर पहले कही रीतिसे पर्पटी सिद्ध करे, इससे कृच्छ्रसाध्य बहुत दिनकी ग्रहणी, आमशूल, पुराना घोर अतीसार, प्रवाहिका, छहों प्रकारके अर्श, उपद्रवोंके सहित राजयक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डु, प्लीह, गुल्म, जलोदर, पंक्तिशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, भ्रम, अठारहों प्रकारके कुष्ट, प्रमेह, विषमज्वर, चारों प्रकारका अजीर्ण, मन्दाग्नि, और अरोचक दूर होजाते हैं; इसके खानेसे बूढ़ा भी बलवान् और बुद्धिमान् होजाता है, बाल नहीं सिकुड़ता,

प्रातः करोति नियतं सततं द्विगुञ्जां
यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य ।
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं
हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥ ४२० ॥
जराव्याधिसमाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः ।
चकार पर्पटीमेनां यथा नारायणः सुधाम् ॥४२१ ॥
इति तन्त्रान्तरे विजयपर्पटी ।
एकांशोरसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च ।
मुक्ताफलस्य चत्वारोभागाः षड्दीर्घनिःस्वनात् ॥४२२॥
त्र्यंशं बलेर्वराव्याश्च टङ्कणोरसपादिकः ।
पक्वनिम्बूकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ४२३ ॥
मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत् ।
गर्त्तेऽरत्नि प्रमाणेच पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः ४२४ ॥

बाल सफेद नहीं होते, जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल दो रत्ती इस रसको खाय वह कामदेवके समान सुन्दर महाबलवान् पापरहित और दीर्घायु होजाता है। पहले समयमें शिवने सब जगत्को रोग और बुढ़ापेसे व्याकुल देख यह रस बनाया था यह रस विष्णुके बनाये अमृतके समान उत्तम है। इसका भी नाम विजयपर्पटी रस है ॥ ४१७ ॥ ४२१ ॥

एक भाग पारा, दो भाग सोना, चार भाग मोती, छः भाग दीर्घ निस्वन, चार भाग गन्धक, चार भाग कौड़ी, सुहागा पारेसे चौथाई, इन सबको खरलमें डालकर घोटे, फिर पक्क-

स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत्।
ततः खल्लोदरे मर्द्यं सुधारूपं समुद्धरेत्॥ ४२५॥
एतस्यामृतरूपस्य दद्याद्गुञ्जाचतुष्टयम्।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदूषणैः॥ ४२६॥
मन्दाग्नौ रोगसंङ्घे च ग्रहण्यां विषमज्वरे।
गुदाङ्कुरे महामूने पीनसे श्वासकासयोः॥ ४२७॥
अतिसारे ग्रहण्याञ्च श्वयथौ पाण्डुके गदे।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहादिकेषु च॥ ४२८॥
वातपित्तकफात्थेषु द्वन्द्वजेषु त्रिजेषु च।
दद्यात् सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद्रसायनम्॥४२९॥

इति हिरण्यगर्भपोट्टलीरसः।

यामें भर कर मुहबन्द कर दे, फिर एक अरत्नी अर्थात् एक मुट्ठी और एक अंगूठे लम्बे चौड़े और गहरे गड्ढेमें फूंक दे, जब आपसे आप ठंडा होजाय, तब निकालकर खरल में डालकर घोटे, इस अमृतके समान औषधि को घी, शहत और १९ मिरचों के संग ४ रत्ती देना चाहिये। इससे मन्दाग्नि, एक ही वार हुए अनेक रोग, ग्रहणी, विषमज्वर, बहुत पुराना अर्श, पीनस, सांस, खांसी, अतीसार, ग्रहणी, श्वयथु, सब प्रकारके कोष्टरोग, यकृत्, प्लीह, वात, पित्त, कफ और दो दो दोषोंसे अथवा सन्निपातसे उत्पन्न हुए रोग दूर होजाते हैं यह औषधि उत्तम रसायन भी है इसका नाम हिरण्यगर्भ पोटली रस है॥ ४२४—४२९॥

द्विकर्षं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च द्विकार्षिकम् ।
लौहभस्मपलं चाभ्रं जारितञ्च पलांशिकम् ॥४३०॥
द्वितोलं रजतञ्चैव वङ्गभस्म द्विकार्षिकम् ।
सुवर्णं तोलकञ्चैव ताम्रकांस्यञ्च तत्समम् ॥ ४३१ ॥
जातीफलं चेन्द्रपुष्पमेलाभृङ्गञ्च जीरकम् ।
कर्पूरं वनिता मुस्तं कर्षं कर्षं पृथक् पृथक् ॥४३२॥
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम् ।
भावयित्वा शतावर्याः रुबुकानां रसैस्तथा ॥ ४३३ ॥
एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य धान्ये रात्रिदिवोषितम् ।
उद्धृत्य मर्दयित्वा तु वटिकां वल्लसम्मिताम् ॥४३४॥
खादेच्च वटिकामेकां पर्णखण्डेनसंयुतः ।
सर्वव्याधिविनाशाय काशीनाथेन निर्मितः ॥ ४३५ ॥
पूर्णचन्द्ररसोनाम्ना सर्वरोगेषु योजयेत् ।
बल्योरसायणोवृष्योवाजीकरणमुत्तमः ॥ ४३६ ॥

शुद्ध पारा दोकर्ष, शुद्ध गन्धक दो कर्ष, लोहेकी भस्म एक पल, अभ्रककी भस्म एक पल ; चांदीकी भस्म दो तोले, रांगेकी भस्म दो कर्ष, सोना एकतोला, तांबा, एकतोला, कांसा एक तोला, जायफल, इन्द्रजौ, इलायची, भंगरा, जीरा, कपूर, वनिता और मोथा इन सबको एक २ कर्ष लेकर पहली औष-धियोंके संग खरलमें डालकर घीकुमार के रस में घोटे, फिर शतावर और अरण्डके रसमें भावना देकर अरण्डके पत्तों में लपेटकर एक रातदिन धानके ढेरमें दबादे, फिर निकालकर

अयमष्ठीलिकां हन्ति कासश्वासमरोचकम्।
आमशूलं कटीशूलं हृच्छूलं पंक्तिशूलकम्॥४३७॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च ग्रहणीं चिरजां पराम्।
आमवातमम्लपित्तं भगन्दरमरोचकम्॥ ४३८॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहं वातशोणितम्।
वातं बहुविधञ्चैव मन्दाग्नित्वं वमिं भ्रमम्।
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यते वाजिकर्मणि॥ ४३९॥

इति पूर्णचन्द्ररसः।

लौहं ताम्रं गन्धमभ्रं पारदञ्च समांशिकम्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं कणा॥४४०॥
किरातं देवकाष्ठञ्च हरिद्राद्वयपुष्करम्।
यमानी जीरकं युग्मं शठीधान्याकचव्यकम्॥४४१॥

पीसकर दो २ रत्तीकी गोली बनाले; रोगीको पान पर रखकर एक गोली देय, इससे अष्टीलिका, खांसी श्वास, अरोचक, आमशूल, कमरका शूल, हृदयका शूल, पंक्तिशूल, मन्दाग्नि, अजीर्ण, पुरानी ग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पांडुरोग, प्रमेह, वातरक्त, अनेक प्रकारका वायु, वमन और भ्रम दूर होजाते हैं। बल और वीर्य्य बहुत बढ़जाते हैं; इसके समान वाजीकरण औषधि और दूसरी नहीं हैं इस औषधिको काशीनाथने बनाया है इसका नाम पूर्णचन्द्र रस है॥ ४३०—४३८॥

लोहा, तांबा, गन्धक, अभ्रक, और पारा ये सब समान २ सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेरा, आमला, मोथा, विड़ङ्ग, चीता,

प्रत्येकं लौहभागञ्च श्लक्ष्णचूर्णन्तु कारयेत् ।
सर्वचूर्णस्य चार्द्धांशं सुशुद्धं लौहकिट्टकम् ॥ ४४२ ॥
गोमूत्रे पाचयेद्वैद्यो लौहकिट्टाच्चतुर्गुणे ।
पुनर्नवाष्टगुणितं क्वाथं तत्र प्रदापयेत् ॥ ४४३ ॥
सिद्धेऽवतारिते चूर्णे मधुनः पलमात्रकम् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कोकिलाख्यानुपानतः ॥ ४४४ ॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति सशोथां पाण्डुकामलाम् ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥४४५॥
प्लीहानं यकृतं गुल्ममुदरञ्च विशेषतः ।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं हन्ति पुष्टिविवर्द्धनम् ॥४४६॥

इति पञ्चामृतलौहम् ।

पीपल, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी पुष्करमूल, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, कचूर, धनियां और चाभ ये सब लोहेके समान २ डालकर चूर्ण बनावे, सब चूर्णसे आधी लोहेकी शुद्ध कीट डाले, फिर कीटसे चौगुणे गोमूत्रमें डालकर पकावे, पकते समय कीटसे आठगुणा गधापुर्न्ने का काढ़ा छोड़ दे, जब पक चुके, तब उतारकर ठंडा होने पर एकपल शहत डाले । रोगीको प्रातःकाल काकोली के संगदे, इससे पुराना ग्रहणी रोग, शोथ, पांडु, कामला, पुरानाज्वर, प्लीह, यकृत, गुल्म, उदर, खांसी, सास और प्रतिश्याय दूर होजाते हैं, तथा अग्नि और बल बहुत बढ़जाते हैं इसका नाम पञ्चामृत लोह है ॥ ४४० — ४४६ ॥

जातीफललवङ्गाब्दत्वगेलाटङ्करामठम् ।
जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्वसैन्धवम् ॥ ४४७ ॥
लौहमभ्रं रसोगन्धं ताम्रं प्रत्येकशः पलम् ।
मरिचं त्रिपलं दत्त्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥४४८॥
धात्रीरसे विधाप्येवं वटिकां कुरु यत्नतः ।
श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्मितः ॥ ४४९ ॥
सूर्य्यवत्तेजसा चायं रसोनृपतिवल्लभः ।
अष्टादशवटीं खादेत्पवित्रः सूर्य्यदर्शकः ॥ ४५० ॥
हन्ति मन्दानलं शोथमामदोषं विसूचिकाम् ।
प्लीहगुल्मोदराष्ठीलायकृत्पाण्डुं सकामलम् ॥४५१॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च चक्षुशूलं हलीमकम् ।
शिरःशूलं कटीशूलमानाहमष्टशूलकम् ॥ ४५२ ॥
सश्वासमामवातञ्च श्लीपदं महदर्बुदम् ।

जायफल, लौंग, मोथा, तज, इलायची, सुहागा, हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधा, लोहा, अभ्रक, पारा, गन्धक और तांबा ये सब एक एक पल, मिर्च ३ पल इन सबको बकरीके दूधमें घोटकर आमलेके रसमें घोटे, और गोलीबनाले, रोगी पवित्र होकर और सूर्य्यका दर्शन करके इसकी अठारह गोली खाय, इससे मन्दाग्नि, शोथ, आमदोष, विशूचिका, प्लीहा, गुल्मोदर, अष्टीला, यकृत, पांडु, कामला, हृदयशूल, पशुलीका शूल, आंखकी पीड़ा, हलीमक, शिरकीपीड़ा, कमरकी पीड़ा, अनाह, आठों प्रकारके शूल, सांस, खांसी, श्लीपद,

गलगण्डं गण्डमालामम्लपित्तञ्च गर्दभीम् ॥ ४५४ ॥
क्रिमिकुष्ठानि संहन्ति वातरक्तं भगन्दरम् ।
जीर्णज्वरं ज्वरं कण्डूं तन्द्रालस्यं वमिं भ्रमम् ॥४५४॥
दाहविद्रधिहिक्काश्च जड़ं गद्गदमूकताम् ।
दुर्वारं स्वरभेदञ्च ब्रध्नवृद्धिविसर्पकान् ॥ ४५५ ॥
ऊरुस्तम्भं रक्तपित्तं गुदभ्रंशारुचिं तृषाम् ।
कर्णनासासमुत्थांश्च दन्तरोगञ्च पीनसम् ॥ ४५६ ॥
स्थौल्यञ्च कुरुते नित्यं रसो नृपतिवल्लभः ॥ ४५७ ॥

इति नृपतिवल्लभः ।

लवङ्गं पिप्पली शुण्ठी मरिचं जीरकद्वयम् ।
केशरं तगरञ्चैव एला जातीफलं तथा ॥ ४५८ ॥
कट्फलं तेजपत्रञ्च पद्मवीजं सचन्दनम् ।

अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, अम्लपित्त, गर्दभिका, क्रिमिरोग, कुष्ट, वातरक्त, भगन्दर, जीर्णज्वर, ज्वर, खुजली, जंभुआई, आलस्य, वमन, भ्रम, दाह, विद्रधि, हिचकी, जड़ता, गदगदता, गंगापन, दुःसाध्यस्वरभेद, अण्डवृद्धि, विसर्प, उरुस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रंश, प्यास, अरुचि, नाक, कान और दांतके रोग और पीनस दूर होजाते हैं, इसके खानेसे रोगी मोटा होजाता है, इस सूर्य्यके समान तेजस्वी रसको श्रीमान गहननाथने बहुत विचारकर बनाया था, इसका नाम नृपवल्लभ रस है ४४७॥४५७॥

लौंग, पीपल, सोंठ, मिर्च, जीरा, स्याहजीरा, नागकेशर, तगर, इलायची, जायफल, कायफल, तेजपात, कमलगट्टे की गिरी, चन्दन,

कक्कोलमगुरुश्चैव उशीरं चाभ्रकं तथा ॥ ४५९ ॥
कर्पूरं जातिकोषञ्च मुस्ता मांसी यवं तथा ।
शतपुष्पा च धान्याकं यमानी लोहवङ्गकम् ॥ ४६० ॥
सर्वचूर्णसमं देयं लवङ्गात् चूर्णचिक्कणम् ।
सर्वचूर्णाद्विगुणितां शर्करां विनियोजयेत् ॥ ४६१ ॥
सर्वरोगहरो ह्येष पित्तस्यैव मुद्गारकणाम् ॥ ४६२ ॥

इति लवङ्गादिमोदकः ।

धान्याकं धातकी लोध्रं समङ्गातिविषा शिवा ।
उशीरं वारिवाहश्च जलं मोचं रसाञ्जनम् ॥ ४६३ ॥
बिल्वं नीलोत्पलं पत्रं केशरं पद्मकेशरम् ।
गुडूचीन्द्रयवश्यामा पद्मकं कटुरोहिणी ॥ ४६४ ॥
तगरं नलदं भृङ्गं केशराजः पुनर्नवा ।

शीतलचीनी, अगर, खस, अभ्रक, कपूर, जायफल, मोथा, जटामांसी, इन्द्रजौ सौंफ, धनिया, अजवायन, लोहा और वंग ये सब समान और इन सबके समान लौंग डालकर महीन चिकना चूर्ण बनावे, सब औषधियोंसे दुगुणी शक्कर डालकर लड्डू बनावे, इन लड्डूवोंसे सब प्रकारके रोग और बढ़ा हुआ पित्त दूर होजाता है। इसका नाम लवङ्गादि मोदक है ॥४५८॥४६२॥

धनिया, धायके फूल, लोध, मजीठ, अतीस, आमला, खस, मोथा, नेत्रवाला, मोचरस, रसौत, बेलगिरी, नीलाकमल, तेजपात, केशर, कमलकी केसर, गुरिच, इन्द्रजौ, कालीजड़का निसोत, पदमाख, कुटकी, तगर, खस, भंगरा, कालाभंगरा,

आम्रजम्बूकदम्बानां त्वचः कुटजवल्कलम् ॥ ४६५ ॥
यमानी जीरकञ्चैषां कार्षिकाणि प्रकल्पयेत् ।
तैलप्रस्थं पचेत्सम्यक् तक्रेणान्यतमेन वा ॥ ४६६ ॥
कुटजत्वक् कषायेण धान्यकक्वथितेन वा ।
बुद्धा दोषगतिं तत्तु तथान्यौषधवारिणा ॥ ४७६ ॥
एतद्रसायनं तैलं वलीपलितनाशनम् ।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥४६८॥
ज्वरं तृष्णां तथा कासं हिक्कां श्वासं वमिं भ्रमम् ।
सोपद्रवं कोष्ठरोगं नाशयेत्सत्यमेव हि ॥ ४६६ ॥
अर्शांसि कामलां मेहं श्वयथुं शूलमुल्वणम् ।
एतद्धि बृंहणं वृष्यं सर्वरोगनिबर्हणम् ॥ ४७० ॥
वशीकरणमेतद्धि पुष्ययोगे विपाचयेत् ।

गधापुरना, आमकी छाल, जामुनकी छाल, कदमकी छाल, कुरैकी छाल, अजवायन और जीरा इन सबको एक एक कर्ष लेकर एक प्रस्थ तेल पकावे, पकते समय दोषके अनुसार मट्ठा, कूरैयाकी छालका काढ़ा, धनियाका काढ़ा अथवा किसी दूसरी ओषधिका काढ़ा डाल दे, इस तेलसे सब प्रकारके अतीसार, सब प्रकारकी ग्रहणी, ज्वर, प्यास, खांसी, हिचकी, श्वास, वमन, भ्रम, उपद्रव युक्त पेटके रोग, छहों प्रकारके अर्श, कामला, प्रमेह, श्वयथु, और बढ़ा हुआ शूल, दूर होजाते हैं। यह ओषधि रसायन है। बल और वीर्य्यको बढ़ाती है। सब रोगोंका नाश करती है, वशीकरण है सन्ध्यासमय स्त्रियोंको और प्रातःकाल

भार्यं स्त्रीषु प्रकर्त्तव्यं प्रत्यूषे राजसंसदि ॥ ४७१ ॥
विवाहादिषु माङ्गल्यं विवादे विजयप्रदम् ।
गर्भस्य चलितस्यापि स्थापनं परमं शुभम् ॥ ४७२ ॥
गर्भारम्भे प्रकर्त्तव्यमेतद्गर्भविवर्द्धनम् ।
ग्रहणीमिहिरं नाम तैलं भुवनमङ्गलम् ॥ ४७३ ॥

इति ग्रहणीमिहिरं तैलम् ।

इति ग्रहणीचिकित्सा ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां ग्रहण्यधिकारश्चतुर्थः समाप्तः ।

राजोंकी सभामें बैठनेवाले मनुष्योंको लगाना चाहिये इसके लगानेसे गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है विवाद आदिमें विजय होती है । गर्भके आरम्भमें स्त्रीको देनेसे गर्भ बढ़ता है और सब प्रकारके कल्याण होते हैं इसे पुष्यनक्षत्रमें बनाना चाहिये इसका नाम ग्रहणीमिहर तैल है ॥ ४६२ ॥ ४७३ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें ग्रहणी अधिकार समाप्त हुवा ।

अथाऽर्शोऽधिकारः ।

अर्शांसि गद्विधान्याहु र्वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।
सहजान्यसृजाचैव लक्षणानि निबोधमे ॥ १ ॥

अथ अर्शनिदान ।

वात, पित्त, कफ, सन्निपात, रुधिर और सहज (जन्महीसे सङ्ग उत्पन्न हुये) भेदसे अर्शरोग छः प्रकारका कहा है । हम सब इन्होंके अलग अलग लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

सार्धपञ्चाङ्गुलं प्राहुर्गुदमानं विपश्चितः ।
ऊर्ध्वाधो वलयस्तिस्रस्तत्रैकाङ्गुलोच्छ्रिताः ॥ २ ॥
शङ्खावर्तसमा रक्ताः चतुरङ्गुलविस्तृताः ।
स्थूलान्त्र प्रतिबद्धं तत् करितालुनिभाश्रिताः ॥ ३ ॥
स्वहेतुभिर्यदा दोषाः मन्दाऽग्नेः कुपिता भृशम् ।
प्रधानधमिनीं प्राप्य अधोगत्वाप्रदूषयन् ॥ ४ ॥
प्रवाहिणीविसर्जिन्या वथ संवरिणीमपि ।
दुष्टकृत्वाङ्कुरांस्तत्र कुर्वन्त्यर्शांसितानिवै ॥ ५ ॥

अथ वातार्शोनिदानम् ।

कटुरूक्षकषाय हि माध्यशने
रमिताशन मैथुन तिक्ततरैः ।

स्थूल आंतमें बँधा साढ़े पांच अंगुल ऊंचा, गुदा नामक मर्मस्थान है। उसका रंग हाथीके तालुके समान लाल है। उसमें शङ्खकी आवर्त अर्थात् रेखाओंके समान चार चार अंगुल लम्बी और एक एक अंगुल मोटी प्रवाहिनी, विसर्जिनी, और सम्बरिणी नामक तीन वली हैं। उनके बीचमें डेढ़ डेढ़ अंगुल का अन्तर है।

जब मन्दाग्नि मनुष्यके वात, पित्त, और कफ अपने अपने कारणोंसे, दूषित होकर नीचे जाकर ऊपर लिखी तीन बलियोंको, दूषित करते हैं तब उन तीनोंमें से किसी एकमें, मांसके अंकुरे (मसे) उत्पन्न होजाते हैं। पण्डित वैद्य उसी का नाम अर्शरोग कहते हैं ॥ २—५ ॥

पवनातपभार सदानशनैः
कुपितः श्वसनो गुदकीलकरः ॥ ६ ॥
तवमांसाङ्कुरा म्लाना: श्यावा रूक्षाः खरा अपि।
परुषा विशदा रक्ता बिम्बीखर्जुरसन्निभा: ॥ ७ ॥
तीक्ष्णाग्रा विषमास्तब्धा: शुष्काविस्फुटिताननाः।
सिद्धार्थनीपपुष्पाभा: तथाचिमिचिमान्विता: ॥ ८ ॥
तैः पीड़ितः शब्दयुतं सफेनम्
स्तोकं सपीडं ग्रथितं विवर्णम्।
वर्चो विमुञ्चत्यथ पार्श्वपृष्ट-
हृदंत्रगार्ति व्यथितोतिमात्वम् ॥ ९ ॥
विष्टम्भारोचकोद्गार मोहगुल्मोदरव्यथा।
व्यथितोमानवस्तैस्तु रोगैर्बहुभिरेव च ॥ १० ॥

जब मनुष्य कडुवा, रूखा, कसैला और अधिक तीता भोजन करता है। पहिले भोजन न पचने पर दूसरा भोजन कर लेता है। विना प्रमाण भोजन करता है। या बहुत उपास करता है। बहुत मार्ग चलता है। बहुत वायु या घाम में बैठता है। तब वायु बिगड़कर अर्शरोग उत्पन्न करता है। इस अर्थात् वात अर्शमें मसे मुरझाये, कुछ काले, रूखे, खरखरे, कठोर, विशद, खजूर और कुंदरूके फलके समान लाल, तेज-मुखवाले, विषम, कठोर, सूखे, फटेमुखवाले, सरसों और कदम के फूलके समान रंगवाले और चिमचिमाहट युक्त होते हैं। उनके होनेसे मनुष्यको शब्द और फेनयुक्त थोड़ा गांठके समान

मूत्रनेत्र नखादीनां कृष्णतात्वचमस्तथा ।
वातोल्वणे भवन्त्येव चिह्नान्येतानि चार्शसि ॥ ११॥

अथ पित्तार्शो निदानम् ।

लवणाम्लकटूष्णानि यदानात्यतिसेवते ।
मद्यतीक्ष्णविदाहीनि व्यायामातपसेवनम् ॥ १२ ॥
देशकालावयोष्णौ च हेतुःपित्तार्शसांमतम् ॥ १३ ॥

पित्तोत्थिता नीलमुखाश्चपीताः
निस्राविणो रक्तसमाः सदाहाः ।
श्लक्ष्णाः सरक्ताम्लनवोऽतिरूक्षाः
मर्हेन्द्रगोपोपमविग्रहाश्च ॥ १४ ॥

संधा पीड़ायुक्त विष्टा होता है । पसुली, कमर, हृदय, और लिङ्गमें भी बहुत पीड़ा होती है । विष्टा रुकना, अरोचक, अधिक डकार आना, पिलही, गुल्म और पटके रोगभी होजाते हैं । विष्टा, मूत्र, नेत्र और नखादि काले होजाते हैं । ये लक्षण जिसको हों, उसे वात अर्श जानना चाहिये ॥ ६—११ ॥

जब मनुष्य अधिक नमक, खटाई, कड़वा, तीखा और विदाही अर्थात् हृदयमें जलन करनेवाला, भोजन करता है । अधिक मद्यपीता है । अधिक व्यायाम (कसरत) करता है । बहुत घाममें बैठता है और गर्मीके समय भी गर्मस्थानमें बैठता है । तब पित्त बिगड़कर अर्शरोगको उत्पन्न करता है । पित्तसे उत्पन्न हुये अर्शके मसे, बीरबहोटी के समान लालमुखवाले, पीले, दाहयुक्त, छोटे, रूखे, पिलपिले और रक्तयुक्त होते हैं ।

तैरर्दितः पीतनखावभासो
नीलोष्णवर्चाऽरति दाहमूर्च्छा।
तृष्णातिसारारुचिपीड़ितश्च
भवेन्मनुष्योऽतिविशाल पीड़ः॥ १५॥

अथ रक्तार्शोनिदानम्।

पित्तोक्तैः कारणैर्नृणां रक्तार्शो भवतिध्रुवम्।
पित्ताकृतिसमाकीला इन्द्रगोपसमा अपि॥ १६॥
तैः पीड़ितः पाण्डुवर्णो कट्यूरुगुदशूलवान्।
हृतौजा विगतोत्साहो नष्टेन्द्रिय बलःपुमान्॥ १७॥
श्यावं सुकठिनं रूक्षं वर्चःकष्टात् प्रवर्त्तते।
फेनिलं शब्दसंयुक्त मरुणं वातसंयुतम्॥ १८॥
स्रवन्ति बहुशोरक्तं फेनिलं पवनेऽधिके॥ १९॥

उनसे सदा रक्त बहता है उनसे मनुष्यके नेत्र और नखादि पीले होजाते हैं। विष्टा नीला और गर्म आता है। रोगी दाह मूर्च्छा, प्यास, अतिसार अरुचि और घोर पीड़ासे व्याकुल रहता है॥ १२—१५॥

पित्तमें लिखे कारणसे मनुष्यको रक्तअर्श उत्पन्न होता है। उसका रूप भी पित्त अर्शके समान होता है। रक्त अर्श होनेसे मनुष्यका रंग पीला होजाता है। कटि (कमर) जङ्घा और गुदामें बहुत पीड़ा होती है। मनुष्यका तेज, उत्साह और सब इन्द्रियोंका बल नष्ट होजाता है। विष्टा काला, लाल, फेन, शब्द और वायुयुक्त कठोर और रूखा होता है।

शिथिलं शीतलं स्निग्धं श्वेतंवर्चोऽथवा गुरु ।
पाण्डुवर्णं घनं रक्तं पिच्छिलञ्चकफेऽधिके ॥ २० ॥

अथ कफार्शो निदानम् ।

लवणस्निग्धशीतादि गुरुमिष्टाऽतिभोजनैः ।
अतिव्यवायव्यायाम दिवास्वप्नादिहेतुभिः ॥ २१ ॥
शीतवातातिसेवाभिः कफः प्रकुपितोभृशम् ।
दुर्नामहेतुर्भवति लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ २२ ॥
श्लक्ष्णाः सिता महामूलाः कण्डूमन्तः स्थिरा घनाः ।
मन्दपीड़ास्तथास्निग्धा वृत्ताश्च स्तब्धविग्रहाः ॥ २३ ॥
स्पर्शप्रियाः पिच्छिलाश्च स्तिमिता गुरवस्तथा ।
पनसास्थिसमाकारा गोस्तनाभा अवेदनाः ॥ २४ ॥

विष्टा होते समय बहुत पीड़ा होती है । यदि रक्त क र्में वायु अधिक हो तो रुधिर बहुत और फेन युक्त निकलत है । यदि अधिक हो तो रुधिर पाण्डुवर्ण वाला गाढ़ा और चिकना निकलता है । रोगीको विष्टा भी चिकना, ठण्ढा और शिथिल होता है ॥ १६—२० ॥

जब मनुष्य नमका चिकना, ठण्ढा, भारी और अधिक मीठा भोजन करता है । मैथुन करता है, अधिक व्यायाम (कसरत) करता है । दिनमें सोता है । अधिक शीत और वायुमें बैठता है । तब कफ बिगड़ कर अर्शरोगको उत्पन्न करता है । कफसे उत्पन्न हुये अर्शके मसे चिकने सफेद विशाल जड़वाले, खुजली युक्त, स्थिर, कठोर, थोड़ीपीड़ा युक्त, गोल,

बस्तिनाभिगुदाबंद्गा पीड़ितः श्वासकासवान् ।
हल्लासारुचि हृद्रोगमेहपीनस पीड़ितः ॥ २५ ॥
मूत्रकृच्छ्रशिरोरोगैः ज्वरच्छर्दिविकारवान् ।
मन्दानलवलक्लैव्य पीड़ितो भवति ध्रुवम् ॥ २६ ॥
वसाभम् वहुमल्पञ्चवर्चःस्यात् स प्रवाहिकम् ॥ २७ ॥

अथ द्वन्द्वजार्शो लक्षणम् ।

द्विदोषलक्षणै वैद्यो द्वन्द्वजातम् विनिर्दिशेत् ॥२८॥

अथ सन्निपातार्शो लक्षणम् ।

सर्वेषाम् यत्र लिङ्गानि तानि सर्वात्मकानिवै ॥२९॥

अथ सहजार्शो लक्षणम् ।

पित्रादिदोषै जायन्ते पूर्वकर्मभिरेव वा ।

अचल, कूनेमें प्यारे, चिमचिमाहट युक्त, बड़े, गऊके थन और कटहरकी गुठलीके समान रूपवाले और थोड़ी पीड़ा युक्त, होते हैं, उनके होनेसे रोगीके मूत्राशय नाभि, गुदा और लिङ्गमें पीड़ा होती है । खांसी, सास, हल्लास, अरुचि, हृदय रोग, प्रमेह, पीनस, मूत्रकृच्छ्र, शिर रोग, वमन, ज्वर, मन्दाग्नि और नपुंसकता आदि रोग होजाते हैं, विष्टा चर्बीके समान आता है और प्रवाहिका होजाती है ॥ २१—२७ ॥

वैद्य जहां दो दोषोंके चिन्ह देखे उस अर्शको दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ कहै ॥ २८ ॥

जहां तीनों दोषोंके चिन्ह दिखलाई दें, उसे सन्निपातसे उत्पन्न हुआ जानै ॥ २९ ॥

दारुणानि च पाण्डूनि दुर्दर्शाण्यरुणानि च ॥ ३० ॥
अन्तर्मुखानि घोराणि दुःसाध्यानि भिषग्वरैः ।
तैः पीड़ितः क्षीणदेहः कांस्यपात्रहतस्वरः ॥ ३१ ॥
मन्दानलः क्षीणवीर्य्यः शिरोरोगी शिरातत: ।
क्रोधशीलश्चाल्प पुत्रो मानवो भवति ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

अथ लिङ्गार्शो निदानम् ।

यथास्वं कुपितादोषाः मेढ्रमागम्यदूषयन् ।
त्वचम् मांसं तदाकाण्डूर्जायते क्षतमेव च ॥ ३३ ॥
तस्मिन् क्षते प्रजायन्ते दुष्टमांसाङ्कुरा अथ ।
तैर्लिङ्गनाशो भवति पुंस्त्वनाशश्चदेहिनाम् ॥ ३४ ॥

पिताके वीर्य्य अथवा पूर्वजन्मके पापोंसे जन्महीसे अर्शरोग उत्पन्न होजाता है। उसके मसे भयानक, पाण्डु और लाल रङ्गवाले होते हैं। उनका मुख भीतरको होता है उसके होनेसे मनुष्यका बलक्षीण होजाता है। फटे हुये कांसीके बर्त्तनके समान स्वर निकलता है। अग्नि और वीर्य्य नष्ट होजाते हैं, रोगी शिरोरोग, दुर्बलता और क्रोधसे व्याकुल रहता है और सन्तान भी बहुत कम होती है। यह रोग कष्टसाध्य है ॥ ३०—३२ ॥

वात, पित्त और कफ अपने अपने कारणोंसे दूषित होकर लिङ्गमें आकर त्वचा और मांसको दूषित करदेते हैं। तब लिङ्गमें खुजली होती है और खुजानेसे घाव होजाता है। उस घावमें मसे उत्पन्न होजाते हैं उन मसोंसे लिङ्ग और पुरु-

एवम् योनिसु नारीणाम् दुर्गन्धाः पिच्छिलास्तथा ।
एवम् नेत्रादिसु प्रायो भवत्यर्शोरुजाकरः ॥ ३५ ॥
यत्र यत्रार्शसां जन्म तस्य तस्य वलक्षः ।
कर्मणश्च क्षयस्तस्य इन्द्रियस्यभवेद् ध्रुवम् ॥ ३६ ॥
निस्तोदःपवने नात्र श्लेष्मणाकण्डुवर्णता(१) ।
पित्तास्त्रिगभ्याम् कृष्णता च शुक्लता रौक्ष्मेव च ॥३७॥

अथ पूर्वरूपम् ।

दौर्बल्यं कृशताऽऽटोपः सक्थिसादोऽल्पविट्कता ।
विष्टम्भो ग्रहणीदोषाः पार्श्वपीड़ोदरव्यथा ॥ ३८ ॥
उद्गाराणाञ्च बाहुल्यं मन्नाकांक्षाऽरतिर्भ्रमः ।

यता नष्ट होजाती है । इसी प्रकार स्त्रियोंकी योनिमें दुर्गन्धित और चिकने मसे होजाते हैं, इसका नाम लिङ्गार्श रोग है ।

इसही प्रकार नेत्रआदि इन्द्रियोंमें भी अर्शके मसे उत्पन्न होकर उस इन्द्रियकी शक्ति और कर्म्मका नाश कर देते हैं, इन मसोंमें वायुसे पीड़ा, कफसे खुजली और शरीरके समान वर्ण होता है । पित्त और रुधिरसे कालापन, सफेदी और रूखापन होता है ॥ ३३—३६ ॥

अर्शरोग होनेके पहिले दुर्बलता, पेट फूलना, जाङ्घमें पीड़ा, थोड़ा दस्त होना, दस्तरुकना, संग्रहणी, पसुली और पेटकी पीड़ा, बहुत डकार आना, अन्न खानेकी इच्छा न होनी, अरति और भ्रम ये लक्षण होते हैं ॥ ३७—३८ ॥

(१) सवर्णता ।

पूर्वरूपं समुद्दिष्ट मर्शसाम् भिषजां वरैः ॥ ३९ ॥
मध्यबाह्य वलिस्थानां चिकित्सां कारयेद्भिषक् ।
अन्तर्वलिभवं घोरमसाध्यं परिवर्जयेत् ॥ ४० ॥
मन्दानलस्य क्षीणस्य साधनै रहितस्य च ।
वर्जयेद्गुदकीलन्तु यशःप्रार्थी भिषक् तमः ॥ ४१ ॥
दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्त्तितः (१) ।
भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य उच्यते ॥ ४२ ॥
यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये (२) ।
अनुपानौषधद्रव्यं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ ४३ ॥
शुष्कार्शसां प्रलेपादि क्रिया तीक्ष्णा विधीयते ।
स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्य्याऽस्रपैत्तिकी ॥४४॥

वैद्य मध्य और बाहरकी बलीमें उत्पन्न हुये अर्शकी चिकित्सा करे और भीतरकी बलीमें उत्पन्न हुये को असाध्य जानकर छोड़ दे ; अपना यश चाहने वाला वैद्य मन्दाग्नि , क्षीण और धनआदि साधन रहित अर्श रोगीकी चिकित्सा न करे ॥३९॥४१॥

अर्श रोगमें जो औषधि अनुपान और भोजन वायुको गुदामार्गसे निकाल सके और जो अग्निके बलको बढ़ा सके रोगी सदा उन्हीको खाय अर्थात् जो वस्तु अग्निको मन्द करे और वायुको रोके उसे कदापि न खाय ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

सूखे मसोंपर तेज औषधियोंका लेप करे, जिन मसोंमें रुधिर निकलता हो वैद्य उन्हे अच्छी प्रकार देख कर रक्तपित्तके अनुसार चिकित्सा करे ॥ ४४ ॥

(१) औषधियोगः । (२) अग्निबलस्य ।

स्नुक्क्षीरं रजनीयुक्तं लेपाद्दुर्नामनाशनम् ॥ ४५ ॥

इति स्नुहीयोगः ।

कोशातकीरजोघर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः ।

इति कोशातकीघर्षः ।

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं तिक्ततुम्ब्याश्च पल्लवाः ॥ ४६ ॥

करञ्जोवस्तमूत्रञ्च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ।

इति अर्कक्षीरादियोगः ।

अर्शोघ्नी गुदगावर्त्ति र्गुडघोषाफलोद्भवा ॥ ४७ ॥

इति गुडवर्त्ती ।

ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपोरक्तार्शसां हितः ॥४८॥

इति ज्योत्स्निकालेपः ।

थूहरके दूधमें हल्दी मिलाकर लेप करनेसे अर्श दूर होजाता है। इसका नाम स्नुही योग है ॥

कड़वी तोरीका चूर्ण घिसनेसे अर्शके मसे गिरजाते हैं। इसका नाम कोशातिकी घर्ष है ॥ ४५ ॥

आकका दूध, थूहरका दूध, कड़वीतूंबीके पत्ते और करञ्जवेके पत्तोंको बकरेके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अर्श रोग अच्छा होजाता है ॥ ४६ ॥

गुड़ और कड़वी तूंबीके चूर्णकी बत्ती बनाकर गुदामें रखनेसे अर्श रोग दूर होजाता है ॥ ४७ ॥

मालकांगनीकी जड़का लेप करनेसे रुधिर अर्श दूर होता है. कड़वी तूंबीके बीज और उद्भिद नोन, कांजीमें पीस कर

तुम्बीबीजं मोहिदन्तु काञ्जीपिष्टं गुडीत्रयम् ।
अर्शोहरं गुदस्थं स्याद्दधिमाहिषमश्नतः ॥ ४९ ॥
इति तुम्बीबीजवटी ।

महाबोधिप्रदेशस्य पथ्याकोशातकीरजः ॥ ५० ॥
सफेनलेपतो हन्ति लिङ्गवर्त्तिमसंशयम् ॥ ५१ ॥
इति पथ्यायोगः ।

अपामार्गोद्भवान्मूलात् क्षारः सहरितालकः ।
लिङ्गाऽर्शोलेपतो हन्ति चिरजातमसंशयम् ॥ ५२ ॥
इति अपामार्गक्षारः ।

गोली बनावे ये तीन गोली गुदामें रखनेसे अर्शरोग दूर होजाता है, रोगी भैंसके दहीके सङ्ग भोजन करै । इसका नाम कर्पूरतस्निका लेप है ॥ ४८ ॥

महाबोधी देशमें उत्पन्न हुई हर्र और कड़वी तूंबीका चूर्ण लगानेसे लिङ्गवर्त्ती अर्थात् लिङ्गार्श रोग दूर होजाता है. इन दोनोंका पानीमें फेन उठाकर लगानेसे भी लिङ्गार्श रोग नहीं रहता । इसका नाम तुम्बी बीज वटी है ॥ ४९ ॥

लटजीराकी जड़को जलाकर खार बनावे उसमें हरताल मिलाकर लगानेसे बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ, लिङ्गार्श रोग भी निःसन्देह दूर होजाता है ॥ ५० ॥

जिन अर्श रोगीमें बहुत अतीसार हो, उनकी चिकित्सा वातातिसारके समान और जिनमें विष्ठाबन्द होगया हो, उनकी चिकित्सा उदावर्तके समान करै । जिस अर्श रोगीकी विष्ठा न

वातातिसारवद्भिन्नवर्च्चां स्यर्शांस्युपाचरेत्।
उदावर्त्तविधानेन गाढ़विट्कानि चामकृत्॥ ५३॥
विड्विबन्धे हितं तक्रं यवानीविडसंयुतम्।
वातघ्नं चार्शसां तक्रात् परं नास्तीह भेषजम्॥५४॥
तत्प्रयोज्यं यथा दोषं सस्नेहं रूक्षमेव च।
न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्र समाहताः॥ ५५॥

इति तक्रविधानम्।

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत्।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत्॥ ५६॥

इति चित्रमूलयोगः।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छुकण्डूरुजापहा।
गुदजान्नाशयंत्याशु योजिता सगुडाऽभया॥ ५७॥

इति गुडाभयायोगः।

आता हो, वह विड़ नोन डालकर मट्ठा पीवे, क्योंकि वात अर्शके लिये मट्ठे के समान दूसरी औषधि नहीं है, वैद्य दोषके अनुसार चिकना अर्थात् बिना घी निकाला, या रूखा अर्थात् घी निकाला मट्ठादे, मट्ठे से नष्ट हुये अर्शके मसे फिर नहीं उत्पन्न होते॥ ५१—५५॥

चीतेकी जड़की छाल पीसकर एककोरे घड़े में लेप करे, फिर मट्ठा या दही भरकर रक्खे उसही मट्ठे या दहीके पीनेसे अर्श रोग दूर होजाता है। इसका नाम चित्रक मूल योग है॥ ५६॥

सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम् ।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेद्वानुलोमिकीम् ॥ ५८ ॥

इति गुड़पिप्पली

तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्द्धनम्
कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ ५९ ॥

तिलारुस्करयोग. ।

गोमूत्राध्युषितां दद्यात् सगुड़ां वा हरीतकीम् ।

इति गुड़हरीतकी ।

पञ्चकोलयुतं वापि तक्रमस्मै प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

इति पञ्चकोलतक्रम् ।

मृल्लिप्तं शूरणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत् ।

गुड़ और हर्र मिलाकर खानेसे पित्त, कफ, खुजली और अर्शरोग शीघ्र अच्छे होजाते हैं, इसका नाम गुड़हरीतकी योग है ॥ ५७ ॥

पीपल, हर्र और निसोतको, घीमें भूंनकर और गुड़ मिलाकर खानेसे वायुकी अधो गति होजाती है, इसका नाम गुड़-पिप्पली योग है ॥ ५८ ॥

तिल और भिलावा खानेसे अग्नि बढ़ती है, कुष्ट और अर्श रोग दूर होते हैं, इसका नाक तिलारुस्कर योग है ॥ ५९ ॥

गोमूत्रमें भीगी हर्र और गुड़ खानेसे अर्श रोग दूर होता है, रोगीको पञ्चकोल अर्थात् पीपल, पिपला मूल, चाभ, चीता और सोंठ मिलाकर मट्ठा पिलावे ॥ ६० ॥

अद्यात् स तैललवणं दुर्नाम्नां विनिवृत्तये ॥ ६१ ॥

इति शूरणपुटपाकः ।

खिन्नं१ वार्त्ताकुफलं घोषायाः२ क्षारजेन सलिलेन॥६२

तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेनतृप्तितोऽत्ति ।

पिबति च नूनं तक्रं तस्याशुविवातिवृद्धगुदजानि॥६३॥

यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥६४॥

इति वार्ताकुयोगः ।

असितानां तिलानाञ्च प्रकुञ्चं शीतवार्य्यनु ।

खादतोऽर्शांसि नश्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम् ॥६५॥

इति तिलयोगः ।

वैद्य सूरनको मट्टीमें लेपकर पुट पाककी रीतिसे पकावे फिर तेल और निमक मिलाकर रोगीको दे, उससे भी अर्श रोग दूर होजाता है। इसका नाम सूरन पुट पाक है ॥६१॥

इसी प्रकार तोरीके खारके पानीमें बैंगन (भांटा) को उबालकर घीमें भूंजे, फिर गुड़ मिलाकर रोगीको पेट भरके खिलावे और पानीके स्थानपर मट्ठा पिलावे तो सात ही दिनमें बहुत बढ़े हुये अर्शके मसे अच्छे होजाते हैं। इसका नाम वार्ताकु योग है ॥ ६२ ॥ ६४ ॥

जो रोगी ठण्ढे पानीके सङ्ग एक पल कालेतिलका चूर्ण

(१) अर्शरोगयुतः ।

(२) घोषकं क्षारं कृत्वा तस्मिन् क्षारे षड्गुणं जलं दत्वा एकविंशतिवारान् परिपरिस्राव्य तेन जलेन पचितवृन्तवार्ताकुमुत्स्विन्न घृते भृष्टा गुडं दत्वा तृप्तिपर्य्यन्तं भक्षतदनु तक्रं पिबेदिति ।

सनागराष्करवृद्धदारकं
गुडेन यो मोदकमत्त्युदारकम् ।
अशेषदुर्नामकरोगदारकम्
करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ ६६ ॥
चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः ॥ ६७ ॥

इति नागराद्यो मोदकः ।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवान्
चिरविल्वमहापिचुमर्दयुतान् ।
पिब सप्तदिनं मथितानुलितान्
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुगदान् ॥ ६८ ॥

इति लवणोत्तमादिचूर्णम् ।

प्रतिदिन खाय, उसका अर्श रोग दूर होजाता है, तथा दांतोंकी दृढ़ता और बल भी बहुत बढ़जाता है। इसका नाम तिल योग है ॥ ६५ ॥

सोंठ, भिलावा और बिधारा, इन औषधियोंमें गुड़ मिलाकर लड्डू बनाले प्रतिदिन एक लड्डू खानेसे सब प्रकारका अर्श रोग दूर होजाता है और बूढ़ा भी तरुण होजाता है। यह नियम है कि चूर्णमें सब औषधियोंके समान और लड्डूमें सब औषधियोंसे दूना गुड़ डाला जाता है, इसका नाम नागरादि मोदक है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

सेंधा, चीता, इन्द्रजौ, करञ्जवा और बका इनको छाछ सात दिनतक मट्ठे के सङ्ग पीवे तो निश्चय अर्श रोग दूर होजाता है, इसका नाम लवणोत्तमादि चूर्ण है ॥ ६८ ॥

मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ।
सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः सिद्धफलः ॥६९॥
ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयति गुल्मशूलगदान् ।
निःशेषयति श्लीपदमवश्यमर्शांसि नाशयत्याशु ॥७०॥

इति शूरणस्वल्पमोदकः ।

शूरणषोडशभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यातः ।
अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्द्धेन ॥ ७१ ॥
त्रिफला कणा समूला तालीशारुष्करक्रिमिघ्नानाम् ।
भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥७२॥
भागः शूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि ।
भृङ्गेले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य ॥ ७३ ॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामघ्नैः ।

मिर्च, सोंठ, चीता और सूरन ये सब एक दूसरेसे दुगने और इन सबके समान गुड़ डालकर लड्डू बनावे ; इस सिद्ध लड्डूके खानेसे, जठराग्नि बहुत बढ़जाती है गुल्म, शूल, श्लीपद, पद और अर्शरोग निश्चयही जड़से जाते रहते हैं, इसका नाम स्वल्प सूरण मोदक है ॥ ६९—७० ॥

सोलहभाग सूरन, उससे आधा चीता, उससे आधी सोंठ, उससे आधी मिर्च, त्रिफला, पीपल, पिपलामूल, तालीश, भिलावां, और विड़ङ्ग ये औषधि सोंठके समान, मुशली तीनभाग, विधारा, सूरनके समान, भंगरा और इलायची मिर्चके समान इन सबका चूर्ण बनाकर सबसे दुगना गुड़ डालकर लड्डू बनावे

गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्वितरे षूपद्रवं कुर्य्यात् ॥ ७४ ॥
भस्मकमलेन जनितं पूर्वमगस्तस्य प्रयोगराजेन ।
भीमस्य मारुतेरपि येन तौ महाशनौ जातौ ॥७५॥
अग्निवलवृद्धिहेतुर्न केवलं शूरणोमहावीर्य्यः ।
प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ ७६ ॥
श्वयथुश्लीपदगरजिद्ग्रहणीञ्च तथा हिक्कानिलजाम् ।
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वञ्च ॥ ७७ ॥
हिक्कां श्वासं कासं सराजयक्ष्मप्रमेहांश्च ।
प्लीहानञ्चाथोग्रं हन्तीति रसायनं पुंसाम् ॥ ७८ ॥

इति वृहच्छूरणमोदकः ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्तीश्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी ।

और रोगीको खिलावे खानेको भारी और वीर्य्य बढ़ानेवाला भोजन दे, अन्यथा अनेक प्रकारके दोष उत्‌ करता है। महामुनि अगस्तने पहिले समयमें इस लड्डूको बनाया था इसीके प्रतापसे भीमसेन और अगस्तमुनि बहुत भोजन करते थे, इसके खानेसे केवल अग्नि और बलही नहीं बढ़ता, बरन अग्नि खार और शस्त्रोंके बिनाहीं अर्शरोग दूर होजाता है। इससे स्वयथु, श्लीपद, विषरोग, ग्रहणीरोग, वायुसे उत्पन्न हुई हिचकी, खांसी, श्वास, राजयक्ष्मा, प्रमेह और बहुत बढ़ी प्लीहा दूर होजाते हैं यह औषधि रसायन भी है इसका नाम वृहत सूरन मोदक है ॥ ७१—७८ ॥

निसोत, तेजबल, जमालगोटेकीजड़ गोखुरु, चीता और

षट्पलं वृद्धदारस्य शूरणस्य च षोड़श ॥ ७६ ॥
जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम् ।
पूतन्तु तं रसं भूयः क्वाथ्येभ्यस्त्रिगुणोगुडः ॥ ८० ॥
लेहं पचेत्तु तं तावद्यावद्दार्वीप्रलेपनम् ।
अवतार्य्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ८१ ॥
त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशकान् ।
एलात्वङ्मरिचञ्चापि गजाह्वाञ्चापि षट्पलम् ॥८२॥
द्वात्रिंशत्पलमेवात्र चूर्णं दत्वा निधापयेत् ।
ततोमात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः ॥ ८३ ॥
पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
जयेदर्शांसि सर्व्वाणि तथा सर्व्वोदराणि च ॥ ८४ ॥
दीपयेद्ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणमपकर्षति ।

कचूर ये सब एक एक पल विधारा छःपल और सूरन सोलह पल इन सबको एक द्रोण पानीमें पकावे, जब चौथाई रह जाय तब उतारकर छान ले, फिर ऊपर लिखी औषधियोंसे, तिगुना गुड़ डालकर पकावे, जब पकते पकते करछीमें लगने लगे. तब उतार कर ठण्डा कर ले, और निसोत दो पल, तेज बलकी जड़ दो पल, चीता दो पल., इलायची छः पल, मिर्च छः पल, तज छः पल और गजपीपल छः पल डाले, इस प्रकार बत्तीस पल औषधि डालकर, रोगीको बलके अनुसार मात्रा दे, खानेको दूध और मांसका रस दे, इससे पांचो प्रकारके गुल्म, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, सब प्रकारके अर्श, सब प्रकारके

पीनसे च प्रतिश्याये आढ्यवाते तथैव च ॥ ८५ ॥
अयं सर्वागदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः ।
दुर्नामारिरयश्चाशु दृष्टोवारसहस्रशः ॥ ८६ ॥
भवन्त्येनं प्रयुञ्जानाः शतवर्षं निरामयाः ।
आयुषोदैर्घजननोवलीपलितनाशनः ॥ ८७ ॥
रसायनवरश्चैव मेधाजननन उत्तमः ।
गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्त्तितः ॥ ८८ ॥
सुखमर्दः खरस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः ।
पीडितोभजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ ८९ ॥

इति श्रीबाहुशालीगुडः ।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं (१) मरिचस्य च ।
पिप्पल्याः कुडवार्द्धञ्च चव्याश्चपलमेव च ॥ ९० ॥

उदररोग, मन्दाग्नि, राजयक्ष्मा, पीनस प्रतिश्याय और आढ्यवात आदि सब रोग दूर होजाते हैं। अर्शमें तो इसका फल सहस्रोंबार देखा गया है, इसको खानेवाला मनुष्य नीरोग होकर सौउर्ष जीता है। बाल खेत नहीं होते और खाल नहीं सिकड़ती इससे बुद्धि बहुत बढ़ती है और यह औषधि रसायन भी है। जब गुड़ पकते पकते गन्धवर्ण और रससे पूरित होजाय छूनेसे खर खरा जान पड़े और दबानेसे दब जाय, तब जानेकी पक चुका इसका नाम बाहुशाल गुड़ है ॥ ७९—८९ ॥

सोंठ तीन पल, मिर्च एक पल, पीपल, नागकेशर आधा आधा

(१) चतुर्थपलम् ।

तालीशपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च ।
द्वे पले पिप्पलीमूलादर्द्धं कर्षञ्च पत्रकात् ॥ ६१ ॥
सूक्ष्मैलाकर्षमेकञ्च कर्षं त्वगमृणालयोः (१) ।
गुडात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ ६२ ॥
अक्षप्रमाणा गुडिका प्राणदेति प्रकीर्त्तिता ।
पूर्वं भक्ष्या च पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् ॥ ६३ ॥
मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु ।
हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजान्यपि ॥ ६४ ॥
वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ।
पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे ॥ ६५ ॥
विषमज्वरे च मन्देऽग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च ।
क्रिमिहृद्रोगिणाञ्चैव गुल्मशूलार्त्तिनां तथा ॥ ६६ ॥

पल, पीपलामूल दो पल, तेजपात आधाकर्ष, छोटी इलायची एककर्ष, तज एक कर्ष, इन सबको चूर्ण कर तीस पल गुड़ मिला कर एक एक अक्षकी गोली बनावे, फिर रोगीको बलके अनुसार भोजनके प्रथम और भोजनके पश्चात् खिलावे, खानेको मांसका रस, मद्य, दूध दे, ऊपरसे पानी पिलावे, इससे सब प्रकारके अर्श जन्महीसे सङ्ग उत्पन्न हुये अर्श, वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्तसे उत्पन्न हुये अर्श पानात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वात, रोग, गलग्रह, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, हृद्रोग, शूल, गुल्म, श्वास, खांसी रोगोंमें यह औषधि अमृतके समान गुण-

(१) ग्रन्थे ककर्षम् ।

श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोपमा।
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे पित्तवायुजे॥९७॥
प्राणदेयं सिता देया चूर्णमानाच्चतुर्गुणा।
अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुदजातुरे॥ ९८॥
पक्त्वेनं गुडिकाः कार्य्या गुडेन सितयाऽथवा।
परं हि वह्निसंसर्गाल्लघिमानं भजन्तिताः॥ ९९॥

इति प्राणदायुडका।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक्।
दुष्टास्रे निगृह्णीते तु शूलानाहावसृग्गदाः॥ १००॥
शक्रक्काथः(१)सविश्वो वा किम्वा विल्वशलाटवः२॥१०१॥

इति इन्द्रयवक्वाथः।

दायक है। यदि अर्शमें दस्त न आते हों या पित्तसे उत्पन्न हुआ अर्श हो, तो सोंठके स्थानमें हर्र दे, इस औ॰ धमें सब औषधियोंसे, चौगुनी शक्कर डाले अथवा चौगुना गुड़ डालकर पकाकर गोली बांधो, इससे अम्लपित्त मन्दाग्नि और अर्श रोग दूर होजाते हैं। और अग्नि बहुत बढ़जाती है। इसका नाम प्राणदा गुटिका है॥ ९०—९९॥

रक्तसे उत्पन्न हुये अर्शमें वैद्य रुधिरको बंद न करे क्योंकि बिगड़ा हुआ रुधिर बंद होनेसे, शूल, अनाह और रुधिर रोगोंका उत्पन्न करता है॥ १००॥

रक्त अर्शमें इन्द्रजौके काढ़ेमें सोंठ मिलाकर दे; अथवा

(१) इन्द्रयवकषायो विश्व युक्तो।

(२) चूर्णीकृत्य मधुनादात्।

योज्या रक्तार्शसैस्तद्वत् ज्योत्स्निका मूललेपनम् ॥१०२

इति ज्योत्स्निकाले ।

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।
दधिसरमथिताभ्यासाद्गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः॥१०३॥

इति योगाः ।

समङ्गोत्पलमोचाह्वातिरीटतिलचन्दनैः ।
छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितापहम् ॥ १०४ ॥

इति समङ्गादियोगः ।

कोमलं नलिनीपत्रं पिष्ट्वा खादेत् सशर्करम् ।
प्रातराजं पयः पीत्वा रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥ १०५ ॥

इति नलिनीयोगः ।

बेलगिरीका काढ़ा दे । अथवा मालकगनीके जड़का लेप करे ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

मक्खन और तिल मिलाकर खानेसे अथवा केशर, मक्खन और चीनी खानेसे अथवा दहीकी मलाई और मट्ठा पीनेसे, रक्त अर्श दूर होजाते हैं ॥ ॥ १०३ ॥

मजीठ, कमल, मोचरस, लोध, तिल और चन्दन इन सबको बकरीके दूधके सङ्ग खानेसे रक्तअर्श दूर होजाता है। इसका नाम समङ्गादि योग है ॥ १०४ ॥

प्रातःकाल कोमल कमलके पत्ते पीसकर, शक्कर और बकरीके दूधके सङ्ग पीनेसे अर्शसे रुधिर बहना बन्द होजाता है ॥ ॥ १०५ ॥

सशर्करं कृष्णतिलस्य कल्कं
वस्तीपयोभिः पिबति प्रभाते।
सद्योहरत्येव गुदोत्थरक्तं
योगोऽयमित्थं गिरिशप्रयुक्तः ॥१०६॥

इति तिलकल्कः।

कौटजं वल्कमादाय पिष्ट्वा तक्रेण बुद्धिमान्।
पीत्वा रक्तार्शसोरक्तस्रुतिमाशु नियच्छति ॥ १०७ ॥

इति कुटजकल्कः।

तण्डुल सलिलोपेतं कल्कमपामार्गजं पिबतः।
चीरमनुपाप्य भीरो गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥१०८

इति अपामार्गकल्कः।

दाड़िमस्य रसः पेयः शर्करामधुरीकृतः ॥ १०९ ॥

इति दाड़िम रस

जो रोगी प्रातःकाल शक्कर और बकरीके दूधके सङ्ग काले-तिल पीसकर पीवे उसका रक्तार्श रोग बहुत शीघ्र दूर होजाता है, यह योग साक्षात् शिवजीने कहा है ॥ १०६ ॥

जो बुद्धिमान् रोगी प्रातःकाल कुरैयाकी छाल पीसकर मट्ठे के सङ्ग पीवे, उसके अर्शसे रुधिर बहना बन्द होजाता है ॥ १०७ ॥

प्रातःकाल गधापुना पीसकर चावलोंके पानी और दूधके सङ्ग पीनेसे रक्तार्श शीघ्र शान्त होजाते हैं ॥ १०८ ॥

शक्करसे मठा करके अनका रस पीनेसे रक्तार्श दूर होजाता है ॥ १०९ ॥

कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ११० ॥
वस्त्रपूतं पुनः क्वाथं पचेल्लेहत्वमागतम् ।
भल्लातकं विडङ्गानि त्रिकटु त्रिफले तथा ॥ १११ ॥
रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च ।
वचामतिविषां विल्वं प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ ११२ ॥
गुड़ात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत् ।
मधुनः कुड़वं दद्याद्घृतस्य कुड़वं तथा ॥ ११३ ॥
एष लेहः शमयति अर्शोरक्तसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ११४ ॥
ये च दुर्नामजा रोगास्तान् सर्वान्नाशयत्यपि ।
अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ११५ ॥
ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ।

कुरैयाकी छाल, सौपल लेकर एक द्रोण पानीमें पकावे, जब पकते पकते आठवां भाग रहजाय तब उतार कर कपड़े में छानले और फिर पकाकर अवलेह बनावे, और भिलावां, विड़ङ्ग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंवला, रसौत, चीता, इन्द्रजौ, रसभरी, बच और बेलगिरी ये सब औषधि एक एक पल डाले, फिर तीसपल गुड़ मिलाकर एक कुड़व शहत और एक कुड़व घी डालकर अवलेह बनावे, इस अवलेहसे रक्तसे उत्पन्न हुआ अर्श, वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुआ अर्श और अर्शसे उत्पन्न हुवे सब उपद्रव, अतीसार, पाण्डु रोग, अरोचक, ग्रह-

अनुपानं घृतं दद्यान्मधुतक्रं जलं पयः ॥ ११६ ॥
रोगानीक विनाशाय कौटजोलेह उत्तमः ॥ ११७ ॥
इति कुटजलेहः ।

त्रिवृच्चित्रक निर्गुण्डीस्नुह्यार्द्धीमुण्डिरिकाग्निमन्था ।
प्रत्येकशोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ॥११८॥
पलत्रयं विडङ्गञ्च व्योषात् कर्षत्रयं पृथक् ।
त्रिफलायाः पलं पञ्च शिलाजतुपलं न्यसेत् ॥११९॥
दिव्यौऽषधि (१) हतस्यापि वैकङ्कतयतस्य वा ।
पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ १२० ॥
पलैश्चतुर्विंशत्याज्यान्मधुशर्करयोर्युत ।
घनीभूते सुशीते च दापयेदवतारिते ॥ १२१ ॥
एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम् ।
मन्दमग्निं करोत्याशु कालाग्नि समतेजसम् ॥ १२२॥

अर्शरोग, कृशता, श्वयथु और कामला रोग दूर होजाते हैं। औषधि खानेके पीछे घी, मट्ठा, दूध या पानी पिलावे, यह कुटज अवलेह सब रोगोंका नाश करता है ॥ ११०—११७ ॥

निसोथ, चीता, सिनवर, थूहर, मुंजरिकाग्निमन्था ये औषधि आठ आठ पल लेकर एक द्रोण पानीमें पकावे, जब पकने लगे तब तीनपल विडङ्ग और पांचपल दिव्य अर्थात् सुधी, शिलाजीत पांचपल सोनामाखीकी भस्म, बारह पल लाल लोहेका

(१) दिव्यौषधि मनःशिलादिकं मारकद्रव्यं वैकङ्कतं स्वर्णमाक्षिकं तेन मारितस्य वा इति भानुदासः ।

पक्ष्वंता अपि जीर्य्यन्ति प्राशनादस्य देहिनाम्।
गुड़पथ्यान्नपानानि पयोमांसरसोहितः॥ १२३॥
दुर्नामपाण्डुश्वयथुकुष्ठप्लीहोदरापहम्।
अकालपलितं हन्यादामवातं गुदामयम्॥ १२४॥
न स रोगोऽस्ति यञ्चापि न निहन्ति क्षणादिदम्।
स्वल्पतोऽन्यथा लौहं भेदात् किट्टस्य दुर्जरम्॥१२५॥

इति अग्निमुखं लौहम्।

माणशूरणभल्लातविश्वहन्तीसमन्वितम्।
त्रिकत्रयसमायुक्तमयोदुर्नामनाशनम्॥ १२६॥

इति मानशूरणाद्यं लौहम्।

चूर्ण, बीसपल घी, बीसपल शहत और बीसपल शक्कर डालकर पकावे, जब अवलेह होजाय, तब उतारले और रोगीको खिलावे, इससे अर्श दूर होजाता है। मन्दाग्नि कालाग्निके समान तेज होजाती है। खानेमे पथ्यापथ्य भी पच जाता है। अर्श, पाण्डु रोग, श्वयथु, कुष्ट, प्लीहा और अर्श सहित आमवात दूर होजाता है। इससे मनुष्य बिना समय बूढ़ा नहीं होता ऐसा रोग जगतमें कोई नहीं जो इस औषधिसे अच्छा न हो सके, इसका नाम अग्निमुखलोह है॥ ११८—१२५॥

सूरन (जमीकन्द) भिलावा, निसोथ, जमालगोटा, हर्रे, बहेड़ा, आवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात और इलायची इन औषधियोंके खानेसे अर्श रोग दूर होजाता है। इसका नाम माणसूरनलोह है॥ १२६॥

रसस्तु पादिकस्तुल्या विडङ्गमरिचाभ्रकाः ।
गङ्गापालङ्कजरसे खल्लयित्वा पुनः पुनः ॥ १२७ ॥
रक्तिमात्रा गुदार्शोघ्नी वह्नेरत्यर्थदीपनी ॥ १२८ ॥

इति रसगुडिका ।

मृतसूतार्कलौहाभ्रविषं गन्धं समं समम् ।
सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १२९ ॥
द्रवैः शूरणमाणोत्थैर्भाव्यं खल्ले दिनत्रयम् ।
माषमात्रं लिहेदाज्यै रसस्त्वार्शांसि नाशयेत् ।
रसोनित्योदितोनाम गुदोद्भवकुलान्तकः ॥ १३० ॥

नित्योदितरसः ।

कासीसं फल्लानिरस्य द्रवलि यगोरोचनाञ्जनम् ।
लेपमात्रेण विस्राव्य रसान् हन्ति गुदाङ्कुरान् ॥१३१॥

इति कासीसादिलेपः ।

पारा एकभाग, तूतिया चारभाग, विडङ्ग मिर्च और अभ्रक एक एक भाग इन सबको गङ्गापालङ्कके रसमें बहुत बार घोटकर एकरत्तीकी गोली बनाले, इस गोलीसे अर्शरोग दूर होजाता है और अग्नि बहुत बढ़जाती इसका नाम रसवटी है ॥१२७॥ १२८ ॥

पारा, तांबा, लोहा और अभ्रक इनकी भस्म विष और गन्धक ये सब औषधि समान और इन सबके समान, भिलावां डालकर तीनदिन जमीकन्दके रसमें घोटे फिर घीके सङ्ग एक मासा खानेसे सब प्रकारके अर्शरोग दूर होजाते हैं। इसका नाम नित्योदित रस है ॥ १२९—१३० ॥

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः।
बन्धनात् सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शोनसंशयः॥ १३२॥

इति छेदनम्।

वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयान मुत्कटकासनम्।
यथास्वं दोषलञ्चान्नमर्शसः परिवर्जयेत्॥ १३३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां अर्शोऽधिकारः समाप्तः।

अथाजीर्णाऽधिकारः।

अजीर्णं सर्वव्याधीनां कारणं समुदाहृतम्।
तन्मूलो रोगसङ्घात स्तन्मूलं विषमाशनम्॥ १॥

कटहलीके फलका रस और मूसलीके खारको गोरोचनके पानीमें मिलाकर लगानेसे अर्शरोग दूर होजाता है॥१३१॥

एक डोरेको कईबार हल्दीके चूर्ण और थूहरके दूधमें भिगोकर बांधनेसे मसा निःसन्देह कट जाता है॥१३२॥

अर्शरोगी विष्ठादिके वेगको न रोके स्त्री प्रसङ्ग न करे हाथी, घोड़े और ऊंटादिकी पीठपर न चढ़े कठोर भोजन न करे और दोष बढ़ानेवाला भोजन भी न करे॥ १३३॥

भाषा भैषज्यरत्नावलीमें अर्शअधिकार समाप्त।

सब रोगोंका कारण अजीर्ण ही है और अजीर्णका कारण केवल विषम भोजन है। अर्थात् समय और मात्राका हेर-फेर होनेसे मनुष्यको अजीर्ण होजाता है। अर्थात् भोजन नहीं पचता और उस होसे सब रोगोंकी उत्पत्ति होती है॥१॥

वातपित्तकफैरग्निर्विषम स्तीक्ष्णमन्दकौ ।
समश्चेति स्मृतो वैद्यैरेवं स तु चतुर्विधः ॥ २ ॥

अथ विषमाग्नि लक्षणम् ।

विषमाग्नेस्तुमात्राऽपि कदाचित्पच्यते सुखम् ।
विपच्यते कदाचिन्न कदाचित्कष्टतस्तथा ॥ ३ ॥
अंत्र कूजनमाध्मान मुदावर्त्तं प्रवाहिका ।
अतीसारं गौरवञ्च शूल तस्यतु लक्षणम् ॥ ४ ॥

अथ तीक्ष्णाग्नि लक्षणम् ।

मात्राऽधिकश्च तीक्ष्णाग्नेः पच्यतेचातिवेगतः ।
अतः कैश्चिदयं वाञ्छनुत्तमः स्वीकृतो बुधैः ॥ ५ ॥

वात, पित्त, और कफसे विषम तीक्ष्ण और सम तीन प्रकारकी अग्नि होजाती है, अर्थात् वातसे विषम, पित्तसे तीक्ष्ण और कफसे मन्दाग्नि होजाती है। एक सम भी अग्निका भेद है, इस प्रकार प्राचीन वैद्योंने चार प्रकारकी अग्नि कही है ॥२॥

जिस मनुष्यकी विषमाग्नि होती है, उसको मात्राके अनुसार किया हुआ भोजनकभी सुखसे पचाता है। कभी दुःखसे और कभी नहीं भी पचता है। रोगीका पेट फूलता है, अती-सार होता है, प्रवाहिका और शूल भी होते हैं और आंत कूजती रहती है। शरीर भारी होजाता है ॥३—४॥

तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्यको मात्रासे अधिक किया हुआ भोजन उसी समय पच जाता है। इस लिये कोई कोई वैद्य इस अग्निको उत्तम कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ मन्दाग्नि लक्षणम्।

सम्यङ् नपाकमुपयाति नरस्य तस्य
भुक्तं तथाऽल्पमपि मन्दहुताशनस्य।
सार्द्रःप्रसेक वमनाऽरुचि गौरवाद्याः
नित्यं भवन्ति मद्पीनसकासनिद्राः॥ ६॥

अथ समाग्नि लक्षणम्।

समाग्नेरशितामात्रा सम्यगेवविपच्यते।
अतोऽयमग्निः सर्वेषु श्रेष्ठोऽग्निषुमतीबुधैः॥ ७॥

अथ भस्माग्नि लक्षणम्।

रूक्षाशिनोनुः पवनोऽथपित्तम्
क्षीणेकफेवृद्धतमौ भवेताम्।
वातान्वितो वह्निरतिप्रवृद्धो
सर्वक्षणाद्भस्मकरोति भुक्तम्॥ ८॥

मन्दाग्निवाले मनुष्यको मात्रासे कम. किया हुआ हलका भोजन भी सुखसे नहीं पचता और दुर्बलता, वमन, अरुचि, शरीरका भारीपन, पीनस, खांसी और निद्रा आदि उपद्रव बढ़ जाते हैं॥ ६॥

सम अग्निवाले मनुष्यको मात्राके अनुसार किया हुआ भोजन सुखसे पच जाता है, इस लिये वैद्योंने सब अग्नियोंमें इसे ही श्रेष्ठ कहा है॥ ७॥

जब रूखा भोजन करते करते मनुष्यका कफ क्षीण होजाता है और वात, पित्त बहुत बढ़ जाते हैं। तब वायु अग्निको

वैद्योत्तमैरेष उदाहृतोऽतो
सुभस्मकोऽग्निः खलुरोगसंघे ।
तृट्स्वेददाहारति छर्दिनाद्याः
उपद्रवास्तस्य सचात्तिधातून् (१) ॥ ९ ॥

अथाजीर्णस्य विप्रकृष्टं निदानमाह ।

विषमभोजनस्वप्नविपर्य्ययैः
रतिजलादि रतिश्रमकारणैः ।
लघु च सात्म्यमथापि न पक्वताम्
व्रजतिभुक्तमथो मनुजस्यवै ॥ १० ॥

अथ जीर्णस्यकारणमाह ।

मूर्खाये पशुवत्सर्वं भुञ्जन्तेऽन्नममात्रया ।
तेजीर्णं रोगसङ्घानां मूलं सम्प्राप्नुवन्तिहि ॥ ११ ॥

बहुत बढ़देता है। वह बढ़ी हुई अग्नि सब प्रका . किये हुये भोजनको क्षणभरमें भस्म कर देती है और कुछ भोजन न मिलनेसे धातुओंको भस्म करने लगती है। रोगी प्यास, पसीना, दाह, अरति और वमनसे व्याकुल रहता है, वैद्योंने इसका नाम भस्मकअग्नि रक्खा है ॥ ८—९ ॥

विषम भोजन अर्थात् बे समय या अधिक, कम, भोजन करनेसे, बहुत मैथुन और अधिक परिश्रम, करनेसे हलका और अनुकूल भोजन भी नहीं पचता है ॥१०॥

जो मूर्ख पशुके समान विना मात्रा भोजन करता है।

(१) उपेक्षितः सन् ।

भ्रमोऽरतिर्गौरवञ्च ग्लानिर्विष्टम्भ एव च।
सामान्याजीर्ण चिह्नानि भवन्त्येतानि पण्डिताः॥१२॥

अथाजीर्णभेदानाह।

वातपित्तकफैर्दोषैः विष्टब्धञ्च विदग्धकम्।
आमञ्चेति भिषग्वर्य्यैः त्रिधाजीर्णं प्रकाशितम्॥१३॥
चतुर्थं रसशेषं हि दिनपाकि च पञ्चमम्।
अजीर्णं प्राकृतं षष्टं निर्दोषं प्रतिवासरम्॥१४॥

अथ विष्टब्धाजीर्णलक्षणम्।

वातमूत्र पुरीषाणामप्रवृत्तिश्चवेदनाः।
वातजाः शूलमाध्मानं विष्टब्धाजीर्णलक्षणम्॥१५॥

अथ विदग्धाजीर्णलक्षणम्।

स्वेदो दाहश्च तृष्णा च मूर्च्छा पित्तोद्भवारुजः।
सधूमश्चाम्ल उद्गारो विदग्धे भ्रम एव च॥१६॥

इसको सब रोगोंका कारण अजीर्ण रोग होता है। सामान्य अजीर्णमें भ्रम, अरति, शरीरका भारीपन, ग्लानि और विष्टा रुकना ये लक्षण होते हैं॥ ११ ॥ १२ ॥

वातसे विष्टब्ध, पित्तसे विदग्ध और कफसे आमाजीर्ण उत्पन्न होता है। रस शेषदिन, पाकी और प्राकृत ये तीन और भी अजीर्णके भेद हैं। इस प्रकारसे छः प्रकारका अजीर्ण हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥

विष्टब्ध अजीर्णमें विष्टा और मूत्ररुक जाते हैं। शरीरमें वायुकी पीड़ा होती है। और पेट फूलता है॥ १५ ॥

अथामाजीर्णस्य लक्षणम् ।

उद्गारो गुरुतोत् क्लेशः शोथो गण्डाक्षि कूटगः ।
आमाजीर्णस्य चिह्नम् हि वैद्यै राद्यै रुदीरितम् ॥१७॥

अथ रसशेषाजीर्णस्य लक्षणम् ।

अन्नद्वेषो गौरवञ्च रसशेषे प्रुदीरितम् ॥ १८ ॥

अथोपद्रवनाह ।

भ्रमः प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनन्तथा ।
मूर्च्छा च मरणञ्चापि अजीर्णोपद्रवा अमी ॥१९॥

अथ विसूचिकादीनाह ।

विसूचीचालसकश्चैव अजीर्णाच्च विलम्बिका ॥२०॥

विदग्धाजीर्णमें पसीना, दाह, प्यास, मूर्च्छा चित्तमें उत्पन्न होते रोग और धुंएके सहित डकार आना, ये लक्षण होते हैं ॥ १६ ॥

आमाजीर्णमें डकार शरीरका भारीपन और आखमें सूजन ये लक्षण होते हैं ॥ १७ ॥

अन्न खानेकी इच्छा न होनी और शरीरका भारीपन ये रसशेषाजीर्णके लक्षण होते हैं ॥ १८ ॥

अजीर्णमें भ्रम, वृथा बकना, वमन, दस्त, थकाई और मूर्च्छा ये उपद्रव होते हैं और रोगी मर भी जाता है ॥ १९ ॥

अजीर्णहोसे विसूचिका, अलसक, और विलम्बिका रोग भी होजाते हैं ॥ २० ॥

विसूच्याः निरुक्तिमाह ।

अजीर्णे सूचिसङ्घैन तुदन्निव मरुद्‌बली ।
यत्र तिष्ठति सावैद्यैर्विसूचीकथिताभुवि ॥ २१ ॥

विसूच्यानिदानमाह ।

मूढप्रज्ञाश्च लुब्धाश्च लभन्तेऽशास्त्रवेदिन ।
न तान्तु प्रमिताहाराः पण्डिताः शास्त्रवेदिनः ॥२२॥

विसूच्यालक्षणमाह ।

अतीसारो मूर्च्छा वमथुभ्रमदाहाश्च कसनम् ।
विवर्णत्वं जृम्भा दहनसदनं शूलमरतिः ॥
शिरःपीड़ा कम्पोहृदयतुदनं ह्यप्यमरुचिः ।
विसूच्यां सद्वैद्यैः कथितमिदमाद्यैः सुमतिभिः ॥२३

. विसूच्या उपद्रवानाह ।

सञ्ज्ञानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विनिद्रता ।

जिस रोगमें वायु सूईसे छेदनेके समान शरीरमें पीड़ा करे उसका नाम विसूचिका है ॥ २१ ॥

जो आयुर्वेद न पढ़े मूर्ख पशुके समान भोजन करते हैं । उन्हीं को विसूचिका रोग होता है और प्रमाणसे भोजन करने वाले पण्डितोंको यह रोग कभी नहीं होता ॥ २२ ॥

विसूचिकामें अतीसार, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, शरीर का रंग दूसरा होना, जमुहाई, मन्दाग्नि, शूल, किसी वस्तुकी इच्छा न होनी, शिरमें पीड़ा और भोजनकी इच्छा न होना ये लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥

विसूच्याः पञ्चघोरा वै अमी चोपद्रवा स्मृताः ॥२४॥

अथालसकमाह ।

वातमूत्र पुरीषाणां निरोधश्चांत्र कूजनम् ।
तृष्णोद्गारौ तथा त्यर्थं यस्मिन्नालसकश्च तत् ॥२५॥
यस्मिन्नभुक्तं यात्यूर्ध्वं न चैवाधः प्रवर्त्तते ।
काश्यपोऽलसकं तं वै प्राहायुर्वेदवित्तमः ॥ २६ ॥

विसूच्यलसकयोररिष्टमाह ।

विनष्टसंज्ञोऽल्प तरस्वरश्च
श्यावोष्ठदन्तो वमिपीड़ितश्च ।
अभ्यन्तराक्षो विगताङ्ग संधिः
साध्यो न चासौ भिषजांगतेन ॥ २७ ॥

संज्ञानाश, अरति, शरीर कांपना, मूत्र रुकना और निद्रा न आनी ये पांच विसूचिकाके उपद्रव हैं ॥ २४ ॥

इस रोगमें जिसरोगीकी संज्ञानाश होजाय स्वर बहुत कम होजाय, दांत नखून और होंठकाले होजायं वमन अधिक हों, आंख नीचेको दबजायं शरीरके जोड़ भिन्न भिन्न मालूम हों वह रोगी नहीं जीता ॥ २५ ॥

आलकस रोगमें मूत्र, विष्टा और वायु रुक जाते हैं आंतमें एक प्रकारका शब्द होने लगता है प्यास और डकार बहुत आती हैं। कश्यपमुनिने लिखा है कि इस रोगमें किया हुआ भोजनन ऊपरको आता है, और न नीचेको अर्थात् न वमन होता है न दस्त ॥ २६ ॥ २७ ॥

विलम्बिका लक्षणमाह।

विलम्बिकाप्यालसवत् वैद्याः प्राहुः पुरातनाः॥ २८॥

जीर्णान्नलक्षणमाह।

विष्टोत्सर्गोऽथलघुता क्षुत् पिपासोदयस्तथा।
उद्गार शुद्धिरुत्साहो जीर्णाहारस्य लक्षणम्॥२९॥

अथ चिकित्सा।

सारमेतच्चिकित्सायाः परमग्नेश्च पालनम्।
तस्माद् यत्नेन कर्त्तव्यं वह्नेस्तु प्रतिपालनम्॥३०॥
अस्तु दोषशतं क्रुद्धं सन्तु व्याधिशतानि च।
कायाग्निमेव मतिमान् रक्षन् रक्षति जीवितम्॥३१
समस्य रक्षणं कार्य्यं विषमे वातनिग्रहः।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारोमन्दे श्लेष्मविशोषणम्॥३२॥

विलम्बिकाके लक्षण भी अलसकहीके समान हैं॥ २८॥

जिस रोगीको दस्त आने लगें शरीर हलका होजाय, डाकार शुद्ध आने लगें और उत्साह बढ़ जाय उसे जानेकी इसका अन्न पच गया॥ २९॥

आगे अजीर्णकी चिकित्सा लिखते हैं।

आयुर्वेदका यह सिद्धान्त है और चिकित्साका यही सार है। कि अग्निको ठीक रक्खे इस लिये, वैद्यको उचित है। कि सब यत्नोंसे जेठराग्निका पालन करे, चाहे शरीरमें सौ रोग क्यों न उत्पन्न हुये हों, परन्तु बुद्धिमान् वैद्य, यदि जेठराग्निकी रक्षाकर सकैतो प्राणोंकी जीवनकी रक्षाकरली, जेठराग्निकी

सिन्धूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्णं
मुष्णाम्बुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ।
तस्यामिषेण सघृतेन वरं नवान्नं
भस्मीभवत्यशितमात्रमिहक्षणेन ॥ ३३ ॥

इति सैन्धवादिचूर्णम् ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरकेद्वे
समधरणधृतानामष्टमोहिङ्गुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतत्
जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च(१) हन्ति ॥३४॥

इति हिङ्ग्वाष्टकं चूर्णम् ।

रक्षाहो आवश्यक है । यदि जठराग्नि सम अर्थात् न बहुत अधिक और न बहुत कम हो । तो वैद्य इसकी रक्षा करें अर्थात् ऐसी औषधि दे, और ऐसी क्रिया करें कि जिससे वह घटने बढ़ने न पावे विषम अर्थात् कभी घटती और कभी बढ़ती हो तो, वायुको दूर करनेकी चिकित्सा करे यदि तीक्ष्ण अर्थात् बहुत ही अधिक हो, तो पित्तको शान्त करे और यदि मन्दाग्नि हो, तो कफ सुखानेकी चिकित्सा करे ॥ ३०—३२ ॥

सेंधानमक, हर्र, पीपल और चीतेका चूर्ण गर्म जलके सङ्ग पीनेसे, अग्नि बहुत बढ़जाती है । और यदि घीके सङ्ग खाय तो जिस मनुष्यकी अग्नि नष्ट होगई हो, उसको भोजन किया हुआ मांस भी पच जाता है, इसका नाम सैन्धवादि चूर्ण है ॥ ३३ ॥

(१) गुल्मादीन् ।

हिङ्गुभागोभवेदेकोवचा च द्विगुणा भवेत्।
पिप्पली त्रिगुणाचात्र शृङ्गवेरं चतुर्गुणम्॥ ३५॥
यमानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी।
चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठमष्टगुणं भवेत्॥ ३६॥
एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया (१)।
पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा॥ ३७॥
सोदावर्त्तमजीर्णञ्च प्लीहानमुदरं तथा।
अङ्गानि यस्य शीर्य्यन्ति विषं वा येन भक्षितम्॥३८॥
अर्शोहरं दीपनञ्च शूलघ्नं गुल्मनाशनम्।
कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव क्षयनाशनम्॥ ३९॥
चूर्णमग्निमुखं नाम न क्वचित् प्रतिहन्यते॥ ४०॥

इति स्वल्पाग्निमुखचूर्णम्।

सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोदा, सेंधा, जीरा और स्याह जीरा ये सब एक एक धरन, और इन सबसे आठवाँ भाग हींग डालकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णको भोजनके पहिले ग्रासके सङ्ग घी मिलाकर खानेसे, जेठराग्नि बहुत बढ़ती है और बात रोग दूर होजाते हैं इसका नाम हिंग्वाष्टक चूर्ण है॥ ३४॥

एक भाग हींग, दो भाग बच, (रसभरी) पीपल तीनभाग, सोंठ चार भाग, अजवाइन पाँच भाग, हर्र छः भाग, चीता सातभाग और कूट आठ भाग इनका चूर्ण बनाकर मद्यके सङ्ग पीनेसे बातरोग दूर होजाते हैं। इस चूर्णको दही, मट्ठा,

(१) सुराविशेषया।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च ।
सूक्ष्मैला पत्रकं भार्गी क्रिमिघ्नं हिङ्गु पुष्करम् ॥४१॥
शटी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवस्तथा ।
धात्री जीरकवृक्षाम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४२ ॥
अम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च ।
अभयाऽतिविषा श्यामा हबुषारग्वधं समम् ॥ ४३ ॥
तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ।
क्षाराणि लौहकिट्टञ्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ ४४ ॥
समभागानि सर्वाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
मातुलुङ्गरसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४५ ॥
दिनत्रयन्तु शुक्तेन आर्द्रकस्य रसेन च ।
अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ४६ ॥

मद्य और उष्ण जलके सङ्ग पीनेसे, उदावर्त्त, अजीर्ण, पिलही, उदररोग, शरीर शिथिलता, विष, अर्श, मन्दाग्नि, शूल, गुल्म खाँसी, श्वास और राजयक्ष्मा रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम अल्प अग्निमुख चूर्ण है ॥ ३५ ॥ ४० ॥

जवाखार, सज्जीखार, चीता, पाढ़ा, करञ्जवा, पाँचोनमक, छोटी इलाची, चीता, भारङ्गी, (बम्हनेटी) बिड़ङ्ग, हींग, पुष्कर मूल, कचूर, तेजपात दारुहल्दी, निसोत, मोथा, रसभरी, इन्द्रजौ, आमला, जीरा, अमलवेद, हर्र, कलौंजी, वृक्षाम्ल, इमिली, अजवाइन, देवदारु, हर्र, अतीस, पीपल, खुरासानी अजवाइन और किरवाला ये सब समान समान तिल, मुषकक, सहजना

उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिरान्नदान्।
अजीर्णकमथोगुल्मान् प्लीहानं गुदजानि च॥ ४७॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिञ्च अष्ठीलां वातशोणितम्।
प्रणुदत्युल्वणान् रोगान्नष्टमग्निं प्रदीपयेत्॥ ४८॥
अम्लव्यञ्जनोपेतं भक्तं कृत्वा सुभाजने।
दापयेदस्य चूर्णस्य विडालपदमात्रकम्॥ ४९॥
गोदोहमात्रात्तत्सर्वं द्रवीभवति सोष्मकम्॥ ५०॥

इति वृहदग्निमुखचूर्णम्।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम्।
सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तालीशकेशरम्॥ ५१॥
एषां द्विपलिकान् भागान् पञ्च सौवर्चलस्य च।
मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम्॥ ५२॥

और एकपल गोमूत्रमें बुझा, लोहेका मैल डालकर चूर्ण बनावे फिर इस चूर्णको तीनदिन तक नीबूके रसमें तीनदिन तक पहिले लिखे मूत्रमें और तीनदिनतक अदरकके रसमें भिगो कर रक्खे, इस चूर्णको विधिपूर्वक खानेसे शीघ्रही अजीर्ण, गुल्म, पिलही, अर्श, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्टीला और वातरोग दूर होजाते हैं। सब भोजनोंको थालीमें परस कर एक विडाल-पद यह चूर्ण डाल दे, तब उसी समय वह भोजन गर्म और पतला हो जाता है। इसका नाम वृहदग्निमुख चूर्ण है॥ ४१॥ ५०॥

पीपल, पिपलामूल, धनियाँ, कालाजीरा, सेंधानोन, विड-नोन, तेजपात और तालीश ये सब दो दो पल, कालानिमक

त्वगेले चार्द्धभागे च सामुद्रात् कुडवद्वयम् ।
दाड़िमात् कुडवश्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ५३ ॥
एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्य ममृतोपमम् ।
लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥ ५४ ॥
जगतस्तु हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम् ।
वातगुल्मं निहन्त्याशु वातशूलानि यानि च ॥ ५५ ॥
तक्रमस्तुरासीधुशुक्तकाञ्जिकयोजितम् ।
जाङ्गलामाश्च मांसेन रसेन विविधेन च ॥ ५६ ॥
मन्दाग्नेरग्नतोनित्यं भवेदस्यैव पावकः ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं कुष्ठामयभगन्दरान् ॥ ५७ ॥
हृद्रोगमामदोषञ्च विबन्धानुदरे स्थितान् ।
प्लीहानमश्मरीश्चैव श्वासकासोदरक्रिमीन् ॥ ५८ ॥
विशेषतः शर्करादीन्रोगान्नानाविधांस्तथा ।
पाण्डुरोगांश्च विविधान्नाशयत्यशनिर्यथा ॥ ५९ ॥

इति भास्करलवणम् ।

पीपपल, मिर्च, जीरा और सोंठ, एक एक पल, तज और इलायची आधा आधा पल, समुद्रनोन, दो कुड़व, दाड़मी अनार, एक कुड़व और अमलवेद दो पल, इन सबको चूर्ण करके गन्धक मिलावे, इससे वात कफसे उत्पन्न हुए रोग, वातगुल्म, वातशूल, अर्श, ग्रहणीदोष, कुष्ट, भगंदर, हृद्रोग, विबन्ध, पिलही, अश्मरी, खाँसी, सांस, क्रिमिरोग, शर्करारोग और अनेक प्रकारके पाण्डु-रोग दूर होजाते हैं। जो मन्दाग्निवाला मनुष्य मट्ठा, दही का-

वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ॥ ६० ॥

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं
शीताम्बुना वै परिपाकमेति ।
तत्तस्य (१) शैत्येन निहन्ति पित्त-
माक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥ ६१ ॥

हरीतकी धान्यतुषोदसिद्धा(२)
सपिप्पली सैन्धवसंप्रयुक्ता ।
सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं
विजित्य सद्योजनयेत् क्षुधाञ्च ॥ ६२ ॥

गोड़, मद्य, सीधु, शुक्त और काञ्जीके सङ्ग इस चूर्णको खाता है उसकी अग्नि बहुत बढ़जाती है इसको जङ्गली जन्तुओंके मांसके रसके सङ्ग भी खाना चाहिये। भगवान सूर्य्यने सब जगत्के कल्याणके अर्थ यह चूर्ण बनाया था, इस लिये इसका नाम भास्करलवण है ॥ ५१—५८ ॥

आमाजीर्णमें बच या निमक का पानी पीकर वमन लेना उचित है ॥ ६० ॥

जो अन्न नहीं पचता और विदग्ध होजाता है अर्थात् जल जाता है। वह ठण्ढापानी पीनेसे, शीघ्रही पचजाता है क्योंकि वह ठण्ढाजल, अपनी शीतलतासे पित्तको शान्त करता है। और पतला होनेके कारण उस विना पके अन्नको अपने सङ्ग हो, गुदामार्गसे निकाल देता है ॥ ६१ ॥

तुषोदकमें पकी हर्रके सङ्ग पीपल धनियां और सेन्धानिमक

(१) तत्शीतजलं शैत्येन तस्यामाजीर्णस्य। (२) पूर्वक्रम।

विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं पेयञ्च लवणोदकम् ।
रसशेषे दिवास्वप्नं लङ्घनं वातवर्जनम् ॥ ६३ ॥
व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतः (१) क्लान्तानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् ।
क्षीणान् क्षीणकफान्शिशून्मदहतान् वृद्धान्रसाजीर्णिनो
रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत्॥६४
आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुत्र्यूषणसैन्धवैः ।
दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णविनाशनम् ॥ ६५ ॥

इति हिङ्ग्वादिलेपः ।

मिला कर खानेसे धुआँ सहित खट्टी डकार दूर होजाती है। और घोर अजीर्ण पचकर उसी समय भूख लग आती है ॥६२॥

विष्टब्धाजीर्ण में पसीना देना और निमक का पानी पिलाना उचित है। रस शेष अजीर्णमें दिनमें सोना लङ्घन और वायु न लगने देना पथ्य है ॥ ६३ ॥

व्यायाम (कसरत) मैथुन और मार्ग चलनेसे थके, अतीसारी, शूल, स्वास, प्यास, हिचकी और वायुरोगसे पीड़ित, क्षीण, कफहीन, बालक, मन्दाग्नि, बूढ़े रात्रिमें जागे और रसाजीर्ण रोगी को उसकी इच्छानुसार दिनमें सोनेदे ॥ ६४ ॥

बुद्धिमान वैद्य जिस रोगीको दिनमें सोनेकी सम्मति दे, उसको छाती पर हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल और सेन्धानिमक पीस कर लेप करदे, इससे सब प्रकारके अजीर्ण शान्त होजाते हैं॥६५

(१) व्यायाम प्रमदाध्ववाहनरत क्लान्तानतिसारी पाठो भानुदास सम्मत ।

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत्।
मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक्॥ ६६ ॥
चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दानलमरोचकम्।
आध्मानं वातगुल्मञ्च शूलञ्चाशु नियच्छति ॥ ६७ ॥

इति पथ्याचूर्णम्।

विसूचिकायां वमितं विरिक्तं
सुलङ्घितं वा मनुजं विदित्वा।
पेयादिभिर्दीपनपाचनैश्च
सम्यक् क्षुधार्त्तं समुपक्रमेत ॥ ६८ ॥

जलपीतमपामार्गमूलं हन्ति विसूचिकाम् ॥ ६९ ॥

इति अपामार्गकल्कः।

कुष्ठसंन्धवयोः कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम् ॥ ७० ॥

इति कुष्ठादिकल्कः।

हर्र, पीपल और कालेनिमक का चूर्ण दोषके अनुसार दहीके तोड़ या गर्मजल के सङ्ग पीनेसे, चारों प्रकारके अजीर्ण मन्दाग्नि, अरोचक, आध्मान, वातगुल्म और शूलरोग शीघ्रही दूर होजाते हैं। इसका नाम पथ्याचूर्ण है ॥ ६६—६७ ॥

विसूचिका रोगमें रोगीको वमन, विरेचन और लङ्घन देने के पश्चात् भूख लगने पर दीपन और पाचन औषधियोंके समेत यवागू आदि भोजन दे ॥ ६८ ॥

जलमें लटजीरे की जड़ पीसकर पीनेसे। या कूट और सेन्धे

विसूच्यां मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ ७१ ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रां
मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः ।
छायाविशुष्का गुडिकाः कृतास्ताः
हन्युर्विशूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ७२ ॥

इति व्योषादिवटिका ।

गुडपुष्पशिखरीतण्डुल गिरिकर्णिका हरिद्राभिः ।
अञ्जनगुडिका विनयति विसूचिकां त्रिकटुसंयुक्ता॥७३

इति गुडपुष्पादिवटी ।

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठै-
रम्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः ।

को पीसकर चूक और तेल मिलाकर खानेसे विसूचिका ॰ग दूर होजाता है । इसका नाम कुष्ठादि कल्क है ॥ ६८ ॥ ॥

विसूचिकारोग में उष्ण औषधि मलनेसे, खल्लनामक शूल दूर होजाता है ॥ ७१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हल्दी, करंजवा और मातुलुंगी की जड़की गोली बनाकर छाया में सुखालि, इस गोलीको आंखमें आंजनेसे विसूचिकारोग दूर होजाता है। इसका नाम व्योषादि वटिका है ॥ ७२ ॥

महुवा, लटजीरा, चौलाई, कुरैया बीज, हल्दी, सोंठ, मिर्च, पीपल, इनकी गोली बनाकर आंखमें आञ्जनसे, विसूचिकारोग दूर होजाता है । इसका नाम गुडपुष्पादि वटी है ॥७३॥

उद्वर्त्तनं खल्लिविसूचिकाघ्नं
तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि (१) ॥ ७४ ॥

इति त्वगाद्युद्वर्तनम् ।

वमनं त्वलसे पूर्वं लवणेनोष्णवारिणा ।
स्वेदोवर्त्ति र्लङ्घनञ्च क्रमशस्तोऽग्नि(२)वर्द्धनः ॥ ७५ ॥
सरुक् स्थानञ्च मुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत् ।
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ॥ ७६ ॥

इति दार्व्वादिलेपः ।

तक्रेणयुक्तं यवचूर्णमुष्णं
सक्षारमर्त्तिं जठरेनिहन्यात् ।

तज, तेजपात, रासन, अगर, कूट, सहजनाका बीज, बच और सौंफको पानीमें, पीसकर शरीर में उबटन करनेसे, विसूचिका और खल्लीशूल दूर होजाता है। इन्हीं औषधियोंमें पका हुआ तेल लगानेसे भी यही लाभ होता है। इसका नाम त्वगादि उद्वर्त्तन और त्वगादि तैल है ॥ ७४ ॥

अलस नामक अजीर्ण में पहिले नमक पड़ा गर्मजल पिला कर वमन करावे, फिर पसीना देकर लङ्घन दे, इस क्रमसे अग्नि बढ़जाती है ॥ ७५ ॥

देवदारु, हर, कूट, सौंफ, हींग और सेन्धानमक को काँजी में पीसकर लेप करनेसे पेटकी पीड़ा दूर होजाती है। इसका नाम दारवादि लेप है ॥ ७६ ॥

मट्ठेमें पिसे इन्द्रजौ और जवाखारका चूर्ण गर्म करके पीनेसे

---

(१) विसूचिका नाशनम् । (२) अस्मात् क्रमात् ।

स्वेदोघटैर्वा बहुवाष्पपूर्णैः
कृष्णैस्तथान्यैरपिपाणितापैः ॥ ७७ ॥

इति यवचूर्णम् ।

तीव्रार्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ।
दोषच्छन्नोऽनलोनाऽलं पक्तुं तदौषधाशनम् ॥ ७८ ॥
लवङ्गं पिप्पली शुण्ठी मरिचं जीरकद्वयम् ।
केशरं तगरञ्चैव एला जातीफलं तुगा ॥ ७९ ॥
कफट्लं तेजपत्रञ्च पद्मबीजं सचन्दनम् ।
कक्कोलमगुरुश्चैव उशीरमभ्रकं तथा ॥ ८० ॥
कर्पूरं जातिकोषञ्च मुस्तं मांसी यवस्तथा ।
धान्यकं शतपुष्पा च लवङ्गं सर्वतुल्यकम् ॥ ८१ ॥

पेट की पीड़ा दूर होजाती है। एक घड़े में औषधि भरकर उसे उबालके उसकी वाष्प (भाफ) देनेसे अथवा कं शा हाथ सेंककर रोगीका शरीर सेकनेसे पसीना आता है। इसका नाम यवचूर्ण है ॥ ७७ ॥

घोर पीड़ासे पीड़ित होने पर भी अजीर्णरोगी शूलनाश करनेवाली औषधि न खाय क्योंकि दोषोंसे ढपी हुई अग्नि उसे नहीं पचा सकती ॥ ७८ ॥

लौंग, पीपल, सोंठ, मिर्च, जीरा, स्याहजीरा, नागकेशर, तगर, इलायची, जायफल, वंशलोचन, कायफल, तेजपात, कमल गट्टे के बीज, चन्दन, शीतल चीनी, अगर, खस, अभ्रक, कपूर, जाविची मोथा, जटामासी, इन्द्रजौ, धनियां, सौंफ, ये सब एक २

सर्वचूर्णद्विगुणितां शर्करां विनियोजयेत्।
सर्वरोगं निहन्त्याशु अम्लपित्तं सुदारुणम्॥ ८२॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च कामलापाण्डुरोगनुत्।
बलपुष्टिकरञ्चैव विशेषात् शुक्रवर्द्धनम्॥ ८३॥
ग्रहणीं सर्वरूपाञ्च अतीसारं सुदुर्जयम्।
अश्विभ्यां निर्मितं हन्ति लवङ्गाद्यमिदं शुभम्॥८४॥

इति लवङ्गाद्यं मोदकम्।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं मरिचं शिवा।
धात्री चित्रकमभ्रञ्च (१) गुडूची कटुरोहिणी॥८५॥
प्रत्येकमेषां कर्षांशं चूर्णं दन्त्यास्त्रिकार्षिकम्।
द्विपलं त्रिवृताचूर्णं शर्करायाः पलत्रयम्॥ ८६॥
मधुनामोदकं कार्य्यं सुकुमारकसंज्ञकम्।
वाताजीर्णप्रशमनं विष्टम्भे परमौषधम्।
उदावर्त्तानाहहरं सर्वाजीर्णविनाशनम्॥ ८७॥

इति वाताजीर्णे सुकुमारमोदकम्।

भाग और इन सबके समान लौंग पीसकर और इन सबसे दूनी शक्कर मिलाकर लड्डू बनावे, इन लड्डूओंसे घोर अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग, अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुई संग्रहणी और घोर अतीसार दूर होजाते हैं। अश्विनीकुमारोंने इसका नाम लवङ्गादिमोदमक रक्खा है॥ ७८—८४॥

पीपल, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, हर्र, आमला, चीता, मोथा, गुरिच, कुटकी ये सब एक एक कर्ष; जमालगोटेकी जड़

(१) अभ्रंकुस्तम्।

हरीतक्याः शतं ग्राह्यं तक्रैः स्विन्नञ्च कारयेत्।
यत्नाद्बीजं समुद्धृत्य चूर्णानीमानि पूरयेत्॥ ८८॥
षड़्षणं पञ्चपटु यमानीद्वयमेवच।
त्रिक्षारं हिङ्गुदिव्यञ्च कर्षद्वयमितं पृथक्॥ ८९॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भावयेत्।
लिम्पाकस्वरसेनापि भावयेच्च दिनत्रयम्॥ ९०॥
खादयेदभयामेकां सर्वाजीर्णविनाशिनीम्।
चतुर्विधमजीर्णञ्च वह्निमान्द्यं विसूचिकाम्॥ ९१॥
गुल्मशूलादिरोगांश्च नाशयेदविकल्पतः॥ ९२॥
इति वाताजीर्णे हरीतकीप्रयोगः।

तीन कर्ष, निसोत टोपल इन सब औषधियों में तीन पल शक्कर और शहत मिलाकर लड्डू बनावे. इन लड्डुओंसे वातसे उत्पन्न हुआ अजीर्ण, आनाह, उदावर्त्त और   प्रकार का अजीर्ण दूर होजाता है। इसका नाम सुकुमार मोदक है॥ ८५॥ ८७॥

एक सौ हर्र लेकर मट्ठे में डालकर उबाले, फिर गुठली निकाल कर फेंकदे, षड़ूषण पांचों निमक, दोनों अजवाइन, तीनों खार, हींग और पाढ़ा इन सबको पीसकर चूर्ण बनाकर चुक्रके रस में और नींबूके रसमे तीन दिन तक भिगोकर रोगीको खिलावे, इसका नाम वाताजीर्ण हरीतकी है। इससे सब प्रकारके अजीर्ण मन्दाग्नि, विसूचिका, गुल्म और शूलादि रोग निश्चय दूर होजाते हैं॥ ८८—९२॥

त्रिवृद्दन्ती कणामूलं कणा वह्नि पलं पलम् ।
सर्वतुल्यामृता शुण्ठी गुडेन सह मोदकम् ॥ ९३ ॥
कर्षकं भक्षयेन्नित्यं दीप्ताग्निं कुरुते क्षणात् ॥ ९४ ॥

इति विष्टम्भे त्रिवृतादिमोदकम् ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता पुष्करं समम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु सैन्धवम् ॥९५॥
भावयित्वा स्नुहीक्षीरैस्तत्काण्डे निःक्षिपेत्ततः ।
मृदुपङ्केनानुलिप्तं प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ ९६ ॥
सुदग्धन्तु समुद्धृत्य संचूर्ण्योष्णाम्बुना पिवेत् ।
एतदग्निमुखं नाम लवणं वह्निकृत् परम् ॥ ९७ ॥
यकृत् प्लीहोदरानाहगुल्मार्शः पार्श्वशूलनुत् ॥९८॥

इति विष्टम्भे अग्निमुखलवणम् ।

निसोत, जमालगोटेकी जड़ पिपलामूल, पीपल और चीता एक एक पल, गुरिच चारपल और सोंठ चारपल इन सबको पीसकर गुड़में मिलाकर एक एक कर्षके लड्डु बनाकर खानेसे उसी समय अग्नि बढ़जाती है। इसका नाम त्रिवृतादि मोदक है ॥९३॥९४

चीता, हर्र, वहेड़ा, आंवला, जमालगोटेकी जड़, निसोत और पुष्करमूल, ये सब समान और इन सबके समान सेन्धानिमक मिलाकर थूहरके दूधमें भिगोकर थूहर की लकड़ी में भरकर कपड़ौटी करके आगमें जलावे, इस भस्मको गर्मपानीके सङ्ग पीनेसे, यकृत्, पिलही, पेटके रोग, गुल्म, अर्श और पशुलीके शूल दूर होजाते हैं। इसका नाम अग्निमुख लवण है ॥
॥ ९५ ॥ ९८ ॥

पिप्पली शृङ्गवेरञ्च देवदारु सचित्रकम् ।
चविकां विल्वपेषीञ्च अजमोदां हरीतकीम् ॥ ९९ ॥
महौषधं यमानीञ्च धान्यकं मरिचं तथा ।
जीरकञ्चापि हिङ्गुञ्च काञ्जिकं साधयेद्भिषक् ॥१००॥
एष शार्दूलकोनाम काञ्जिकोऽग्निबलप्रदः ।
सिद्धार्थतैलसंभृष्टोदशरोगान् व्यपोहति ॥ १०१ ॥
कासं श्वासमतीसारं पाण्डुरोगं सकामलम् ।
आमञ्च गुह्यरोगञ्च वातशूलं सवेदनम् ॥ १०२ ॥
अर्शांसि श्वयथुञ्चैव भुक्ते पीते च सात्म्यतः ।
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥१०३॥

इति शार्दूलकाञ्जिकम् ।

सैन्धवं चित्रकं पथ्या लवङ्गं मरिचं कणा ।
टङ्कणं नागरं चव्यं यमानी मधुरी वचा ॥ १०४ ॥

पीपल, सोंठ, देवदारु, चीता, चाभ, बेलकी नस, अजमोदा, हर्र, अदरक, अजमाइन, धनियाँ, मिर्च, जीरा, और हींग डालकर बुद्धिमान वैद्य काँजी बनावे, जब सिद्ध होजाय, तब सरसों के तेलसे छौंकदे, इस काँजीमें खाँसी, साँस, पाण्डुरोग, कामला, आमरोग, गुदाके रोग, वातसे उत्पन्न हुआ शूल, सब प्रकारके अर्श और स्वयथु दूर होजाते हैं। और अग्निका बल बहुत बढ़जाता है। जिसप्रकार क्षीरपाक बनाया जाता है। वैसे ही काँजी भी सिद्ध होती है। इसका नाम शार्दूल काँजिक है ॥ ९९ ॥ १०३ ॥

द्रव्याणि द्वादशैतानि समभागानि चूर्णयेत्।
भावयेन्निम्बुकद्रावैस्त्रिसप्ताहं प्रयत्नतः॥ १०५॥
ततोमाषद्वयं चूर्णं वारिणोष्णेन पाययेत्।
ससैन्धवेन तक्रेण मस्तुना काञ्जिकेनवा॥ १०६॥
सैन्धवाद्यमिदं चूर्णं सद्योवह्निं प्रदीपयेत्॥ १०७॥

इति सैन्धवाद्यं चूर्णम्।

अथ रसप्रयोगाः।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं
भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् (१)।
जातिकाफलमथार्द्धभागिकं
तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम्॥ १०८॥

सेन्धानमक, चीता, हर्रे, लौंग, मिर्च, पीपल, सुहागा, सोंठ, चाभ, अजवाइन, खम्भारी, वच, इन बारहो औषधियों को समान लेकर चूर्ण बनावे और उस चूर्णको सातदिन तक नींबूके रसमें भिगोदे, फिर गर्मपानीके सङ्ग यह चूर्ण टोरत्तो खानेसे अजीर्णरोग दूर होजाता है। और अग्नि बढ़जाती है। इस चूर्णको सेन्धा पड़े मट्ठे, दहीके तोड़ और काँजीके सङ्ग खानेसे और भी अधिक गुण होता है। इसका नाम सैन्धवादि चूर्ण है॥ १०४॥ १०७॥

आगे रस चिकित्सा लिखते हैं।

पारा, विष, लौंग और गन्धक, ये सब एक एक भाग मिर्च

(१) पारदाधिपचय।

माषमात्रमनुपानयोगतः
सद्य एव जठराग्निदीपनः ।
संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णक
सामवातखरदूषणं जयेत् ॥ १०९ ॥
वह्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो-
रामबाण इति विश्रुतोरसः ॥ ११० ॥

इति श्रीरामबाणोरसः ।

शुद्धसूतं विषं गन्धमजमोदा फलत्रयम् ।
स्वर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम् ॥ १११ ॥
सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं टङ्कणं समम् ।
विषमुष्टी सर्वतुल्यं जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥ ११२ ॥
मरिचाभां वटीं खादेदग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ११३ ॥

इत्यग्नितुण्डी [illegible] ।

दोभाग, जायफल आधाभाग, इन सबको पीसकर तिन्तिड़िकके रस में भिगोदे. फिर दोमाशे खानेसे जठराग्नि बहुत बढ़ जाती है । संग्रहणी रूपक कुम्भकर्ण, आमवात रूप खरदूषण और मन्दाग्निरूपी रावणका नाश होजाता है । इसका नाम श्रीराम बाणरस है ॥ १०८ ॥ ११० ॥

शुद्धपारा, शुद्धविष, शुद्ध गन्धक, अजमोद, हर्र, बहेड़ा, आँवला, सज्जीखार, जवाखार, चीता, सेन्धा, जीरा, सौंचल, बिड़ङ्ग, समुद्रनोन, और सुहागा, ये सब एक एक भाग और इन सबके समान कुचिला डालकर जमीरी नींबके रसमें घोट

मरिचाब्द वचाकुष्ठं समांशं विषमेव च (१)।
आर्द्रकस्य रसे पिष्ट्वा मुद्गमात्रञ्च कारयेत्॥ ११४॥
स्वयमग्निरसोनाम सर्वाजीर्णप्रशान्तये॥ ११५॥

इति अग्निरसः।

अमृतवराटक मरिचै-
र्द्विपञ्चनवभागिकैः क्रमशः।
वटिका मुद्गसमाना
कफपित्ताग्निमान्द्यहारिणी॥ ११६॥

इति अमृतवटी।

त्रिकटु त्रिफला चैव तथा लवणपञ्चकम्।
क्षारत्रयं रसं गन्धं भागैकं पूर्ववद्विषम्॥ ११७॥

कर मिर्चके समान गोली बनावे इस गोलीसे मन्दाग्निरोग दूर होजाता है। इसका नाम अग्नि तुण्डी वटी है॥ १११॥११२॥

मिर्च, मोथा, वच, कूट और विष, इन सबको समान लेकर अदरकके रसमें घोटकर मूंगके समान गोली बनावे, इससे सब प्रकारके अजीर्ण दूर होजाते हैं। इसका नाम अग्नि रस है॥ ११४॥ ११५॥

विष दो भाग, कौड़ी पाँच भाग और मिर्च नौ भाग इन सबको पीसकर गोली बनावे, इस गोलीसे कफ, पित्त और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम अमृत वटी रस है॥ ११६॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंवला, पांचो निमक,

(१) विषमन्दिषकम्।

गुञ्जामात्रां वटीं कुर्य्याल्लवङ्गैः पञ्चभिः सह ।
सुधासागरनामाऽयं रसः सूर्य्येण निर्मितः ॥ ११८ ॥
पूर्ववद्विषमित्यमृतवच्युक्तभागवत् (१) ॥ ११९ ॥

इति सुधासागरोरसः ।

टङ्कणनागरगन्धकपारद-
गरलं मरिचं समभागयुतम् ।
लकुचस्वरसैश्चणकप्रतिमा-
गुडिकाजनयत्यचिरादनलम् ॥ १२० ॥

इति टङ्कणादिवटी ।

लवङ्गशुण्ठीमरिचानिभृष्ट
सौभाग्यचूर्णानिसमानिकृत्वा ।

तीनों खार, पारा और गन्धक ये सब एक एक भाग और विष दो भाग इन सबको पीसकर एक एक रत्तीकी गोली बनावे, इस गोलीको पाँच लौंगके सङ्ग खानेसे, भूख बहुत बढ़जाती है। भगवान् सूर्य्यने इसका नाम सुधासागर रस लिखाहै ॥१७॥१९॥

सुहागा, सोंठ, गन्धक, पारा, विष और मिर्च इन सबको समान लेकर लकुचके रसमें घोट कर चनेके समान गोली बनावे, इस गोलीसे भूख बहुत बढ़जाती है। इसका नाम टङ्कणादि वटी है ॥ १२० ॥

(१) भागवयम् ।

भाव्यान्यऽपामार्गहुताशक्षारा-
प्रभूतमांसादिकजारणाय ॥ १२१ ॥
इति लवङ्गादिवटी ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्णयेत् ।
मरिचं सर्वतुल्यं स्यात् कण्टकार्य्याः फलद्रवैः ॥१२२॥
मर्दयेद्भावयेत् सर्वमेकविंशतिवारकम् ।
वटीं गुञ्जात्रयां खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ १२३ ॥
अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसोहन्ति विसूचिकाम् ॥१२४॥
इत्यजीर्णकण्टकोरसः ।

एकैकं विषसूतौच जातीटङ्कं द्विकं द्विकम् ।
देवपुष्पं वाणमितं सर्वं संमर्द्य यत्नतः ॥ १२५ ॥
महोदधिवटी नाम्ना नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ १२६ ॥
इति महोदधीरसः ।

लौंग, सोंठ, मिर्च और भुना हुआ सुहागा इनको पीसकर लटजीरा और चीतेके रसमें भिगोकर खानेसे, मांस भी पचजाता है। इसका नाम लवङ्गादि वटी है ॥ २१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष ये सब समान और इन सबके समान मिर्च पीसकर, कटहलीके फलके रसमें इक्कीसवार घोटे. फिर तीन रत्तीकी गोली बनाले, एक गोली खानेसे विसूचिका और सबप्रकारके अजीर्ण दूर होजाते हैं। इसका नाम अजीर्ण कण्टक रस है ॥ १२२ ॥ १२४ ॥

विष और पारा एक एक भाग, जायफल और सुहागा दो

रसेन्द्रगन्धौ सहटङ्कणेन-
समंविषं योज्यमिहत्रिभागम् ।
कपर्दशङ्खाविह वेदभागौ
मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥ १२७ ॥
सुपक्वजम्बीररसेनघृष्टः
सिद्धोभवेदग्निकुमार एषः ।
विसूचिकाजीर्णसमीररोगेषु
दद्याद्द्विवल्लं ग्रहणीगदेच ॥ १२८ ॥

अत्र सर्वमेकभागापेक्षया वचनान्तरसम्वादात् ॥१२९॥

इत्यग्निकुमारोरसः ।

गन्धं शटङ्कणैकैकं विषमत्र त्रिभागिकम् ।
अष्टभागन्तुमरिचं जम्बाम्भोमर्दितं दिनम् ॥ १३० ॥

दो भाग और लौंग पांच भाग इन सबको पीसकर गोली बनावे, इस गोलीसे नष्ट हुई अग्नि तेज होजाती है। [इस]का नाम महोदधि वटी है १२५ ॥ १२६ ॥

पारा, गन्धक और सुहागा एक २ भाग और विष तिन भाग, कौड़ी, शङ्ख चार चार भाग, मिर्च आठ भाग इन सबको पके नीबूके रसमें घोटे, फिर रोगीको दो रत्ती दे तो अजीर्ण, विसूचिका और ग्रहणी रोग दूर होजातेहैं। इस औषधिमें जो अलग अलग भाग कहे हैं। इनकी गणना एक भागकी अपेक्षासे करनी चाहिये। इसका नाम अग्निकुमार रस है ॥१२७॥१२८॥

गन्धक, पारा और सुहागा एक २ भाग, विष तीन भाग, मिर्च आठ भाग इन सबको एक दिन तक नीबूके रसमें घोटकर

तद्वटीं मुद्गमानेन कृत्वाऽऽर्द्रेण प्रयोजयेत् ।
शूलाऽरोचकगुल्मेषु विसूच्यामग्निमान्द्यके ॥ १३१ ॥
अजीर्णे सन्निपातादौ शैत्ये जाड्ये शिरोगदे ॥१३२॥

इति हुताशनोरसः ।

विषं सूतं पलं गन्धं त्र्यूषणं टङ्कजीरकम् ।
एकैकं द्विगुणं लौहं शङ्खमभ्रं वराटकम् ॥ १३३ ॥
सर्वतुल्यं लवङ्गञ्च जम्बीरैर्भावयेद्भिषक् ।
सप्तवासरपर्य्यन्तं ततः स्याद्भास्करोरसः ॥ १३४ ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटीं कुर्य्याद्विचक्षणः ।
ताम्बूलीदलयोगेन वटीं संचर्व्य भक्षयेत् ॥ १३५ ॥
शूलरोगेषु सर्वेषु विसूच्यामग्निमान्द्यके ।
सद्योवह्निकरोह्येष चन्द्रनाथेन भाषितः ॥ १३६ ॥

इति भास्करोरसः ।

मूगके समान गोली बनावे और अदरकके रसके सङ्ग एक एक गोली दे तो शूल, अरोचक, गुल्म, विसूचिका, मन्दाग्नि, अजीर्ण, सन्निपात, शीत, जड़ता और शिरके रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम हुताशन रस है ॥ १३० ॥ १३२ ॥

विष, पारा, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुहागा, जीरा ये सब एक एक पल, लोहा, शङ्ख, अभ्रक, कौड़ी दो दो भाग और इन सबके समान लौंग डालकर चूर्ण बनाकर जम्भीरी नीबूके रसमें भिगो दे, फिर दो रत्तीकी गोली बनाले, इस गोलीको पानके सङ्ग चबाकर खानेसे शूल, विसूचिका,

षडूषणं पञ्चपटु त्रिक्षारं जीरकद्वयम् ।
ब्रह्मदर्भीग्रगन्धा च मधुरी हिङ्गुचित्रकम् ॥ १३७ ॥
जातीफलं तथाकुष्ठं जातीकोषं त्रिजातकम् ।
चिञ्चाशेखरिकक्षारममृतं रसगन्धकौ ॥ १३८ ॥
लौहमभ्रञ्च वङ्गञ्च लवङ्गञ्च हरीतकी ।
समभागानि सर्वाणि भागौ द्वावम्लवेतसात् ॥१३९॥
शङ्खस्य भागाश्चत्वारः सर्वमेकत्र भावयेत् ।
क्वाथेन पञ्चकोलस्य चित्रापामार्गयोस्तथा ॥ १४० ॥
अम्लीशाकीरसेनैव प्रत्येकं भावयेत्त्रिधा ।
त्रिसप्तकृत्वा निम्बाकरसैः पश्चाद्विभावयेत् ॥ १४१ ॥
बदराभा वटी कार्य्या भोक्तव्या सन्ध्ययोर्द्वयोः ।
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः ॥ १४२ ॥

मन्दाग्नि, रोग दूर होजाते हैं । चन्द्र नाथ वैद्यने इसका नाम भास्कर रस रक्खा है ॥ १३३—१३६ ॥

षट्‌षण, पांच निमक, तीन खार, दोनो जीरे, वमनेटी, वच, खम्भारी, हींग, चीता, जायफल, कूट, जावित्री, इलायची, तज, तेजपात, अमलीका खार, लटजीरेका खार, विष, पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, वङ्ग, लौंग, हर्र, ये सब समान अमलवेद दो भाग, शङ्खकी भस्म चार भाग इन सबको पञ्चकोल चीता, लटजीरा और चूकेके रसमें तीन तीन वार घोटे, फिर इक्की सवार नीबूके रसमें भावना देकर बेरके समान गोली बनावे, फिर दोषके अनुसार अनुपानके सङ्ग रोगीको एक २ गोली संध्या

अग्निसन्दीपनोनाम रसोऽयं भुविदुर्लभः ।
दीपयत्याशु मन्दाग्निमजीर्णञ्च विनाशयेत् ॥ १४३ ॥
अम्लपित्तं तथाशूलं गुल्ममाशु व्यपोहति ॥ १४४ ॥
इत्यग्निसन्दीपनोरसः ।

द्विपलं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च समं मतम् ।
लौहं ताम्रं हरीतालं विषं तुत्थं सवङ्गकम् ॥१४५॥
पलप्रमाणञ्च पृथक् लवङ्गं टङ्कणं तथा ।
दन्तीमूलं त्रिवृच्चूर्णमेकैकं पलसम्मितम् ॥ १४६ ॥
अजमोदा यमानी च द्विक्षारलवणानि च ।
पृथगर्द्धपलं ग्राह्यमेकीकृत्य च भावयेत् ॥ १४७ ॥
आर्द्रकस्वरसेनैकविंशतिः पञ्चकोलजैः ।
दशधा भावयेत्तोयैर्गुडूचीनां रसैर्दश ॥ १४८ ॥
सर्वांहिं मरिचं दत्वा काचकूप्याञ्च धारयेत् ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा छायायां परिशोषयेत् ॥१४९॥

और प्रातःकाल खिलावे, इससे अग्नि बहुत तेज होजाती है, अजीर्ण, अम्लपित्त, शूल और गुल्म दूर होजाते हैं। इसका नाम अग्निसन्दीपन रस है ॥ १३७—१४४ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, लोहा, तांबा, हरताल, विष, तूतिया, बङ्ग ये सब औषधि एक एक पल, लौंग, सुहागा, जमालगोटेकी जड़ और निसोत भी एक २ पल, अजमोदा, अजमाइन, जवाखार, सज्जीखार और पांचोनिमक ये सब आधा आधा पल लेकर चूर्ण बनावे, फिर इक्कीसवार अदरकके रसमें दशवार, पञ्चकोलके

रसोऽजीर्णबल:कालानलाख्य प्रकीर्त्तित: ।
अनेककालनष्टाग्नेर्दीपन: परम: स्मृत: ॥ १५० ॥
आमवातकुलध्वंसी प्लीहपाण्डुगदापह: ।
प्रमेहानाहविष्टब्धसूतिकाग्रहणीहर: ॥ १५१ ॥
श्वासकासप्रतिश्याययक्ष्मक्षयविनाशन: ।
अम्लपित्तञ्च शूलञ्च भगन्दरगुदोद्भवौ ॥ १५२ ॥
अष्टोदराणि प्लीहानं यकृतं हन्ति दारुणम् ।
आकण्ठं भोजयित्वा तु खादयेच्च रसोत्तमम् ॥१५३॥
अर्द्धयामेन तत् सर्वं भस्मीभवति निश्चितम् ।
चतुर्विधरसोपेतं महाभोजनमिच्छत: ॥ १५४ ॥
भोजस्य नृपते: काङ्क्षा भोजनात् कृपयाकृत: ।
गहनानन्दनाथेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ १५५ ॥

इति अजीर्णबलकालानलोरस: ।

रसमें और दशवार गुरिचके रसमें भावना देकर सबसे आधी मिर्च मिलाकर चनेके समान गोली बनावे और छायामें सुखा कर शीशीमें भरकर रखदे, इससे आमवात, पिलही, पाण्डु, प्रमेह, अनाह, विष्टम्भ, प्रसूत, ग्रहणी, सांस, खांसी, राजयक्ष्मा, क्षय, शूल, अम्लपित्त, भगन्दर, आठो प्रकारके उदर रोग और भयानक यकृत रोग दूर होजाते हैं, रोगीको कराठ तक भोजन कराके एक गोली खिलादे तो एक ही पहरमें सब भस्म होजाता है। यह रस गहना नन्दनाथने सब लोकोंके उपकारके लिये चारो प्रकारका भोजन करनेवाले राजा भोज पर कृपा करके बनाया

दग्धशङ्खस्य चूर्णं हि तथा लवणपञ्चकम् ।
चिञ्चिका चारकश्चैव कटुकत्रयमेव च ॥ १५६ ॥
तथैव हिङ्गुकं ग्राह्यं विषगन्धकपारदम् ।
अपामार्गस्य वक्षेश्च क्वाथे निम्पाकजे रसैः ॥ १५७ ॥
भावयेत् सर्वचूर्णंतत् अम्लवर्गैर्विशेषतः ।
यावत्तदम्ल तां याति गुड़िकामृतरूपिणी ॥ १५८ ॥
सद्योवह्निकरी चैव भस्मकञ्च नियच्छति ।
भुक्त्वाऽकण्ठन्तु तस्यान्ते खादेच्च गुड़िकामिमाम् ॥ १५९ ॥
तत्क्षणात् जारयत्याशु सर्वाजीर्णविनाशिनी ।
ज्वरं गुल्मं पाण्डुरोगं कुष्ठं शूलं प्रमेहकम् ॥ १६० ॥
वातरक्तं महाशोथं वातपित्तकफानपि ।
दुर्नामारिरयञ्चाशु दृष्टोवारसहस्रशः ॥ १६१ ॥

था, इससे बहुत दिनसे नष्ट हुई अग्नि बढ़जाती है । इसका नाम अजीर्ण वलकालानल रस है ॥ १४५—१५५ ॥

शङ्खकी भस्म, पांचोनिमक, इमलीका खार, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, विष, गन्धक और पारा इन सबको लटजीरा और चीतेके काढ़ेमें और नीबूके रसमें भावना देकर खट्टी औषधियोंमें भिगोये जब तक सब औषधि खट्टी होजाय, तब तक भिगोता रहे फिर गोली बनाले इस गोलीसे मन्दाग्नि, भस्मक, सब प्रकारके अजीर्ण, ज्वर, गुल्म, पाण्डु रोग, कुष्ट, शूल, प्रमेह, वातरक्त, महाशोथ, वात, पित्त, कफ और अर्श रोग जड़से जाते रहते हैं । हमने सहस्रोंवार इसकी परीक्षाकी है । यदि इसमें लोह

निर्मूलं दह्यते शीघ्रं तूलकं वह्निना यथा ।
लौहवङ्गयुतासेयं महाशङ्खवटी स्मृता ॥ १६२ ॥
प्रभाते कोष्णतोयानुपानमेव प्रशस्यते ।
जम्बीरबीजपूरञ्च मातुलुङ्गकचुक्रकम् ॥ १६३ ॥
चाङ्गेरी तिन्तिडी चैव बदरी करमर्दकम् ।
अष्टावम्लस्य वर्गोऽयं कथितोमुनिसत्तमैः ॥ १६४ ॥

इति सिद्धफला महाशङ्खवटी ।

चिञ्चाक्षारपलं पटुव्रजपलं निम्बूरसे कल्कितं तस्मिन् शङ्खपलं प्रतप्तमसकृत् संस्थाप्य शीर्णावधि । हिङ्गुव्योषपलं रसामृतबली निःक्षिप्य निष्कांशिकां बद्धा शङ्खवटी क्षयग्रहणिकारुक्पक्तिशूलादिषु ॥१६५॥

पटुव्रजपलं पञ्चलवणं मिलित्वा पलं हिङ्गुशुण्ठी-पिप्पलीमरिचानामपि मिलित्वा पलं रस‘‘षगन्ध-कानां प्रत्येकं निष्कं मासचतुष्टयं शंखगेडुयां वह्नौ ध्मात्वा निम्बुरसे तप्तां निक्षिपेत् यावच्चूर्णी भवति भूय

और वङ्ग मिलाकर दिया जाय तो इसका नाम महाशङ्ख वटी रस होजाता है। इससे रोग इस प्रकार नष्ट होजाते हैं। जैसे आग लगनेसे रुई, प्रातःकाल गर्म पानीके सङ्ग खाय ऊपर कही खट्टी ओषधियें हैं। जम्बीरी नीबू, बिजौरा नीबू, मातु-लुङ्ग (नीबूविशेष) चोक, चुक्रा, तिन्तड़ीक बेर और करौंदा इसका नाम महाशङ्ख वटी रस है ॥ १५६—१६४ ॥

इमलीका खार एक पल पांचो नमक एक पल शङ्ख, एक

स्तद्रसे पतित सर्वचूर्णमेकीकृत्य निम्बुरसेन रौद्रे तावद्भावयेद् यावदम्लता भवति॥ १६६ ॥

इति शङ्खवटी।

द्वौ क्षारौ रसगन्धकौ सलवणौ व्योषञ्च तुल्यं विषं चिञ्चाशङ्खचतुर्गुणं रसवरे निम्बाकजाते कृतम्।
वारं वारमिदं सुपाकरचितं लोहं चिपेद्धिङ्कं भृष्टं वङ्गसमं सुमर्दितमिदं गुञ्जाप्रमाणा भवेत् ॥१६७॥
ख्याता शङ्खवटी महाग्निजननी शूलान्तकृत् पाचनी कासश्वासविनाशिनी क्षयहरी मन्दाग्निसन्दीपिनी।

पल, इन सबको नीबूके रसमें घोटे। उसमें एक पल हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, डाले और एक एक निष्क पारा, गन्धक और विष डाले, इससे क्षय, ग्रहणी और पंक्तिशूल दूर होजाते हैं इसका नाम शङ्खवटी रस हैं। इसके बनानेकी यह विधि है कि एकपल पाँचो नमक, हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, एक पल ; पारा, विष, और गन्धक ये एक एक निष्क। शङ्खको आगमें तपाकर जबतक भस्म न हो, तबतक नीबूके रसमें बुझावे, फिर चूर्ण करके जितनेमें सब औषधि खट्टी होजाय उतना नीबूका रस डालकर घोटे, और घाममें सुखाले ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

जवाखार, सज्जीखार, पारा, गन्धक, पांचो नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, विष, ये सब समान इमलीका खार, और शङ्खकी भस्म ये दोनों औषधि चौगुनी २ डालकर नीबूके रस में घोटे, फिर लोहा, बङ्ग और भुना हुआ हींग डालकर एक एक रत्ती की गोली बनावे इससे अग्नि बहुत बढ़जाती है, अन्न पच जाता

वातव्याधिमहोदरादिशमनी तृष्णामयोच्छेदिनी
सर्वव्याधिविनाशिनी क्रिमिहरी दुष्टामयध्वंसिनी १६८

इति शंखवटी ।

पटुपञ्चकहिङ्गुशंखचिञ्चा-
भसितव्योषवलीशवरामृतानि ।
शिखिशेखरिकाम्लवर्गनिम्बू-
भृशभाव्यानियथाम्लतां व्रजन्ति ॥ १६९ ॥

महाशंखवटी ख्याता भोजनान्ते प्रकीर्त्तिता ।
दीपनी परमा हन्ति महार्शोग्रहणीमुखान् ॥ १७० ॥

इति महाशंखवटी ।

कणामूलं वह्निदन्ती पारदं गन्धकं कणा ।
विचारं पञ्चलवणं मरिचं नागरं विषम् ॥ १७१ ॥

है। शूल, खांसी, श्वास, क्षय वातव्याधि, उदररोग, प्यास और क्रमिरोग आदि सब रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम शङ्खवटी रस है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

पांचोनमक, हींग, शङ्खकी भस्म, इमलीका खार, सोंठ, मिर्च, पीपल, गन्धक, पारा, और विष इन सबको समान लेकर चीता, लटजीरा, नीबू और ऊपर लिखी खट्टी औषधि-ओंके रसमें घोटे, इसे भोजनके पीछे खानेसे, अग्नि बहुत बढ़ जाती हैं। अर्श और ग्रहणी आदि रोग दूर होजाते हैं, इसका नाम महाशंखवटी रस है ॥ १६९ ॥ १७० ॥

पिपलामूल, चीता, जमालगोटेकी जड़, पारा, गन्धक,

अजमोदामृता हिङ्गु चारं तिन्तिड़िकाभवम्।
संचूर्ण्य समभागन्तु द्विगुणं शंखभस्मकम्॥ १७२॥
अम्लद्रवेण सम्भाव्य वटी कोलास्थिसम्मिता।
अम्लदाड़िमतोयेन निम्बाकस्वरसेन च॥ १७३॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय नाम्ना शंखवटी शुभा।
तक्रमस्तुंसुरासीधुकाञ्जिकोष्णोदकेन वा॥ १७४॥
शशैणादिरसेनैव रसेन विविधेन च।
मन्दाग्निं दीपयत्याशु वाडवाग्निसमप्रभम्॥ १७५॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कुष्ठमेहभगन्दरान्।
प्लीहानमश्मरीं श्वासं कासं मेहोदरक्रिमीन्॥१७६॥
हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च विवन्धानुदरे स्थितान्।
तान् सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥१७७॥

इति महाशंखवटी। सारकलिकाधृता।

सुहागा, तीनोंखार, पांचोनमक, मिर्च, सोंठ, विष, अजमोदा, गुरिच, हींग, तिन्तड़ीकका खार, इन सबको चूर्ण करके इनसे दु गुनी शङ्खकी भस्म डालकर नीबूके रसमें भिगो कर वेरकी गुठलीके समान गोली बनावे, फिर एक गोली प्रतिदिन खट्टे अनारके रस या नीबूके रस के सङ्ग प्रातःकाल खिलावे, ऊपरसे मट्ठा, दहीका तोड़, मद्य, सीधु (मद्यभेद) कांजी, गर्मजल, खरहा और हरिनके मांसका रस पिलावे, इससे मन्दाग्नि। ऐसी तेज होजाती है जैसे समुद्रकी अग्नि इससे छहो प्रकारके अर्श, गुल्म, प्रमेह, भगंदर, पिलही, पथरी, खांसी, सांस, उदर रोग,

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्या-
च्छुल्वायसोचार्द्धपलप्रमाणे ।
विचूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगा-
देरण्डपत्रेऽथ निवेशनीयम् ॥ १७८ ॥
कृत्वाथ तां पर्पटिकां विदध्या
ल्लौहस्य पात्रे वरपूतमस्मिन् ।
जम्बीरजं पक्वरसं पलानां
शतं नियोज्याग्निमथाल्पमात्रम् ॥ १७९ ॥
जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः
सुपञ्चकोलोद्भववारि पूरैः ।
सेवेतसाम्लैः शतमत्र देयं
समं रजष्टङ्कणजं सुभृष्टम् ॥ १८० ॥

क्रिमी रोग, हृदय रोग, पाण्डु रोग और विवन्धादि रोग, इस प्रकार नष्ट होजाते हैं । जैसे सूर्य्य उदय होनेसे अन्धकार, इसका भी नाम महाशङ्ख वटी रस है ॥ १७१—१७७ ॥

पारा एक पल, गन्धक दो पल, तांबा आधापल और लोहा आधापल इन सबको आगमें ताकर अरण्डके पत्तेपर डाल दे, फिर लोहेकी कढ़ाईमें चढ़ाकर पर्पटी रसके समान पकावे, पकते समय सौ पल नीबूका रस डाले और धीरे धीरे आंच दे, जब पकते पकते ये रस जल चुके तब उतारकर पञ्चकोलके रस, नीबूके रस, अमलवेतके रसमें भिगोकर इन सबके समान भुना हुआ सुहागा, सबसे आधी विड़ङ्ग, सबके समान मिर्च

विडं तदर्द्धं मरिचं समञ्च
तत्सप्तधार्द्रं चणकाम्बुवारि।
क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो-
रसस्तु मन्थानकभैरवोक्तः॥ १८१॥
माषद्वयं सैन्धवतक्रपीत-
मेतस्य धन्यैः खलु भोजनान्ते॥ १८२॥
गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्टी
कृतानि सेव्यानि फलानि चैव।
मात्रातिरिक्तान्यपि सेवितानि
यावद्द्वयाज्जारयति प्रसिद्धः॥ १८३॥

कार्श्यस्थौल्यनिबर्हणोगरहरः मामातिनिर्नाशनो
गुल्मप्लीहजलोदरादिशमनः शूलार्त्तिमूलापहः।
वातश्लेष्मनिबर्हणोग्रहणिकाऽतीसारविध्वंसनो-
वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः॥१८४॥

इति क्रव्यादरसः।

डालकर सातबार अदरकके रसमें भिगोकर चनेके पानीके सङ्ग दे. इसकी मात्रा दो माशेकी है, ऊपरसे सेंधा पड़ामट्ठा पिलावें. इस रसको भोजनके पश्चात् खाय, इसके खानेसे मात्रासे अधिक खाये हुये भारी मांस, दूध, पिट्ठीसे बने भोजन और फल आदि सब वस्तु दोही पहरमें पचजाती हैं। इसके खानेसे मोटारोगी पतला और पतलारोगी मोटा होजाता है। पेटकी आंव, गुल्म, पिलही, जलोदर, शूल, कफ, वात, ग्रहणी, अतीसार,

अभ्रं निर्मलमारितं पलमितं चूर्णीकृतं यत्नत-
श्चव्यं चित्रकमिन्द्रसूरकनकं मालूरपत्राद्रकम् ।
मूलं पिप्पलिसम्भवं मधुरिका नीपोऽर्कमूलं पृथक्
चैषां सत्वपलैर्विमर्दितमिदं कर्षं क्षिपेट् टङ्गणम् ॥ १८५
गुञ्जासम्मितमेतदेव वलितं तत्पारिभद्रद्रवै-
र्मन्दाग्निं चिरजातगुल्मनिचयं शूलाम्लपित्तं ज्वरम् ।
छर्दिं दुष्टमसूरिकामलसकं श्वासञ्च कासं तृषां
प्लीहानं यकृतं क्षयं स्वरहतिं कुष्टं महारोचकम् ॥ १८६
दाहंमोहमशेषदोषजनितं कृच्छ्रं सदुर्नामक-
ञ्चामं वातविमिश्रितं नयनजं रोगं समुन्मूलयेत् ।
विश्वोद्दीपकनामरोगहरणो प्रोक्तं पुरा शम्भुना

वायुगोला और पेटके सब प्रकारके रोग दूर होजाते हैं, इसका नाम क्रव्याद रस है ॥ १७८—१८४ ॥

शुद्ध अभ्रककी भस्म एक पल, चाभ, चीता, इन्द्रजौ, धतूरा, बेलके पत्ते, अदरक, पिपलामूल, खम्भारी, कदम्ब और आककी जड़ ये सब एक एक पल और सुहागा आधापल इन सबको खरलमें डालकर नीबूके रसमें घोटकर एक एक रत्तीकी गोली बनावे और रोगीको खिलावे, इससे मन्दाग्नि, पुराना गुल्म, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, वमन बिगड़ी हुई मसूरिका, अलसक, साँस, खांसी, प्यास, पिलही, यकृत्, क्षय, स्वरभेद, कुष्ट, अरोचक, दाह, मोह सब दोषोंसे उत्पन्न हुआ कृच्छ्र, अर्श, आमवात और नेत्ररोग जड़से दूर होजाते हैं, यदि रोगी पत्थर भी खाले

सर्वेषां हितकारकं गदवतां सर्वामयध्वंसनम् ॥१८७॥
पाषाणं यदिभक्षितं तदपि तं कुर्य्यात् सुजीर्णं पुन-
र्बल्यं वृष्यतरं रसायनवरं मेधाकरं कान्तिदम् ॥१८८॥

इति विश्वोद्दीपकाभ्रम्।

अभ्रकं पुटसहस्रमारितं
कर्षयुग्ममतिनिर्मलीकृतम्।
वासराणि नवतिं विमर्दितं
चित्रकस्वरससाधुसिक्तकम् ॥ १८९ ॥
शृङ्गवेररसमर्दिता वटी
कारिता सकलरोगनाशिनी।
भक्षिता भुजगवल्लिपत्रकैः
शृङ्गवेरशकलेन वा पुनः ॥ १९० ॥
वह्निमान्द्यमभिनाश्य सत्वरं
कारयेत् प्रखरपावकोत्करम्।
श्वासकासवमिशोथकामला-

तो भी पच जाता है। इससे सब रोग दूर होजाते हैं, वीर्य्य, बल, बुद्धि और तेज बहुत बढ़ जाते हैं। शिवने सब जगतके कल्याणके लिये इसका नाम विश्वोद्दीपक अभ्रक लिखा है ॥ १८५—१८८ ॥

अत्यन्त शुद्ध हजार आंचका फुका अभ्रक दोकर्ष लेकर नव्वे दिन तक अदरकके रसमें घोटे फिर सुखाकर अदरकके रसमें घोंटकर गोली बनाले, और अदरक के टुकड़े या पानमें

प्लीहगुल्मजठरारुचिभ्रमान् ॥ १८१ ॥
रक्तपित्तयकृदम्लपित्तक
शूलकोष्ठजगदान् विसूचिकाम् ।
आमवातबहुवातशोणितं
दाहशीतबलह्रासकार्श्यकम् ॥ १८२ ॥
विद्रधिं ज्वरगदं शिरोगदं
नेत्ररोगमखिलं हलीमकम् ।
हन्तिवृष्यतममेतदभ्रकं
वीरभद्रमतिबल्यमुत्तमम् ॥ १८३ ॥
भक्षितं विविधभक्ष्यमागलं
काष्ठशंखमपि भस्मतां नयेत् ॥ १८४ ॥
इति वीरभद्राभ्रक ।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं हरीतक्यास्तथैव च ।

रखकर रोगीको खिलावे, इसके खानेसे मन्दाग्नि, खांसी, सांस, वमन, शोथ, कामला, पिलही, गुल्म, पेटके रोग, अरुचि, भ्रम, रक्तपित्त, यकृत्, अम्लपित्त, शूल, कोष्टरोग, विसूचिका, आमवात, वातरक्त, दाह, शीत, विद्रधि, ज्वर, शिरके रोग, सब प्रकारके नेत्र रोग और हलीमक रोग दूर होजाते हैं और अग्नि अत्यन्त बढ़जाती है, रोगीको काष्ठादि भी पचजाते हैं। बल और वीर्य्य बहुत बढ़ते हैं, वीरभद्रने इसका नाम वीरभद्र अभ्रक लिखा है ॥ १८८—१८४ ॥

सोंठका चूर्ण एक कुड़व, हरंका चूर्ण एक कुड़व, लौंग, जीरा,

लवङ्गं जीरकं व्योषं चातुर्ज्जातञ्च मुस्तकम् ॥१९५॥
कर्पूरं जातिकोषञ्च जातीफलसमन्वितम्।
एषां द्विकार्षिकान् भागान् परन्तु सार्द्धकार्षिकम्(१)१९६
यमानी सैन्धवं कुष्ठं वनिता जारितं त्वयः।
कार्षिकं ग्रन्थिकं चव्यं मूर्वा च चित्रकं शटी ॥१९७॥
अजाजी रेणुकं मांसी मेथिका वङ्गमभ्रकम्।
रसाञ्जनं मोचरसं द्राक्षा यष्टी च धान्यकम् ॥१९८॥
सर्वं चूर्णीकृतं यत्नात् शर्करा द्विगुणा मता।
ततश्च पाकविद्वैद्यो मोदकं परिकल्पयेत् ॥१९९॥
भूयस्त्रिजातचूर्णेन कर्पूरेणाधिवासयेत्।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय बुद्धा दोषबलाबलम् ॥ २०० ॥
कर्षं वा चार्द्धकर्षं वा अनुपानं दुग्धमेव च।

सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, मोथा, कपूर, जावित्री और जायफल ये सब एक एक कर्ष अजवाइन, सेंधा, कूट, प्रियङ्गू, लोहेकी भस्म ये सब डेढ़ डेढ़ कर्ष। पिपलामूल, चाभ, चीता, कचूर, जीरा, रेणुका, मुरहर, जटामांसी, मेथी, बङ्ग, अभ्रक, रसौत, मोचरस, दाख, जेठीमधु और धनियाँ इन सबको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण बनावे, फिर सब चूर्णमें दूनी शक्कर डालकर पाकविधि जाननेवाला वैद्य लड्डू बनाले और तज, तेजपात, इलायची और कपूरसे सुगन्धित करके उठा रक्खे, फिर दोष और बलके अनुसार एक कर्ष वा आधाकर्ष

(१) यमान्यादिकम्।

पथ्यापथ्यविहीनोऽपि भक्षयेद्रोगवान्नरः ॥ २०१ ॥
ग्रहण्यादिगदं हन्यात् मन्दाग्निञ्च विशेषतः ।
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥२०२॥
आमशूलं यकृच्छूलं हृच्छूलं पार्श्वशूलकम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकभगन्दरम् ॥ २०३ ॥
ग्रहणीं चिरजां सूतिं वमिं कोष्ठगदन्तथा ।
गदमूच्छेदको ह्येष तुष्टिपुष्टिकरस्तथा ॥ २०४ ॥
पाचने पाचनोह्येष बलवर्णाग्निवर्द्धनः ।
रसायनवरश्चायं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २०५ ॥
सर्वाजीर्णप्रशमने ब्रह्मणा परिकल्पितः ॥ २०६ ॥

इति सारामृतमोदकः । सारसंग्रहे ।

इति भैषज्यरत्नावल्यामजीर्णोऽधिकारः समाप्तः ।

रोगीको खिलावे और ऊपरसे दूध पिलादे, इसमें पथ्य और अपथ्यका कुछ विचार नहीं है । अर्थात् रोगीकी जो इच्छा हो सो खाय, इससे ग्रहणीरोग, मन्दाग्नि, वात, पित्त और सन्निपातसे उत्पन्न हुये रोग, आमशूल, शूल, यकृत, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, भगन्दर, पुरानाग्रहणीरोग, और वमन दूर होजाते हैं, रोगी सन्तुष्ट होजाता है दोष पच जाते हैं बलवर्ण, अग्नि, तेज और वीर्य्य बहुत बढ़ जाते हैं यह औषधि रसायन भी है ब्रह्माने इस सब अजीर्णनाशक औषधिका नाम सारामृतमोदक लिखा है ॥ ८५ ॥ १०६ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें अजिर्णाधिकार समाप्त ।

अथ क्रमिरोगाधिकारः ।

बाह्याभ्यन्तरभेदेन क्रमयो द्विविधा मताः ।
कफाऽसृग्विरामलोत्पन्ना: बाह्या एवं चतुर्विधाः ॥१॥
मलजा विंशतिविधा स्तिलवर्णा स्तिलोन्मिताः ।
केशांबराश्रयाः मूक्ष्मायूकालिक्यादितामताः ॥ २ ॥
पिटिका कोठकण्ड्वाद्याः बाह्यक्रमिभवा गदाः ।
श्वेता वस्त्राशयायूकाः कृष्णालिक्याश्च केशजाः ॥ ३ ॥

क्रिमिरोगनिदान ।

क्रिमिरोग बाह्य और आभ्यन्तरभेदसे दो प्रकारका होता है अर्थात् एक वह जिसमें पेट या नाड़ियोंके भीतर कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं और दूसरा वह जिस में बाहर अर्थात् बालया वस्त्र आदिमें कोड़े होजायँ, कफरुधिर, विष्टा और मैलसे बाह्य क्रिमिरोग होता है, अर्थात् कफ क्रिमि, रुधिर क्रिमि, विष्टा क्रिमि और मल क्रिमि ये चार बाह्य क्रिमिके भेद हैं ॥ १ ॥

मलक्रिमि काले तिल के समान रंगवाले तिल के समान शरीरवाले, बाल और वस्त्रमें उत्पन्न हुये, छोटे छोटे होते हैं। वैद्योंने उनका नाम जूं (चीलर) और लीख लिखा है वे बीस प्रकारके होते हैं ॥ २ ॥

उनमें से श्वेततिलके समान रंगवाले वस्त्रमें उत्पन्न हुये, जूं और काले तिलके समान रंगवाले बालोंमें उत्पन्न हुये लीख

अथ निदानमाह ।

मधुरपिष्ट गुडद्रवसेवको
दिनशयीश्रमवर्जितविग्रहः ।
प्रतिदिनं प्रतिकूलकृतादरः
कृमिगदं लभतेमनुजोऽम्लमुक् ॥ ४ ॥

अथ उत्पन्नकृमिलक्षणम् ।

मदनश्रमशूलहृद्गदाः
ज्वरभक्तारूचिकासविभ्रमाः ।
अतिसारविवर्णतादयः
कृमिरोगेप्रभवन्त्यथोल्वणाः ॥ ५ ॥

अथ कफकृमिणां विप्रकृष्ट निदानमाह ।

कफोत्थाद्धिमांसादि शुक्तमाषपयोऽशनैः ॥ ॥

कहते हैं। इनके काटनेसे, फुड़िया, दाफड़ और खुजली आदि पीड़ा उत्पन्न होती में ॥ ३ ॥

जो मनुष्य अधिक मीठा, पिट्ठी, गुड़ द्रव (दूध आदि बहने वाली या नतली वस्तु) खटाई अधिक खाता है। प्रतिदिन विरुद्ध आहार व्यवहार करता है और परिश्रम कुछ नहीं करता, उसे क्रिमिरोग उत्पन्न होजाता है ॥ ४ ॥

क्रिमिरोग उत्पन्न होने पर मन्दाग्नि, शूल, हृद्रोग, ज्वर, भोजनमें अरुचि, खांसी, श्वास, अतिसार, भ्रम और शरीरका रंग बदलना आदि उपद्रव होजाते हैं ॥ ५ ॥

अथासां संप्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह ।

आमाशयेश्लेष्मजाता वृद्धाः सर्पन्तितत्पराः ।
गगडूपदोपमा दीर्घाः सूक्ष्माधान्यांकुरोपमाः ॥ ७ ॥
श्वेतास्ताम्रसमप्रख्याः सप्तधातेप्रकीर्तिताः ।
सुगन्धा दर्भकुसुमाः चुरवोऽथमहाकुहाः ॥ ८ ॥
हृदयादास्तु तथाऽन्नादाः उदरावेष्टकास्तथा ।
हृल्लासाऽरुचिलृदरामूर्च्छा आस्यस्रावोऽविपाकता ॥ ९ ॥
कासानाहज्वरच्छर्दि पीनसश्रमविभ्रमाः ।
जायन्ते श्लेष्मसम्भूते क्रमिरोगेऽतिदारुणे ॥ १० ॥

अधिक दही, मांस, गुड़ और उड़द आदि खानेसे कफ बिगड़ कर क्रिमिरोगको उत्पन्न करता है ॥ ६ ॥

कफसे उत्पन्न हुये आमाशयमें होते हैं ये बहुत बड़े बड़े और कहीं कहीं धानके अंकुरेके समान छोटे भी होते हैं, आमाशमें घूमा करते हैं, इनका रंग तांबेके समान लाल और श्वेत भी होता है। सुगन्ध, दर्भकुसुम, चरु, महाकुह, हृदयाद, अन्नाद और उदरावेष्टक ये सात प्रकारके कीड़े होते हैं इनके उत्पन्न होनेसे, हृल्लास, अरुचि, प्यास, मुखसे राल गिरना, अन्न न पचना, खांसी, अनाह, ज्वर, वमन, पीनस, थकाई और भ्रम ये लक्षण होते हैं ॥ ७—९ ॥

रुधिर वहनेवाली नाड़ियोंमें जो कीड़े उत्पन्न होते हैं वे इतने छोटे होते हैं कि मनुष्य देख नहीं सकता, इनके अनेक चरण होते हैं, गोल और लालशरीर होते हैं। केशाद, लोम

अथाऽसृग्जानाह ।

सौक्ष्म्यादहश्याश्चरणाश्च पादाः
वृत्ताश्च ताम्राऽरुणविग्रहाश्च ।
असृक्प्रवाहीणि शिरास्थलानि
आस्थाय तेषां प्रभवः समन्तात् ॥ ११ ॥

केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ।
सौरसा मातरः षट् ते कुष्ठकर्माण एव हि ॥ १२ ॥

अथ पुरीषजानाह ।

पक्वाशयोद्भवा वृद्धाः अधः सर्पिण एव ते ।
कुर्वन्तेऽतिप्रवृद्धास्तु त एवामाशयोन्मुखाः (१) ॥ १३ ॥
कार्श्यशूलाऽरुचिच्छर्दिविड्भेदस्तम्भपाण्डुताः ।
गुदकण्डुं रोमहर्षं पारुष्यमग्निमन्दताम् ॥ १४ ॥
तेऽसिताः श्यावपीताभाः सितारक्ताविमार्गगाः ।

विध्वंसी, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस और मातर ये छः प्रकारके रुधिर क्रिमि होते हैं इनके होनेसे मनुष्य कुष्ठी होजाते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

जब पक्वाशयमें उत्पन्न हुये, नीचेको चलनेवाले, बड़े कीड़े आमाशय की ओर चलते हैं, तब दुर्बलता, शूल, अरुचि, वमन, अतिसार, विष्टा रुकना, पाण्डुरोग, गुदामें खुजली, रोमा खड़े होने, शरिर कठोर होना और मन्दाग्नि ये विकार होते है वे कीड़े काले, पीले, स्वेत, कुछ काले कुछ लाल, गोल

(१) तएव पक्वाशयोत्थायदामाशयोन्मुखाभवन्ति तदा कार्श्यादीन् कुर्वन्तीत्यन्वयः ।

स्थूलाश्च कथिता: पञ्च ककेरुक मकुरुकौ ।
लेलिहा: सौसुरादाश्च सशून्याख्या अपिस्मृता: ॥१५॥

अथ क्रिमिरोगचिकित्सा ।

पारशीययमानी पीता पर्युषितवारिणा प्रात: ।
गुडपूर्वा (१) क्रिमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥१६॥

इति पारशीकयवानीयोग: ।

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं चौद्रयुतं पिवेत् ।
केवुकस्य रसं वापि पत्तूरस्याथवा पुन: ॥ १७ ॥
लिह्यात् चौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं क्रिमिहरं परम् ॥ १८ ॥

इति योगा: ।

'और मोटे होते हैं, ककेरुक, मकेरुक, लेलिह, सौसुराद और सशून्य ये पांच प्रकारके विष्टा क्रिमि कहाते हैं ॥ १३—१५ ॥

आगे क्रिमिरोग की चिकित्सा लिखते हैं ।

पहिले गुड़ खाकर पीछे बासी पानीके सङ्ग, खुरासानी अजावाइन पीनेसे पेटके कीड़े गिर पड़ते हैं इसका नाम पारसीक यवानी योग है ॥ १६ ॥

नीमके पत्तोंके रसमें सहत मिलाकर पीनेसे, अथवा केमुआं के रस में या पालिङ्ग नामक शाक (साग) मिलाकर खानेसे पेटके कीड़े गिर जाते हैं । सहतमें मिलाकर विड़ङ्गका चूर्ण खानेसे भी क्रिमिरोग दूर होजाता है ॥ १७—१८ ॥

---

(१) गुडभक्षणानन्तर भक्षयेत्यर्थ: ।

मुस्ताखुपर्णीफलशियुदारु
क्वाथः सकृष्णाक्रिमिशत्रुकल्कः ।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
क्रिमीन्निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान् ॥ १९ ॥

इति मुस्तादिक्वाथः ।

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम् ।
पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण क्रिमिनाशनम् ॥ २० ॥

इति पलाशबीजयोगः ।

क्वाथं खर्जूरपत्राणां सक्षौद्रमुषितं निशि ।
पीत्वा निवारयत्याशु क्रिमिसङ्घमशेषतः ॥ २१ ॥

इति खर्जूरक्वाथः ।

मोथा, मूसाकर्णीका फल, सहजना और देवदारुके काढ़े में पीपल और बिडङ्गका कल्क मिलाकर पीनेसे, दोनों मार्गोंसे अर्थात् गुदा और मुखसे गिरते हुये कीड़े और क्रिमिरोगसे उत्पन्न हुये और रोग भी दूर होजाते हैं इसका नाम मुस्तादि क्वाथ है ॥ १९ ॥

ढांकके बीजका रस शहदके सङ्ग पीनेसे, अथवा खट्टे के सङ्ग ढाकके बीजका कल्क पीनेसे, क्रिमिरोग दूर होजाता है ॥ २० ॥

रातको खजूरके पत्तोंका काढ़ा बनाकर रखदे, प्रातःकाल उसही में शहद मिलाकर पीनेसे, क्रिमिरोग शीघ्र दूर होजाता है इसका नाम खर्जूर पत्र क्वाथ है ॥ २१ ॥

अपक्कं क्रमुकं पिष्टं पीतं जम्बीरजैं रसैः।
निहन्ति विड्भवं कीटं रसः खर्जूरजम्भयोः॥ २२॥

इति क्रमुकयोगः।

पिबेत्तुम्बीबीजचूर्णं तक्रेण क्रिमिनाशनम्।
नारिकेलजलं पीतं मत्स्याद्दं क्रिमिनाशनम्॥ २३॥

इति तुम्बीबीजयोगः।

यमानीं लवणोपेतां भक्षयेत् कल्य उत्थितः।
अजीर्णमामवातघ्नं क्रिमिजांश्च जयेद्गदान्॥ २४॥

इति यमानीयोगः।

पलाशबीजेन्द्रयविडङ्गनिम्ब-
भूनिम्बचूर्णं सगुडं लिहेद्यः।

कच्चे पलास पीपलके कल्कमें, जम्भीरी नीबूके रस और खर्जूरके पत्तोंकारस मिलाकर पीनेसे, क्रमिरोग शीघ्र दूर हो जाता है। इसका नाम क्रमुकयोग है॥ २२॥

कडवी तूबीके बीजके सङ्ग मट्ठा पीनेसे और मछलीके सङ्ग नरियलका पानी पीनेसे, क्रिमिरोग दूर होजाता है इसका नाम तूंबीजयोग और नारिकेलयोग है॥ २३॥

प्रातःकाल निमकके सङ्ग अजवाइन खानेसे, पेटके कीड़े गिर पड़ते हैं अजीर्ण, आमवात और क्रिमि रोग दूर होजाता है इसका नाम यमानीयोग है॥ २४॥

ढाकके बीज, इन्द्रजौ, विड़ङ्ग, नीम और चिरायतेके चूर्णमें

दिनत्रयेण क्रिमयः पतन्ति
पलाशबीजेन यमानिका वा ॥ २५ ॥

इति पलाशबीजादिचूर्णम् ।

पाराशीययमानिकाघनकणाशृङ्गीविडङ्गाकृणा-
चूर्णं श्लक्ष्णतरं विलीढमपि तत् क्षौद्रेण संयोजितम् ।
कासं नाशयति ज्वरञ्च जयति प्रौढ़ातिसारं जयेत्
छर्दिं मर्दयति क्रिमिञ्च नियतं कोष्ठस्थमुन्मूलयेत् २६

इति पाराशीयादिचूर्णम् ।

पेषयेदारनालेन नाडीचस्य फलानि च ।
यूकालिक्याप्रशान्त्यर्थं दद्याल्लेपन्तु मस्तके ॥ २७ ॥

इति नाडीचलेपः ।

रसेन्द्रेण समायुक्तोरसोधुस्तूरपत्रजः ।

गुड़ मिलाकर खानेसे क्रिमिरोग दूर होजाता है इसका नाम पलास बीजादि चूर्ण है। ढाकके बीज और अजवाइन खानेसे भी तीनही दिनमें क्रिमिरोग दूर होजाता है ॥ २५—२६ ॥

खुरासानी अजवाइन, मोथा, पीपल, काकड़ासिङ्गी, बिड़ङ्ग और निसोत इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर शहतके सङ्ग खानेसे खांसी, ज्वर, अतीसार, वमन, क्रिमिरोग और पेटके सब दोष दूर होजाते हैं इसका नाम पराशीयादि चूर्ण है ॥ २६ ॥

कांजीमें पीस कर पडुआ शाकके पत्ते लगानेसे जूँ और लीख मरजाती हैं ॥ २७ ॥

ताम्बूलपत्रजोवापि लेपाद्यूकाविनाशनः॥ २८॥

इति पारदलेपः।

सविडङ्गगन्धकशिलासिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम्।
आजन्म नयति नाशं लिक्षासहितांश्च यूकांश्च॥२९॥

इति विडङ्गतैलम्।

धुस्तूरपत्रकल्केन तद्रसेन च साधितम्।
तैलमभ्यङ्गमात्रेण (१) यूकां नाशयति ध्रुवम्॥ ३०॥

इति धुस्तूरतैलम्।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा कम्पिल्लकं तथा।
सिद्धमेभिर्गवांमूत्रे सर्पिः क्रिमिविनाशनम्॥
सर्वान् क्रिमीन् प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान्॥३१॥

इति त्रिफलाद्यं घृतम्।

धतूरेके पत्तोंके रसमें अथवा पानके रसमें मिलाकर पारा लगानेसे लीक मरजाती हैं॥ २८॥

विड़ङ्ग, गन्धक, मैनशिल और सुगन्ध द्रव्योंके जलमें पका कड़ुवा तेल लगानेसे लीख और जूँ मर जाती हैं इसका नाम विड़ङ्ग तैल है॥ २९॥

धतूरेके पत्तोंके कल्क और धत्तूरेके रसमें, पकाके तेल लगानेसे जूं मर जाती है इसका नाम धतूर तैल है॥ ३०॥

त्रिफला, निसोत, जमालगोटेकी जड़, बच और कँवेला इन सबको गौके मूत्र और घीमें डालकर पकावे, इस घीके खानेसे

(१) तैलं पूर्वोक्त कटु।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडङ्गप्रस्थ एव च ।
दीपनं दशमूलञ्च लाभतः समुपाचरेत् ॥ ३२ ॥
पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत् ।
प्रस्थोन्मितं (२) सिन्धुयुतं तत्परं क्रिमिनाशनम् ॥३३
त्रिफलाघृतमेतद्धि लेह्यं शर्करया सह ।
सर्वान् क्रिमीन् प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान् ॥३४॥
इति त्रिफलाद्यं घृतम् ।

स्वरसं पारिभद्रस्य प्रस्थमादाय यत्नतः ।
तदर्द्धाञ्च सितां दत्वा घृतं कुडवसम्मितम् ॥ ३५ ॥
प्रस्थार्द्धं रजनीचूर्णं दत्वा पाकं समाचरेत् ।

क्रिमिरोगका इस प्रकार नाश होता है जैसे इन्द्रके हाथमे छूटे हुके वज्रमे, राक्षसोंका। इसका नाम त्रिफलादि घृत है ॥ ३१ ॥

त्रिफला तीन प्रस्थ, बिड़ङ्ग एक प्रस्थ, अजवाइन और दशमूल इनके अनुसार डालकर एक द्रोण पानीमें, पकावे जब चौथाई रह जाय तब उतार कर छानले, फिर उस काढ़े में एक प्रस्थ घी और उसके अनुसार सेंधानमक डालकर पकावे इस घीको शहतके सङ्ग खानेसे, सब प्रकारके क्रिमिरोग दूर होजाते हैं इसका नाम भी त्रिफलादि घृत हैं ॥ ३२—३४ ॥

एक प्रस्थ नीमके पत्तोंका रस, आधाप्रस्थ चीनी, एक कुड़व घी और आधाप्रस्थ हल्दीका चूर्ण डालकर पकावे, जब पकते

(२) प्रस्थोन्मित सर्पि ।

यद्वा दार्वीप्रलेपश्चात्तदेषां चूर्णमाक्षिपेत्॥ ३६॥
चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं कृष्णजीरकम्।
यमानीद्वयसिन्धूत्थं निर्गुण्डीफलमेव च॥ ३७॥
पाठा विडङ्गकञ्चैव शारिवाद्वयशामकौ।
पलाशबीजं व्योषञ्च त्रिवृद्दन्ती सरेणुका॥ ३८॥
अरिष्टं सोमराजी च प्रत्येकन्तु द्विकार्षिकम्।
ततोमाषाष्टकं भक्षेत्तोयञ्चानुपिवेन्नरः॥ ३९॥
क्रिमींश्च विंशतिविधान्नाशयेन्नात्र संशयः।
दुष्टव्रणाञ्च कुष्ठञ्च नाड़ीव्रणभगन्दरम्॥ ४०॥
शीतपित्तं विद्रधिञ्च दद्रुं चर्मदलं तथा।
अजीर्णं कामलां गुल्मं श्वयथुञ्च विनाशयेत्॥ ४१॥
बलपुष्टिकरोह्येष बलीपलितनाशनः।
पारिभद्रावलेहोऽयं सर्वव्याधिनिसूदनः॥४२॥

पकाते कड़छीमें लगने लगे,तब चीता, हर्र,बहेड़ा,आमला,मोथा, विड़ङ्ग, कालाजीरा, अजवाइन, खुरासानी अजवाइन, संधा-नमक, सिनुवारके फल, पाढ़ा, बिड़ङ्ग, दोनोंसरिवन, बासा, ढाकके बीज, सौंठ, मिर्च, पीपल, निसोत, जमालगोटेकी जड़, रेणुका, नीम और सोमराजी इन सबको दो दो कर्ष लेकर चूर्ण बनाकर तेलमें डालदे, फिर आठ मासे खाय और ऊपर से पानी पीवे, तो बीसोंप्रकारके क्रिमिरोग बिगड़ा हुआ, घाव, कुष्ट, नसूर, भगंदर, शीतिपित्त बिद्रधि, चर्मदल, अजीर्ण, कामला, गुल्म और श्वयथु रोग दूर होजाते हैं। बल बहुत

व्रणिनां हितकामोहि प्राह नागार्जुनोमुनिः ॥ ४३ ॥

इति क्रिमिरोगे हरिद्राखण्डपारिभद्रावलेहः ।

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाज-
मोदा विडङ्गं विषमुष्टिका च ।
पलाशबीजश्च विचूर्णमस्य
निष्कप्रमाणं मधुनावलीढम् ॥ ४४ ॥
पिबेत् कषायं घनजं तदूर्द्ध
रसोऽयमुक्तः क्रिमिमुद्गराख्यः ।
क्रिमीन् निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान्
सन्दीपयत्यग्निमयं त्रिरात्रात् ॥ ४५ ॥

इति क्रिमिमुद्गरोरसः ।

बढ़ता है बालस्वेत नहीं होते, खाल नहीं सिकुड़ती नागार्जुन मुनिने घावोंसे व्याकुल मनुष्योंके कल्याणके लिये य सर्वरोग नाशक औषधिका नाम पारिभद्रावलेह लिखा है और कहीं कहीं इसका नाम हरिद्रा खण्डावलेह भी है ॥ ३५—४३ ॥

पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, अजमोदा चार भाग, विड़ङ्ग आठभाग, कुचिला सोलहभाग और ढाकके बीज बत्तीस भाग इन सबका चूर्ण बनाकर शहतके सङ्ग एक निष्क खाय और ऊपरसे मोथेका काढ़ा पीवे, इस प्रकार तीन दिन करनेसे क्रिमिरोग और क्रिमिरोगसे उत्पन्न हुये और रोग दूर होजाते हैं। और अग्नि बढ़ जाती है इसका नाम क्रिमिमुद्गर रस है ॥ ४४—४५ ॥

शुद्धसूतमिन्द्रयवं चाजमोदा मनःशिला।
पलाशबीजं गन्धश्च देवदाल्याद्रवैर्दिनम् ॥ ४६ ॥
संमर्द्यभक्षयेन्नित्यं मुद्गपर्णीरसैः सह।
सितायुक्तं पिवेच्चानु क्रिमिपातोभवत्यलम् ॥ ४७ ॥
इति कीटारीरसः।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धमजमोदा विडङ्गकम्।
विषमुष्टी ब्रह्मदण्डी यथाक्रमगुणोत्तरम् ॥ ४८ ॥
चूर्णयेन्मधुनामिश्रं निष्कैकं क्रमिजिद्भवेत्।
कीटमर्दीरसोनामा मुस्ताक्वाथं पिवेदनु ॥ ४९ ॥
इति कीटमर्दीरसः।

रसगन्धाजमोदानां क्रमिघ्नब्रह्मबीजयोः।
एक द्वि त्रि चंतुः पञ्च तन्दोर्वीजस्य षट्क्रमान् ॥५०॥

शुद्ध पारा, इन्द्रजौ, अजमोदा, मैनसिल, ढाककेबीज और गन्धक इन सबको खरलमें डालकर विन्दालके रसमें घोटे, फिर मुद्गपर्णीके रसके सङ्ग खानेसे, पेटके कीड़े गिर जाते हैं। परन्तु ऊपरसे शरबत पीना चाहिये, इसका नाम कीटारिरस है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अजमोदा, विड़ङ्ग, कुचिला, बह्मनेटी ये सब एक दूसरेसे दुगुनी लेकर चूर्ण बनावे इस चूर्णको शहत के सङ्ग मिलाकर एक निष्क खानेसे और ऊपरसे मोथेका काढ़ा पीनेसे, क्रिमिरोगका नाश होजाता है इसका नाम कीटमर्दीरस रस है ॥ ४८ ॥ ५० ॥

संचूर्ण्य मधुना सर्वं गुड़िकां क्रमिघातिनीम् ।
खादन् पिपासुस्तोयञ्च मुस्तानां क्रमिशान्तये ॥
आखुपर्णीकषायं वा प्रपिबेत् शर्करान्वितम् ॥५१॥

इति क्रमिघातिनीगुड़िका ।

अत्रप्रसङ्गान्मक्षिकाद्युपद्रव शमनोपायमाह ।

तक्रपिष्टेन तालेन लेपात्पुत्तलकं शुभम् ।
तमाघ्राय गृहाद्यान्ति मक्षिका नात्र संशयः ॥५२॥

पिष्टकादि पुत्तलकं तक्रपिष्टेनहरितालेन लिप्त्वा गृहे स्थापयेत् । तमाघ्रायमक्षिकास्त्यजन्ति ॥ ५३ ॥

शालनिर्यासधूमेन गृहं त्यजति मक्षिका ।
तालकं छागविरामूत्र पलाण्डुा सह पेषयेत् ॥ ५४ ॥

पारा १, गन्धक २, अजमोदा ३, विड़ङ्ग ४, ब्रह्मबीज ५ और कुचिला छः भाग, लेकर चूर्ण बनावे और शहदसे गोली बनाले, ऊपरसे मोथा अथवा मूसा कानीके काढ़े में शक्कर मिलाकर पीवे तो क्रिमिरोग दूर होजाता है इसका नाम क्रिमिघाती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

आगे मक्खियोंके शान्तहोनेकी चिकित्सा लिखते हैं ।

एक पुतलेपर मठ्ठे में पीसकर हरतालका लेप करे और उस पुतलेको घरमें रखदे उसके सूंघनेसे मक्खी घरसे निकल जाती हैं अर्थात् पिट्ठी आदिका पुतला बनाकर उसपर मठ्ठे में पिसी हरतालका लेप कर घरमें रखदे, उसके सूँघने ही से मक्खी घरसे भाग जाती हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

आलिप्य मूषिकं तेन सजीवन्तं विसर्जयेत् ॥ ५५ ॥
दृष्ट्वैव तं गृहं त्यक्त्वा पलायन्ते हि मूषकाः ।
मार्जारस्य मलं तालं पिष्ट्वा मूषकमालिपेत् ॥
तमाघ्राय गृहं त्यक्त्वा सद्योनिर्यान्ति मूषकाः ॥५६॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावल्यां क्रमिरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ पाण्डुरोगाधिकारः ।

वातपित्तकफैः सर्वैस्तथा चाशनतो मृदः ।
पाण्डुरोगाः पञ्च प्रोक्ता लक्षणं पृथगुच्यते ॥ १ ॥

सालके गोंदको घरमें जलानेसे मक्खी भाग जाती है ॥५५॥

आगे घरसे मूसा भगानेकी चिकित्सा लिखते हैं ।

एक जीते हुये मूसेके शरीर पर हरताल, बकरीका मूत्र, बकरीका बिष्टा, और प्याज पीसकर लेप करै और उस मूसेको जीताही घरमें छोड़ दे, उसको देखने होसे सब मूसे घरसे भाग जाते हैं ॥ ५६ ॥

बिल्लीका बिष्टा और हरताल पीसकर मूसेके ऊपर लेप करै और उस मूसेको घरमें छोड़दे उसकी सुगन्धीसे सब मूसे घर छोड़ कर भाग जाते हैं ॥ ५७ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें क्रिमिरोगादि समाप्त ।

वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुआ चार प्रकारका पाण्डुरोग कहा है और जो मिट्टी खानेसे उत्पन्न होता है वह पांचवा पांडुरोग कहा है ॥ १ ॥

अथ विप्रकृष्टनिदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

लवणमांसमृदां परिसेवनात्
अतिपरिश्रमतः खलु मद्यतः ।
रुधिरमांसत्वचः परिदुष्य ते (१)
गदकराः किल पाण्डुप्रदा अथ ॥ २ ॥

पूर्वरूपमाह ।

त्वक्स्फोटं ष्ठीवनं चैव पीतत्वं सन्धिगात्रयोः ।
मृद्भक्षणं नेत्रकूटशोथः पाण्डुत्वमेव च ॥ ३ ॥
विष्टामूत्रनखादीनामन्नापाकस्तथैव च ।
पूर्वरूपं समुद्दिष्टं पाण्डुरोगे सुसत्तमैः ॥ ४ ॥

वातिकलक्षणमाह ।

नेत्रमूत्रनखादीनां रौक्ष्यं कृष्णारुणाभता ।

जो मनुष्य सदा नमक, मांस और मट्टी खाता, तथा सदा मद्य पीता है अधिक परिश्रम करता हैं उस्के वातपित्त और कफ बिगड़ कर मांस रुधिर और त्वचाको दूषित करके शरीर का रङ्ग पाण्डु कर देते है वैद्य उसे ही पाण्डुरोग कहते हैं ॥ २ ॥

जिस रोगीका सब शरीर पीला होजाय, खाल फटे, आंख सूज जायं, मिट्टी खानेको इच्छा होय, बिष्टा, मूत्र, नखून और नेत्रोंका रंग पीला होजाय और अन्न न पचे तब वैद्य जान लेय कि इस मनुष्यको पाण्डुरोग होगा ॥ ३—४ ॥

जिस रोगमें रोगीके मूत्र, नेत्र, नखून और बिष्टा आदि

---

(१) ते गदकरा रोगोत्पादकाः पाण्ड्वादय इत्यर्थः भवतीति शेषः ।

भेदः शूलं भ्रमः कम्पो वातोत्थे पाण्डुयक्ष्मणि(१) ॥५

पैत्तिकमाह।

तृष्णा दाहो ज्वरो मूर्च्छा नेत्रत्वङ्मूत्रवर्चसाम्।
पीतत्वं भिन्नविट्कत्वं पैत्तिके देहपीतता ॥ ६ ॥

श्लैष्मिकमाह।

गौरवं वमथुश्चैव आलस्यं जृम्भणं क्लमः।
कफप्रसेकः कफजे शुक्लत्वं मूत्रवर्चसाम् ॥ ७ ॥

सान्निपातिकमाह।

वातादयः प्रकुपिताः पाण्डुरोगं प्रकुर्वते।
सर्वेषां तत्र चिह्नानि दोषाणां प्रभवन्ति हि ॥ ८ ॥

रूखे, काले और लाल होजायँ; शरीर कांपे दस्त आवें, शूल और भ्रम होय उसे वातसे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग जाने ॥५॥

जिस रोगमें रोगीको प्यास, जलन और मूर्च्छा हो; नेत्र, त्वचा, मूत्र, नखून और विष्टा पीले होगये हों; अधिक दस्त आते हो। उसे पित्तसे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग जानें ॥ ६ ॥

जिस रोगीका शरीर भारी हो; अधिक थूक आता हो, जमुहाई और आलस्य अधिक हो, नेत्र, नखून, विष्टा और मूत्र सफेद होगये हों उसे कफसे उत्पन्न हुवा पाण्डुरोग जानें ॥७॥

जिस रोगीके शरीरमें ऊपर लिखे सब चिह्न दिखाई देय उसे सन्निपातसे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग जानना चाहिये ॥८॥

(१) रोगे।

मृज्जस्य सम्प्राप्तिमाह ।

मृत्तिकाभक्षणपरो नरः कुपितदोषवान् ।
पाण्डुरोगं प्रलभते विशेषस्तत्र वक्ष्यते ॥ ९ ॥
कषाया मृत्तिकावातं पित्तमूसरसम्भवा ।
मधुरा दूषयित्वा तु श्लेष्माणं पाण्डुदा मता ॥ १० ॥
रसः संदूषितो जन्तोर्मृद्भक्षणतो भृशम् ।
माऽपक्वैव च स्रोतांसि निरुणद्धि विशेषतः ॥ ११ ॥
इन्द्रियाणां बलं नाशं वीर्य्यमोजश्च गच्छति ॥ १२ ॥

अथ मृज्जस्य लक्षणमाह ।

तन्द्रालस्यारतिश्वासाः कासः सर्वाङ्गपाण्डुता ।
निद्रा शूलं श्रमो दाहः क्रमिकोष्ठत्वमेव च ॥ १३ ॥
भृगण्डलिङ्गनाभीनामक्षिकूटस्य शून्यता ।
अतीसारश्च भवति पाण्डुरोगेतु मृद्भवे ॥ १४ ॥

जो मनुष्य सदा मट्टी खाता है उसके दोष बिगड़ कर पाण्डुरोग उत्पन्न करते हैं अर्थात् कसैली मट्टीसे वायु, ऊसर स्थान की मट्टीसे पित्त और मीठीसे कफ बिगड़ कर रसको दूषित करता है तब वही मिट्टी रस वहनेके मार्गोंको रोकती हैं; इससे मनुष्यकी इन्द्रियोंका बल, वीर्य्य और तेज नष्ट होकर पाण्डुरोग उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ १२ ॥

जिस रोगमें जमुहाई, आलस्य, भोजन करनेकी अनिच्छा, सांस, निद्रा, खांसी, शूल, थकाई, जलन और पेटमें कीड़े

असाध्यतामाह ।

अरुचिवमनकासैश्छर्दितृष्णाभ्रमाद्यै-
रतिसरणशोथैः शूनताग्लानिकम्पैः ।
दहनसदनमूर्च्छादन्तपीतादियुक्तो
हतकरणबलौजाः पाण्डुरोगी न जीवेत् ॥१५॥
दीनः कफाढ्यो हरितच्छविश्च
बद्धाल्पविट्कः स्वरभेदभेदैः
युक्तो न जीवेत्किल पाण्डुरोगी
संशुष्कमुष्कोऽनिपीड़ितश्च ॥ १६ ॥

होजाय भौंह, गाल, लिंग, नाभी और आंख सूजजाय, दस्त आवे, सब शरीर पोला होजाय उसे मिट्टी खानेसे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग जाने ॥ १३ ॥ १४ ॥

जिस पाण्डुरोगीको अरुचि, जलन, खांसी वमन, प्यास, भ्रम, दस्त आना, शूल, ग्लानि, कम्प, मन्दाग्नि, और मूर्च्छा हो और जिसके दांत पीले होगये हो जिसकी इन्द्रियोंका बल और तेज नाश होगया हो। उसे जाने कि यह पाण्डुरोगी नहीं जियेगा। जिस्का शरीर पीला होगया हो, कफ बहुत आता हो, अथवा शरीरका रङ्ग हरा हो, दस्त बंधा और कम आताहो अथवा बहुत दस्त आते हो, जिसका स्वर नष्ट होगया हो, जिस्के कण्ठ और अण्डकोश सूख गये हो, जिसे भोजन करनेकी इच्छा न हो उस पाण्डुरोगीको असाध्य जाने ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ पाण्डुरोगान्तर्गतकामलायानिदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

यदा तु पाण्डुरोगी तु तिक्ताम्लद्रव्यमश्नुयम् ।
तदास्य जायते घोरा कामला मांसशोषिणी ॥ १७ ॥

कामलायालक्षणमाह ।

हारिद्रनेत्रनखचर्मगलाननश्च
मृद्दुर्गाभो हतवीर्य्यतेजाः
दाहाविपाकगुरुताऽरुचिवह्निमान्द्यै-
र्युक्तो नरः कामलयान्वितस्तु ॥१८॥

तस्याभेदमाह ।

चिरोत्थिता कामला तु कोष्ठशाखा गता यदा ।
खरीभूता यदात्यर्थं तदामाकुम्भकामला ॥ १ ॥

जब पाण्डुरोग उत्पन्न होनेपर भी रोगी पित्त बढ़ानेवाली वस्तु खाताहै तब उसे मांस सुखानेवाला भयानक कामला रोग उत्पन्न होजाता है ॥ १७ ॥

कामला रोगमें नखून, नेत्र, त्वचा, कण्ठ, और मुख, हल्दी, केसमान पीले हो जाते हैं। रोगीका रङ्ग, मेढकके समान हो जाता है, अन्न नहीं पचता, शरीरमें जलन होती है, शरीर भारी रहता है, खानेकी इच्छा नहीं होती और अग्निमन्द होजाती हैं ॥ १८ ॥

जब वही कामला पुरानी होनेके कारण अत्यन्त तेज हो

अरिष्टमाह ।

ज्वरारोचकहृल्लास वमनक्लमपीड़ितः ।
न जीवेत् कामलारोगी अतीसारी तथैव च ॥ २० ॥

अथ द्वयोररिष्टमाह ।

पीतवर्चाः कृष्णविट्‌को कृष्णविण्मूत्रनेत्रवान् ।
रक्तनेत्रश्छर्दियुक्तो नष्टसंज्ञो विनश्यति ॥ २१ ॥

पाण्डुरोगभेदहलीकमाह ।

पाण्डुरोगान्वितस्यैव पीतश्यावो यदा भवेत् ।
वर्णो वा हरितो वह्निर्मन्दतां याति वा पुनः ॥॥२२॥

कर कोठेमें प्राप्त होती हैं तब वैद्य उसेही कुम्भ कामला कहते हैं ॥ १८ ॥

जब कामला रोगी ज्वर, अरुचि हृल्लास, वमन, और अतिसारसे पीड़ित हो तब जाने कि अब यह नहीं जीयेगा ॥२०॥

जिस कामला या कुम्भकामला रोगीके विष्टा, मूत्र और नेत्र, काले अथवा पीले होगये होय, नेत्र लाल होंय, वमन होता होय, चैतन्यता कुछ न रही होय उसे जानेकि अब यह मर जायगा ॥ २१ ॥

जब पाण्डुरोगीके शरीरका रङ्ग पीला या कुछ काल हो जाय अथवा काला होजाय, अग्नि मन्द होजाय, थोड़ा ज्वर हो, मैथुन करनेकी इच्छा नहोय, शरीरमें पीड़ा होय, खांसी, श्वास,

मृदुज्वरोऽमैथुनेच्छागात्रमर्दोऽरुचिर्भ्रमः ।
कासः श्वासश्च तृष्णा च तं हलीमकमुच्यते ॥ २३ ॥

अथ चिकित्सा ।

साध्यन्तु पाण्डामयिनं समीक्ष्य-
स्निग्धं घृतेनोर्द्ध्वमधश्च शुद्धम् ।
सम्पादयेत् क्षौद्रघृतप्रगाढ़ै-
र्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः ॥ २४ ॥
पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्वं
यत्त्रैफलं तैन्दुकमेव वापि ।
विरेचनद्रव्यकृतं पिबेद्वा
योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन ॥ २५ ॥

विधिः स्निग्धस्तु वातोत्थे तिक्तशीतस्तु पैत्तिके ।
श्लैष्मिके कटुरुक्षोष्णः कार्य्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ २६ ॥

अरुचि और प्यास होय तब उसे हलीमक रोग जाने ॥ २२ ॥ २३ ॥

पाण्डुरोगीको साध्य समझकर घी आदि चीकनी औषधियोंसे वमन और विरेचन देकर शुद्ध करे, फिर शहत और घीमें मिलाकर हर्रका चूर्ण खिलावे ॥ २४ ॥

अथवा हल्दीमें पका, या त्रिफलेमें पका, अथवा तेँदूमें पका घी पिलावे या और विरेचन औषधियोंमें पकाकर घी पिलावे ॥ २५ ॥

वातसे उत्पन्न हुये पाण्डुरोगमें चिकनी, पित्तसे उत्पन्न हुये

पाण्डुरोगे सदा सेव्या सगुड़ा च हरीतकी ॥ २७ ॥

इति गुड़हरीतकी ॥

मण्डूरं गवां मूत्रे भावितं चाप्ययोरजः।
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसाथ पिबेन्नरः ॥ २८ ॥

इति अयश्चूर्णम्।

अयोमलन्तु सन्तप्तं भूयोगोमूत्रशोधितम् ॥
मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह भक्तेन योजयेत्।
दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥२८॥

इति किट्टयोगः।

रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत्।

में, कड़वी और ठण्डी ; कफमें उत्पन्न हुयेमें, कड़वी रूखी और गर्म और दो दोषोंमें उत्पन्न हुये, पाण्डुरोगमें मिली हुई चिकित्सा करनी उचित है ॥ २६ ॥

पाण्डुरोगी सदा गुड़ और हर्र खाय। अथवा सातदिन तक गोके मूत्रमें भीगा लोह चून खाय, ऊपरसे दूध पीवे ॥२७॥

लोहेकी कीटको बार बार गर्म करके गोके मूत्रमें बुझावे, फिर घी और शहत मिलाकर भोजनके सङ्ग रोगीको खिलावे, उससे अग्नि बहुत बढ़जाती है और शोथ तथा पाण्डुरोग दूर होजाता है ॥ २८ ॥

जिस रोगीको कामला रोग हुआ हो उसे पहिले कुछ चिकनाई पिलाकर विरेचन दे, फिर प्रशमन अर्थात् दोष शान्त करनेकी क्रिया करै ॥ २९ ॥

ततः प्रशमनी कार्य्या क्रिया वैद्येन जानता ॥३०॥
त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः ।
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः (१) कामलापहः ॥३१॥
इति योगः ।

सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी
हिता गवाक्षी सगुडा च शुण्ठी ॥ ३२ ॥
दग्ध्वाऽक्ष काष्ठैर्मलमायसन्तु
गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण
कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ३३ ॥
इति किट्टचूर्णम् ।

रोगी प्रातःकाल त्रिफला या गुर्चि अथवा दारुहल्दी या नीमके रसमें शहद मिलाकर खाय, तो कामला रोग दूर होजाता है ॥ ३० ॥

शक्कर और निसोत अथवा इन्द्रायन गुड़ और सोंठ खानेसे भी पाण्डुरोग दूर होजाता है ॥ २१ ॥

आठवार बहेड़ेकी लकड़ीकी आगमें तपाकर लोहेकी कीट बुझावे, फिर उसही का चूर्ण शहतके सङ्ग खानेसे पाण्डुरोग शीघ्र दूर होजाता है ॥ ३२ ॥

सातदिन तक लोहेके बर्तनमें पका हुआ दूध पीनेसे और

(१) सेवित ।

लौहपात्रे शृतं चीरं सप्ताहं पथ्यभोजनम् ।
पिबेत्पाण्डुामयी शोषी ग्रहणीदोषपीडितः ॥ ३४ ॥

इति दुग्धविधिः ।

अञ्जनं कामलार्त्तस्य द्रोणपुष्पीरसः (१) स्मृतः ॥३५॥

इति द्रोणपुष्पाञ्जनम् ।

निशा(२)गैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत् ॥३६॥

इति निशाद्यञ्जनम् ।

नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं यामिनीफलम् ॥३७॥

इति कर्कोटिकानस्यम् ।

पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हलीमके ।
कामलायाञ्च या दृष्टा सापि कार्य्या भिषग्वरैः ॥
व्यूषणं त्रिफलामुस्तं विडङ्गं चित्रकः समाः ॥ ३८ ॥

पथ्य भोजन करनेसे पाण्डुरोग, शोथ और ग्रहणी दोष दूर होजाते हैं ॥ ३३ ॥

दोनेके रसको निमक और तैल डालकर तांबेके बर्त्तनमें रगड़े उसका अञ्जन करनेसे भी कामलारोग दूर होता है । अथवा हल्दी, गेरु और आंवलेका अञ्जन करनेसे भी पाण्डुरोग दूर होजाता है इसका नाम निशादि अञ्जन है ॥३४॥३६॥

ककोड़ेकी जड़ पीसकर अथवा हल्दीका फल सूंघनेसे कामला और पाण्डुरोग दूर जोहाते हैं । बुद्धिमान वैद्य

---

(१) किञ्चित्तैललवणयुक्तम्ताम्रपात्रे निघृष्टमञ्जनं ।

(२) धात्रीचूर्णं मधुना

नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ।
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोग कुष्ठार्शः कामलापहम् ॥ ३९ ॥

इति नवायसलौहम् ।

पलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः ।
सितायाश्च पलञ्चैकं मधुनश्च पलं तथा ॥ ४० ॥
तोलैकं कान्तलौहस्य त्रिकत्रयसमन्वितम् ।
हरीतकीभावितञ्च रौद्रे शिशिर एव च ॥ ४१ ॥
भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव प्रयोजयेत् ।
अनुपानं प्रदद्याच्च बुद्धा दोषगतिं भिषक् ॥ ४२ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्च सुदारुणाम् ।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ४३ ॥

हलीमक रोगमें पाण्डुरोगको क्रिया करे और कामलामें भी पाण्डुरोगके समान चिकित्सा करे ॥ ३७—३८ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, मोथा, बिड़ङ्ग और चीता ये सब समान और लोह चूर्ण नौ भाग डालकर शहत और घी के सङ्ग खाय तो, पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, अर्श और कामला रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम नवायस लोह है ॥ ३९ ॥

एकपल लोहेकी कीट, एकपल गौका घृत, एकपल चीनि, एकपल, शहत, एक तोला, कान्तलोह, हर्र, बहेड़ा आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात और इलायची इन सबको हर्रके पानीमें मिलाकर धूपमें सुखाकर ठण्डा करले, फिर

त्रिकत्रयादिरित्येष वाग्भटेन प्रकाशितः॥ ४४॥

इति त्रिकत्रयादिर्लौहम्।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारुफलत्रिकम्।
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिताः॥ ४५॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः।
पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत्॥ ४६॥
ततोऽक्षमात्रान् वटकान् पिबेत्तक्रेण तक्रभुक्।
पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥ ४७॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमथापि च।
क्रिमिं प्लीहानमुदरं गलरोगञ्च नाशयेत्॥ ४८॥

भोजनके पहिले, मध्यमें और अन्तमें दोषके अनुसार अनुपानके सङ्ग रोगीको खिलावे, इससे कामला, पाण्डुरोग और भयानक श्वयथु इस प्रकार दूर होजाते हैं, जैसे सूर्य्य निकलनेसे अन्धकार वागभटने, इसका नाम त्रिकत्रयादि लोह लिखा है॥ ४०—४४॥

पञ्चकोल (पीपल, पिपलामूल, चाभ, चीता और सोंठ) मिर्च, देवदारु, हरं, बहेड़ा, आमला, विड़ङ्ग और मोथा ये सब तीन तीन पल और इन सबसे दुगुना मण्डूर डालकर आठगुने गो मूत्रमें पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब उतार कर एक एक अक्षको गोली बनाले और रोगीको मट्ठे के सङ्ग एक गोली खिलावे, तो पाण्डु रोग, मन्दाग्नि, अरोचक, अर्श, ग्रहणीदोष, ऊरुस्तम्भ, क्रिमिरोग, पिलही, उदररोग और

मण्डूरोवज्रनामायं रोगानीकविनाशनः ।
निर्वाप्य बहुशोमूत्रे गोमूत्रं ग्राह्यमिष्यते ॥ ४९ ॥
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मंडूरचूर्णतः ॥ ५० ॥

इति वज्रवटकमंडूरम् ।

पुनर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च ।
विडङ्गं देवकाष्ठञ्च चित्रकं पुष्कराह्वयम् ॥ ५१ ॥
त्रिफला द्वे हरिद्रे च दन्ती च चविका तथा ।
कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ५२ ॥
एतानि समभागानि मंडूरं द्विगुणं ततः ।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत् स्निग्धभाजने ॥ ५३ ॥
पांडुशोथोदरानाहशूलार्शः क्रिमिगुल्मनुत् ॥ ५४ ॥

इति पुनर्नवादि मंडूरम् ।

कण्ठरोग दूर होजाते हैं। अनेक बार लोहा, गोमूत्रमें बुझावे और उसी गोमूत्रमें इस औषधिको पकावे, इससे अनेक रोग दूर होजाते हैं, वैद्यलोग मण्डूर चूर्णसे आठगुणा गोमूत्र डालते हैं। इसका नाम वज्रमण्डूर है ॥ ४३—४९ ॥

गधापूर्ना, निसोत, सोंठ, पीपल, मिर्च, बिड़ङ्ग, देवदारु, चीता, पुष्करमूल, हर्र, बहेड़ा, आंमला, हल्दी, दारुहल्दी, जमालगोटेकी जड़, चाई, इन्द्रजौ, कुटकी, पिपलामूल और मोथा इन सबको समान लेकर दुगुना मण्डूर डालकर आठगुने गोमूत्रमें पकाकर चिकने बर्त्तनमें भर कर रख छोड़े, इससे पाण्डुरोग, शोथ, उदररोग, अनाह, शूल, अर्श, क्रिमि-

द्विपलं जारितं लौहं लौहार्द्धं जारिताभ्रकम् (१)।
मण्डूरञ्च तदर्द्धञ्च तदर्द्धं मृतवङ्गकम्॥ ५५॥
वङ्गार्द्धं मागधं (२) शुण्ठी पिप्पली गजपिप्पली।
ग्रन्थिकं गन्धपत्रञ्च दार्वी चव्यं यमानिका॥ ५६॥
चित्रकं कट्फलं रास्ना देवदारु फलत्रिकम्।
रसाञ्जनं चातिविषां समभागानि चूर्णयेत्॥ ५७॥
भृङ्गराजस्य भृङ्गस्य सोमराजरसस्य च।
मण्डूकपर्ण्याः स्वरसैर्भावयेच्च दिनत्रयम्॥५८॥
भक्षयेन्मधुना युक्तं सर्व्वमेह कुलान्तकम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथारुचिम्॥ ५९॥
कासं श्वासं शिरःशूलं प्लीहानमग्रमांसकम्।
जीर्णज्वरं तथा शोथमङ्गग्रहनिपीडितम्॥ ६०॥

रोग और गुल्म दूर होजाते हैं, इसका नाम पुनर्नवादि लोह है॥ ५०—५४॥

लोहेकी भस्म दो पल, तांबेकी भस्म उससे आधी, तांबेसे आधा मण्डूर, मण्डूरसे आधा बङ्ग, पुतरजीवा, सोंठ, पीपल, गजपील, पीपलामूल, तेजपात, दारुहलदी, चाभ, अजवाइन, चीता, कांयफल, रहसन, देवदारु, हर्र, बहेड़ा, आंवला, रसौत और अतीस ये सब बङ्गसे आधे आधे डालकर चूर्ण बनावे, फिर भँगरा, कालाभँगरा, सोमराज और ब्रह्मीके रसमें तीन-दिन तक भावना दे, फिर शहतके सङ्ग खानेसे सब प्रकारके

(१) पलैकम्। (२) पुत्रजीवम् आ० वे० सं०।

गुल्मशूलञ्च हृद्रोगं संग्रहग्रहणीहरम् ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ ६१ ॥
कामलान्तकनामेदं लौहं कामलरोगनुत् ॥ ६२ ॥

इति कामलान्तकलौहम् ।

लौहं ताम्रं गन्धमभ्रं पारदञ्च समांशिकम् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ ६३ ॥
किरातं देवकाष्ठञ्च हरिद्राद्वयपुष्करम् ।
यमानी जीरकं युग्मं शटीधान्यकचव्यकम् ॥ ६४ ॥
प्रत्येकं लौहभागञ्च श्लक्ष्णचूर्णन्तु कारयेत् ।
सर्वचूर्णस्य चार्द्धांशं सुशुद्धं लौहकिट्टकम् ॥ ६५ ॥
गोमूत्रे पाचयेद्वयो लौहकिट्टं चतुर्गुणे ।
पुनर्नवाष्टगुणितं क्वाथं तत्र प्रदापयेत् ॥ ६६ ॥

प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, अरुचि, [illegible], श्वास, शिरकी पीड़ा, पिलही, अधिक मांस, जीर्णज्वर, शोथ सब शरीरकी पीड़ा, गुल्म, शूल, हृद्रोरोग, विष्टारुकना, संग्रहणी, जीर्णज्वर और कामला रोगका नाश होजाता है और मन्दाग्नि बहुत शीघ्र बढ़जाती है, इसका नाम कामलान्तक लौह है ॥ ५३ ॥ ६२ ॥

लोहा, तांबा, अभ्रक, गन्धक और पारा ये सब एक एक भाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंमला, मोथा, बिड़ङ्ग चीता, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, पुष्करमूल, जीरा, कालाजीरा, कचर, धनियां और चाभ ये सब एक एक भाग

सिद्धेऽवतारिते चूर्णं मधुनः पलमात्रकम्।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षानुपानतः॥ ६७॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति सशोथां पाण्डुकामलाम्।
अग्निं च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति॥ ६८॥
प्लीहानं यकृतं गुल्ममुदरञ्च विशेषतः।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं कान्तिपुष्टिविवर्द्धनम्॥६९॥
इति पञ्चामृतलौहमण्डूरम्।

मृतकं गन्धकं लौहमभ्रकञ्च पलं पलम्।
शङ्खटङ्कवराटञ्च प्रत्येकार्द्धपलं हरेत्॥ ७०॥
श्वदंष्ट्राबीजचूर्णञ्च पलैकं तत्र दीयते।
सर्व्वमेकीकृतं चूर्णं वाप्ययन्त्वे विभावयेत्॥ ७१॥

लेकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णसे आधी, लोहेकी शुद्ध कीट डालकर लोहेकी कीटसे चौगुना गोमूत्र डालकर पकावे, फिर आठगुना गधे पुत्रे का काढ़ा डालकर पकावे, जब सिद्ध होजाय, तब उतारकर पहिले लिखा चूर्ण और एकपल शहत डाले, फिर प्रातःकाल बीज बन्धके सङ्ग खानेसे, पुरानी ग्रहणी, शोथ, कामला, पाण्डु, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, पिलही, यकृत्, गुल्म, उदररोग, खांसी, श्वास और प्रतिश्याय रोग दूर होजाते हैं। बल और तेज बहुत बढ़ जाते हैं, इसका नाम पञ्चामृत मण्डूर है॥ ६७—६९॥

पारा, गन्धक, लोहा और अभ्रक एक एक पल; शङ्ख, सुहागा और कौड़ी आधापल, गोखरूके बीज एकपल इन

पटोलं पर्पटं भार्गी विदारी शतपुष्पिका ।
कुण्डली दण्डिनी वासा काकमाचीन्द्रवारुणी ॥७२॥
वर्षाभूः केशराजश्च शालिञ्चो द्रोणपुष्पिका ।
प्रत्येकाङ्कपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं कुरु ॥ ७२ ॥
चतुर्दशवटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः ।
गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्य्यात्मकोरसः ॥ ७३ ॥
हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगञ्च कामलाम् ।
जीर्णज्वरं सविषमं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ७४ ॥
शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन् ।
शोथं मन्दानलं कासं श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमम् ॥७५॥
भगन्दरोपदंशौ च दद्रुकण्डुव्रणापचीः ।
दाहं तृष्णामुरुस्तम्भमामवातं कटीग्रहम् ॥ ७ ॥

सबको चूर्ण करके परवर, पित्तपापड़ा, बम्हनेटी, गन्धविदारी, सौंफ, गुरिच, ब्रह्मदण्डी, वासा, मकोय्या इन्द्रायन, गधावुना, कालाभंगरा, शालिंच और दीना इन सबका एक एक पल रस डालकर भावना दे, फिर गोली बनाले, फिर रोगीको बकरीके दूधके सङ्ग, चौदह गोली खिलावे, इससे शीघ्र ही हलीमक, पाण्डुरोग, कामला, जीर्णज्वर, विषमज्वर, रक्तपित्त, अरोचक, शूल, पिलही, उदररोग, आनाह, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधी, शोथ, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, भगन्दर, उपदंश, दाद, खुजली, व्रण, अपची, दाह, प्यास, ऊरुस्तम्भ, आमवात और कटीग्रह रोग दूर होजाते हैं, इसको

युक्त्या मद्येन मण्डेन मुद्गयूषेण वारिणा।
गुडूची त्रिफला रास्ना क्वाथनीरेण वा क्वचित् ॥७७॥

इति चन्द्रसूर्य्यात्मकोरसः।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धं काश्मीरसम्भवम्।
लौहं ताम्रं वराटीञ्च तुल्यं हिङ्गुफलत्रयम् ॥ ७८ ॥
स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत्।
प्रत्येकन्तु समं भागं छागीदुग्धेन भावयेत् ॥ ७९ ॥
चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद्वारिणा मधुना सह।
प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ ८० ॥
श्लेष्मदोषञ्च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्।
निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदं तथा ॥८१॥
गलगण्डं गण्डमालां कृच्छ्राणि च हलीमकम्।
शोथं शूलमुरुस्तम्भं संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ८२ ॥

युक्तिसे मद्य, माड़, मूंगके रस, पानी, गुरिच, हर्र, बहेड़ा, आंमला अथवा रासनके काढ़ेके सङ्ग दे, गहनानन्द नाथने, इसका नाम चन्द्रसूर्य्यात्मक रस रक्खा है ॥ ७०—७७ ॥

ईंगुरसे निकला हुआ पारा, गन्धक, केशर, लोहा, तांबा, कौड़ी, तूतिया, ईंगुर, हर्र, बहेड़ा, आंमला, थूहरकी जड़, जवाखार, जमालगोटा, सुहागा और निसोथ इनको समान लेकर बकरीके दूधमें घोटकर चाररत्तीकी गोली बनावे और शहत या पानीके सङ्ग खाय, इसको कफके दोषोंमें मात्राघटा बढ़ाकर दे तो कामला, पाण्डु रोग, अनाह, श्लीपद, गलगण्ड,

हन्ति मूर्च्छां वमिं हिक्कां कासं श्वासं गलग्रहम् ।
असाध्यं सन्निपातञ्च जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ ८३ ॥
जलदोषभवं शोथं महोग्रञ्च जलोदरम् ।
नातः परतरं श्रेष्ठं कामलार्त्तिरुजापहम् ॥ ८४ ॥

इति प्राणवल्लभोरसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलुः ।
जैपालवीजंतुल्यञ्च घृतेन गुडकीकृतम् ॥ ८५ ॥
भक्षयेद्वदरास्थ्याभं शोथपाण्डुप्रशान्तये ।
पञ्चानना वटी ख्याता पाण्डुरोगकुलान्तिका ॥८६॥

अत्र सर्वसमं जैपालं घृतेन प्रहरं संमर्द्य स्निग्ध

गण्डमाला, कष्टसाध्य हलीमक, शोथ, शूल, ऊरुस्तम्भ, विष्टम्भ, कर, ग्रहणी, मूर्च्छा, वमन, हिचकी, खांसी, श्वास, गल ग्रह, असाध्य सन्निपात, जीर्णज्वर, अरोचक, जलदोषसे उत्पन्न हुआ शोथ और घोर जलोदर रोग दूर होजाते हैं। कामला और पाण्डुरोग नाश करनेके लिये इसके समान दूसरी औषधि नहीं है। गहनानन्द नाथने इसका नाम प्राणवल्लभ रस लिखा है॥ ७८—८४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, गूगुल और जमालगोटेके बीज इन सबको समान लेकर घीमें घोटकर बेरकी गुठलीके समान गोली बनावे, इसमें पारेसे लेकर गूगुल तक औषधि एक एक भाग और जमालगोटेकी गिरी सबके समान पड़ती है। फिर वैद्य एक पहर तक घीमें घोट-

भाण्डे संस्थाप्य बदरास्थिप्रमाणं भक्षयेत् द्रोणपुष्पी
रसमनुपिबेत् ॥ ८७ ॥

इति पञ्चाननवटी ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ।
दार्वीत्वङ्माक्षिकोधातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ॥ ८८ ॥
एषां द्विपलिकान् भागांश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ८९ ॥
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः ।
उडुम्बरसमान् कृत्वा वटकांस्तान् यथाग्नि वा (१) ॥ ९०
उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ।
मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ९१ ॥

कर चिकनेबर्त्तनमें भरकर रख दे और रोगीको प्रतिदिन बेरकी गुठलीके समान खिलावे, ऊपरसे दोनेका रस पिला दे, इससे शोथ और पाण्डुरोगका नाश होजाता है । इसका नाम पञ्चानन वटी है ॥ ८५—८७ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंमला, मोथा, विड़ङ्ग, चीता, चाभ, दारुहल्दी, तज, सोनामाखी, पिपलामूल और देवदारु ये सब एक एक भाग और शुद्ध अञ्जनके समान काला मण्डूर सबसे दुगुना लेकर आठगुने गोमूत्रमें पकावे, फिर ऊपर लिखी औषधि डालकर, एक उदुम्बर अथवा अग्निके अनुसार रोगीको खिलावे, ऊपरसे मट्ठा पिलादे, औषधि पचने पर रोगीको

(१) अग्निमनतिक्रम्य ।

कुष्ठान्यरोचकं शोथमुरुस्तम्भं कफामयान् ।
अर्शांसि कामलामेहान् प्लीहानं शमयन्ति च ॥८२॥
निर्वाप्य बहुशोमूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते ।
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णतः ॥ ८३ ॥

इति त्र्यूषणादिमण्डूरम् ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम् ।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

इति हरिद्राद्यं घृतम् ।

मुर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्प्पटैः ।
त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः ॥ ८५ ॥

पथ्य भोजन करावे, इससे कुष्ट, अरोचक, शोथ, ऊरुस्तम्भ, कफरोग, अर्श, कामला, प्रमेह, पिलही और पाण्डुरोग दूर हो जाते हैं। इसके खानेसे पाण्डुरोगीका बल भी बहुत बढ़ जाता है।

जब गोमूत्र में बुझ चुके तब निकाल कर मण्डूर औषधि में डाले, और पकाते समय मण्डूर से आठगुना गोमूत्र डाले, इसका नाम त्र्यूषणादि मण्डूर है ॥ ८८ ॥ ८३ ॥

हल्दी, हर, बहेड़ा, आंमला, नीम, महुआ और बरियारेमें मिलाकर, दूध डालकर भैंसका घी पकावे, इस घीके खानेसे कामलारोग दूर होजाता है, इसका नाम हरिद्रादिघृत है ॥८४

मुरहर, कुटकी, हल्दी, जवासा, पीपल, चन्दन, पित्त-पापड़ा, त्रायमाणा, बासा, चिरायता, परवरपत्ती, मोथा और

अक्षमात्रे घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरचतुर्गुणम्।
पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथार्शोरक्तपित्तनुत्॥ ९६॥
इति मूर्वाद्यं घृतम्।

व्योषं बिल्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवम्।
मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च॥ ९७॥
वृश्चिकाली च भार्गी च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम्।
सर्वान् प्रशमयत्येतद्विकारान् मृत्तिकाकृतान्॥९८॥
इति व्योषाद्यं घृतम्।

पारदं गन्धकं लौहमभ्रकं विषमेव च।
समांशं मरिचं चाष्ट टङ्गणञ्च चतुर्गुणम्॥ ९९॥
भृङ्गराजरसैः सप्तभावना चाम्लदाड़िमैः।

देवदारु इनको एक एक अक्ष लेकर एक प्रस्थ घी और चार प्रस्थ दूध डालकर घी पकावे, इस घीसे पाण्डुरोग, ज्वर, विस्फोट, शोथ, अर्श और रक्तपित्त दूर होजाते हैं। इसका नाम मूर्वादि घृत है॥ ९५—९६॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, बेलगिरी, हल्दी, दारुहल्दी, हर्र, बहेड़ा, आंमला, गधापुन्ना, सफेद गधापुन्ना, मोथा, लोहेका चूर्ण, पाढ़ा, बिड़ङ्ग, देवदारु, वृश्चिकाली और भारङ्गी इनको दूध और घीमें डालकर पकावे, इस घीके खानेसे, मिट्टी खानेसे उत्पन्न हुये सब दोष दूर होजाते हैं। इसका नाम व्योषादि घृत है॥७९॥९८॥

पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक और विष, एक एक भाग, मिर्च आठभाग, सुहागा चौगुना इन को पीस कर भँगरे और

गुञ्जाद्वयं पर्णखण्डे खादेत्सायं निहन्ति च ॥ १००

वातश्लेष्मभवान् रोगान् मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरान् ।
अपचिं पाण्डुताञ्चैव जयेदचिरसेवनात् ॥ १०१ ॥
नष्टमग्निं करोत्येष कालभास्करतेजसम् ।
पर्वतोऽपि हि जीर्य्येत ग्राशनादस्य देहिनः ॥ १०२ ॥
गुर्वन्नमम्लमाषञ्च भक्षणादेव जीर्य्यति ॥ १०३ ॥

इति आनन्दोदयरसः ।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालञ्च गुग्गुलुः ।
समांशमाज्यसंयुक्तां गुडिकां कारयेद्भिषक् ॥ १०४ ॥
एकैकां खादयेद्वैद्यः पाण्डुशोथप्रणुत्तये ।
शीतलञ्च जलञ्चाम्लं वर्जयेत्पाण्डुसूदने ॥ १०५ ॥

इति पाण्डुसूदनोरसः ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां पाण्डुरोगचिकित्साऽधिकारः समाप्तः ।

खट्टे अनार के रस में सात सात भावना दे, फिर पानपर रखकर दो रत्ती खाने से वात कफसे उत्पन्न हुये रोग, मन्दाग्नि, ग्रहणी, अपची, पाण्डु, और शीघ्र दूर होजाते हैं । नष्ट हुई अग्नि प्रलयकाल के सूर्य्य के समान तेज होजाती है । वह मनुष्य पर्वत को भी पचा सक्ता है, उड़द आदि भारी अन्न और खटाई तो खाते ही पच जाती हैं, इस का नाम आनन्दोदय रस है ॥ ९९—१०३ ॥

पारा, गन्धक, तांबे की भस्म, जमालगोटा और गूगुल इनको

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

तत्रादौ तस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

अतिमैथुनशोकाध्व परिश्रमभरैस्तथा ।
व्यायामैस्तीक्ष्णलवणक्षारोष्णैः कटुकैरपि ॥ १ ॥
पित्तं विदग्धतां याति तद् दहत्यथ शोणितम् ।
दग्धं शोणितमेवाशु सर्वमार्गैः प्रवर्त्तते ॥ २ ॥

सामान्यलक्षणमाह ।

यस्मिन् नेत्रास्यनासाभ्यो भगमेढ्रगुदैस्तदा ।

लेकर घी में घोटकर गोली बनावे, फिर एक गोली खानेसे, पांडुरोग और शोथ दूर होजाता है, पांडुरोगी ठण्डा जल और खटाई न खाय, इसका नाम पांडुसूदन रस है ॥ १०४—१०५ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावली में पाण्डु कामला चिकित्सा अधिकार समाप्त हुआ ।

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

जो मनुष्य बहुत मैथुन, शोक, और व्यायाम अर्थात् कसरत करता है बहुत मार्ग चलता है तेज, अधिक नमक पड़े, खारे, गरम और कड़वे, भोजन करता है उसका पित्त जलकर कड़वा होजाता है और वही रुधिरको जलाने लगता है और सब मार्गों से निकालता हैं ॥ १—२ ॥

जिस रोगमें नेत्र, नाक, मुंह, कान, योनि, लिंग और गुदा तथा सबरूवोंसे रुधिर निकले उसका नाम रक्त पित्त रोग है ॥ २ ॥

रोमकूपैरसिग् याति रक्तपित्तं तदीरितम् ॥ ३ ॥

कारणान्याह ।

दूषणाद् योगतश्चापि सामान्याद् गन्धवर्णयोः ।
रक्तपित्तं समाख्यातं शास्त्रसागरपारगैः ॥ ४ ॥

पूर्वरूपमाह ।

शीतेच्छा वह्निसादश्च छर्दनं धूमकण्ठता ।
लोहगन्धित निःश्वासो भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ५ ॥

वातिकमाह ।

असितं वातिकं श्यावं फेनिलं रूक्षमेव च ।
कषायमरुणञ्चैव तनुप्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ६ ॥

पैत्तिकमाह ।

पित्तोद्भवं कृष्णमुष्णं गोमूत्रसदृशं तथा ॥
अंगार धूमसदृशं मेचकोपममेव च ॥ ७ ॥

दोषोंके संयोगसे, दूषित होनेसे तथा गन्ध और रंग की समानतासे वैद्योंने इस रोगका नाम रक्त पित्तकहा है ॥४॥

रक्तपित्त रोग होनेके पहिले ठण्ढी वस्तु खानेकी इच्छा, अग्निमन्द, वमन, कण्ठसे धुँआ उठना, श्वाससे लोहेकी दुर्गन्धि आना ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

जिस रक्तपित्तमें काला, लाल, कुछ काला, फेनयुक्त, रूखा, कसेला और पतला रुधिर आवे उसे वातसे उत्पन्न हुआ रक्त पित्त रोग जानो ॥ ६ ॥

जिसमें गोमूत्रके समान रंगवाला, अथवा लाल, या कुछ

श्लैष्मिकमाह ।

सान्द्रं श्वेतं पिच्छिलं स्नेहयुक्तं
पाण्डुाभस्वाचिक्कणं गौरवाढ्यम् ।
मिष्टं शीतं रक्तपित्तं कफेन
प्रोक्तं श्रेष्ठैरायवर्य्यैर्मुनीन्द्रैः ॥ ८ ॥

संसर्गविशेषेणमार्गभेदानाह ।

सर्वलिंग समावायः सर्वदोष समुद्भवेः ॥ ९ ॥
वातयुक्तमधोगञ्च ऊर्ध्वगं कफसंयुतम् ।
द्विमार्गगं द्विदोषोत्थं रक्तमसैव प्रवर्त्तते ॥ १० ॥

उपद्रवानाह ।

पिपासाहृद्दाहोज्वरकसननेत्राङ्ग गुरुताः ।
मदःपाण्डुत्वं वैसरणमुरसः पीडनमथ ॥

लाल, कुछ काला, या काला, गरम, अङ्गारे और धुएं के समान रंगवाला रुधिर निकले उसे पित्तसे उत्पन्न हुआ जानो ॥ ७ ॥

जिस रक्तपित्त में गाढ़ा, सफेद, चिकना, पाण्डुरंगवाला, भारी, मीठा और ठण्ढा तथा फेनयुक्त रुधिर निकले उसे कफसे उत्पन्न हुआ जाने ॥ ८ ॥

जिस्मे तीनोंदोषोंके लक्षण जान पड़ें उसे सन्निपातसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त कहै । जो नीचे के मार्गोंसे निकलता हो उसे वायुसे उत्पन्न हुआ ; जो ऊपरके मार्गों से निकलता है वह कफसे उत्पन्न हुआ और जो दोनोंमार्गोंसे निकलता हो उसे दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त जानना चाहिए ॥ ९—१० ॥

शिरस्तापो भक्तारुचिररति विनाशोऽथ व मथु: ।
अवुद्दित्वं नाशोभवति प्रकृतेश्चैव विवुधाः ! ॥ ११ ॥

साध्यत्वादिकमाह ।

एकदोषोत्थितं साध्यं याप्यञ्चापि द्विदोषजम् ।
असाध्यं सर्वदोषोत्थं नष्टाग्ने रहिताशिनः ॥ १२ ॥
ऊर्द्धगं साध्यमुद्दिष्टमधोगं याप्यमीरितम् ।
द्विमार्गगमसाध्यन्तु चीणस्य जर्जरस्य च ॥ १३ ॥

साध्यमाह ।

नवीनं वलिनश्चैक मार्गगंलघुवेगवत् ।
उपद्रवैर्नयज्जुष्टं तत्साध्यं रक्तपित्तकम् ॥ १४ ॥

असाध्यमाह ।

मांसधावनतोयाभं क्वथितोपममेव वा ।

प्यास, हल्लास, ज्वर, खांसी, नेत्र और शरीरका पीलापन; मद, शरीर का सफेद होना, छातीमें पीड़ा, शिरमें जलन, अन्न खानेकी इच्छा न होना, मैथुनकी इच्छा न होना, अधिकथूक आना, बुद्धी और स्वभावका नाश होजाना ये रक्तपित्त रोगके उपद्रव कहाते हैं ॥ ११ ॥

जो एक दोषसे उत्पन्न हुवा हो वह साध्य; दो दोषोसे उत्पन्न हुआ याप्य और तीनदोषोंसे उत्पन्न हुआ अपथ्य भोजन करनेवाले रोगीका रक्तपित्तरोग असाध्य होता है ॥ १२ ॥

जो रक्तपित्त ऊपरके मार्गोंसे निकलता हो वह साध्य; नीचेके मार्गोंसे निकलनेवाला याप्य और जिसमें दोनो मार्गोंसे रुधिर निकलता हो वह असाध्य है ॥ १३—१४ ॥

पृथक्कर्द्दमसंकाशं जम्बूजलनिभन्तथा ॥ १५ ॥
मेदोयकृत्समम्बापि कृष्णं नीलमथापि वा ।
तद्रक्तपित्तं वर्ज्यं स्याद्वैद्येनात्मवतासता ॥ १६ ॥

लक्षणान्तरमाह।

रक्तपित्तान्वितोयस्तु पश्येदुपहतोनभः ।
सोऽप्यसाध्योः भिषक् श्रेष्ठे स्त्याज्यएवमतः परैः ॥१७॥

अथ चिकित्सा ।

नोद्रिक्तमादौ संग्राह्यं वलिनोऽप्यश्नतश्च यत् ।
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहकाण्डु ज्वरादिकृत् ॥ १८ ॥

जो रक्तपित्त रोगी बलवान् हो, जिसे रोग उत्पन्न हुवे थोड़े दिनवीते होय जिसके नीचेके मार्गोंसे रुधिर निकलता हो और ऊपर लिखी कोई उपद्रव न होय तो यह रोगी शीघ्र अच्छा होजाता है ॥ १५ ॥

जिसके शरीरसे मांसके धोवनके समान, काढ़ेके समान, पीव के समान, कीचड़के समान, जामुनके अर्कके समान, मेदा और यकृत्के समान काला अथवा नीला रुधिर निकलता हो वैद्य उसे असाध्य जानें जो रुधिर निकलनेके समय आकाशको देखने लगे उसे वैद्य असाध्य जानकर छोड़ देय ॥१६॥१७॥

बुद्धिमान् वैद्य पहिले बलवान् और मात्राके अनुसार भोजन करते हुये, रोगीके रक्तपित्तको न रोके क्योंकि पहिले ही रोक-नेसे, हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, पिलही, कण्डू (खुजली) और ज्वरादि रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १८ ॥

ऊर्द्ध्वं प्रवृद्धदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।
क्षीणाबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम् ॥ १९ ॥
ऊर्द्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यञ्च विरेचनम् ।
प्रागधो गमने पेयं वमनञ्च यथाबलम् ॥ २० ॥
शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रसातिका ।
श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ २१ ॥
मसूरमुद्गचणकाः समकुष्टाढ़कीफलाः ।
प्रशस्ताः सूपयूषार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ २२ ॥
शाकं पटोलवेत्राग्रतण्डुलीयादिकं हितम् ।
मांसं लावकपोतादि शशैणहरिणादिजम् ॥ २३ ॥
क्षीणमांसबलं वृद्धं बालं शोषानुबन्धिनम् ।

जिस रक्तपित्त रोगीको दोष बहुत बढ़े हों और रक्त ऊपरके मार्गोंसे निकलता हो, बल और मांस नष्ट होगये हों, उसके लिये वैद्य अपतर्पण क्रिया करे ॥ १९ ॥

ऊपरके मार्गोंसे निकलते हुये रक्त पित्तमें वैद्यतर्पण और बिरेचन दे, नीचेके मार्गोंसे निकलते रक्त पित्तमें पहिले बलके अनुसार, वमन देकर खानेके लिये यवागू दे ॥ २० ॥

धान, साठो, नीवार, कोदो, प्रसातिका समाई, चौराई और प्रियङ्गु इनका भात, मसूर, मूंग, चना, मौठ और रहरकी दाल रक्त पित्तमें पथ्य है, सागके लिये परवर, बेंत और चौराई, मांसोंमें लवा, कबूतर, खरहा, एण और हरिण आदि श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अत्यम्यमविरेच्यञ्च स्तम्भनैः समुपाचरेत् ॥ २४ ॥
वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ।
पिबेत्तेन समं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ २५ ॥

इति वृषपत्र रसः ।

समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा
पीतोरसः शोणितमाशुहन्ति ॥ २६ ॥

इति फल्गु रसः ।

अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता ।
श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति शूलातिसारनुत् ॥ २७ ॥

इति अभयायोगः ।

वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता ।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ २८ ॥

इति पथ्या योगः ।

जिस रक्त, पित्त रोगी का बल और मांस नष्ट होगया हो उसे तथा बालक, बूढ़े, शोषरोगीको वमन और बिरेचन न देने योग्य रोगीको स्तम्भन औषधिसे अच्छा करे ॥ २४ ॥

वासेके पत्तोंके रसमें, शक्कर और शहत मिलाकर पीनेसे घोर रक्तपित्त दूर होजाता है ॥ २५ ॥

फल्गूके फलके रसमें, सहत मिलाकर पीनेसे रक्त पित्त शीघ्र दूर होता है ॥ २६ ॥

शहतके सङ्ग हर्र खानेसे दोष पच जाते हैं, अग्नि बढ़ती है कफ, रक्त पित्त, शूल और अतीसार दूर होजाता है ॥२७॥

पक्कोडुम्बरकाश्मर्य्यपथ्या (१) खर्ज्जूरगोस्तना: ।
मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक् ॥२९॥
इति योगा: ।

खदिरस्य प्रियङ्गूनां कोविदारस्य शाल्मले: ।
पुष्पचूर्णन्तु मधुना लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥ ३० ॥
इति खदिरादि योग: ।

लाक्षाचूर्णं मुक्तं क्षौद्राज्य समन्वितम् ॥ ३१ ॥
शक्रल्लीढं शमयति सोद्धतवमनं स रक्तपित्तस्य ।
सिद्धमिदं लाक्षाचूर्णं मा४ घृतमधुभ्यां लिह्यम् ॥३२॥
इति लक्षादि चूर्णम् ।

उशीरं तगरं शुण्ठीकक्कोलं चन्दनद्वयम् ।
लवङ्गं पिप्पलीमूलं कृष्णैला नागकेशरम् ॥ ३३ ॥

वासेके रसमें सातबार हर्र या पीपल भिगोकर, शहतके सङ्ग खानेसे, रक्तपित्त शीघ्रही दूर होजाताहै ॥२८॥

पकागूलर, कंभारी, हर्र, खजूर और मुनक्का इन एक एक को, शहतके सङ्ग खानेसे, रक्तपित्त दूर होजाता है ॥ २९ ॥

खैर, प्रियङ्गु, कचनार और सेंमलके फूलोंका चूर्ण, शहतके सङ्ग खानेसे, रक्तपित्त दूर होजाता है ॥ ३० ॥

लाख पीसकर घीके सङ्ग खानेसे घोर वमन और रक्त पित्त शीघ्र दूर होजाता हैं ॥ ३१—३३ ॥

---

(१) उडुम्बरादीनां पक्कानि फलानि ततः शुष्कानि तत तेषां शुष्कचूर्णानां मधुना लिहन् उपलीढमप्याचम्य मधुना यतीव फलप्रदम् ।

मुस्ता मधुककर्पूरं तुगाक्षीरी च पत्रकम्।
कृष्णागुरु समं चूर्णं सिता चाष्टगुणा तथा ॥३४॥
रक्तवान्तिश्च तापश्च नाशयेन्नात्र संशयः।
तगरं तगरपादिकं तुगाक्षीरं वंशलोचना ॥ ३५ ॥

इति उशीरादिचूर्णम्।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाः पिप्पल्यर्द्धपलं तथा।
सिता मधुकखर्ज्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥३६॥
संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुडिकाः कारयेद्भिषक्।
अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेन्ना (१) दिने दिने ॥३७॥
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम्।
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ३८ ॥

खस, तगर, सोंठ, शीतलचीनी, चन्दन, लालचन्दन, लौंग, पीपलामूल, पीपल, इलायची, नागकेशर, मोथा, जेठीमधु, कपूर, वंशलोचन, तेजपात और अगर इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे, फिर सब चूर्णसे, आठगुणी शक्कर मिलाकर रोगीको खिलावे तो रक्तका वमन और दाह निःसन्देह नाश होजाते हैं, इसका नाम उशीरादि चूर्ण है ॥ ३३—३५ ॥

इलायची, तेजपात और तज आधा आधा अक्ष पीपल, आधापल, मिश्री, जेठीमधु, खजूर और मुनक्का एक एक पल, इन सबको शहतमें घोटकर एक एक अक्षकी गोली बनावे और प्रतिदिन एक एक खाय, इससे श्वास, खांसी, ज्वर,

(१) दाडिमपुष्प स्वरसौ दुर्वारसयुक्तौ नस्ये मितफल इति भानुदासः।

शोषप्लीहामवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम्।
गुडिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ ३९ ॥

इति एलादिगुडिका।

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं
सशर्करं नासिकया पयो वा।
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिवेद्वा
सशर्करञ्चेक्षुरसं हितं वा ॥ ४० ॥

इति योगाः।

सद्यो दाड़िमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा।
आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुत रक्तजित् ॥४१॥
रसो दाड़िमपुष्पस्य दूर्वारस समन्वितः।

हिचकी, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रुधिरका वमन, प्यास, पसुरीको पीड़ा, अरोचक, शोष, पिलही, आमवात, स्वरभेद, क्षतक्षय और रक्तपित्तरोग दूर होजाते हैं इसके खाने से रोगीको, सन्तोष होता है और वीर्य्य बढ़ता है, इसका नाम एलादि वटिका है ॥ ३६—३९ ॥

यदि नाकसे रुधिर गिरता हो तो शक्कर मिलाकर दूध सूंघे, अथवा मुनक्काकारस पिये, अथवा दूध और घी पिये, अथवा शक्कर मिलाकर, ऊखका रस पिये ॥ ४० ॥

अनारके फूल, अथवा दूब, अथवा आमकी गुठली, अथवा पलाण्डु का रस सूंघनेसे, नाकसे गिरता हुआ रक्त वन्द हो जाता है ॥ ४१ ॥

अलक्तकरसोपेतः पथ्यया वा समन्वितः ॥ ४२ ॥
योजितो नस्यतः क्षिप्रं त्रिदोषमपि देहिनाम्।
नासारक्तं प्रवृत्तन्तु हन्यादेव न संशयः ॥ ४३ ॥

इति दाड़िम्ब रसः।

नासाप्रवृत्तं रुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम्।
सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्द्धप्रलेपेन ॥ ४४ ॥

इति आलकनस्यम्।

मेढ्रगेऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुत्तर संज्ञितः।
शृतं क्षीरं पिवेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्वया ॥ ४५ ॥
कुष्माण्डकात्पलशतं सुखिन्नं निष्कुलीकृतम्।
पचेत्तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढ़े ॥ ४६ ॥
यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत्।

अनारके फूलका रस, दूवका रस, लाख का रस और हर्र मिलाकर सूंघनेसे तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ, नाकसे गिरता रुधिर बन्द होजाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

जैसे बांध बंधनेसे जलका वेग रुकजाता है, ऐसेही घीमें भुने पिसे आंमले शिरपर लगानेसे नाकसे गिरते हुवे रुधिरका वेग बन्द होजाता है ॥ ४४ ॥

यदि लिङ्गसे रुधिर गिरता हो, तो उत्तर वस्ती दे, रोगीको तृण पञ्चमूलमें मिला पकाकर दूध पिलावे ॥ ४५ ॥

कुम्हड़ेके टुकड़े सौपल लेकर उबालले, फिर छीलकर एक प्रस्थ घीमें डालकर, धीरे धीरे पकावे, जब पकते पकते शहदके

पिप्पली शृङ्गवेराभ्यां द्वेपले जीरकस्य च ॥ ४७ ॥
त्वगेला पत्रमरिच धान्यकानां पलार्द्धकम् ।
न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्तु दार्व्यासं घट्टयेत्पुनः ॥ ४८ ॥
तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे दत्वा चौद्रं घृतार्द्धकम् ।
तद् यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्तीक्षतक्षयी ॥ ४९ ॥
कासश्वासतमश्छर्दि तृष्णाज्वर निपीड़ितः ।
वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्ण प्रसादनम् ॥ ५० ॥
उरः सन्धान करणं बृंहणं स्वरवर्द्धनम् ।
अश्विभ्यां निर्म्मितं श्रेष्ठं कुष्माण्डकरसायनम् ॥५१॥
खण्डामालकमानानुसारात् कुष्माण्डकद्रवात् ।
पात्रं पाकाय दातव्यं यावानवरसो भवेत् ॥ ५२ ॥
इति कुष्माण्डखण्डः ।

समान होजाय, तब सौपल खाड़ डाले. फिर पीपल, सोंठ दो दो पल, जीरा, तज इलायची, तेजपात, मिर्च, धनिया आधा आधा पल पीसकर उसमें डालदे और बार बार करछुसे चलाता जाय. जब पक चुके तब उतार कर ठण्डा होने पर घी से आधा शहत मिलावे और बर्त्तन में रख छोड़े, फिर रोगीको अग्नि और बलके अनुसार खिलावे, इससे रक्त, पित्त, क्षय, खांसी श्वास, बमन, प्यास, ज्वर, उरूस्तम्भ आदि रोग दूर होजाते हैं, वीर्य्य और बल बहुत बढ़ते हैं, मनुष्य नवीन होजाता हैं. तेज, वर्ण, मांस और स्वर बढ़ जाते हैं इस रसायन औषधिको अश्विनीकुमारोंने बनाया था, इसकानाम

पञ्चाशच्चपलं ग्राह्यं कुष्माण्डात्प्रस्थमाज्यत: ।
ग्राह्यं पलशतं खण्डं वासाक्काथाढके पचेत् ॥ ५३ ॥
मुस्ता धात्री शुभा भार्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्षिकै: ।
ऐलेयविश्वधन्याकमरिचैश्च पलांशिकै: ॥ ५४ ॥
पिप्पलीकुड़वञ्चैव मधुमानीं प्रदापयेत् ।
कास श्वासं चयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम् ॥५५॥
हृद्रोगमम्लपित्तञ्च पीनसञ्च व्यपोहति ॥ ५६ ॥

इति वासाखण्डकुष्माण्डक: ।

तुलामादाय वासाया: पचेदष्टगुणे जले ।
तेन पादऽवशेषेण पाचयेदाढ़कं भिषक् ॥ ५७ ॥

कुष्माण्डखण्ड है । आमलक खण्डके अनुसार इसमें भी रसके समान पाक आगपर चढ़ावे ॥ ४६ ॥ ५२ ॥

पचासपल कुम्हड़ेको एक प्रस्थ घी में पकावे, और सौपल खांड़की एक आढ़क बासेके काढ़े में चाश्नी बनावे, फिर दोनों को मिलाकर, मोथा, आंमला, बम्हनेटी, शुभा (वंशलोचन) तज, तेजपात, इलायची, ये सब एक एक कर्ष, ऐलेय (इलायचीके बीज) सोंठ, धनिया और मिर्च ये सब एक एक पल, पीपल एक कुड़व डाले, फिर शहत मिलाकर उठा रक्खे, इससे खांसी, श्वास, चत, हिचकी, रक्तपित्त, हलीमक हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस रोगदूर होजाते हैं इसकानाम बासाखण्ड कुष्माण्ड है ॥५३॥५६॥

एकतुला वासालेकर, आठगुने पानीमें पकावे, जब पकते पकते, एकभाग रह जाय, तब उतार कर छानले, फिर उसमें

चूर्णादामभयानाञ्च खण्डाच्छुद्धशतं न्यसेत् ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णात् सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥५९॥
कुड़वं पलमात्रन्तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् ।
क्षिप्त्वा विलोड़ितं खादेद्रक्तपित्तीक्षतक्षयी ॥ ५९ ॥
कासश्वासपरीतश्च यक्ष्मणा च प्रपीड़ितः ॥ ६० ॥

इति वासाखण्डः ।

वासां सशाखां सपलाशमूलां
कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः ।
प्रदाय कल्कं विपचेद्घृतञ्च
सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम् ॥ ६१ ॥

इति वासाघृतम् ।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्का मञ्जिष्ठा सैलवालुका ।

डालकर एक आढ़क खांड़ पकावे, जब चाश्नी हो जाय, तब आंमलेका चूर्ण, पीपल, ये दो दो पल मिलाकर डाले, ठण्डा होने पर एक कुड़व शहत मिलाकर उठा रक्खे, परन्तु एकपल तज, तेजपात, इलायची और नागकेशर मिलादे, इसके खानेसे, रक्तपित्त, क्षतक्षय, खांसी, श्वास और राजयक्ष्मा रोग दूर होजाते हैं । इसका नाम वासाखण्ड है ॥ ५७—६० ॥

वासेकी शाख, पलासकी जड़ इनका काढ़ा बनावे, फिर यही काढ़ा और वासेके फूल डालकर घी पकावे, इस घीमें शहत मिलाकर खानेसे शीघ्रही रक्तपित्तका नाश होजाता है । इसका नाम वासा घृत है ॥ ६१ ॥

सिता शीतमुशीरञ्च मुस्तं चन्दनपद्मकौ ॥ ६२ ॥
विपचेत्कार्षिकैः रेतैः सर्पिराजं (१) मृदुऽग्निना।
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दत्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ ६३ ॥
तत्पानं वमतोरक्तं लावणं (२) नासिका गते।
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु, तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥६४॥
चक्षुस्राविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी।
मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्म सुतद्धितम् ॥ ६५ ॥
रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यङ्गः प्रशस्यते ॥ ६६ ॥

इति दूर्वाद्यं घृतम्।

दूब, कमलकी केशर, कञ्जीठ, ऐलबालुक, मिश्री, कपूर, खस, मोथा, चन्दन, और पदमाख, इन सबको, एक एक कर्ष लेकर बकरीके घीमें मिलाकर, मन्द अग्निमें पकावे, पकाते समय घीसे चौगुना जल और बकरीका दूध डालदे, फिर उतारकर ठण्डा करले, फिर जिसके मुखसे रुधिर गिरता हो, उसे यह घी पिलावे, जिसकी नाकसे रुधिरगिरता हो उसे सुँघावे, जिसके कानसे रक्त गिरता हो, उसके कानमें भरदे, जिसके आंखसे गिरता हो उसकी आंखमें भरदे, जिसके लिङ्ग और गुदासे रक्त गिरता हो, उसे इसही घीकी पिचकारी दे और जिसके सब रुओंसे रुधिर गिरता हो, उसके शरीरमें लगावे, इसका नाम दूर्वादि घृत है ॥ ६२—६६ ॥

(१) मन्दाग्निना।

(२) नस्यम्।

लौहाच्चतुर्गुणं चीरमाज्यं (१) द्विगुणमुत्तमम् ।
चूर्णं पादन्तु वैड़ङ्गं दद्यान्मधुसिते समे ॥ ६७ ॥
ताम्रपात्रे शुभे पक्वा स्थापयेद्घृतभाजने ।
माषकादि क्रमेणैव भक्षयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ६८ ॥
अनुपानं प्रयुञ्जीत नारिकेल जलादिकम् ।
रक्तपित्तं जयेत्तीव्रमम्लपित्तं चतक्षयम् ॥ ६९ ॥
पुष्टिदं कान्तिजननमायुष्यं वृष्यमुत्तमम् ॥ ७० ॥
मधुसिते प्रत्येकं लौहसमे मुद्रापाके जाते लौहात् ।
पादिकं बिड़ङ्गमिकरचूर्णं प्रक्षेप्यं शीते मधुदेयम् ॥७१॥

इति समशर्कर लौहम् ।

शतमूली सिता धान्यनागकेशर चन्दनैः ।

लोहा एकभाग, दूध चारभाग, घी दो भाग, लोहेसे चौथाई बिड़ङ्ग, घी और शहत एक एक भाग, इन सबको तांबेके बर्त्तनमें रख छोड़े, फिर बिधिके अनुसार एक मासे खाना आरम्भ करे ऊपरसे नरियलका जल आदि ठण्ढी वस्तु पिलावे, इससे रक्तपित्त, पित्त, घोर अम्लपित्त और क्षतक्षय, दूर होजाते हैं, पुष्टी, तेज, आयु, और वीर्य्य बहुत बढ़जाते हैं, इसके बनानेमें यह विशेष है कि शक्कर और शहत लोहेके समान पड़ते हैं । अर्थात् एक भाग शक्कर एकभाग शहत, जब पकते पकते तार उठने लगे, तब चौथाई बिड़ङ्गका चूर्ण डाले इसका नाम समशर्करलोह है ॥ ६७—७१ ॥

(१) आज्यं घृतम् ।

त्रिकत्रयतिलैर्युक्तं लौहं सर्वगदापहम् ॥ ७२ ॥
तृषादाहज्वरच्छर्दि रक्तपित्तहरं परम् ॥ ७३ ॥

इति शतमूल्यादि लौहम् ।

धात्री च पिप्पलीचूर्णं तुल्यया सितया सह ।
रक्तपित्तहरं लौहमम्लपित्तं विनाशयेत् ॥ ७४ ॥

इति रक्तपित्तान्तक लौहम् ।

सूतं गन्धं माक्षिकं लौहचूर्णं
सर्वं घृष्टं त्रैफलेनोदकेन ।
मूषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा
दद्याद्गुञ्जां त्रैफलेनोदकेन ॥ ७५ ॥
लौहैपात्रे गोपयः पाचयित्वा-

शतावर, चीनी, धनिया, नागकेशर, चन्दन, हर, बहेड़ा, आंमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात, इलायची और लोहा इन सबको, खानेसे प्यास, दाह, ज्वर, वमन, और रक्त-पित्त आदि सब रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम शतमूल्यादि लोह है ॥ ७२—७३ ॥

आंमला, पीपल, लोहा इनके चूर्णके समान चीनी मिलाकर खानेसे, रक्तपित्त दूर होता है, इसकानाम रक्तपित्तांतक लोह है ॥ ७४ ॥

पारा, गन्धक, सोनामाखी, लोहचूर्ण, इन सबको त्रिफले के काढ़ेमें घोटकर, घड़ियामें बन्द करके, भूधर यन्त्रमें पकावे, फिर त्रिफलेके जलके सङ्ग, एकरत्ती रोगीको खिलावे, और

रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै ॥ ७६ ॥

इति सुधानिधिरसः ।

शतावरी छिन्नरुहा वृषो मुण्डितिका बला ।
तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वच स्तथा ॥७७॥
भार्गी पुष्कर मूलञ्च पृथक् पञ्च पलानि च ।
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ७८ ॥
दिव्यौषधि हतस्यापि माक्षिकेन हतस्य वा ।
पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ ७९ ॥
खण्डतुल्यं घृतं देयं पलं षोड़शिकं बुधैः ।
पचेत्ताम्रमये पात्रे गुड़पाकोमतो यथा ॥ ८० ॥
प्रस्थार्द्धं मधुनो देयं शुभाश्मजतुकं त्वचम् ।
शृङ्गी विड़ङ्गं कृष्णा च शुण्ठी जातीफलं पलम् ॥८१॥

रातको लोहेके बर्त्तनमें पका गायका दूध पिलावे, इससे र॰ ॰पित्त दूर होजाता है, इसका नाम सुधानिधि रस है ॥ ७५—७६ ॥

शतावर, कुरैया, बासा, मुण्डी, बरियारा, मुसली, खैर, त्रिफलेकोछाल, बम्हनेटी, पुष्करमूल, इन सबको पांच पांच पल लेकर आठगुने पानीमें पकावे, जब पकते पकते अठवां भाग रह जाय, तब सिला जीत अथवा सोनामाखीमें भस्म किये, सोने और लोहेका चूर्ण डाले, फिर खांड़के समान घी डाले इसमें खांड़का प्रमाण सोलह पल है, फिर पकाते पकाते गुड़के समान करले, पश्चात् आधाप्रस्थ सहत शुद्ध सिलाजीत, तज, काकड़ासिङ्गी, बिड़ङ्ग, पीपल, सोंठ और जायफल एक एकपल, हर्र, बहेड़ा,

त्रिफला धान्यकं पत्रं दाच्चं मरिचकेशरम्।
चूर्णं दत्त्वा सुसम्पन्नं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥८२॥
यथाकालं प्रयुञ्जीत विड़ालपदकं ततः।
गव्यं क्षीरानुपानञ्च सेव्यं मांसरसं पयः।
गुरूवृष्यानुपानानि स्निग्धमांसादि वृंहणम् ॥ ८३ ॥
रक्तपित्तं क्षयं कासं पंक्तिशूलं विशेषतः।
बातरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ॥ ८४ ॥
श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं प्लीहोदरन्तथा।
आनाहं रक्तमाश्वेव मम्लपित्तं निहन्ति च ॥ ८५ ॥
चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम्।
आरोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कायाग्नि वलवर्द्धनम् ॥ ८६ ॥
श्रीकरं लाघवञ्चैव खण्डकाद्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ ८७ ॥
पूर्वोक्त लौहान्तरवत् पथ्यापथ्यं निरूपणीयम्।

आंमला, धनियां और तेजपात दो दो अच्छ, मिर्च और नागकेशर भी दो दो अच्छ, डालकर, उतारकर घीवके बर्त्तनमें भरकर रखदे, फिर रोगीको समयके अनुसार एक विड़ालपद भर खिलावे, ऊपरसे गौका दूध पिलावे खानेको मांसकारस, चिकना मांस आदि भारी और वीर्य्य बढ़ानेवाली वस्तु दे, इससे रक्तपित्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, क्लम, श्वयथु, पाण्डुरोग, कुष्ट, पिलही, उदररोग, अनाह और अम्लपित्त शीघ्र दूर होजाते हैं। मनुष्यको कोई रोग नहीं होता, अग्निका बल, सन्तान, तेज और प्रसन्नता आदि गुण बढ़ते हैं। रोगीका शरीर हल्का

केचिदत्र रसगन्धकप्रक्षेपं वदन्ति ॥ ८८ ॥

इति खण्डकाद्यं लौहम् ।

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकं सन्निपातोर्द्ध रक्तपित्तज्वरापहम् ॥ ८९ ॥

इति त्रिवृतादि मोदकम् ।

इति भैषज्यरत्नाल्यां रक्तपित्तचिकित्साऽधिकारः समाप्तः ।

अथाम्लपित्ताधिकारः ।

पित्तप्रकोपणकरं गुरु दुष्टमन्नं
यस्त्वत्ति ना किल तस्य पित्तम् ।

रहता है, इसमें पहिले लिखे लोहके समान पथ्य आदि देने चाहिये. कोई वैद्य इसमें, पारा और गन्धक भी डालना क ते हैं, इसका नाम खण्डकादि लोह है ॥ ७७—८८ ॥

निसोत, हर, बहेड़ा, आंमला, काले जड़की निसोत, पीपल, इन सबको पीसकर, शहत और शक्कर मिलाकर लड्डू बनावे इनके खानेसे, सन्निपातसे उत्पन्न हुवे ऊर्द्धगामी रक्तपित्त और ज्वरका नाश होताहै. इसका नाम त्रिवृतादिमोक है ॥८९॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावलीमें रक्तपित्त अधिकार समाप्त ।

अथाम्लपित्ताधिकार ।

जो मनुष्य सदापित्त बढ़ानेवाले बिगड़े हुये अन्न खाता है

विदग्धतामेति तथाम्लभावं
तदम्लपित्तं कथितं भिषग्भिः ॥१॥

अम्लपित्तस्य लक्षणमाह ।

गौरवोद्गारहृत्कण्ठतापारुचिभिरन्वितम् ।
क्लमोत्क्लेशाविपाकाढ्यं रक्तपित्तान्वितं वदेत् ॥२॥

भेदावाह ।

ऊर्ध्वगञ्च तथाधोगमम्लपित्तं द्विधा स्मृतम् ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वगस्य लक्षणमाह ।

नीलञ्च पीतं रुधिरप्रकाशं
मीनोदकाभं च हरित्तथैव
सपिच्छलं वान्तमथो कफाढ्यं
ऊर्ध्वोत्थितं तत्किल चाम्लपित्तम् ॥ ४ ॥

उसका पित्त जल कर खट्टा होजाता है वैद्य उस ही को अम्ल पित्त रोग कहते हैं ॥ १ ॥

जिस मनुष्यको खट्टी डकार, शरीरका भारीपन, हृदय और कण्ठमें जलन, आलस्य, थकाई हो और अन्न न पचता हो उसे अम्लपित्त रोगी जाने अम्लपित्त रोग दो प्रकारका होता है एक ऊपरके और दूसरा नीचेके मार्गोंसे निकलनेवाला ॥२॥३॥

जिस अम्लपित्तमें नीला, पीला, काला, रुधिरके समान, हरा, मछलीके धोवनके समान, कफ युक्त और चिकना वमन हो उसे ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त कहते हैं ॥ ४ ॥

अधोगस्य लक्षणमाह ।

पिपासा भ्रमो मोहदाहौ च मूर्च्छा
तथा मन्दवह्नित्वमङ्गेषु कोठाः ।
प्रयात्येव चाधः सहृल्लासखेदः
कदा पीतवर्णो तदेवाम्लपित्तम् ॥ ५ ॥

अम्लपित्तस्यावस्थाविशेषमाह ।

भुक्तान्ते भोजनादौ च तिक्तमम्लञ्च दुष्प्रभम् ।
करोति वमनं नित्यमम्लोद्गारं विशेषतः ॥ ६ ॥
शिरःपीड़ा दाहः करचरणकण्ठेषु हृदये
तथा कुक्षेस्तापोऽरुचिकसनकम्पाश्च विविधाः ।
ज्वरः कण्डूस्फोटौ वपुषि बहुरोगाश्च तुदनम्
भवेद्देहे जन्तो रुधिरसदृशं मण्डलव्रजम् ॥ ७ ॥

जिसमें प्यास, भ्रम, मूर्च्छा, घुमनी, जलन, मन्दाग्नि, शरीरमें जलन, हृल्लास और पसीना हो, वमनका रंग पीला हो और वायुकी गति नीचेको हो उसे अधोगामी अम्लपित्त कहते हैं ॥ ५ ॥

अम्लपित्तमें भोजनके पहिले और पीछे वमन होता है और खट्टी डकार आती हैं ॥ ६ ॥

शिरमें पीड़ा हाथ, पैर, कण्ठ और हृदयमें जलन, कोखमें जलन, अरुचि, खांसी, शरीर कांपना, ज्वर, खुजुली, फुंसी, पीड़ा और शरीरमें लाल मण्डल होजाते हैं ॥ ७ ॥

अम्लपित्ते दोषसंसर्गमाह ।

सवातं सानिलकफं केवलं वा कफान्वितम् ।
दोषचिह्नैर्भिषक् श्रेष्ठः सम्परीक्ष्यविभावयेत् ॥ ८ ॥

दोषभेदेन लक्षणमाह ।

गात्रावसादो नलसादशूल-
मूर्च्छाप्रलापारुचिकम्पदाहैः ।
संदर्शनैश्च तमसो भ्रममोहहर्षैः
वातेरितं तत्प्रवदन्ति सन्तः ॥ ९ ॥
कफाधिके गौरवशीतसादा
मन्दाग्निता वै जड़ताऽबलत्वम् ।
निद्राभिलेपारुच यो भवन्ति
निष्ठीवनञ्चैव तथा कफस्य ॥ १० ॥

केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और कफ वायुसे उत्पन्न हुआ और केवल कफसे उत्पन्न हुवा अम्लपित्तके ये तीन भेद हैं ॥८॥

जिसमें आलस्य, शरीरकी पीड़ा, मन्दाग्नि, शूल, मूर्च्छा, वृथा बकना, अरुचि, क्लम और दाह ये लक्षण हों जिसमें रोगी को अन्धकारमें जानेके समान ज्ञान हो और घुमनी हो और शरीर के रोयें खड़े हों उसे वातसे उत्पन्न हुआ अम्लपित्त कहना चाहिये ॥ ९ ॥

जिसमें शरीर भारी हो, जाड़ा लगे, आलस्य हो, अग्निमन्द हो गई हो, रोगीको कुछ ज्ञान न रहाहो, बल नष्ट होगया हो, खुजली लगाती हो, निद्रा अधिक आती हो, मुखमें लाटासा

द्विदोषोद्भवे सर्वमेतद्वावस्येद्
भिषग् चाम्लपित्ते मरुत् श्लेष्मजाते ।
विचिन्त्याखिलं सर्वमेतन्मनीषी
मनीषापराधं विजित्याचरेत्तत् ॥ ११ ॥

साध्यत्वादिकमाह ।

अम्लपित्तगदो नूनं नवीनः कृच्छ्र उच्यते ।
चिरोत्थितस्तथाऽसाध्यो भिषग्भिः समुदीरितः॥१२॥

श्लेष्मपित्तमाह ।

मूर्च्छाऽरुचिः शिरःपीड़ा आलस्यं वमनं तमः ।
प्रसेकश्चास्यमिष्टत्वं श्लेष्मपित्तेऽति दारुणम् ॥ १३ ॥

जान पड़े, अरुचि हो और मुखसे बहुत कफ गिरता हो इसे कफसे उत्पन्न हुआ अम्लपित्त जाने ॥ १०॥

दो दोष अर्थात् वायु और कफसे उत्पन्न हुये अम्लपित्तमें ऊपर लिखे सब लक्षण अलग अलग दीखते हैं बुद्धिमान् वैद्य इस रोगकी चिकित्सा अत्यन्त सावधान होकर करे ॥११॥

जो अम्लपित्त थोड़े दिनका उत्पन्न हुवा हो वह कष्ट साध्य है और पुरानेको वैद्योंने असाध्य कहा है ॥ १२ ॥

जिस रोगमें मूर्च्छा, अरुचि और शिरमें पीड़ा हो, आलस्य, वमन, अधिक थूक आना ये लक्षण हों और मुखका स्वाद मीठा हो उसे श्लेष्म पित्तरोग कहते हैं यह रोग भी अत्यन्त भयानक है ॥ १३ ॥

वान्तिं कृत्वाऽम्लपित्ते तु विरेकं मृदुकारयेत्।
सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम्॥ १४॥
आस्थापनं चिरोद्भूतोदये दोषाद्यपेक्षया।
क्रियाशुद्धस्य धमनीष्वनुबन्धव्यपेक्षया॥ १५॥
दोषसंसर्गजा कार्य्या भेषजाहारकल्पना।
ऊर्द्धगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत्॥ १६॥
अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः।
कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तैः कफोल्वणे॥ १७॥
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधु धात्रीफलद्रवैः।
तिक्तभूयिष्ठकाहारं पानञ्चापि प्रकल्पयेत्॥ १८॥

आगे अम्लपित्तकी चिकित्सा लिखते हैं।

अम्लपित्त रोग में पहिले वमन दे कर पीछे कोमल विरेचन देय, जब वैद्य जाने कि रोगी वमन और विरेचनसे अच्छी प्रकार शुद्ध हो गया तब अनुवासन वस्ति देय॥ १४॥

यदि रोग बहुत पुराना होय तो दोष, अवस्था, समय और स्वभावादि का विचार करके रोगीको आस्थापनन कर्म करे, क्योंकि इन कर्मों के करनेसे रोगीकी नाड़ी शुद्ध होजाती हैं॥१६

बुद्धिमान् वैद्य दोषके अनुसार ही रोगीको भोजन और औषधी देय, यदि अम्लपित्त ऊपरके मार्गों का होय तो वमन और जो नीचेके मार्गों का होय तो विरेचन देय॥ १७॥

अम्लपित्तमें यदि कफ अधिक होय तो परवर और नीमकी

यव गोधूमविकृतां स्तीक्ष्ण संस्कारवर्जितान्।
यथास्वं लाजशक्तून् वा सितामधुयुतान् पिबेत् ॥१९॥
निम्बपयवत्रूषधात्रीक्काथ स्त्रिषुगन्धिमधुयुतः पीतः।
अपनयत्यम्लपित्तं यदि भुक्तं मुद्गयूषेण ॥ २० ॥
कफपित्तवमिकण्डूज्वर विस्फोटदाहहा।
पाचनो दीपनः क्काथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ २१ ॥
पटोलं नागरं धान्यं क्काथयित्वा जलं पिबेत्।
कण्डूपामार्त्तिशूलघ्नं कफपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥२२॥

पत्तियोंका काढ़ा अथवा मैनफल, सेंधानमक और शहत खिलाकर वमन करावे ॥ १८ ॥

निसोत और आमलेके अवलेह में शहत मिलाकर खाने को देय और पीनको कड़वी वस्तु देय, जौ और गेहूंके भोजन बना कर देय, परन्तु उनमें कोई तीक्ष्ण अर्थात् तेज वस्तु न प॰ होय अथवा दोषके अनुसार चीनी और शहत मिलाकर ॰॰वा और सत्तू खिलावे ॥ १९ ॥

भूसीरहित जौ, वासा और आवलेके काढ़े में तज, तेजपात, इलायची और शहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त दूर होजाता है, परन्तु रोगीको मूंगकी दाल खानी चाहिये ॥ २० ॥

सोंठ और परवर पत्तोका काढ़ा पीनेसे कफ, पित्त, वमन, खुजली, ज्वर, विस्फोटक और दाहरोग दूर होजाते हैं। अग्नि बढ़ती है और दोष पचजाते हैं ॥ २१ ॥

परवरपत्ती, सोंठ और धनिये का काढ़ा पीने से खुजली, पामा, कफ, पित्त और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं ॥२२॥

पटोल विश्वामृत रोहिणीकृतं
जलं पिबेत्पित्त कफात्ययेषु।
शूल भ्रमारोचक वह्निमान्द्य
दाह ज्वर च्छर्दिनिवारणं तत्॥ २३ ॥
यवकृष्णा पटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत्।
नाशयेदम्लपित्तञ्चारुचिञ्च वमनं तथा॥ २४ ॥
वासामृता पर्प्पट कनिम्ब भूनिम्ब मार्कवैः।
त्रिफला कुलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा॥२५॥
इति दशाङ्गः।
छिन्ना खदिरयष्ट्याह्व दार्व्यम्भो वा मधुद्रवम्।
सद्राक्षामभयां खादेत्सक्षौद्रां सगुडाञ्च ताम्॥२६॥

जिस अम्लपित्तमें कफ और पित्त अधिक जान पड़े उसमें परवरपत्ती, सोंठ, गुरिच और कुटकीका काढ़ा पिये तो अम्लपित्त, शूल, भ्रम, अरोचक, मन्दाग्नि, दाह, ज्वर और बमन रोग दूर होजाते हैं॥ २३ ॥

इन्द्रजौ, पीपल और परवरके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे अरुचि, बमन और अम्लपित्त रोग दूर होजाते हैं॥२४॥

वासा, गुरिच, पित्तपापड़ा, नीम, चिरायता, भंगरा, हर्रे, बहेड़ा, आमला और कुलक (परवरपत्ती) का काढ़ा पीनेसे अम्लपित्त दूर होजाता है, इस काढ़ेमें शहद मिला ले, इसका नाम दशाङ्ग क्वाथ है॥ २५ ॥

गुरिच, खैर, जेठीमधु, दारुहल्दी और सोंठके अवलेहमें

छिन्नोद्भवा निम्ब पटोलपत्रं
फलत्रिकं सुक्वथितं सुशीतम् ।
क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपं
सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥ २७ ॥
हिङ्गुच कतकफलानि च
चिञ्चात्वचौ घृतञ्च पुटदग्धम् ।
शमयति तदम्लपित्तमम्ल
भुजो यदि यथोत्तरं द्विगुणम् ॥ २८ ॥
कान्तपात्रे वराकल्को व्युषितोऽभ्यासयोगतः ।
सिताक्षौद्र समायुक्तः कफपित्तहरः स्मृतः ॥ २९ ॥
एकोऽंशः पञ्च निम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः ।

शहत मिलाकर पिये अथवा मुनक्का और हर्र खाय या शहतमें मिलाकर हर्र खाय, अथवा गुड़, हर्र मिलाकर खा तो अम्ल-पित्त रोग दूर होजाता है ॥ २६ ॥

गुरिच, नीम, परवरपत्ती, हर्र, बहेड़ा और आमलेका ठण्डा काढ़ा पीनेसे अनेक प्रकारका भयानक अम्लपित्त रोग दूर होजाता है परन्तु काढ़े में शहत मिलालेना चाहिये ॥२७॥

हींग, निर्म्मली, इमलीकी छाल इनमें घी मिलाकर पुट-पाककरखिलावे, रोगीको खट्टी वस्तु खिलावे, तो अम्लपित्त दूर होजाता है इस योगमें सब औषधी एक दूसरीसे द्विगुणी है ॥२८॥

लोहेके वरतनमें बना हुआ, त्रिफलेका कल्क खानेका अभ्यास करनेसे कफ, पित्त, शीघ्र दूर होजाता है, इस कल्कमें

शक्त दशगुणो देयः शर्करा मधुरीकृतः ॥ ३० ॥
शीतेन वारिणा पीतं शूलं पित्तकफोच्छ्रितम् ।
निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ ३१ ॥
इति पञ्चनिम्बादिचूर्णम् ।
वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च ।
अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं गुड़कुष्माण्डकं तथा ॥ ३२ ॥
पक्ति शूलापहा योगास्तथा खण्डामलक्यपि ।
पिप्पलीमधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी ॥ ३३ ॥
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं शुद्धञ्चैव विड़ङ्गकम् ॥ ३४ ॥

शहत और चीनी मिलालेना चाहिये, एक एक भाग नीमका पंचांग और दो भाग विधारा और सत्तू दशभाग इन सबको शहत और चीनीसे मीठा करके खानेसे रक्तपित्तसे उत्पन्न हुआ शूल दूर होजाता है ॥ २८—३० ॥

वासाघृत, पिप्पलीघृत, तिक्तघृत और गुड़कूष्माण्डक ये सब पहिली लिखी औषधि अम्लपित्तमें खिलानी चाहिये ॥ ३१ ॥

इन योगोंसे पक्तिशूल भी दूर होजाता है, खांडमें मिलाकर आमला और शहतमें मिलाकर पीपल खानेसे अम्लपित्त दूर होजाता है ॥ ३२ ॥

सन्ध्याको केवल नीबूका अर्क पीनेसे अम्लपित्त दूर होता है ॥ ३३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, मोथा, शुद्ध विड़ङ्ग,

एला पत्रञ्च चूर्णानि समभागानि कारयेत् ।
सर्वमेकीकृतं यावल्लवङ्गं तत्समं भवेत् ॥ ३५ ॥
सर्वचूर्णं द्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत् ।
सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयान्वितम् ॥ ३६ ॥
अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबद्धं मलमूत्रयोः ।
अग्निमान्द्यभवान्रोगान् नाशयेदविकल्पतः ॥ ३७ ॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव सर्वदुर्नामनाशनम् ।
अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्यविहितं शुभम् ॥ ३८ ॥

इति अविपत्तिकरचूर्णम् ।

कणाचूर्णस्य कुड़वं षट्पलं हविषस्तथा ।
शतावरीरसस्याष्टौ पलान्यत्र प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥
खण्डप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ॥ ४० ॥
त्रिजात मुस्त धान्याक शुण्ठी वांशी द्विजीरक.... ।

इलायची और तेजपात इन सबको समान लेकर सबके समान लौंग डाले और सबसे द्विगुनी निसोत डालकर चूर्ण बनावे, जब यह चूर्ण बन चुके तब उतनी ही शक्कर मिलाकर खाय तो अम्ल-पित्त, विष्ठा और मूत्रका रुकना मन्दाग्नि से उत्पन्न हुए सब प्रकारके रोग बीसों प्रकारकी प्रमेह और छहो प्रकारके अर्श रोग दूर होजाते हैं। अगस्त्य मुनिने इसका नाम अविपत्ति-कर चूर्ण लिखा है ॥ ३४—३८ ॥

पीपलका चूर्ण एक कुड़व, घी छः पल, शतावरका रस आठ

अभयामलकञ्चैव चूर्णं द्वादशमाषिकम् ॥ ४१ ॥
तदर्द्धं मरिचं चूर्णं सारं खदिरमेव च ।
पलत्रयञ्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् ॥ ४२ ॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ।
शूलारोचक हृल्लास छर्दिपित्ताम्लशूलनुत् ॥ ४३ ॥
अग्निसीपनो हृद्यः खण्डपिप्पलिकोमतः ॥ ४४ ॥

इति पिप्पलीखण्डः ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम् ।
पलषोड़शिकं खण्डाद्रसे वर्य्याः पलाष्टके ॥ ४५ ॥
पलषोड़शिके चैव आमलक्या रसस्य च ।
क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं लेहीभूते ततः क्षिपेत् ॥ ४६ ॥

पल, खाड़ एकप्रस्थ इन सबको दो प्रस्थ दूधमें मिलाकर पकावे, फिर तज, तेजपात, इलायची, मोथा, धनिया, सोंट, वंसलोचन सफेदजीरा, काला जीरा, हर्र और आमला ये सब बारह २ मासे पीसकर डाले, सबसे आधा मिर्च और खैर छोड़े जब यह पाक ठण्डा होजाय तब तीनपल शहत मिलावे, फिर मात्राके अनुसार रोगीको खिलावे तो अम्लपित्त, शूल, अरोचक, हृल्लास, वमन, पित्ताम्ल, शूल और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं, इस हृदयके प्यारे योगका नाम पिप्पलीखण्ड है ॥३८॥४४॥

पीपलका चूर्ण एक कुड़व, घी दो कुड़व, खांड सोलहपल, शतावर का रस आठपल, आमलेका रस सोलह पल, दूध दो प्रस्थ, इन सबको एक में मिला कर पकावे जब पकते पकते

त्रिजातकाभयाजाजी धन्याकं मुस्तकं शुभा ।
धात्री च कार्षिकं चूर्णं कर्षार्द्धञ्चापि जीरकम् ॥४७॥
कुष्ठनागरकं नागं सिद्धशीतेऽवचूर्णितम् ।
जातीफलं समरिचं मधुनश्च पलत्रयम् ॥ ४८ ॥
उपयुञ्ज्यात्ततो धीमानम्लपित्तनिवृत्तये ।
हृल्लासारोचकच्छर्दि श्वासकासक्षयापहम् ॥ ४९ ॥
अग्निसंदीपनं हृद्यं पिप्पलीखण्डसंज्ञितम् ॥ ५० ॥
इति वृहत्पिप्पलीखण्डः ।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समारपेत् ।
दत्वा द्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ॥ ५१ ॥
लेह्येवतारिते दद्यात् धात्री धान्यक मुस्तकम् ।
अजाजी पिप्पली वांशी त्रिजातं कारवी शिरा ॥५२॥

अवलेह के समान गाढ़ा होजाय तब तज, तेजपात, इलायची, हर्र, जीरा, धनिया, मोथा, वंशलोचन और आमला एक २ कर्ष, जीरा आधाकर्ष, कूट आधाकर्ष, सोंठ आधाकर्ष और नागकेशर आधाकर्ष इन सबका चूर्ण करके ठंडा होने पर मिलावे, जायफल तीनपल, मिर्च तीनपल और शहत तीनपल, ठंडा होने पर मिलावे फिर बुद्धिमान् वैद्य रोगीको खिलावे तो अम्लपित्त, हल्लास, अरोचक, वमन, खांसी, सांस और क्षयरोग दूर होजाते हैं अग्नि बहुत तेज होजाती है इस का नाम वृहत् पिप्पली खण्ड है ॥ ४५—५० ॥

सोंठका चूर्ण एक कुड़व, खांड़ एक प्रस्थ, इन दोनोंको दो

विशालां मरिचं नागं पलमात्रन्तु पृथक् पृथक् ।
पलत्रयञ्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ।
शूलहृद्रोगवमनैरामवातैश्च पीडितः ॥ ५४ ॥

इति शुण्ठीखण्डः ।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम् ।
पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥५५॥
नाशयेदम्लपित्तञ्च वातपित्तोद्भवान् गदान् ।
रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ ५६ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

कुड़ब घी और दोप्रस्थ दूधमें डालकर पकावे जब पकते पकते गाढ़ा होजाय तब उतारकर तीन तीन मांश आवला, धनिया, मोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, तज, तेजपात, इलायची, सौंफ शिरा छः छः मासे मरिच और नागकेशर, डाले जब ठण्डा होजाय तब तीनपल शहत डाले फिर रोगीको मात्राके अनुसार खिलावे तो अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, वमन और आमबात रोग दूर होजाता है इसका नाम शुण्ठीखण्ड है ॥ ५१ ॥ ५४ ॥

शतावर की जड़का कल्क एकप्रस्थ, घी, एक प्रस्थ, और पानी एकप्रस्थ इन सबको चौगुने दूधमें मिलाकर मन्द अग्निमें धीरे धीरे पकावे । इस घीसे अम्लपित्त, बातपित्त से उत्पन्न हुये रोग, रक्तपित्त, प्यास, मूर्च्छा, स्वास और दाहरोग दूर होजाते हैं इसका नाम शतावरी घृत है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

जलैर्दशगुणैः क्वाथ्यं पिप्पलीपलषोड़श ।
पादशेषं हरेत्क्वाथस्तेन तुल्यं घृतं पचेत् ॥ ५७ ॥
रसप्रस्थं गुडूच्याश्च धात्र्याः षष्टिपलं रसम् ।
द्राक्षा धात्री पटोलञ्च विश्वञ्च कटुका वचा ॥ ५८ ॥
पलप्रमाणं कल्कञ्च दत्त्वा सर्पिः समुद्धरेत् ।
अम्लपित्तहरं ख्यातं दाहच्छर्दिनिवारणम् ॥ ५९ ॥
असाध्यं साधयेत्सद्यो नाम्ना नारायणं घृतम् ॥ ६० ॥

नारायणघृतम् ।

अमलनिचयविशुद्धं गोजले सप्तवारान्
तदनुकिरणशुष्कं श्लक्ष्णमण्डूरचूर्णम् ।
विमलकपलमेकं पञ्चसंख्यं सितायाः
अनयतु पलाष्टौ द्राक्षकं गव्यदुग्धम् ॥ ६१ ॥

सोलहपल पीपल को एकसौ साठपल, पानीमें पकावे जब पकते पकते चौथाई अर्थात् ४० पल पानी रहजाय तब उतार कर छान ले फिर उसके समान घी, एकप्रस्थ गुर्चका रस, और साठपल आंवलेका रस डाले; मुनक्का एकप्रस्थ, आंवला एकपल, परवल एकपल, सोंठएकपल, कुटकी एकपल और रसभरीवच एकपल इन सबका कल्क बना कर छोड़े जब पक चुके तब घी, छान लेय इससे अम्लपित्त, दाह और वमन ये रोग असाध्य होने पर भी शीघ्र दूर होजाते हैं इसका नाम नारायण घृत है ॥५७॥६०॥

मण्डूरको आगमें तपाकर सातबार गोमूत्रमें बुझावे और घाममें सुखाले, फिर उसका एकपल चूर्ण, चीनी पांचपल,

मृदुदहनशिखाभिर्मन्दमन्दं कटाहे
विगलदनिलनशेषं पाचयेत्पाकवैद्यः ।
वितरति गुडपाके किञ्चिदूष्णोऽवतीर्णे
दृशदि दृढमभीक्ष्णं चूर्णितं देयमाशु ॥ ६२ ॥
त्रिकटुकमधुकैला यामवैडङ्गसारं
त्रिफलगरलवङ्गं कर्षमेकैकशश्च ।
तदनु शिशिरकाले द्वे पले माक्षिकस्य
प्रतनुपटनिघृष्टं गालितं सम्प्रदद्यात् ॥ ६३ ॥
शुभतिथि दिवसादौ भोजनादौ निषेव्यं
प्रथमदिवसमेकं शाणमानं तदर्द्धम् ।
अहरहरनुवृद्ध्या यावदर्द्धं पलोनं
हिमकरसमशीतं सम्प्रदुग्धस्य पेयम् ॥ ६ ॥

निर्मल गायका घी आठपल, गायका दूध दो सेर पक्व इन सबको एकमें मिलाकर कड़ाही में भर कर मन्दी आगमें धीरे धीरे पकावे जब पकते पकते घी मिल जाय और पानी जल चुके तब पाकविधि जाननेवाला बुद्धिमान् वैद्य उसे गुड़के समान गाढ़ा देख कर उतार ले जब थोड़ा गर्म रहै तब पत्थर पर पिसे सोंठ, मिर्च, पीपल, जेठीमधु, इलायची, अजवाइन, विड़ङ्ग, हर्र, बहेड़ा, आमला, कूट और लौंग, इन सबको एक एक कर्ष डाले, फिर ठण्डा होने पर दो पल शहद मिला देय ऊपर लिखी चूर्ण और महीन कपड़े में छान कर डाले, फिर उत्तम तिथि, दिन और नक्षत्र जानकर खाना आरम्भ करे। पहिले

नियतमयममाध्मानम्लपित्तोत्थशूलान्
वमिनिवहसदाहानाह मोह प्रमेहान् ।
विविधरुधिररोगान् पित्तयुक्तानशेषा
नपहरति सिताख्यो दिव्यमण्डूरयोगः ॥ ६५ ॥

सितामण्डूरम् ।

त्रिकटु त्रिफलाभृङ्ग जीरकद्वयधान्यकम् ।
कुष्ठाजमोदा लौहाभ्रं शृङ्गी कट्फलमुस्तकम् ॥६६॥
एला जातीफलं मांसी पत्रं तालीशकेशरम् ।
गन्धमाता शटी यष्टी लवङ्गं रक्तचन्दनम् ॥ ६७ ॥
एतानि समभागानि शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम् ।
सिता द्विगुणिता तत्र गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६८ ॥

दिन इलायची के समान और दूसरे दिन एक माशा खाय इसी प्रकार प्रतिदिन बढ़ाते बढ़ाते एक छटांक तक खाय ऊपरसे चन्द्रमाके समान सुन्दर गायका दूध पिये इसके खानेसे निश्चयही अम्लपित्त से उत्पन्न हुआ शूल, वमन, दाह, आनाह, मूर्च्छा, प्रमेह, अनेक प्रकारके रुधिर रोग और पित्त रोग दूर होजाते हैं इस दिव्य औषधी का नाम सितामण्डूर है ॥ ६१ ॥ ६५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रं, बहेड़ा, आमला, भंगरा, सफेद जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूठ, अजमोदा, लोहा, अभ्रक, काकड़ासिङ्गी, कायफल, मोथा, इलायची, जायफल, जटामासी, तेजपात, तालीश, नागकेशर, गन्धमाता, (सुगन्धि वणिक) कचूर, जेठीमधु, लौंग, और लालचन्दन, ये सब एक एक भाग और

तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन वा ।
अम्लपित्तं निहन्त्येतदरोचकनिसूदनम् ॥ ६९ ॥
शूलहृद्रोगशमनं कण्ठदाहं नियच्छति ।
हृद्दाहश्च शिरःशूलं मन्दाग्निश्च विनाशयेत् ॥ ७० ॥
हृच्छूलं पार्श्व कुक्षिस्थबस्तिशूलं गुदे रुजम् ।
बलपुष्टिकरश्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ ७१ ॥
विशेषादम्लपित्तञ्च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम् ।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥७२॥
सौभाग्यशुण्ठीमोदकम् ।
नागरस्य कषायाश्च पलान्यष्टौ प्रदापयेत् ।
गुवाकस्य पलान्यष्टौ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ७३ ॥

सोंठ इन सबके समान डाल कर चूर्ण बनावे फिर सबसे द्विगुणी चीनी और चौगुना दूध डालकर पकावे जब पक चुके तब उतार लेय, फिर रोगीको एकतोला खिलावे और ऊपरसे दूध या पानी पिलाय दे । इससे अम्लपित्त, अरोचक, शूल, हृद्रोग, वमन, खुजली, दाह, हृदयका दाह, शिरकी पीड़ा, मन्दाग्नि, हृदयका शूल,पसुरीकाशूल और मूत्राशयकी पीड़ा और गुदाके रोग दूर होजाते हैं बल बहुत बढ़ता है मनुष्यका शरीर बहुत पुष्ट होजाता है स्त्रीवशमें होजाती है विशेषकर अम्लपित्त, मूत्र-कृच्छ्र, ज्वर और भ्रम इसप्रकार दूर होजाते हैं जैसे सूर्य्यके निकलनेसे अन्धकार इसका नाम सौभाग्य सुण्ठी मोदक है ॥ ६६ ॥ ७२ ॥

घृतं क्षीरं ततः पश्चात् प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ।
लवङ्गं केशरं कुष्ठं यमानी कारवी वचा ॥ ७४ ॥
चन्दनं मधुकं रास्ना देवदारु फलत्रिकम् ।
पत्रमेला वराङ्गञ्च सैन्धवं ह्रबुषं शटी ॥ ७५ ॥
मदनं कटफलं मांसी गगनं वङ्गरूप्यकम् ।
तालीशपत्रकं मूर्व्वा समङ्गा वंशलोचना ॥ ७६ ॥
ग्रन्थिकं शतपुष्पा च शतमूली कुरुण्टकम् ।
जातीफलं जातिकोषं कक्कोलमम्बुदं कणा ॥ ७७ ॥
कर्पूरञ्च विडङ्गञ्च अजमोदा बलाऽमृता ।
मर्कटीक्षुरवीजञ्च चन्दनं देवदारुकम् ॥ ७८ ॥
लौहं कांस्यं प्रदातव्यं कर्षमात्रं भिषग्विदा ।
अन्यत्सर्वं कर्षमात्रं कषायं स्वर्णभस्मकम् ॥ ७९ ॥

आठपल सोंठ, आठपल पीपल, गुवाक (सुपारी ८ पल) आठ-पल, इन सबको एकमें मिलाकर पीसे, फिर एक प्रस्थ घी, और एक प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे, फिर उसमें लौंग, नागकेशर, कूट, अजमाइन, सोफ स्याहजीरा बच, चन्दन, जेठीमधु, रास्ना, देवदारु, हर्र, बहेड़ा, आमला, तेजपात, इलायची, दारुचीनी, सेंधा, नेत्रवाला, कचूर, मैनफल, कायफल, जटामासी, अभ्रक, वङ्ग, चांदी, तालीशपत्र, मुरहर, मजीठ, वंसलोचन, पीपरा मूल, सौंफ, शतावर, कुरण्टक(पीलीकुरैया) जायफल, जाविची, सीतल चीनी, मोथा, पीपल, कपूर, बिड़ङ्ग, अजमोदा, बरियारे की जड़, गुरिच, कमाचकेबीज, बीजबन्द, चन्दन, देवदारु,

चतुर्धातु विधानेन मारितं ग्राहयेत्सुधीः।
अम्लपित्तान्तकोह्येष मोदको मुनिभाषितः॥ ८० ॥
वान्तिं मूर्च्छाञ्च दाहञ्च कासं श्वासं भ्रमं तथा।
वातजं पित्तजञ्चैव कफजं सान्निपातिकम्॥ ८१ ॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु प्रमेहं सूतिकागदम्।
शूलञ्च वह्निमान्द्यञ्च मूत्रकृच्छ्रं गलग्रहम्॥ ८२ ॥

अम्लपित्तान्तकमोदकः।

लौहचूर्णं मृतं ताम्रम् अभ्रकञ्च पलं पलम्।
शुद्धसूतस्य कर्षकं गन्धकार्द्धपलं तथा॥ ८३ ॥
माक्षिकस्य विशुद्धस्य कर्षं शुद्धशिलापरा।
मार्द्धकर्षं विशुद्धञ्च शिलाजतु तथाऽपरम्॥ ८४ ॥

लोहा, कासा, ये सब एक एक कर्ष लेके डाले और सोनेकी भस्म आधाकर्ष डाले ऊपर जो लोहा आदि धातु कहीं हैं उन्हें उत्तम रीतिसे भस्म करके डाले इस मोदकसे वमन, मूर्च्छा, दाह, खांसी, श्वास, भ्रम, वात, पित्त, कफ, और सन्निपात से उत्पन्न हुए रोगसूतिका रोग, प्रमेह, शूल, मन्दाग्नि, मूत्रकृच्छ्र और गला रुकना आदि रोग दूर होजाते हैं इसका नाम अम्लपित्तान्तक मोदक है॥ ७३ ॥ ८२ ॥

लोहचूर्ण एकपल, ताम्रेकी भस्म एकपल, अभ्रक एकपल, शुद्धपारा एकर्ष, गन्धक आधापल, शुद्ध सोनाखी एककर्ष, शुद्ध गुग्गुल एककर्ष, शुद्ध मैनसिल एककर्ष, एकमाश शिलाजीत विड़ङ्ग, भिलावा चीता, सफेद आककी जड़, हस्तिकर्ण, ढाक,

गुग्गुलोश्चापि कर्षैकं शाणमानं परस्य च।
चूर्णं विडङ्गभल्लात वह्नि श्वेतार्कमूलजम् ॥ ८५ ॥
करिकर्णं पलाशञ्च तालमूली पुनर्णवा।
घनाऽमृता नागबला चक्रमर्दक मुण्डिरी ॥ ८६ ॥
भृङ्गकेश शतावर्य्यौ वृद्धदारं फलत्रयम्।
त्रिकटुश्चापि सर्वेषां प्रत्येकञ्च नयेद्भिषक् ॥ ८७ ॥
सर्वमेकत्र संमर्द्य घृतेन मधुना सह।
स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिप्य ततः कुर्य्याद्विधानवित् ८८
माषकादिक्रमेणैव लौहं सर्वं रसायनम्।
अम्लपित्तं जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ८९ ॥
तद्वदर्शांसि सर्वाणि सर्वमेव भगन्दरम्।
पङ्क्तिशूलं तथामञ्च शूलञ्च कुक्षिसम्भवम् ॥ ९० ॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पाण्डुरोगं हलीमकम्।
आमवातं तथा शोथमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥ ९१ ॥
कामलां वातगुल्मञ्च पिडकागरगृध्रसीः।
कासश्वासारुचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥ ९२ ॥

मूसली, गधापुन्ना, मोथा, गुरिच, गुलशकरी, चकवन, मुण्डी, भंगरा, शतावर, विधारा, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल इन सबको कूट कर एकमें मिलाकर घी और शहत मिलाकर लड्डू बनावे और उन्हें चिकने बरतन में उठा रक्खे, फिर एक मासेसे खाना आरम्भ करे इस रसायन औषधी के खानेसे सब उपद्रव सहित अम्लपित्त छः हों प्रकारके अर्शरोग

सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं यथेष्टाहारसेविन:।
यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च वातरोगं विनाशयेत् ॥ ९३ ॥
संज्ञया सर्वतोभद्र लौहो रसवर: स्मृत: ॥ ९४ ॥
योगरत्नसमुच्चयस्य। सर्वतोभद्रलौह:।
त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा।
त्रिफलाया: कषायेण गुडीं कृत्वा तदर्द्धकौ ॥ ९५ ॥
लौहाभ्रकविडङ्गानां दद्यात्कर्षद्वयं तथा।
त्रिफलाया: कषायेण गुडीं कृत्वा विधानत: ॥ ९६ ॥
तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु।
हन्ति शूलं त्रिदोषोत्थमम्लपित्तं विशेषत: ॥ ९७ ॥

सब प्रकारके भगन्दर, पंक्तिशूल, शूल, कोखकी पीड़ा, वात रक्त, कुष्ठ, पाण्डुरोग, श्लेष्मक, आमवात, शोथ, कष्टसाध्य मन्दाग्नि रोग, कामला, वायगोला, पिड़िका, गृध्रसी, खांसी, श्वास, अरुचि, और राजयक्ष्मा, आदि सब रोग, दूर होजाते हैं इस औषधि के खाने में रोगीकी जो इच्छा हो सो खाय और जैसे इच्छा होय तैसे रहै अर्थात् इसमें पथ्यापथ्य का कुछ नियम नहीं है इस उत्तमरस का नाम सर्वतो भद्र लोह है ॥ ८४—९४ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, मोथा, निसोत, चीता, इन सबको त्रिफलेके काढ़ेमें घोटकर गोली बना वे घोटते समय लोहा, अभ्रक और बिड़ङ्ग दो दो कर्ष छोड़ देय फिर प्रात:काल एक गोली खाकर ऊपरसे पानी पिये इससे शूल, तीनो दोषोंसे उत्पन्न हुआ अम्लपित्त, हृदय, पसुरी, कोख,

हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षि वस्ति गुदे रुजाम्।
श्वासं कासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशिनी ॥ ९८ ॥

पानीयभक्तवटी ॥

कृष्णाभ्र लौहमल कुष्ठविडङ्गचूर्णं
प्रत्येकमेकपलिकं द्विविधं विधाय।
चव्यं कटुत्रय फलत्रय केशराज
दन्ती पयोद चपलानल घण्टकर्णाः ॥ ९९ ॥
मानोन्नशुक्लबृहती त्रिवृताः समूर्व्वा-
वर्त्ताः पुनर्णविकया सहितास्त्वमीषाम्।
मूलं प्रति प्रतिविशोधितमक्षमेकं
चूर्णं तदर्द्धरसगन्धकमेकप्रस्थम् ॥ १०० ॥
कृत्वार्द्रकीय रससम्वलितश्च भूयः
संपिष्य तस्य वटिका विधवत् विधेय

मूत्राशय, और गुदा की पीड़ा, श्वास, खांसी, कुष्ठ और ग्रहणी रोग दूर होजाते हैं इसका नाम पानीयभक्तवटी है ॥९५—९८॥

काला अभ्रक, लोहेका मैल, बिड़ङ्ग, और कूट ये सब एक एक पल, चाब, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, कालाभङ्गरा, जमालगोटेकी जड़, मोथा, पीपल, चीता, घण्टकर्ण, (सुभ) मानोन्न, सफेद कटहली, निसोत, सूर्य्यमुखी और गधेपुर्वको जड़ इन सबको शोधकर डाले ये सब औषधी एक एक अक्ष होय फिर आधा अक्ष, पारा, और आधा अक्षगन्धक मिलाके एक प्रस्थ अदरके रसमें घोटकर विधिपूर्वक गोली बनावे इस गोलीके

हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां
दुर्नामकामल भगन्दर शोथगुल्मान् ॥ १०१ ॥
शूलञ्च पाकजनितं सतताग्निमान्द्यं
सद्यः करोत्युपचयं चिरनष्टवह्नेः।
कुष्ठानि हन्ति पलितञ्च वलिं प्रवृद्धां
श्वासञ्च कासमपि पाण्डुगदं निहन्ति ॥ १०२ ॥
वार्य्यन्नमांसदधिकाञ्जिकतक्रमत्स्य
वृन्ताम्लतैलपरिपक्वभुजो यथेष्टम्।
शृङ्गाट विल्व गुडकञ्चट नारिकेल
दुग्धानि सर्वविदलानि विवर्जयेत्तु ॥ १०३ ॥

एषा ग्रहण्यामपि प्रशस्ता। पानीयभक्तवटिका॥

गगनात् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम्।

अम्लपित्त, अरुचि, असाध्यग्रहणी रोग, ववासीर, कामला, भगन्दर, शोथ, गुल्म, शूल, अन्न न पचना, मन्दाग्नि, कुष्ठ, श्वास, खांसी, और पाण्डुरोग दूर होजाते हैं। नष्ट हुई अग्नि बहुत शीघ्र तेज होजाती है बालकाले होजाते हैं; और खालकी झुर्री मिट जाती है इसमें पानी, अन्न, मांस, दही, कांजी, मठा; मछरी, तिंतड़ीक और तेलमें पके भोजन भी रोगी खा सक्ता है। सिंहाड़ा, वेल, कञ्चट, (चक्रमर्द) नरियल, दूध, और सब प्रकार की दाल अपथ्य हैं इसका नाम भी वृहत् पानीय भक्तवटिका हैं ॥ ९९—१०३ ॥

अभ्रक दो पल, लोहचूर्ण एकपल, लोहेका मैल आधापल

लौहकिट्ट पलार्द्धञ्च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ १०४ ॥
मण्डूकपर्णीवशिर तालमूलीरसैस्तथा ।
भृङ्गराज केशराज काकमाचिर्यजैरथ ॥ १०५ ॥
त्रिफला भद्रमुस्ताभि: स्थालीपाकाद्विचूर्णितम् ।
रसगन्धकयो: कर्षं प्रत्येकं ग्राह्यमेकत: ॥ १०६ ॥
तन्मग्रणशिलाखल्ले यत्नत: कज्जलीकृतम् ।
वचा चव्यं यमानी च जीरकौ शतपुष्पिका ॥ १०७ ॥
व्योषं विड़ङ्ग मुस्तञ्च ग्रन्थिकं स्वरमञ्जरी ।
त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्य्यावर्त्त: सितस्तथा ॥१०८॥
भृङ्गमाणकन्दांश्च काष्टकर्णिक एव च ।
दण्डोत्पला केशराज कालीकर्कटकोऽपि च ॥१०९॥
एषामर्द्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम् ।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्द्धं पलमेव च ॥ १ ॥

इन सबको एकमें मिलाकर ब्राह्मी, वशिर, (चाव) मूसली-भंगरा, कालाभंगरा, काकमाचिष, त्रिफला, और मोथे के रसमें भिगा देय फिर शीशोमें पके हुये पारा और गन्धक एक एक कर्ष लेकर पत्थरके खरलमें घोटे फिर बच, चाव, अजमाइन, सफेदजीरा, कालाजीरा, सौंफ, सोंठ, मिर्च, पीपल, विड़ङ्ग, मोथा, पिपरामूल, लटजीरा, निसोत, चीता, दन्तू, सूर्य्यमुखी, सित (श्वेत) भंगरा, मानकन्द घण्टकर्ण (क्षुप) दण्डोत्पल (कमलभेद) कालाघमिरा अगर, और काकड़ासिङ्गी इन सबको आधा आधा पल लेकर कूटकर कपड़े में छान ले, फिर हर्र,

एतत्सर्वं समालोड्य लौहपात्रे च भावयेत्।
आतपे दण्डसंघृष्टमार्द्रकस्य रसैस्त्रिधा ॥ १११॥
तद्रसेन शिलापिष्टां गुड़िकां कारयेद्भिषक्।
बदराष्ठिनिभां शुष्कां मुनिगुप्तां निधापयेत् ॥११२॥
एतत्प्रातर्भोजनादौ सेवितं गुड़िकात्रयम्।
अम्लोदकानुपानन्तु हितं मधुरवर्जितम् ॥ ११३ ॥
दुग्धञ्च नारिकेलञ्च वर्जनीयं विशेषतः।
भोज्यं यथेष्ट मिष्टञ्च वारिभक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥ ११४ ॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलञ्च परिणामजम्।
पाण्डुरोगञ्च गुल्मञ्च शोथोदरगुदामयान् ॥ ११५ ॥
यक्ष्माणं पञ्चकासञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्।

बहेड़ा, आमला, डेढ़.डेढ़ पल लेकर मिला दे, फिर इन सब औषधियोंको लोहेके बरतनमें डालकर लोहेके डण्डे से घाममें बेठ कर अदरकका रस डालकर घोटे। इस प्रकार तीन भावना देकर बेरकी गुठलीके समान गोली बना ले जब सूख जाय तब रक्षा पूर्वक उठा रक्खे; फिर प्रातःकाल भोजनके पहिले तीन गोली खाय और ऊपरसे खट्टा पानी पिये मीठा कुछ न खाय विशेषकर दूध और नरियल त्याग दे और जो इच्छा होय सो खाय पानी भात, खटाई और काञ्जी, पथ्य हैं [इस गोली से अनेकप्रकार का अम्लपित्त, परिणामशूल, पाण्डुरोग, शोथ, पेटके विकार, गुदाके रोग, राजयक्ष्मा, पांचोप्रकारकी खांसी, मन्दाग्नि, अरुचि, पिलही, श्वास, अनाह, आमवात

प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं स्वरामयम् ॥
गुड़ी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥११६॥

बृहत् क्षुधावतीगुड़िका ॥

रसगन्धकमभ्राणि यमानी त्रूषणं तथा ।
त्रिफला शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ ११७ ॥
पुनर्णवा वचा दन्ती त्रिवृता घण्टकर्णकम् ।
दण्डोत्पला शारिवे द्वे चाक्षमात्राणि कारयेत् ॥११८
मण्डूरं द्विगुणं दत्वा पेषणीयं प्रयत्नतः ।
आर्द्रस्वरसकालोडा गुड़िकां कारयेद्बुधः ॥ ११९ ॥
प्रत्यहं भक्षयेदेकां भक्तवारि पिबेदनु ।
वटी क्षुधावती नाम्ना चाम्लपित्तविनाशिनी ॥१२०॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ।

और स्वरभेद रोग दूर होजाते हैं इस प्रसिद्ध गोली का नाम बृहत् क्षुधावती बटी है ॥ १०४—११६ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, अजवाइन, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा आमला, सौंफ, चविका (चाई) सफेदजीरा, कालाजीरा, गधापुर्नाकी जड़, बच, जमालगोटेकी जड़ निसोत, घण्टाकर्ण, दण्डोत्पल दोनो सरिवन ये सब औषधी एक एक अक्ष और सब से दिगुना मण्डूर डालकर अदरकके रसमें घोटे और गोली बना ले, फिर प्रतिदिन एक गोली खाकर ऊपरसे पानी पिये। इससे अम्लपित्त, पिलही, श्वास, अनाह, आमवात, परिणामशूल और पांचोप्रकार की खांसी दूर होजाती है

प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं विनाशयेत् ॥ १२१ ॥
परिणामभवं शूलं कामं पञ्चविधं तथा।
जगतस्तु हितार्थाय वाग्भटेन प्रकीर्त्तिता ॥ १२२ ॥
अथ मण्डूरभागद्वयम्।   स्वल्पा क्षुधावतीगुडिका ॥
रसायो गन्धकाभ्राणि त्र्यूषणं त्रिफला वचा।
यमानी शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ १२३ ॥
प्रत्येकं पलमेषान्तु घण्टकर्णः पुनर्णवा।
माणकं ग्रन्थिकं चेन्द्र केशराज सुदर्शना ॥ १२४ ॥
दण्डोत्पला त्रिवृद्दन्ती जामाद रक्तचन्दनम्।
भृङ्गापामार्ग कुनका मण्डूकश्च पलार्द्धकम् ॥ १२५ ॥
आर्द्रकस्वरसेनाथ गुडिकां सम्प्रकल्पयेत्।
वदरास्थिसमां चैकां भक्षयित्वा पिबेदनु ॥ १२६ ॥
वारिभक्तजलञ्चैव प्रातरुत्थाय मानवः।

अग्नि, तेज, शोभा और बल बढ़ जाते हैं जगत के कल्याणके लिये इस औषधिका नाम वाग्भट ने अल्प क्षुधावती वटी लिखा है ॥ ११७—१२२ ॥

पारा, लोहा, गन्धक, अभ्रक, त्रिकुटा, त्रिफला, बच, अजमाइन, सौंफ, चाई, दोनो जीरे, ये सब एक एक पल, घण्टा कर्ण, गधापुना, मानकन्द, पीपलामूल, इन्द्रजौ, कालाघमिरा, सुदर्शन, दण्डोत्पला, निसोत, जमालगोटेकी जड़, आमाढ़, लालचन्दन, भंगरा, लटजीरा, कुनक (परवर) मण्डूक ये सब आधे आधे पल लेकर अदरकके रसमें घोटकर बेरकी गुठली

वटी क्षुधावती नाम सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥ १२७ ॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं भस्मकञ्च नियच्छति ।
अम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामकृतञ्च यत् ॥ १२८ ॥
तत्सर्वं शमयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात् क्षीरशर्करे ॥ १२९ ॥

क्षुधावतीगुटिका ॥

रसो बलिर्व्योम रविस्तु लौहं
धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य ।
तदल्पभृष्टं मृदुमार्कवेण
संमर्दयेदस्य हि वल्लयुग्मम् ॥ १३० ॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधप्रकारं
लीलाविलासो रसराज एषः ।

के समान गोली बनावे, फिर प्रातःकाल एकगो । खाकर पानी पिये और खानेको भात खाय इससे अग्नि बहुत बढ़ जाती है सब प्रकारके अजीर्ण, भस्मक, अम्लपित्त और परिणामशूल इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्य्य निकलेसे अन्धकार इस औषधि में मीठा न खाय विशेष कर दूध और शक्करको छोड़ देय इसका नाम क्षुधावती वटी है ॥ १२३—१२९ ॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, लोहा, तांबा इन सबको समान लेकर आवले और बहेड़े के पानीमें तीन दिनतक घोटे फिर थोड़ा भूनकर भंगरेके रसमें घोटे फिर रोगीको चार रत्ती खिलावे तो अनेक प्रकार का अम्लपित्त, वमन, शूल,

छर्दिं सशूलां हृदयस्य दाहं
निवारयेदेष न संशयोऽत्र ॥ १३१ ॥
दुग्धं सकूष्माण्डरसं सधात्री-
फलं समेतं ससितं भजेद्वा ॥ १३२ ॥

इति लीलाविलासो रसः ॥

मृतसूतार्कलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत्।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥ १३३ ॥

इत्यम्लपित्तान्तको रसः ॥

शुद्धसूतं पलार्द्धञ्च तत्समं शुद्धगन्धकम्।
तयोस्तुल्यं ताम्रपात्रं लिप्त्वा सूतोदरं क्षिपेत् ॥१३४॥
आच्छाद्य पत्रं लवणैर्लिप्त्वा गजपुटे पचेत्।
सिद्धं ताम्रं समादाय पलमेकं विचूर्णयेत् ॥ १३५ ॥

हृदयकी जलन, निःसन्देह दूर होजाते हैं ऊपरसे दूध, कुम्हड़े का रस अथवा चीनी पड़ा आवलेका रस पिये इसका नाम लीलाविलास रस है ॥ १३०—१३२ ॥

पारेकी भस्म, तांबेकी भस्म, और लोहेकी भस्म, इन सबको समान लेकर घोटे और इनके समान हर्र भी डाल दे, प्रातः-काल शहत और अदरक मिलाकर खाय तो अम्लपित्त रोग दूर होजाता है इसका नाम अम्लपित्तान्तक रस है ॥ १३३ ॥

शुद्धपारा आधापल,शुद्धगन्धक आधापल, इन दोनोंको पानी में पीसकर इनके समान तांबेके पत्रोंपर लेप करके घड़ियाको पांचो नमकसे भरकर उन पत्रोंको बीचमें रख दे, और घड़िया

पारदस्य पलञ्चैकं गन्धकस्य पलं तथा ।
पुटदग्धस्य लोहस्य गगनस्य पलं पलम् ॥ १३६ ॥
यमानी शतपुष्पा च त्रिकटु त्रिफलाऽपि च ।
त्रिवृता चविका दन्ती शिखरी जीरकद्वयम् ॥१३७॥
एतेषां पलिकैर्भागैर्घण्टाकर्णीकमाणकम् ।
ग्रन्थिकं चित्रकञ्चैव कुलिशानां पलार्द्धकम् ॥ १३८ ॥
आर्द्रकस्य रसैः पिष्ट्वा गुडिकां माषसम्मिताम् ।
पञ्चाननगुडी ख्याता सर्वरोगविनाशिनी ॥ १३९ ॥
अम्लपित्त महाव्याधिनाशिनी च रसायनी ।
मन्दाग्निकारिका चैषा परिणामव्यथाऽपहा ॥ १४० ॥
शोथपाण्डुामयानाह प्लीहगुल्मोदरापहा ।
गुरु ह्यष्यान्नपानानि पयो मांसरसा हिता ॥ १४१ ॥

इति पञ्चाननगुडिका ।

बन्द करके गजपुटमें फूंक दे। जब फुंक चुके तब निकाल कर एकपल वही तांबा पीसे, फिर पारा, गन्धक, लोहेकी भस्म, अभ्रक, अजमाइन, सौंफ, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, निसोत, चाई, जमालगोटे की जड़, लटजीरा और दोनोंजीरे, ये सब एक एक पल घण्टाकर्ण मानकन्द, पीपरा मूल, चीता, और कुलिश (हड़जोड़ी) ये सब आधा आधा पल लेकर और पहला फुंका ताम्बा मिलाकर अदरकके रसमें घोटकर एक एक उड़दके समान गोली बनावे। इस गोलीसे अम्लपित्त, शोथ, पाण्डु, तिल्ली, आनाह और गुल्मरोग दूर होजाते हैं

वासामृता केशराज पर्पटी निम्ब भृङ्गकम्।
मुस्तं हृशीर वृहती वाष्याल्लक शतावरी ॥ १४२ ॥
एषां सत्वैः पलोन्मानैर्मर्दितं विमलाभ्रकम्।
सहस्रपुटितं तत्र शतावर्य्यारसं क्षिपेत्।
वार द्वादशकं दत्वा वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ १४३ ॥
भास्करामृतनामेदमम्लपित्तं नियच्छति।
शूलमन्नद्रवं शूलं शूलञ्च परिणामजम्।
छर्दिं हृल्लासमरुचिं तृष्णां कासञ्च दुर्जयम् ॥ १४४ ॥
हृद्ग्रहं कामलां रक्तपित्तं यक्ष्मागमेव च।
दाहं शोथं भ्रमं तन्द्रां विस्फोटं कुष्ठमेव च।
श्वासं मूर्च्छाञ्च मन्दाग्निं ब्रह्मलोहोदरं तथा ॥१४५॥

इति भास्करामृताभ्रम् ॥

इस रसायन औषधी के खानेसे अग्नि बहुत बढ़ती है दूध और मांसका रस आदि भारी भोजन और योनिकी वस्तु पथ्य हैं इसका नाम पञ्चानन वटी है ॥ १३३ - १४१ ॥

वासा, गुरिच, काला भंगरा, पित्तपापड़ा, नीम, भंगरा, मोथा, सफेद गदापुना, कटकरी, वाष्यालक, और शतावर, इन सबके एक एक पल रसमें शुद्ध अभ्रक घोट कर एक हजार आंच दे, फिर शतावरके रसमें बारह भावना देकर गोली बना ले। इस गोली के खानेसे अम्लपित्त, शूल, अन्नद्रव शूल, परिणाम शूल, वमन, हृल्लास, अरुचि, प्यास, कष्टसाध्य खांसी, हृद्ग्रह, कामला, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, दाह, शोथ, भ्रम, तन्द्रा,

अथात्र पथ्यापथ्यविधिः ।

ऊर्द्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम् ।
सर्वत्र शस्यते पश्चान्निरूहश्चापि शालयः ॥ १४६ ॥
यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा जाङ्गलारसाः ।
जलानि तप्तशीतानि शर्करा मधुशक्तवः ॥ १४७ ॥
कर्कोटकं कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका ।
वेत्राग्रं वृद्धकुष्माण्डं रम्भापुष्पञ्च वास्तुकम् ॥ १४८ ॥
कपित्थं दाड़िमं धात्री तिक्तानि सकलानि च ।
पानान्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि तु ॥ १४९ ॥

छर्दि, विस्फोट, कुष्ठ, श्वास, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, यकृत् और पिलही रोग दूर होजाते हैं ॥ १४२—१४५ ॥

आगे पथ्यापथ्य लिखते हैं ।

यदि अम्लपित्त ऊपरके मार्गोंसे निकलता हो तो वमन, नीचेके मार्गोंसे निकला हो तो विरेचन और जो दोनो मार्गों से निकलता हो तो निरूह वस्ति दे ॥ १४६ ॥

खानेको धान, जौ, गोहूं, पुरानीमूंग, जंगली जंतुवोंके मांस, पकाकर ठण्डा किया हुआ जल, शकर, शहत, सत्तू ॥ १४७ ॥

कर्कोड़ा, करेला, परवल, हिलमोचिका (चुक्का) वेत्राग्र, (वेतका अङ्कुर) पका पुराना कुम्हड़ा, केलेका फूल, बथुआ, कैथ, अनार, आमला और सब तीतीवस्तु खाने पीनेमें पथ्य है परन्तु वे सब कफ और पित्तको दूर करनेवाली हों ॥ १४८—१४९ ॥

अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ १५० ॥

नवान्नानि विरुद्धानि पित्तकोपकराणि च।
वमित्वगं तिलान्माषान् कुलत्थांस्तैलभक्षणम्।
अविदुग्धञ्च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च ॥ १५१ ॥
गुर्वन्नं दधिमद्यञ्च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥ १५२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामम्लपित्तचिकित्सा समाप्ता ॥

अथ राजयक्ष्माधिकारः।

अथ राजयक्ष्मनिदानम्।

रोगसेनापतिः शोषो बहुरोगाऽनुगोबली।
अनेकरोगपूर्वोत्थो दुर्विज्ञेयो भिषग्वरैः ॥ १ ॥

नए अन्न, स्वभावसे विरुद्ध भोजन, पित्तको बढ़ाने और वमन लानेवाली वस्तु, तिल, उड़द, कुलथी, तेल, नमकीन वस्तु, कांजी, बकरीका दूध, खटाई, कड़वी वस्तु, भारी अन्न, दही, और मद्य अम्लपित्त में अपथ्य हैं ॥ १५०—१५२ ॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावली में अम्लपित्त अधिकार समाप्त।

अथ राजयक्ष्मा निदान।

शोष अर्थात् राजयक्ष्मारोग सब रोगों का सेनापति है यह अनेक रोगोंसे पहिले उत्पन्न होता है अर्थात् इसके होनेके पश्चात् खांसी और ज्वरादि अनेक उपद्रव होजाते हैं और कहीं कहीं यह रोग भी अनेक रोगोंके पीछे उत्पन्न होता है अर्थात् रक्तपित्त से क्षत और क्षत से क्षय होजाता है वैद्य

धातूनां शोषणाच्छोषो क्षयकृत्त्वात् क्षयः स्मृतः ।
राज्ञो जातस्त्वतः प्राज्ञैः राजयक्ष्मेत्युदाहृतः ॥ २ ॥
केचिदाहुः पृथग्दोषैर्जायते स महागदः ।
तन्न सम्यङ्मतं तेषां सुश्रुतोक्तविनिश्चयात् ॥ ३ ॥
दोषाणां लक्षणान्यत्र युगपत्प्रपतन्त्यतः ।
क्रियाऽविभागतश्चापि एकः सर्वोद्भवो मतः ॥ ४ ॥

अत्यन्त सावधान होने पर भी कठिनता से इसका निश्चय कर सक्ता है ॥ १ ॥

इस रोगमें धातु अर्थात् रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, और वीर्य्य सूखजाते हैं इसी लिये इसे शोष कहते हैं । इसके होनेसे मनुष्यकी सब क्रिया क्षीण होजाती हैं अर्थात् मनुष्य कुछ नहीं कर सक्ता इस लिये इसका नाम क्षयरोग हैं । यह दक्षप्रजापतिके शापसे पहिले चन्द्रमाको हुवा था इस लिये इसका नाम राज यक्ष्मा भी है ॥ २ ॥

कोई कोई वैद्य कहते हैं कि यह रोग वात, पित्त और कफसे अलग अलग उत्पन्न होता है परन्तु सुश्रुतने इस मतका खण्डन किया है इस लिये राजयक्ष्मारोग एकही प्रकारका होता है ॥ ३ ॥

इस रोगमें वात, पित्त, और कफके लक्षण एकही बार प्रगट होते हैं अर्थात् खांसी, और ज्वरादि लक्षण रोगीको एक ही बार होजाते हैं और चिकित्साके कर्म्ममें भी कुछ भेद नहीं दीखता इस लिये राजयक्ष्मारोग केवल सन्निपात ही से उत्पन्न होता है और एकही प्रकारका है यह सुश्रुतका मत है ॥ ४ ॥

किन्तु दोषोल्वणत्वेन क्रिया तत्रोदिता पृथक्।
व्यायामाद्वेगघाताच्च क्षयाच्च विषमाशनात्॥ ५॥
दोषव्याप्तस्य वपुषः कफाद्यैर्दोषसञ्चयैः।
रसवर्त्मसु छन्नेषु जायते स महागदः॥ ६॥
अतिमैथुनशीलस्य शुक्रे क्षीणे ततोऽपरे।
धातवः क्षीणतां यान्ति ततः शुष्यति नाऽधिकम्॥ ७

अथ पूर्वरूपम्।

निद्राग्निमान्द्यकसनश्वसनास्य शोषाः
सपीनसच्छर्दिकफप्रवाश्च।

परन्तु दोष अधिक होनेके कारण इसकी चिकित्सा भी अलग अलग लिखी है अर्थात् वात अधिक राज यक्ष्मा में वात की चिकित्सा और अधिक पित्तवाले में पित्तकी इत्यादि॥५॥

जब दोषोंसे पूर्ण शरीरवाला मनुष्य अधिक व्यायाम करता है, मूत्रादिकोंके वेगको रोकता है, धातुओंको नष्ट करता है, खानेके नियम ठीक नहीं रखता तब उसके कफ आदिक दोष रस वहनेवाली नाड़ियोंके मुख बन्द कर देती हैं उसही से भयानक राजयक्ष्मा रोग होजाता है॥ ६॥

अथवा जो मनुष्य अधिक मैथुन करता है और उसका वीर्य्य क्षीण होजाता है तब क्रमसे और भी धातु क्षीण होने लगते हैं तब मनुष्यका शरीर बहुत सूख जाता है॥ ७॥

शोषरोग होनेसे पहिले मनुष्यको निद्रा अधिक आती है, अग्निमन्द होजाती है, खांसी, श्वास, मुख सूखना, पीनस,

शोषस्य पूर्वं प्रभवन्ति जन्तोः

शुक्लत्वगात्वमथ मांसभुक्ता च ॥ ८ ॥

प्लवङ्गमगृध्रशुकादिकांश्च

मयूरमुख्यां क्रिकलासकांश्च ।

स्वप्ने शुचारोहति मल्लकोन् सः

शुष्कां द्रुमां पश्यति धूमदग्धान् ॥ ९ ॥

कासश्वासो भक्तवैरं ज्वरश्च

रक्ताङ्गत्वं कण्ठभेदः स्वराणाम् ।

षड्रूपस्मिन् राजयक्ष्माख्यरोगे

चिह्नं प्रोक्तं सुश्रुताद्यैर्भिषग्भिः ॥ १० ॥

शूलञ्च स्वरभेदश्च सङ्कोचश्च मरुद्भवः ।

रक्तागमोऽतिसारश्च ज्वरो दाहश्च पित्ततः ॥ ११ ॥

वमन, मुखसे कफ गिरना, नेत्र सफेद होजाना और मांस खानेकी इच्छा होना ये लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

जो रोगी स्वप्नमें बंदर, गिद्ध, तोते, मोर, गिरगट और शाखोंके ऊपर चढ़कर कहीं को जाय और जले हुये वृक्ष धुयेंसे भरे देखे उसे जानेकी राजयक्ष्मा रोग होगा ॥ ९ ॥

शूल, खांसी, सांस, भोजन करनेकी इच्छा न होना, शरीरमें लालचिह्न होने और स्वरभेद सुश्रुतादि ऋषियोंने यही छः चिह्न राजयक्ष्मा रोगके लिखे हैं ॥ १० ॥

वायुसे शूल, स्वरभेद और शरीर का सङ्कोच, पित्तसे, मुख से रुधिर गिरना, अतीसार, ज्वर और दाह और कफसे खांसी,

कासो भक्तारुचिश्चैव कण्ठध्वंसस्तथैव च ।
शिरसः परिपूर्णत्वं विज्ञेयाः कफकोपजाः ॥ १२ ॥
पूर्वोक्तैः षड्भिरेतैर्वा एकादशभिरन्वितम् ।
त्यजेद् यक्ष्मान्वितं वैद्यो यदीच्छेदात्मनोभवम् ॥ १३ ॥
शोकव्यवायव्यायामस्मार्गवायुक्षयशोकजाः ।
उरःक्षतेङ्गवाशैव केचित् शोषा उदीरिताः ॥ १४ ॥
मैथुनोत्थस्तु शुक्रस्य क्षयलक्षणसम्भितः ।
क्षीयन्तेऽथ क्रमात्तस्य पाण्डुदेहस्य धातवः ॥ १५ ॥
शोकशोषान्वितस्तद्वत् जराशोषी च दुर्बलः ।

भोजनमें अरुचि, स्वरभेद, शिरका भारीपन ये लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

पहिले कहे छः लक्षण अथवा ग्यारह लक्षण यक्ष्मा रोगमें देखकर अपना कल्याण चाहनेवाला वैद्य रोगीको चिकित्सा न करे अर्थात् यह रोगी असाध्य है ॥ १३ ॥

अनेक वैद्योंने शोक, मैथुन, परिश्रम, मार्गमें अधिक चलना, बुढ़ापा, हृदयमें घाव होना आदि कारणोंसे भी क्षयरोग की उत्पत्ति लिखी है ॥ १४ ॥

जो क्षयरोग अधिक मैथुन करनेसे उत्पन्न होता है उसमें शुक्रक्षयके सब लक्षण दिखाई देते हैं। क्रमसे उस रोगीके सब धातु क्षीण होजाते हैं और रोगीका शरीर पीला होजाता है ॥ १५ ॥

जो मनुष्यको शोकसे क्षीण होता है उसमें भी ऊपर लिखे

कासश्वासारुचिग्लानिवैवर्ण्यादिसमन्वितः ॥ १६ ॥
शुष्कानन: शुष्ककण्ठः शुष्कच्छविरतीव च ।
प्रसुप्तगात्रो भूयिष्ठं मार्गशोषी श्रमान्वितः ॥ १७ ॥
व्यायामशोषी चैवैभिर्लिङ्गैर्युक्तो जराद्विना ।
उरःक्षतकृतैश्चैव चिह्नैः सर्वैः समन्वितः ॥ १८ ॥
यस्य रक्तक्षयाच्छोषो भुक्तस्यापि च यन्त्रणात् ।
स्थितस्याथवा जन्तोस्तस्यासाध्यः प्रकीर्त्तितः ॥१९॥
अभिघातादुरो यस्य स व्रणन्तु भवेदथ ।
तस्मिन् व्रणे तदा श्लेष्मा पूयो रक्तञ्च गच्छति ॥२०॥
अतएव हि निष्ठीवेद् रक्तं पीतमथारुणम् ।
सितं वाऽथासितं वापि कष्टाद् दुर्गन्धसंयुतम् ॥ २१ ॥

लक्षण होते हैं बुढ़ापेसे क्षीण होनेसे मनुष्य दुर्बल खांसी, सांस, अरुचि, ग्लानि आदिसे व्याकुल रहता है और श॰॰र का रङ्ग बदल जाता है। मार्गमें चलने से क्षीण हुवा मनुष्य परिश्रम से व्याकुल रहता है। उसके मुख, कण्ठ और शरीर सूख जाते हैं और शरीर फट जाते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

जिस मनुष्य को रुधिर क्षीण होनेसे या भोजनमें दोष होने से अथवा हृदय में घाव होनेसे राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है उसे असाध्य जानो ॥१९॥

जिस मनुष्य के हृदय में चोट लगकर घाव होजाता है और उस घाव में वायु और कफ पीब उत्पन्न कर देता है और रुधिर भी रहता है उसहीसे रोगीको रुधिर सहित लाल, पीला, सफेद, काला, दुर्गन्धि युक्त और कष्ट से थूक आता है। हृदयमें

बद्धः सन्दह्यते चास्य दुर्गन्धश्वाससंयुतः ।
भिन्नस्वरो भिन्नवर्णो भक्तारुचिनिपीड़ितः ॥ २२ ॥
केचिदाहुः क्षयाच्छोषो कारणैर्भिन्न एव हि ।
न तत्र क्षयचिह्नानां सर्वेषां सन्निपातनम् ॥ २३ ॥
अतएव क्षयास्तेऽपि भिषग्वर्य्यैरुदीरिताः ।
चिकित्सितन्तु क्षयवत्तेषां धातुक्षयात्मतम् ॥ २४ ॥
अतीसारान्वितं क्षीणं शूनमुष्कोदरं नरम् ॥ २५ ॥
अत्यन्तभोजिनञ्चैव दीप्ताग्निं यक्ष्मिणन्त्यजेत् ॥२६॥

अथ चिकित्सा ।

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ।

जलन बनी रहती है, श्वांस में दुर्गन्धि आती है, स्वर फूटे हुये कांसेके बरतनके समान हो जाता है, शरीरका रङ्ग मलीन हो जाता है और अन्न खाने की इच्छा नहीं होती ॥ २०—२२ ॥

किसी २ आचार्य्य के मत में शोष क्षय से अलग भी लिखा है परन्तु उस शोष में भी क्षय होके कुछ २ लक्षण दिखाई देते हैं और क्रमसे धातु क्षीण होते चले जाते हैं इस लिये उसे भी क्षय ही कहना उचित है ॥ २३ ॥ २४ ॥

जो राजयक्ष्मारोगी अतिसारसे व्याकुल हो, जिसके अण्ड-कोष सूख गये हों, अधिक भोजन करता हो और जिसकी अग्नि तेज हो वैद्य उसे असाध्य जानकर छोड़ देय ॥२५॥२६॥

आगे राजयक्ष्मा की चिकित्सा लिखते हैं ।

राजयक्ष्मारोग में धान, साठी, जौ, गोहूं और मूंग आदि

मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यतां ॥२७॥
शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि (१) विधानवित् ।
दद्यात् क्रव्यादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ २८ ॥
दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यन्न कर्षणम् (२) ॥ २९ ॥
बलिनो बहुदोषस्य पञ्चकर्माणि कारयेत् ।
शोषिणः क्षीणदेहस्य तत्कालं स्याद्विषोपमम् ॥३०॥
शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवनम् ।
तस्माद्यत्नेन संरक्षेत् यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ३१ ॥

अर्थ । मद्य, जङ्गलीजन्तु, पक्षी और हरिनोंका मांस पथ्य है ॥२७॥

बुद्धिमानवैद्य शोषरोग में दुर्बल रोगीको मांस खानेवाले मांस खिलावे, इसरोग में विशेष कर ऐसा पथ्य देना चाहिये, जिस से मांस और बल बढ़े ॥ २८ ॥

यदि दोष अधिक बढ़े हों, तो वमन या विरेचन दे, परन्तु स्नेह और स्वेदन के पीछे ऐसे वमन विरेचन दे, जिससे बल न घटने पावे ॥ २९ ॥

बलवानरोगी को शुद्ध होने के लिये पांचो कर्म करै, परंतु दुर्बलरोगी पञ्चकर्म करने से रोगी विषखाने के समान मर जाता है ॥ ३० ॥

यह नियम है कि बलका आधार वीर्य्य है और मलजीवन का आधार है, अर्थात् बिना वीर्य्यके बल नहीं हो सक्ता और

(१) सुपक्वानि । (२) यन्न कर्षणम् ।

...रा वर्तकपिच्छाग कुरङ्गाणां पृथक् पृथक् ।
...मांसचूर्णमजाक्षीरैः पीतं क्षयहरं परम् ॥ ३२ ॥
...कुसुम रसलीढं क्षयं नयति गजवलामूलम् ।
...धेन केवलेन च वायसजङ्घानिपीतैव ॥ ३३ ॥
...र्करा मधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन् क्षयी ।
...राशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके (१) ॥३४॥
...मितोपलातुगाक्षीरी पिप्पली बहुला त्वचः ।
...द्धं द्विगुणितं लिहयेत् क्षौद्रसर्पिषा ॥ ३५ ॥

...सके मनुष्य जो नहीं सक्ता, इस लिये राजयक्ष्मारोग में ... अनेक ... करके वीर्यकी रक्षा करै और मलको भी क्षीण ... है ॥ ३१ ॥

...तर, बकरा और हरिण का मांस सुखाकर, चूर्ण ... फिर बकरी के दूधके सङ्ग खाने से, राजयक्ष्मा दूर हो ... है ॥ ३२ ॥

गुलसकरीकी जड़, घी, फलोंकी रस में मिलाकर पीनेसे ... दूध के सङ्ग केवल काकजङ्घा पीने से राजयक्ष्मा रोग दूर होजाता है ॥ ३३ ॥

अथवा शक्कर और घी मिलाकर मक्खन अथवा घी और शहद खानेसे घोर क्षीण राजयक्ष्मारोग दूर हो जाता है, परन्तु घी और शहद के विषमभाग होने चाहिये रोगी दूध पीये ॥३४

मिश्री, वंशलोचन, पीपल, इलायची और तज इनको, अन्तमे

(१) विषमभागे ।

चूर्णं वा प्राशयेदेतत् श्वासकासक्षयापहम् ।
सुप्तजिह्वारोचकिनं मन्दाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥ ३६ ॥
हस्तपादांश दाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्द्ध गे ॥ ३७ ॥
इति सितोपलादिलेहः ।

लवङ्ग कक्कोलमुशीर चन्दनं
नतं सनीलोत्पलजीरकं समम् ।
त्रुटिः सकृष्णागुरुभृङ्गकेशरं
कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुदम् ॥ ३८ ॥

दुगुनी अर्थात् तज एकभाग, इलायची दो भाग, पीपल चार-भाग, वंशलोचन आठभाग और मिश्री सोलहभाग इन का चूर्ण लेकर घी और शहतके सङ्ग खानेसे सांस, खांसी, क्षय, मन्दाग्नि, पसुली की पीड़ा, हाथ, पैरकी जलन, ज्वर, ऊपर को चलनेवाला रक्तरोग दूर होजाते हैं और जिसकी जिह्वाके रसका ज्ञान न रहा हो, इसके खाने से उसे रस ज्ञान हो जाता है, इसका नाम सितोपलादिलेह है ॥ ३५ ॥ ३७ ॥

लौंग, शीतल चीनी, खस, चन्दन, तगर, नीलाकमल, जीरा, छोटी इलायची, पीपल, अगर, तज, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जटामासी, मोथा, अनन्तमूल, जायफल और वंशलोचन ये सब समान और आठ गुनी मिश्री डालकर चूर्ण बनावे, इस चूर्ण के खानेसे, तीनों दोष, हृद्विबन्ध, तमक, गलग्रह, खांसी हिचकी, अरुचि, यक्ष्मा, पीनस, गुल्म, प्रमेह, ग्रहणी, अतिसार, भगन्दर और अर्बुद रोग दूर हो जाते हैं, रुचि बढ़ती है, संतोष होता है; अग्नि, बल और वीर्य्य बहुत बढ़जाते हैं ।

अहीन्द्र (१) जातीफलं वंशलोचना
सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम्।
अरोचकं तर्पणमग्निदीपनं
बलप्रदं वृष्यतम त्रिदोषनुत्॥ ३८॥
उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं
सकासहिक्काऽरुचियक्ष्मपीनसम्।
प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सत्वरं
ग्रहण्यतीसारभगन्दरार्बुदम्॥ ४०॥

नतं तगरपादुका पत्रं तेजपत्रं त्रुटिः सूक्ष्मैला भृङ्गं गुडत्वचं नलदं जटामांसी अहीन्द्रोऽनन्तमूलं सिताष्टभागं शर्कराष्टभागं मिलितचूर्णात् शर्करायाः अष्टगुणोभागः इति तु पैत्तिके प्रथमभागापेक्षया इत्यन्ये॥ ४१॥

इति लवङ्गादिचूर्णम्॥

इस चूर्णमें नतशब्दका अर्थ तगर, त्रुटीका अर्थ छोटी इलाची, भृङ्गका अर्थ तज, नलदका अर्थ जटामासी और अहीन्द्र का अर्थ अनन्तमूल है, सिता अर्थात् शक्कर जो आठ गुनी डाली जाती है, इसमें किसी किसी वैद्यका यह मत है कि यह भाग पित्तसे उत्पन्न हुई राजयक्ष्मा के लिये है, अर्थात् पित्तोत्पन्न राजयक्ष्मा में आठवां भाग शक्कर डालनी चाहिये, इसका नाम लवङ्गादि चूर्ण है॥॥ ३८॥॥ ४१॥

(१) अनन्तमूलम् आ॰ वै॰ च॰।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा (१) ।
यथोत्तरं भागवृद्धा त्वगेले चार्द्धभागिके ॥ ४२ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा (२) चात्र प्रदेया सितशर्करा ।
श्वासकासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ ४३ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोषज्वराऽपहम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढ़वातानुलोमनम् ॥ ४४ ॥
कल्पयेद् गुडिकाञ्चैतत् चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ।
गुडिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता ॥ ४५ ॥
पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभाया वंशलोचनाम् ॥ ४६ ॥

तालीशपत्र, सोंठ, मिर्च, पीपल, वंशलोचन ये सब क्रमसे, पहिली से दूसरी दुगुनी, इलायची और तज पहिले भागकी अपेक्षा आधा आधा भाग, पीपलसे आठगुणी शक्कर डालकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णके खानेसे, श्वास, खांसी, अरुचि, मन्दाग्नि, हृद्रोग, ग्रहणी, पिलही, शोष, ज्वर, वमन, अतीसार, शूल, बिगड़ा हुआ वायु आदि रोग दूर होजाते हैं, इन्हीं सब औषधियोंको मिश्री की चाश्नी में मिलाकर गोली बनावे, उस गोली के खानेसे, पित्तसे उत्पन्न हुवे रोग दूर होजाते हैं, कोई कोई वैद्य शुभा शब्दका अर्थ वंशलोचन बतलाते हैं, परन्तु ये पित्तसे उत्पन्न हुये रोगों हीं में दिया जाता है, अन्यथा शुभा शब्दको पीपलका विशेषण मानकर उत्तम पीपल यही अर्थ करना

(१) वंशलोचना ।

(२) पिप्पल्या अष्टगुणा पिप्पल्यगुणा न तु मिलितस्य वाष्टगुणा पूर्वोक्तभागविरोधात् ।

त्वगेलैं प्रथमभागस्यार्द्धभागिके शुभेति पिप्पल्या।
द्विगुणा वंशलोचनापक्षे वंशलोचना यथोत्तरभागा ॥ ४७ ॥

इति तालीशाद्यो मोदकः।

छागशकृद्रसमूत्रक्षीरैर्दध्ना च साधितं सर्पिः।
सक्षारं यक्ष्महरं कासश्वासोपशान्तये परमम् ॥४८॥

इति अजापञ्चघृतम्।

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम्।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ ४९ ॥
जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च।

चाहिये, शुभाशब्दसे वंशलोचन अर्थ पक्षमें वंशलोचन भी पीपल से दुगुना डाले, तेज और इलायची पहिले भागकी अपेक्षा आधा आधा भाग डाले. गोली चूर्ण से बहुत हल्की होती है, इसका नाम तालीशादि चूर्ण वा तालीशादिमोदक है ॥४२॥४७॥

बकरीका दूध, मूत्र, विष्टाका रस, दही और बकरी हीका घी, इनको खार डालकर पकावे, इस घीके खाने से राजयक्ष्मा, खांसी और सांस दूर हो जाते हैं, इसका नाम अजापञ्च घृत है ॥ ४८ ॥

बकरे का मांस, बकरी का दूध, बकरी का घी और शक्कर खानेसे, बकरियों के बीच में रहने से और बकरियों के बीच सोने से, राजयक्ष्मा रोग दूर हो जाता है ॥ ४९ ॥

जीवन्ती (शाकविशेष) जेठीमधु, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर,

शटी पुष्करमूलञ्च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम्॥ ५० ॥
नीलोत्पलं त्वामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम्।
पिप्पलीञ्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत्॥५१॥
एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम्।
रूपमेकादशविधं सर्पिरग्र्यं व्यपोहति॥ ५२ ॥
इति जीवन्त्याद्यं घृतम्।
छागमांसतुलां गृह्य साधयेत्त्वल्लनेऽम्भसि।
पादशेषेण तेनैव सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत्॥ ५३ ॥
ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा।
काकोली क्षीरकाकोली कल्कैः पृथक् पलोन्मितैः ५४
सम्यक् सिद्धेऽवतार्य्यैतच्छीते तस्मिन् प्रदापयेत्।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं तथा॥ ५५ ॥

पुष्कर मूल, कटहली, गोखरू, खरहटी, नीलाकमल, आंमला, त्रायमाणा, जवासा और पीपल, इन सबको सम (भाग) पीस कर, घीमें डालकर पकावे, इस घीके खाने से अनेक रोगोंके सहित ग्यारहों लक्षण युक्त, घोर राजयक्ष्मारोग दूर हो जाता है, इस का नाम जीवन्त्यादि घृत है॥ ५० ॥ ५२ ॥

एकतुला बकरे का मांस लेकर एकद्रोण पानी में पकावे, जब पकते पकते चौथाई पानी रह जाय, तब उतार-कर छानले, फिर उसमें एक प्रस्थ घी, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, और क्षीरकाकोली इनको एक एक पल डालकर पकावे, फिर उतारकर ठण्ढा होने पर आठ पल शक्कर और एक कुड़व शहत मिलावे,

पलं पलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुर्जयम्।
क्षतक्षयञ्च कासांश्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ५६ ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात् सुदारुणम्।
बल्यं मांसकरं वृष्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ५७ ॥
पलमिति पूर्वयुगाभिप्रायः इदानीन्तु कर्षमानं पिबेत्
॥ ५८ ॥

इति छागलाद्यं घृतम्॥

चन्दनागुरुतालीशनखमञ्जिष्ठपद्मकाः।
मुस्ताकन्तु शटी लाक्षा हरिद्रे रक्तचन्दनम् ॥ ५९ ॥
एषां प्रतिपलैश्चूर्णैस्तैलाढकपाकं पचेत्।
भार्गीरसं कण्टकारी वाट्यालकगुडूचिका ॥ ६० ॥

फिर राजयक्ष्मा रोगी प्रतिदिन प्रातःकाल एकपल खाय. इस से घोर राजयक्ष्मा खांसी, क्षत क्षय, पसुरी की पीड़ा, अरोचक, स्वरभेद, हृद्रोग और भयानक सांस दूर होजाता है. इस में जो एक पल पीनेको लिखा है यह पहिले युगका प्रमाण है, इस समय केवल एकही कर्ष पीना चाहिये इसका नाम छागलादि घृत है ॥ ५३ ॥ ५८ ॥

चन्दन, अगर, तालीश, नख, मजीठ पद्माख, मोथा, कचूर, लाख, हल्दी, दारु हल्दी और लाल चन्दन, इन सबको एक एक पल लेकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णको आधे कुड़वतेल में डालकर पकावे पकाते समय भारङ्गी कटहली, बाट्यालक और गुरिचका सौ सौ पल रस डालदे, जब पकचुके तब उतार

तथा पलशतक्वाथे समभागे जडीकृते ।
पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं राजयक्ष्मविनाशनम् ॥ ६१ ॥
कासघ्नं गरदोषघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
पापालक्ष्मीप्रशमनं ग्रहदोषविनाशनम् ॥ ६२ ॥

इत्यल्पचन्दनादितैलम् ॥

चन्दनाम्बुनखं वाप्यं यष्टीशैलेयपद्मकम् ।
मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्येला पूतिकेशरम् ॥ ६३ ॥
पत्रं तैलं मुरा मांसी कक्कोलं वनिताम्बुदम् ।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ ६४ ॥
त्वग्रेणुनालुका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।
लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ ६५ ॥

कर छानले, फिर राजयक्ष्मा, खांसी और विष दोषोंमें दे इससे बल, तेज और अग्नि बहुत बढ़जाते हैं पाप दरिद्र और ग्रह दोषों का नाश हो जाता है, इसका नाम लघु चन्दनादि तैल है ॥ ५८ — ६२ ॥

चन्दन खस, नख, कूठ, जेठीमधु छारछबीला, पद्माख, मजीठ, साल, देवदारु, करंजवा, कचूर, इलायची, नागकेशर, तेज-पात, मुरहर, जटामांसी, शीतलचीनी, प्रियङ्गु मोथा, हलदी, दारुहलदी दोनों सरिवन, कुटकी, लौंग, अगर केशर, तज, रेणुका और नालुका इन सबको तेल में डालकर पकावे पकाते समय तेलके समान लाखका रस और चौगुना मठा डाल दे, इस से

अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम्।
आयुःपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्॥ ६६॥

इति चन्दनादितैलम्॥

वासकस्वरसप्रस्थे सिताष्टपलोन्मितम्।
सर्पिषो द्विपलं दत्त्वा पिप्पलीद्विपलं तथा॥ ६७॥
पचेत् लेहत्वमायाते शीते मधु पलाष्टकम्।
दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लिह उत्तमः॥ ६८॥
निहन्ति राजयक्ष्माणं कासं श्वासं सुदारुणम्।
पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा॥ ६९॥
स्वकोयोरसः स्वरसस्तद्भावि शुष्कां वासकवल्कलम्

ग्रहदोष, अपस्मार, ज्वर, उन्माद और दरिद्र आदि रोग दूर हो जाते हैं, बल, वर्ण, अग्नि और पुष्टोको बहुत वृद्धि होती है, यह तैल वशीकरण भी है, इसका नाम चन्दनादि तैल है॥

६३॥६६॥

वासेका रस एक प्रस्थ, चीनी आठपल, घी दोपल और दो पल पीपल डालकर पकावे, जब पकते पकते अवलेह होजाय तब उतार कर ठण्डाकर लेय, फिर आठपल शहद डालकर रोगीको मात्राके अनुसार खिलावे, इससे राजयक्ष्मा, खांसी, घोर सांस, पसुरी को पीड़ा, हृदय शूल, रक्तपित्त, और ज्वर, रोग दूर होजाते हैं।

स्वरस उसे कहते हैं, जो गीली औषधि को कूटकर कपड़े

अष्टगुणे जले पक्त्वा चतुर्थावशेषं कृत्वा रसो ग्राह्यः ॥१

इति वासावलेहः ॥

शतं संगृह्य वासायास्तोयद्रोणे विपाचयेत् ।
चतुर्भागावशेषेऽस्मिन् शर्करायाः पलं शतम् ॥ ११ ॥
त्रिकटु त्रिपु गन्धिश्च कट्फलं मुस्तकं गदम् ।
जीरकं पिप्पलीमूलं रचनी चविका शुभा ॥ १२ ॥
कटुका श्रेयसी चैव तालीशं सधनीयकम् ।
कार्षिकं पृथगेतेषां क्षिपेन्मधुपलाष्टकम् ॥ १३ ॥
तद्यथाग्निबलं लिह्यात्कृतशीताम्बुपानतः ।
निहन्ति राजयक्ष्माणं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ १४ ॥

में छानकर रस निकाला जाय, यदि वह न मिले तो सूखे वासेको छानको कल्क बनाकर आठ गुणे पानी में .काकर चौथाई रहने पर छान कर रस निकाले और उसे . स्वरसके स्थान पर व्यवहार करे, इसका नाम वासावलेह है ॥९॥१०॥

सौपल वासा लेकर एक द्रोणपानी में पकावे, जब चौथाई रहजाय तब उतार कर छानले, फिर सौपल शक्कर डालकर पकावे, उस में सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात, इलायची, कायफर, मोथा, कूट, जीरा, पिपलामूल, जमालगोटाकी जड़, चाई, वंसलोचन, कुटकी, इलायची, तालीश और धनियां इन सब को एक एक कर्ष लेकर डाले, जब ठण्डा होजाय, तब आठपल शहत डालदे, फिर अग्नि और बलके अनुसार रोगीको खिलावे, ऊपर से पका हुआ ठण्डा पानी पिलावे, इससे राजयक्ष्मा, रक्त-

वातिकं पैत्तिकं कासं श्वासञ्चैव सुदारुणम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वमिञ्चैवारुचिं ज्वरम्॥ ७५॥
अश्विभ्यां निर्मितो ह्येष बृहद्वासावलेहकः॥ ७६॥
इति बृहद्वासावलेहः॥

अलक्तकरसैः क्षौद्रं रक्तवान्तिहरं परम्।
अलक्तकरस २ तोला मधुमाशा ४ पेयम्॥ ७७॥
इत्यलक्तकरसः।

यष्ट्याह्वं चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरप्रपेषितम्।
क्षीरेणालोड्य पातव्यं रुधिरच्छर्दिनाशनम्॥ ७८॥
इति यष्ट्यादियोगः।

पञ्चविंशत्पलं ग्राह्यं बृहत्योर्वासकस्य च।

पित्त, क्षतक्षय, वात और पित्त से उत्पन्न हुई खांसी और सांस, हृदयका शूल, पसुरीका शूल, वमन और अरुचि रोग दूर हो जाते हैं, अश्विनीकुमारोंने इसका नाम बृहद्वासावलेह लिखा है॥ ७१॥ ७६॥

दो तोला लाखके रसमें चारमाशा शहत मिलाकर पिलानेसे रक्तका वमन दूर होजाता है॥ ७७॥

जेठीमधु और चन्दन को दूध में पीसकर, पीनेसे रुधिरका वमन दूर होजाता है॥ ७८॥

पच्चीस पल छोटी कटेली, पच्चीस पल बड़ी कटेली,

भार्ग्याश्च पञ्चविंशच्च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ७९ ॥
पादशेषे रसे तस्मिन् खण्डप्रस्थं समारपेत् ।
कुडवार्द्धञ्च हविषो मधुनः कुडवं तथा ॥ ८० ॥
मृताभ्रकं पलञ्चैकं कणाचूर्णं चतुःपलम् ।
कुष्ट तालीशपत्रञ्च मरिचं तेजपत्रकम् ॥ ८१ ॥
मुरा मांसीमुशीरञ्च लवङ्गं नागकेशरम् ।
त्वग्भार्गी बालकं मुस्तं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ८२ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं लेहीभूते विनिःक्षिपेत् ।
हन्ति यक्ष्मागमत्युग्रं कासं पञ्चविधं तथा ॥ ८३ ॥
रक्तपित्तं क्षयं श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च ।
बालानामपि वृद्धानां तरुणानां विशेषतः ॥ ८४ ॥
पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलमम्लपित्तं वमिं तथा ।

पचीसपल वासा और पचीसपल बम्हनेटी को, एक [illegible] पानी में पकावे, जब चौथाई पानी रहजाय, तब एक प्रस्थ चीनी, आधाकुड़व घी डाले, अभ्रक एक पल, पीपल चारपल, कूट, तालीशपत्र मिर्च, तेजपात, मुरहर, जटामासी, खस, लौंग, नागकेशर तज, भारङ्गी, नेत्रबाला और मोथा इन सब को एक एककर्ष लेकर चूर्ण बनावे और उस अवलेहमें डाल दे, जब ठण्ढा होजाय, तब आधा कुड़व शहत मिलादे, इससे घोर राजयक्ष्मा, पांचो प्रकार की खांसी, रक्तपित्त, क्षय, सास ज्वर, पिलही, पसुरी की पीड़ा, हृदयशूल, अम्लपित्त और वमनरोग दूर होजाते हैं, इसको बालक, बूढ़े और तरुण सब कोई खाय

बृहद्वासावलेहोऽयं महादेवेन निर्मितः ॥ ८५ ॥

इति बृहद्वासावलेहः ।

तुलामादाय वासाया जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन् खण्डं पलशतं न्यसेत् ॥ ८६ ॥
शनैर्मृद्वग्निना सम्यक् सिद्धे तत्र प्रदापयेत् ।
त्रिकटु त्रिपु गन्धञ्च काटफलं मुस्तमेव च ॥ ८७ ॥
कुष्ठं कम्पिल्लकं प्रवं तज्जीरञ्च कृष्णजीरकम् ।
त्रिवृता पिप्पलीमूलं चव्यं कटुकरोहिणी ॥ ८८ ॥
शिवा तालीशधन्याकं प्रत्येकञ्च द्विकार्षिकम् ।
चूर्णयित्वा क्षिपेत्तत्र शीते मधुपलाष्टकम् ॥ ८९ ॥
अस्य मात्रां ततो लीढ्वा तोयमुष्णं पिबेदनु ।

सके हैं, भगवान् शिवने इस का नाम बृहद्वासावलेह लिखा है ॥ ७८ ॥ ८५ ॥

एकतुला वासा लेकर एकद्रोणपानी में पकावे, जब पकते पकते चौथाई पानी रहजाय, तब उतार कर छानले, फिर सौपल चीनी डालकर मन्द मन्द अग्नि में धीरे धीरे पकावे, जब पकते पकते अवलेह होजाय, तब उस में, सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात, इलायची, कायफल, मोथा, कूट, कबीला, सफेदजीरा, कालाजीरा, निसोत, पीपलामूल, चाभ, कुटकी, आमला, तालीशपत्र और धनियां इन सबको दो दो कर्ष लेकर डाले, ठण्डा होने पर आठपल शहत डालदे, फिर मात्रा के अनुसार खिलाकर, ऊपर से गर्मपानी पिलादे, इससे सब

सर्वकासविकारेषु स्वरभङ्गे विशेषतः ॥ ८० ॥
राजयक्ष्मणि दुःसाध्ये वातश्लेष्माश्रये तथा ।
आनाहे वह्निमान्द्ये च हृद्रोगे च चतक्षये ॥ ८१ ॥
मूत्रकृच्छ्रे च कृच्छ्रे च शस्तोऽयं लेह उत्तमः ॥ ८२ ॥

इति वृहद्वासावलेहः ।

उपद्रवा ज्वराद्यास्ते साध्याः स्वैः स्वैश्चिकित्सितैः ।
तेषु शान्तेषु रोगेषु यक्ष्माणमुपाचरेत् ॥ ८३ ॥
बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्य्यः पाटला बला ।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा वृहतीद्वयम् ॥ ८४ ॥
शृङ्गी त्वामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरुः ।
अभया चामृता ऋद्धीर्जीवकर्षभकौ शटी ॥ ८५ ॥

प्रकारकी खांसी, स्वरभङ्ग, दुःसाध्य वात कफान्वित राजयक्ष्मा, आनाह, मन्दाग्नि, हृद्रोग, क्षतक्षय, मूत्रकृच्छ्र और कृच्छ्ररोग दूर होजाते हैं, इसका नाम वृहद्वासावलेह है ॥

॥ ७६ ॥ ८२ ॥

राजयक्ष्मा में जो ज्वर आदि उपद्रव हों उन्हें उन की चिकित्सा से पहिले शान्त करके तब राजयक्ष्मा की चिकित्सा करें ॥ ८३ ॥

बेल, अरनी, सोनापाढ़ा, खम्भारी, पाटला, खरैटी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पृष्टपर्णी, शालपर्णी, पीपल, गोखरू, छोटी-कटेली, बड़ीकटेली, काकड़ासिङ्गी, आमला, दाख, जीवन्ती, पुष्करमूल, अगर, हर्र, गुरिच, ऋद्धि जीवक, ऋष-

मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दने।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥९६॥
एषां पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य च।
पञ्च दद्यात्तदैकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ९७ ॥
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम्।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः।
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्वा चार्द्धतुलां भिषक् ॥ ९८ ॥
मत्स्यण्डिकायाः पूतायाः लेहवत्साधु साधयेत्।
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् ॥ ९९ ॥
चतुःपलं तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा।
पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात्।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायने ॥ १०० ॥

भक, कचूर, मोथा, गधापूर्ना, मेदा, छोटीइलायची, कमल, चन्दन, बिलाई कन्द, बासेकी जड़ काकोली और कव्वाटोटी, ये सब एक एकपल, पांच सौ आमले इन सबको एक में मिलाकर एकद्रोण पानीमें पकावे, जब जाने कि औषधियोंका रस निकल चुका, तब उस रसको निकालकर आमलों को गुठली निकालकर, उन आमलों को बारहपल घी और तेल में भूनले, फिर आधीतुला मिश्री डालकर मन्द२ अग्निमें धीरे२ पकावे, फिर ठण्डा होनेमें छः पल शहत डालदे, फिर एकएक पल तज, तेजपात, इलायची और नागकेशर डाले इसके खाने से, खांसी, सांस, स्वरभेद, हृदयरोग, वातरक्त, प्यास, मूत्रदोष

कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते ।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनः ॥ १०१ ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान् दोषांश्चैवापकर्षति ॥ १०२ ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्नभोजनम् ।
अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा ॥ १०३ ॥

मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व-
मायुः प्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं
वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ १०४ ॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगा-
ल्लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात् ।
जराकृतं पूर्वमपास्य रूपं
बिभर्त्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ १०५ ॥

और वीर्यदोष दूर होजाते हैं, क्षीण क्षतयुक्त, बूढ़े और बालकों के बल तथा शरीर बढ़ते हैं, इसको मात्रा बलके अनुसार इतनी दे जिससे भूख न रुकने पावे । इसके खानेसे बुद्धि, स्मरणशक्ति, तेज, नीरोगता, आयु, इन्द्रियों की शक्ति, मैथुन करनेकी इच्छा और बल तथा प्रसन्नता बढ़ती है, यह औषधि रसायन है, इस को खाकर कुटी में रहने से बूढ़ा भी तरुण होजाता है, बूढ़े का रूप नवीन तरुण के समान होजाता है, च्यवन मुनि इसी को खाकर, बूढ़े से तरुण हुये थे, इस में आमला भूनकर डाले

सितामत्स्याण्डलाभे च धात्र्याश्च मृदुभर्जनम्।
चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं भवेत् ॥ १०६ ॥
इति च्यवनप्राशः।

(१) मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलोहघृताभयाः।
घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिना ॥१०७॥
इति यक्ष्मारिलोहम्।

व्योषं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा।
सर्वामयहरो योगः सोऽयं लौहरजोऽन्वितः ॥ १०८ ॥
एष वलः क्षतं हन्ति कण्ठजांश्च गदांस्तथा।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाहुस्तम्भमथार्दितम् ॥१०९ ॥
विन्ध्यवासिनोयोगः।

चीनी या मिश्री डाले, चतुर्गुण जल में पकानेसे, जब चौथाई जल रहजाय, तब प्रायः सब औषधियों का रस निकल आता है, इसका नाम च्यवन प्राश है ॥ ९४ ॥ १०६ ॥

शहत, सोनामाखी, शिलाजीत, बिडङ्ग, लोहा, घी और हर्रे मिलाकर खानेसे और पथ्य भोजन करनेसे घोर राजयक्ष्मा रोग दूर होजाता है, इसका नाम यक्ष्मारिलोह है ॥ १०७ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, शतावर, हर्रे, बहेड़ा, आमला, बरियारा, कङ्घी इन सब में लोहचूर्ण मिलाकर खाने से उरक्षत, कण्ठरोग, घोर राजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ और अर्दितरोग दूर हो जाते हैं, इसका नाम विन्ध्यवासिनोयोग है ॥ १०८॥१०९॥

(१) [illegible]

रास्नातालीशकर्पूरभेकपर्णीशिलाह्वयैः ।
त्रिकत्रयसमायुक्तैर्लौहो यक्ष्मान्तको मतः ॥ ११० ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि वैद्यविवर्जितम् ।
हन्ति कासं स्वराघातं क्षयकासं क्षतक्षयम् ॥ १११ ॥
बलवर्णाग्निपुष्टीनां साधने दोषनाशनः ॥ ११२ ॥
इति यक्ष्मान्तकलौहः ।

शिलाजतुमधुव्योषताप्यलौहरजांसि च ।
क्षीरेण लोहितस्याशु क्षयं क्षयमवाप्नुयात् ॥ ११३ ॥
इति शिलाजत्वादिलौहम् ।

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः ।
नवभागान्वितं लौहं समं सिन्दूरसन्निभम् ॥ ११४ ॥

रास्ना, तालीशपत्र, कपूर, ब्राह्मी, मैनसिल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंमला, तज, तेजपात, इलायची और लोहचूर्ण मिलाकर खाने से, सब उपद्रव युक्त वैद्यों से छोड़ा हुआ, राजयक्ष्मा रोग, क्षयसे उत्पन्न हुई खांसी, क्षतक्षय, स्वरभेद और खांसीरोग दूर होजाते हैं, कुछ दिन साधन करने से बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है, तथा सब दोषोंका नाश होजाता है, इसका नाम यक्ष्मान्तकलौह है ॥ ११०॥ ११२ ॥

सिलाजीत, शहत, सोंठ, मिर्च, पीपल, सोनामाखी और लोहचूर्ण इनको दूधके सङ्ग खानेसे शीघ्र ही क्षय रोग दूर हो जाता है, इसका नाम सिलाजत्वादि लौह है ॥ ११३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंवला, इलायची, जाय-

छागीदुग्धेन संपिष्य वल्लमस्य प्रयोजयेत् ।
मधुना क्षयरोगांश्च हन्त्ययं क्षयकेसरी ॥ ११५ ॥
इति क्षयकेशरी ।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयोः ।
शिलायां खल्लयेत्तावद्यावत्पिण्डं घनं भवेत् ॥ ११६ ॥
जलकर्णीकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत् पुनः ।
सौगन्धिकपलं भृङ्गस्वरसेन सुभावितम् ॥ ११७ ॥
चर्णितं रससंयुक्तमजाक्षीरपलद्वये ।
खल्लितं घनपिण्डन्तु गुडीः स्विन्नकलायवत् ॥ ११८ ॥
कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन् परितोष्य च ।

फल और लौंग, ये सब एक एक भाग और सिन्दूर के समान, पिसालोहा नौभाग, इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर, दोदो रत्तीकी गोली बनावे, शहत के सङ्ग एकगोली खानेसे क्षयरोग दूर हो जाता है, इसका नाम क्षयकेशरी रस है ॥११४॥११५॥

शुद्धपारा एककर्ष लेकर, पत्थरके खरल में डालकर, अरनी और अदरक के रस में पिण्ड होने तक घोटे, फिर कनफोड़ी और मके रसमें भिगोवे और भंगरेके रसामें भीगा एकपल गन्धक डालकर, दो पल बकरीके दूधमें घोटे, जब घुटते घुटते पिण्ड होजाय, तब उड़द के समान गोली बनावे, फिर शिवकी पूजा करके, ब्राह्मणोंको दान देकर भोजन पचने पर एक गोली खाय, फिर औषधि पचने पर जीरा पड़ा मांसका रस खाय, इससे सन्निपात से उत्पन्न हुआ क्षय, खांसी, रक्तपित्त, अरोचक और

जीर्णान्नो भक्षयेदेकां चौरमांसरसाशनः ॥ ११९ ॥
सर्वरूपं क्षयं कासं रक्तपित्तमरोचकम् ।
अपि वैद्यशतस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ १२० ॥
इति रसेन्द्रगुड़िका ।

कुमार्य्या त्रिफलाचूर्णैश्चित्रकस्य रसैः क्रमात् ।
शोधयित्वा पुनाराजीगृहधूमहरिद्रया ॥ १२१ ॥
पक्केष्टकारजोभिश्च बोह्लापत्ररसेन च ।
शृङ्गवेररसेनापि शोधयित्वा पुनः पुनः ॥ १२२ ॥
प्रक्षालनात् पुनः पश्चात् क्षालयेद्वसने घने ।
कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य भावयेद्विजयारसे ॥ १२३ ॥
शिलायां खल्लयेच्चापि यावच्चूर्णत्वमागतम् ॥ १२४ ॥
जलकर्णा काकमाचीरसाभ्यां भावयेत् पुनः ।

अम्लपित्त रोग दूर हो जाते हैं चाहे सौ वैद्योंने रोगीको छोड़ दिया हो, परन्तु इसके खानेसे अच्छा ही होजाता है, इसका नाम रसेन्द्रवटिका है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

दोकर्ष पारेको घीकुमार का रस, त्रिफलेका चूर्ण, चीतेका रस, राई, घरका धुआं, हल्दी, ईंटका चूर्ण, बोल्हा के पत्तोंका रस और अदरक के रस में क्रमसे वारबार शुद्ध करके पानी में धोकर छानले, फिर भांगके रस में भावना देकर, शिल या खरल में पीसे, फिर कनफोड़ी और छोटी मकोय के रस में भावना दे, फिर शुद्धगन्धक एक पल, सुहागा, *आधापल मिर्च, आधापल सोनामाखी, आधापल तूतिया, आधापल हरताल,

सौगन्धिकपलं शुद्धमर्द्धं मरिचटङ्कणम् ॥ १२५ ॥
माक्षिकञ्च शिखिग्रीवं तालकं चाभ्रकं तथा।
एषांस्तु मिलितान् दत्वा भावयेदार्द्रकद्रवैः ॥ १२६ ॥
रक्तिद्वयप्रमाणेन कारयेद्गुडिकां भिषक्।
जीर्णान्नो भोजयेदेकां चारमांसरसाशनः ॥ १२७ ॥
हन्ति कासं क्षयं श्वासं रक्तपित्तमरोचकम्।
पाण्डुक्रिमिज्वरहरं कृशानां पुष्टिवर्द्धनम् ॥ १२८ ॥
आजाकरणमुद्दिष्टमम्लपित्तहरं परम् ॥ १२९ ॥
इति बृहद्रसेन्द्रगुडिका ॥

वज्राभ्रमेकपलिकं पुटनैः सुजीर्णं
धात्री पयोदबृहती शतमूलिकेन्दु।
बिल्वाग्निमन्थजलवामककण्टकारी
ग्रोनाकपाटलिमेनां च समंसमांशाम् ॥१३०॥

आधापल और अभ्रक आधापल, इन सबको मिलाकर अदरक के रस में घोटे और दो दो रत्तीकी गोली बनाले, फिर अन्न पचने पर एक गोली खिलावे, खानेको दूध और मांसका रस दे, इससे खांसी, सांस, क्षय, रक्तपित्त, अरोचक, पाण्डुरोग, अम्लपित्त, क्रमिरोग और ज्वर दूर होजाते हैं, दुर्बल मनुष्य बहुत बलवान् होजाता है और वीर्य भी बहुत बढ़जाता है, इसका नाम बृहत्रसेन्द्र वटिका है ॥ १२१—१२९ ॥

हीरा एकपल, अभ्रक एक पल इनमें आंच देकर भस्म करे भस्म करे, इस भस्म में आंमला, मोथा, कटइली, शतावर

संमर्दितं पलमितैः पृथगेकशश्च
गुञ्जासमं सुवलितं वटिका कृतश्च ।
यत्नात्तयो सकलशोथबलासपित्तं
श्वासं समीरमरुचिं कसनाङ्गसादम् ॥१३१॥
शोथं स्वरक्षयमजीर्णमुदरशूलं
मेहं ज्वरं विषमृगोग्रहपाण्डुहिक्काः ।
कार्श्यं क्रिमिं बलविनाशनमम्लपित्तं
प्लीहामयं सह हलीमकमस्रगुल्मम् ॥१३२॥
तृष्णामयानिलचयं ग्रहणीं प्रदुष्टां
विस्फोटकुष्ठनयनास्य शिरोगदांश्च ।
मूर्च्छां वमिं विरसतां विनिहन्ति सद्यः
कल्याणसुन्दररसमिदं बलदं सुहृद्यम् ॥ १३३ ॥

अडूस, बेल, अरनी, खस, बासा, बड़ी कटेहली, सोनापाठा, पाटला और बरियारा इनका एक एक पल रस निकालकर घोटे फिर एक एक रत्ती की गोली बना कर रोगी को खिलावे, इससे सब प्रकारके शोथरोग, खांसी, पित्त, श्वास, वायु, अरुचि, शरीरकी पीड़ा, कफ, शोथ, स्वरभेद, अजीर्ण, उदर, शूल, प्रमेह, ज्वर, विषदोष, हृद्रोग, ग्रहरोग, पाण्डु, हिचकी, दुर्बलता, कृमिरोग, अम्लपित्त, पिलही, हलीमक, रक्तगुल्म, प्यास, आमवात बिगड़ा हुआ ग्रहणीरोग, विस्फोट, कुष्ठ, आंख और शिरके रोग, मूर्च्छा, वमन और मुखकी विरसता आदि रोग दूर हो जाते हैं, इससे बुद्धि बढ़ती है इस

सेव्यं रसायनवरं सकलामयानां
नाशाय यक्ष्मनिबर्हं कथितं हरेण ॥ १३४ ॥

इति कल्याणसुन्दराभ्रम्।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्।
कर्पूरं जातिकोषं सजलमिसकणा तेजपत्रं लवङ्गम् ॥
मांसीतालीशचोचं गजकणसयटी धातकी चेति तुल्यम्
पथ्या धात्री त्रिशाणिकैरपि पृथगुरुदेशाणां द्विशाणम्
॥ १३५ ॥

एलाजातीफलाख्यं त्रितितलविधिना। शुद्धगन्धाश्मकोलं
कोलाद्रं पारदस्य प्रदिपदविहितं पिष्टमेकत्र योज्यम् ॥
पानीयेनैव कार्य्याः परिणतचणकाखिन्नतुल्याश्च वट्यः।
प्रातःखादाश्चनसल्लदनु च कियत् शुद्धवैर सपर्णांस् १३६

रसायन औषधियों, यक्ष्मा आदि सबरोग नाश करने के लिये शिवने बनाया था, इसका नाम कल्याण सुन्दराभ्रक है ॥

१३० ॥ १३४

शुद्ध काले अभ्रक का चूर्ण दो पल, कपूर, जावित्री, खस, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तज, गजकण, चकवन और धायके फूल ये सब एक एक शाण, हर, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, और पीपल ये दो दो शाण, इलायची, जायफल, गंधक एककोल शुद्धपारा आधाकोल, इन सबको पीसकर एकमें मिलावे और पानीमें घोटकर चनेके समान गोली बनावे, फिर प्रातःकाल खाकर ऊपरसे थोड़ा सा पदरक और उसका पत्ता खाय और

पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान्
कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजोराजयक्ष्मक्षयञ्च ॥
कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान् ।
छर्दिं शूलाम्लपित्ते तृषमपि महतीं गुल्मजालं विशालम्
॥ १३७ ॥
पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरगरलगदान् पीनसं प्लीहरोगम् ।
हन्यादामाशयोत्थान्कफपवनकृतान् पित्तरोगानशेषान्
वल्ल्या दृष्यश्च सोऽग्निर्गदतरकरः सर्वरोगेषु शस्तः ।
पथ्यं मांसैश्च यूषैर्घृतपरिललितैः गव्यदुग्धैश्च रसैश्च १३८
भोज्यं मिष्टं यथेष्टं ललितनवलयादीयमानं मुदा यत् ।
शृङ्गाराभ्र गा कामायुवतिजनगताभोगयोगादतुष्टः ॥
वर्ज्यं शाकाम्लमादौ दिनकतिचिदथ स्वेच्छयाभोज्यमन्यत्
दीर्घायुः कामरूपी गतगदपलितो मानवोऽस्य प्रसादात्
॥ १३९ ॥

थोड़ामा जल पीवे, इस गोलीमे बिगड़ी हुई अग्नि, ज्वर, पेटके रोग, राजयक्ष्मा, क्षय, खांसी, श्वास, शोथ, नेत्रके रोग, प्रमेह, मेद के दोष, वमन, शूल, अम्लपित्त, घोर प्यास, बड़ा हुआ गुल्म, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, स्थावर और जङ्गम विष, पीनस, पिलही, आमाशयके रोग, कफ, वात और पित्तके सब रोग शीघ्र दूर होजाते हैं, बूढ़ा भी तरुण होजाता है, इसके ऊपर गौका दूध पीना चाहिये स्त्रीयोंके हाथसे दिया घीपड़ा मीठा भोजन करे, खटाई, साग छोड़दे और जो इच्छा हो सो खाय

चोचं गुड़त्वक् कर्पूरादि धातकी पर्य्यन्तानां माष-चतुष्टयोभागः त्रिफला त्रिकटोर्माषद्वयम् एलाजाती-फलगन्धकानां तोलकं रसस्याईतोलकं परिणतचणक-खिन्नतुल्या इति आदौ खिन्ना पश्चात्तुल्या स्नातानु-लिप्तवत् खिन्नाः शुष्का इत्यर्थः ॥ १४० ॥

इति शृङ्गराभ्रम्।

रास्ना तालीशकर्पूरभेकपर्णीशिलाह्वयैः।
त्रिकत्रयसमायुक्तं लौहं यक्ष्मान्तकृन्मतम् ॥ १४१ ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि शम्भोः सुदुर्जयम्।
हन्ति वात स्वराघातं क्षतकासक्षतक्षयम् ॥ १४२ ॥
बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्द्धनं दोषनाशनम् ॥ १४३ ॥

इति रास्नादिलौहम्।

मनुष्य इसके खाने से दीर्घायु कामदेव के समान सुन्दर और तरुण होजाता है। इसमें चावका अर्थ तज है, कपूर से लेकर, धायके फूलतक सब औषधि चार चार मासे, हर्र से लेकर पीपल तक दो दो मासे और इलायची से लेकर गन्धक तक, एक एक तोला और पारा आधा तोला पड़ता है, गोली चनेके समान बनती है और सुखाकर खाई जाती है इसका नाम शृङ्गाराभ्रक है ॥ १३५ ॥ १४० ॥

रासन, तालीशपत्र, कपूर, ब्राह्मी, सिलाजीत, तीनों त्रिक अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, तज, तेजपात, इला-यची और लोहा, इन सबको मिलाकर खानेसे सब उपद्रवोंके

स्याद्रसेन समं हेमसौक्तिकं द्विगुणं ततः ।
गन्धकञ्च समं तेन रसपादन्तु टङ्कणम् ॥ १४४ ॥
सर्वं तद्गोलकं कृत्वा काञ्जिकेन विशोषयेत् ।
भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १४५ ॥
स्वाङ्गशैत्यं समुद्धृत्य देयं गुञ्जा प्रमाणतः ।
मृगाङ्कसंज्ञः संज्ञयो रोगराजनिकृन्तनः ॥ १४६ ॥
रसस्य भस्मना हेमभस्मीकृत्य प्रयोजयेत् ।
गुञ्जा चतुष्टयं चास्य मरिचैर्भक्षयेन्नरः ॥ १४७ ॥
पिप्पलीदशकैर्वाथ मधुना लेहयेद्बुधः ।
पथ्यं मृल्लघुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत् ॥ १४८ ॥

सहित दुःसाध्य, राजयक्ष्मा, वायु, स्वरभेद, क्षत, खांसी और क्षतक्षय का नाश होता है अग्नि बल और पुष्टि बहुत बढ़जाती है। इसका नाम राजादि लौह है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

पारा एक भाग, सोना एक भाग, मोती दो भाग, गन्धक दो भाग, सुहागा चौथाई भाग इन सबको कांजी में घोटकर गोला बना कर सुखा ले, फिर बर्त्तन में नमक भरके बीच में उस गोलेको रख दे और ऊपर से फिर नमक भरदे, फिर उस बर्त्तन को चूल्हे पर चढ़ा कर चार पहर तक पकावे, जब आपसे आप ठण्डा होजाय, तब उतार कर रख ले और रोगी को एक रत्ती खिलावे, तो राजयक्ष्मा रोग दूर होजाता है। इसमें पारेकी भस्मके समान सोने की भस्म डाली जाती है, इसकी मात्रा चाररत्ती की भी है, सङ्ग में दशमिर्च, पीपल और

दध्याज्यं गव्यतक्रं वा मांसमाजं प्रयोजयेत् ।
व्यञ्जनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैश्च हिङ्गुभिः ॥ १४८ ॥
वृन्ताकं तैलबिल्वानि कारवेल्लञ्च वर्जयेत् ।
स्त्रियं परिहरेद्दूरं कोपञ्चापि परित्यजेत् ॥ १५० ॥
सर्वं काञ्जिकेन पिष्ट्वा गोलकं कृत्वा संशोष्य कटोरि-
कायां संस्थाप्य वालुकायन्त्र इव लवणयन्त्रे पचेत् १५१

इति मृगाङ्को रसः ।

रसभस्मत्रयोभागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिला तालकगन्धकम् ॥ १५२ ॥
प्रतिभागद्वयं तत्राप्येकीकृत्य निधापयेत् ।
वराटीं पूरयेत्तेन चाजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥ १५३ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्‌भाण्डे निधापयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वाङ्गशीतलम् ॥१५४॥

ग्रहण दिया जाता है, खानेको हल्का मांस बकरी का दही गायका मट्ठा और बकरेका मांस दे. भोजन घी में पकावे, बहुत खार और हींग न डाले. बैंगन, तेल, बेल, करैला, मैथुन और क्रोध छोड़ दे, इस रसको सब औषधियों को कांजी में पीसकर गोला बनाकर कटोरी में रखकर और सुखाकर वालुका यन्त्रके समान पकावे. इसका नाम मृगाङ्क रस है ॥ १४४ ॥ १५१ ॥

पारेकी भस्म तीनभाग. सोनेकी भस्म एकभाग. तांबेकी भस्म एकभाग, सिलाजीत दोभाग, हरताल दोभाग. गन्धक दो भाग इन सबको एक में मिलाकर कौड़ियों में भरदे. फिर

रसोराजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः ।
दशपिप्पलिकैः क्षौद्रैर्मरिचैः कोलविंशतिः ॥ १५५ ॥
घृतेन दापयेद्वातपित्तश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥ १५६ ॥

इति राजमृगाङ्को रसः ।

निरुत्थभस्मसौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम् ।
त्रिगुणं भस्ममुक्तोत्थं शुल्बपुष्पचतुर्गुणम् ॥ १५७ ॥
मृततापाच्च पञ्चांशं दद्यादत्र भिषक् सुधीः ।
सप्तभागं प्रवालञ्च रसतुल्यञ्च टङ्कणम् ॥ १५८ ॥
सर्वमेकत्र संमर्द्य त्रिदिनं लुङ्गवारिणा ।
तं ततो गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ॥ १५९ ॥
लवणैः पात्रमापूर्य्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत् ।
तन्मुखञ्च मृदा रुद्धा पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १६० ॥

बकरी के दूध में पिसे सुहागे से कौड़ियों का मुख बन्द करके मट्टीके बर्तन में भरदे, फिर उस बर्तनको बन्द करके सुखाले और गजपुट में फूंक दे, जब आपसे आप ठण्डा होजाय, तब पीसकर रख छोड़े, फिर रोगीको राजयक्ष्मारोग में पीपल, शहत और मिर्च में मिलाकर चाररत्ती खिलावे, अथवा सन्नि-पात से उत्पन्न हुये क्षयरोग में बीसकोल घी में मिलाकर दे, इसका नाम राजमृगाङ्क रस है ॥ १५२ ॥ १५६ ॥

सोनेकी भस्म एकभाग, पारेकी भस्म दोभाग, मोतीकी भस्म तीनभाग, तूतिया चारभाग, सोनामाखी की भस्म पांच-भाग, मूंगा सातभाग और सुहागा दोभाग, इन सबको एक में

आकृष्य चूर्णितं शुद्धं प्रदेयं पूर्वभागिकम् ।
वज्रञ्च तदभावे तु वैक्रान्तं तत्समांशकम् ॥ १६१ ॥

महामृगाङ्कः खलु सिद्ध एष
श्रीनन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम् ।
वल्लोऽस्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः
सेव्योऽथवा पिप्पलिकासमेतः ॥ १६२ ॥

यतोपचाराः कर्त्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः ।
अन्यं घृतञ्च भोक्तव्यं त्याज्यं सूतविरोधि यत् ॥१६३॥

यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगणं गुल्मं तथा विद्रधिं
मन्दाग्निं स्वरभेदकासमरुचिं वान्तिञ्च मूर्च्छां भ्रमम् ।
अष्टावेवमहागदान् गदगणान् पाण्डामयं कामलां
पित्तार्त्तिं समलग्रहान् बहुविधानन्यांस्तथा नाशयेत्
॥ १६४ ॥

इति महामृगाङ्कोरसः ।

मिलाकर तीन दिन तक नीबूके रस में घोटकर गोली बनावे, फिर गोलीको सुखाकर नमक से भरे बर्त्तन में रखदे, फिर बर्त्तनका मुख बन्द करके चारपहर तक पकावे, फिर ठण्डा होने पर निकाल ले और सब रससे चौथाई हीरा अथवा उस के समान, विक्रान्त मणि मिलाकर घोटे, फिर रोगीको मिर्च, पीपल और शहत में मिला कर दोरत्ती खिलावे, पथ्य आदि क्षयरोग में लिखे दे, इससे सन्निपातसे उत्पन्न हुआ क्षय, गुल्म, विद्रधि, स्वरभेद, खांसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, भ्रम,

रसं वज्रं हेम तारं नागं लौहञ्च ताम्रकम् ।
तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥१६५॥
शङ्खञ्च तुल्यं तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः ।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्य्या वराटिका ॥ १६६ ॥
टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुखमन्धयेत् ।
मृद्भाण्डे तं निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ १६७ ॥
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्याः सप्तभावनाः ।
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥ १६८ ॥
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्य देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ।
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥१६९॥

आठोमहारोग, सवप्रकार के रोग, पाण्डुरोग, कामला, पित्त व्याधि और अनेक प्रकार के मलदोष दूर होजाते हैं, जो वस्तु पारेकी विरोधी न हो, सो घी आदि बल बढ़ानेवाली वस्तुदे, नन्दीनाथने इस सिद्ध औषधिका नाम महामृगाङ्क रस लिखा है ॥ १५७ ॥ १६४ ॥

पारा, हीरा, सोना, चांदी, सीसा, लोहा और तांबा इन सबकी भस्म समान; मोती, सोनामाखी, मूंगा, शङ्ख और तूतिया ये भी सब समान इनको एक में मिलाकर चीते के रस में सात दिन तक घोटकर कौड़ियों में भरदे, फिर आकके दूध में घुटे सुहागे से कौड़ियों का मुखबन्द करके मिट्टी के बर्त्तन में भरके वर्त्तनका भी मुखबन्द करदे, फिर गजपुट में फूंकदे, ठण्डा होने पर निकाल कर पीसे और सिनवार के रस में सात, अदरक के

योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा ।
महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारिके ॥१७०॥
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहे नियोजयेत् ॥ १७१ ॥

इति रत्नगर्भपोट्टलीरसः ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां यक्ष्मरोगचिकित्सा ।

रस में मात और चीते के रस में इक्कीस भावना देकर सुखाले, फिर रत्तीको मिर्च, पीपल और शहद में मिलाकर चाररत्ती देने से साध्य या असाध्य राजयक्ष्मारोग निःसन्देह दूर होजाता है, वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श, ग्रहणी, खांसी, श्वास, ज्वर और अतीसार रोग दूर होजाते हैं, यह रस योगवाही है इसका नाम रत्नगर्भ पोट्टली रस है ॥

१६५ ॥ २०१ ॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावली में राजयक्ष्मारोग
चिकित्साधिकारः समाप्तः ।

अथ कासाधिकारः।

तत्र कासरोगस्य निदानसम्प्राप्तिपूर्वकं सामान्यं लक्षणमाह।

वेगघातात् क्षयाद् धूमरजसोश्च निषेवणात्।
रूक्षान्नभोजनाच्चापि पञ्चकासा भवन्ति च ॥ १ ॥

प्राणो वातो दूषितः पूर्वमुक्तैः
गत्वोदानं भिन्नकांस्यस्वरत्वम्।
कुर्य्यात्कण्ठो वक्त्रतश्चैति वायुः
श्लेष्मायुक्तः कास उक्तः स एव ॥ २ ॥

वातात्पित्तात्कफाच्चापि क्षताच्चैव क्षयादपि।
कासरोगाः स्मृताः पञ्च बलवत्वं यथोत्तरम् ॥ ३ ॥

अथ कासरोगनिदानभाषा।

वेगोंके रोकनेसे धुवां लगनेसे क्षयरोग होनेसे मुखमें धूला गिरनेसे और रूखा भोजन करनेसे पांच प्रकारकी खांसी उत्पन्न होती है ॥ १ ॥

अब पहिले लिखे कारणोंसे प्राणवायु बिगड़कर उदानवायु के संग मिलजाता है तब वही वायु कफको सङ्ग लेकर मुखसे निकलने लगता है उस समय रोगीका स्वर फूटे हुये कांसेके बरतनके समान होजाता है वैद्योंने उसीका नाम कासरोग वैद्यक में लिखा है ॥ २ ॥

वात, पित्त, कफ हृदयका घाव और क्षयरोगसे उत्पन्न होने

अथ पूर्वरूपमाह ।

शोष्यायगोधो गलतालुशोषः
शूकैर्वृतत्वं मुखकण्ठयोश्च ।
कासे भविष्यति भवन्ति च पूर्वमेव
कण्डूश्च कण्ठे श्वसनश्च तीव्रम् ॥ ४ ॥

वातिकस्य लक्षणमाह ।

हृच्छूलपार्श्वोदरकुक्षितोदैः
क्षामाननः क्षीणस्वराभिघातैः ।
समन्वितो वात समुद्भवेतु
कासे तथा ना परिशुष्यतीह ॥ ५ ॥

अथ पैत्तिकमाह ।

पित्तोद्भवे तिक्तमुखश्च पाण्डुः
दाहान्वितो पीतकटुप्रसेकः ।

के कारण खांसी पांच प्रकार की होती है इन पांचमें क्रमसे पहिलेसे दूसरी बलवान् है ॥ ३ ॥

खांसी उत्पन्न होनेसे पहिले गलेमें अन्न रुकना, गला और तालु सूखना, मुख और गलेमें कांटेसे जानपड़ना, गलेमें खुजली और सांस ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

वायुसे उत्पन्न हुई खांसी में हृदय, पसुरी और कोखमें पीड़ा, मुखकी दुर्बलता, स्वरभेद और शरीर सूखना ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुई खांसीमें मुंह कड़वारहता है, शरीर

ज्वरान्वितो शुष्कमुखोऽतिमात्रं
वमेत्कटूनि ज्वरपीड़ितस्तु ॥ ६ ॥

अथ श्लैष्मिकरूपमाह ।

श्लेष्मोद्भवे श्लेष्मगदान्वितो ना
मुखप्रलेपी कफपूर्णदेहः ।
भक्तारुचिः कण्ठरुजोऽतिमात्रं
सान्द्रं कफं वमति भिन्नगलो मनुष्यः ॥ ७ ॥

क्षतकासस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

भारव्यवायव्यायाम मार्गशुध्यादिकारिणः ।
जायते वक्षसि व्रणं ततः कासोद्भवोद्भवेत् ॥ ८ ॥

पीला होता है, जलन रहती है, कड़वा और पीला कफ निकलता है; ज्वर, मुख सूखना और कड़ुवा वमन हो । ये लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

कफसे उत्पन्न हुई खांसीमें कफके अनेक विकार होते हैं; मुखमें लाटासा जान पड़ता है, सब शरीर कफसे भरजाता है भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती, कण्ठमें बहुत खुजली जान पड़ती है, खांसनेसे गाढ़ा कफ गिरता है और स्वर फूटा जान पड़ता है ॥ ७ ॥

जब मनुष्य बहुत भार लेकर चलता है, अधिक मैथुन अधिक कसरत करता है, अधिक मार्ग चलता है अथवा अधिक वमन और विरेचनादिसे शरीर शुद्ध करता है तब उसके हृदय

लक्षणमाह।

कामते क्षतकासी तु पूर्वं शुष्कं ततो भृशम्।
ष्ठीवेद्रक्तं कफयुतं कण्ठकूजनपीड़ितः॥ ९॥
सूचीभिस्तुद्यमानेन शूलेनापि निपीड़ितः।
भिन्नेनेवोरसा जन्तुः भृशं ताम्यति मुह्यति॥ १०॥
श्वासतट् कास वैस्वर्य्य पर्वभेदनिपीड़ितः।
सकूजति कपोतीव कासवेगसमन्वितः॥ ११॥

क्षयकासस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह।

वातादयस्त्रयो दोषाः शोषतां विषमाग्निनाम्।
अयातिभोजनाच्चैव वेगघाताद् व्यवायिनाम्॥ १२॥
कुपिताः क्षयपूर्वंहि कासं कुर्य्युरसंशयम्॥ १३॥

में घाव होजाता है उस घावसे जो खांसी उत्पन्न होती है उसे क्षतकास कहते हैं॥ ८॥

उस क्षतसे उत्पन्न हुई खांसीमें रोगीको पहिले सूखीखांसी आती है पीछे कफ और रुधिर गिरता है कण्ठमें फूटे हुये कांसेके बरतन के समान शब्द होता है, शरीरमें सुइयोंके छेदने के समान पीड़ा होती है हृदय ऐसा जान पड़ता है मानो फट गया रोगीको बार २ मूर्च्छा होती है श्वास, हिचकी, स्वरभेद और शरीर की सन्धियोंमें अत्यन्त पीड़ा होती है कण्ठ से कबूतरोंके शब्दके समान शब्द निकलता है॥ ९—११॥

जब अधिक सोच करनेसे, भोजन का नियम टूटनेसे, अधिक भोजन करनेसे, मूत्रादि का वेग रोकनेसे और अधिक मैथुन

लक्षणम् ।

शुष्कं निष्ठीवति नरो रुधिरं पूयमेव च ।
प्रक्षीणमांसोऽबलवान् गात्रशूलज्वरान्वितः ॥ १४ ॥
मोहदाहान्वितो जन्तुरसाध्यः सर्वचिह्नवान् ॥ १५ ॥

साध्यादिकमाह ।

अयन्तु क्षयजः कासो दुर्बलस्य हृतौजसः ।
असाध्यः साध्य उक्तस्तु बलिनोऽभिनवोत्थितः ॥ १६ ॥
वृद्धानां नैव सिध्यन्ति कासा दुर्बलजन्तुनाम् ।
क्षयक्षतोद्भवो नैव प्रतिकार्य्यौ विदा क्वचित् ॥ १७ ॥
पृथग्दोषोद्भवा येऽत्र पूर्वमुक्ता स्त्रयो गदाः ।
तान् साध्यान् साधयेद्वैद्यो नैवोपेक्ष्यो नवोऽप्ययम् ॥ १८

करनेसे तीनों दोष बिगड़ जाते हैं तब क्षयका॰ उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

इस क्षयसे उत्पन्न हुई खांसीमें खांसी आकर पीछे रुधिर और पीव निकलता है, मनुष्यका बल और मांस नष्ट होजाता है, शूल, ज्वर, मूर्च्छा और रोगीदाहसे व्याकुल होजाता है यदि ये चिह्न पूरे मिलते हो तो उसे असाध्य जानकर छोड़ देय ॥ १४॥१५ ॥

दुर्बल और तेज रहित मनुष्य की क्षयसे उत्पन्न हुई खांसी असाध्य है और बलवान् का साध्य है ॥ १६ ॥

दुर्बलमनुष्य की खांसी अच्छी नहीं होती, क्षय और क्षतसे उत्पन्न हुई खांसी की वैद्य चिकित्सा न करे ॥ १७ ॥

उपेक्षायां दोषमाह ।

उपेक्षयाच श्वासज्वरारोचकसंभवः ।
स्वरभेदः क्षयश्चैव नैवोपेक्ष्योऽतएव हि ॥ १९ ॥

इति कासनिदानम् ।

अथ चिकित्सामाह ।

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् ।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ २० ॥
दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च ।
शस्यंते वातकासे तु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ २१ ॥

पहिले जो एक २ दोष से उत्पन्न हुई खांसी कही है वैद्य उन ही को साध्य जानकर चिकित्सा करै और को नहीं ॥१८॥

यदि खांसी उत्पन्न होने से चिकित्सा न करी जाय तो श्वास, ज्वर, अरोचक, स्वरभेद और क्षयादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं इस लिये इस रोगको उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १९ ॥

इति कासनिदानभाषा समाप्तः ।

आगे कासरोग की चिकित्सा लिखते हैं ।

कासरोग में, बथुआ, मकोय, मूली, सुनिषण्ण, तेल आदि चिकनाई, दूध, ऊखका रस, गुड़का मद्य, दही, कांजी, खट्टे फल और मद्य ये सब बात से उत्पन्न हुई खांसी में पथ्य है,

ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैर्मांषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥ २२ ॥
शठी शृङ्गी कणा भार्गी गुड़वारिदयासकैः ।
सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजितः ॥ २३ ॥

अपराजितलेह ।

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् ।
दद्याद्घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थं युतां भिषक् ॥ २४ ॥
मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः ।
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तैर्मात्रया हिता ॥ २५ ॥

खाने को, गांव और अनूप देश में उत्पन्न हुवे, जन्तुओं का मांस, धान, जौ, गेहूं, साठी और कमाचका रसदे, खटाई, मिठाई और नमक भी पथ्य है ॥ २० ॥ २२ ॥

कचूर, काकड़ासिङ्गी, पीपल, भारङ्गी, गुड़, मोथा और जवासा इन सबको तेल में मिलाकर खाने से, वातसे उत्पन्न हुई खांसी दूर होजाती है, इसका नाम अपराजिता लेह है ॥ २३ ॥

जो खांसी पित्त से उत्पन्न हुई हो और उस में थोड़ा कफ भी हो, उस में मीठी औषधियों में मिलाकर निसोत पिलावे, जिस खांसी में अधिक कफ हो, उसमें विरेचन के लिये निसोत में तिक्त औषधि मिला कर दे ॥ २४ ॥

खाने को मीठी औषधियों में मिला, जङ्गली जन्तुओं के मांस कारस, समाई, जौ, मूंग का रस और तिक्त साग दे, परन्तु खाने को मात्रा से दे ॥ २५ ॥

द्राक्षामधुकखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम् ।
पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ २६ ॥
इति द्राक्षाद्यवलेह ।

बलिनं वमनैरादौ शोधितं कफकासिनम् ।
यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ॥ २७ ॥
पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवे ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ २८ ॥
इति दशमूलीरसः ।

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेन समन्वितम् ।
पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ २९ ॥
इति शृङ्गवेररसः ।

कण्टकारीकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासहृ
इति कण्टकारीक्वाथः ।

दाख, जेठीमधु, खजूर, पीपल और मिर्च इनको शहत अथवा घी में मिला कर देने से पित्त से उत्पन्न हुई खांसी दूर होजाती है ॥ २६ ॥

कफसे उत्पन्न हुई खांसीमें, बलवान् रोगीको वमन देकर फिर कफनाशक औषधि खिलावे, खानेको जौः तथा कड़वे और रूखे भोजन दे ॥ २७ ॥

पसुरीके शूल, ज्वर, सांस और कफसे उत्पन्न हुई खांसीमें, पीपलका चूर्ण मिलाकर दशमूल का रस पिलावे ॥ २८ ॥

अदरकके रसमें शहत मिलाकर पीनेसे सांस, खांसी, प्रतिश्याय और कफरोग दूर होजाते हैं ॥ २९ ॥

विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम् ॥ ३० ॥
स्विन्नमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्यविधारितम् ।

इति विभीतकपुटपाकः

वासक स्वरसः पेयोमधुयुक्तोहिताशिना ॥ ३१ ॥
पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ।
वासायाः स्वरसं पूतं कणामाक्षिक संयुतम् ॥ ३२ ॥

इति वासारसः ॥

अभ्यासान्मुच्यते पीत्वाप्यसाध्यात्कासरोगतः ।
समूलं चित्रकञ्चैव पिप्पलीचूर्णकं हरेत् ॥ ३३ ॥
कासं श्वासञ्च हिक्काञ्च मधुयुक्तं द्विजोत्तम ! ॥ ३४ ॥

इति चित्रकलेहः ।

कटहलीके काढ़ेमें पीपल मिलाकर पीनेसे ५ प्रकार की खांसी दूर होजाती है ॥

बहेड़े को घी लगाकर गोबर लपेटकर पुटपाककी रीतिसे आगमें पकावे, उसको मुखमें रखनेसे खांसी दूर होजाती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

वासेके रसमें शहत मिलाकर पीनेसे और पथ्य भोजन करनेसे खांसी, पित्तकफसे उत्पन्न हुई खांसी और विशेषकर रक्तपित्त दूर होजाता है ॥ ३२ ॥

वासेके रसमें शहत और पीपल मिलाकर बहुत दिनतक पीनेका अभ्यास करनेसे, असाध्य खांसी दूर होजाती है ॥३३॥

चीतेकी जड़ और पीपल का चूर्ण ... खांसी ...

शल्यक्रव्यादजं मांसं कौलिङ्गं मांसमेव वा।
असाध्यान्मुच्यते भुक्त्वा कासादभ्यासयोगतः॥
मुस्तकं पिप्पली द्राक्षा संपक्वं बृहतीफलम्।
घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिवर्हणः॥ ३५॥

इति मुस्तकादिलेहः।

कर्षः कर्षार्द्धमथोपलं पलद्वयं तथार्द्धकर्षश्च।
मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम्॥३६
सर्वौषधैरसाध्याये कासाः सर्ववैद्यविनिर्मुक्ताः॥ ३७॥
अपि पूयं छर्दियुतां तेषामिदमौषधं पथ्यम्॥ ३८॥

मरिचाद्यं चूर्णम्॥

और हिचकीरोग दूर होजाते हैं, इस चूर्णको शहतमें मिलाकर खाय॥ ३४॥

मांस खानेवाले जन्तुओंका मांस अथवा गोरइया का मांस खानेसे असाध्य खांसी भी दूर होजाती है॥ ३५॥

मोथा, पीपल, दाख और कटइली का पका फल इनको घी और शहत में मिलाकर खानेसे क्षयसे उत्पन्न हुई खांसी दूर होजाती है॥ ३६॥

मिर्च एककर्ष, पीपल आधा कर्ष, अनारके फलका छिलका एक पल, गुड़ दो पल और जवाखार आधा कर्ष इन सबको मिलाकर खानेसे असाध्य खांसी दूर होजाती है, जिस खांसीमें कफके संग पीब आता हो, उसके लिये यह औषधि बहुत ही [illegible] है इसका नाम मरिचादिचूर्ण है॥ ३७॥ ३८॥

लवङ्ग जातीफलपिप्पलीनां
भागान् प्रकल्प्याक्षसमानमीषाम्।
पलार्द्धमेकं मरिचस्य दद्यात्
पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ ३९ ॥
सिता समं चूर्णमिदं प्रसह्य
रोगानिमानाशु बलान्निहन्यात्।
कासज्वरारोचकमेहगुल्म-
श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ॥ ४० ॥

इति समशर्करचूर्णम्।

मनःशिलालमरिचमांसीमुस्तेङ्गुदैः पिबेत्।
धूमं ताहश्च तस्यानु सगुडञ्च पयः पिबेत् ॥ ४१ ॥
एष कासान् पृथग् हन्ति सर्वदोषसमुद्भवान्।
शतैरपि प्रयोगानां साधयेदप्रसाधितान् ॥ ४२ ॥

इति मनःशिलाधूमः।

लौंग, जायफल और पीपल ये सब एक एक भाग, मिर्च आधा पल, सोंठ चार पल और इन सबके समान शक्कर मिलाकर चूर्ण बनावे, इसके खानेसे खांसी, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, सांस, मन्दाग्नि और ग्रहणीरोग शीघ्र दूर होजाते हैं, इसका नाम समशर्करचूर्ण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

हरताल, मैनसिल, मिर्च, जटामांसी, मोथा और हिंगवेकी गिरीको चूर्ण करके, इनका धुआं पिये, ऊपरसे गुड़ पड़ा दूध पिये इससे एक, दो अथवा सब दोषोंसे उत्पन्न हुआ कासरोग

मनःशिला लिप्तदलं वदर्य्या उपशोषितम्।
सक्षीरं धूमपानञ्च महाकासनिवर्हणम्॥ ४३॥

मनःशिलाधूमः।

अर्कमूलशिले तुल्ये ततोऽर्द्धेन कटुत्रिकम्।
चूर्णितं वह्निनिःक्षिप्तं पिवेद्धूमन्तु योगवित्॥ ४४॥
भक्षयेदथ ताम्बूलं पिवेद् दुग्धमथाम्बु वा।
कासाः पञ्चविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः॥४५॥
तिन्तिडीपत्रजः क्वाथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः।
दुष्टकासं जयत्याशु तृणवृन्दमिवानलः॥ ४६॥
शिलार्कक्षीरैराकीं त्वचमाशुभाविताम्।

दूर होजाता है, चाहे रोगी भी औषधियोंसे अच्छा न हुआ हो तो भी इससे अच्छा होजाता है, इसका नाम मनःशिलादि धूम है॥ ४१॥ ४२॥

मैनसिलको पीस कर वेरके पत्तोंपर लपेट, फर उसका धुआं पीनेसे और ऊपरसे दूध पीनेसे घोर खांसी भी दूर होजाती है॥४३

आककी जड़ और मैनसिल इन दोनोंको समान लेकर और त्रिकुटा मिलाकर धुआं पीनेसे और ऊपरसे दूध पीनेसे अथवा पान खानेसे पांचों प्रकारकी खांसी निःसन्देह दूर होजाती है॥ ४४॥ ४५॥

जैसे आग लगनेसे घास का ढेर भस्म होजाता है वैसे ही सेंधा और हींग मिला कर तिंतड़ीकके पत्तोंका काढ़ा पीनेसे, पांच प्रकारकी खांसी दूर होजाती है॥ ४६॥

मैनसिल और आकके दूधमें राकाकी छालको भिगोकर

शुष्कां कृत्वा विधिनापाययेच्च भिषग्वरः ॥ ४७ ॥

इति शिलार्कधूमः ।

घृतं रास्ना बला व्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम् ।

कण्टकारीरसे पानात्पञ्चकासनिसूदनम् ॥ ४८ ॥

इति कण्टकारीघृतम् ।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्य्या-

स्तुल्यां जलद्रोणपरिप्लुताञ्च ।

हरीतकीनाञ्च शतं निदध्या-

द्यावपक्वाचरणावशेषम् ॥ ४९ ॥

गुडस्य दत्वा शतमेतदग्नौ

विपक्वमुत्तार्य्य ततः सुशीते ।

कटुत्रिकञ्च द्विपलप्रमाणं

पलानि षट् पुष्परसस्य तत्र ॥ ५० ॥

सुखावे, फिर धूमपानकी विधिसे वैद्य रोगीको धुआं पिलावे, तो खांसी दूर होजाती है ॥ ४७ ॥

रास्ना, बरियारा, सोंठ, मिर्च, पीपल, गोखरू इन सबका कल्क बनाकर और कटेलीका रस डालकर घी पकावे, इस घीके खानेसे, पांचो प्रकारके कासरोग दूर होजाते हैं, इसका नाम कण्टकारी घृत है ॥ ४८ ॥

कटेलीके एकतुला जड़, फूल और पत्ते लेकर एक द्रोण पानीमें पकावे और उसमें सौ हर्रं डाल दे, जब पकते पकते चौथाई पानी रह जाय, तब उतारकर हर्रंकी गुठली निकाल दे, फिर उस पानीमें हर्रंको मलकर सौपल गुड़ डालकर पकावे,

क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्नि
प्रयुज्यमानो विधिनावलेहः।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवञ्च
द्विदोषकासानपि च त्रिदोषम्॥ ५१॥
क्षयोद्भवञ्च क्षतजञ्च हन्या-
त्पीनसं श्वासस्वरक्षयञ्च।
यक्ष्माणमेकादशमुग्ररूपं
भृगुपदिष्टं हि रसायनं स्यात्॥ ५२॥
इति व्याघ्रीहरीतकी।

वासककस्वरस प्रस्थे माणिका सितशर्करा।
पिप्पली द्विपलं दत्वा सर्पिषश्च पचेच्छनैः॥ ५३॥
लेहीभूते ततः पश्चात्क्षिपेत् क्षौद्रपलाष्टकम्।

जब पकते पकते अवलेह होजाय, तब उतारकर, सोंठ, मिर्च, पीपल, दो पल, पुष्करमूल छः पल, चतुर्जात अर्थात् तज, तेज-पात, इलायची और नागकेशर एकपल इनको चूर्ण करके डाले इस अवलेहको खानेसे वात, पित्त, कफ, दो दोष और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई खांसी, क्षय और घावसे उत्पन्न हुई खांसी, पीनस, श्वास, स्वरभेद और ग्यारहों लक्षण युक्त राजयक्ष्मा रोग दूर होजाता है, भृगुमुनिने इस औषधिको रसायन लिखा है, इसका नाम व्याघ्री हरीतकी है॥ ४८॥ ५२॥

वासेके एक प्रस्थ रसमें एक माणिक अर्थात् आठपल सफेद शक्कर दो दो पल, पीपल और घी मिलाकर पकावे, जब पकते पकते अवलेह होजाय, तब उतारकर ठण्डा कर ले, फिर आठपल

दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लेहमुत्तमम् ॥ ५३ ॥
निहन्ति राजयक्ष्माणं कासं श्वासं सुदारुणम् ।
पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरन्तथा ॥ ५५ ॥

इति वासावलेहः ।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ।
यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेलेचार्द्धभागिके ॥ ५६ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ।
कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ ५७ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोषज्वरापहम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ ५८ ॥
कल्पयेद्गुडिकाश्चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ।
गुडिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता ॥ ५९ ॥

शहत मिलाकर रोगीको मात्राके अनुसार दे इससे राज यक्ष्मा, खांसी, भयानक श्वास, पसलीकी पीड़ा, हृदयका शूल, रक्तपित्त और ज्वर दूर होजाते हैं, इसका नाम वासावलेह है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

तालीशपत्र, मिर्च, सोंठ, पीपल, बंशलोचन, ये सब क्रमसे एक दूसरेसे दुगुने, तज और तेजपात आधाभाग, पीपलसे आठ गुनी शक्कर मिलाकर चूर्ण बनावे, इस चूर्ण के खानेसे, खांसी, श्वास, अरुचि, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी, पिलही, शोथ, ज्वर, वमन, अतीसार, शूल और बिगड़े हुये वायुसे उत्पन्न हुये रोग दूर होजाते हैं, अथवा इन्हीं औषधि-

पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभया वंशलोचनाम् ।
विशेषणं हि पिप्पल्या अन्यत्र पैत्तिकाच्छुभा ॥६०॥

इति तालीशाद्यमोदकः ।

शुद्धसूतस्य भागैकं भागौ द्वौ गन्धकस्य च ।
भागद्वयं मृतं ताम्रं मरिचं दशभागिकम् ॥ ६१ ॥
मृताभ्रस्य चतुर्भागं भागमेकं विषं क्षिपेत् ।
अम्लेन मर्दयेत्सर्वं माषैकं वातकासजित् ।
अनुपानं लिहेत्क्षौद्रैर्विभीतकफलत्वचम् ॥ ६२ ॥

इति पञ्चामृतरसः ।

पारदं गन्धकं शुद्धं कान्तलौहस्य टङ्कणम् ।
रास्ना विडङ्गं त्रिफला देवदारु कटुत्रिकम् ॥ ६३ ॥

चौकी, मिश्रीकी चाशनी में मिलाकर गोली बनाले, यह गोली इस चूर्ण से बहुत जल्दी होती है, इस में पित्तसे उत्पन्न हुई खांसीके लिये शुभाका अर्थ वंशलोचन है अन्यत्र शुभा शब्द पीपलका विशेषण है, इसका नाम तालीशादि मोदक है । ५९ ॥ ६० ॥

शुद्ध पारा एकभाग, गन्धक दो भाग, तांबेकी भस्म दो भाग, मिर्च दशभाग अभ्रककी भस्म चारभाग और विष एक भाग, इन सबको कांजी में एक पहर घोट कर गोली बनाले, फिर बहेड़े के बकले और शहद के सङ्ग खानेसे खांसी दूर होजाती है, इसका नाम पञ्चामृत रस है । ६१ ॥ ६२ ॥

पारा, शुद्ध गन्धक लोहेकी भस्म, सुहागा, रास्ना, बायबिडङ्ग,

अमृता पद्मकं क्षौद्रं विषञ्चापि विचूर्णयेत् ।
द्विगुञ्जं वातकासार्त्तः सेवयेदमृतार्णवम् ॥ ६४ ॥
इति अमृतार्णवरसः ।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम् ।
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीक्षीरेण गोलयेत् ॥ ६५ ॥
रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं कार्षिकं शुभम् ।
टङ्गणस्य पलं दत्वा मरिचस्य पलार्द्धकम् ॥ ६६ ॥
नवगुञ्जा प्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥ ६७ ॥
एकैकां वटिकां खादेन्नीलोत्पलरसप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्य रसेन वा ॥ ६८ ॥
पिप्पल्या मधुना वापि शृङ्गवेररसेन वा ।

हरे, बहेड़ा, आमला, देवदारु, सोंठ, मिर्च, पीपल, गुरिच, पदमाख और विष, इन सबको समान लेकर खरल में घोटे, फिर वातसे उत्पन्न हुई खांसी में रोगीको शहत में मिलाकर दो रत्ती खिलावे इसका नाम अमृतार्णव रस है ॥ ६३।६४ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरे, बहेड़ा, आमला, चाभ, धनिया, जीरा, सेंधानमक, इन सबको एक एक तोला लेकर बकरीके दूधमें घोटकर गोला बनावे, फिर सुहागा, पारा, गन्धक और लोहा ये सब एक एक कर्ष ; सुहागा एकपल और मिर्च आधा आधापल मिलाकर नौ नौ रत्तीको गोली बनावे, फिर प्रातः-काल पवित्र होकर, भगवती का ध्यान करके, लालकमल, नीलकमल, कुलथी अथवा अदरखका रस, या शहद और पीपल

हन्ति पञ्चविधं कासं वातपित्त समुद्भवम् ॥ ६९ ॥
वातश्लेष्मोद्भव दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं तथा।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि नानादोषसमुद्भवम् ॥ ७० ॥
रक्तनिष्ठीवनञ्चापि ज्वरं श्वाससमन्वितम्।
तृष्णां दाहं भ्रमं हन्ति जठराग्निप्रदीपनी ॥ ७१ ॥
बलवर्णकरी ह्येषा प्लीहगुल्मोदरापहा।
आनाहकृमिहृत्पाण्डु जीर्णज्वरविनाशिनी ॥ ७२ ॥
इयं चन्द्रामृतानाम चन्द्रनाथेन निर्मिता।
वासा गुडूची भार्गी च मुस्तकं कण्टकारिका ॥ ७३ ॥
भोजनान्ते प्रकर्त्तव्या गुडिका वीर्य्यधारिणी ॥ ७४ ॥

इति चन्द्रामृतावटी।

(१) अभ्रस्यामलमारितस्य तु पलं शुद्धाटरूपस्थिराः।
विल्वं शोणक(२) पाटलाकलसिकाः सव्याघ्रयष्ट्यार्द्रकाः॥

से मिलाकर एकगोली खाय, उससे पांचो प्रकार की खांसी, वात, पित्त, कफ के दोष दो दोष अथवा तीन दोषोंसे उत्पन्न हुई खांसी, रुधिर का वमन, ज्वर, श्वास, प्यास, दाह, भ्रम, मन्दाग्नि, आनाह, कृमिरोग, पाण्डुरोग, हृद्रोग और अजीर्ण दूर होजाते हैं, बल, वर्ण बहुत बढ़ते हैं, पिलही, गुल्म और उदर रोग भी दूर होजाते हैं, भोजनके अन्तमें वासा, गिलोय, बमनेटी, मोथा और कटेहली का बनी गोली खिलावे इससे वीर्य्य स्थिर रहता है, इसका नाम चन्द्रामृता वटी है॥ ६७।७४॥

(१) [illegible] भा० वै० च०।

चित्रकग्रन्थिकगोक्षुरं सचविकं मार्गात्मगुप्तान्वितम् ।
सर्व्वं मर्द्दितमेकशश्च पलिकै गुञ्जार्द्धकं भक्षितम् ॥८५॥
कासं पञ्चविधं स्वरामयमुरोघातं च हिक्कां ज्वरम् ।
श्वासं पीनसमेहगुल्ममरुचिं यक्ष्माम्लपित्तक्षयान् ॥
दाहं मोहमशेष दोषजनितं शूलं वलासं क्रिमिम् ।
छर्द्दिं पाण्डुहलीमकं गलगदं विस्फोटकं कामलाम् ॥८६॥
मन्दाग्निं ग्रहणीं क्षयञ्च यकृतं प्लीहानमर्शांसि षट् ।
हन्यादामकफोद्भवानपि गदान् श्रीडामरानन्दकम् ।
बल्यं पुष्टिशरीरदीप्तिविकरं धातुप्रदं कामिनाम् ।
मेध्यं हृद्यरसायनं हरमुखाज्ज्ञात्वा मया भाषितम् ॥८७॥

श्रीडामरानन्दाभ्रम् ।

शुद्ध अभ्रककी भस्म एकपल, कटहली, रस्ना, शालपर्णी, बेल, सोनापाढ़ा, पाटला, पृष्टपर्णी, बम्हनेटी, अदरख, चीता, पिपलामूल, गोखरू, आभ, कवांच ये सब औषधि एक एकपल लेकर घोटे और गोलीका आधा रत्ती खिलावे, इससे पांचो प्रकार की खांसी, स्वरभेद, उरक्षत, हिचकी, ज्वर, सांस, पीनस प्रमेह, गुल्म, अरुचि, यक्ष्मा, अम्लपित्त, क्षय, दाह, सब दोषोंसे उत्पन्न हुई मूर्च्छा, शूल, श्रम, कफ, कृमि, वमन, पाण्डु, हलीमक, गलेके रोग, विस्फोटक, कामला, मन्दाग्नि, ग्रहणी, यकृत, पिलही, छः हों प्रकारके अर्श और आम कफसे उत्पन्न हुये सब रोग दूर होजाते हैं, इससे खानेवाले रोगी के बल, वीर्य और सातो धातु बढ़जाते हैं, बुद्धि बढ़ती है और हृदय प्रसन्न होता है, यह औषधि रसायन भी है, इसने शिवके मुख

रसायनाधिकारोक्तं शृङ्गाराभ्रमप्यत्र देयम् ॥ ७८ ॥
मृतलोहं मृतं वङ्गं मृताम्रं मृतमभ्रकम् ।
शुद्धं सूतञ्च गन्धञ्च माक्षिकं हिङ्गुलं विषम् ॥ ७९ ॥
जातीफलं लवङ्गञ्च त्वगेला नागकेसरम् ।
उन्मत्तस्य च बीजानि जयपालञ्च शोधितम् ॥ ८० ॥
एतानि समभागानि मरिचं त्रिगुणितकम् ।
सर्वद्रव्यं क्षिपेत् खल्वे लौहदण्डेन मर्दयेत् ॥ ८१ ॥
भङ्गारसस्य स्वरसैर्भावयेदेकविंशतिम् ।
गुञ्जामाला प्रदातव्या आर्द्रकस्य रसेन तु ॥ ८२ ॥
तदर्द्धं बालवृद्धेषु पथ्यं देयं यथोचितम् ।
पञ्चकासान् क्षयं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च ॥ ८३ ॥
सन्निपातं कण्ठरोगमभिन्यासमचेतनम् ।

से सुनकर लिखो है उसका नाम श्रीडामरानन्दाभ्रक है ॥ ७५—७७ ॥

रसायन अधिकार में लिखा, शृङ्गाराभ्रक भी खांसी में देना चाहिये ॥ ७८ ॥

लोहेकी भस्म, रांगकी भस्म, तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सोनामाखी, इंगुर, विष, जायफल, लौंग, तज, इलायची, नागकेसर, धतूरेके बीज और शुद्ध जमालगोटा ये सब एक एक भाग और मिर्च तीनभाग, इन सबको खरल में डालकर, लोहे को मूसली से घोटे फिर भांगके रस में इक्कीस-बार घोटे, फिर रोगीको अदरक के रस में मिलाकर एकरत्ती दे, बालक और बूढ़े को आधीरत्ती दे, इससे पांचो प्रकारकी

महाकालेश्वरोहन्ति कालनाथेन भाषितः ॥८४॥

इति महाकालेश्वरो रसः ।

सूतकं गन्धकं लौहं विषमभ्रकतालकम् ।
विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेला ग्रन्थिकके शरम् ॥ ८५ ॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं जैपालबीजकम् ।
एतानि समभागानि गुडं द्विगुणमुच्यते ॥ ८६ ॥
तिन्तिडी बीजमात्रेण प्रातःकाले तु भक्षयेत् ।
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ८७ ॥
अजीर्णं ग्रहणीदोषं हन्ति पाण्डुमयं तथा ।
अपाने हृदये शूलं वातरोगं गलग्रहम् ॥ ८८ ॥
ब्रह्मणा निर्मितो ह्येष रसो विजयभैरवः ॥ ८९ ॥

विजयभैरवो रसः ।

खांसी, सांस, क्षय, राजयक्ष्मा, सन्निपात, कण्ठरोग और अभिन्यास रोग दूर होजाता हैं, कालनाथने इसका नाम महाकालेश्वर रस लिखा है इसमें उचित पथ्य दे ॥ ७८—८४ ॥

पारा, गन्धक, लोहा, विष, अभ्रक, हरताल, विड़ङ्ग, रेणुका, मोथा, इलायची, पिपलामूल, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, चीता और शुद्ध जमालगोटेकी गिरी, इन सबको समान लेकर दुगुने गुड़ में मिलाकर तिन्तड़ीक के बीजके समान, प्रतिदिन प्रातःकाल खाय, इससे खांसी, श्वास, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, शूल, गलग्रह और अपान वायुसे उत्पन्न हुये रोग दूर होजाते हैं, ब्रह्माने इसका नाम, विजयभैरव रस लिखा है ॥ ८५ ॥ ८९ ॥

रसगन्धकताम्रञ्च शङ्खटङ्कणलौहकम्।
मरिचं कुष्ठतालीशजातीफललवङ्गकम्॥ ८० ॥
कार्षिकं चूर्णमादाय दण्डेनामर्द्य भावयेत्।
भेकपर्णी केशराजनिर्गुण्डी काकमाचिका॥ ८१ ॥
द्रोणपुष्पी शालपर्णी ग्रीष्मसुन्दरमेव च।
भार्गी हरीतकी वासा कार्षिकैः पवजे रसैः॥ ८२॥
वटिकां कारयेद्वैद्यः पञ्चगुञ्जाप्रमाणतः।
वातजं पित्तजं कासं द्वन्दजं चिरकालजम्॥ ८३ ॥
निहन्ति नात्र सन्देहोभास्करस्तिमिरं यथा।
श्रीमद्गहननाथेन काससंहारभैरवः॥ ८४ ॥
रसोऽयं निर्मितोयत्नाल्लोकरक्षणहेतवे।
वासा शुण्ठी कण्टकारी क्वाथेन पाययेद्बुधः॥ ८५ ॥

पारा, गन्धक, तांबा, शङ्ख, सुहागा, लोहा, मिर्च, कूट, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, इन सबको एक एक कर्ष लेकर खरलमें घोटे, फिर ब्राह्मी, कालाभंगरा, सिनवार, काकमाची, (मकोय) दौना, शालपर्णी, छोटा नोनिया, भारङ्गी, हर्र और वासा, इन सबका एक एक कर्ष रस डालकर घोटे और पांच पांच रत्ती की गोली बनावे. इससे वात, पित्त, कफ और दो दोषोंसे उत्पन्न हुई, पुरानी खांसी दूर होजाती है। इससे कासरोग ऐसे नष्ट होजाता है जैसे सूर्य्य उदय होनेसे अन्धकार। इस गोलीके खानेके पीछे वासा, सोंठ और कटहली का

कासं नानाविधं हन्ति श्वासमुग्रं गरापहम् ।
बलवर्णकरः श्रीदः पुष्टिदोवह्निदीपनः ॥ ९६ ॥

इति कामसंहारभैरवोरसः

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
लौहचूर्णस्य ताम्रस्य तालकस्य विषस्य च ॥९७॥
मनःशिलायाः क्षाराणां वीजं धत्तूरकस्य च ।
मरिचस्यापि सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ९८ ॥
जयन्तीं चित्रकं माणकण्टकर्णीब्रह्ममण्डुकी ।
गञ्जाशनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा ॥ ९९ ॥
सिन्धुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैर्विभावयेत् ।
कलायपरिमाणान्तु गुडिकां कारयेद्भिषक् ॥१००॥

काढ़ा रोगीको पिलावे, इससे अनेक प्रकार की खांसी, घोर श्वास और विषके दोष दूर होजाते हैं, गङ्गा नारायने इस बल, वर्ण, लक्ष्मी और पुष्टी बढ़ानेवाली औषधिका नाम, काम संहार भैरव रस लिखा है, उन्होंने जगत्को रक्षाके लिये इसे बहुत यत्नसे बनायाथा ॥ ९०—९६ ॥

शुद्धपारा एककर्ष, गन्धक, अभ्रक, लोहचूर्ण, तांबा, हरताल, विष, मैनसिल, खार, धतूरेके बोज और मिर्च, इन सब को एक एक कर्ष लेकर चूर्ण बनावे, फिर इस चूर्णको अरनी चीता, माण (कन्द विशेष) घण्टकर्ण (क्षुप) ब्रह्म मण्डुकी (ब्राह्मी) भांग, भंगरा, कालाभंगरा, अदरक और सिनवार का एक एक कर्ष रस डाल कर घोटे और एक एक लड्डूके समान

हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासञ्चैव सुदारुणम्।
कफवातामयानुग्रानानाहं विड्‌विबन्धताम् ॥१०१॥
अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम्।
रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रसादनी ॥ १०२ ॥
मधुरं बृंहणं वृष्यं मत्स्यं मांसञ्च जाङ्गलम्।
घृत पक्वं सदा भक्ष्यं कटुं तीक्ष्णं विवर्ज्जयेत् ॥१०३॥

इति बृहद्वृन्द्रगुडिका।

मृतकं गन्धकं लौहं विषञ्चापि वराङ्गकम्।
ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योषकञ्च समांशकम् ॥ १०४ ॥
पत्रं त्रिकण्टकं मुस्तं विडङ्गं नागकेशरम्।
रेणुकामेलकञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ १०५ ॥

गोली बनावे इन गोली से पांचों प्रकार की खांसी, घोर श्वास, कफवातसे उत्पन्न हुई खांसी, आनाह, विड्‌विबन्ध, मन्दाग्नि, अरुचि, सोंठ, उदर रोग और कामलारोग दूर होजाते हैं, बल और तेज बढ़ते हैं, यह औषधि रसायन है इसमें रोगी का बल बढ़ानेवाले, मीठे भोजन, वीर्य बढ़ाने वाली मछली और घी में पका जङ्गली जन्तुओंका मांस दे, कड़वा और तेज भोजन कुछ न दे, इसका नाम, बृहद्वृन्द्र वटिका है ॥ ८९—१०३ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लोहा, विष, वराङ्ग, तांबा, वङ्गकी भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, ये सब समान, तेजपात, त्रिकटा, मोथा, विडङ्ग, नागकेशर, रेणुका, इलायची और पिपलामूल

एषाञ्च द्विगुणं दत्वा मर्दयित्वा प्रयत्नतः ।
भावना तत्र दातव्या गजपिप्पलिकाम्बुभिः ॥१०६॥
मात्रा चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता ।
हन्ति कासं तथा श्वासं अर्शांसि च भगन्दरम् ॥१०७॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं कपालिकाम् ।
हरेत् संग्रहणीरोगानष्टौ च जठराण्यपि ॥ १०८ ॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैवाप्यश्मरीञ्च चतुर्विधाम् ॥ १०९ ।
नचान्नपाने परिहार्य्यमस्ति
नचातपे चाध्वनि मैथुने च ।
यथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगी
नरोभवेत् काञ्चनराशिगौरः ॥ ११० ॥

इति गुणमहो[illegible]वः ।

ये सब दो दो भाग डालकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णको गज पीपलके रसमें भिगोकर एक एक चनेके समान गोली बनावे इससे खांसी, श्वास, भगन्दर, हृदय का शूल, पसुलीके पीड़ा, कानके रोग, कपालिका, संग्रहणी, आठोप्रकारके उदर रोग, बीसो प्रकारके प्रमेह और चारो प्रकारके अश्मरीरोग दूर होजाते हैं, इसमें खाने, पीने, घाम, मार्गमें चलने और मैथुनादि का विचार नहीं है, रोगी इच्छानुसार व्यवहार करने पर भी, सोनेके समान सुन्दर होजाता है, इसका नाम गुणमहोदधि रस है ॥ १०४ ॥ ११० ॥

लवङ्गं कट्फलं कुष्ठं यमानी त्र्यूषणं तथा ।
चित्रकं पिप्पलीमूलं वासकं कण्टकारिका ॥१११॥
चव्यं कर्कटशृङ्गी च चातुर्जातं हरीतकी ।
शठी कक्कोलकं मुस्तं लौहमभ्रं यवाग्रजम् ॥११२॥
सर्वं प्रति समं चूर्णं तावच्छर्करयान्वितम् ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं स्थापयेत् स्निग्धभाजने ॥११३॥
निहन्ति सर्वजं कासं वातश्लेष्मसमुद्भवम् ।
क्षयकासं रक्तपित्तं श्वासमाशु विनाशयेत् ॥ ११४ ॥
क्षीणस्य पुष्टिजननं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ११५ ॥
इति समशर्करलौहम् ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत् ।
त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागा विभीतकी ॥११६

लौंग, कायफल, कूट, अजमाइन, सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, पीपलामूल, बासा, कटहली, चाभ, काकड़ासिङ्गी, तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, हर्र, कचूर, शीतलचीनी, मोथा, लोहा, अभ्रक, जवाखार, इन सबका चूर्ण बनाकर सबके समान शक्कर मिलाकर चिकने बर्त्तन में भरके रख दे, इससे बात और कफसे उत्पन्न हुई खांसी, क्षयसे उत्पन्न हुई खांसी, रक्तपित्त और श्वास रोग दूर होजाते हैं, क्षीण मनुष्य बलवान् होजाता है, बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है, इसका नाम शर्करलोह है ॥ १११ ॥ ११५ ॥

पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, पीपल तीन भाग, हर्र

पञ्चभागा तथा वासा षड्गुणा सप्तभागिका ।
भार्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बब्बोलजैर्द्रवैः ॥ ११७ ॥
एकविंशतिवारांश्च मधुना गुडिका कृता ।
विभीतकप्रमाणेन प्रातरेकान्तु भक्षयेत् ॥ ११८ ॥
कासं श्वासं हरेत् क्षुद्रा क्वाथस्तदनुकृष्णया ॥ ११९ ॥

इति भार्गोत्तरगुडिका ।

पलं वङ्गं पलं कान्तं पलं ताम्रञ्च कांस्यकम् ।
शुद्धसूतं सतालञ्च लाताङ्कुरसखर्परम् ॥ १२० ॥
केशराजरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम् ।
कुलत्थस्य रसे चैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ १२१ ॥
एलाजातीफलाख्यञ्च तेजपत्रं लवङ्गकम् ।
यमानी जीरकञ्चैव त्रिकटु त्रिफला समम् ॥ १२२ ॥

चार भाग, बहेड़ा पांच भाग, वासा छः भाग और बम्हनेटी सात भाग, इन सबका चूर्ण बनाकर बब्बोल (बबूर) के रसमें इक्कीसबार भिगोवे, फिर बहेड़े के समान गोली बनाकर शहतके सङ्ग प्रातःकाल एक गोली खिलावे ऊपरसे पीपलपड़ा कटहलीका काढ़ा पिलावे, तो खांसी, श्वास, दूर होजाते हैं, इसका नाम भार्गोत्तरवटिका है ॥ ११६ ॥ ११८ ॥

बङ्ग एकपल, लोहा एकपल, तांबा एकपल, कांसा एकपल, शुद्धपारा एकपल, लाताङ्कुर एकपल और खपरिया एकपल, इन सबको काले भंगरेके रसमें तीन दिन घोटकर, कुलथीके रसमें, अनेक बार भावना दे फिर इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग,

नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रन्तु कारयेत्।
द्रावयित्वा रसेनाथ गोलयेत्सर्वमौषधम्॥ १२३॥
छायाशुष्का वटी कार्य्या चणकप्रमिता तथा।
शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये॥१२४॥
मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम्।
क्षतकासं तथा श्वासं ज्वरं हन्ति न संशयः॥ १२५॥
हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम्।
अर्शोनाशं करोत्येष बलपुष्टिञ्च कारयेत्॥१२६॥
वर्ज्यं शाकाम्लमादौ च भृष्टद्रव्यं हुताशनम्।
रसोलक्ष्मीविलासोऽयं महादेवेन भाषितः॥१२७॥

इति लक्ष्मीविलासोरसः।

इति भैषज्यरत्नावल्याम् कासचिकित्साऽधिकारः समाप्तः।

अजमायन, जीरा, त्रिकुटा और त्रिफला एक एक पल, तगर, भंगरा और बांसके बीज, एक कर्ष डालकर रस मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य रोगीको ठण्डे पानीके सङ्ग खिलावे खानेको मछली, मांस, दूध और चिकने भोजन दे, इससे श्वास, खांसी, ज्वर, हलीमक, पाण्डु रोग, शोथ, प्रमेह, गुल्म, शूल और अर्शरोग दूर होजाते हैं, बल और पुष्टी बढ़ती है, खटाई, भुंने अन्न और अग्निमें तापनारोगी छोड़ दे, महादेवने इसका नाम लक्ष्मीविलास रस लिखा है॥ १२०॥ १२७॥

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें कासचिकित्साधिकार समाप्त।

अथ हिक्काश्वासाधिकारः ।

तत्रादौ हिक्कानिदानम् ।

अभिष्यन्दि विदाह्यन्न गुरुविष्टम्भकारिभिः ।
रजोधूमानिलैश्चैव व्यायामाध्वातपर्षणैः ॥ १ ॥
अतिभारैर्भवेन्नृणां हिक्काश्वासस्तथैव च ॥ २ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह ।

श्लेष्मान्वितो पञ्च हिक्काः पवनः प्रकरोति हि ।
अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ॥ ३ ॥

हिक्काश्वासनिदानभाषा ।

जो मनुष्य अभिष्यन्दी अर्थात् उन वस्तुओंको खाता है जो अपने ठंड और भारीपन से रस बहनेवाली नाड़ियोंको बन्द करके शरीरको भारी कर दें, उसको और जो जलन करनेवाली गरम, भारी, अजीर्ण कारक, वस्तुओंको खाता है जिसके मुखमें धूल, धुआं और वायु भरजाता है जो अधिक व्यायाम करता (कसरत करता है) अधिकमार्ग चलता है, लङ्घन करता है, बहुत बोझ उठाता है उसे हुचकी और श्वास का रोग हो जाता है ॥ १ ॥ २ ॥

जब वायु कफ से मिलता है तब पांच प्रकार की हुचकी उत्पन्न होती है अर्थात् अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महती ॥ ३ ॥

अथ सामान्यलक्षणमाह ।

वारं वारं सस्वनोमातरिश्वा
कास्यादेति श्री प्रयुक्तोऽन्ति घोरः ।
सर्वाण्यन्त्राण्याक्षिपन् प्राणनाशी
हिक्केत्युक्ता सा बुधैः शास्त्रविद्भिः ॥ ४ ॥

अथ पूर्वरूपमाह ।

हिक्कानां पूर्वरूपाणि आटोपः कण्ठगौरवम् ।
कषायत्वञ्च वक्त्रस्य पार्श्वार्त्तिर्भवन्ति हि ॥ ५ ॥

अथान्नजालक्षणमाह ।

अतिभोजनतो वायुः पीडितश्चाकुलो यदा ।
हिक्कां करोति सा मन्द्रा हिक्का स्यादन्नजा बुधैः ॥ ६ ॥

अथ यमलामाह ।

या चिरेण तु कालेन वेगाभ्यां सम्प्रवर्त्तते ।

जब प्राणवायु बार २ कफके सहित भोजन के यन्त्रोंमें फेंकने के समान पीड़ा करता हुआ मुख से बाहर निकलता है, तब वैद्य उस को प्राणनाशक रोगको हिचकी कहते हैं ॥ ४ ॥

हिचकी रोग होनेसे पहिले मुखमें आटोपसा जान पड़ता है, कण्ठभारी होजाता है, मुख भी कसैला और भारी रहता है ॥५॥

जब बहुत भोजन होने के कारण वायु व्याकुल होके बार २ मुखमें निकलता है उस को हिचकी को वैद्य अन्नजा कहते हैं ॥ ६ ॥

जो हिचकी बहुत देर २ आवे और एक संग दो आवे

कंठस्य शिरसः कम्पो यस्यां सा यमलोदिता ॥ ७ ॥

क्षुद्रामाह ।

चिरकालेन या हिक्का वेगैर्मन्दैः प्रवर्त्तते ।
क्षुद्रासा कथिता वैद्यैर्वक्षोरःसन्धिगामिनी ॥ ८ ॥

अथ गम्भीरामाह ।

बहूपद्रवसंयुक्ता नाभियातः चया बुधैः ।
गम्भीरनादसंयुक्ता गम्भीरा कथिता तु सा ॥ ९ ॥

अथ महतीमाह ।

भिन्दन्निवाङ्गमर्माणि सततं या प्रवर्त्तते ।
महती सा तु विज्ञेया यस्यां गात्रस्य वेपनम् ॥ १० ॥

अथास्यधत्वमाह ।

हिक्कतो यस्य सर्वाङ्गं कम्पते ताम्यते नरः ।
ऊर्द्ध्वं निरीक्षते चैव सोऽसाध्यः परिकीर्त्तितः ॥ ११ ॥

जिसके आने से शिर और कण्ठ कांपने लगे उस का नाम यमलाहिचकी है ॥ ७ ॥

जो हिचकी देर में धीरे धीरे २ आवे और जो हृदय और कलेजे की ओर जाय उसका नाम क्षुद्रा है ॥ ८ ॥

जो हिचकी अनेक उपद्रवोंके सहित आवे, नाभीसे उठे, जिसमें गम्भीर शब्द होय उसका नाम गम्भीरा है ॥ ९ ॥

जिस हिचकीके आनेसे रोगीको ऐसा जान पड़े कि हमारे शरीरके सब मर्मस्थान फटे जाते हैं और जिनके आनेसे शरीर कांपने लगे उसही हिचकी का नाम महती है ॥ १० ॥

अन्नद्वेषी क्षीणवीर्य्यो दोषव्याप्त वपुस्तथा।
वृद्धो व्यवायशीलश्च हिक्कार्त्तो नैव सिध्यति ॥ १२ ॥

अथ श्वासनिदानम्।

हिक्कोक्तैः कारणैः श्वासो नृणां भवति पञ्चधा।
महोर्द्ध छिन्नतमकक्षुद्रभेदैश्च पञ्चभिः ॥ १३ ॥

अथ पूर्वरूपमाह।

शङ्खपीड़स्य वैरस्य मानाहः शूलमेव च।
आध्मानं चैव हृत्पीड़ा पूर्वरूपमुदीरितम् ॥ १४ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह।

संरुद्धः श्लेष्मणा वातो यदा स्रोतःसु संस्थितः।
ततो विमार्गगो भूत्वा श्वासरोगं करोति हि ॥१५॥

जिस रोगीका सब शरीर हिचकी आनेसे कांपने लगे, रोगीको मूर्च्छा होय; ऊपरको देखने लगे, उसे जाने कि यह असाध्य है। जिस हिचकीके रोगीको अन्न अच्छा न लगे, जिसका वल और वीर्य्य नष्ट होगया हो ; जो रोगी बुढ़ा हो और अधिक मैथुन करता हो उसका भी हिचकी रोग अच्छा नहीं होता ॥ ११ ॥ १२ ॥

जिन कारणोंसे हिचकी रोग उत्पन्न होता है उनहीं से महा, ऊर्द्ध, क्षुद्र, छिन्न, और क्षुद्रनामक पांचप्रकार के श्वास उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

श्वासरोग होनेके पहले कनपटीमें पीड़ा, मुखमें विरसता, आनाह, शूल, आध्मान और हृदय में पीड़ा ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

अथ महाश्वासलक्षणमाह ।

उच्चैः श्वसिति योजन्तुरुद्धवात प्रपीड़ितः ॥ १६ ॥
हतास्य नेत्रोभृयिष्ट बद्धवर्च्चा विशीर्णवाक् ।
दूराद्विज्ञायते यस्य शब्दः स तु महाभिधः ॥ १७ ॥

अथोर्द्धश्वासमाह ।

श्वासो नायात्यधो यस्य नित्यमूर्द्धं हि गच्छति ।
ऊर्द्धदृष्टिर्नरो यस्तु कफावृतमुखस्तथा ॥ १८ ॥
क्रुद्धवातसमाविष्टो विभ्रान्तनयनस्तथा ।
प्रमुह्यन् पीड़ितो यस्तु संशुष्कवदनच्छविः ॥ १९ ॥
स ऊर्द्धश्वासवान् ज्ञेयस्तस्मिन् रोधोऽतिविस्मृतः ।
अधिश्वासस्य भवति स निहन्ति नरं तथा ॥ २० ॥

जब वायुको कफ रोकदेता है तब वही रुका हुवा वायु दूसरे मार्गों से निकलकर श्वास रोगको उत्पन्न करता है ॥१५॥

जो श्वास बहुत ऊंचे स्वरसे आवे, जिसमें वायु ऊपरको उठे, जिसमें चैतन्यता और ज्ञान नष्ट होजाय, नेत्र फैल जाय, मुह फैल जाय, विष्टा बन्द हो जाय, शुद्ध बात कहनेकी समर्थ न रहे, जिस श्वासका शब्द दूरसे सुनाई देय उसे महाश्वास कहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

जो श्वास ऊपरको उठे और सदा ऊपरही रहे, जिसमें रोगी ऊपरही को देखता रहे, मुखमें हर समय कफ भरा रहे, वायु बिगड़ा रहे, आंख फैल जांय, रोगीको मूर्च्छा होय, शरीर में पीड़ा होय और मुंह सूखा रहे उसका नाम ऊर्द्ध श्वास है इससे

अथ छिन्नमाह ।

विच्छिन्नं चातिदुःखार्त्तो विवृताक्षोऽतिपीड़ितः ।
मर्मच्छेदरुजायुक्तो नित्यं श्वसति मानवः ॥ २१ ॥
मूर्च्छानाहस्वेददाहैः पीड़ितो नष्टचेतनः ।
रक्तनेत्रः शुष्कमुखो विवर्णाङ्गः प्रलापवान् ॥ २२ ॥
छिन्नाश्वासस्तु मनुजो म्रियते शीघ्रमेव हि ॥ २३ ॥

अथ तमकमाह ।

प्रतिलोमतया वायुर्यदा स्रोतांसि गच्छति ।
तदा कफं विदूष्याथ शिरोग्रीवा विबद्ध्य च ॥ २४ ॥
पीनसं घुर्घुरत्वञ्च कंठे प्रकुरुते तदा ।
तदा श्वासः प्रभवति प्राणनाशकरो महान् ॥ २५ ॥

साधारण श्वास रुक जाता है इस लिये रोगी मर जाता है।
१८ ॥ १९ ॥ २० ॥

जिसमें श्वास रुकर कर आवे, रोगी को अत्यन्त कष्ट होय आंख फैल जाय, मर्मस्थानों में टूटने के समान पीड़ा होय मूर्च्छा, अनाह, शरीर में पीड़ा ये लक्षण होय, रोगीको कु ज्ञान न रहै, नेत्र लाल होजाय, मुंह सूख जाय, शरीरका व बदल जाय, रोगी वृथा बके, उसका नाम छिन्नश्वास है इस रोगी शीघ्र मर जाता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

जिस रोगीके वायु आनेके मार्गोंमें वायु उलटा चले औ वही वायु कफसे मिलकर शिर और गलेमें स्तम्भन कर पीनस होजाय, कण्ठ घुरर करने लगे, इसके पश्चात् रोगीको प्रा

मुहुर्मुह्यतिमोहान्ते क्षणं याति सुखं नरः ।
कण्ठोध्वंसोऽथ वाग्रोधो निद्रानाशस्तथैव च ॥ २६ ॥
उष्णेच्छा विस्तृताक्षित्वं शुष्कास्यत्वं तथैव च ।
तमकः श्वास इत्युक्तो यस्मिन्नेतानि सः परैः ॥२७॥
ज्वरमूर्च्छा परीतञ्च विद्यात्प्रतमकं भिषक् ।
उष्णैर्यो वर्द्धतेऽत्यर्थं शान्तिमेति च शीतलैः ॥ २८ ॥
उदावर्त्त रजोजीर्ण किञ्चित् कायनिरोधजः ।
वैद्यैः प्रतमाकाख्यस्तु श्वासप्रुक्तो मनीषिभिः ॥२९॥

अथ क्षुद्रश्वासमाह ।

रूक्षान्नभोजिनो जन्तोः कोष्ठे दुष्टो मरुद्बली ।
क्षुद्रं श्वासं प्रकुरुते सनैः वा तिप्रवाधकः ॥ ३० ॥

नाश करनेवाला घोर श्वास रोग उत्पन्न होता है उसमें रोगी का वार वार मूर्च्छा होती है और फिर थोड़े समय के लिये सुखी होजाता है। कण्ठ फट जाता है, निद्रा नहीं आती हैं, आंख फैल जाती हैं, गर्मीमें जानेकी इच्छा होती है, मुख सूखता रहता है, इसका नाम तमक श्वास है। यदि इसी तमक श्वासमें ज्वर और मूर्च्छा अधिक होय तो उसे प्रतमक श्वास कहते हैं वह गरम वस्तुओंसे बढ़ता है और ठण्ढी वस्तुओं से शान्त होता है इसकी उत्पत्ति धुयें, धूल और अजीर्णसे हैं ॥ २४ ॥ २८ ॥

जब रूखे भोजनसे बिगड़ा हुवा वायु पेटमें स्थित होता है तब क्षुद्र श्वास उत्पन्न होता है इसमें रोगीको अधिक पीड़ा नहीं

नचप्राणान् हरत्येष न गात्राणि प्रपीड़येत्।
न रुणद्धि गतिश्चापि भोजनस्येतरस्य वा॥ ३१ ॥
न व्यथां कुरुते देहेनेन्द्रियाणि प्रबाधते।
सुखसाध्यः स विज्ञेयो बलिनः पूर्णलक्षणः॥ ३२ ॥

अथैषासाध्यत्वादिकमाह।

न चान्ये तु तथा रोगा यथायं प्राणनाशकः।
तत्राप्यूर्द्ध महच्छिन्नास्तथोऽसाध्याः प्रकीर्त्तिताः॥३३॥
तमकः कृच्छ्रसाध्यस्तु क्षुद्रः साध्य उदाहृतः।
असाध्यस्तमकोऽप्येव दुर्बलस्य विशेषतः॥ ३४ ॥

अथ चिकित्सा।

हिक्का श्वासोत्तरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते।
स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदुवातानुलोमनम्॥ ३५ ॥

होती, केवल श्वास और बचन रुक जाता है, परन्तु शरीरमें कोई पीड़ा नहीं होती, इससे भोजन और पानी आदिका मार्गभी नहीं रुकता और न शरीर और किसी इन्द्रीमें विशेष पीड़ा होती है इसमें वायुके पूरे लक्षण मिलते हैं और सुखसाध्य है॥३०॥३२॥

जैसा भयानक श्वास रोग है ऐसा और नहीं उसमें भी ऊर्द्ध, छिन्न और महाश्वास ये तीनों असाध्य हैं। तमक कृच्छ्र-साध्य है; दुर्बल होनेसे तमक भी असाध्य होजाता है केवल क्षुद्रश्वास सुखसाध्य है॥३३॥३४॥

आगे हिचकी और श्वासकी चिकित्सा लिखते हैं।

हिचकी श्वासमें पहिले रोगीके शरीरमें तेल लगाके पसीना

ऊर्द्धाधः शोधनं शक्ते (१) दुर्बले शमनं मतम् ।
कोलमज्जाञ्जनं लाज तिक्ता काञ्चनगैरिकम् ॥३६॥
कृष्णा धात्री सिता शुंठी काशीशं दधिनाम च ।
पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णाखर्जूरमुस्तकम् ॥ ३७ ॥
षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ।

इति षडलेहाः ।

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पलीशर्करान्विता ॥ ३८ ॥
नागरं गुड़संयुक्तं हिक्काघ्नं लवणत्रयम् ।
स्तन्येन मक्षिकाविष्टा चाथवा लक्तकाम्बुना ॥ ३९ ॥

दे, फिर चिकनी नमकयुक्त औषधि देकर कोमल अनुलोमन दे ॥ ३५ ॥

बलवान रोगीको कोमल वमन और विरेचन करके शुद्ध करे निर्बल रोगीको संशमन औषधि देय ॥ ३६ ॥

बेरकी गिरी, रसौत और धानका लावा । ...की, गेरू और रसौत, पाटलीका फल और पाटलीका फूल । पीपल, धाय, चीनी और सोंठ । कसीस और कैथ । कालानिसोत, खजूर और मोथा, ये अलग अलग छः अवलेह कहे इनको सहत में मिलाकर खानेसे हिचकी रोग दूर होजाता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सहतमें मिलाकर मुलैठीमधु ; पीपलमें मिलाकर शकर, सोंठ में मिलाकर गुड़, अथवा तीनोनमक और दूध, सहत में लाखका पानी मिलाकर पीनेसे हिचकी दूर होजाती हैं ॥ ३९ ॥

---

(१) सबले ।

घोज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्ये वा चन्दनान्वितम् ।
मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् ॥ ४० ॥

इति माक्षिकावलेहः ।

हिक्कार्त्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् ।
पथ्यशाध्यां नयत्यस्तं हिक्कां चौद्रविलेहनात् ॥ ४१ ॥
सद्य एव महायोगः काशमूलभवं रजः ।
माषचूर्णभवो धूमो हिक्कां हन्ति न संशयः ॥ ४२ ॥

इति काशधूमः ।

असाध्यां साधयेद्धिक्कां सितयैलाभवं रजः ।
शर्करा मरिचं चूर्णं लीढं मधुयुतं मुहुः ॥ ४३ ॥

इति सितैलायोगः ।

दूधमें मक्खीका बिष्टा पीपकर सूंघनेसे अथवा लाखके रसमें मक्खीका बिष्टा पीसकर सूंघनेसे अथवा दूधमें घिसा चन्दन सूंघनेसे अथवा शहत और सौंचल मिलाकर नींबूका रस पीनेसे हिचकी रोग दूर होजाता है ॥ ४० ॥

हिचकी रोगमें सोंठ में पका दूध पीना चाहिये, शहत मिला कर पीनेसे असाध्य हिचकी रोग भी दूर होजाते हैं ॥ ४१ ॥

कासकी जड़का चूर्ण अथवा उड़दके चूर्णका धुआं पीनेसे हिचकी रोग दूर होजाता है ॥ ४२ ॥

चीनी और इलायची खानेसे असाध्य हिचकी दूर होजाते है। शक्कर और मिर्चमें सहत मिलाकर खानेसे हिचकी रोग दूर होजाता है ॥ ४३ ॥

निहन्ति प्रबलां हिक्कामसाध्यामपि देहिनाम् ।
हिक्काघ्नः कदलीमूलरसः पेयः सशर्करः ॥ ४४ ॥
कृष्णामलकशुंठीनां चूर्णं मधु सिता घृतम् ।
मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ॥ ४५ ॥

इति कृष्णादि चूर्णम् ।

हिक्कां हरति प्रबलां श्वासमतिप्रवृद्धं जयति ।
शिखिपुच्छभूतिपिप्पलीचूर्णं मधुमिश्रितं लीढम् ॥ ४६

इति शिखिपुच्छयोगः ।

अभयानागरकल्कं पौष्करयावशूकमरिचकल्कं वा ।
तोयेनोष्णेन पिबेच्छ्वासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ ४७ ॥

इति अभयादि ।

कर्षं कलिफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमिश्रितं मधुना ।

केलेकी जड़के रसमें शक्कर मिलाकर पीनीसे असाध्य और भयानक हिचकी भी दूर होजाती हैं ॥ ४४ ॥

पीपल, आवला, और सोंठका चूर्ण बनाकर उसमें घी, शहत और चीनी, मिलाकर बारबार खिलानेसे हिचकी और श्वासरोग बन्द होजाते हैं ॥ ४५ ॥

मोरके पंखकी भस्म और पीपल, शहतमें मिलाकर खानेसे प्रबल हिचकी और बढ़ा हुआ श्वास दूर होजाता है ॥ ४६ ॥

हर्र और सोंठ अथवा पुष्करमूल, जवाखार और मिर्च इनका कल्क गर्म पानीके सङ्ग पीनेसे हिचकी और श्वास दूर होजाता है ॥ ४७ ॥

श्चिराद्धरति श्वासं प्रबलामुद्धंसिकाञ्चैव ॥ ४८ ॥

इति कलिफलयोगः।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम्।

जह्यात्तैलेन विलिहन् श्वासान् प्राणहरानपि ॥४९॥

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत्।

त्रिसप्ताहप्रयोगेन श्वासं निर्मूलतो जयेत् ॥ ५० ॥

इति गुडतैलयोगः।

बिल्वाटरूषदलवारिसमूलशुक्ल-

दण्डोत्पलान्वितरसं कटुतैलमिश्रम्।

भार्गीं गुडाद्रिव च यत्र हतःप्रभाव-

स्तं श्वासमाशु विनिहन्ति महाप्रभावः ॥५१॥

बिल्ववासकयोः पत्रस्य शुक्लदण्डोत्पला-

पत्रस्य च स्वरसः कटुतैलेन पेयः ॥ ५२ ॥

इति बिल्वादिरसः।

बहेड़ा एककर्ष, शहतमें मिलाकर खानेसे बढ़ा हुआ श्वास बहुत शीघ्र दूर होजाता है ॥ ४८ ॥

हल्दी, मिर्च, दाख, गुड़, रास्मन, पीपल और कचूर इन सब औषधियोंको कड़वे तेलमें मिलाकर खानेसे प्राणनाशक श्वासरोग भी दूर होजाता है ॥ ४९ ॥

गुड़ और कड़वातेल मिलाकर खानेसे इक्कीसही दिनमें श्वास जड़से जाता रहता है ॥ ५० ॥

बेल, रूसा के पत्तों का रस और सफेद कमलकी जड़, पत्तोंका रस इन सबको कड़वे तेलमें मिलाकर खानेसे श्वास

कुष्माण्डकानां चूर्णन्तु पेयं कोष्णेन वारिणा ।
शीघ्रं प्रशमयेच्छ्वासं कासं चैव सुदारुणम् ॥ ५३ ॥

इति कुष्माण्डस्वरसः ।

कृष्णा सैन्धवचूर्णं स्वरसेन शृङ्गवेरस्य ।
यो लेढि शयनकाले स जयति सप्ताहतः श्वासान् ॥ ५४

इति कृष्णादियोगः ।

गन्धकं मरिचं साज्यं श्वासकासक्षयापहम् ।
गन्धकं घृतयोगेन श्वासकासक्षयापहम् ॥ ५५ ॥

इति गन्धकयोगः ।

शृङ्गीकटुत्रय फलत्रयकण्टकारी
भार्गी च पुष्करजटा लवणानि पञ्च ।

रोग दूर होजाता है, जहां अनेक औषधियोंका प्रभाव कुछ न जानपड़े अर्थात् किसी औषधिसे रोग अच्छा न होय, तहां यह औषधि देय ॥ ५१—५२ ॥

कुम्हड़ेका रस गरम पानीके सङ्ग पीनेसे घोर श्वास और कासरोग दूर होजाते हैं ॥ ५३ ॥

पीपल और सेंधानमक, अदरकके रसके सङ्ग सोनेके समय खानेसे श्वासरोग दूर होजाता है ॥ ५४ ॥

गन्धक, मिर्च और घी मिलाकर खानेसे अथवा केवल गन्धक और घी खानेसे श्वास और खांसी दूर होजाती है ॥ ५५ ॥

काकड़ासींगी, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, कटेली, बम्हनेटी, पुष्करमूल और पांचोनमक इनका चूर्ण

चूर्णं पिबेच्छिशिरेण जलेन हिक्का-
श्वासोर्द्ध्ववातकसनारुचि पीनसेषु ॥ ५६ ॥
इति शृङ्गारादिचूर्णम् ।

शतं संगृह्य भार्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा शतम् ।
शतं हरीतकीनाञ्च पचेत्तोये चतुर्गुणे ।
पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिस्रुते ॥ ५७ ॥
आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ।
पुनः पचेन् मृदावग्नौ यावल्लेहत्वमागतम् ॥ ५८ ॥
शीते च मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत् ।
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च पलिकानि पृथक् पृथक् ॥५९॥
कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ।
भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्द्धपलं लिहेत् ॥ ६० ॥

वनाकर गर्म जलके सङ्ग पीनेसे हिचकी, श्वास, ऊर्द्धवात, अरुचि और पीनसरोग दूर होजाते हैं; इसका नाम शृङ्गीआदि चूर्ण है ॥ ५६ ॥

भारङ्गी सौपल, दशमूल सौपल और हर्र सौपल इन सबको चौगुने पानीमें पकावे जब पकते पकते चौथाई रहजाय तब उतार कर कपड़े में छान लेय; फिर उसमें एकतुला गुड़ और हर्र डालकर मन्द२ अग्निमें पकावे, जब पकते पकते अवलेह होजाय तब उतार कर ठण्ढा होने पर छः पल शहत सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात, इलायची, एक एक पल और दो कर्ष पिसा हुआ जवाखार डाल देय फिर रोगीको प्रतिदिन

श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ।
स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः ॥ ६१ ॥
पलोल्लेखगते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते ।
हरीतकीशतस्यात्र प्रस्थत्वादाढकं जलम् ॥ ६२ ॥
इति भार्गीगुड़ ।

कण्टकारीद्वयं वासामृता पञ्चपलं पृथक् ।
शतावर्य्याः पञ्चदश भार्गी दशपलानि च ॥ ६३ ॥
गोक्षुरं पिप्पलीमूलं पृथक् पलसमन्वितम् ।
पाटला त्रिफलञ्चैव चतुर्गुणजले पचेत् ॥ ६४ ॥
चतुर्भागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ।
पुरातनगुड़स्यात्र पलानि दश दापयेत् ॥ ६५ ॥
घृतस्य पञ्च दत्वा च दत्वा दशपलं पयः ।
सर्वमेकीकृतं पक्त्वा चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् ॥ ६६ ॥

प्रातःकाल एक हर्र और आधापल ये लेह खिलावे तो भयानक श्वास और पांचो प्रकारकी खांसी दूर होजाती है तेज,स्वर और जठराग्नि बढ़जाती है। इसमें एक एक पल औषधि हैं उनको द्विगुणा न डाले हर्र एक प्रस्थ हैं इस लिये एक आढ़क पानीमें पकावे इसका नाम भार्गीगुड़ है ॥ ५७—६२ ॥

कटहली पांचपल,छोटी कटहली पांच पल, वासा पांचपल, गुर्च पांचपल,सतावर पन्द्रहपल,भारङ्गी दशपल,गोखुरु एकपल, पिपलामूल, पाटला एक एक पल और त्रिफला एक पल इन सबको चौगुने पानीमें पकावे,जब चौथाई रहजाय तब उतारकर

शृङ्गी द्वितोलकं जातिफलं पत्रं त्रितोलकम्।
चतुस्तोलं लवङ्गञ्च तुगाक्षीरी पृथक् पृथक्॥ ६७॥
गुड़त्वगेले च तथा तोलकद्वयमानके।
कुष्ठतोलचतुष्कञ्च शुण्ठ्यास्तोलकसप्तकम्॥ ६८॥
पिप्पल्याः पलमेकञ्च तालीशं तोलकत्रयम्।
जातीकोषं तोलकैकं शीते च मधुनः पलम्॥ ६९॥
ततः खाद्यञ्च कर्षैकमनुपानविधिं शृणु।
काष्ठमार्ज्जारिकाचूर्णं मरिचं तच्चतुर्गुणम्॥ ७०॥
एकीकृत्य वटीं कुर्य्याच्चतुर्माषमितां भिषक्।
तासामेकां चर्वयित्वा पिबेदनुजलं कियत्॥ ७१॥
शृङ्गीगुड़घृतं नाम सर्वरोगहरं परम्।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं श्वासं हन्ति सुदारुणम्॥ ७२॥

छानले फिर पुराना गुड़ दशपल, घी पांचपल और पानी दश-पल डालकर पकावे और काकड़ासींगी दोतोले, जायफल तीन तोले, तेजपात तीनतोले, लौंग चारतोले, वंशलोचन चार तोले, तज दो तोले, इलायची दो तोले, कूट चारतोले, सोंठ साततोले, पीपल एकपल, तालीस तीनतोले और जावित्री एक तोला डालकर उतार लेय जब ठण्डा होजाय तब एकपल शहत डालदेय फिर काष्ठमार्जारिका और मिर्चका चौगुना चूर्ण बनाकर खाय इस अवलेहको चार चार माशेकी गोली बना-कर रख छोड़े फिर प्रातःकाल एक गोली खिलाकर थोड़ा पानी पिला दे इससे सहस्रों वैद्योंसे न अच्छा हुआ पुराना

कासं पञ्चविधं हन्ति विविधोपद्रवान्वितम् ।
रक्तपित्तं क्षयञ्चैव स्वरभङ्गमरोचकम् ॥ ७३ ॥
विशेषाच्चिरकालोत्थं श्वासं हन्ति सुदुस्तरम् ॥७४॥

इति शृङ्गीगुड़घृतम् ।

भार्ग्याः शतार्द्धं वासायाः कंटकार्य्याश्च पाचयेत् ।
तुलामितं जलं दत्वा निशाचरचतुष्टयम् ॥ ७५ ॥
जलाढ़के पचेत्तेन चतुर्थमवशेषयेत् ।
वस्त्रपूतञ्च तत्सर्वं सिताप्रस्थं ततः क्षिपेत् ॥ ७६ ॥
उष्णोऽवतारिते तत्र चूर्णानीमानि दापयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं तालीशं नागकेशरम् ॥ ७७ ॥
भार्गी वचा श्वदंष्ट्रा च त्वगेलापत्रजीरकम् ।
यमानी चाजमोदा च वांशीकौलत्थजं रजः ॥७८॥

श्वास, सब उपद्रवयुक्त पांचो प्रकारकी खांसी, रक्तपित्त, क्षय, स्वरभङ्ग और अरुचि रोग दूर होजाते हैं इसका नाम शृङ्गीघृत है ॥ ६३—७४ ॥

बम्हनेटी पचासपल, वासा पचासपल और कटहली पचास पल इन सबको एकतुला पानीमें भिगोकर चारदिन रक्खा रहने देय फिर एक आढ़क पानीमें मिलाकर पकावे जब चौथाई रहजाय तब उतारकर कपडेमें छान लेय, फिर एक प्रस्थ शक्कर डालकर पकावे जब चाश्नी होजाय तब उतारकर गर्भहीमें सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, मोथा, तालीस, नागकेशर, भारङ्गी, वच, गोखुरु, तज, तेजपात, इलायची, जीरा, अजमाइन, अजमोदा, वंशलोचन,

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कोलमात्रं क्षिपेत्ततः।
शीते क्षौद्रं प्रदातव्यं कुडवार्द्धं शुभे दिने॥ ७९॥
लिहेत्पिचुमितं नित्यं प्रातर्भोज्यानुपानतः।
हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासमेव सुदारुणम्॥ ८०॥
यक्ष्माणं हन्ति हिक्काञ्च ज्वरं जीर्णं व्यपोहति।
रोगानेतान्निहन्त्याशु बलपुष्ट्यग्निवर्द्धनम्॥ ८१॥
इति भार्गीशर्करा॥

मेचकं पलमितं मृतमभ्रं ब्रह्मयष्टिकनकाह्वनशाखाः।
काममर्दवननिम्बकचव्यं ग्रन्थिकं दहनमूलसमेतम्॥ ८२
एकशश्च पलिकैरिह सत्वैर्मर्दितं सुवलितं गुडिकाख्यम्।
श्वासकासमुदरं चिरमेहान् पाण्डुगुल्मयकृतं गल-
रोगम्॥ ८३॥

कुलथी, कायफल, पुष्करमूल और काकड़ासिंगी इन सबको एक२ कोल चूर्ण करके डाले, फिर ठण्डा होनेपर आधा कुड़व शहत डाले और शुभ दिनसे अनुपानके सहित एक पिचुभर खाय इससे पांचोप्रकारकी खांसी, घोर श्वास, राजयक्ष्मा, हिचकी और पुराना ज्वर दूर होजाता है तथा बल, पुष्टि और अग्निकी वृद्धि होती है। इसका नाम भारङ्गी शर्करा है॥ ७५—८१॥

मेचक (सुर्मा) एकपल, अभ्रककी भस्म, बमनेटी, धतूरेके बीज, गुरिच, वासा, चकवन, (कसौंदी वा पवाड़,) बननीम, चाभ, पीपलामूल और चीतेकी जड़ इन सबको एक एक पल लेकर पीसके रक्खे; इसके खानेसे खांसी श्वास, पेटके रोग, पुरानी प्रमेह, पाण्डुरोग, गुल्म, यकृत, गलेके रोग, शोथ, मूर्च्छा,

शोथमोहनयनास्यजरोगं यक्ष्मपीनसगरं बलसादम् ।
गण्डमण्डलवमिभ्रमदाहं प्लीहशूलविषमज्वरकृच्छ्रम्
हन्ति वातकफपित्तमशेषं डामरेश्वरमिदं महदभ्रम् ८४

इति डामरेश्वराभ्रम् ।

कर्षद्वयं लौहचूर्णं कर्षार्द्धमभ्रमेव च ।
सिता कर्षद्वयञ्चैव मधु कर्षद्वयं तथा ॥ ८५ ॥
त्रिफला मधुकं द्राक्षा कणा कोलास्थिवंशजा ।
तालीशपत्रं वैडङ्गमेलापुष्करकेशरम् ॥ ८६ ॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि कर्षार्द्धञ्च समांशिकम् ।
लौहे च लौहदण्डेन मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥ ८७ ॥
ततो मात्रां लिहेत् क्षौद्रैर्बुद्धा दोषबलाबलम् ।
इदं श्वासारिलौहञ्च महाश्वासं विनाशयेत् ॥८८॥

नेत्ररोग, पीनस, यक्ष्मा, मुखरोग, दुर्बलता, गण्डमण्डल, वमन, भ्रम, दाह, पिलही, दुःसाध्यज्वर, वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुए रोग सब दूर होजाते हैं इसका नाम डामरेश्वर अभ्रमक है ॥ ८२—८५ ॥

लोहचूर्ण दो कर्ष, अभ्रककी भस्म आधाकर्ष, मिश्री दो कर्ष, शहत दो कर्ष, त्रिफला, जेठीमधु, दाख, पीपल, बेरकी गिरी, वंशलोचन, तालीशपत्र, बिड़ङ्ग, इलायची, पुष्करमूल और नागकेशर, ये सब आधा आधा कर्ष डालकर चूर्ण बनावे, फिर सब औषधि मिलाकर दो पहर तक लोहेके डण्डेसे लोहेके खरलमें घोटे और रोगीको दोष तथा बलके अनुसार इसकी मात्रा खिलावे, इससे एक या दो अथवा तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ

कासं पञ्चविधञ्चैव रक्तपित्तं सुदारुणम्।
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव तथैव सान्निपातिकम्॥ ८९॥
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा॥९०॥

इति महाश्वासारिलौहम्।

पिप्पल्यामलकीद्राक्षा कोलास्थिमधुशर्करा।
विडङ्गपुष्करैर्युक्तं लौहं हन्ति सुदारुणम्॥ ९१॥
हिक्कां छर्दिं महाश्वासं त्रिरात्रेण न संशयः।
सर्वचूर्णसमं लौहं हिक्कायामतिशस्यते॥ ९२॥

इति पिप्पल्याद्यं लौहम्।

रसं गन्धं विषं टङ्कं शिलोषणाकटुत्रिकम्।
सर्वं संमर्द्य दातव्यो रसः श्वासकुठारकः॥ ९३॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतं कासं श्वासं स्वरक्षयम्।
नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ ९४॥

घोर श्वास पांचोप्रकारकी खांसी और भयानक रक्तपित्त इस प्रकार दूर होजाता है जैसे सूर्य्य उदय होनेसे अन्धकार इसका नाम महाश्वासारि लोह है॥ ८९—९०॥

पीपल, आमला, दाख, वेरकी गिरी, शहत, शक्कर, विडङ्ग, पुष्करमूल और लोहा इन सबको मिलाकर खानेमें तीनही दिनमें निःसन्देह माहाश्वास, हिचकी और वमन दूर होजाता है इस योगमें सब औषधि एक एकभाग और लोहा सबके समान पड़ता है इसका नाम पिप्पल्यादि लोह है॥ ९१—९२॥

पारा, गन्धक, विष, सुहागा, मैनशिल, मिर्च और त्रिकुटा इन सबको पीसकर रख छोड़े और रोगीको खिलावे इससे वात,

अत्र मरिचस्य भागद्वयं पुनरुक्तत्वात्(१) मात्रा रक्तिमिता वृद्धवैद्योपदेशात् आर्द्रकरसानुपानम्॥ ९५॥

इति श्वासकुठारोरसः।

रसं विषं समं गन्धं टङ्कणं समनःशिलम्।
एतानि समभागानि मरिचञ्चाष्टटङ्कणम्॥ ९६॥
टङ्कषट्कं त्रिकटुकं खल्ले कृत्वा विचूर्णयेत्।
रसः श्वासकुठारोऽयं निजमूत्रकासजित्॥ ९७॥
प्रतिश्यायञ्च यक्ष्माणमेकादशविधं क्षयम्।
हृद्रोगं पार्श्वशूलञ्च स्वरभेदञ्च दारुणम्॥ ९८॥
सन्निपातं तथा तन्द्रां प्रलापञ्च विनाशयेत्।
गता संज्ञा यदा पुंसां तदानस्यं प्रदापयेत्॥ ९९॥
घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाकारमनुत्तमम्।
सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदौ च दुःसहाश्च शिरोव्यथा॥ १००॥

कफसे उत्पन्न हुई खांसी, श्वास, ज्वर और स्वरभेद इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष इसमें मिर्च दोबार कही है इस लिये वह दो भाग पड़ती है इसका नाम श्वास कुठार रस है॥ ९३—९५॥

पारा, विष, गन्धक, सुहागा और मैनसिल ये सब एक एक भाग, मिर्च आठभाग तथा सोंठ और पीपल छः २ भाग डालकर खरल में घोटे, इससे भयानक खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, ग्यारह प्रकारकी यक्ष्मा, क्षय, हृद्रोग, पसलीकी पीड़ा, भयानक स्वरभेद, सन्निपात,

---

(१) तदुक्तम्, "एकमप्यौषधं योगे यस्मिन् यत् पुनरुच्यते। मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः" इति।

अनुपानं पर्णरससमार्द्रकस्य रसं तथा।
टङ्कणादष्टगुणमरिचं षड्गुणा पिप्पली शुण्ठी ॥१०१

इति श्वासकुठारोरसः।

रसं गन्धं विषं व्योषं मरिचं चव्यचित्रकम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव संमर्द्य वटिकां ततः॥ १०२ ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुर्ज्जयम्॥ १०३ ॥
अत्रापि मरिचस्य भागद्वयम्॥

इति श्वासभैरवोरसः।

इति भैषज्यरत्नावल्याम् हिक्काश्वासचिकित्साऽधिकारः समाप्तः।

जमुहाई, प्रमेह, सूर्य्यावर्त्त, अर्द्धभेदक और शिरके घोर रोग दूर होजाते है। जब किसीको मूर्च्छा आजाय तब उसकी नाकमें ये रस फूंकनेसे रोगी उसी समय चैतन्य होजाता है; इसको अदरक के रसके संग देना चाहिये। इसका नाम भी श्वासकुठार रस है ॥ ८६—१०२ ॥

पारा, गन्धक, विष, त्रिकुटा, मिर्च, चाभ और चीता इन सबको अदरकके रसमें भिगोकर दो रत्तीकी गोली बनाले और एक गोली जलके सङ्ग खाय तो भयानक श्वास, खांसी और स्वरभेद रोग शीघ्र दूर होजाते हैं। इसका नाम श्वासभैरव रस है इसमें भी मिर्च दोभाग पड़ती है ॥ १०३—१०४ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें हिक्काश्वासचिकित्सा समाप्त।

अथ स्वरभेदाधिकारः ।

अथ स्वरभेदमाह ।

वातादयः प्रकुपिता मनुजस्य देहे
पाठाभिघातविषमक्षणदीर्घशब्दैः ।
स्रोतःसु शब्दनिवहेषु गताः समन्तात्
हन्युःस्वरं प्रभवति स्वरभेदरोगः ॥ १ ॥
वातेन पित्तेन कफेन सर्वैः
क्षयेण मेदोऽधिकसम्भवेन ।
ते षड्विधस्तं प्रवदन्ति चैवं
रोगं मुनीन्द्राः श्रुतिपारयाताः ॥ २ ॥

अथ वातिकमाह ।

कृष्णास्य मूत्र चणवांस्तु वाते
भिन्नस्वरो रासभतुल्यशब्दः ।

जब मनुष्यके शरीरमें वात, पित्त और कफ अधिक पढ़ने, विषखाने चोट लगने और बोलनेसे, बिगड़कर जब शब्दवाहिनी नाड़ियोंके मुखोंको रोक देते हैं तब मनुष्यका स्वर साफ नहीं निकलता है उसे ही वैद्य स्वरभेद रोग कहते हैं ॥ १ ॥

स्वरभेद रोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, क्षय, और अधिक मेद बढ़नेसे छः प्रकारका होता है ॥ २ ॥

वायुसे उत्पन्न हुवे स्वरभेदमें मुख, नेत्र और मूत्र काले होजाते हैं, स्वर फटा हुआ और गधेके समान शब्द होजाता है ।

अथ पित्तजमाह।

मायुद्भवे पीतनखाक्षिवर्चा

दाहान्वितो कंठगत स्वरश्च ॥ ३ ॥

अथ श्लेष्मिकमाह।

मन्दं शनैः श्लेष्मभवे मनुष्यो

दिने विशेषाद्गदतीह वाक्यम्।

अथ सन्निपातिकमाह।

सर्वात्मके सर्वमिदं विशेषा-

दसाध्य उक्तो मुनिभिः स एव ॥ ४ ॥

अथ क्षयजमाह।

क्षयोद्भवे धूमइतेव वाक्तु

सरत्यथोऽनुः स तु वर्ज्य एव।

अथ मेदोभवमाह।

तृष्णान्वितो वदति कंठगतं च शब्दम्

पित्तसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें मूत्र, नेत्र, नखून और विष्ठा पीले होजाते है, शब्द कण्ठमें घुघु राहके समान होजाता हैं और सब शरीरमें दाह होता है ॥ ३ ॥

कफसे उत्पन्न हुवे स्वरभेदमें मनुष्य धीरे धीरे नीचे स्वरसे बोलता है विशेषकर दिनमें रोगीका गला कफसे रुक जाता है सन्निपातसे उत्पन्न हुवे स्वरभेदमें ऊपर लिखे सब लक्षण मिलते हैं। मुनीश्वरोंने इस रोगको असाध्य कहा है ॥ ४ ॥

क्षयसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें ऐसा शब्द निकलता है जैसा गलेमें

अन्तर्गलेन कफतः परिलिप्तकंठः ॥ ५ ॥

अथासाध्यत्वमाह ।

मेदोऽधिकस्य मनुजस्य जरार्दितस्य
वृद्धस्य क्षीणवपुषः किल सोऽस्यसाध्यः ।
दोषत्रयोत्थश्च चिरोद्भवश्च
स्वरक्षयोऽसाध्यतमः प्रदिष्टः ॥ ६ ॥

अथ चिकित्सा ।

वायौ सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समा[क्षि]कम् ।
कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवड इष्य[ते] ॥ ७ ॥
गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः ।
तेर्विनिष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चास्य प्रसीदति ॥ ८ ॥

धुआं भरनेसे रोगीको दस्त भी आने लगते हैं वैद्योंने इससे भी असाध्य ही माना है ।

जिस स्वरभेदमें मनुष्यका शब्द कुछ जान ही न पड़े अर्थात् साफ न निकले और शब्द कण्ठही में रहजाय गलाहरसमय कफसे भरा ही रहै उसे भेदसे भयास्वरभेद कहते हैं ॥ ५ ॥

बुढ़ापेमें, मेदसे उत्पन्न हुआ, तीनो दोषोंसे उत्पन्न हुआ, पुराना स्वरभेद असाध्य होता है और बूढे तथा क्षीण मनुष्यको उत्पन्न हुए सब ही स्वरभेद असाध्य है ॥ ६ ॥

आगे स्वरभेदको चिकित्सा लिखते हैं ।

वातसे उत्पन्न हुवेमें नमक और तेल । पित्तसे उत्पन्न हुवेमें घी, शहत । तथा कफसे उत्पन्न हुवे में खार, मिर्च और शहत मिलाकर मुखमें रक्खे ॥ ७ ॥

अथवा इन्हो औषधियोंको मुखमें रखनेसे कण्ठ, जिह्वा, तालु

स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ।
क्षयजे कफजे चापि प्रत्याख्याया चरेत् क्रियाम् ॥९॥

चव्याम्ल वेतसकटुत्रिकतिन्तिड़ीक
तालीशजीरकतुगादहनैः समांशैः ।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्य्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ १० ॥

इति चव्यादिचूर्णम् ।

अजमोदां निशां धात्रीं चारं वह्निं विचूर्णयेत् ।
मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा स्वरभेदमपोहति ॥ ११ ॥

इति अजमोदादिचूर्णं ।

और दांतोकी जड़का मैल निकल जाता है और स्वर भी निर्मल होजाता है ॥ ८ ॥

मेदमें उत्पन्न हुवे स्वरभेदमें कफके समान चिकित्सा करे, कफ और क्षयसे उत्पन्न हुए स्वरभेदको असाध्य कह कर चिकित्सा करे ॥ ९ ॥

चाभ, अमलवेत, सोंठ, मिर्च, पीपल, तिन्तड़ीक तालीशपत्र, जीरा, वंशलोचन और चीता, इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे. उसमें गुड़, तज, तेजपात और इलायची मिलाकर खानेसे स्वरभेद, पीनस, कफ और अरुचि रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम चव्यादि चूर्ण है ॥ १० ॥

अजमोदा, हल्दी, आंवला, जवाखार और चीतेके चूर्णमें घी और शहद,मिलाकर खानेसे स्वरभेद दूर होजाता है ; इसका नाम अजमोदादि चूर्ण है ॥ ११ ॥

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।
स्वरोपघाते कासे च लेहमेतत् प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

इति बदरीपत्रकल्कः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।
पिबेन्मूत्रेण मतिमान् कफजे स्वरसंक्षये ॥ १३ ॥

इति पिप्पल्यादिचूर्णः ।

व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्ना वाट्यालगोक्षुरव्योषैः ।
सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात् कासञ्च पञ्चविधम् ॥ १४ ॥
शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे ।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १५ ॥

इति व्याघ्रीघृतम् ।

बेरके पत्तोंके कल्कको घी में भूनकर सेंधा मिलाकर खानेसे स्वरभेद अच्छा होजाता है, इसका नाम बदरी पत्र कल्क है ॥ १२ ॥

पीपल, पिपरामूल, मिर्च और सोंठ इन सबको कफसे उत्पन्न हुवे स्वरभेद में गोमूत्रके सङ्ग पिवै, इसका नाम पिप्पल्यादि चूर्ण है ॥ १३ ॥

कटेलीके रससे रासना, वाट्यालक, गोखरू, त्रिकुटा और घी, पकावे इस घी के खानेसे पांचोंप्रकारकी खांसी और स्वरभेद रोग दूर होजाते हैं। जहां गीली औषधि न मिले तहां सूखी औषधिको आठ गुन पानीमें पकाकर चौथाई रहनेपर उतार लेय और उसी जलको स्वरसके स्थान पर व्यवहार में लावे, इसका नाम व्याघ्रीघृत है ॥ १४ ॥

आमोंको पत्ते और जड़ समेत लाकर पानीमें धो कर ऊखल में कूटकर वस्त्रमें रखकर रस निकाल लेय, फिर इस चार प्रस्थ

समूलपत्रामादाय ब्राह्मीं प्रक्षाल्य वारिणा ।
उदूखले क्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ १६ ॥
रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
औषधानि तु पेष्याणि तानीमानि प्रदापयेत् ॥१७॥
हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिवृता सहरीतकी ।
एतेषां पलिकान् भागान् शेषाणि कार्षिकाणि च ॥ १८
पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा ।
सर्वमेतत् समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १९ ॥
एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिः प्रजायते ।
सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ २० ॥
अर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत् ।
मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रन्तु धारयेत् ॥ २१ ॥
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि अर्शांसि विविधानि च ।
पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं तथा ॥ २२ ॥

रस में एकप्रस्थ घी डाले और पकते समय हल्दी, मालती, कूट, निसोत, हर्र ये सब एक एक पल; पीपल, विडङ्ग, सेंधा, शक्कर और वच, ये सब एक एक कर्ष लेकर डाल देय और मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे, जब पक चुके तब उतार लेय। इसके खाते ही स्वर शुद्ध होजाता है सात दिन खानेसे किन्नरों के सङ्ग गान कर सक्ता है। पन्द्रह दिन खानेसे चन्द्रमाके समान सुन्दर होजाता है और एक महीना खानेसे श्रुतिधर अर्थात् सुनते मात्रमें धारण करने की शक्तिवाला मनुष्य होजाता है। इसमें अठारह प्रकारके

वन्ध्यानामपि नारीणां नराणामल्परेतसाम् ।
घृतं सारस्वतं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २३ ॥

इति सारस्वतघृतम् ।

अभ्रं सेवकसारितं पलमितं व्याघ्रीबला गोक्षुरं
साक्ष्यापिप्पलीमूलभृङ्गवृषका: पत्रं तथा वाद्रम् ।
धात्रीत्वालिगुडूचिका पृथगत: सर्व्वै: पलांशैर्युतं
संग्राह्यालिमनोरमं सुवलितं कृत्वा यदा सेवितम् ॥२
वातोत्थं कफपित्तजं स्वरगदं यच्च त्रिदोषात्मकं
अत्युच्चैर्वदतो हतं बहुविधं पानीयदोषोद्भवम् ।
कासं श्वासमुरोग्रहं सयकृतं हिक्कां तृषां कामला
मर्शांसिग्रहणीज्वरं बहुविधं शोथं क्षयञ्चार्बुदम् ॥ २४ ।

कुष्ठ, अनेक प्रकार के अर्श, पांच प्रकारके गुल्म, बीस प्रकार
प्रमेह और पांचों प्रकारके कामरोग दूर होजाते हैं। वन्ध्या स्त्रि
के पुत्र होता है, अल्पवीर्य्यवाले मनुष्योंका बल, तेज और अग्निक
वृद्धि होजाती है इसका नाम सारस्वतघृत है ॥ १५ ॥ २२ ॥

सुरमा, अभ्रककी भस्म एकपल, कटहली, बरियारा, गोखुर
घीकवार, पीपलामूल, घमिरा, बासा, बैरके पत्ते, आमला, हल्दी
और गुर्च ये सब एक एक पल इन सबको खरलमें डालकर घोटे
फिर उसके खानेसे वात, पित्त, कफ, अथवा सन्निपात से उत्पन्न
हुवा, ऊंचे स्वरसे बोलनेसे उत्पन्न हुवा स्वरभेद, खांसी, श्वास,
गलग्रह, यकृत, हिचकी प्यास, कामला, अर्श, ग्रहणी, अनेक
प्रकारका ज्वर शोथ, क्षय अर्बुद और आमसे उत्पन्न हुवे, दोष दूर

इति ताम्रकमभ्रमद्भुततरं वृष्यातिवृष्यं परं
वह्नेर्वृद्धिकरं रसायनवरं सर्वामयध्वंसि तत् ॥ २६ ॥

इति ताम्रकाभ्रम् ।

इति भैषज्यरत्नावल्याम् स्वरादिभेदाधिकारः समाप्तः ।

अथारोचकाधिकारः ।

अथारोचकनिदानमाह ।

वाताद्यस्त्रयो दोषा भयशोकार्दिता भृशम् ।
दुर्गन्धिपीड़िता वापि अरुचिं जनयन्ति ते ॥ १ ॥

अथ वातिकमाह ।

वातोद्भवे दन्तहर्षः कषायमुखता तथा ॥ २ ॥

होजाते हैं इस रसायन औषधिसे बल और अग्निकी वृद्धी होती है इसका नाम ताम्रक अभ्रक औषध है ॥ २३ ॥ २६ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें स्वरभेद चिकित्सा अधिकार समाप्त ।

जब वात, पित्त और कफ, भय, शोक और दुर्गन्धि आदि दोषोंमें अत्यन्त व्याकुल होजाते हैं तब अरोचक रोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

वायुसे उत्पन्न हुवे अरोचक रोगमें दांत हिलने लगते हैं और मुख कसैला होजाता है ॥ २ ॥

अथ पैत्तिकमाह ।

पित्तजेऽम्लमुखत्वन्तु ओषणं वा कटुकास्यता ।
पटुत्व मुखतापश्च अरोचकगदे भृशम् ॥ ३ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह ।

दग्धः कफो लवणतामुपयाति देहे
तेनास्य वक्त्रमुपयाति पटुत्वमेव ।
शैत्यश्रमार्त्तिमुखलेपसमन्वितोना
अरोचके श्लेष्मभवे विशेषात् ॥ ४ ॥

अथ सान्निपातिकमाह ।

सर्वेषां लिङ्गरोगानां सान्निपाते निदर्शनम् ॥ ५ ॥

अथागन्तुकमाह ।

शोकक्रोधातिलोभश्रमभयजनितेऽहृद्यगन्धोत्थिते च ।
चिन्ताव्यायाममार्गश्रमरतिहृदयक्षोभजाते मनुष्यः ॥

पित्तसे उत्पन्न हुए अरोचक अरोगमें मुंह खट्टा होजाता है, शरीरमें गर्मी रहती है, मुंह कडुआ अथवा नमकीन होजाता है ॥ ३॥

जला हुआ कफ नमकीन होजाता है इस लिये कफके अरोचक रोगीका मुख भी नमकीन होजाता है। जाड़ा, परिश्रम और सब शरीरमें पीड़ा होती है मुख कफसे लिपासा रहता है ॥ ४ ॥

सन्निपातसे उत्पन्न हुवे, अरोचक रोगमें तीनोंदोषोंके लक्षण मिलते हैं ॥ ५ ॥

शोक, क्रोध, अधिक लोभ, अधिक परिश्रम, दुर्गन्ध, चिन्ता, व्यायाम (कसरत), मार्ग चलनेके परिश्रम, अधिक मैथुन और हृदयमें दुःख होनेके कारण जब मनुष्यको अरुचि होती है तब मुख

तिक्तास्यश्चापि पीड़ा श्रमभरसहितो द्वन्द्वहर्षान्वितश्च
अम्लास्यः पीतदेहोऽरुणतरनयन स्तोत्थपीड़ान्वितश्च ६

अथ लक्षणान्तराण्याह।

वातेन हृच्छूलनिपीड़ितन्तु
पित्तेन तृष्णा परिदाहयुक्तम्।
कफेन चैनं मुखसेकयुक्तं
विद्यात्त्रिपक् चान्यतमैश्च चिह्नैः॥ ७॥

अथ भक्तद्वेषलक्षणमाह।

मनसा चिन्तयित्वा तु दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च भोजनम्।
योनिच्छति नरो भोक्तुं सभक्तद्वेषवानरः॥ ८॥
चिन्ता शोकभयक्रोधैर्दोषव्याप्तस्य देहिनः।
भक्तद्वेषः प्रभवति स कैश्चित् पृथगीरितः॥८॥

कड़वा अथवा खट्टा होजाता है। सब शरीरमें पीड़ा, थकाई दांत खट्टे होने ये सब लक्षण होते हैं, नेत्र, पीले, अथवा अधिक लाल होजाते हैं॥ ६॥

वातसे उत्पन्न हुई अरुचीमें हृदयमें पीड़ा; पित्तसे उत्पन्न हुईमें जलन और कफसे, लिपासा मुख रहता है॥ ७॥

जो मनुष्य मनसे तो खानेकी इच्छा करे परन्तु भोजनको देख-कर और छूकर विरक्त होजाय उसे भक्तद्वेष रोगी कहते हैं॥ ८॥

जब मनुष्यका शरीर चिन्ता, शोक, क्रोध और भयादि कारणों से बिगड़े दोषोंसे भर जाता है तब उसे भक्त द्वेष रोग उत्पन्न होता है किसी किसी वैद्यने इसे अरुचीसे अलग माना है परन्तु सबने नहीं॥ ८॥

अथ चिकित्सा ।

बस्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ।
कुर्य्यात् हृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च मनोघ्नजे ॥ १० ॥
कुष्ठसौवर्च्चलाजाजी शर्करा मरिचं विडम् ।
धात्र्येला पद्मकोशीरपिप्पल्यश्चन्दनोत्पलम् ॥ ११ ॥
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।
आर्द्रदाड़िमनिर्य्यासश्चाजाजीशर्करायुतः ॥ १२ ॥
सतैलमाक्षिकास्त्वेते चत्वारः कुड़वग्रहाः (१) ।
चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वातार्द्येकजसर्वजान् ॥ १३ ॥
त्वङ्मुस्तमेला धान्यानि मुस्तमामलक त्वचः ।
त्वक् च दार्व्वी यमान्यश्च पिप्पल्यस्तेजवत्यपि ॥ १४ ॥

आगे अरुचिरोगकी चिकित्सा लिखते हैं ।

वायुसे उत्पन्न हुवे, अरुचि रोगमें वस्ती, पित्तसे उत्पन्न हुवेमें विरेचन और कफसे उत्पन्न हुवे में अनुकूल और हृद्य, प्रिय औषधियोंसे वमन दे, यदि किसी मानसिक दोषसे अरुचि उत्पन्न हुई होय तो रोगी का चित्त प्रसन्न करने का उपाय करे ॥ १० ॥

कूट, सौंचल, कलौंजी, शक्कर, मिर्च और बिड़नोन, आंवला, इलायची, पद्माख, खस, पीपल, चन्दन, कमल, लोध, तेजबल, हर्र, सोंठ, मिर्च, पीपल और जौकी नाल, अनारका रस, कलौंजी और शक्कर, इन चारो औषधियोंसे तेल और शहत मिला कर खानेसे वातादिक से उत्पन्न हुवे और सन्निपात से उत्पन्न हुवा अरोचक क्रमसे नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥ १३ ॥

तज, मोथा, इलायची और धनिया, मोथा, आंवला और तज,

(१) कवलग्रहा इत्यपि पाठः ।

यमानी तिन्तिड़ीकञ्च पञ्चैते मुखशोधनाः।
श्लोकपादैरभिहिताः सर्वारोचकनाशनाः॥ १५॥
अम्लिका गुड़तोयञ्च त्वगेला मरिचान्वितम्।
अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम्॥ १६॥
कारव्यजाजीमरिचं द्राक्षावृक्षाम्लदाड़िमम्।
सौवर्च्चलं गुड़ं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम्॥ १७॥
त्रिदृच्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाड़िमसम्भवः।
असाध्यामपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारितः॥ १८॥
यमानी तिन्तिडीकञ्च नागरञ्चाम्लवेतसम्।
दाड़िमं वदरञ्चाम्लं कार्षिकांस्तु प्रकल्पयेत्॥ १९॥
धान्यसौवर्च्चलाजाजीवराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम्।

तज, दारुहलदी और अजवाइन, पीपल और तेज बल, अजवाइन और तिन्तडीक ये जो पांच योग कहे इनके खानेसे सब प्रकारके अरोचक दूर होजाते हैं॥ १४॥ १५॥

इमली, गुड़, तज और इलायची को पानीमें घोलकर पीनेसे सब प्रकारकी अरुचि दूर होजाती है॥ १६॥

कलौंजी, जीरा, मिर्च, दाख, अमलबेत, अनार दाना, सौंचल, गुड़ और सहत, मिलाकर खानेसे सबप्रकारके अरोचक दूर होजाते हैं॥ १७॥

त्रिकुटाके चूर्णको सहत और अनारके रसमें मिलाकर खानेसे असाध्य अरुचि रोग भी दूर होता है॥ १८॥

अजवाइन, तिन्तडीक, सोंठ, अमलबेत, अनार, और खट्टाबेर, इन सबको एक२ कर्ष लेय, धनिया, कालानमक, जीरा, और तज, ये सब आधा आधा कर्ष, एकसो पीपल, दोसौ मिर्च और चारपल

पिप्पलीनां शतञ्चैव द्वे शते मरिचस्य च ॥ २० ॥
शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ।
जिह्वा विशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ २१ ॥
हृत्पीड़ा पार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम् ।
श्वासकासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ २२ ॥

इति यमानीषाडवः ।

अष्टादशशिग्रुफलानि दशमरिचानि विंशतिः पिप्पल्यश्च
आर्द्रकस्य पलं गुडपलं प्रस्थद्वयमारनालस्य ।
एतद्विडलवणसहितं खजाहतं(१) सुरभिगन्धाढ्यम् ।
व्यञ्जनसहस्रघाति ज्ञेयं कलहंसकं नाम ॥ २३ ॥

इति कलहंसः ।

शक्कर डालकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णके खानेसे भोजन करनेकी इच्छा होती है जिह्वा और हृदय शुद्ध होते हैं ; हृदयकी पीड़ा, पसलीकी पीड़ा, विबन्ध, अनाह, खांसी, श्वास, अतीसार, ग्रहणी और अर्शरोग दूर होजाते हैं ; इसका नाम यमानीषाड़व है ॥ १९ ॥ २२ ॥

अठारह सहजनेके फल, दश मिर्च, बीस पीपल, एकपल अदरक, एकपल गुड़, दो प्रस्थ कांजी, इन सबमें विड़नोन डालकर सुगन्धित करके संधान बनावे इसके खानेसे सब प्रकारके भोजन पचजाते हैं ; इसका नाम कलहंस संधानक है ॥ २३ ॥

(१) सन्धानद्रव्यविहितम् ।

भागास्तु पञ्चचिञ्चायाः खण्डस्यापि चतुर्गुणाः (१) ।
धान्यकार्द्रकयोर्भागं चतुर्भागार्द्धभागिकम् ॥ २४ ॥
द्विगुणं जलमेतेषामेकपात्रे विलोडितम् ।
पिहितं तप्तदुग्धेन ततो वस्त्रपरिप्लुतम् ॥ २५ ॥
विधिना धूपिते पात्रे कृत्वा कर्पूरवासितम् ।
नृपयोग्यमिदं पानं भवेद् युक्त्या सुयोजितम् ॥ २६ ॥
इति पानकम् ।

अर्द्धाढ़कं सुचिरपर्युषितस्य दध्नः
खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य ।
सर्पिः पलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं
शुंठ्याः पलार्द्धमपचार्द्धपलश्च सम्यक् ॥
शुक्ले पटे ललनया मृदुपाणिघृष्टा
कर्पूरचूर्णसुरभीकृतभाण्डसंस्था ।

पकी हुई अमली पांच भाग, खांड चारभाग, धनिया चार भाग, अदरक आधाभाग, इन सबको एक बर्त्तन में भरकर हाथ से मिला देय पश्चात् गर्मदूध डालकर कपड़े में छाने और कपूर के धुयेंसे सुगन्धित बर्त्तन में भर कर रख देय, यह उत्तम वस्तु राजोंके खाने योग्य होती है ॥ २४ ॥ २६ ॥

बासी खट्टा दही आधा आढ़क, चन्द्रमाके समान सुन्दर खांड सोलहपल, घी एक पल, शहत एकपल, मिर्च दो कर्ष, सौंठ आधा पल और पीपल, इन सबको दही में मिलाकर सफेद कपड़े में डालकर धीरे धीरे हाथसे छाने और इस सबको कपूर आदि से

(१) चतुर्गुणाः

एषा वृकोदरकृता सुरसा रसाला
आस्वादिता भगवता मधुसूदनेन ॥ २७ ॥
रसाला बृंहणी वृष्या स्निग्धा बल्या रुचिप्रदा ।
ततः खादेत् अत्र दध्नो न द्वैगुण्यमिति केचित् ॥२८॥

इति रसाला ।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीक्वाथेन मर्दयेत् ।
देवपुष्पं बाणमितं रसपादं तथा मृतम् ।
माषमात्रन्तु तत्सर्वं नागरेण गुडेन वा ॥ २९ ॥
सर्वांश्चैव गुल्मार्त्तिमामवातं विनाशयेत् ।
विसूचीमग्निमान्द्यञ्च भक्तद्वेषं सुदारुणम् ।
रसो निःशेषयत्येष केशरी करिणं यथा ॥ ३० ॥

इति रसकेशरी ।

इति मदात्ययादिकाचिकित्सा ।

सुगन्धित बर्तन में भर कर रख देय यह उत्तम रसाला भीमसेनने बनाकर भगवान् श्रीकृष्णको खिलाई थी ; इससे बल, वीर्य, शरीर की चिकनाई और रुचि बहुत बढ़ जाती है ; किसी किसी वैद्यका यह भी मत है कि इसमें दही द्विगुना न डालना चाहिये ॥२७॥

शुद्धपारा और गन्धक समान लेकर जमालगोटेकी जड़के रसमें घोटे, फिर पांच भाग लौंग और चौथाई भाग विष मिलाकर एक एक मासे की गोली बनाय ले और सोंठ, अथवा गुड़के सङ्ग रोगी को खिलावे, इससे सब प्रकारकी अरुची, शूल, आमवात, विसूचिका, मन्दाग्नि, और भोजन की अनिच्छा आदि घोर रोग दूर होजाते हैं, इसका नाम रसकेसरी रस है ॥ २८ ॥ ३० ॥

[illegible] चिकित्सा अधिकार समाप्त ।

अथ छर्द्यधिकारः।

तत्र छर्देर्विप्रकृष्ट सन्निकृष्ट निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह।

मात्राहीनैरकाले च भोजनैर्द्रवसंयुतैः।
अतिस्निग्धैरहृद्यैश्च लवणाद्यैर्विपर्य्ययैः॥ १॥
आमात्क्रमाद्भयाद्वेगघाताच्चाजीर्णदोषतः।
कृमिदोषाच्च नारीणां दोषाच्छीघ्राशनादपि॥ २॥
बीभत्सदर्शनाज्जन्तोर्भुक्तमन्नं न पाचितम्।
वह्निना वायुना तत्तु वहिर्नीतं मुखादथ॥ ३॥
छर्दिर्वमिश्च वमनं छर्दनं नामभिः स तु।
ख्यातो व्याधिः पञ्चधाऽसौ दोषैः सर्वैश्च भत्सजः॥४॥

जब मनुष्य बिना समय अधिक भोजन करता है और मद्य को पीनेके पदार्थ भी पीता है, अधिक गरम, अप्रिय, अधिक नम कपड़े और प्रतिकूल भोजन करता है जब पेटमें आंव रहती है अथवा मनुष्य डर जाता है, मूत्रादिकोंके वेगोंको रोकता है, अजीर्ण होता है, पेटमें कीड़े पड़ जाते हैं, स्त्रियोंका कोई दोष होता है, शीघ्र भोजन करता है और किसी भयानक वस्तुको देखता है तब खाया हुआ अन्न नहीं पचता, उसको बिना पचे हुवे भोजनको अग्नि ग्रहण नहीं करती तब वायु उसे मुखके द्वारा बाहर निकाल देता है वैद्य उसको रोगको छर्दि, वमी, वमन और

अथ पूर्वरूपमाह ।

उद्गाररोधो हृल्लासरोधश्च लवणास्यता ।
प्रसेकोऽन्नस्य विद्वेषः पूर्वरूपमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

अथ सामान्यरूपमाह ।

पूरयित्वा मुखं दोषः पीड़यन्नङ्गमोजसा ।
वेगान्मुखं यदा याति तदा छर्दिरुदीर्य्यते ॥ ६ ॥

अथ वातजायाश्छर्द्देर्लक्षणमाह ।

वातोत्थायां च हृत्पीड़ा पार्श्वशूलं सुदारुणम् ।
मुखशोषः शिरोनाभेः पीडनं कसनं तथा ॥ ७ ॥
भेदतोदादयश्चात्र वेदनाः परिकीर्त्तिताः ।
शब्दोद्गारादिबाहुल्यं वमनं फेनिलं तनु ॥ ८ ॥

छर्दन नामसे प्रसिद्ध करते हैं ; यह रोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात और भयानक वस्तुओंके देखनेसे उत्पन्न होनेके कारण पांच प्रकारका होता है ॥ १—४ ॥

वमन रोग होनेके पहिले डकार रुक जाती है, मुख खट्टा होजाता है, प्रसेक और अन्न खानेकी इच्छा नहीं होती ॥ ५ ॥

जब दोष मुखको अपने वेगसे पूरित करके और सब शरीरोंमें पीड़ा उत्पन्न करके बहुत वेगसे मुखसे निकलता है तब उसीको वैद्य छर्दिरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

वातसे उत्पन्न हुवे छर्दि रोगमें पसुरी और हृदयमें भयानक पीड़ा, मुख सूखना, शिर और नाभीमें पीड़ा, खांसी, छेदने और भेदनेके समान पीड़ा, वमन होनेमें शब्द, डकार, फेन युक्त

कषायं कृष्णवर्णं वा अल्पमल्पं प्रवर्त्तते।
बहुवेगैः सुकृच्छ्रेण स्वरभेदसमन्वितम् ॥ ८ ॥

अथ पित्तजामाह।

पित्तोद्भवायां तृण्मूर्च्छा मुखशोषोद्भवो भवेत्।
शिरोऽक्षितालुदाहस्य पित्तोत्थाश्च रुजोभृशम् ॥१०॥
वमनं हरितं पीतं तिक्तं धूमसमन्वितम्।
सदाहमतिवेगस्तु कटुकं वा प्रवर्त्तते॥ ११ ॥

कफोत्थामाह।

मुखमाधुर्य्यमालस्यं सन्तोषश्चाङ्गगौरवम्।
निद्राऽरुचिप्रसेकश्च कफजायामुदीरितम् ॥ १२ ॥
वमनं मधुरं स्निग्धं घनशुक्लमथारुजम्।
रोमहर्षान्वितं चात्र अनल्पमपिवर्तते ॥ १३ ॥

कसैला, काला, पतला थोड़ा २ स्वरभेदके समेत अत्यन्त वेगके साथ कष्टसे वमन होता है ॥ ७—८ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुवे वमन रोगमें तृष्णा, मूर्च्छा, मुख सूखना, शिर, नेत्र और तालु सूखना, पित्तसे उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की पीड़ा, वमनका रङ्ग हरा या पीला होता है, वमन, कड़ुवा और धुआं समेत होता है और उस समय कण्ठ जलने लगता है ॥ १०—११ ॥

कफसे उत्पन्न हुवे वमन रोगमें मुख मीठा रहता है, आलस्य, सन्तोष, शरीरोंका भारीपन, निद्रा, अरुचि और प्रसेक ये लक्षण होते हैं। वमन, मीठा, चिकना, गाढ़ा और सफेद होता है, रोगी

अथ सन्निपातजामाह ।

दोषत्रयोत्था शूलाढ्या कासश्वास समन्विता ।
दाहारुच्यविपाकैश्च युक्ता तृष्णान्विताभृशम् ॥१४॥
अम्ला च लवणा तिक्ता सरक्ता सान्द्ररूपिणी ॥१५॥

अथागन्तुजामाह ।

विभत्सदर्शनैश्चैव क्रिमिदोषैः रसात्मकैः ।
भोजनैर्भवतिच्छर्दिः पञ्चम्यागन्तुका च सा ॥ १६ ॥

अथोपद्रवानाह ।

तृष्णा हिक्का ज्वरः कासः श्वासश्चित्तस्य विभ्रमः ।
तमकश्चैव हृद्रोगो वमनोपद्रवा अमी ॥ १७ ॥

के रोम खड़े होजाते हैं शरीरमें कोई पीड़ा नहीं होती और वमन थोड़ा थोड़ा होता है ॥ १२—१३ ॥

सन्निपातसे उत्पन्न हुवे वमन रोगमें शूल, खांसी, दाह, अरुची, अजीर्ण और प्यास ये लक्षण होते हैं वमन, खट्टा, नमका, गाढ़ा, नीला, और रुधिर के समेत होता है ॥ १४—१५ ॥

जब मनुष्य किसी भयानक वस्तुको देखता है अथवा पेट में कीड़े होजाते हैं अथवा कोई विरुद्ध भोजन करता है तब जो वमन होता है उसे आगन्तुक वमन कहते हैं ॥ १६ ॥

प्यास, हिचकी, ज्वर, खांसी, श्वास, चित्तव्याकुल रहना, तमक श्वास और हृद्रोग ये वमनके उपद्रव कहाते हैं ॥ १७ ॥

अथ साध्यासाध्यत्वमाह।

अनेकदोषा बहुकाल जाता
क्षीणस्य जन्तो रुधिराक्तरूपा।
स चन्द्रिकोपद्रवसंयुता च
असाध्यरूपा च ततोऽन्यथा न॥ १८॥

अथ चिकित्सा।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वा-
श्छर्द्दीमता लङ्घनमेव तस्मात्।
प्राक्कारयेन्मारुतजां विमुच्य
संशोधनं वा कफपित्तहारि॥ १९॥

चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम्।
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्द्दिस्तेन निवर्त्तते॥ २०॥

इति चन्दनयोगः।

जो वमन रोग उपद्रवोंके सहित हो, पुराना हो, दुर्बल मनुष्यको उत्पन्न हुवा हो, जिसमें रुधिर आता हो, जिसमें चमकती हुई वस्तु गिरती हो उसे असाध्य जानो॥ १८॥

आगे वमनरोगको चिकित्सा लिखते हैं।

सब प्रकारके छर्दिरोग आमाशयके विकारसे उत्पन्न होते हैं इससे वायुसे उत्पन्न हुई छर्दिको छोड़ कर और सबमें लङ्घन अथवा कफ पित्तनाशक वमन या विरेचन आदि संशोधन देय, एक अक्ष चन्दन को अहत और आंवलेका रस मिलाकर पोनेसे वमनरोग दूर होजाता है॥ १९॥ २०॥

क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्दिनाशनः ।
हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ॥ २१ ॥

इति हरीतकी चूर्णम् ।

अधोभागे कृते दोषे क्षिप्रं वान्तिर्निवर्त्तते ।
कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।
छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ २२ ॥

इति मुद्गकषायः ।

जाती(१)रसः कपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः ।
क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्वणाम् ॥ २३ ॥

इति जातीरसादिलेहः ।

लाजा कपित्थमधुमागधिकोषणानाम् ।
क्षौद्राभयातिकटुधान्यकजीरकाणाम् ॥

पित्तपापड़े के काढ़े में सहत मिलाकर पीनेसे छर्दिरोग दूर होजाते हैं, हर्र के चूर्णमें सहत मिलाकर पीनेसे वमन दूर हो जाते हैं ॥ २१ ॥

दोष नीचेको जानेसे सब वमन दूर होजाते हैं। भुनी हुई मूंगके काढ़े में धानकी खील, शहत और शक्कर, मिलाकर पीनेसे वमन, अतीसार, प्यास, दाह और ज्वर दूर होजाते हैं ॥ २२ ॥

आंवले और कैथके रसमें, पीपल, मिर्च और शहत मिलाकर पीनेसे घोर छर्दिरोग भी दूर होजाते हैं इसका नाम जातीरसादि लेह है ॥ २३ ॥

धानका लावा, कैथ, पीपल, शहत और मिर्च। शहत, हर्र,

(१) अत्र जातीरस आमलकीरस ।

पथ्यामृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनाम् ।
लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचि प्रशान्त्यै ॥ २४ ॥

इति अवलेहाः ।

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्ज-
लाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ।
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाताम् ॥ २५ ॥

इति एलादिचूर्णम् ।

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले ।
तज्जलं पानमात्रेण छर्दिमाशु नियच्छति ॥ २६ ॥
अजाजीधान्यकृष्णाभिः सक्षौद्राभिः कटुत्रिकैः ।
एभिः सार्द्धं भस्मसूतः सेव्यो वान्तिप्रशान्तये ॥ २७ ॥

इति रसेन्द्रः ।

इति भैषज्यरत्नावल्याम् छर्दिचिकित्साऽधिकारः समाप्तः ।

सोंठ, मिर्च, पीपल, धनिया और जीरा। हर्र, गुरिच, मिर्च, शहत और पीपल इन तीनों अवलेहोंके खानेसे सबप्रकारके वमन और अरुचि रोग दूर होजाते हैं ॥ २४ ॥

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरकीगिरी, धानका लावा, प्रियङ्गु, मोथा, चन्दन, और पीपल इन सबका चूर्ण करके शहत और शक्कर के सङ्ग खानेसे कफ और वायुसे उत्पन्न हुआ वमन रोग दूर होजाता है इसका नाम एलादिचूर्ण है ॥ २५ ॥

पीपल की सूखी बकली जलाकर पानीमें बुझा लेय वह जल पीनेसे वमन बहुतही शीघ्र बन्द होजाता है ॥ २६ ॥

धनिया, जीरा, पीपल, त्रिकुटा और पारेको भस्म को शहतमें मिलाकर पीनेसे वमन रोग दूर होजाते हैं इसका नाम रसेन्द्र है ॥ २८ ॥

[illegible] वमन चिकित्सा समाप्त।

अथ तृष्णाधिकारः।

तत्र तृष्णाया निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह।

बलक्षयात् शोकविवर्द्धनाच्च
श्रमादिभिः पित्तविवर्द्धनैश्च।
वातान्वितं पित्तमतीववृद्धं
सम्प्रद्यतालुं जनयेच्च तृष्णाम् ॥ १ ॥

सन्दूष्यस्रोतांसि जलाशयाणि
भवन्ति तृष्णास्तु चतस्र एव।
वातादिभिस्ताः प्रभवन्ति तिस्रः
क्षतोद्भवा चैव तथा चतुर्थी ॥ २ ॥

जब मनुष्यका बल क्षीण होजाता है, शोकसे व्याकुल होता है, अधिक परिश्रम करता है और पित्त बढ़ानेवाली वस्तु खाता है तब पित्त और वायु बढ़ कर तालुमें स्थित होकर प्यासको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

वेही बिगड़े हुए वात और पित्त, जल बहनेवाले मार्गोंको बिगाड़ कर चार प्रकार की प्यास उत्पन्न करते हैं अर्थात् वात, पित्त, कफ और चौथी प्यास, घावसे उत्पन्न होती है ॥ २ ॥

क्षयोद्भवा भुक्तभवा च तासां
चिह्नानि वक्ष्ये शृणु भो यथावत् ॥ ३ ॥

तृष्णायाः सामान्यलक्षणमाह ।

ताल्वास्यकण्ठौष्ठविदाहशोषौ
मोहप्रलापभ्रमतापदाहाः ।
भवन्ति यस्याङ्कथिता तु सा परैः
चिह्नानि तृष्णा मुनिभिः पुराणैः ॥ ४ ॥

अथ वातजामाह ।

शिरःशङ्खपीड़ा तथा मार्गरोधो
मुवैरस्यमास्यस्य वातोत्थिता रुक् ।
सुशीताभिरद्भिश्च शान्तिं प्रयाति
पिपासामरुज्जा मुनीन्द्रैर्निरुक्ता ॥ ५ ॥

अथ पित्तजामाह ।

रक्तेक्षणत्वं मुखशोषदाहौ
अन्नारुचिस्तिक्तमुखत्वमेव

पांच वों प्यास क्षयसे और छठी भोजन करने के पश्चात् उत्पन्न होती है । इन सबके लक्षण अलग अलग कहते हैं सुनो ॥३॥

जिस रोगमें तालु, मुंह, कण्ठ और ओठ, सूखें ; रोगी को मूर्च्छा हो, रोगी वृथा बके, घुमनी हो और शरीरमें जलन हो उसका नाम प्यास वा तृष्णा रोग है ॥ ४ ॥

वातसे उत्पन्न हुई प्यासमें शिर, और कनपटीमें, पीड़ा, मुखका रस बिगड़ना और वायुसे उत्पन्न हुई पीड़ा ये लक्षण होते हैं यह प्यास ठंढे पानी से शान्त होजाती है ॥ ५ ॥

सधूममास्यं किल पित्तजायां
भवन्ति चिह्नानि मुनीरितानि ॥ ६ ॥

अथ कफजामाह ।

वास्परोधाद् यदा श्लेष्मा दुष्टः तृष्णां करोत्यसौ।
तदा गुरुत्वं निद्रा च माधुर्य्यं वदनस्य च ॥ ७ ॥
मुखशोषश्च भवति कफतृष्णा स्मृता हि सा ॥ ८ ॥

अथ क्षतजामाह ।

क्षते रुधिरसंयोगात्पिपासा क्षतजा भवेत् ॥ ९ ॥

अथ क्षयजामाह ।

क्षयोद्भवा सदा तृष्णा पीडयत्येव मानवम् ।
वारं वारं पिबन्वारि न तोषमुपगच्छति ॥ १० ॥
तां सन्निपातजां प्राहुः केचिद्वैद्या मनीषिणः ।
समस्तयोक्तलिङ्गानि तत्रोक्तानि भिषग्वरैः ॥ ११ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुई प्यासमें नेत्र लाल होजाते हैं, मुख सूखने लगता है, शरीरमें जलन होती है, खानेकी इच्छा नहीं होती, मुंह कड़वा होजाता है और मुखमें धुआं निकलता है ॥ ६ ॥

कफसे उत्पन्न हुई प्याममें स्वर और वचन रुक जाता है, शरीर भारी होजाते हैं, नींद अधिक आती है, मुख मीठा रहता है और सूखने लगता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

घावसे रुधिर निकलनेके कारण जो प्यास उत्पन्न होती है उसे क्षतज तृष्णा कहते हैं ॥ ८ ॥

क्षयसे उत्पन्न हुई प्यास मनुष्यके शरीरको सदा व्याकुल करती रहती है, बार बार पानी पीने पर भी रोगीको सन्तोष नहीं

अथामजामाह।

आमोद्भवा तु हृच्छूलनिष्ठीवनसमन्विता।
त्रिदोषलिंगसंयुक्ता सुखसाध्या प्रकीर्त्तिता॥ १२॥

अथ भुक्तोद्भवामाह।

यदा मनुष्यः स्निग्धाम्लं लवणं चातिसेवते।
तदा तृष्णा प्रभवति भुक्तजाता स्मृता तु सा॥ १३॥

अथोपद्रवानाह।

शोषो हीनस्वरत्वञ्च दीनत्वं कृशता तथा॥१४॥

अथारिष्टमाह।

ज्वरक्षयौ तथा कासः श्वासश्चैव रुजस्तथा।
एतैरुपद्रवैर्युक्तः कर्द्दिवान्नैव जीवति॥ १५॥

रहता, इसीको बुद्धिमान् वैद्योंने सन्निपातसे उत्पन्न हुई प्यास लिखा है; इसमें रस नाश होनेके भी लक्षण लिखे हैं॥ १०॥११॥

आमसे उत्पन्न हुई प्यास में हृदयमें पीड़ा होती है और थूक अधिक आता है इसमें तीनों दोषोंके लक्षण अलग अलग दीखते हैं॥ १२॥

जब मनुष्य अधिक चिकना, खट्टा और नमकका भोजन करता है तब जो उसे प्यास उत्पन्न होती है उसे भुक्तोद्भवा (अर्थात् भोजन से उत्पन्न हुई) प्यास कहते हैं॥ १३॥

शोष, ज्वर, स्वरहीनता और दुर्बलता ये प्यास के उपद्रव हैं॥ १४॥

जिस तृष्णारोगीको ज्वर, क्षय, खांसी, पीड़ा और श्वास, ये उपद्रव होंय उसे जाने कि अब यह नहीं जीयेगा॥ १५॥

अथ चिकित्सा ।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ।
रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव वा ॥ १६ ॥

इति गुड़दधि ।

पित्तजायान्तु तृष्णायां पक्कोडुम्बरजो रसः ।
तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वत् सारिवादिगुड़ाम्बु वा ॥१७॥
लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुड़विमर्दितम् ।
काश्मर्य्यशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ १८ ॥

विल्वाढकीधातकिपञ्चकोल-
दर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ।
तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन
चतोत्यितां रुग्विनिवारणेन ॥ १९ ॥

इसके आगे तृष्णारोगकी चिकित्सा लिखेंगे ।

वायुसे उत्पन्न हुई प्यासमें गुड़ मिलाकर दही पिलावे बलवढ़ानेवाले ठण्डे रस देइ अथवा गुर्चका रस पिलावे ॥१६॥

पित्तसे उत्पन्न हुई प्यासमें पक्के गूलरका रस देइ अथवा गूलरका काढ़ा या हिम देइ अथवा सारिबादिगणके जलमें गुड़ मिलाकर देइ, धानके लावेके जलमें गुड़ और शहत मिलाकर पिलावे अथवा प्याससे अत्यन्त व्याकुल रोगी को काश्मरीके पानीमें शक्कर मिलाके पिलावे ॥ १७—१८ ॥

बेल, अरहर, धायके फूल, पञ्चकोल अर्थात् पीपल, पिपलामूल, चाभ, चीता और सोंठ इन सबको दाभके पानीमें

जयेद्रसानामसृजश्च पानैः।
क्षतोत्थितां क्षीरजलं निहन्यात्
मांसोदकं वाऽथ मधूदकं वा।
गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेत्तु
क्षयाद्दृते सर्वकृतास्च तृष्णाम् ॥ २० ॥
[अ]तिरुक्षदुर्बलानां तर्षं शमयेन्नृणामिहाशु पयः।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ २१ ॥
[गो]स्तनिक्षुरसक्षीरयष्टीमधु मधूत्पलैः।
[नि]यतं नस्ततः पीतैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ २२ ॥
[...]समाध्वीकक्षौद्रसीधुगुडोदकैः।

[ख]ाकर पिये इससे कफसे उत्पन्न हुई प्यास दूर होजाती है, [क]फसे उत्पन्न हुई प्यासमें नींबका पका पानी पिलाकर वमन [क]राय दे ॥ १९ ॥

जो प्यास घावसे उत्पन्न हुई हो, उसमें उत्तम रस, रुधिर, [दू]ध मिला पानी, मांसका रस और शहतका सरवत पिलावें; [भ]ारी पन खानेसे उत्पन्न हुई प्यासको उल्लेख न कर्मसे नष्ट करे, [क्ष]य और सन्निपातसे उत्पन्न हुई प्यासकी चिकित्सा न करे ॥२०॥

अत्यन्त रूखे और दुर्बल रोगियोंकी प्यास नाश करनेके [लि]ये दूध, मीठे, ठण्डे रस अथवा बकरेके मांसका रस घी मे [छ]ौंककर देय ॥ २१ ॥

मुनक्का, ऊखका रस, दूध, [म]ुलेठी, मधु, कमल और शहत मिलाकर पीनेसे घोर प्यास दूर होती है ॥ २२ ॥

वृक्षाम्लैश्चापि गण्डूषास्तालुशोषनिवारणाः ॥२३॥

आम्रजम्बुकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णाञ्चैवापकर्षति ॥ २४ ॥

वटशुङ्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ २५ ॥

केशरं मातुलुङ्गस्य सक्षौद्रं दाडिमाकुलम् ।
क्षणमात्रेण दुर्वारां तृष्णां चाबलतो नयेत् ।
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ २६ ॥

इति मधुगण्डूषः ।

असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्तिता ।
मुखे सञ्चार्यते या तु सा मात्रा कवले हिता ॥२७॥

दूध ऊखका रस, महुवेका मद्य, शहद, सीधु (मद्यविशेष) शर्करोदक (शरबत) और गरम पानीमें कुल्ला करनेसे तालु सूखना बन्द हो जाता है ॥ २३ ॥

आम और जामुनके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे वमन और प्यास दूर हो जाते हैं ॥ २४ ॥

बड़गदके अङ्कुर, चीनी, लोध, अनार, जेठीमधु और शहद मिलाकर चावलोंके पानीके संग पीनेसे वमन और प्यास दूर हो जाती है ॥ २५ ॥

एक पल नीबूकी केशर, शहद और अनार मिलाकर खानेसे प्यास दूर होजाती है अथवा मुखमें शहद भरकर रखनेसे क्षणमात्रमें दाह और प्यास दूर होजाती है ॥ २६ ॥

जितना जल भरनेसे मुंह न चल सके वही कुल्लेके जलकी मात्रा

वटशुङ्गामयक्षौद्रलाजनीलोत्पलैर्दृढा ।
गुटिका वदनन्यस्ता क्षिप्रं तृष्णामुदस्यति ॥ २८ ॥

इति वटशुङ्गादिवटी ।

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम् ।
भोजयेत्तेन शाम्येत कृच्छ्रतृष्णा चिरोत्थिता ॥ २९ ॥
वारिशीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् ।
पाययेद्वामयेच्चापि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ ३० ॥
मूर्च्छाच्छर्दितृषादाहस्त्रीमद्यभृशकर्शिताः ।
पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥ ३१ ॥

है और जिसको मुखमें रखनेसे मुँह चल सके वह कवलकी मात्रा कहाती है ॥ २७ ॥

बड़गदके अङ्कुर, कूट, सहत, धानकी लाही और नीले कमलकी गोली बनाकर मुखमें रखनेसे प्यास शीघ्र दूर होजाती है इसका नाम वटशुङ्गादि वटी है ॥ २८ ॥

तृष्णारोगीको खानेके लिये लालचावलोंका भात और सहत देय इससे पुरानी प्यास और वमन भी नाश होजाती है ॥ २९ ॥

अथवा रोगीको सहत मिला ठण्डा पानी कण्ठतक पिलाकर वमन करावै इससे भी प्यास शांत होजाती है ॥ ३० ॥

मूर्च्छा, वमन, प्यास, दाह, रक्तपित्त और मदात्यय रोगी और अधिक मैथुन या मद्य पीनेसे क्षीण रोगीको वैद्य ठण्ढा जल पिलावै ॥ ३१ ॥

पूर्वामयातुरः सन् दीनस्तृष्णार्दितो जलं याचन् ।
लभते न चेत्तदा तन्मरणं प्राप्नोति दीर्घरोगं वा ॥३२॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्य्यते ॥ ३३ ॥
अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान् धारयते चिरम् ।
तोयाभावे पिपासार्त्तः क्षणात्प्राणैर्वियुज्यते ॥ ३४ ॥
अत्यम्बुपानात्प्रभवन्ति रोगाः
निरम्बुपानाच्च त एव दोषाः ।
तस्माद्बुधः प्राणविवर्द्धनार्थम्
मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ ३५ ॥
सक्षौद्रमाम्रजम्बूत्थं पिबेत् क्वाथं रसान्वितम् ।

यदि किसी रोगमें रोगी दीन होकर जल मांगे और उसे जल न मिले तो वह रोगी मर जाता है अथवा रोग बढ़ जाता है ॥ ३२ ॥

प्याससे रोगीको मूर्च्छा आजाती है और मूर्च्छासे प्राण नष्ट होजाता है इस लिये रोगीको किसी अवस्थामें भी वैद्य पानी न रोके ॥ ३३ ॥

विना अन्नके रोगी बहुत समय तक जी सक्ता है परन्तु विना जल क्षणमात्र ही में मर जाता है ॥ ३४ ॥

बहुत पानी पीनेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और पानी न पीनेसे भी अनेक दोष होजाते हैं इस लिये वैद्य रोगीको जीवित रखनेके लिये थोड़ा थोड़ा जल पिलावे ॥ ३५ ॥

मद्यषार्त्तो मधुना कुर्य्याद्गण्डूषान् शीतले स्थितः ॥३६॥
यत्र केवल एव रसस्तत्र भस्मसूतो बोध्यः ॥३७॥

इति लोकेश्वरः ।

इति भैषज्यरत्नावल्याम् तृष्णाचिकित्साधिकारः समाप्तः ।

अथ मूर्च्छाधिकारः ।

तत्र मूर्च्छाया निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

क्षीणशुक्रस्य वातादिव्याप्तदेहस्य वा पुनः ।
हीनसत्त्वस्य मूत्रादि वेगघाताभिघातजा ॥ १ ॥
मूर्च्छा भवति जन्तोस्तु यदा वातादयो भृशम् ।
कुपिताः प्रविशन्त्येव वाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ॥ २ ॥
मनोऽधिष्ठानमार्गेषु तदा मूर्च्छति मानवः ।
पित्तप्रधानैर्दोषैः सा मूर्च्छा भवति देहिनाम् ॥ ३ ॥

शहत डालकर, आम और जामुनका काढ़ा पिलावे, रोगीको ठण्डे स्थानमें बिठला कर शहतके कुल्ले करावे ॥३६॥ जहां कहीं केवल रस शब्द लिखा हो तहां पारेकी भस्म जानो ॥३७

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें तृषा चिकित्सा अधिकार समाप्तः ।

अथ मूर्च्छाधिकार निदानभाषा ।

जिस मनुष्यका वीर्य्यक्षीण होजाता है अथवा वात, पित्त, और कफ सब शरीर में फैल जाते हैं, जिसका पराक्रम नष्ट होजाता है, जो मूत्रादिके वेग रोकता है. जिसे चोट लगती है, उसके शरीरमें तीनों दोष अत्यन्त कोप करके मनको स्थिर रखनेवाले भीतर

अथ सामान्यरूपमाह ।

संज्ञावहानि स्रोतांसि यदा तिष्ठन्ति दूषिताः ।
वातादयस्तदा देहे तमो भवति चाधिकम् ॥ ४ ॥
सुखदुःखादिविज्ञानशून्यः पतति मानवः ।
काष्ठवद्भुवि सा मूर्च्छा कथिता षड्विधा परैः ॥ ५ ॥
मूर्च्छनं कश्मलं मोहो मूर्च्छा मूर्च्छाय इत्यपि ।
सन्न्यासः प्रलयश्चैव शब्दाः पर्य्यायवाचिनः ॥ ६ ॥
सन्न्यासश्चैव मूर्च्छायौ भिन्नावपि भिषङ्मतौ ॥ ७ ॥

अथ भेदानाह ।

वाताद्यैरसृजा चैव सुरया च विषेण च ।
पित्तं सर्वासु मुख्यं हि षट्स्वेतासु प्रकीर्त्तितम् ॥ ८॥

और बाहर के मार्गों को रोक देते हैं तब मनुष्य काष्ठके समान पृथ्वी में गिरपड़ता है, वैद्य उसे को मूर्च्छारोग कहते हैं मूर्च्छा बिना पित्त के नहीं होती ॥ १ ॥ ३ ॥

जब तमोगुण के सहित बिगड़े हुये वात, पित्त और कफ चैतन्यता रखनेवाले मार्गों को रोक लेते हैं और तमोगुण बहुत अधिक बढ़जाता है, तब मनुष्य सुख, दुःख, ज्ञान और विज्ञान से रहित होकर काष्ठके समान पृथ्वी में गिर पड़ता है, इस को रोग को वैद्य मूर्च्छा, मूर्च्छन, कश्मल, मोह, मूर्च्छाय, सन्न्यास और प्रलय इन सात नामों से प्रसिद्ध करते हैं; सो मूर्च्छा छः प्रकार की होती है; किसी २ वैद्यने सन्न्यास और मूर्च्छाय को अलग भी माना है ॥ ४—७ ॥

वात, पित्त, कफ, रुधिर सन्निपात विष और मद्यसे उत्पन्न हुई

हृच्छूलं बलनाशश्च ग्लानिर्जृम्भणमेव च ।
संज्ञानाशश्च सर्वासां पूर्वरूपमितीरितम् ॥ ९ ॥
सामान्यतो विशेषाच्च हृत्पीड़ा जृम्भणं श्रमः ।
वातजायाः समुद्दिष्टं पूर्वरूपं भिषग्वरैः ॥ १० ॥
कफोत्थितायां ग्लानिस्तु बलनाशोऽङ्गगौरवम् ।
पित्तजायाः पूर्वरूपं संज्ञाशून्यत्वमीरितम् ॥ ११ ॥

अथ वातजामाह ।

कृष्णं नीलं नभो दृष्ट्वा अरुणं वापि मानवः ।
मूर्च्छामाप्नोति पश्चाच्छीघ्रमेव प्रबुध्यते ॥ १२ ॥
कृशता वेपथुर्ग्लानिर्हृदयेऽथाङ्गमर्दनम् ।
मूर्च्छा सा वातजा ज्ञेयाऽरुणच्छाया समुद्भवा ॥ १३ ॥

मूर्च्छा छःप्रकारकी कहाता है, परन्तु इन छहों मूर्च्छाओं में पित्त ही प्रधान है अर्थात् बिना पित्त कोई मूर्च्छा नहीं होती है ॥८॥

मूर्च्छा होने से पहिले हृदय में शूल, बलनाश, ग्लानि, जमुहाई और चैतन्यता का नाश ये लक्षण होते हैं। वात से उत्पन्न हुई मूर्च्छा होने से पहिले हृदय में पीड़ा और अधिक जमुहाई आती हैं। कफसे उत्पन्न हुई मूर्च्छा होनेसे पहिले ग्लानि और बलनाश ये लक्षण होते हैं। पित्तसे उत्पन्न होनेवाली मूर्च्छा में चैतन्यताका नाश होजाता है ॥ ९ ॥ ११ ॥

वातसे उत्पन्न हुई मूर्च्छा में रोगी को आकाश, काला, लाल, अथवा नीला, दीखता है तब पीछे मूर्च्छा होती है और शीघ्र ही चैतन्यता भी होजाती है, रोगी दुर्बल होजाता है, शरीर कांपता है, हृदय में पीड़ा होती है और सब शरीर टूटते हैं यह मूर्च्छा-लाल छायाको देख कर भी होजाती है ॥ १२—१३ ॥

अथ पैत्तिकीमाह ।

यो मूर्च्छति नरो दृष्ट्वा हरितं रक्तमेव वा ।
आकाशं पीतवर्णं वा तस्य पित्तोद्भवा तु सा ॥ १४ ॥
तट्स्वेदतापदाहाद्या भेदश्च वर्च्चसस्तथा ।
विशेषास्तत्र कथ्यन्ते मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥ १५ ॥

अथ श्लैष्मिकीमाह ।

घनाघनैः संवृतमुग्ररूपम्
पश्यंस्तमो मूर्च्छति यो नरः खम् ।
आर्द्रत्वचे वावृत सर्वदेहः
सगौरवस्तस्य कफोत्थिता सा ॥ १६ ॥
चिरेण प्रतिबोधोऽत्र ह्वल्लासारुचिगौरवैः ।
प्रसेकैः पीड़ितो जन्तुः मूर्च्छायै कफजे भृशम् ॥१७॥
अपस्मारसमाकारा विना वीभत्सदर्शनैः ।

पित्तसे उत्पन्न हुई मूर्च्छा में रोगीको मूर्च्छा होनेसे पहिले हरा, पीला आकाश दीखता है, प्यास, लगती है, शरीर में जलन होती है और दस्त आते हैं ॥ १४—१५ ॥

कफसे उत्पन्न हुई मूर्च्छा रोगीको जल भरे मेघों से भरा हुआ आकाश देख कर होती है, रोगीको अपना शरीर ऐसा जानपड़ता है मानों भीगे हुए चमड़े से ढका है, सब शरीर भारी रहता है, रोगीको चैतन्यता भी बहुत देर में होती है और मुखसे बहुत थूक गिरता है और अरुचि बनी रहती है ॥ १६—१७ ॥

सन्निपात से उत्पन्न हुई मूर्च्छा, अपस्मार के समान आती है,

नृणां भवति सर्वोत्था चरकोक्ता तु सप्तमी ॥ १८ ॥
तस्यां न फेनं दन्तानां नापि वट्टनमुल्वणम्।
हेतुभिश्चैवमेवाद्धि भिन्नाऽपस्मारतस्तु सा ॥ १९ ॥

अथ रक्तजामाह।

तामसा मानवा ये तु रुधिरं चापि तामसम्।
भूरापो हि तमोरूपास्तस्माद्रक्तस्य दर्शनात् ॥ २० ॥
तद्गन्धाघ्राणमात्राद्वा मूर्च्छन्ति स्वभावतः।
रक्तजा सा तु विज्ञेया मूर्च्छायुर्वेदवेदिभिः ॥ २१ ॥

अथ रक्तेन मूर्च्छितस्य लक्षणमाह।

रक्तेन मूर्च्छितो जन्तुः गूढश्वासान्वितः क्षितौ।
स्तब्धाङ्गदृष्टिः पतति शीघ्रमेव प्रबुध्यते ॥ २२ ॥

और बिना भयानक वस्तु देखे भी आजाती है, मुख में फेन नहीं आता और दांत भी नहीं बजते यही सन्निपात मूर्च्छा और मृगी रोगोंमें भेद है यह सात वीं मूर्च्छा केवल चरक ही ने मानी है ॥ १८—१९ ॥

रक्त में तमोगुण अधिक होता है तथा पृथ्वी और जल में भी तमोगुण का अंश अधिक है इस लिये तमोगुणी मनुष्य जब रुधिर को देखते हैं तभी उन्हें स्वभाव से मूर्च्छा आजाती है, उस ही तमोगुणी मनुष्यों को रुधिर की गन्ध से भी मूर्च्छा आजाती है इसका नाम रक्तजा मूर्च्छा है ॥ २०—२१ ॥

जो मनुष्य रक्त की गंधि अथवा दर्शन से मूर्छित होता है उस को उस समय बहुत सांस आता है, सब शरीरमें स्तम्भन होजाता है और मूर्च्छा भी बहुत शीघ्र होता है ॥ २२ ॥

अथ मद्यविषजयोर्मूर्च्छयोर्निदानमाह ।

लघुवैशद्य रूक्षास्तु तैक्ष्ण्य सौक्ष्म्योष्णतादयः ।
गुणा ये मद्यविषयोः तैर्मूर्च्छति नरो भृशम् ॥ २३ ॥
विषे तीव्रतरत्वेन ते गुणा संस्थिताः सदा ।
सुरायां सूक्ष्मरूपेण तएव संस्थितास्तथा ॥ २४ ॥

अथ मद्यजामाह ।

नष्टचेता नरः शेते प्रलापी मद्यसम्भवे ।
क्षिपन् गात्राणि मूर्च्छाये यावत्पाकन्न याति तत् ॥२५

अथ विषजामाह ।

विषोत्थिते तु मूर्च्छाये तृष्णिद्रा वेपथुस्तथा ।
भवन्ति लक्षणान्येव यथास्वं विषलक्षणैः ॥ २६ ॥

हलका पन, विशदता, रूखापन, तेजी, सब नाड़ियों में प्रवेश करना और गर्मी आदि जो गुण मद्य और विष में रहते हैं उनही से मनुष्य को मूर्च्छा होजाती है अर्थात् ये सब गुण मनुष्य के स्वभाव से विरुद्ध है इसी लिये मद पीने और विष खाने से मनुष्य को मूर्च्छा आजाती है। ऊपर लिखे सब गुण विष में अधिक मात्रा से और मद्य में सूक्ष्मरूप से रहते हैं, इसी लिये विषसे भारी और मद्य से सूक्ष्म मूर्च्छा होती है ॥ २३—२४ ॥

मद्य से उत्पन्न हुई मूर्च्छा में मनुष्य को कुछ ज्ञान नहीं रहता, केवल सोता रहता है, वृथा बकता है, शरीरोंको इधर उधर फेंकता है, जब मद्य पचजाता है, तब आपसे आप मूर्च्छा नष्ट हो जाती है ॥ २५ ॥

विष से उत्पन्न हुई मूर्च्छा में प्यास, निद्रा, शरीर कांपना ये लक्षण होते हैं ॥ २६ ॥

अथ मूर्च्छाभ्रमतन्द्रादीनाञ्चभेद इत्याह।

तमः पित्तभवा मूर्च्छा रजः पित्तानिलैर्भ्रमः।
तमश्लेष्मभवा निद्रा कफवातोद्भवं तमः ॥ २७ ॥

अथ तन्द्रामाह।

आलस्यं जृम्भणं देहगौरवं निग्रहस्तथा।
इन्द्रियार्थगणस्यापि तन्द्रां तस्य विनिर्दिशेत् ॥२८॥

अथ क्लमलक्षणमाह।

अतिवृद्धः श्रमो देहे इन्द्रियार्थविनाशनः।
क्लमः स एव विज्ञेयो वैद्यैः शास्त्रार्थदर्शिभिः ॥ २९ ॥

अथ निद्रामाह।

पुण्डरीकसमाकारमधोवक्त्रं विशेषतः।
हृदयं तद् यदा विष्टं तमसा मानवस्तदा ॥ ३० ॥

मूर्च्छा तमोगुण युक्त पित्त से, भ्रम रजोगुणयुक्त पित्त से, निद्रा तमोगुणयुक्त कफ से और तम अर्थात् अन्धकार में घुसने के समान ज्ञान कफ और वायु से उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥

जब आलस्य, जमुहाई, शरीर का भारीपन और इन्द्रियों की शक्ति का नाश होना ये लक्षण होय तब जाने इस मनुष्यको तन्द्रा हुई है ॥ २८ ॥

जब अधिक परिश्रम बढ़ने से मनुष्य इन्द्रियों से कुछ काम न ले सके अर्थात् इन्द्रियों की शक्ति का नाश होजाय, तब उस ही रोगको आयुर्वेद जाननेवाले वैद्य क्लम कहते हैं ॥ २९ ॥

हृदयका आकार कमल के समान है और उसका मुख नीचे को है जब वह तमोगुण से ढकजाता है तब मनुष्य इकाई से

श्रान्तोऽल्पर्थञ्च मनसि स्वपिति क्षिप्रमेव हि ।
सा निद्रा मुनिभिः प्रोक्ता विष्णुमायेति चापरैः ॥ ३१ ॥

अथ सन्न्यासस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह ।

अतिवृद्धामला देहे प्राणस्थानं गता यदा ।
मनसो वचसश्चैव वपुषश्चाखिलाः क्रियाः ॥ ३२ ॥
नाशयित्वा मूर्च्छयन्ति नरं चावलभोजसा ।
ततः पतति काष्ठाभः असुभिर्वा वियुज्यते ॥ ३३ ॥

अथ सन्न्यासस्य मूर्च्छातो भेदमाह ।

मदमूर्च्छादिगा दोषाः स्वयं शाम्यन्ति देहिनः ।
सन्न्यासस्था नशाम्यन्ति विना युक्तमहौषधैः ॥ ३४ ॥

व्याकुल हो कर सो रहता है, वैद्य उस की अवस्था को निद्रा कहते हैं और दूसरे शास्त्र जाननेवालोंने उसीका नाम विष्णुमाया कहा है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

जब वात, पित्त और कफ शरीर में बहुत बढ़जाते हैं और वे प्राणवायु के स्थानमें जाकर मन, वचन और शरीर की सब क्रियाओं को रोक देते हैं उस समय वह दुर्बल मनुष्य काष्ठ के समान चेतना रहित होकर पृथ्वी में गिरपडता है और मरभी जाता है, वैद्योंने इसहीका नाम सन्न्यास रोग लिखा है ॥ ३२—३३ ॥

मद और मूर्च्छादिकों के दोष आप से आप थोड़े समय में शान्त होजाते हैं, परन्तु सन्न्यास के दोष बिना उत्तम औषधि खाये कदापि शान्त नहीं होते अर्थात् रोगी अनेक दिन तक मूर्च्छा ही में पड़े रहते हैं ॥ ३४ ॥

अथ चिकित्सा।

सेकावगाहौ मणयः सहाराः
शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च।
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति
सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ ३५ ॥

रक्तजायान्तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः।
मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथा सुखम् ॥ ३६ ॥
विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत्।
कोलमज्जोषणोशीरकेशरं शीतवारिणा ॥ ३७ ॥
पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ़ा कृष्णा वा मधुसंयुता।
पिबेद्दुरालभा क्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये ॥ ३८ ॥

आगे मूर्च्छाकी चिकित्सा लिखते हैं।

ठण्डा जल ऊपर डालना, स्नान, मणी, हार, ठण्डी औषधि लगाना और ठण्डे पङ्खे की वायु ये उपाय सब प्रकारकी मूर्च्छाओं में करे ॥ ३५ ॥

रक्तसे उत्पन्न हुई मूर्च्छामें ठण्डी क्रिया करे। मद्यसे उत्पन्न हुई में वमन कराके मद्य निकाल दे और रोगीको इच्छानुसार सोने देय ॥ ३६ ॥

विषसे उत्पन्न हुई मूर्च्छामें विष नाश करनेकी औषधि देय बेरकी गिरी, मिर्च, खस और केशर ठण्डे पानीमें पीसकर खिलावे अथवा शहतमें मिलाकर पीपल चटावे तो प्यास दूर होजाती है, भ्रमशांत होनेके लिये जवासेका काढ़ा पिलावे ॥ ३७—३८ ॥

त्रिफलायाः प्रयोगो(१) वा प्रयोगः पयसोऽपि वा ।
रसायनानां कौम्भस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते ॥ ३९ ॥
मधुना ह्यन्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुड़ार्द्रकं प्रातः ।
सप्ताहात्पथ्यभुजो मदमूर्च्छा कामलोन्मदान् ॥ ४० ॥
अञ्जनान्यवपीड़ाश्च धूमः प्रधमनानि(२) च ।
सूचिभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीड़ास्तनान्तरे ॥४१॥
लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दंशनमेव च ।
आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्यावरोधने ॥ ४२ ॥
गुड़ं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनातिचितं लिहन् ।
चिरादपि च संनष्टां निद्रामाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४३ ॥
इक्षवः पीतको माषाः सुरा मांसं घृतं पयः ।

त्रिफला अथवा जल अथवा रसायन औषधि अथवा कुम्भ घृतादि देना अच्छा है ॥ ३९ ॥

शहतमें मिलाकर रात्रिको त्रिफला और प्रात ... गुड़ मिला अद्रक खानेसे अपथ्य खानेवाले रोगीका भी मद, मूर्च्छा, कामला और उन्माद रोग अच्छा होजाता है ॥ ४० ॥

अञ्जन, अवपीड़न, धुआं, नाकमें औषधि फूकना, शरीरमें सुई गड़ाना, जलाना, बालया रोयें उखाड़ना और दांतों से काटना तथा शरीर में कमाच घिसना यही मूर्च्छा नाश करने के उपाय हैं ॥ ४१—४२ ॥

पीपलामूल में गुड़ मिलाय के खाने से बहुत दिनसे नष्ट हुई

(१) कौम्भं सर्पिर्दशाब्दिकम् ।
(२) मरिचादिचूर्णनस्यानि ।

गोधूमगुड़मत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति देहिनाम् ॥ ४४ ॥
अक्राशनमजाचीरं पादलेपात्तथार्थक्रत् ॥ ४५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूर्च्छाचिकित्सा ।

अथ मदात्ययाधिकारः ।

अथ सम्प्राप्तिपूर्वकं मदात्ययनिदानमाह ।

सुधोपमं मद्यमुदाहरन्ति
युक्तिप्रयुक्तं मुनयः पुराणाः ।
अयुक्तियुक्तं विषतुल्यमाहुः
तस्मात्समीच्यास्य विधिः प्रयोज्यः ॥ १ ॥

अथ मदस्य भेदामाह ।

उत्तमाधममध्यास्तु मदभेदा स्त्रिधा स्मृताः ।

निद्रा भी आने लगती है। उख, पोई साग, उड़द, मद्य, मांस, घी, दूध, गेहूं, गुड़ और मछली खानेसे निद्रा आती है ॥४३॥४४॥ बकरीके दूधमें पिसी भांग पैरमें लगानेसे निद्रा आजाती है ॥४५

भाषाभैषज्यरत्नावलीमें मूर्च्छा चिकित्सा समाप्त ।

मदात्यय भाषानिदान लिखते हैं ।

अमृत में जो गुण हैं वही सब गुण मद्यमें होते हैं, परन्तु युक्ति से पीनेसे बेगुण होते हैं और यदि बिनायुक्ती पिये तो वही अमृत तुल्य मद्य विष के समान होजाता है इस लिये खूब विचार कर मद्यपीना चाहिये ॥ १ ॥

मद, उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे तीन प्रकार का होता

सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति नामभिः ॥ २ ॥

तत्र सात्त्विकस्य लक्षणमाह ।

आद्योमदः प्रीतिकरः सुखश्च
बुद्धि-धृति-स्मृति-रति प्रतिपत्तिदाता
पाठ-स्वर-प्रीतिकरः प्रसादी
ससात्त्विकः संकथितो भिषग्भिः ॥ ३ ॥

अथ राजसमाह ।

उन्मत्तगीतभ्रमणैकशीलो
विलुप्तबुद्धि-स्मृति-धैर्यचेष्टः ।
निद्रा-प्रशान्ति क्लमपीड़ितो ना
मदेन मध्येन तु राजसेन ॥ ४ ॥

अथ तामसमाह ।

अगम्यां संगच्छेद्गुरुमपि न मन्येत्तृणमिव ।

है, क्रमसे सात्त्विक, राजस और तामस, ये भी उन्हीं तीनों के नाम हैं ॥ २ ॥

आदि अर्थात् उत्तम और सतो गुणी मदमें मनुष्यकी प्रसन्नता, सुख, बुद्धि, धारणा, स्मरण शक्ति मैथुन की इच्छा पढ़ने और गाने की इच्छा बढ़ती है ॥ ३ ॥

द्वितीय अर्थात् राजस और मध्यम मद मे मनुष्य पागल के समान नाचता है, घूमता है, उसकी बुद्धि, स्मरणशक्ति और धीरता नष्ट होजाती है अथवा धीरता बहुत बढ़ जाती है, निद्रा आती है और पहिले लिखे सब लक्षण मिलते हैं ॥ ४ ॥

तीसरे अर्थात् तामस मद में मनुष्य अगम्या स्त्रीसे भी मैथुन

अभक्ष्यं खादेद्दै वदति हृदिगान् गुह्यविषयान् ॥
विनष्टज्ञानोऽसौ भवति मनुजो धीर-रहितः।
मदे ज्ञात्वे चैवं भवति विविधं लक्षणगणम् ॥ ५ ॥

चतुर्थमतितामसमदमाह।

मदे चतुर्थे मनुजोऽतिमूढ़ः
काष्ठोपमः संपतीह भूमौ
कार्य्यं न जानाति न चाप्यकार्य्यं
मृतोपमः सर्वविनष्टबुद्धिः ॥ ६ ॥

अथ मदात्ययानां निदानमाह।

मद्येनाविधिपीतेन अकाले चातिमात्रया।
मदात्ययादिरोगास्तु प्रभवन्ति न संशयः ॥ ७ ॥

करता है, गुरुओं को तिनके के समान भी नहीं गिनता, न खाने योग्य वस्तुको भी खाता है ; न कहने योग्य गुप्तबातों को भी बकता है, ज्ञान और धीरता का नाश होजाता है ॥ ५ ॥

चतुर्थ अर्थात् अतितामस मद में मनुष्य अत्यन्त ज्ञान शून्य हो कर काष्ठके समान पृथ्वी में गिरजाते हैं, कुछ काम काज करने में समर्थ नहीं रहतो, उसे यह नहीं जान पड़ता कि कौनसा काम करने योग्य है और कौनसा नहीं करने योग्य बुद्धि नष्ट हो जाती है, केवल मरे हुए मनुष्य के समान पड़ा रहता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य विना विधि कुसमयमें अधिक मात्रासे मद्य पीता है उसको निःसन्देह मदात्यय आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ ७ ॥

अथ मदात्ययस्य हेत्वन्तरमाह ।

तृष्णा क्लिष्टेन भीतेन शोकतप्तेन सेवितम् ।
बुभुक्षितेन क्रुद्धेन तथा व्यायामसेविना ॥ ८ ॥
मार्गश्रमाभिभूतेनापि तथा वेगावरोधिना ।
अत्यम्ले नातिरूक्षेण तथैवाम्लाशिना परम् ॥ ९ ॥
अजीर्णिनोऽथवातप्तेन मद्यं रोगाय जायते ॥ १० ॥

अथ मद्योत्थानरोगानाह ।

पानाजीर्णं परमदं पानविभ्रममेव च ।
पानात्ययश्च पानोत्था रोगाः वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ११ ॥

अथ मदात्ययलक्षणमाह ।

प्रमेहो ज्वरकासौ च देहपीडाऽरुचिभ्रमाः ।
सन्धिपार्श्वशिरःपीड़ा जृम्भणं स्फुरणं श्रमः ॥ १२ ॥
हिक्का श्वासश्च कम्पश्च वपुषो वेपनं तथा ।
कर्णनेत्रहृदुत्थाश्च रोगा विड्भेद एव च ॥ १३ ॥

जो मनुष्य प्यास, डर, शोक, भूख, क्रोध, व्यायाम, मार्ग चलने का परिश्रम, मूत्रादिका वेग रुकना अथवा घाव आदिकी पीड़ासे व्याकुल होकर मद्य पीता है अथवा मद्यके ऊपर अधिक खटाई खाता है और जो अजीर्ण अर्थात् अन्न न पचने पर मद्य पीता है उसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ८—११ ॥

पानाजीर्ण, पर मद, पान विभ्रम और पानात्यय ये रोग अधिक मद्य पीनेसे होते हैं आगे इनके लक्षण कहते हैं प्रमेह, रुधिर विकार, ज्वर, खांसी, शरीरमें पीड़ा, अरुचि, सन्धि, पसुरी और शरीरमें पीड़ा, जमुहाई, शरीर फरकना, थकाई, हिचकी, श्वास,

शैथिल्यमुरसङ्कर्द्दिकत्क्लेशो बहुवेदनः ।
वातपित्तकफोत्थानां लक्षणानां दर्शनं तथा ॥ १४ ॥
मदो स्वप्नेषु विभ्रान्तो व्याकुलागमकुन्तलाम् ।
नित्यं पश्यति नाशादीन् तृणं भस्म लतास्तथा ॥१५॥

अथ वातिकस्य मदात्ययस्य निदानमाह ।

शोक-श्रम-रति-श्रान्तो मार्गजागरकर्षितः ।
अल्पभोज्यमिताशी च मद्यं मात्रामृते पिबेत् ॥ १६ ॥
तस्य निद्रां निहन्त्येदं मदात्ययकरं भवेत् ।
तं वदन्ति मुनिश्रेष्ठाः वातिकन्तु मदात्ययम् ॥ १७ ॥

अस्य लक्षणमाह ।

प्रलापमूर्च्छाहिक्काभिः शिरः कम्पादिजागरैः ।
श्वासेन तु नरं विद्याद् वातजेन मदान्वितम् ॥१८॥

हृदय और शरीर कांपना, नाक, कान और शिरविकार, हृदयशिथिल होना, वात पित्त और कफके चिह्न स्वप्नमें घबड़ाने वाले बाल खुले मनुष्य भस्म और जली हुए वृक्ष आदि देखना ये लक्षण होते हैं ॥ १४—१५

वातसे उत्पन्न हुआ मदात्यय शोक, परिश्रम, थकाई, मार्गमें चलना, रात्रि जागना, क्षुधा और अल्पमात्रा भोजन करना, वे समय अधिक मात्रासे मद्य पीनेसे होता है इस मदात्ययमें रोगीको निद्रा नहीं आती ॥ १६—१७ ॥

वातसे उत्पन्न हुए मदात्ययमें रोगी हुआ बकता है, निद्रा नहीं आती, हिचकी, मूर्छा, शरीर कांपना और श्वास ये लक्षण होते हैं ॥ १८ ॥

अथ पैत्तिकनिदानमाह ।

तीक्ष्णाम्लोष्णातिभोजी मदरति-
रभितो योऽतिमात्रन्निसेवेन् ।
मद्यं क्रोधान्वितो ना मति-
रहिततरस्तस्य तीव्रोऽतिरोगः ॥
दुष्यान् संदूष्य सर्वानतिशय-
निचितः पित्तजातोऽतिघोरः ।
भूत्वाहन्ति प्रसक्ताखिलसुख-
निचयं नैव सौख्यं लभन्तः ॥ १९ ॥

अथ लक्षणमाह ।

अतीसारो मूर्च्छा ज्वरमरणदाहारतिरुजः
पिपासा शैथिल्यं सकलवपुषः सन्धि तुदनम् ।
श्रमास्तीव्रश्चैव नयनयुगशोषश्च भवति
तथा शोषः कण्ठे हरिततनुता पित्तजनिते ॥ २० ॥

जो मूर्ख मनुष्य तेज, खट्टे और गरम भोजन करके अधिक मद्यपान करता है अथवा क्रोधके समयमें मद्य पीता है उसका पित्त बिगड़कर सब धातुवोंको बिगाड़ देता है तब घोर मदात्यय रोग उत्पन्न होता है उसके होनेसे मनुष्य कभी सुखी नहीं रहता ॥१९॥

पित्तसे उत्पन्न हुवे मदात्ययमें अतीसार, ज्वर, मूर्च्छा, जलन, अरुचि, प्यास, शिथिलता, सब शरीरकी सन्धियोंमें पीड़ा, परिश्रम, नेत्र और कण्ठ सूखना और शरीर हरा होजाना ये लक्षण होते हैं ॥ २० ॥

अथ श्लैष्मिकस्य निदानमाह।

योऽश्नाति मधुरं नित्यं गुरु चोष्णमथापि वा।
मद्यं विना मात्रया च नित्यं पिबति यो नरः ॥२१॥
दिवास्वप्नव्यवायादि व्यायामनिरतस्तथा।
लभते मनुजो नूनं कफजातं मदात्ययम् ॥ २२ ॥

अथ लक्षणमाह।

वमनारुचिहृल्लासतन्द्रागौरवपीड़ितम्।
ज्ञानशून्यं विजानीयात् कफोत्थं भिषगात्मवान् ॥२३॥

अथ सान्निपातिकमाह।

सर्वदोषसमुद्भूते सर्वलिङ्गसमुद्भवः ॥ २४ ॥

अथ परमदमाह।

गौरवं मुखवैरस्यं कफनाशोऽरुचिर्भ्रमः।
विण्मूत्ररोधस्तन्द्रा च पिपासा शिरसि व्यथा ॥२५॥

जो मनुष्य अधिक मीठा, भारी और गरम भोजन करता है तथा विना प्रमाण मद्य पीता है, दिनमें सोता है, अधिक मैथुन और व्यायाम करता है उसे कफसे उत्पन्न हुआ मदात्यय रोग होता है ॥ २१—२२ ॥

कफसे उत्पन्न हुए मदात्यय में वमन, अरुचि, हृल्लास, तन्द्रा और शरीरका भारीपन ये लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुये मदात्ययमें ऊपर लिखे सब लक्षण अलग अलग होते हैं ॥ २४ ॥

शरीर भारी रहना, मुखका रस विगड़ना, कफनाश, अरुचि, भ्रम, विष्ठा, मूत्र रुकना, तन्द्रा, प्यास, शरीरमें पीड़ा, सन्धियोंमें

सन्धिशूलश्च निद्रा च रतिनाशो विशेषतः ।
चिह्नं परमदस्यैतत् प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २६ ॥

अथ पानाजीर्णमाह ।

पाने त्वजीर्णतां याते लक्षणानि निबोध मे ।
दाह आध्मानमुद्गारपित्तलक्षणमञ्जया: ॥ २७ ॥

अथ पानविभ्रममाह ।

कफप्रसेकाननतालुशोषो
गात्रव्यथा मूर्च्छनमन्त्रपीड़ा ।
हृच्छूलमन्नारुचिराशुविभ्रमः
तं पानविभ्रममथ प्रवदन्ति यस्मिन् ॥ २८ ॥

अथासाध्यत्वमाह ।

मदात्ययी नरो यस्तु पृष्टः सन्नोत्तरं वदेत् ।
अतिशीतं तनुर्यस्य मंदोदाहः शरीरिजः ॥ २९ ॥

पीड़ा, अधिक निद्रा और अरुचि बुद्धिमान् वैद्योंने ये पर मदात्ययके लक्षण कहे हैं ॥ २५—२६ ॥

जब मद्य पीनेसे अजीर्ण होता है तब दाह, पेट फूलना और अधिक डकार आना तथा पित्तके अधिक लक्षण होजाते हैं ॥ २७ ॥

जिस रोगमें मुखसे कफ अधिक गिरै, तालु और मुख सूखै, शरीरमें पीड़ा होय, मूर्च्छा आवै, आंतमें पीड़ा होय, हृदयमें शूल होय, अन्न खानेकी इच्छा न होय और चित्त घूमता रहै वैद्य उसे पान विभ्रम रोग कहते हैं ॥ २८ ॥

जो मदात्यय युक्त रोगी पूछनेसे कुछ उत्तर न देय, जिसका शरीर ठण्डा होगया हो, शरीरमें उत्पन्न हुई गर्मी बहुत कम

पीते च यस्य नयनेऽनीले वाप्ययवाऽरुणे ।
हिक्का ज्वरारतिश्वास कासस्वरविपर्य्ययैः ॥ ३० ॥
पार्श्वशूलादि पीड़ाढ्याः तमसाध्यं विवर्जयेत् ।
जिह्वा सिता च दशनं यस्या सितरं भवेत् ॥३१॥

अथ मद्यसेवनविधिमाह ।

स्नातः शुचिरलङ्कारैः पुष्पगन्धैरलङ्कृतः ।
मृदुवस्त्रसमायुक्तश्चित्रमाली सुभूषणः ॥ ३२ ॥
सानन्दो ना शनैर्मद्यं पिबेदेकान्तसंस्थितः ।
साङ्गनो मित्रसंयुक्तो दीयमानं प्रियैर्जनैः ॥ ३३ ॥

अथ देशमाह ।

उपवने रमणीयतरेऽधिकं
सुमनसां व्रज गन्धितसुन्दरे ।

होगई हो, दोनों नेत्र पीले, नीले, अथवा लाल्हों, हिचकी, ज्वर, अरुची, श्वास, खांसी, स्वरभेद, पसुरी आदिमें पीड़ा, जिह्वा सफेद और दांत काले होगएहों उसको असाध्य जानों ॥ २८—३१ ॥

आगे मद्य पीनेकी विधि लिखते हैं ॥

मद्य पीनेवाला मनुष्य स्नान करके,पवित्र होकर, उत्तम सुगन्धि शरीरमें लगाकर, आभूषण और कोमल वस्त्र पहिन कर, विचित्र फूलोंकी माला पहिन कर, अत्यन्त आनन्द होकर, कुछ भोजनके सङ्ग एकान्तमें बैठ कर, स्त्री और मित्रोंके बीचमें बैठ कर प्यारे मित्रोंकी बात सुनते सुनते धीरे धीरे मद्य पीवे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अत्यन्त रमणीय बागमें फलोंकी सुगन्धीसे उन्मत्त होकर जहां

भ्रमितषट्पदकुञ्जमनोहरे
पिककुलाकुलचारुविभाविते ॥ ३४ ॥
शिशिरसुरभिनीरे चारुतीरे समीरे
निशिकरकरजुष्टे चारुपर्य्यङ्कपृष्ठे ।
कुसुमकरसुकाले चाथवा मेघमाले
पिब सुजनसमीपे मद्यमेवं सुनीपे ॥ ३५ ॥
हृष्टः पुष्टः सुचिरं तः सौवर्णे राजतेऽथवा ।
पात्रे मणिमये वापि मृण्मये वा पिबेन्नरः ॥ ३६ ॥
मदनमत्तविलोलविलोचनाः
जघनगुञ्जितमञ्जुलमेखलाः ।
रतिपरिश्रमदूषितमानसाः
मृगदृशः किल मद्यप्रदा वराः ॥ ३७ ॥

भौंरे घूमते हों और कोकिलादि पक्षी बोल रहे हैं, ऐसे बागमें बैठकर धीरे धीरे मद्य पिये ॥ ३४ ॥

जहां उत्तम सुगन्धिसे भरा जलके तटवाला उत्तम ठण्डा वायु चलता हो वहां मद्य पिये अथवा जहां चन्द्रमाकी चांदनी आती हो ऐसे स्थानमें पलङ्गपर बैठकर मद्य पिये, उत्तम वसन्त अथवा वर्षा समयमें कदम्ब आदि वृक्षोंकी छायामें बैठकर मद्य पिये ॥ ३५ ॥

मनुष्य प्रसन्न होकर सोने, चांदी, मणि अथवा मट्टीके बरतनमें मद्य पिये ॥ ३६ ॥

कामदेवसे मतवारे नेत्रवाली कमरमें धीरे धीरे बजती है करधनी जिसकी ऐसी स्त्री और मैथुनसे थकी हुई हरिणके समान नेत्रवाली स्त्रीके हाथसे मद्य पिये ॥ ३७ ॥

अथ मात्रामाह ।

धलद्वयं पिबेन्मद्यं शुद्धकायः सुसंस्कृतम् ।
स्निग्धान्नं भक्षयेत्पश्चान् मध्याह्ने द्विगुणं मतम् ॥३८॥
निशामुखेऽष्टपलकं मात्रेयं विधिसंमिता ॥ ३९ ॥

अथ मात्रान्तरमाह ।

बुद्धिस्मृती न यावत्स्यात् मनश्चाञ्चल्यमेव च ।
तावन्मात्रं पिबेन्मद्यमन्यथा रोगसम्भवः ॥ ४० ॥

अथ ऋतुविशेषे पानविशेषमाह ।

ग्रीष्मे मद्यं स्वादु शीतं माध्वीकं चैव शस्यते ।
शीते प्रशस्यते तीक्ष्णं गुडजं पैष्टिकं तथा ॥ ४१ ॥

अथ भक्ष्यमाह ।

मद्यान्ते लवणं चाम्लं भृष्टं मांसं फलानि च ।

जो मनुष्य अत्यन्त शुद्ध शरीरवाला हो वह शुद्ध मद्य दो पल अर्थात् चारतोले पिये ऊपरसे चिकना और उत्तम अन्न खाय और दो पहरमें इसका दूना मद्य पिये ॥ ३८ ॥

और सन्ध्या समय आठ पल अर्थात् सोलह तोले तक पिये ॥ ३९ ॥

अथवा जब तक बुद्धि, ठीक बनी रहे, जब तक नेत्र और मन इधर उधरको न चले तब तक मद्य पिये, नहीं तो अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ ४० ॥

ग्रीष्म अर्थात् गर्मीमें मीठा, महुवेका मद्य पिये ; शीत ऋतुमें तेज गुड और पिट्ठीका मद्य पिये ॥ ४१ ॥

मद्य पीनेके पीछे नमके,खट्टे, चिकनाई भरे,सुगन्धि और वर्ण

भक्षयेत् स्नेहसंयुक्तं सुगन्धं वर्णतः प्रियम् ॥ ४२ ॥

अथ सुश्रुतस्त्वाह ।

केचिन्मधुरवर्ज्यांस्तु रसानवा दिशन्ति हि ॥ ४३ ॥

अथ प्रकृतिविशेषमाह ।

वातिकः प्रपिबेन्मद्यमभ्यङ्गस्नानलेपनैः ।
सुवस्त्रैः सहितश्चैव अनुकूलाम्लभक्षणैः ॥ ४४ ॥
पित्तप्रकृतिकश्चैतैर्मधुरैः स्निग्धभोजनैः ।
जाङ्गलैः श्लैष्मिको मद्यं पिबेन्नित्यं सुतीक्ष्णकैः ॥४५॥

अथ समयविशेषमाह ।

प्राग्भोजनात्पिबेन्मद्यं कफप्रकृतिको नरः ।
पैत्तिकश्च पिबेत्पश्चाद् वातिको मध्यभोजने ॥ ४६ ॥

अथ प्रकृतिविशेषे मद्यविशेषमाह

वातिकः पैष्टिकं नित्यं पैत्तिको गुड़सम्भवम् ।
माध्वीकञ्च पिबेन्मद्यं नरः कफस्वभाववान् ॥ ४७ ॥

युक्त भुने हुए मांस खाय। सुश्रुतने यह भी लिखा है कि कोई कोई आचार्य्य मद्यके सङ्ग मीठा खाना मना करते हैं ॥ ४२—४३ ॥

वायु प्रकृतिवाला मनुष्य स्नान करके, चन्दनादि लगाके, उत्तम वस्त्र पहिन कर, अच्छे स्थानमें बैठकर खट्टे पदार्थोंके सङ्ग मद्य पिये, पित्त प्रकृतिवाला चिकने और मीठे भोजनोंके सङ्ग मद्य पिये ॥ ४४—४५ ॥

कफ प्रकृतिवाला मनुष्य भोजनसे पहिले, पित्त प्रकृतिवाला पीछे और वात प्रकृतिवाला भोजनके सङ्ग अथवा बीचमें पिये ॥४६

अथ चिकित्सा ।

मद्य: खर्जूरमृद्वीका वृक्षाम्लाम्लीकदाडिमै: ।
परूषकै: सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥ ४८ ॥
मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ।
जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ४९ ॥
मुद्गयूष: सितायुक्त: स्वादुर्वा पैशितो रस: ।
पित्तपानात्यये योज्या: सर्वतश्च क्रिया इमा: ॥५०॥
पानात्यये कफोद्भूते लङ्घनञ्च यथा बलम् ।
दीपनीयौषधोपेतं पिबन्मद्यं समाहित: ॥ ५१ ॥
सर्वज्ञ सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् ।

वात प्रकृतिवाला पैष्टिक पित्तस्वभाववाला गुड़का और कफ प्रकृतिवाला मधुवेका मद्य पिये ॥ ४७ ॥

आगे मदात्यय की चिकित्सा लिखते ।

मद्यसे उत्पन्न हुये मदात्यय में खजुर, दाख, अमड़ा, इमली, अनार, फालसा और आमले का बना संधान पिलावे ॥ ४८ ॥ बातसे उत्पन्न हुये मदात्यय में मद्य पचने के पश्चात् मद्य में काला नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल और थोड़ा जल मिलाके पिला देय ॥ ४८ ॥

खानेको मूंगके रसमें चीनी मिलाकर अथवा मांसका उत्तम रस देय, पित्त से उत्पन्न हुये मदात्यय में ठण्ढी क्रिया करे ॥ ५० ॥

कफसे उत्पन्न हुए मदात्यय में बलके अनुसार लङ्घन देय और अग्नि बढ़ानेवाली औषधियों में मिलाकर मद्यपिलावे ॥ ५१ ॥

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शान्तिं याति मदात्ययः ॥
सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम् ।
सद्यः प्रशमयेच्छीतमालसेवाऽतिशीतलम् ॥ ५३ ॥
वन्यकरीषघ्राणाज् जलपानाल्लवणभक्षणादपि ।
शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णकजा(१)शर्करा कवलात् ॥५४॥
कुष्माण्डकरसः सगुडः
शमयति मदमाशु मदनकोद्रवजम् ॥ ५५ ॥
धौस्तूरजस्तु दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ ५६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मदात्ययचिकित्सा ।

तीनों दोषों से उत्पन्न हुवे मदात्यय में यही तीनों चिकित्सा करे इन ही क्रियाओं से मदात्यय रोग दूर होजाता ॥ ५२ ॥

सुपारी का मद में मूर्च्छा और अतिसारके सहित इच्छानुसार ठंडा पानी पीनेसे शीघ्र दूर होजाता है ॥ ५३ ॥

वन के कंडेकी राख सूंघनेसे, जल पीनेसे, नमक खानेसे, और शकर मुख में रखनेसे सुपारी का मदात्यय दूर हो जाता है और चूनेके खानेसे उत्पन्न हुवे रोग भी दूर हो जाते हैं ॥५४॥

कुम्हड़े के रस में गुड़ मिला कर खानेसे कोदोका मद दूर होता है ॥ ५५ ॥

धतूरे का मद शकर पड़ा दूध पीनेसे दूर होता है ॥५६॥

भाषा भैषज्यरत्नावली में मदात्यय चिकित्सा अधिकार समाप्त ।

---

(१) चर्णकजापीडा।

अथ दाहाधिकारः।

अथ दाहनिदानम्।

ऊष्मात्मको ह्ययं व्याधिः पित्तज्वरसमाकृतिः॥ १॥

अथ रक्तजमाह।

सर्वदेहचरं रक्तं यदा दुष्टं तदा तु तत्।
दाहं करोति वपुषि तस्मिंश्चोषस्तु जायते॥ २॥
आरक्तनयनो जन्तुः लोहगन्धाननस्तथा।
अग्निदाहोपमो दाहः सर्वदेहे प्रवर्त्तते॥ ३॥

अथ रक्तपूर्णकोष्ठजमाह।

रक्तेन पूर्णकोष्ठस्य दाहो भवति चाधिकः॥ ४॥

दाहरोग गर्मीसे उत्पन्न होता है और इसके सब चिह्न पित्तज्वर के समान हैं॥ १॥

जब सब शरीर में घूमनेवाला रुधिर बहुत अधिक बढ़ जाता है तब सब शरीर में जलन उत्पन्न करता है उस में ऐसी पीड़ा होती है जैसे सिंगी खींचने में; रोगीके नेत्र लाल हो जाते हैं, मुख में लोहेके समान गन्धि आती है और सब शरीर में आगसे जलने के समान दाह होता है इसको रक्तज दाह रोग कहते हैं॥ २—३॥

जब मनुष्य के पेट में अधिक रुधिर भर जाता है तब भी अधिक दाह होने लगता है इसे रक्तपूर्णकोष्ठज दाह कहते हैं॥ ४॥

अथ मद्यजमाह ।

पानोत्थः स तु सन्ताप रक्तपित्तप्रदूषितः ।
त्वचं प्राप्य प्रकुरुते तापं दुःसहमोजसा ॥ ५ ॥

अथ पिपासा रोधजमाह ।

यदा निरुध्यते तृष्णा क्षीणे वारिणि वर्द्धिते ।
तेजोधातौ तदा देहं वाह्यमभ्यन्तरं तथा ॥ ६ ॥
दहेत्पीतमथोऽस्मिंस्तु संशुष्कमुखकंठता ।
तालुजिह्वाधराणाञ्च शोषो दाहश्च दुःसहः ॥ ७ ॥

अथ धातुक्षयजमाह ।

दाहे तु धातुक्षयजे मनुष्यः
क्षीणस्वरो मूर्च्छति तृष्णयाढ्यः ।
क्रियाविहीनः किल सीदतीव
पीडान्वितो दुर्बलनष्टचेता ॥ ८ ॥

जब अधिक मद्य पीनेसे रक्त और पित्त बिगड़ कर त्वचा में प्राप्त होते हैं तब त्वचा में भयानक दाह होने लगता है उसे मद्यजदाह कहते हैं ॥ ५ ॥

जब प्यास लगने पर मनुष्य पानी नहीं पीता तब अग्नि अत्यन्त बढ़ कर जलधातु को जला कर भीतर और बाहर घोरदाह उत्पन्न करती है इस दाह में मुह, गला, तालु और ओठ सूखते हैं इसका नाम पिपासा निरोधज दाह है ॥६—७॥

जब मनुष्य के शरीर की धातु नष्ट हो जाती है तब वार२ मूर्च्छा आती है, शिर में दाह होता है, स्वर नष्ट हो जाता है,

अथ मर्माभिघातजमाह।

मर्माभिघातजो दाहः सप्तमोऽसाध्य उच्यते।
गतोष्म वपुषः सर्वे दाहाश्चासाध्यतां गताः॥ ९॥

अथ चिकित्सा।

यत्पित्तज्वरदाहोक्तं दाहे तत्सर्वमिष्यते।
चन्दनाम्बुकणाष्यन्दि तालवृन्तोपजीवितः॥ १०॥
सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे।
परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने॥ ११॥
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णा दाहोपशान्तये।

इति भैषज्यरत्नावल्यां दाहचिकित्सा।

सब क्रिया नष्ट हो जाती हैं, इन्द्रियों में बल नहीं रहता और शरीर में अनेक प्रकार की पीड़ा होती हैं इसका नाम धातुक्षयज दाह है॥ ८॥

जो सातवां दाह मर्म कटनेसे होता है वह असाध्य है, जिस रोगीका शरीर ठंढा हो गया हो उस के सब दाह असाध्य हैं॥ ९॥

अथ दाह चिकित्सा।

पित्तज्वर के दाह में जो चिकित्सा कही है वही सब दाह में भी कही है, चंदन का जल और बेगन आदि के ठंढे पत्ते शरीर में लगावे रोगी कमल और केलेके पत्तों पर सोवे ठण्ढे जल में स्नान करे ठण्ढापानी छिड़के पंखेसे हवा करे॥१०॥११॥

प्रियंगू, लोध, नेत्रवाला, खस, हेमपत्र, धनिया और अगर

फलिनी लोध्रसेव्याम्बु, हेमपत्रं कुटन्नटम् ॥ १२ ॥
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ।
ह्रीवेरपद्मकोशीरचन्दनक्षोदवारिणा ॥
सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ १३ ॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावल्यां दाहाधिकारः ।

अथोन्मादाधिकारः ।

अथोन्मादनिदानम् ।

उन्मार्गगामिनो दोषाः चित्तं तु विक्षिपन्ति हि ।
मानसोऽयं व्याधिरुक्त उन्माद इति वेदिभिः ॥१॥

अथ भेदानाह ।

वातपित्तकफैः सर्वैर्मनोदुःखेन चापरः ।

घिसकर शरीरमें लेप करे, दाहसे व्याकुल रोगी नेत्रवाला, पद्माख खस और चन्दनके पानीसे भरे कड़ाहमें स्नान करे ॥१२॥१३॥

भाषाभैषज्यरत्नावली में दाहचिकित्सा अधिकार समाप्तः ।

उन्माद अधिकार लिखते हैं ।

जब वातपित्त और कफ अपने २ कारणों से दूषित होकर अपने २ मार्गों को छोड़ कर दूसरे मार्गों में चले जाते हैं, तब चित्त स्थिर नहीं रहता उसी रोगको वैद्य उन्माद कहते हैं यह उन्माद रोग मन में उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

विषेणापि प्रभवति षड्विधः स उदाहृतः ॥ २ ॥

अथ तस्य विप्रकृष्टनिदानमाह ।

प्रतिकूलविहारान्नपानैर्दैवद्विजातिनाम् ।
द्वेषाद्धर्षान्मनः शोकात् क्रोधाद्विषमभोजनात् ॥३॥
अभिघातात्तथान्येभ्यो कारणेभ्योऽस्य सम्भवः ॥ ४ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह ।

पूर्वोदितैरल्पबलस्य जन्तोः
दोषाः प्रदुष्टा हृदयं प्रविश्य ।
संदूष्य स्रोतांसि मनोवहानि
भवेयुरुन्मादकराः समस्ताः ॥ ५ ॥

वात, पित्त, कफ, सन्निपात, मनका दुःख और विषखानेसे उत्पन्न होने के कारण यह रोग छःप्रकार का कहा है ॥ २ ॥

जब मनुष्य स्वभावसे विरुद्ध खाने, पीनेका व्यवहार करता है, देवता और ब्राह्मणों का द्वेष करता है, या किसी कारणसे अनायास अत्यन्त प्रसन्न होता है अथवा अत्यन्त शोकसे व्याकुल होता है, क्रोध करता है, विषम भोजन करता है अथवा जब अधिक चोट लगजाती है तब मनुष्य पागल होजाता है। यह रोग और भी अनेक कारणों से उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

जब पहिले लिखे कारणों से वात, पित्त और कफ दुर्बल मनुष्य के शरीर में बिगड़ जाते हैं और चैतन्यता स्थिर रखने वाली नाड़ियों को बिगाड़ कर हृदय को दूषित कर देते हैं, तब मनुष्य को उन्मादरोग उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

अथ सामान्यं लक्षणमाह ।

मनोविनाशो मतिनिग्रहश्च
अधीरता व्याकुलता च चित्ते ।
अबद्धवाक्यत्वमनार्य्यता च
हृच्छून्यता लिङ्गमुदाहरन्ति ॥ ६ ॥

अथ वातिकस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

धातुक्षयाद्रूक्षनिषेवणाच्च
शीतान्नरेकादिभिरेव दुष्टः ।
शोकादिदुष्टं हृदयं प्रविश्य
उन्मादहेतुः किल मातरिश्वा ॥ ७ ॥

अथ तस्यैव रूपमाह ।

अयुक्त-गीत-स्मित-नृत्य-हास-
दौर्बल्य-वैवर्ण्य-विरोदनानि ।

जिस रोगमें मनस्थिर न रहे, बुद्धिका नाश होजाय, चित्त बहुत व्याकुल होय और धीरताका नाश होजाय, वचन कहने का कुछ नियम न रहे, हृदय शून्य होजाय और रोगी वृथा बके उसे उन्माद रोग कहते हैं ॥ ६ ॥

धातुक्षय होने से, अधिक रूखा और ठण्डा भोजन करने से तथा अधिक विरेचन लेने से वायु विगड़ कर शोक, भय, या क्रोध आदि दोषोंसे दूषित हृदयमें प्रवेश करके मनुष्य को पागल कर देता है इस ही रोगका नाम वातोन्माद हैं ॥ ७

रोगी वातोन्माद में बिना समय गाता, रोता, मुसकियाता

पारुष्य विक्षेपणमङ्गगौरवम्
वातोद्भवे चिह्नमुशन्ति धीराः ॥ ८ ॥

अथ पैत्तिकस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

विदाहि कट्वम्लसरोष्णपित्त-
प्रकोपणैर्भोज्यतरैर्नरस्य ।
उन्मादमत्युग्रमनन्तवेगं
पित्तोद्भवं स्याद्धृदिगेन तेन ॥ ९ ॥

अथ रूपमाह ।

दाहतृट्स्तम्भरोषा भ्रमभरलघुता हर्षसन्तर्जनानि ।
शीतेच्छा पीतता च भवति हि वपुषो रौद्रचेतोऽभिलाषः
आभीक्ष्ण्याच्छीतपानाशनजलरतिरभितःपीतभावस्तथाक्ष्णोः
उन्मादे पित्तजाते भवति हि नितरां लिङ्गमेतन्महोग्रम् १०

नाचता और हंसता है, अत्यन्त दुर्बल होजाता है, हाथ पैर पटकता है, शरीरका रंग बिगड़ जाता है शरीर कठोर और भारी हो जाता है ॥ ८ ॥

जब मनुष्य अत्यन्त जलन करनेवाली, खट्टी, बहुत गर्म और पित्तको बढ़ानेवाली वस्तु खाता है, तब पित्त बिगड़ कर हृदय को दूषित करके और उन्माद रोग उत्पन्न करता है, उसे ही बुद्धिमान् पित्तोन्माद कहते हैं ॥ ९ ॥

पित्त से उत्पन्न हुवे उन्माद रोग में शरीर में जलन, प्यास, स्तम्भन, क्रोध, भ्रम, शरीर का हलकापन, प्रसन्नता, डपटना, ठण्ढी वस्तु छूने और खाने की और जल छूनेकी इच्छा, और

अथ श्लैष्मिकस्य निदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह ।

मन्दचेष्टो नरो यस्तु तस्योष्मा कफसंयुतः ।
अतिभोज्यादिभिः क्रुद्धो मर्मस्थानानि दूषयन् ॥११॥
स्मृतिं मेधां निहत्याशु अत्युन्मादकरो भवेत् ॥ १२ ॥

अथ रूपमाह ।

धैर्य्यं स्थैर्य्यञ्च कण्डू वमनमरुचिता शुक्लता नेत्रयोश्च ।
लालास्रावोऽथ शौक्ल्यं नखप्रभृति वपुष्येव मन्दाग्निता च
निद्रा माऽऽमन्दता च तरुणि रतिरथो मन्दगामित्वमाशु
उन्मादे श्लेष्मजाते कफजनितगदाः सर्व एवास्य देहे॥१३

नेत्रों में पीलापन, नेत्रोंदुष्टता, गर्मी, चुभने के समान पीड़ा, ये लक्षण होते हैं ॥ १० ॥

जब मनुष्य कुछ काम नहीं करता और अधिक भोजन करता है, तब उसके शरीर की गर्मी कफ से मिल कर मर्मस्थानों को दूषित करके बुद्धि और स्मरण शक्ति को नाश करके मनुष्य को पागल कर देती है इसी रोगका नाम कफोन्माद है ॥ ११ ॥ १२ ॥

कफसे उत्पन्न हुवे उन्माद में धीरता, स्थिरता, खुजली, वमन, अरुचि, नेत्रों में सफेदी, मुख से राल गिरना, नाखून आदि सब शरीर का सफेद होना, मंदाग्नि होना, अधिक सोना, कम बोलना, मैथुन की इच्छा और धीरे धीरे चलना ये लक्षण होते हैं और और भी कफ के रोग शरीर में दीखने लगते हैं ॥ १३ ॥

अथ सान्निपातिकमाह।

य: सर्वदोषप्रभवोऽतिघोर:
उन्मादरोग: किल तत्र सर्वम्।
पृथक् पृथग्दोषगणस्य रूपम्
विद्यात् पृथग्वैद्यवरो महात्मा॥ १४॥

अथ मनोदु:खजमाह।

नरेन्द्रचौरमानवैस्तथारिवन्दटुर्जयै:
विभर्त्सितस्य नुर्मनोवियोगजे नवाथवा।
यदातिविच्चतं भवेत् तदातिमत्ततागतम्
मनोविकार एष वै सुदु:खजात ईरित:॥१५॥

अथ रूपमाह।

नृत्यति गायति हसति चित्रं वदति निरीक्षतेऽसंज्ञ:।
रोदिति वारं वारं मनोविकारजाते देही॥ १६॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुवे भयानक उन्माद रोग में तीनों दोषोंके भयानक चिह्न अलग अलग दिखलायी देते हैं॥ १४॥

जब मनुष्यका चित्त राजा, चोर और अत्यन्त बलवान् शत्रुके भय से व्याकुल हो जाता है अथवा किसी मित्र के वियोग से व्याकुल हो जाता है; तब वह मनुष्य पागल हो जाता है, इसे मनोदु:खज उन्माद कहते हैं; इस रोग में रोगी कभी हंसता है, कभी गाता है, कभी नाचता है, कभी अद्भुत बात कहने लगता है, कभी चैतन्यता रहित होकर देखता है, और कभी रोता है॥ १५—१६॥

अथ विषजस्य रूपमाह ।

दीनात्मा रक्तनेत्रश्च नष्टसंज्ञोऽबलेन्द्रियः ।
विषजाते महोन्मादे नरो भवति वै भृशम् ॥ १७ ॥

अथारिष्टमाह ।

अधोमुखः सदोर्द्धास्यः क्षीणमांसबलेन्द्रियः ।
सदा जागरूको रोगी उन्मादान्न प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

अथ देवादिकृतोन्मादस्य सामान्यं लक्षणमाह ।

ज्ञान-विज्ञान-धीधैर्य्यवाग्विद्या बलबुद्धयः ।
अमानुषायस्य जन्तोः कोपकालश्च निश्चितः ॥ १९ ॥
देवादिकृत उन्मादः तस्य वैद्यैर्विनिश्चितः ॥ २० ॥

विषसे उत्पन्न हुवे उन्माद में मनुष्यके नेत्र लाल हो जाते हैं चैतन्यता और सब इन्द्रियोंका बल नष्ट हो जाता है १७ ॥

जो उन्माद रोगी सदा नीचे को देखे अथवा एक मांस केवल ऊपरही को देखता रहे, जिसके शरीरका मांस और इन्द्रियोंका बल नष्ट हो गया हो और जो रात दिन जागता हो उसे असाध्य जाने ॥ १८ ॥

आगे जिस मनुष्य को भूतादि लगी हों उसके लक्षण कहते हैं जो मनुष्य, ज्ञान, विद्या, बुद्धि, धैर्य्य और बल साधारण मनुष्यों से अधिक प्रकाशित करे अर्थात् जिसमें ये सब बात मनुष्योंसे अधिक हों और जिसके दोष बिगड़नेका समय निश्चित हो अर्थात् जिस को ठीक बंधे समय में उन्माद हो जाता हो उसको दैवतादि से उत्पन्न हुवा उन्माद जाने ॥ १९—२० ॥

अथ देवाविष्टस्य लक्षणमाह।

शुचिस्तन्द्रा-निद्रारहित-वरदाता द्विजरत:।
सुगन्धेप्सु र्नित्यं शुचिरतिशयं दिव्यवसन:॥
सुसन्तुष्टो रोगी वदति सुरवाचं त्वपठिताम्।
सुराविष्टो जन्तुस्त्वरुणनयनस्तुष्टहृदय:॥ २१॥

अथ दैत्याविष्टमाह।

द्विजगुरुसुरवैरी स्वेदसंक्लिन्नदेह:
विगतभयसमूहो दुष्टदृष्टिर्दुरात्मा।
कुटिलनयनयुग्मस्तुष्टचेतापि दुष्ट:
अमररिपुनिविष्टो मानवो मांसभक्षी॥२२॥

अथ गन्धर्वाविष्टमाह।

विपिनवासप्रिय: स्वरगीतवान्
हसति नृत्यविलासरत: शुचि:।

जो रोगी सदा पवित्र रहै, निद्रा, आलस्य से रहित हो, ब्राह्मणोंका भक्त वरदान देनेवाला, सुगन्धि सूंघनेकी इच्छावाला और दिव्यवस्त्रधारी हो, सदा सन्तुष्ट रहै और विना पढ़ी संस्कृत बोले उसे जाने कि इसे देवता आता है॥ २१॥

जो ब्राह्मण और देवतों का वैरी हो और जिसको अधिक पसीना आता हो, जिसे कुछ भय न लगता हो, जिसका मन और बुद्धि नष्ट होगई हो, जिसकी दृष्टि कुटिल हो, स्वभाव बिगड़ गया हो और जो मांस खाता हो उसे जाने कि इसे राक्षस आता है॥२२॥

जो उत्तम स्वरसे गीत गाता हो, वन और बाग में रहने की इच्छा करता हो, हंसता हो, नांचता हो, विलासकी इच्छा करता

प्रियकथा रतिरञ्जितमानसो
भवति नाऽमरगायकदूषितः ॥ २३ ॥

अथ यक्षाविष्टमाह।

तेजस्वी रक्तवस्त्री धृतिमतिरतिमान् रक्तनेत्रः सहिष्णुः
गम्भीरो धीरचेता प्रवदति सततं मेघगम्भीरवाचा।
कस्मै किं प्रददामि चेप्सितवरं ब्रूता प्रमत्ता नराः।
यक्षाविष्टो मनुष्यो द्रुतगतिरभितो मन्दवाङ्मन्दचेष्टः २४

अथ पित्राविष्टमाह।

पिण्डप्रदाता पितॄणां जलतर्पणतत्परः।
पितृभक्तश्च भवति पितृयक्षनिपीड़ितः ॥ २५ ॥

अथ नागाविष्टमाह।

यः सर्पवत्सर्पणतत्परो ना
क्रोधी च यः चौद्रघृतेप्सुचेता।

हो, पवित्र रहता हो, जिसका मन उत्तम बात सुननेसे प्रसन्न हो उसे जाने कि उसे गन्धर्व आता है ॥ २३ ॥

जो रोगी अत्यन्त तेजस्वी, बुद्धिमान्, धारणाशक्तियुक्त, लालवस्त्रधारी, लाल नेत्रवाला, क्षमावान्, गम्भीर और धीरचित्त हो और मेघके समान गंभीर वाणीसे कहे कि हे मनुष्यों! तुम लोग मांगो हम क्या वरदान देय और जो शीघ्र चले कम बोले और कम काम करे उसे जाने कि इसे यक्ष आता है ॥ २४ ॥

जो पितरोंका पिण्ड देय, तर्पण करे, तिल, मांस, गुड़, खीचड़ी खाने की इच्छा करे और पितरोंका भक्त हो उसे जाने कि इसे पितर आते हैं ॥ २५ ॥

यः सृक्कणी चर्वति घोरचेता
भुजङ्गमाविष्टतमेव विद्यात् ॥ २६ ॥

अथ राक्षसाविष्टमाह।

क्रव्यासृङ्मद्यमेदोशनप्रियतमता क्रोधलोभातिशोकाः
नैष्ठुर्य्यं शौचहानिः विविधविलसनं रात्रिसञ्चारणत्वम्
शौटीर्य्यं मानमोहावतिरतिरतता स्नेहशून्यत्वमादौ
निर्लज्जत्वञ्च शोकः प्रभवति सततं राक्षसाविष्टचिह्नम्
॥ २७ ॥

अथ ब्रह्मराक्षसाविष्टमाह।

निगमशास्त्रविनिन्दनतत्परो
द्विजगुरुप्रियवैररतः सदा।
अधर्मशोकसमन्वितविग्रहो
द्विजसुरारिनिविष्टमना नरः ॥ २८ ॥

जो रोगी सर्पके समान चले, क्रोधमें भरा रहै, घी, शहत और दूध पीनेकी इच्छा करे, बार बार ओठ चाटे, उसे जाने कि इसे सर्प आता है ॥ २६ ॥

जो रोगी मांस खानेकी इच्छा करे, रुधिर पीनेकी इच्छा करे, चर्बी पीनेकी इच्छा करे, क्रोध, लोभ, शोक, निष्ठुरतासे भरा रहे और अनेक विलास करे, रात्रिको घूमे, अपनेको धीरमाने, अभिमान करे, मोह करे, अधिक मैथुन करनेकी इच्छा करे, किसीसे प्रेम न करे, और सदा निर्लज्ज रहे उसे जाने कि इसे राक्षस आता है ॥२७

जो वेद और शास्त्रों की निन्दा करे, ब्राह्मण गुरु और मित्रों

अथ पिशाचाविष्टमाह ।

अशुचि चपलचेष्टो चञ्चलाक्षो विरोधी
कृशतनुरतिमात्रं पूतिगन्धप्रियश्च ।
विजनवननिवासी चातिभोजीमनुष्यः
रुदन-हसनशीलो भूतसंदुष्टचेता ॥ २९ ॥

अथ हिंस्रग्रहणमाह ।

अपवित्रममर्य्यादं सव्रतं वाप्यथा व्रतम् ।
हिंस्रा गृह्णन्ति मनुजं लीला पूजनलोभतः ॥ ३० ॥

अथासाध्यत्वमाह ।

स्थूलदृक्कम्पिताङ्गो द्रुतमदनगतिः भीतिशोकप्रलापैः ।
निद्रा-तन्द्रारुचि-शोथैः रहिति हि गुरुतरैर्गात्रसंघैरथाढ्यः ।

से वैर करै, किसी से न डरै, सदा शोक से व्याकुल रहै उसे जानै कि इसे ब्रह्मराक्षस आता है ॥ २८ ॥

जो अपवित्र रहै और चञ्चलतासे काम करै, जिसके नेत्र चञ्चल होंय, सब से विरोध करै, जिसका शरीर बहुत दुर्बल होय, दुर्गन्धि सूंघने की इच्छा करै, मनुष्य रहित स्थान में अथवा जङ्गल में रहै, कभी रोवै, कभी हंसै और बहुत भोजन करै, उसे जानै कि इसे पिशाच आता है ॥ २९ ॥

अपवित्र, मर्यादा रहित, घावयुक्त, अथवा विना घाववाले मनुष्य को भी मारने के लिये अथवा खेल के लिये भूतादिक पकड़ लेते हैं ॥ ३० ॥

जिसकी आंख सूजगई हो, शरीर कांपता हो, वीर्य्य शीघ्र गिरता हो और जो शोक, निद्रा और आलस्य से व्याकुल हो, जिस का

नित्यं तच्चिह्नयुक्तो पतति च सततं हर्म्यशृङ्गादिसंस्थात्
उन्मादी सोऽप्यसाध्यो मुनिगणगणितोऽसाध्यसंवेऽतिघोरे ॥ ३१ ॥

अथ देवाद्या वेशसमयमाह ।

पौर्णमास्यां ग्रहा देवाः सन्ध्ययोरसुरा द्वयोः ।
अष्टम्यां निशि गन्धर्वा यक्षाश्च प्रतिपत्तिथौ ॥ ३२ ॥
कृष्णपक्षेऽपि पितर उरगाः पञ्चमीतिथौ ।
चतुर्दश्यां पिशाचास्तु राक्षसाः प्रविशन्ति च ॥ ३३ ॥

अथ देवाद्या देशे क्रममाह ।

दर्पणाम्बु जलं छाया देहमौष्ण्यञ्च शीतता ।
देहे यथा प्रविशन्ति तथा देवादयोऽखिलाः ॥ ३४ ॥

अथ चिकित्सा ।

उन्मादे वातिके पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम् ।

शरीर भारी हो और हर समय जिस में भूतादिक के चिह्न पाये जांय और जो पर्वतके शिखर या अटारी से कूदे, उस उन्मादी को मुनियों ने असाध्य कहा है ॥ ३१ ॥

देवता पूर्णमासी को, राक्षस प्रातःकाल और सन्ध्या को, गन्धर्व अष्टमी को रात को, यक्ष प्रतिपदा को, पितर कृष्णपक्ष की पड़वा को, सांपपञ्चमी को और पिशाच तथा राक्षस चतुर्दशी को रात्रि को रोगी पर आते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

जैसे दर्पण और जल में छाया घुस जाती है और जैसे शरीर में शीत और गर्मी प्रवेश करते हैं तैसे ही देवतादिक भी शरीर में प्रवेश करते हैं ॥ ३४ ॥

पित्तजे रेचनं वान्तिः परो वस्त्यादिकः क्रमः ॥ ३५ ॥
यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते ।
उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद् दोषदूष्ययोः ॥३६॥
ब्राह्मीकुष्माण्डफलषड्ग्रन्था शङ्खपुष्पिका स्वरसः ।
उन्मादहृतो दृष्टा पृथगेते कुष्ठमधुमिश्रिताः ॥ ३७ ॥
सम्भोज्य पिकमांसं वा निर्वाते स्वापयेत्सुखम् ।
त्यक्त्वा स्मृति-मतिभ्रंशं संज्ञां लब्ध्वा प्रबुध्यते ॥ ३८ ॥

इति पिकमांसयोगः ।

अपक्वचटकीक्षीरपाण मुन्माद नाशनम् ।
कुष्माण्डकबीजकल्कं पीतो विनाशनानि ॥ ३९ ॥

इति कुष्माण्डबीजकल्कम् ।

आगे उन्मादरोग की चिकित्सा लिखते हैं।

वात से उत्पन्न हुवे उन्माद में पहिले चिकनाई पिला कर विरेचन दे, पित्तसे उत्पन्न हुवे में विरेचन देय और क . उत्पन्न हुवे में वमन करावे, पीछे वस्ति आदि कर्म करे ॥ ३५ ॥

अपस्मार में जो चिकित्सा कहेंगे सामान्य रूप से उन्माद में भी दोष और धातु शुद्ध होने के लिये वही सब चिकित्सा करें ॥ ३६ ॥

ब्राह्मी, कुम्हाड़ा, पीपलामूल और शंख पुष्पीके रस इन एक२ कूट और शहत मिला कर पीने से उन्मादरोग दूर होजाते हैं ॥ ३७ ॥

कोयल का मांस पकाकर खिलाकर रोगीको वायु रहितस्थान में सोने देय, फिर जब जागेगा, तब चैतन्यता और बुद्धि आदि सब गुण उस में मिलेंगे अर्थात् उन्माद रोग उसी समय जाता रहेगा ॥ ३८ ॥

कच्चे दूध में, पिपलामूल मिला कर पीने से उन्माद रोग दूर

उन्मादरोगमत्युग्रं मधुना दिवसत्रयम् ।
उन्मादे समधुः पेयः शुद्धो वा तालशाखजः ॥ ४० ॥
रसो नस्योऽभ्यञ्जने च सार्षपं तैलमिष्यते ।
बद्धं सार्षपतैलाक्तमुत्तानञ्चातपे न्यसेत् ॥ ४१ ॥
पुराणमथवा सर्पिः पिबेत्प्रातरतन्द्रितः ।
शुद्धस्याचारविभ्रंशे तीक्ष्णं लावणमञ्जनम् ॥ ४२ ॥
ताड़नञ्च मनोबुद्धि-स्मृतिसंवेदनं हितम् ।
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम् ।
विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ ४३ ॥
कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्या लोभसम्भवान् ।

होजाते हैं कुम्हेड़े के बीज की गिरी में शहद मिलाकर पीने से तीन ही दिनमें उन्माद रोग जाता रहता है ॥ ३९ ॥

उन्माद रोग में शहद के संग ताड़की शाखा का रस पीवै, शरीर में सरसों का तैल लगावे, शरीर में लगाने और सूंघने को ताड़की शाखा का शुद्ध रस देय ॥ ४० ॥

रोगी के शरीर में सरसों का तैल लगा कर घाम में उलटा टांग देय, प्रातःकाल पुराना घी खिलावे, जब रोगी शुद्ध होजाय, और उन्माद रोग न जाय, तब आंख में नमक आदि तेज वस्तुका अञ्जन देय ॥ ४१—४२ ॥

जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई होय उस उन्माद रोगीको पीटे, डरावे, प्यारी वस्तु दे, शांत करे और उस का चित्त प्रसन्न करने का उपाय करे, और आश्चर्य की बात कहे तो उसका मन स्थिर होजाता है ॥ ४३ ॥

परस्परप्रतिद्वन्द्वै(१)रेभिरेव शमं नयेत् ॥ ४४ ॥
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या सान्त्वाश्वासैश्च तं जयेत् ॥ ४५ ॥
सर्पिः पानादिरागन्तौ मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः ।
पूजा बल्युपहारेष्टि होममन्त्राञ्जनादिभिः ॥ ४६ ॥
जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ।
देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् ।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रममेव च ॥ ४७ ॥
विशाला त्रिफला कौन्ति देवदार्वेलवालुकम् ॥४८॥
स्थिरा नतं हरिद्रे द्वे शारिवे द्वे प्रियङ्गुकम् ।

काम, शोक, भय, क्रोध, प्रसन्नता, ईर्षा, और लोभादि से उत्पन्न हुवे उन्माद रोगको इन ही सब के विरोधी कार्य्यों से दूर करे ॥ ४४ ॥

जिसको प्यारी वस्तुके नष्ट होने से उन्मादरोग हुआ हो उसे वैसी ही वस्तु देकर और मनको शान्त करके रोग दूर करे ॥४५॥

घी पिलाना, मन्त्र पढ़ना, पूजा, बलि, उपहार, यज्ञ, होम, और अञ्जनादि से भी उन्माद रोग दूर होजाते हैं ॥ ४६ ॥

पण्डित वैद्य, देव, ऋषि, पितर और गन्धर्व आदि के दोष से हुवे उन्माद को ऊपर लिखी चिकित्सासे दूर करे, उसमें तेज अञ्जनादि न लगावे ॥ ४७ ॥

इन्द्रायणी, हरे, बहेरा, आंवला, रेणुका, देवदारु, एलवालुक, शालपर्णी, तगर, हलदी, दारुहलदी, दोनों सारिवन, प्रियङ्गु, नीला-

(१) परस्परप्रतिद्वन्द्वैः परस्परोपघातकैः कामजमुन्मादं शोकेन भयेन वा शमं नयेत्। एवं शोकज भयक्रोधाभ्याम् इत्याद्यनुसन्धेयम् ।

नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाड़िमकेशरम् ॥४९॥
तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ॥ ५० ॥
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षसमन्वितैः ।
चतुर्गुणं जलं दत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५१ ॥
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ।
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ॥ ५२ ॥
वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ।
दोषोपहतचित्तानां गद्गदानामरेतसाम् ॥ ५३ ॥
शस्तं स्त्रीणाञ्च बन्ध्यानां वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ।
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ५४ ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ ५५ ॥

इति कल्याणकं घृतम् ।

कमल, इलायची, मंजीठ, जमालगोटे की जड़, अनार की कली, तालीशपत्र, कटहली, मालती का नया फूल, विडङ्ग, पृष्टपर्णी, कूट, चन्दन और पद्माख इन अठाईस औषधियों को एक एक अक्ष लेकर कल्क बनावे और चौगुना पानी डालकर एक प्रस्थ घी पकावे, इस घी के खाने से अपस्मार, ज्वर, खांसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक, चातुर्थिक, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, और विसर्परोग दूर होजाते हैं, इस से दूषित चित्तवाले, गद गद वचनवाले, अल्प वीर्य्यवाले, मनुष्य और बन्ध्या स्त्रियों को बहुत लाभ होता है, दरिद्र, पाप, राक्षस और सब प्रकार के ग्रह रोग दूर हो जाते हैं, आयु, तेज और बल बढ़ते हैं इसका नाम कल्याणघृत है ॥ ४८—५५ ॥

द्विजलन्तु(१) चतुःक्षीरं क्षीरकल्याणकन्त्विदम् ॥५६॥

इति क्षीरकल्याणकं घृतम् ।

पञ्चमूल्याबकाश्मर्य्यौ रास्नैरण्डत्रिवृद्बला ।
मुर्वा शतावरी चेति क्वाथ्यैर्द्विपलिकैरिमैः ॥ ५७ ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन तद्घृतं चैतसं स्मृतम् ।
सर्वचेतो विकाराणां शमनं परमं मतम् ॥ ५८ ॥
घृतप्रस्थोऽत्र पक्तव्यः क्वाथो द्रोणाम्भसा घृतात् (२) ।
चतुर्गुणोऽत्र सम्पाद्यः कल्कः कल्याणकेरितः ॥५९॥

इति चैतसघृतम् ।

हिङ्गुसौवर्च्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ६० ॥

इति हिङ्ग्वाद्यं घृतम् ।

इन्हीं औषधियों को यदि द्विगुण जल और चौगुने दूध में डालकर पकावें, तो उसका नाम क्षीरकल्याणघृत हो जाता है ॥५६

पञ्चमूल, खम्भारी, रास्ना, अरण्ड, निसोत, बरियारा, मुरहर, शतावर ये सब दो दो पल और कल्याणघृत में लिखी सब औषधि डालकर एक प्रस्थ घी पकावे पञ्चमूल से लेकर शतावर पर्य्यन्त औषधियों का काढ़ा एक प्रस्थ हो और कल्याणघृत में लिखी औषधियों का कल्क घीमे चौगुणा डाले, इस घी के खाने से सब प्रकार के चित्त विकार दूर होजाते हैं इस का नाम चैतस घृत है ॥ ५७—५९ ॥

हींग, सौंचल, सोंठ, मिर्च, पीपल इन सबको दो दो पल लेकर

---

(१) द्विगुणजलं चतुर्गुणक्षीरम् ।

(२) कल्याणकेरितौषध कल्को घृतात्चतुर्गुण इत्यर्थः ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ।
त्रायमाणा जया वीरा चोरकं कटुरोहिणी ॥ ६१ ॥
कायस्था शूकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलङ्कषा ।
महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ॥ ६२ ॥
कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव शृतं घृतम् ।
चातुर्थिकज्वरोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ६३ ॥
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद् यथामृतम् ।
मेधा-बुद्धि-स्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्द्धनम् ॥ ६४ ॥

इति महापैशाचिकं घृतम् ।

कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधुगोपित्तनिर्मितम् ।

कल्क बनावे, फिर यह कल्क और चार आढ़क गोमूत्र, डालकर एक आढ़क घी पकावे इस घी के खाने से उन्माद रोग दूर हो जाते हैं, इस का नाम हिंग्वादि घृत है ॥ ६० ॥

जटामासी, पूतना, (हरविशेष) छरीला, नीलनी, कमांच, वच, त्रायमाणा, अरणी, चोरकाकोली,चोरक, कुटकी, गुरिच, वराहीकंद, छत्रा, अतिछत्रा, गूगुल, महाशतावरी, हर्र, दोनों रहसन, कटकी, वृश्चिकाली और शालपर्णी इन सबको घी में डालकर पकावे इस घीके खानेसे चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह और अपस्मार रोग दूर होजाते हैं, इस अमृत के समान घीसे बुद्धि, धारणा, स्मरण शक्ति और बालकों के शरीर बढ़ते हैं। इसका नाम महापैशाचिक घृत है ॥ ६१—६४ ॥

पीपल, मिर्च, सेंधा और गायका पित्त इन सबको शहत

अञ्जनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशनम् ॥ ६५ ॥

इति कृष्णाद्यञ्जनम् ।

निम्बपत्रवचाहिङ्गु सर्पनिर्मोकसर्षपैः ।
डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ ६६ ॥

इति निम्बपत्रादिधूपः ।

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकै-
स्त्वग्वांशीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः ।
गोशृङ्गद्विपदन्तहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः ॥ ६७

इति महाधूपः ।

हैं पीसकर अञ्जन लगाने से सबप्रकार के भूत और उन्मादरोग अच्छे होजाते हैं इसका नाम कृष्णादि अञ्जन है ॥ ६५ ॥

नीम के पत्ते, वच, हींग, सांपकी कांचुली और सरसों का धूप देनेसे डाकिनी, शाकिनी, भूत और उन्माद दूर होजाते हैं इसका नाम निम्बपत्रादि धूप है ॥ ६६ ॥

बिनौले की गिरी, मोर का पंख, कटहली, निर्माल्य, मैनफल, तज, वंशलोचन, वृषदंश (भेड़िये के समान एक जन्तु) की विष्टा, तुष (धानकी भुसी) वच, बाल, सांपकी कांचुली, गायका सींग, हाथीदांत, हींग और मिर्च इन सबको समान लेकरके पीस लेय, इस धूप से स्कन्दग्रह, उन्माद, पिशाच, राक्षस और देवतों के आवेश से उत्पन्न हुआ उन्माद रोग दूर होजाता है, इसका नाम महाधूप है ॥ ६७ ॥

शिवायास्तु सुपूतायाः पञ्चाशत्पलनात्पलम् ।
पञ्च पञ्च समादाय पञ्चमूलीयुगात्पृथक् ॥ ६८ ॥
कुट्टयित्वा चतुःषष्टिशरावैरम्भसः पचेत् ।
ज्ञात्वा पादावशेषेण तेन क्वाथोदकेन च ॥ ६९ ॥
[illegible] ज्यस्य शरावाणां चतुष्टयम् ।
यष्टीमधुकमञ्जिष्ठा कुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ ७० ॥
विभीतकशिवाधात्रीहलदीतगरांघ्रिकैः ।
विडङ्गदाडिमादेवदारुदन्तीहरेणुभिः ॥ ७१ ॥
तालीशकेशरश्यामाविशालाशालपर्णिभिः ।
प्रियङ्गुमालतीपुष्पकाकोलीद्वयमीलनैः ॥ ७२ ॥
हरिद्राद्वयसंयुक्तैः सैलैः हरिवालुकैः ।
सपृश्निपर्णिकैरेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ७३ ॥
सिद्धमेतद् घृतं यस्य तस्य [illegible] ।

उत्तम निर्मल हर्र पचासपल, दोनों पञ्चमूल पांच२ पल इन सबको कूटकर, चौंसठशराव पानीमें पकावे जब जाने कि चौथाई रह गया तब उतार कर क्वाथले, फिर आठशराव, दूध, चार-शराव घी, जेठीमधु, मंजीठ, कूट, चन्दन, पद्माख, बहेड़ा, हर्र, आमला, कटहली, तगर, विडङ्ग, अनार, देवदारु, जमालगोटे को जड़, रेणुका, तालीशपत्र, नागकेशर, कालोजड़ का निसोत, इन्द्रायण, शालपर्णी, प्रियङ्गु, चमेली के फूल, काकोली, और क्षीरकाकोली, हलदी, दारुहलदी, सरिवन, मेदा, इलायची, एलवालुका, कमल और पृश्निपर्णी, इन सबको एक२ अक्ष लेकर कल्क

देवासुरग्रहग्रस्तमानसे राक्षसक्षते ॥ ७४ ॥
गन्धर्वधर्षिते चैव पितृग्रहनिपीड़िते ।
भूतैरप्यभिभूते च पिशाचैश्च परिप्लुते ॥ ७५ ॥
भुजङ्गमगृहीते च तथा जाङ्गलभक्षिते ।
यक्षैरपि परिक्षिप्ते भयैरप्यर्दिते भृशम् ॥ ७६ ॥
शस्यते सर्ववाते च सर्वापस्मार एव च ।
शोषि सोरःक्षते कासे पीनसे च मदात्यये ॥ ७७ ॥
मेहे मूत्रग्रहे चैव ज्वरे जीर्णे च शस्यते ।
वृष्यं बलकरं हृद्यं बन्ध्यानामपि पुत्रदम् ॥ ७८ ॥
श्रीविन्ध्यवासिपादेन सिद्धिदं समुदीरितम् ।
शिवाघृतमिदं नाम्ना शिवायोन्मादिनां सदा ॥७९॥
इति शिवाघृतम् ।

बना कर उसमें डाल देय और पकावें, ये घी जिन रोगों को दूरकरता है, उनका वर्णन सुनों देवता, असुर, ग्रह, राक्षस, गन्धर्व, पितर, भूत आदिसे उत्पन्न हुवे ज्वरको दूर करता है, सांपका काटा, जंगली जन्तुवोंका खाया, भूतों यक्षोंसे डरे मनुष्य को सावधान करता है, इससे सब प्रकारके वायुरोग, मृगी, शोष, उरक्षत, खांसी, पीनस, मदात्यय, प्रमेह, मूत्ररुकना और पुराने ज्वरादि रोग दूर होजाते हैं, बल, वीर्य्य बहुत बढ़जाते हैं, बन्ध्या स्त्रीको पुत्र होता है, हमने उन्माद रोगियोंके कल्याणके लिये भगवती की कृपा से यह सिद्ध घृत कहा इस का नाम शिवाघृत है ॥ ६८—७९ ॥

तैलं नारायणं वापि महानारायणं तथा।
हितमत्र प्रयोक्तव्यमिति चक्रेण भाषितम् ॥ ८० ॥
त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीरसैः पुनः।
विषमुष्टिद्रवैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रिकाम् ॥ ८१ ॥
कृत्वा तप्तां सगन्धान्तां युक्त्या बन्धनमाचरेत्।
तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गन्धकं विषम् ॥ ८२ ॥
मर्दयेत्त्रिदिनं सर्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत्।
दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेषतः ॥ ८३ ॥

कृत्युन्मादगजाङ्कुशः।

सूता-यस्तारताम्रञ्च मुक्ता चापि समं समम्।
सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला ॥ ८४ ॥

चक्रपाणिदत्तने लिखा है कि उन्माद रोग से नारायण तैल अथवा महानारायण तैल लगाना अच्छा है ॥ ८० ॥

पारे को तीन दिन तक धतूरे के रसमें, तीन दिन जल पीपलके रसमें और तीन दिन कुचिलेके रसमें घोटकर टिकिया बनावे, घोटते समय उतना ही गन्धक डाल देय, फिर उस के समान धतूरे के बीज, अभ्रक, गन्धक और विष डालकर तीन दिन घोटे, फिर रोगी को दो रत्ती खवावे, इस से सब दोषों से उत्पन्न हुवा विशेष कर भूत उन्माद दूर होजाता है, इस का नाम उन्माद गजाङ्कुश रस है ॥ ८१—८३ ॥

पारा, लोहा, चांदी, तांबा और मोती, ये सब एक एक भाग, हीरा, चौथाई भाग हरताल, गन्धक, मैनसिल, तूतिया,

कामशोकभयक्रोधचिन्ता-सन्तप्तचेतसाम् ॥ ३ ॥
रजस्तमोऽभिभूतानां कुपिताः पवनादयः ।
विदूष्य हृदयञ्चैतः ततोऽपस्मारकारकाः ॥ ४ ॥

अथ संप्राप्तिमाह ।

चेतोवहानि स्रोतांसि पूरितानि मलैस्त्रिभिः ।
रजस्तमोऽभिभूतानि प्रभवन्ति यदा तदा ॥ ५ ॥
मानवो भ्रान्तनयनो नष्टचेता वमन् कफम् ।
क्षिपन् करौ तथा पादौ विकृताक्षिमुखो भृशम् ॥६॥
दन्तान् खादन्यतेद्भूमौ बुद्धश्चैवाचिरेण तु ।
पुनः पतति स व्याधिरपस्मार इति स्मृतः ॥ ७ ॥

है, जो विष्टा, और मूत्रादि के वेगों को रोकता है, रजस्वला स्त्री से मैथुन करता है, अपवित्र भोजन करता है, हरसमय काम, शोक, भय, क्रोध और चिन्ता आदि से व्याकुल रहता है, उस के शरीर में तमोगुण बढ़नेके कारण वायु, पित्त और कफ विगड़ कर हृदय को दूषित करके अपस्मार अर्थात् मृगीरोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ २—४ ॥

अब वात, पित्त और कफ विगड़कर रजोगुण और तमोगुण की संग लेकर चैतन्यता प्राप्त करनेवाली नाड़ियों में भर जाते हैं तब मनुष्य का चित्त नष्ट होने के कारण नेत्र फरकने लगते हैं तब वह रोगी मुंह से कफ गिराता हुवा हाथ पैर पटकता हुआ, दांत कटकटाता हुआ नेत्र और मुखको विगाड़ कर पृथ्वी में गिर पड़ता है, फिर शीघ्र चैतन्य होता है, और फिर मूर्छित होता है, फिर चैतन्य होता है, उस ही रोगका नाम अपस्मार अर्थात् मृगी रोग कहते हैं ॥ ५—७ ॥

वातपित्तकफैः सर्वैः स चतुर्धा प्रकीर्तितः।
कष्टसाध्यो महाव्याधिस्तरुणानां विशेषतः ॥ ८ ॥

अथ पूर्वरूपमाह।

तत्पूर्वरूपं प्रवदन्ति वैद्याः
हृच्छून्यता मूर्च्छनमल्पसंज्ञा।
कम्पोऽल्पनिद्रत्वमनल्पस्वेदः
हृत्कम्प आलस्यमथाविपाकः ॥ ९ ॥

अथ वातिकमाह।

भयानकं कृष्णवर्णं दृष्ट्वा सत्वं च विह्वलः।
संमूर्च्छति नरोऽकस्मान्मदमूर्च्छान्वितो भृशम् ॥१०॥
धुन्वन्नङ्गानि तृट्तापस्वेदकम्पातिपीडितः।
तस्य वातोद्भवं विद्यादपस्मारं भिषग् वरः ॥ ११ ॥

यह मृगीरोग चार प्रकार का होता है एक वातापस्मार, दूसरा पित्तापस्मार, तीसरा कफापस्मार और चौथा सन्निपातापस्मार ये चारों मृगी प्रायः कष्टसाध्य हैं विशेषकर जवान मनुष्य की मृगी असाध्य है ॥ ८ ॥

शरीर कांपना, हृदय में शून्यता, मूर्च्छा, संज्ञा नाश, अधिक पसीना आना, हृदय कांपना, आलस्य और अन्न न पचना ये मृगी के पूर्वरूप हैं ॥ ९ ॥

जिसे मृगी आने से पहिले एक काला जन्तु दिखलाई देय, पीछे व्याकुल होकर मूर्च्छा आजाय, शरीर में नशासा जान पड़े, वार २ मूर्च्छा आवै, रोगी हाथ पैर पटके, प्यास और जलन से

अहं पश्यामि यो ब्रूयात् पीतं धावन्तमोजसा ।
सत्वं मे च ततो मूर्च्छा भवत्येव निरन्तरम् ॥ १२ ॥
विट्तापस्वेदमूर्च्छाद्यैः दाहपीतत्वसंयुतः ।
तस्य पित्तोद्भवं वैद्यः अपस्मारं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥
निद्रा-कण्डू-मुहल्लासशीतच्छर्दिसमन्वितः ।
शुक्लमत्वाभिदर्शी च कफापस्मारवान् नरः ॥ १४ ॥

अथ सान्निपातिकमाह ।

प्रलापः कूजनं कण्ठे हृत्तोदश्चैव जायते ।
सर्वदोषोद्भवे सर्वदोषचिह्नञ्च लक्षयेत् ॥ १५ ॥
दोषोत्थितो ह्ययं व्याधिः नैवास्तीत्यपरे जगुः ।

व्याकुल हो, और शरीर कांपे वैद्य उसे वात से उत्पन्न हुई, मृगी कहे ॥ १० ॥ ११ ॥

जो रोगी कहे कि मेरे पीछे एक भयानक पीला जन्तु दौड़ा चला आता है और उसे देखते ही मुझे मूर्च्छा होती हो, जो प्यास, पसीना, मूर्च्छा और दाहसे अत्यन्त व्याकुल हो और जिस का शरीर पीला हो गया हो उसे पित्त से उत्पन्न हुआ मृगी रोग जाने ॥ १२ ॥ १३ ॥

जिस के शरीर में खुजली लगे, अधिक थूक आवे, जाड़ा लगे, वमन होय और जिसको मूर्च्छा से पहिले सफेद जन्तु दीखे, उसे कफ से उत्पन्न हुई मृगी जाने ॥ १४ ॥

जो रोगी वृथा बके, जिस के कण्ठ से शब्द निकले, हृदय में पीड़ा होय और जिस के शरीर में तीनों दोषों के चिह्न दीखें, उसे तीनों दोषों से उत्पन्न हुई मृगी जाने ॥ १५ ॥

अस्ति चैके वदन्त्येवं द्वितीयं तत्र सम्मतम् ॥ १६ ॥
शास्त्रप्रमाणाद् धीराणां सम्मताद् युक्तितस्तथा।
यथा प्ररोपितं बीजमपि वर्षति वारिणि ॥ १७ ॥
स्वे काले भवत्येव तथा रोगसमुद्भवः।
केचिदल्पेन कालेन रोहन्त्यपि न वर्षति ॥ १८ ॥
दोषाणाञ्चिह्नसंघेन पूर्वरूपेण वै पुनः।
अपस्मारो महा-यक्ष्मा दोषजातो हि दृश्यते ॥ १९ ॥

अपस्मार रोग को कोई कोई वैद्य दोषों से उत्पन्न हुवा नहीं मानते और कोई २ दोषों से उत्पन्न हुआ मानते हैं।

तिनमें दूसरामत प्रत्यक्षादि प्रमाणों से पुष्ट, पण्डितों के वचनों से सम्मत और युक्तियों से पूर्ण होने के कारण पुष्ट है, अब इतनी ही शंका है कि वे ही बिगड़े हुए दोष शरीर में हर समय वर्त्तमान रहने परभी रोगी हर समय मूर्च्छित क्यों नहीं रहता? इसका यह उत्तर है कि जैसे खेत में बोया हुवा बीज अत्यन्त जल बरषने पर भी अपने समय में ही उत्पन्न होता है, ऐसे ही शरीर में कुपित दोष हरसमय वर्त्तमान रहने पर भी अपने समय में ही अधिक बिगड़ते हैं और उसी समय रोगी को मृगी आजाती है, अनेक बीज ऐसे भी होते हैं कि जो बिना जलवर्ष भी शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं ऐसे ही किसी विशेष कारण के संग दोषों का विशेष सम्बन्ध होनेसे दोष शीघ्र २ भी मूर्च्छा उत्पन्न करते हैं ॥१६—१८॥

दोष दूषित होकर इस रोग को उत्पन्न करते हैं अर्थात् बिना किसी कारण से दोष बिगड़े और अकस्मात् मृगी आते नहीं देखा गया, वातादिक दोषों के चिह्न अलग २ दीखते हैं, और इस रोग में दोषों के पूर्वरूप भी अलग २ दीखलाई देते हैं, इस से अपस्मार

अथ चिकित्सा ।

वातिकं वस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः ।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ॥ २० ॥
पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् ।
तदेव सर्पिषायुक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ २१ ॥
नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाककैः ।
तुण्डैः(१) पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ २२ ॥
इति धूपः ।

मनोह्वा तार्क्ष्यजञ्चैव शकृत् पारावतस्य च ।

नामक महारोग को दोषों ही से उत्पन्न हुवा मानना ठीक है, अर्थात् जो वैद्य इसे भूतादिकों से उत्पन्न हुआ, मानते हैं, उन का मत इन कारणों से खण्डन हो गया, अर्थात् भूतादिकों से उत्पन्न हुवे रोगों में पूर्वरूपादिक नहीं होते, और इसो में ये सब प्रत्यक्ष दीखते है, इस से यह रोग दोषोंसे उत्पन्न हुआ हो है ॥१९॥

आगे अपस्मार (मृगी) की चिकित्सा कहते हैं।

वात से उत्पन्न हुवे मृगी रोग में वस्तिकर्म, पित्त से उत्पन्न हुये में विरेचन और कफ से उत्पन्न हुए में वमन करावे ॥२०॥

पुष्यनक्षत्र में कुत्ते का पित्त निकाल कर उसका अञ्जन लगावे अथवा उसी का धूप देय तो अपस्मार रोग दूर होजाता है ॥२१॥

नौल, उल्लू, बिलाव, गिद्ध, कीड़ा, सांप और कौवे, के चौंच, पंख, तथा बिष्ठा इकट्ठे कर के धूप देय तो मृगी रोग दूर हो जाता है ॥ २२ ॥

(१) एषां तुण्डादिकं ग्राह्यम् ।

अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्च विशेषतः ॥ २३ ॥

इति अञ्जनम् ।

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशचोरकैः ।

उत्सादनं मूत्रपिष्टैः(१)मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ २४ ॥

इत्युत्सादनम् ।

जतुकाशकृता तद्वद्गन्धैर्वा वस्तलोमभिः ।

अपस्मारहरो लेपो मूत्रसिद्धार्थशिग्रुभिः ॥ २५ ॥

इति लेपः ।

यः खादेत् क्षीरभक्ताशी माक्षिकेन वचारजः ।

अपस्मारं महाघोरं स चिरोत्थं जयेद्ध्रुवम् ॥ २६ ॥

इति वचाचूर्णम् ।

उल्लम्बितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृतामसी ।

मैनसिल, रसौत और कबूतर की विष्ठाका अञ्जन करने से मृगी और उन्माद रोग दूर होजाते हैं औषधी के लगाने पर गोमूत्रमें न्हाय ॥ २३ ॥

तुलसी, कूट, हर, बाल और चोरक, इन सब को बकरे के मूत्रमें पीस कर उपटन करनेसे अपस्माररोग दूर होजाते हैं ॥ २४ ॥

लाख, काम, इन दोनों को बकरे के रुवे की भस्म में मिला कर अथवा बकरे के मूत्र में पीस कर सफेद सरसों और सहजना लगाने से अपस्मार रोग दूर होजाते हैं ॥ २५ ॥

जो रोगी दूधभात पथ्य कर के शहत में मिला कर वचका चूर्ण खाय वह घोर पुरानी अपस्मार रोग से छूट जाता है ॥ २६ ॥

(१) भावमिश्रादय उन्मादापस्मारे छागमूत्रमेवेत्याहुः ।

शीताम्बुना समं पीता हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ २७ ॥
प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शतावरी ।
ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ २८ ॥

इति प्रयोगाः ।

निर्दह्य निर्द्रवां कृत्वा छागिकामरणालिकाम् ।
तामम्लसाधितां खादेदपस्मारमृदस्यति ॥ २९ ॥
गोशकृद्रसदध्यम्बुक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ३० ॥

इति स्वल्पपञ्चगव्यं घृतम् ।

द्वेपञ्चमूले त्रिफलां रजन्यौ कुटजत्वचम् ।
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ ३१ ॥
शम्पाकं फल्गुमूलञ्च पौष्करं सदुरालभम् ।

लखौगरदनवाले मनुष्यको गलेको पाश जला स्याही बनावे उसको ठंढे पानीके संग खानेसे अपस्मार रोग दूर होजाते हैं ॥२७॥

लहसुन युक्त तेल, दूध में मिली शतावर और शहत में मिला ब्राह्मीका रस खानेसे सबप्रकारके अपस्मार रोग दूर होते हैं ॥२८

बकरी के मांसको सुखाकर पका कर खटाई डालकर खाने से सब प्रकार के मृगी रोग दूर होजाते हैं ॥ २९ ॥

गायका दही, दूध और घी इन सबको समान लेकर पकावै, जब केवल घी रहजाय, तब उतार लेय, इस से चातुर्थिक ज्वर, और अपस्माररोग दूर होजाते हैं इसका नाम पञ्चगव्यघृत है ॥३०॥

दोनों पञ्चमूल, हर बहेड़ा, आंवला, हलदी, दारुहलदी, कुरैया की छाल, छतिवन, लटजीरा, नीलनी, कुटकी, किरवाला, बकुची,

द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ॥ ३२ ॥
भार्गीपाठात्रिकटुकं त्रिवृता निचुलानि च ।
श्रेयसीमाढ़कीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ॥३३॥
द्वे शारिवे रोहितकं भूतीकं मदयन्तिकाम् ।
क्षिपेत् पिष्टाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥३४॥
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः ।
पञ्चगव्यमिदं ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ॥ ३५ ॥
अपस्मारे ज्वरे कासे श्वयथावुदरे तथा ।
गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके ॥ ३६ ॥
अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थकविनाशनम् ॥ ३७ ॥

इति वृहत्पञ्चगव्यं घृतम् ।

पुष्कर मूल और जवासा इन सब को दो दो पल लेकर एक द्रोणपानी में पकावे, जब पकते २ चौथाई जल रहजाय, तब उतार कर छानलेय, फिर इस काढ़े में वभ्रनेटी, पाढ़ा, सोंठ, मिर्च, पीपल, निसोत, जल वेत, हर, अरहर, मुरहर, जमालगोटे, की जड़, चिरायता, चीता, दोनों सरिवन रोहितक, कणावच और मदयन्तिका इन सब को एक २ अक्ष पीस कर डाल देय और एक प्रस्थ घी छोड़े, संगही गोवरका रस, गाय का दूध, दही, और मूत्र भी एक एक प्रस्थ छोड़ दे और आग में चढ़ाकर पकावे, इस अमृत समान घी से अपस्मार ज्वर, खांसी, श्वयथु, उदररोग, गुल्म, अर्श, पसुरी के रोग, कामला, हलीमक, दारिद्र, ग्रहरोग, राक्षस और चातुर्थिक ज्वरका नाश होता है इसका नाम वृहत्पञ्चगव्य घृत है ॥ ३१—३७ ॥

शणास्त्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी ।
रास्ना मागधिका शिग्रुः क्वाथ्यं द्विपलिकं भवेत् ॥३९॥
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा ।
एभिः खर्जूरमृद्वीकाभीरुयुञ्जातगोक्षुरैः ॥ ४० ॥
चैतसस्य घृतस्याङ्गैः पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम् ।
महाचैतससंज्ञन्तु सर्वापस्मारनाशनम् ॥ ४१ ॥
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान् ।
पापालक्ष्मीं जयेदेतत् सर्वग्रहनिवारकम् ॥ ४२ ॥
श्वासकासहरञ्चैव शुक्रार्त्तवविशोधनम् ।
घृतमानं क्वाथविधिरिह चैतसवन्मतः ॥ ४३ ॥
कल्कश्चैतसकल्कोक्तद्रवैः सार्द्धश्च पादिकः ।
नित्यं युञ्जातकाप्राप्तौ तालमस्तकमिष्यते ॥ ४४ ॥

इति महाचैतसं घृतम् ।

सन के बीज, निसोत, अरण्ड, दशमूल, शतावर, रास्ना, पीपल, सहजना, ये दो दो पल लेकर काढ़ा बनावे, उसमें बिलाईकन्द, जेठीमधु, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, दूव इन सबको खजूर, मुनक्का, प्रियङ्गु, युञ्जात और गोखरू मिला कर घी पकावे, इस घीको खाने से सबप्रकार के अपस्मार, विष, उन्माद, प्रतिश्याय, तिजारी, चौथिया, पाप, दरिद्र, सब प्रकार के ग्रहरोग, सांस, खांसी, वीर्य्यरोग और स्त्रियों के रजरोग दूर होजाते हैं इस में पहिले लिखे, चैतसघृत के समान,

कुष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ।
यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ ४५ ॥

इति कुष्माण्डघृतम् ॥

पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकान्यर्कसर्षपैः ।
जटिलापूतनाकेशीलाङ्गलीहिङ्गुचोरकैः ॥ ४६ ॥
लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम् ।
मांसाशिनां यथालाभं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४७ ॥
सिद्धमभ्यञ्जने तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४८ ॥

इति पलङ्कषाद्यं तैलम् ।

घी और काढ़े का प्रमान जानो कल्क भी उस ही के समान एव औषधियों से चौथाई डाले, यदि युञ्जात नामक औषधि न मिले तो उस के स्थान पर ताड़ के फल का गूदा डाले इसका नाम महाचैतस घृत है ॥ ३८—४४ ॥

घी एकभाग और कुम्हड़े का रस अठारह भाग इस में घी से चौथाई जेठीमधु का कल्क डालकर पकावे, इस से भी अपस्माररोग दूर होजाते हैं इसका नाम कुष्माण्ड घृत है ॥४५॥

गूगुल, बच, हर्र, वृश्चिकाली, आक, सरसों, जटामासी, पूतना नामक हर्र, कलिहारी, हींग, चोरक, लसुन, शतावर, चीता, कूट, और मांस खानेवाले पक्षियोंकी विष्टा इन सबको चौगुने बकरे के मूत्र में मिलाकर तेल पकावे, इस तेल के लगानेसे अपस्मार रोग दूर होजाते हैं इस का नाम पलङ्कषादि तेल है ॥ ४६—४८ ॥

अभ्यङ्गे सार्षपं तैलं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रैः स्नानोत्सादनमेव च ॥ ४९ ॥
मृतसूतार्कलौहञ्च तालं गन्धं मनःशिला ।
रसाञ्जनस्य तुल्यांशं गोमूत्रेणापि मर्दयेत् ॥ ५० ॥
तं गोलं द्विगुणं गन्धं लौहपात्रे क्षणं पचेत् ।
पञ्चगुञ्जामितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ ५१ ॥
हिङ्गुसौवर्चलं कुष्टं गवां मूत्रेण सर्पिषा ।
कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसेऽस्मिंश्चण्डभैरवे ॥ ५२ ॥
इति चण्डभैरवः ।

इति भैषज्यरत्नावल्यामपस्माराधिकारः

अपस्मार में शरीर में लगाने के लिये चौगुने बकरे के मूत्र में पका सरसों का तेल उत्तम है गोबर के रस और गोमूत्र में स्नान करना अच्छा है ॥ ४९ ॥

पारे की भस्म, लोहा, हरताल, गन्धक, मेनशिल और रसौत इन सबको समान लेकर गाय के मूत्र में घोटे और गोला बनावे, फिर गोले से द्विगुने गन्धक से ढककर लोहे के बरतन में रखकर क्षणभर पकावे, फिर पांच रत्ती खाने को देय, ऊपर से गोमूत्र में एक एक कर्ष हींग, सौचल, कूट और घी मिलाकर पिलावे, इससे सब प्रकार के अपस्मार रोग दूर होजाते हैं इसका नाम चण्डभैरव रस है ॥ ५०—५२ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावली में अपस्मार चिकित्सा समाप्त ।

अथ वातव्याधीनामधिकारः।

तत्रादौ प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च मरुतो लक्षणं स्वरूपं स्थानानि विशेषकर्माणि चाह।

मुनीश्वरं महाप्राज्ञं आयुर्वेदाब्धिपारगम्।
धन्वन्तरिं काशिराजं वैश्वामित्रोऽब्रवीद्वचः॥ १ ॥
देव ! प्रकृतिभूतस्य कुपितस्य तथैव च।
मरुतो लक्षणं ब्रूहि स्थानं कर्म च पृच्छतः॥ २ ॥
यथाब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः सुश्रुतं शरणागतम्।
स्वतन्त्रोऽथ स्वयम्भुश्च मातरिश्वा च सर्वगः॥ ३ ॥
जगतः कारणञ्चास्य सर्वात्मा व्यापकः प्रभुः।
द्विगुणो गन्धवाहश्च रोगदोषपतिस्त्वयम्॥ ४ ॥
शीतो रूक्षो लघुश्चैव खरोऽव्यक्तस्तथैव च।
व्यक्तकर्मा तिर्य्यग्गो दोषनेता रजोऽधिकः॥ ५ ॥

आयुर्वेद समुद्र के पार जानेवाले महाबुद्धिमान् काशिराज धन्वन्तरिसे विश्वामित्र पुत्र सुश्रुत बोले कि हे भगवन् ! प्रकृतिस्थ अर्थात् स्वस्थ और कुपित वायु के लक्षण स्थान और कर्मों का वर्णन हम से कीजिये॥ १—२॥

सुश्रुत के वचन सुनि मुनिश्रेष्ठ धन्वन्तरिबोले कि भगवान् वायु स्वतन्त्र अर्थात् अपनी इच्छानुसार चलनेवाला वा स्थिर रहने वाला, स्वयम्भु अर्थात् आप से आप होनेवाला, सब स्थानों में जानेमें समर्थ, इस जगतका कारण, आत्मा, व्यापक, समर्थ, दो गु

पक्काधानगुदस्थायी आशुकारी मुहुर्गतिः।
सयदा सुस्थितो वायुः दोषाग्निसमता तदा॥ ६॥
कुपितश्च बहून् रोगान् करोत्येव निबोधतान्।
रूढ़ित्वाद्वातरोगास्ते मुनिभिः परिकीर्त्तिताः॥ ७॥

अथ वातव्याधीनां नामानि।

शिरोग्रहोऽल्पकेशत्वं जृम्भात्यर्थं हनुग्रहः।

चलनेवाला, सुगन्धिको सर्वत्र फैलाने वाला, रोग और दोषोंको राजा, ठण्ढा, रूखा, हल्का, खर्खरा, अव्यक्त अर्थात् निराकार वा अदर्शनीय, प्रत्यक्ष कर्मवाला, दोषोंको विशेष स्थानोंमें पहुंचानेवाला, तम और रजोगुण युक्त होनेपर भी अधिक रजोगुण युक्त है॥ ३—५॥

वह वायु विशेषकर पक्काशय और गुदामें रहता है, अपने कर्मोंको बहुत शीघ्र करता है, वार वार शरीर में घूमता है, वह जब अपनी प्रकृत अवस्था में रहता है, तब दोष धातु और अग्नि समान रहते हैं अर्थात् शरीर में कोई रोग उत्पन्न नहीं होता, परन्तु जब विगड़ जाता है तब अनेक रोगों को उत्पन्न करता है यद्यपि वायु से जो रोग उत्पन्न होय उसे ही वातव्याधि समझना चाहिये अर्थात् बातज्वरादिको भी वातव्याधि कह सके हैं। परन्तु यह शब्द रूढी है इस लिये मुनियोंने नीचेलिखे अस्सी प्रकारके रोगोंको ही बातव्याधि कहा है॥ ६॥ ७॥

अथ वातव्याधि नाम।

शिरोग्रह १ अल्प केशता २ जृम्भा ३ हनुग्रह ४ जिह्वा

जिह्वास्तम्भो गद्गदत्वं मिन्मिनत्वञ्च मूकता ॥ ८ ॥
बाधिर्य्यं कर्णनादश्च स्पर्शाज्ञत्वमथार्दितम् ॥ ९ ॥
मन्यास्तम्भोऽत्र गणितो बाहुशोषोऽपबाहुकः ।
वर्णिता चैव विश्वाची ऊर्द्ध्ववात उदीरितः ॥ १० ॥
प्रत्याध्मानं तथाध्मानं वाताष्ठीला प्रत्यष्ठीला ।
तूनी च प्रतितूनी च वह्निवैषम्यमेव च ॥ ११ ॥
आटोपः पार्श्वशूलञ्च त्रिकशूलं तथैव च ।
मुहुश्च मूत्रणं मूत्र निग्रहो मलगाढ़ता ॥ १२ ॥
पुरीषस्याप्रवृत्तिश्च गृध्रसी च ततःपरा ।
कलाय खञ्जता चापि खञ्जता पङ्गुता तथा ॥ १३ ॥
क्रोष्टुशीर्षकखल्वौ च वातकण्टक एव च ।
पाददाहः पादहर्षः आक्षेपो दण्डकाभिधः ॥
वातपित्तकृताक्षेपस्तथा दण्डापतानकः ।

स्तम्भ ५ गदगदत्व ६ मिन्मिनत्व ७ मूकता ८ वाचालता ९ प्रलाप १० रसानभिज्ञता ११ बाधिर्य्य १२ कर्णनाद १३ स्पर्शाज्ञता १४ अर्दित १५ मन्यास्तम्भ १६ बाहुशोष १७ अपबाहुक १८ विश्वाची १९ ऊर्द्ध्ववात २० आध्मान २१ प्रत्याध्मान २२ वाताष्ठीला २३ प्रत्यष्ठीला २४ तूणी २५ प्रतितूणी २६ अग्निवैशम्य २७ आक्षेप २८ पार्श्वशूल २९ त्रिकशूल ३० मुहुर्मूत्र ३१ मूत्रनिग्रह ३२ मलगाढ़ता ३३ मलाप्रवृत्ती ३४ गृध्रसी ३५ कलायखञ्जता ३६ खञ्जता ३७ पंगुता ३८ क्रोष्टुशीर्षक ३९ खल्वी ४०

अभिघातकृताक्षेप आयामो द्विविधः स्मृतः ॥ १५ ॥
आन्तरश्च तथा वाह्यो धनुर्वातश्च कुब्जकः ।
अपतन्त्रोपतानश्च पक्षाघातोऽखिलाङ्गकः ॥ १६ ॥
कम्पः स्तम्भो व्यथा तोदो भेदस्तु स्फुरणं तथा ।
रौक्ष्यं कार्श्यञ्च कार्ष्ण्यञ्च शैत्यं लोम्नाञ्च हर्षणम् ॥ १७ ॥
अङ्गमर्दोऽङ्गविभ्रंशः शिरासङ्कोच एव च ।
अंगशोषश्च भीरुत्वं मोहश्च चलचित्तता ॥ १८ ॥
निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिस्तथैव च ।
शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिभ्रम ॥ १९ ॥
एत एवाशीतिसंख्या रोगा योगेन रूढ़िताः ।
वातव्याधीति नामानो मुनिभिः परिकीर्त्तिताः ॥ २० ॥

वातकंटक ४१ पादहर्ष ४२ पाददाह ४३ दण्डक ४४ वात-पित्ताक्षेप ४५ दण्डापतानक ४६ अभिघाताक्षेप ४७ अन्तरायाम ४८ वाह्यायाम ४९ धनुर्वात ५० कुब्जक ५१ अपतन्त्र ५२ अप-तानक ५३ पक्षाघात ५४ सर्वाङ्गवात ५५ कम्प ५६ स्तम्भ ५७ व्यथा ५८ तोद ५९ भेद ६० स्फुरण ६१ रौक्ष्य ६२ कार्श्य ६३ कार्ष्ण्य ६४ शैत्य ६५ लोमहर्ष ६६ अङ्गमर्द ६७ अङ्गभ्रंश ६८ शिरासंकोच ६९ अंगशोष ७० भीरुता ७१ मोह ७२ चल चित्तता ७३ निद्रानाश ७४ स्वेदनाश ७५ बलहानि ७६ वीर्य्यक्षय ७७ रजोनाश ७८ गर्भनाश ७९ और परिभ्रम ८० यही अस्सीरोग वातव्याधि नामसे मुनियोंने लिखे हैं ॥ ८—२० ॥

अथ वातव्याधिनां निदानमाह ।

कषाय तिक्ताम्लकटूष्णासेवनै:
हिमाध्वनिद्रामितभोजनादिभि: ।
रूक्षातिशीतश्रमरक्तमोक्षणै:
धातुक्षयैर्वेगविधारणैस्तथा ॥ २१ ॥
अतिनिधुवनभोगैर्मूत्ररोधातिकोपै:
वमनमदनघातैर्वेगरोधैर्विरुद्धै: ।
शिशिरजलदकाले पञ्चकर्मादिभिश्च
व्रजति किल सुकोपं मातरिश्वा शरीरे ॥२२॥
सदुष्टो स्रोतसां मार्गं पूरयित्वा बहून् गदान् ।
करोत्यसीतिसंख्यातान् सर्वाङ्गैकाङ्गगान्बली ॥२३॥

अथ विशिष्टानां वातव्याधीनां विशिष्टानि निदानान्याह ।

तत्रादौ शिरोग्रहस्य लक्षणम् ।

रक्तान्वितो यदा वायुरभ्येति शिरस: शिरा: ।

कसैला, तीता, कड़वा, गर्म, ठण्ढा और प्रमाण रहित भोजन करने से, अधिक चलने से, अधिक सोने से, रूखी और ठण्ढी वस्तु खाने से, धातुक्षीण होने से, मूत्र और विष्टादिक रोकने से, अधिक मैथुन करने से, वमन और वीर्य्य आदि का वेग रोकने से, जाड़े और वर्षा में वमन या विरेचनादि कर्म करने से वायु विगड़ जाता है और शरीर के मार्ग बन्द करके एक शरीर में अथवा सब शरीरों में असीप्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है, इन ही का नाम वातव्याधि है ॥ २१ ॥ २२ ॥

तदा कृष्णा सुपीड़ाढ्याः रुक्षास्ताः प्रभवन्त्यतः ॥२४॥
शिरश्चालनकर्माद्रि नाशनोऽयमुदीरितः ।
शिरोग्रहो महाव्याधिरसाध्यः परिकीर्त्तितः ॥ २५ ॥

जृम्भालक्षणमाह ।

निद्रालस्य समायुक्तो यदैकश्वाससंक्षये ।
वेगाद्वायुर्मुखं याति सजृम्भ इति कथ्यते ॥ २६ ॥

अथ हनुग्रहस्य निदानमाह ।

कुपितः पवनोऽत्यर्थं जिह्वानिर्लेखनादिभिः ।
अभिघातात्तथा शुष्कभोजनैः स्तम्भयन् हनुम् ॥२७॥
हनुग्रहस्तदारोगस्तस्मिन् नास्य विवृत्तता ।
अथवा संवृतास्य त्वं कष्टाद्भाषणचर्वणम् ॥ २८ ॥

जब वायु रुधिर के संग मिलकर सिरकी नाड़ियों में जाता है, तब उन्हें काली, पीली, रुखी और पीड़ायुक्त करता है, उस समय मनुष्य का शिर इधर उधर नहीं हिल सक्ता, इसी असाध्य रोगका नाम शिरोग्रह है ॥ २४ ॥ २५ ॥

जब एक सांस नष्ट होने पर वायु निद्रा और आलस्य के सहित मुख से निकलता है, तब उसे जृम्भा, जृम्भण वा जमुहाई कहते हैं ॥ २६ ॥

जब वायु, जिह्वा आदि से चोट लगने से अथवा सूखा भोजन करने से अत्यन्त कुपित होजाता है, तब ठोढी में जाकर स्थित होता है, तब मनुष्य का मुख या तो खुला ही रहजाता है, या बन्द ही होजाता है इस रोग में रोगी अत्यन्त दुःखसे बोलता और भोजन करता है इसका नाम हनुग्रह रोग है ॥ २७—२८ ॥

जिह्वास्तम्भस्य लक्षणमाह।

यदाभ्येति मरुद्दुष्टो शिरां वाग्वाहिनीं रुषा।
जिह्वास्तम्भस्तदा प्रोक्तो वाग्भोजनविनाशनः॥ २९॥

अथ मूकमिन्मिन गद्गदादीनां लक्षणमाह।

कफयुतः पवनः कुपितो भृशम्
वचनवाहि शिरास्थित ओजसा।
प्रकुरुते वचनान्मनुजं तदा
सकिल गद्गदमूकमुमिन्मिनान्॥ ३०॥

अथ प्रलापस्य लक्षणमाह।

स्वैर्हेतिभिर्यदा वायुः कोपमापद्यते भृशम्।
तदाऽसम्बद्धमनर्थञ्च नरो ब्रूते मुहुर्मुहुः॥ ३१॥

अथ रसाज्ञानस्य लक्षणमाह।

मिष्टादीन्ना यदात्यर्थमन्नाल्येव तदा मरुत्।

जब वायु बिगड़ कर, बचनवाहिनी नाड़ी में जाता है, तब जिह्वास्तम्भ रोग होता है इस में मनुष्य न खासक्ता है और न बोल सक्ता है॥ २९॥

जब वायु बिगड़ कर कफ से मिल कर बचन वाहिनी नाड़ी में जाता है, तब रोगीका बचन मिन्मिना अथवा हकला होजाता है या रोगी गूंगा होजाता है॥ ३०॥

जब वायु अपने बिगड़ने के कारणो से बिगड़ जाता है। तब मनुष्य निरर्थक और हथा बकने लगता है इस ही रोग का नाम प्रलाप है॥ ३१॥

नाशयन् सुरसज्ञानं रसाज्ञानं करोति वै ॥ ३२ ॥

त्वक्शून्यतालक्षणमाह ।

यदा नरो त्वचा नोष्णं नापि शीतञ्च बुध्यते ।
त्वक्शून्यता तदैवोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३३ ॥

अथार्दितस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं निदानं लक्षणं चाह ।

उच्चैर्भाषणतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ।
जृम्भागैर्हसनैश्चापि भारैश्च विषमाशनैः ॥ ३४ ॥
कुपितो मारुतोऽत्यर्थं ललाटौष्ठाक्षिसन्धिगः ।
शिरोनासास्थितो वापि करोत्यर्दितसंज्ञकम् ॥ ३५ ॥
वक्रतां याति वक्त्रार्द्धं ग्रीवानापि प्रवर्त्तते ।
वागरोधश्च शिरःकम्पो वैकृतं नेत्रयोर्द्वयोः ॥ ३६ ॥
यस्मिन् पार्श्वे स्थितो वायुस्तस्मिन्नेवातिवेदना ।
दन्तानां चिबुकस्यापि पीड़नं चार्दिते भवेत् ॥ ३७ ॥

जब मनुष्य अधिक मिठाई खाता है, तब उसे किसी रसकी पहचान नहीं रहती इसही का नाम रसाज्ञान रोग है ॥ ३२ ॥

जब मनुष्यको ठंढे और गर्म स्पर्शका ज्ञान नहीं रहता तब वैद्य उस रोगको त्वक् शून्यता कहते हैं ॥ ३३ ॥

ऊंचे स्वरसे बोलनेसे, कठिन वस्तु चबानेसे, अधिक जमुहाई आनेसे, अधिक हंसनेसे नीचे, ऊंचे आसन पर बैठने या लेटनेसे वायु बिगड़ जाता है वही बिगड़ा हुवा वायु माथे, ओठ और आंख की सन्धि, शिर और नाक में जाकर मुखको टेढ़ा कर देता है। रोगीका गला नहीं हिल सक्ता, वचनबन्द होजाता है, सिरकांपता है, नेत्रोंमें बिकार होजाता है, जिधरके शरीर में वायु रहता है

अथास्यासाध्यत्वमाह।

यः कम्पते क्षीणवपुर्मनुष्यः
क्षीणाशनोऽव्यक्त गिरा विपन्नः।
असाध्य उक्तो मुनिभिः पुराणैः
त्रिवर्षपीडोऽनिमिषाक्षकश्च॥ ३८॥

मन्यास्तम्भस्य निदानपूर्वकं लक्षणमाह।

कफावृतो यदा वायुः निम्नस्थानभोजनैः।
विकृतेक्षणसन्दृष्टो दिवास्वप्नादिभिस्तथा॥ ३९॥
मन्यासंज्ञाः शिरा ग्रीवापश्चाद्भागे स्थिता तु याः।
तासां स्तम्भं यदा कुर्य्यात् मन्यास्तम्भः स उच्यते॥४०

अथ बाहुशोषस्य लक्षणमाह।

अंसे स्थितो मरुद्दुष्टः शोषयेद् बाहुबन्धनम्।
तदा पीड़ान्विता बाहुर्नापि प्रभवति क्षणम्॥ ४१॥

उधरझोंके दांत और सन्धियोंमें पीड़ा होती है। इसका नाम अर्दित रोग है। जिस अर्दित रोगीका शरीर कांपे, भोजन न किया जाय, वचन रुक कर निकले, आंख न खुलें, न बन्द होय और जिसको तीन वर्षका रोग होय उसे असाध्य जानो॥ ३४—३८॥

गलेको पिछली ओर जो चौदह नाड़ी हैं उनका नाम मन्या है जब नीचे, ऊंचे आसन पर बैठने व सोने, भयानक वस्तु देखने और दिन में सोने आदि कारणोंसे वायु बिगड़ कर उन्हीं नाड़ियोंमें जाता है तब मनुष्यका सिर इधर उधरको नहीं हिल सका इसहीका नाम मन्यास्तम्भ रोग है॥ ३९—४०॥

जब वायु बिगड़ कर हाथ और कन्धे की सन्धिमें ठहर जाता

अथापवाहुकस्य लक्षणमाह ।

सङ्कोच्य स शिरावाह्वोः प्रकरोत्यपवाहुकम् ॥ ४२ ॥

अथ विश्वाचीमाह ।

प्रत्यङ्गुलितलं वाह्वोः कण्डरा कर्म्मनाशिनी ।
वायुना सा तु विज्ञेया विश्वाची घोररूपिणी ॥४३॥

अथोर्द्ध्ववातस्य लक्षणमाह ।

अधोमार्गहतो वातः कुपितःश्लेष्मणावृतः ।
वह्वुद्गारान् यदा कुर्य्यादूर्ध्ववातः स उच्यते ॥ ४४ ॥

अथाध्मानस्य लक्षणमाह ।

सवेदनं तथाटोपसंयुतं ह्युदरं यदा ।
तमाध्मानं विजानीयाद् वातवेगनिरोधजम् ॥४५॥

है तब उसके बंधनको सुखाकर हाथ सुखा देता है इसका नाम वाहुशोष रोग है ॥ ४१ ॥

जब वायुके दोषसे हाथकी नाड़ी सिकुड़ जाती है तब अपवाहुक नामक रोग उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥

जब वायु अङ्गुलियोंके नीचे कण्डरामें जाकर उनके कर्मका नाश करदेता है तब वैद्य उस भयानक रोगका नाम विश्वाची रोग कहते हैं ॥ ४३ ॥

जब वायु नीचेके मार्गोंमें नहीं निकलने पाता तब कफसे मिलकर वहुत डकार उत्पन्न करता है इसीका नाम ऊर्द्धवातरोग है ॥ ४४ ॥

जब पीड़ाके सहित पेट फूलजाय तब उसे आध्मान रोग कहते हैं यह रोग वायु रोकनेसे होता है ॥ ४५ ॥

अथ प्रत्याध्मानस्य लक्षणमाह ।

हृत्पार्श्ववेदनं घोरमामाशयगतं यदा ।
प्रत्याध्मानं तदेवाहुः कफमारुतकोपजम् ॥ ४६ ॥

अथ वाताष्ठीलायालक्षणमाह ।

अधोनाभेर्यदा वायुश्चलं वाप्यथ वाचलाम् ।
ग्रन्थिमष्ठीलिकातुल्यं घनमायतमुन्नतम् ॥ ४७ ॥
करोति तां बुधाः प्राहुरष्ठीलां मार्गरोधिनीम् ॥४८॥

अथ प्रतिष्ठीलालक्षणमाह ।

रुजान्विता यदा चैषा गुदमेढ्रातिरोधिनी ।
प्रत्यष्ठीला तदा चोक्ता जठरस्था विमार्गगा ॥ ४९ ॥

अथ तूणीलक्षणमाह ।

भिन्दन्निव गुदं मेढ्रमधो या याति वेदना ।
तूनीसातावुधैः प्रोक्ता विगमूत्राशयसंस्थिता ॥ ५० ॥

जब हृदय, पसुरी मे आमाशयतक घोर पीड़ा होय तब उसे प्रत्याध्मान रोग कहते हैं यह रोग कफ और बातसे उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥

जब वायु नाभिके नीचे चल अथवा स्थिर, कड़ी और बड़ी गांठ उत्पन्न करता है और मूत्र विष्टाका मार्ग रुक जाताहै तब उसे अष्ठीला रोग कहते हैं ॥ ४७—४८ ॥

जब यही अष्ठीला, गुदा और लिङ्गके मार्गको रोक कर पेटमें उत्पन्न होती है तब इसका नाम प्रत्यष्ठीला होजाता है ॥ ४९ ॥

जो पीड़ा ऊपरसे उत्पन्न होकर नीचे को जाती है जिसके होनेसे गुदा और लिङ्ग में फटने के समान पीड़ा होती है उसे

अथ प्रतितूणीलक्षणमाह ।

गुदोपस्थोत्थिता सा तु यदाऽऽह्वमुपसर्पति ।
पक्वाशयान्तं संप्रोक्ता प्रतितूणी तदा बुधैः ॥ ५१ ॥

अथ त्रिकशूलमाह ।

त्रिके या वेदना वायोस्त्रिकशूलं तदेव हि ।
पृष्ठवंशास्थिसन्धिस्थं त्रिकमित्यभिधीयते ॥ ५२ ॥

अथ बस्तिवातमाह ।

कुपितः पवनो बस्तौ स्थित्वाऽऽश्रय कुरुते गदम् ।
बस्तिवातं तमित्याहुरायुर्वेदाब्धिपारगाः ॥ ५३ ॥

अथ गृध्रसीलक्षणमाह ।

यस्यां वायुः समायाति स्फिक्पर्वोरुकटीस्तथा ।
पृष्ठं जानुं जङ्घपदं गृध्रसी सोदितापरैः ॥ ५४ ॥

पण्डितोंने तूणी रोग कहा है यह रोग विष्ठाशय और मूत्राशय में उत्पन्न होता है ॥ ५० ॥

जो पीड़ा, गुदा और लिङ्ग में उत्पन्न होकर पक्वाशयको ओर जाती है उसे प्रतितूणी कहते हैं ॥ ५१ ॥

जङ्घा और कमरको हड्डीकी सन्धि को त्रिक् कहते हैं उस स्थान में जो पीड़ा हो उसे त्रिकशूल कहते हैं ॥ ५२ ॥

जब वायु बिगड़ कर मूत्राशय में जाता है तब वह अनेक प्रकार के रोगोंको उत्पन्न करता है इसी का नाम बस्ति वात है ॥ ५३ ॥

जिस रोगमें वायु जङ्घाकी सन्धि, कमर, पीठ, पिण्डरी और पैरोंमें आवे उसे गृध्रसी रोग कहते हैं वह गृध्रसी रोग दो प्रकार

माद्विधा वातजा चैका वातश्लेष्मोद्भवा परा।
तस्यां तोदस्तम्भभेदा भवन्ति स्पन्दनं तथा ॥ ५५ ॥
वातजायां विशेषात्तु तोदो वक्राङ्गता तथा।
स्फुरणं स्तब्धता चैव जङ्घोरूपर्वसिजानुषु ॥ ५६ ॥
कफवातोद्भवा यान्तु वह्निमान्द्यञ्च गौरवम्।
मुखप्रसेकस्तन्द्रा च भक्तारुचिरनिद्रता ॥ ५७ ॥

अथ खञ्जस्य लक्षणमाह।

यदा क्षिपत्यरुद्धृष्टः कटिस्थः सक्थ्निकण्डराः।
तदा खञ्जत्वमायाति नरो रोगनिपीडितः ॥ ५८ ॥

पङ्गुलक्षणमाह।

स एव मारुतः कोपाद् यदा सक्थ्नोर्द्वयोर्वधम्।
करोति कर्म्मनाशञ्च तदा पंगुर्भवेन्नरः ॥ ५९ ॥

का होता है, एक केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और दूसरा कफ वात से उत्पन्न हुवा, गृध्रसी रोगमें शरीरोंका स्तम्भन, पीड़ा और फरकना आदि लक्षण होते हैं, रोगीका शरीर टेढ़ा होजाता है, कफ और वायुसे उत्पन्न हुवे, गृध्रसीरोगमें शरीरोंका फरकना, जङ्घा, पिंडुरी आदि शरीरोंका स्तम्भित होना, निद्रा न आना, अग्निमन्द होना, शरीरोंका भारीपन, भोजन की इच्छा न होना और अधिक थूक आना ये लक्षण होते हैं ॥ ५४—५७ ॥

जब वायु बिगड़ कर एक ओरके पैरमें स्थित होता है तब रोगी लङ्गड़ा होजाता है इसीका नाम खञ्जवात है ॥ ५८ ॥

जब वही वायु बिगड़कर दोनों जङ्घाओंको कर्म से रहित कर देता है तब रोगी पङ्गु होजाता है ॥ ५९ ॥

कलायखञ्जलक्षणमाह।

पलं यः कम्पते जन्तुर्मुक्तसंध्यस्थिबन्धनः ।
कलायखञ्जं तं प्राहुः वैद्यशास्त्रार्थपारगाः ॥ ६० ॥

अथ क्रोष्टुशीर्षमाह ।

रक्तान्वितो यदा वायुः जानुमध्ये व्यवस्थितः ।
सवेदन मतीवोग्रं शोथं प्रकुरुते भृशम् ॥ ६१ ॥
शृगालशिरसस्तुल्यं स्थूलञ्चातिघनं तथा ।
क्रोष्टुशीर्षः सविज्ञेयो वैद्यैः शास्त्रार्थदर्शिभिः ॥ ६२ ॥

अथ खण्डोलक्षणमाह ।

करमूलांघ्रिजङ्घोरु परिवर्त्तनकारिणी ।
खल्लीति कथिता वैद्यैरायुर्वेदविशारदैः ॥ ६३ ॥

अथ वातकण्टकमाह ।

श्रमाद्वा विषमन्यासाद् गुल्फे या वेदना .वेत् ।

जिस मनुष्यके शरीरकी सन्धि ढीली होगई हों और रोगी चलनेमें कांपे उसे वैद्यशास्त्र जाननेवाले पण्डितकलाप खञ्जरोग कहते हैं ॥ ६० ॥

जब वायु बिगड़ कर रक्तको सङ्गमें लेकर जङ्घामें स्थिर होता है तब उसी जङ्घामें घोर पीड़ाके सहित स्यारके शिरके समान ऊंचा और अत्यन्त कठोर सूजन आजाता है, वैद्य शास्त्र जानने वाले महात्मा उसेही क्रोष्टुशीर्षक रोग कहते हैं ॥ ६१—६२ ॥

जिस रोगमें मनुष्यके हाथ पैर और जङ्घा घूम जाय उसे खल्ली रोग जाने ॥ ६३ ॥

अत्यन्त परिश्रमसे अथवा नीचे ऊंचेमें पैर पड़नेसे जो एड़ीकी

वातकण्टकमित्याहु: व्याधिं व्याधिविद: परा ॥६४॥

अथ पाददाहमाह।

पित्तासृग्भ्यां युतो वायु: दाहं चरणयोर्यदा।
कुरुते पाददाहन्तमायुर्वेदविदो विदु: ॥ ६५ ॥

अथ पादहर्षमाह।

प्रसुप्तौ चरणौ यस्य हृष्येतेऽप्यथवा पुन:।
पादहर्ष: सविज्ञेय: श्लेष्मानिलसमुद्भव: ॥ ६६ ॥

आक्षेपकमाह।

सर्वा सुदुष्ट: पवन: शिराम्
समास्थित: स्ता: कुपित: क्षिपेद्वै।
आक्षेपक: स: कथितो मुनिभि: पुराणै:
चतुर्भिधोऽसौ पवनोद्भवस्तु ॥६७॥

गांठमें पीड़ा होती है, उसे रोग जाननेवाले वैद्य वात कण्टक रोग कहते हैं ॥ ६४ ॥

जब वायु पित्त और रुधिर से मिलकर पैरोंमें अधिक दाह उत्पन्न करता है उसीको आयुर्वेद जाननेवाले वैद्य पाददाह रोग कहते हैं ॥ ६५ ॥

जिसके पैर सोजांय अथवा कांपने लगें उसी पादहर्ष रोग जानें यह रोग कफ और वायु से उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

जब वायु बिगड़ कर सब नाड़ियोंमें भर जाता है और उन नाड़ियोंको बार बार कंपाता है वैद्य इसको वायुसे उत्पन्न हुए रोगको आक्षेपक कहते हैं: यह रोग चारप्रकारका होता है ॥६७॥

वातोत्थो वातपित्तोत्थो वातश्लेष्मोद्भवस्तथा ।
अभिघातभवश्चैव भेदाश्चत्वार ईरिताः ॥ ६८ ॥

अथ वाताक्षेपलक्षणमाह ।

अंघ्रिहस्तशिरःश्रोणि कटिवंशानि वै मरुत् ।
दण्डवत् कुरुते स्तब्ध दण्डकः सः प्रकीर्त्तितः ॥६९॥

अथ दण्डापतानकमाह ।

श्लेष्मान्वितो यदा वातो देहनाड़िस्थितो भवेत् ।
दण्डवत् स्तब्धतां याति वपुर्दण्डापतानके ॥ ७० ॥

अथान्तरायाममाह ।

जठरहृद्गलगुल्फसमाश्रितः
क्षिपति वेगयुतः पवनो बली ।
पवनवाहि शिराख्य प्रतानकं
नयन-नाड़ि-हनुग्रहसंयुतः ॥ ७१ ॥

एक केवल वात से उत्पन्न हुआ, दूसरा वात पित्त से उत्पन्न हुआ, तीसरा वात और कफसे उत्पन्न हुआ और चौथा अभिघातज अर्थात् चोट लगने से उत्पन्न हुवा, यही चार भेद हैं ॥६८॥

जिस रोगमें हाथ, पैर, शिर, चूतड़के ऊपरका भाग और कमरके बीचकी हड्डी डण्डे के समान स्तम्भित होजाय उसका नाम दण्डक रोग है ॥ ६९ ॥

जब वायु कफको सङ्ग लेकर शरीरकी नाड़ियोंमें प्रविष्ट होता है तब उसका सब शरीर लट्ठोके समान होजाता है इस रोगका नाम दण्डापतानक है ॥ ७० ॥

अन्तरायाम रोगमें हृदय, पेट, गला और गुल्फ स्थानोंमें आकर

स्नायुप्रतानं पवनो बलाढ्यः
यदाङ्गुलीगुल्फगलाश्रितोऽग्रो ।
हृत्सन्धिसंस्थः क्षिपति प्रदुष्टः
विष्टब्धनेत्रो मनुजस्तदा स्यात् ॥ ७२ ॥
स्तब्धाङ्गसन्धिः किल भग्नपार्श्वः
हनुग्रहार्त्तः खलु चाप नम्रः ।
सोऽभ्यन्तरायामयुतो मनुष्यो
मुनिप्रदिष्टो भृशमातुराङ्गः ॥ ७३ ॥

स्वहेतुभिर्यदा वायुः कुपितोऽभ्येति कण्डराः ।
मन्यास्थैव तथा स्नायु-शिरा बाह्यस्थितास्तदा ॥ ७४ ॥
पृष्ठाश्रिताः शोषयित्वा नामयेच्च बलाद्दृढः ।
असाध्यस्तं भिषक् श्रेष्ठाः बाह्यायामं विदो विदुः ॥ ७५ ॥

बलवान वायु, वायु वाहिनी नाड़ियों में भरजाता है तब रोगी के नेत्र, नाड़ी और ठोढ़ी स्तम्भित हो जाती है, जब रोगी की नाड़ियों में अङ्गुली, गुल्फ और गला आदि स्थानोंमें तथा हृदय की सन्धियोंमें वायु भर जाता है, तब नेत्र खुले हो रहजाते हैं इसी रोगका नाम अन्तरायाम रोग है। अन्तरायाममें मनुष्यके शरीर की सब सन्धि विशेष कर पसुरी टूट जाती है, ठोढ़ी इधर उधर को नहीं हिल सकी रोगी धनुष के समान टेढ़ा होजाता है ॥ ७१—७३ ॥

जब वायु अपने बिगड़नेके कारणोंसे बिगड़कर सब कण्डरा और मन्यानामक गलेकी नाड़ियोंमें प्रवेश करता है तब शरीरको बाहरको ओर टेढ़ाकर देता है इसही असाध्य रोगका नाम बाह्या-याम रोग है ॥ ७४—७५ ॥

अथ धनुस्तम्भलक्षणमाह ।

धनुस्तुल्यं वपुर्यस्य नमते मनुजस्य तु ।
स्रस्ताङ्गस्य विवर्णस्य धनुस्तम्भो विचेतसः ॥ ७६ ॥
स्वेदाढ्यः स धनुस्तम्भी दशरात्रं न जीवति ॥ ७७ ॥

अथ कुब्जलक्षणमाह ।

नतं तु हृदयं यस्य पृष्ठं वा कुरुते मरुत् ।
क्रमशः क्रुद्धरूपस्तु कुब्जन्तं वैद्य आदिशेत् ॥ ७८ ॥

अथापतन्त्रकमाह ।

निजहेतुगणैः कुपितः पवनो
हृदयञ्च शिरश्च यदैति बली ।
धनुषः सदृशं नमयेच्च वपुः
अपतन्त्रकमेव तमेव विदुः ॥ ७९ ॥
आक्षिपेन्मोहयेच्चैव उच्छ्वासं सृजते तथा ।
स्तब्धाक्षो नष्टसंज्ञश्च रोगी भवति पीड़ितः ॥ ८० ॥

जिस मनुष्यका शरीर धनुषके समान टेढ़ा होजाय, थक जाय, रङ्ग बदल जाय, चैतन्यता कुछ न रहे उसे धनुस्तम्भ रोग कहते हैं वह रोगी दशदिन तक नहीं जीता ॥ ७६—७७ ॥

जिसका हृदय पीछे या आगे को निकल जाय उसे कुब्ज रोगी जानो ॥ ७८ ॥

जिसके शरीरमें अपने कारणोंसे कुपित वायु हृदय और शिरमें प्रवेश करके रोगीके शरीरको धनुषके समान टेढ़ाकर देय, जिसका शरीर कांपे, जो ऊंचे नीचे सांस लेय, जिसके नेत्र फैले ही रह जाय उसे अपतन्त्रक रोग कहते हैं ॥ ७९—८० ॥

अथापतानकमाह ।

रुधिरातिस्रवाद्वायुः कुपितः कुरुते भृशम् ।
संज्ञाहृद्दृष्टि स्तम्भनं हि कंठे कूजनमेव च ॥ ८१ ॥
भुक्ते स्वास्थ्यं नरो याति जीर्णेमुह्यति दारुणम् ।
अपतानकमित्याहुः तं व्याधिं व्याधिवेदिनः ॥८२॥

अथ पक्षाघातमाह ।

स्वहेतुभिः प्रकुपितो वातो देहार्द्धसंश्रयम् ।
शोषयित्वा शिरा स्नायु सन्धिबन्धान् विमोक्षयेत् ॥८३
अर्द्धाङ्गं स्तम्भयेद् दुष्टः अकर्मण्यं विचेतनम् ।
पक्षाघातं तमेवाहुः अर्द्धाङ्गपवनं तथा ॥ ८४ ॥

अथास्याऽसाध्यत्वादिकमाह ।

पित्तान्वितो यदा वायुः मूर्च्छा-सन्तापदाहवान् ।
कफाहतोऽथवा वातः शैत्यशोथादिसंयुतः ॥ ८५ ॥

जिसके शरीर में अधिक रुधिर निकलनेसे, वायु अधिक बिगड़ गया हो, जिसकी संज्ञा नाश होगई हो, दृष्टिस्तम्भ होगई हो, कण्ठसे शब्द न निकले, जो खाने न सके और पचने से, फिर रोगसे व्याकुल होजाय उसे अपतानक रोग जाने ॥ ८१,८२ ॥

अपने कारणोंसे बिगड़ा हुआ वायु जिसके आधे शरीरके नाड़ी और अस्थि बन्धनोंको सुखा कर उसी ओरके आधे शरीरको कर्म्म रहित कर देव, रोगी चेतना रहित होजाय उसे पक्षाघात अथवा अर्द्धाङ्ग वात रोग जाने ॥ ८३—८४ ॥

जिसके शरीरमें पित्त सहित वायु, दाह, मूर्च्छा आदि

वात एव यदा पक्षं हन्ति कृच्छ्रं तदादिशेत् ।
अन्यदोषान्वितं साध्यमसाध्यं क्षयसम्भवम् ॥ ८६ ॥
नष्टासृजो गर्भिणीनां वृद्धानाञ्च तथैव तु ।
बालानां सूतिकानाञ्च पक्षाघातं न सिध्यति ॥८७॥

अथ सर्वाङ्गवातमाह ।

सर्वाङ्गं पवनः क्रुद्धो यस्याभ्येति वपुष्मतः ।
भञ्जनं तस्य गात्राणां स्फुरणञ्चापि जायते ॥ ८८ ॥
पीड़ापीड़ितसर्वाङ्गो मुक्तसन्धिर्विचेतनः ।

अथ स्थानलक्ष्यलक्षणरूपान् वातव्याधीमाह ।

शेषा ये व्याधयो वायोः स्थाननामानुरूपतः ।
लिङ्गान्युक्तानि सद्वैद्यैस्तेषां विद्यात्तथैव तु ॥ ८९ ॥

दोष उत्पन्न करें अथवा वही वायु कफसे संयुक्त हो तो उसका पक्षाधात रोग असाध्य जानें ॥ ८५ ॥

जिसको केवल वायुसे पक्षाघात हुवा हो वह कष्टसाध्य, जिसको दूसरे दोषोंके सङ्ग वायुसे पक्षाघात हुवा हो वह साध्य और जिसको क्षयसे उत्पन्न हुवा हो उसे असाध्य जानो ॥८६॥

रुधिर हीन, गर्भिणी, वृद्ध, बालक और सूतिकाका पक्षाघात रोग अच्छा नहीं होता ॥ ८७ ॥

जिसके सब शरीर में वायु व्याप्त हो उसके शरीर टूट जाते हैं, फरकते हैं, शरीरोंमें पीड़ा होती है और सब सन्धी ढीली होजाती हैं ॥ ८८ ॥

इन रोगोंके सिवा जो वातव्याधि शेष रही उनके लक्षण और स्थान नामके अनुसार जानलो ॥ ८९ ॥

संसर्गजा भवन्त्येते पित्तादीनां न संशयः ॥ ८० ॥
प्रथमं ह्रस्वकेशत्वं ततो वाचालतापि च ।
आटोपः पार्श्वशूलञ्च पुरीषस्यातिगाढ़ता ॥ ८१ ॥
तथा मलाप्रवृत्तिश्च कम्पः स्तम्भश्च रूक्षता ।
कार्श्यं कार्ष्ण्यं च वपुषो लोमहर्षो व्यथा तथा ॥८२॥
तोदो भेदः शिरास्फूर्त्तिरङ्गमर्दोऽङ्गशुष्कता ।
संकोचश्चाङ्गविभ्रंशो मोहश्चञ्चलचित्तता ॥ ८३ ॥
निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिश्च भीरुता ।
शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिश्रमः ॥ ८४ ॥

अथ हेतुविशेषेण वातव्याधिविशेषानाह ।

क्लमोमूर्च्छाभ्रमोदाहः उदाने पित्तसङ्गते ।

ये सब रोग पित्तादिकोंके संयोगसे होते हैं, छोटे बाल होने, अधिक बोलना, पेट फूलना, पसुरीको पीड़ा, विष्टा अधिक गाढ़ा होना, विष्ठा न होना, शरीर कांपना, स्तम्भन, शरीर का रूखापन, दुर्बलता, शरीर काला होना, रोंये खड़े होने, अधिक शीतलता, शरीर में पीड़ा, सुई के छेदने के समान पीड़ा होना, शरीर फटनेके समान पीड़ा होना, अङ्ग मर्द, शरीर सूखना, नस सिकुड़ जाना, पसीना न आना, बल नष्ट होना, अङ्ग नष्ट होना, चित्त चञ्चल रहना, अधिक भय लगना, वीर्य नाश होजाना, रज नष्ट होना, गर्भ गिरना और परिश्रम ये रोग पित्तादिके सङ्ग वायु मिलनेसे होते हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

क्लम, मूर्च्छा, भ्रम, दाह ये रोग तब होते हैं जब उदान

मन्दाग्निः हर्षोऽस्वेदत्वं तस्मिन्नेव कफावृते ॥ ९५ ॥
छर्दिर्दाहो भवेन्नित्यं प्राणे पित्तसमन्विते ।
तन्द्रावैरस्यमालस्यं दौर्बल्यं कफसंयुते ॥ ९६ ॥
स्वेदोदाहस्तथा मूर्च्छा समाने पित्तसङ्गते ।
कफावृते च विण्मूत्रस्तम्भनं गात्रहर्षणम् ॥ ९७ ॥
पित्तान्वितेऽपानवाते दाहौष्ण्यारक्तमूत्रताः ।
शीतत्वं कफसंयुक्ते ह्यधोदेहे च गौरवम् ॥ ९८ ॥
वपुषः क्षेपणं दाहो व्याने पित्तावृते क्रमः ।
शूलं शोथः स्तम्भनश्च दण्डकश्च कफान्विते ॥ ९९ ॥

वायु पित्तसे मिलता है, वही उदान वायु जब कफ से मिलता है तब अग्निमन्द होजाती है और पसीना नहीं आता ॥ ९५ ॥

जब समान वायु कफसे मिलजाता है तब जम्हाई, आलस्य और दुर्बलता आदि रोग होजाते हैं जब पित्तसे मिलता है तब मूर्च्छा होती है और अधिक पसीना आता है ॥ ९६ ॥

जब पान वायु कफसे मिलता है तब विष्टा और मूत्र रुक जाता है, शरीर कांपता है और नीचे का शरीर भारी होजाता है और जब वही अपानवायु पित्तसे मिलता है तब शरीर गर्म होता है और मूत्रलाल होजाता है । ७७—९८ ।

जब व्यानवायु पित्तसे मिलता है तब शरीरमें दाह होता है, रोगी का शरीर फरकता है, जब वही व्यानवायु कफ से मिलता है तब शरीरमें शूल, सूजन, स्तम्भ और दण्डकादिरोग होजाता है । ९९ ।

अथ स्थानविशेषेण वातव्याधिविशेषानाह।

मस्तोदा स्फुटिता रूक्षा त्वक् सुप्ता वातदूषिता।
कृष्णा कृशा च सुप्ता च बहुरोगा त्वगाश्रिते ॥१००॥
तीव्रारुजः ससन्तापाः कृशतारुच्यवर्णता।
विस्फोटाश्चैव भुक्तस्य स्तम्भनं रुधिराश्रिते ॥ १०१ ॥
मांसस्थिते च सरुजि तोदो गुरुंगता च रुक्।
स्तब्धत्वं दण्डमुष्टीभिराहतस्येव वेदना ॥ १०२ ॥
मेदोऽन्वितः करोत्येष व्रणान् ग्रन्थीं रुजान्वितान् ॥१०३
पर्वभेदोऽस्थिशूलञ्च अनिद्रत्वं पलक्षयः।
बलनाशः प्रतापश्च वातेऽस्थिसंस्थिते भृशम् ॥ १०४ ॥

जब वायु खालको दूषित करता है, तब चमड़ा पीड़ायुक्त रूखा होजाता है, फूटने लगता है, स्पर्श नहीं जान पड़ता, काला होजाता है और भी अनेक रोग होजाते हैं ॥ १०० ॥

अधिक पीड़ा, शरीर में दाह दुबलना, शरीरका रंग बदलना, बिस्फोट और भोजन की स्तम्भनता यह रुधिर में वायुस्थित होने से लक्षण होते हैं ॥ १०१ ॥

जब वायु मांस में स्थित होता है, तब मांस में पीड़ा होती है, शरीर भारी होजाते हैं, शरीर स्तम्भन होजाता है और मुक्के तथा लट्ठों से मारने के समान पीड़ा होती है ॥ १०२ ॥

जब वायु मेद में स्थित होता है, तब शरीर में खुजली और पीड़ायुक्त अनेक घाव होजाते हैं ॥ १०३ ॥

जब वायु हड्डी में स्थित होता है, तब सन्धि और हड्डियों में पीड़ा, निद्रा न आना, मांस कम होना, बलनाश होना, और वृथा बकनासे लक्षण होते हैं ॥ १०४ ॥

मज्जागते यदा पीड़ा भवति भृशदुःखदा ।
शुक्रस्थः कुपितो वातो मुहुर्बध्नाति मुञ्चति ॥ १०५ ॥
शुक्रं गर्भञ्च विकृतिं करोति रेतसस्तथा ॥ १०६ ॥

अथ कोष्टगतस्य वायोः लक्षणमाह ।

कोष्ठाश्रितो यदा वायुः गुल्मोऽर्शः पार्श्वपीड़नम् ।
हृद्रोगो निग्रहः शूलं भवेन्मूत्रस्य वर्चसः ॥ १०७ ॥

अथोष्टलक्षणमाह ।

उण्डुकः फुम्फुसो हृच्च मूत्ररक्ताग्निसंश्रयः ।
आमाशयश्च विबुधैः कोष्टसंज्ञा उदाहृताः ॥ १०८ ॥

अथामाशयगतस्य वायोर्लक्षणमाह ।

तत्रादावामाशयमाह चरकः ।

नाभिस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः इति ॥१०९

जब वायु मज्जा में जाता है, तब शरीर में अत्यन्त दुःख देनेवाली भयानक पीड़ा होती है ।

जब वायु वीर्य्य में स्थित होता है तब वीर्य्य विना प्रयोजन ही बार बार निकलता है और प्रयोजन होने पर नहीं निकलता, वीर्य्य और गर्भ में अनेक प्रकार के दोष आजाते हैं ॥ १०५—१०६॥

जब वायु आगे कहे कोष्ट में जाता है, तब गुल्म, अर्श, पसुरी में पीड़ा और हृदय में पीड़ा होती है तथा विष्टा और मूत्र रुक जाता है ॥ १०७ ॥

यकृत, प्लीहा, उण्डुक, फुम्फुस, हृदय, मूत्राशय, रक्ताशय, अग्न्याशय और आमाशय इनही को कोष्ठ कहते हैं, चरकमें नाभी और हृदय के बीच में आमाशय कहा है ॥ १०८ ॥

जब वायु आमाशय में आता है, तब खांसी, विशूचिका, सांस,

कासो विसूचिका श्वासः कण्ठशोषश्च पीड़नम्।
हृत्पार्श्वोदरनाभीनां तृषा चामाशयाश्रिते ॥ ११० ॥

अथ पक्वाशयगतवायुलक्षणमाह।

पक्वाशयगतः शूलमाटोपं त्रिकवेदनाम्।
मूत्रविट् कृच्छ्रतां चैव आनाहं चान्त्रकूजनम् ॥१११॥

अथ गुदगतस्य लक्षणमाह।

जङ्घांगोरः-त्रिक पृष्ठ-पार्श्वपीड़ाश्मशर्कराः।
शूलमाध्मानविगम् वर्त्मस्रनं गुदसंस्थिते ॥ ११२ ॥

अथ श्रोत्रादिगतस्य लक्षणमाह।

क्रुद्धो वातः स्थितो यस्मिन् तस्य तस्येन्द्रियस्य तु।
विनाशं कुरुते शीघ्रं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ११३॥

अथ शिरागतस्य लक्षणमाह।

आयामं कुब्जतां खञ्जौ शिराशूलञ्च पूरणाम्।

कण्ठ सूखना, हृदय, पसुरी और नाभी में पीड़ा होना, तथा अधिक प्यास होना ये लक्षण होते हैं ॥ १०८ ॥ ११० ॥

जब वायु पक्वाशय में जाता है, तब शूल, पेट फूलना, त्रिकमें पीड़ा, मूत्र और विष्ठा आने में अधिक पीड़ा होना, आनाह और अन्तड़ियों में से शब्द होना ये लक्षण होते हैं ॥ १११ ॥

जब वायु गुदा में स्थित होता है, तब जंघा, पिंडुरी, हृदय, त्रिक और पसुरी में पीड़ा होती है और पथरी, शर्करा, शूल, आध्मान तथा विष्ठा और मूत्र रुकना ये लक्षण होते हैं ॥ ११२ ॥

वायु बिगड़ कर जिस २ इन्द्रिय में जाता है, उस को उस इन्द्रिय के काम को नष्ट कर देता है ॥ ११३ ॥

संकोचनञ्च कुरुते सिरास्थः पवनो भृशम्॥ ११४॥

अथ स्नायुगतलक्षणमाह।

कम्पस्तम्भसिराशूलमाक्षेपः स्नायुसंस्थिते॥ ११५॥

अथ सन्धिगतमाह।

सन्धिस्थितः सन्धिनाशं शूलं शोथञ्च दारुणम्॥११६॥

अथ कृच्छ्रसाध्यानाह।

आक्षेपश्च हनुस्तम्भः पक्षाघातार्दितौ तथा।
अपतानककम्पाश्च कृच्छ्रसाध्या इमे गदाः॥ ११७॥

अथोपद्रवानाह।

अग्निमान्द्यारुचिक्षीणाङ्गभङ्गमूर्च्छाविसर्पताः।
उपद्रवा अमी वातरोगिणां हन्त्यसंशयम्॥ ११८॥

जब वायु नाड़ियों में प्रवेश करता है, तब अन्तरायाम, बाह्यायाम, कुब्जता, खल्ली, नसोंमें पीड़ा, नसोंका पूर्ण होना, और नाड़ियोंका सङ्कुचित होना ये लक्षण होते हैं॥ ११४॥

जब वायु स्नायु में जाता है, तब कम्प, स्तम्भ, नाड़ियों में शूल और आक्षेप आदि रोग होते हैं॥ ११५॥

जब वायु सन्धियोंमें स्थित होता है, तब सन्धियों का नाश हो जाता है, सूजजाती हैं और उनमें भयानक शूल होता है॥११६॥

इन वातव्याधियोंमें से आक्षेप, हनुस्तम्भ, पक्षाघात, अर्दित और अपतानक ये रोग कष्टसाध्य हैं॥ ११७॥

अग्निमन्द होना, अरुचि, क्षीणता, शरीर टूटना, मूर्च्छा और विसर्प ये वातव्याधियों के उपद्रव हैं॥ ११८॥

अथ याप्यमाह ।

म्लानं कम्पान्वितं शूलपीड़या चातिपीड़ितम् ।
सुप्तत्वचं तथाऽऽध्मानसंयुतं हन्ति मारुतः ॥ ११९ ॥

अथ प्रकृतिभूतस्य वायोः कार्य्यमाह ।

स्थानस्थितः प्रकृतिगो वायुर्यस्य शरीरिणः ।
अव्याहतगतिश्चैव स जीवेत् शरदः शतम् ॥ १२० ॥

सुखी जरारोगविवर्जितो ना
स्थानस्थिते कोपविवर्जिते च ।
सदा मतो वीतभयो बलाढ्यः
पूर्णास्तु जीवेत् शरदः शतन्तु ॥ १२१ ॥

अथ चिकित्सा ।

स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः ।

जिस वातरोगीका शरीर कांपता हो, अत्यन्त दुर्बल हो, जिसके शरीरमें शूल हो, पीड़ा हो, स्पर्श न जान पड़े और आध्मान हो, वैद्य उसे जान लें, कि अब यह नहीं जियेगा ॥ ११९ ॥

जब वायु अपने स्थान और प्रकृति में स्थित रहता है, और उस की गति किसी प्रकार नष्ट नहीं होती तब वह मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है ॥ १२० ॥

जिस मनुष्य का वायु कभी नहीं बिगड़ता और सदा अपने स्थानों में रहता है, वह मनुष्य कभी भी रोगी नहीं होता, बूढ़ा नहीं होता, उसे डर नहीं लगता, बलवान रहता है और पूरे सौ वर्ष जीता है ॥ १२१ ॥

अभ्यङ्गस्नेहवस्त्याद्यैः सर्व्वानेवोपपादयेत् ॥ १२२ ॥
विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षीरं पिवेन्नरः ।
आमाशयस्थे शुद्धस्य(१) यथा रोगहरी क्रिया ॥१२३॥
आमाशयगते वाते छर्द्दिताय यथाक्रमम् ।
रूक्षः स्वेदोलङ्घनञ्च कर्त्तव्यं वह्निदीपनम् ॥ १२४ ॥
पक्वाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम् ।
कार्य्योवस्तिगते वापि विधिर्वस्तिविशोधनः ॥ १२५ ॥
त्वङ्मांसासृक्शिराप्राप्ते कुर्य्याच्चासृग्विमोक्षणम् ।
स्नेहोपनाहाग्निकर्म्मबन्धनोन्मर्द्दनानि च ॥ १२६ ॥

आगे वातव्याधि चिकित्सा लिखते हैं ।

वातरोगी को मीठे, खट्टे, नमके और चिकने भोजन करावे, अभ्यङ्ग, स्नेह और वस्ति आदि कर्म करावे ॥ १२२ ॥

यदि कोष्ठ में वायु हो तो दूध पिलावे, यदि आमाशय में होय तो रोग के अनुसार चिकित्सा करे, परन्तु रोगी को पहिले वमन या विरेचन देकर शुद्ध कर लेय ॥ २३ ॥

यदि आमाशयमें वायु होय तो वमन कराके रूखी औषधियों से स्वेदन करे, लङ्घन देय और अग्नि बढानेको औषधी खिलावे ।१२४

यदि पक्वाशयमें वायुस्थित होय तो स्नेहन और विरेचन देय यदि मूत्राशय में होय तो शुद्ध करनेवाली औषधियोंसे बस्ति कर्म करे ॥ १२५ ॥

यदि त्वचा, मांस, रुधिर और नाड़ियोंके भीतर वायु होय तो तो रुधिर निकाले स्नेहन, उपटन, अग्निकर्म, बन्धन और मर्दन आदि क्रिया भी करे ॥ १२६ ॥

(१) वमनविरेचनाभ्यामिति भावः ।

स्नायुः सन्ध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्य्याद्वाते विचक्षणः।
स्वेदाभ्यङ्गावगाहांश्च हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते॥ १२७॥
शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम्।
विरेको मांसमेदोस्थे निरूहाः शमनानि च॥१२८॥
(१)बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत्।
हृद्यान्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम्॥ १२९॥
विबद्धमार्गं शुक्रन्तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम्।
गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम्॥१३०
सिताकाश्मर्य्यमधुकैर्हितमुत्थापने पयः।
शिरोगतेऽनिले दृष्टे शिरोरोगहरी क्रिया॥ १३१॥

यदि स्नायु, सन्धि अथवा हड्डीके भीतर वायु हो तो बुद्धिमान् वैद्य रोगिको स्वेदन, अभ्यञ्जन और अवगाहन आदि क्रिया करे। यदि त्वचामें होय तो भी यही क्रिया करे उत्तम भोजन देय॥१२७

यदि रुधिर में वायु होय तो ठंडे औषधियोंके प्रदेह और विरेचन देय तथा रुधिर निकाले। यदि मांस और मेदामें वायु होय तो विरेचन निरूह वस्ती और संशमन औषधि देय॥१२८॥

अस्थि और मज्जाप्राप्त वायु में बाहर और भीतरसे स्नेह वस्ती देय और शरीर में चिकनाई भी लगावे। शुक्रमें प्राप्त वायु दूर होनेके लिये हृदयको प्यारे भोजन और बल, वीर्य्य, वर्द्धक औषधि खिलावे॥ १२९॥

यदि वीर्य्यका मार्ग बन्द होगया होय तो विरेचन देय। यदि वायुसे गर्भ या बालक सूखता होय तो चीनी मिलाकर

(१) बाह्याभ्यङ्गानुवासनैः।

व्याधितास्ये हनू स्विन्नामङ्गुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च ।
प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नम्य चिबुकोन्नामनं हितम् ॥१३२॥

रसोनकल्कं नवनीतमिश्रं
खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः ।
तस्यार्दितं नाशयताह शीघ्रं
वृन्दं घनानामिव मातरिश्वा ॥ १३३ ॥

अर्दिते नवनीतेन खादेन्मांसेगडेरीं नरः ।
क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ॥ १३४ ॥
स्वेदाभ्यङ्गशिरोबस्तिपानमस्यपरायणः ।
अर्दितं स जयेत् सर्पिः पिबेदौत्तरभक्तिकम् (१) ॥१३५

सेठीमधु और खंभारी देय और ऊपरसे दूध पिला देय । यदि शिरमें वायु छाय तो शिररोग नाशक चिकित्सा करे १३०॥१३१

यदि मुख फैला ही रह गया हो तो दोनो हाथोंसे ठोढ़ी दबाकर मुख मिला देय ॥ १३२ ॥

जो अर्दित रोगी लहसन के कल्कमें मक्खन मिलाकर खाता है उसका अर्दित रोग इस प्रकार शीघ्र दूर होजाता है जैसे आंधी चलनेसे मेघोंका झुंड भाग जाता है ॥ १३३ ॥

अर्दित रोगमें मक्खन मिलाकर मांसेगडरी खाय, दशमूल का रस पिये. खानेको दूध और मांसका रस पथ्य है ॥ १३४ ॥

प्रतिदिन अर्दित रोगमें स्वेदन, अभ्यञ्जन, शिरोबस्ति, पीने की औषधि और सूंघने की औषधी देता रहै । भोजनके पश्चात् रोगी को घी पिलावे ॥ १३५ ॥

(१) उत्तरं भक्तं यस्य तत् औत्तरभक्तिकमित्यर्थः ।

पञ्चमूलीकृत: क्वाथो दशमूलीकृतोऽथवा ।
रूक्ष: स्वेदस्तथानस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते ॥ १३६ ॥
कटुतैलेनाभ्यक्ते लिप्ते कल्केन राजिगन्धयो: ।
शाम्येद्ग्रीवास्तम्भ: शूलं महदप्यनायासम् ॥१३७॥
वातात्त्वग्धमिनी दुष्टौ स्नेहगण्डूषधारणम् ।
वातघ्नैर्दशमूल्या च नवं कुब्जमुपाचरेत् ॥ १३८ ॥
स्नेहैर्मांसरसैर्वापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत् ।
आध्माने लङ्घनं पाणितापश्च फलवर्त्तय: ॥१३९॥

मन्यास्तम्भ रोगमें पञ्चमूलका काढ़ा अथवा दशमूल का काढ़ा पिलावे, रूखी औषधयोंसे स्वेदन करे और सूंघने की औषधी देय ॥ १३६ ॥

कडवे तेलसे कण्ठको मल कर राई और गन्धक का लेप करे इससे घोर पीड़ायुक्त मन्यास्तम्भ रोगी भी सुखी हो जाता है ॥ १३७ ॥

यदि अधिक वायु बढ़नेके कारण इस रोगमें दोनों वायु वाहनी नाड़ियोंमें दोष आगया हो तो चिकनाईके कुल्ले मुंहमें रक्खे । नवीन कुबड़ को वायु नाशक दशमूलका काढ़ा पिलावे, खानेको घी युक्त मांस का रस देय यदि यह रोग बहुत बढ़ गया हो तो चिकित्सा न करे ॥ १३८ ॥

आध्मान नामक रोगमें रोगीको लङ्घन देय, हाथसे सेके और बत्ती देय; अग्नि बढ़ानेवाली और दोष पचानेवाली औषधी दे तथा शोधन औषधियोंसे बस्ति कर्म करे ॥ १३९ ॥

दीपनं पाचनं चैव वस्तिस्थाप्यत्र शोधनः ।
प्रत्यष्ठीलाष्ठीलकयोरन्तर्विद्रधिगुल्मवत् ॥ १४० ॥
तैलमेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ १४१ ॥
शेफालिकादलक्वाथो मृद्वग्निपरिसाधितः ।
दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत् ॥ १४२ ॥
पिष्ट्वैरण्डफलं क्षीरे सविश्वं वाऽथवोफलम् ।
पायसो भक्षितः सिद्धो गृध्रसीकटिशूलनुत् ॥ १४३॥
रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्ष्णं वातकण्टके ।
पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत् सूचीभिरेव वा ॥ १४४ ॥
खल्ल्यां स्निग्धाम्ललवणैः स्वेदोन्मर्दोपनाहनम् ॥१४५॥

प्रतिष्ठीला और ष्ठीला रोगोंकी चिकित्सा गुल्म और अन्तर विद्रधि के समान करे ॥ १४० ॥

गृध्रसी और ऊरुस्तम्भ रोगमें रोगी एक महाने तक गोमूत्र मिलाकर अरण्डका तेल पिये ॥ १४१ ॥

सिनुवारके पत्तोंका काढ़ा मन्द अग्निमें पकावे, फिर उसके पीते ही रोगी घोर गृध्रसी रोगसे छूट जाता है ॥ १४२ ॥

दूधमें रेड़ी पीसकर पीनेसे अथवा सोंठ और रेड़ीमें पका दूध पीनेसे गृध्रसीरोग और कमरका शूल दूर होजाता है ॥१४३॥

वात कण्टक रोगमें अधिक रुधिर निकाले फिर उस स्थानको सलाई से जलाय दे और रोगीको रेंडीका तेल पिलावे ॥१४४॥

खल्ली रोगमें चिकने, खट्टे और नमकीन भोजन भी देवे, स्वेदन मर्दन और उपनाहन, क्रिया करे । सब वातरोगोंमें तेल,

कोलं कुलत्थाः सुरदारुरास्ना
माषातसी तैलफलानि कुष्ठम् ।
वचा शताह्वा यवचूर्णमम्ल-
मुष्णानि वातामयिनां प्रदेहः ॥ १४६ ॥

इति प्रदेहः ।

पक्षाघातं कटिहनुशिरःकर्णनासाक्षितालु-
ग्रीवाग्रन्थिप्रबलमनिलं सार्दितं सापतानम् ।
मूत्राघातं ग्रहणिगलकण्ठश्वाससर्वाङ्गकम्पम् ।
तैलद्रोणी हरति नचिरात्क्वाथद्रोणिका च ॥१४७

इति द्रोणीविधिः ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥१४८॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि समभागानि कारयेत् ।

कुलथी, देवदारु, रासन, उड़द, अलसी, तिलवाले फल, कूट, बच, सौंफ, इन्द्रजौ और खट्टा आदि औषधियोंका चूर्ण शरीरमें लगावे ॥ १४५—१४६ ॥

पक्षाघात, कमर, ठोढ़ी, शिर, कान, नाक, आंख, तालु, और कण्ठ प्राप्त वायुमें तथा ग्रन्थि, अर्दित, अपतानक, मूत्राघात, ग्रहणी, कण्ठरोग, श्वास और सर्वाङ्ग कम्परोगोंमें रोगी का तैल अथवा काढ़ों से भरी कड़ाही में बिठलावे ॥१४७॥

हलदी, बच, कूट, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोदा, जेठी-मधु, इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे और प्रतिदिन घीमें

तच्चूर्णं सर्पिषालोड्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ १४९ ॥
एकविंशतिरात्रेण नरः श्रुतिधरो भवेत् ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥१५०॥
जड़गद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणकोजयेत् ॥ १५१ ॥

इति कल्याणलेहः ।

पलमर्द्धपलञ्चैव रसोनस्य सुकुट्टितम् ।
हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थसौवर्च्चलकटुत्रिकैः ॥ १५२ ॥
चूर्णितैर्माषिकोन्मानै रवचूर्ण्य विलोडितम् ।
यथाग्नि भक्षितं प्रातरुबूकाथानुपानतः ॥ १५३ ॥
दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।
वातरोगं निहन्त्याशु अर्दितं सापतन्त्रकम् ॥ १५४ ॥
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ।
ऊरुस्तम्भे च गृध्रस्यां क्रिमिदोषे विशेषतः ॥ १५५ ॥

मिलाकर खाय तो इक्कीसदिनमें श्रुतिधर, मेघ और नगारेके समान शब्दवाला और मतवालेकोकिलेके समान शब्दवाला मनुष्य होजाता है। इससे गूंगापन, जड़ता और हकलापन दूर होजाते हैं इसका नाम कल्याणलेह है ॥ १४८ ॥ १५१ ॥

एकपल, अथवा आधापल लहसुन, कूटकर हींग, जीरा, सेंधानमक, सौंचल, सोंठ, मिर्च और पीपल इन सबको एक एक मासा पीसकर मिला देय और अग्निके अनुसार रोगीको प्रतिदिन निरन्तर खिलावे और ऊपरसे रेंडीका काढ़ा पिला देय। इससे शीघ्रही अर्दित, अपतन्त्र, एकाङ्गवात, सर्वाङ्गवात,

कटिपृष्ठमयं हन्यादुदरञ्च विनाशयेत् ॥ १५६ ॥

इति स्वल्परसोनपिण्ड:।

तैलं घृतं वार्द्रकमातुलुङ्गो:
रसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा ।
कव्यूरुपृष्ठत्रिकशूलगुल्म
गृध्रस्युदावर्त्तहर: प्रयोग: ॥ १५७ ॥

पञ्चमूलीबलासिद्धं क्षीरं वातामये हितम् ॥१५८॥

इति पञ्चमूलक्षीर:।

पथ्याश्वगन्धा हवुषा गुडूची
शतावरी गोक्षुरवृद्धदारकम् ।
रास्ना शताह्वा सशटी यमानी
सनागरा चेति समैश्च चूर्णम् ॥ १५९ ॥

ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, क्रिमिरोग, कण्ठरोग और कुष्टरोग आदि वायुरोग, तथा सबप्रकार के उदररोग दूर होजाते हैं इसका नाम लघुरसोनपिण्ड है ॥ १५२ ॥ १५६ ॥

तेल, अथवा घी, अदरक, या बिजौरे नीबूके रसके संग खाय अथवा चुकेमें मिलाकर गुड़ पीवे तो कमरका शूल, ऊरुस्तम्भ, पृष्टशूल, त्रिकशूल, गुल्म, गृध्रसी और उदावर्त्त रोग दूर होजाते हैं ॥ १५७ ॥

सब वात रोगमें पञ्चमूल और बरियामें पका दूध पथ्य है ॥१५८

हरड़, असगन्ध, हाऊबेर, गुरिच, शतावर, गोखुरू, बिधारा, रायसन, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ, इन सबको समान

तुल्यं भवेत्कौशिकमत्र मध्ये
देयं तथा सर्पिरथार्द्धभागम् ।
मार्द्धाक्षमात्रन्तु ततः प्रयोगात्
कृत्वानुपानं सुरयाथ यूषैः ॥ १६० ॥
मद्येन वा कोष्णजलेन क्वाथ-
क्षीरेण वा मांसरसेन वाऽपि ।
कटिग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठे-
हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे ॥ १६१ ॥
सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते
मज्जाश्रिते स्नायुगते च कुष्टे ।
रोगान् जयेद्वातकफानुविद्धान्
वातेरितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान् ।
भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जवाते
त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १६२ ॥

इति त्रयोदशाङ्गगुग्गुलुः ।

लेकर चूर्ण बनावे और सबके तुल्य गूगुल डालकर सबसे आधा घी मिला देय और प्रतिदिन रोगीको डेढ़ अक्ष खिलाकर ऊपरसे मद्य, गर्मजल, औषधियोंका रस, दूध अथवा मांस का रस पिलावे, इससे कटिग्रह, गृध्रसी, बाहुस्तम्भ, कमर, ठोड़ी, जांघ, दोनों पैर, सन्धि, हड्डी, मज्जा और स्नायुमें प्राप्तवायु कुष्ठ, हृदयके रोग, ग्रहदोष, योनिरोग, वातकफसे उत्पन्न हुये रोग, केवल बातसे उत्पन्न हुये रोग और खञ्जवायुरोग दूर होजाते हैं इसका नाम त्रयोदशाङ्ग गूगुल है ॥१५८॥१६२॥

अथ तैलमूर्च्छाविधिः ।

आटीतैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तत् ।
पक्वं निष्फेनभावं गतमिह हि यदा शैत्यभावं तदैतत् ॥
मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलुकैः सामलैः साक्षपथ्यैः
सूचीपुष्पांघ्रिनीरैः कृपणितमथितैर्गन्धयोगं जहाति १६३
(१) तैलस्येन्दुकलांशिकैरविकृपाभागास्तु मूर्च्छाविधौ
येचान्ये त्रिफलापयोदरजनी ह्रीवेरलोध्रान्विताः ।
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्ते स्युश्च पादांशिकाः ॥
दुर्गन्धं विजहत्यतीव सुरभिं कुर्वन्ति वर्णाकृतम् ॥१६४
आम्रजम्बुकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः ।

आगे तेलकी मूर्च्छाविधि लिखते हैं ।

पहिले तेलको निर्मल, दृढ़ और बड़े कड़ाहमें भरकर मन्द मन्द आगसे पकावे जब फेन उठकर शान्त होजाय तब मजीठ, हलदी, लोध, मोथा, नलुक, आंवला, बहेड़ा, हर्र, केतकी और नागरका पानी डाल देय इससे तेलकी दुर्गन्धि दूर होजाती है। ये सब औषधि तेलसे सोलहवां भाग अथवा बारहवां भाग होनी चाहियें कोई कोई वैद्य त्रिफला मोथा हलदी, दारुहलदी, हाऊबेर, लोध, केतकी, बड़गदके अङ्कुर और नलिका, तेलसे चौथाई डालते हैं इससे तेलकी दुर्गन्धी दूर होकर उत्तम सुगन्ध आने लगती है और रंग लाल होजाता है, इस के पश्चात् तेल चढ़ा कर आम, जामुन, कैथ, नींबू और बेल के पत्ते डाले,

(१) [illegible] मूर्च्छा[illegible] तैलस्य [illegible] भागमाहुः । [illegible] [illegible] । [illegible]

गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम्।
पञ्चपल्लवतोयेन गन्धानां क्षालनं मतम्॥१६५॥

अथ गन्धद्रव्यकथनम्।

एलाचन्दनकुङ्कुमागुरुमुमाकक्कोलमांसीशटी।
श्रीवासप्रकटग्रन्थिपर्णशशभृत्सौगन्धिजोशीरकम्॥
कस्तूरीनखपूति तैलजलपचने देयं लवङ्गादिकम्।
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु॥१६६॥
इति तन्त्रान्तरे।

कुष्ठञ्च नलिका पतिकशीरं श्वेतचन्दनम्।
जटामांसी तेजपत्रं नखी मृगमदः फलम्॥१६७॥
कक्कोलं कुङ्कुमं चोचं लताकस्तूरिका वचा।
सिल्हकोमिषिका मेथी भद्रमुस्तं तथाश[illegible]॥१६८॥

इन को पांचो पत्तों के पानी से आगे लिखे गन्धद्रव्यों को धोवै॥१६१—१६५॥

इलायची, चन्दन, केशर, अगर, कचूरी, शीतल चिनी, जटामासी, कचूर, रामके पत्ते, चोरक, कपूर, चन्दन, खस, कस्तूरी, नख, मेंथी और लौंगादि गन्धद्रव्य कहाते हैं, इन सब को विष्णुतैल आदि सब तैलों में डाले॥१६६॥

कूट, मलुआ, करंजुवा, खस, सफेद चन्दन, जटामासी, तेजपात, नख, कस्तूरी, लताकस्तूरी (मुश्कदाना) शीतलचिनी, केशर, वच, सिल्हक सौंप, मेथी, मोथा, कचूर, छोटी इलायची

मृगमेलागुरुमुस्तञ्च कर्पूरं ग्रन्थिपर्णकम् ।
श्रीवासकुन्दुरुश्चैव कुसुमं गन्धमातृका ॥ १६९ ॥
जातीकोषं शैलजञ्च देवदारु मजीरकम् ।
एतानि गन्धद्रव्याणि तैलपाकेषु युक्तित: ॥ १७० ॥

इति गन्धद्रव्याणि ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका ।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्यो: पूतिकस्य च ॥ १७१ ॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १७२ ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमत:परम् ॥ १७३ ॥
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथैव च ।
अपुमांश्च नर: पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥ १७४ ॥

अगर, नागर मोथा, कपूर, चोरक, लौंग, कुंदरु, रालधूप, गंधमातृका, जावित्री, छड़ीला, देवदारु, और नख ये सब गन्ध द्रव्य कहाते हैं ॥ १६९—१७० ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बरियारा, सौंफ, अरण्डकी जड़, छोटी बड़ी कटेलीकी जड़, करंजुएकी जड़, गड़हवाकी जड़, और कटसरैयाकी जड़ इन सबको एक एक पल लेकर एकप्रस्थ घी पकावे और पकाते समय घीसे चौगुना बकरी का दही वा दूध डाल देय. जब पक चुके तब उतार लेय अब इसके गुण सुनो ॥ १७१—१७४ ॥

जिस हाथी व घोड़ेके वायुसे हाथ, पैर टूट जाय उसको इस तैलके लगानेसे अङ्ग ठीक हो जाता है, नपुंसक मनुष्य इसके पीनेसे

हृच्छूले पार्श्वशूले च तथैवार्द्धावभेदके ।
कामलापाण्डुरोगेषु शर्करास्वश्मरीषु च ॥ १७५ ॥
क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जरया जर्जरीकृताः ।
येषाञ्चैव क्षयोव्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥ १७६ ॥
अर्दितं गलगण्डञ्च वातशोणितमेव च ।
स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासाञ्चैव प्रदापयेत् ॥ १७७ ॥
गर्भमश्वतरीविन्द्यान्न च मृत्युवशं व्रजेत् ।
एतत्तैलवरं चैव विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ ५७८ ॥

इति विष्णुतैलम् ।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शटी वला ।
एरण्डस्य च मूलानि वृहत्योः पूतिकस्य च ॥ १७९ ॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
एषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे वि[illegible]येत् ॥१८०

निश्चय पुरुष होजाता है, हृदयशूल, पसुरीकी पीड़ा, आधाशीसी, कामला, पांडुरोग, शर्करा, अश्मरी, अर्दित, गलगण्ड, और वातरक्तरोग दूर हो जाते हैं। जिन मनुष्यों की इन्द्रिय दुर्बल हो गई हों, जो बुढ़ापेसे व्याकुल हों, जिनको क्षय तथा भयानक अन्त्रवृद्धि रोग हुवा हो, जिस स्त्री को सन्तान न होती हो उनके लिये यह तेल बहुतही कल्याणदायक है। इसके खानेसे खचड़ी को भी गर्भ होता है और वह मरती भी नहीं। यह तेल भगवान् विष्णुने कहा था इस लिये इस नाम विष्णुतेल है॥ १७४—१७८ ॥

शतावर, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कचूर, वरियारा, अरंडकी जड़,
[illegible]

पादशेषे च पूते च गर्भश्चैनं समारपेत् ।
पुनर्नवावचादारुशताह्वाचन्दनागुरु ॥ १८१ ॥
शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा वला ।
अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्द्धानि च पेषयेत् ॥१८२॥
गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत् ।
शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १८३ ॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्य्यमतःपरम् ।
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् ॥१८४
तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत् ।
अपुमांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥१८५॥
गर्भमश्वतरी विन्द्यात् किं पुनर्मानुषी तथा ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च तथैवार्द्धावभेदकम् ॥ १८६ ॥
अपचीं गण्डमालाञ्च वातरक्तं गलग्रहम् ।

कुरैयाकी जड़ इनको दो दो पल कूटकर एकद्रोण पानीमें पकावे जब पकते पकते चौथाई रह जाय तब छानकर अधापुत्रा, वच, सौंफ, चन्दन, देवदारु, अगर, छड़ीला, तगर, कूट, इलायची, जटामांसी, अनन्तमूल, वरियारा, असगन्ध, सेंधानमक और रह-सन, इन सबको आधा आधा पल डालकर दो प्रस्थ वकरी या गायका दूध और एकप्रस्थ घी डालकर पकावे, जब पक चुके तब उतार लेइ इस तेलके लगानेसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरके वायुबिकार निकल जाते हैं, इसमें नपुंसक मनुष्य अवश्य ही पुरुष हो जाता है, इसके खानेसे खचड़ीको भी गर्भ रह जाता है, स्त्रियोंकी तो कथा ही क्या है ? हृदयशूल, पार्श्वशूल, आधाशीशी,

कामलां पाण्डुरोगञ्च अश्मरीञ्चैव नाशयेत् ॥१८७॥
तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्त्तितम् ।
विष्णुतैलमिदं ख्यातं वातान्तकरणं शुभम् ॥ १८८ ॥

इति मध्यमविष्णुतैलम् ।

मुस्तकं चाश्वगन्धा च जीवकर्षभकौ शटी ।
काकोली चीरकाकोली जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ १८९ ।
मधूरिका देवदारु पद्मकाष्ठञ्च शैलजम् ।
मांसी चैला त्वचं कुष्ठं वचा चन्दनकुङ्कुमम् ॥१९०॥
मञ्जिष्ठा मृगनाभिश्च श्वेतचन्दनरेणुक ।
पर्णिनी कुन्दखोटिश्च ग्रन्थिकञ्च न तथा ॥१९१॥
एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलस्यापि तथा म् ।
शतावरीरससमं दुग्धञ्चापि समं पचेत् ॥ १९२ ॥
विष्णुतैलमिदं श्रेष्ठं सर्ववातविकारनुत् ।
ऊर्द्ध्ववातं तथा वातमङ्गनिग्रहमेव च ॥ १९३ ॥

अपची, गण्डमाला, वातरक्त, कामला, पांडुरोग और अश्मरीरोग दूर हो जाते हैं, भगवान् विष्णुने इसका नाम मध्यविष्णु तैल लिखा है ॥ १७९—१८८ ॥

मोथा, असगन्ध, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, चीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहटी, रहसन, देवदारु, पद्माख, छाड़छड़ीला, जटामांसी, इलायची, तज, कूट, वच, चंदन, मांजिठ, कस्तूरी, सफेदचन्दन, रेणुका, केसर, माषपर्णी, कुन्दखोटी, चोरक और नख इन सबको एक एक पल लेकर डाले और शतावरका रस

शिरोमध्यगतं वातं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् ।
हन्ति नानाविधं वातं सन्धिमज्जगतं तथा ॥ १९४ ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ।
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदितः ॥ १९५ ॥
इति बृहद्विष्णुतैलम् ।

विल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभद्रकम् ।
प्रसारिण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥ १९६ ॥
वला चातिवला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्णवा ।
एषां दशपलान् भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥१९७॥
पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ १९८ ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्टयम् ।

प्राप्तवायु, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, सन्धिप्राप्त वायु, मज्जाप्राप्त वायु आदि वायुरोग और पित्तरोग इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य्य निकलनेसे अन्धकार। जिसका कोई एक शरीर सूख गया हो या गति चञ्चल हो गई हो उसके लिये यह तैल बहुत अच्छा है इसका नाम बृहद् विष्णुतैल है॥ १८९—१९५ ॥

बेल, अरनी, सोनापाढ़ा, पांडर, नींव, प्रसारिणी, असगन्ध, छोटी कटइली, बड़ी कटइली, वरियारा, कंघी, गोखुरू और गधापुना, इन सबको दश दश पल लेकर चारद्रोण पानी में पकावे, जब चौथाई रह जाय तब उतार कर छान लेय और तेल डाल कर सौंफ, देवदारु, जटामांसी, छरीला, वच, चंदन, तगर,

रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्णवम् ॥ १९९ ॥
एषां द्विपलिकान् भागान् पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ।
शतावरीरसञ्चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ २०० ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥ २०१ ॥
अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः ।
पङ्गुश्च पीठसर्पी च तैलेनानेन सिद्ध्यति ॥ २०२ ॥
अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ।
मन्यास्तम्भे हनुस्तम्भे दन्तरोगे गलग्रहे ॥ २०३ ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ।
क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ॥२०४॥

कूट, इलायची, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, रास्ना, असगन्ध, सेंधा और गधापुन्ना इनको दो दो पल लेकर कल्क बना कर तेलमें डाल देय और तेलके समान शतावर का रस डाल देइ तेलसे चौगुना बकरी या गायका दूध डाल कर पकावे, जब पक चुके तब उतार लेइ, इसे खाने, लगाने और वस्तिकर्म्म में देने से वायुविकार दूर होते हैं। जिस हाथी, घोड़े या मनुष्यका शरीर वायु से टूट गया हो, उसको ये तेल बहुत लाभदायक है। जो मनुष्य पंगु होय अथवा जिसकी कमर टेढ़ी हो गई होय वह भी इस तेलसे अच्छा होजाता है; मध्यशरीर, शिर और नीचेके शरीरका वायुभी निकल जाता है मन्यास्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह, अण्ड-वृद्धि, अन्त्रवृद्धि, बहरापन, नष्टजिह्व, और एकाङ्ग शोथ आदि वायुरोग दूर होजाते हैं। जिन मनुष्यों की इन्द्रियों का बल अथवा

बधिरा नष्टजिह्वाश्च मन्दमेधस एव च।
अल्पप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ॥२०५
वातार्त्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा।
एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं मतम् ॥ २०६ ॥

इति नारायणतैलम्।

बिल्वाश्वगन्धा बृहती श्वदंष्ट्रा
श्योनाकवाट्यालकपारिभद्रम्।
क्षुद्राकटन्नातिबलाग्निमन्थं
मूलानि चैषां सरणीयुतानाम् ॥ २०७ ॥
मूलं विदध्यादथ पाटलीनां
प्रस्थं प्रसादं विधिनोद्धृतानाम्।
द्रोणैरपामष्टभिरेव पक्त्वा
पादावशेषेण रसेन तेन ॥ २०८ ॥
तैलाढकाभ्यां सममेव दुग्ध-
माजं निदध्यादथवापि गव्यम्।

वीर्य्य नष्ट हो गया हो या जो ज्वरसे दुर्बल हों उनके लिये यह तेल बहुत लाभदायक है, इसका नाम नारायणतैल है ॥१९६—२०६

बेल, असगन्ध, कटहली, गोखुरू, सोनापाढ़ा, वाट्यालक, नींब, छोटी कटहली, कटसा, कंघी, अरनी की जड़, प्रसारणी और पाटला की जड़, इन सबको एकप्रस्थ लेकर आठद्रोण पानी में विधिपूर्वक पकावे, जब चौथाई रह जाय तब उसमें दो आढ़क तेल और दो आढ़क बकरी या गायका दूध तथा इतना ही शता-

एकत्र सम्यग्विपचेत् सुबुद्धि-

र्दद्यादूसञ्चैव शतावरीणाम् ॥ २०९ ॥

तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र

रास्नाश्वगन्धामिषिदारुकुष्ठम् ।

पर्णीचतुष्कागुरुकेशराणि

सिन्दूत्थमांसीरजनीद्वयञ्च ॥ २१० ॥

शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि

एलासयष्टीतगराब्दपत्रम् ।

भृङ्गाष्टवर्गाम्बुवचापलांशम् ॥ २११ ॥

स्थौणेयवृश्चीरकचोरकाख्यम् ।

एतैः समस्तैर्द्विपलप्रमाणै-

रालोड्य सर्वं विधिना विपक्वम् ॥२१२॥

(१)कर्पूरकाश्मीरमृगाण्डजानां

चूर्णीकृतानां त्रिपलप्रमाणाम् ।

वरका रस डालकर बुद्धिमान् वैद्य पकावे, पकते समय रास्ना, असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूट, शालिपर्णी, पृष्टपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, अगर, नागकेशर, सेंधानमक, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, छड़ीला, चन्दन, पुष्करमूल, इलायची, जेठीमधु, तगर, मोथा, तेजपात, भमिरा, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धी, वृद्धी, खस, गधापुना, चोरक और वच ये सब एक एक पल, स्थौणेय दो दो पल कल्क करके डाल देय और पकावे, किसी२ वैद्यका यह भी मत है कि इसमें

(१) कर्पूरादीनां मिलित्वा, त्रिपलं गन्धार्थं प्रक्षेपं केचिदिति कर्पूरादित्रयं न दीयते यथालाभञ्च दीयते इति चिकित्सामृते गोपालदासः ।

प्रस्वेददौर्गन्ध्यनिवारणाय
दद्यात् सुगन्धाय वदन्ति केचित् ॥२१३॥
नारायणं नाम महच्च तैलं
सर्वप्रकारैर्विधिवत् प्रयोज्यम् ।
आश्वेव पुंसां पवनार्दितानां-
मेकाङ्गहीनार्दितवेपनानाम् ॥२१४॥
ये पङ्गवः पीठविसर्पिणश्च
वाधीर्य्यशुक्रक्षयपीड़िताश्च ।
मन्याहनुस्तम्भशिरोरुजार्त्ताः
मुक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः ॥ २१५ ॥
संसेव्य तैलं सहसा भवन्ति
वन्ध्या च नारी लभते सुपुत्रम् ।
वीरोपमं सर्वगुणोपपन्नं
सुमेधसं श्रीविनयान्वितञ्च ॥ २१६ ॥

पसीना और दुर्गन्धि नाश करने के लिये तथा सुगन्धि बढ़ाने के लिये कपूर, केशर और कस्तूरी एक २ पल डाले, इस तेलसे वायुरोगसे पीड़ित, शरीर हीन, कांपते हुए, पंगु, बहिरे और वीर्य्यक्षय से पीड़ित रोगी शीघ्रही सुखी होजाते हैं, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, शिररोग, जिह्वा प्राप्त वायु, दांतोंमें स्थित वायु, शूल, उन्माद, ज्वर और कुबड़ापन आदि रोग दूर होजाते हैं । इसका सेवन करनेसे बन्ध्या स्त्री को महावीर, सब गुणोंसे भरा, बुद्धि,

शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते
वृद्धौ विधेयं पवनार्दितानाम्।
जिह्वानिले दन्तगते च शूले
उन्माद-कौब्ज-ज्वर-कर्षितानाम् ॥२१७॥
प्राप्नोति लक्ष्मीं प्रमदाप्रियत्वं
वपु:प्रकर्षं विजयञ्च नित्यम्।
तैलोपसेवी जरयाभिमुक्तो
जीवेच्चिरञ्चापि मनुष्यलोके ॥ २१८ ॥
देवासुरे युद्धवरे समीच्य
स्नाय्वस्थिभग्नानसुरैः सुरांश्च।
नारायणेनापि सुवृंहणार्थं
स्वनामतैलं विहितञ्च तेषाम् ॥ २१९ ॥

इति महानारायणतैलम्।

चन्दनाम्बुनखं वाप्ययष्टीशैलेयपद्मकम्।
मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्येलापूतिकेशरम् ॥ २२० ॥

लक्ष्मी और विनययुक्त पुत्र होता है। हाथ, पैर और पेटका वायु निकल जाता है, मनुष्य बहुत दिन तक लक्ष्मीमान्, बलवान् और तेजस्वी होकर जीता है, जब देवासुर युद्धमें राक्षसोंने देवतों की हड्डी और नाड़ी तोड़ दीं थीं, तब विष्णुने उनके, कल्याण के लिये यह तेल बनाया था, इसका नाम महानारायण तेल हैं ॥ २०७—२१९ ॥

चन्दन, खस, नख, हाऊबेर, जेठीमधु, छड़ीला, पद्माख,

पत्रं तैलं मुरा मांसी कक्कोलं वनिताम्बुदम्।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ २२१ ॥
त्वग्रेणुनालुका चैभिस्तैलं मस्तुचतुर्गुणम्।
लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ २२२ ॥
आयुःपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्।
अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् ॥ २२३ ॥

इति चन्दनाद्यं तैलम्।

शतावरीन्तु निष्पीड्य रसं प्रस्थद्वयं हरेत्।
तिलतैलं पचेत् प्रस्थं क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥ २२४ ॥
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं बला।
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती तथा ॥ २२५ ॥

मंजीठ, सरल, देवदारु, कचूर, नागकेशर, करंजुआ, तिल के पत्ते, मुरहर, जटामासी, शीतलचीनी, प्रियंगु, मोथा, हलदी, दारुहलदी, दोनों शरिवन, कुटकी, लौंग, अगर, केशर, तज, रेणुका और नलुका इन सबको तेल में डालकर पकावे, पकाते समय तेल के समान लाखका रस और चौगुना दहीका तोड़ डाल देय, इससे ग्रहरोग, अपस्मार, ज्वर, उन्माद और दरिद्र का नाश होजाता है, बल, तेज, आयु और पुष्टीकी वृद्धि होती है। इसका नाम चन्दनादि तेल है ॥ २२० ॥ २२३ ॥

शतावरको कूटकर दो प्रस्थ रस निकाले, फिर एक प्रस्थ तेल और चारप्रस्थ दूध डाल कर पकावे, उसमें सौंफ, देवदारु, जटामासी, छड़ीला, बरियारा, चन्दन, तगर, कूट, इलायची, शालपर्णी,

रास्ना तुरगगन्धा च समङ्गा शारिवाद्वयम्।
पृश्नीपर्णी वचा चैव तथा गन्धर्वहस्तकम्॥ २२६॥
सिन्धूद्भवं समं दद्यात् विश्वभेषजमेव च।
एभिस्तैलं पचेद्धीमान् दत्वार्द्रकरसं समम्॥ २२७॥
कुब्जा ये वामना ये च पङ्गुपादाश्च ये नराः।
महावातेन ये भग्ना अङ्गसङ्कुचिताश्च ये॥ २२८॥
तेषां हितमिदं तैलं सन्धिवाते च शस्यते।
येषां शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्येषाञ्च विह्वला॥ २२९॥
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः।
अमेधसश्च वधिरास्तेषामपि परं हितम्॥ २३०॥
मासमेकं पिबेद् यस्तु यौवनस्थः पुनर्भवेत्।
सिद्धार्थकमिति ख्यातं नरनारीहिताय वै॥ २३१॥

इति सिद्धार्थकतैलम्।

रासन, असगन्ध, मंजीठ, दोनों सरिवन, पृष्णपर्णी, वच, रेंड़ी, सेंधा और सोंठ, इन सबको समान लेकर कल्क बनाकर डाल देय और तेल के समान अदरक का रस डाल देय, जब पक चुके, तब उतार लेय, इस तेल से कुबड़े, पंगु और बौने अच्छे होजाते हैं, एक महीने में महापातक व्याधि दूर होजाती हैं, जिनका कोई शरीर सूखता हो, जो चल नहीं सक्ते होंय, जिनकी इन्द्री दुर्बल होगई होय, वीर्य्य सूख गया हो, बुढ़ापे से व्याकुल होय, बुद्धि नष्ट हो गई होय वे सब इस तेलका अभ्यास करने से एक ही महीने में अच्छे होजाते हैं, इस को पुरुष

शतावरीरसप्रस्थे तथा गोक्षुरकस्य च ।
नारिकेलरसप्रस्थे तिलतैलस्य प्रस्थतः ॥ २३२ ॥
कदल्याः स्वरसप्रस्थे क्षीरप्रस्थचतुष्टये ।
अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ २३३ ॥
चन्दनं तगरं वाप्यं मञ्जिष्ठा सरलागुरुः ।
मांसी मुरा च शैलेयं यष्टी दारु नखी शिवा ॥२३४॥
पूतिका पीतिका पत्रं कुन्दरु नलिका तथा ।
वरी लोध्रं तथा मुस्तं त्वगेलापत्रकेशरम् ॥ २३५ ॥
लवङ्गं जातिकोषञ्च तथा मधुरिका शटी ।
चन्दनं ग्रन्थिपर्णञ्च कर्पूरं लाभतः क्षिपेत् ॥ २३६ ॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्य्यमतःपरम् ।

और स्त्री सब लगा सक्ते हैं इस का नाम सिद्धार्थक तैल है ॥ २२४ ॥ २३१ ॥

शतावर का रस एकप्रस्थ, गोखुरका रस एकप्रस्थ, नरियल का रस एकप्रस्थ, तिलका तेल एकप्रस्थ, केलेका रस एकप्रस्थ, दूध चार प्रस्थ इन सब को एक में मिलाकर पकावे, पकाते समय चन्दन, तगर, सुगन्धवाला, मंजीठ, सरल वृक्ष, अगर, जटामांसी, मुरहर, छरीला, जेठीमधु, देवदारु, नखी, हर्रं, गन्धविदारी, हलदी, तेजपात, कुन्दरु, नलिका, शतावर, लोध, मोथा, तज, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, जावित्री, मुरहर, जेठीमधु, चन्दन, चोरक, और कपूर इन में जो जो औषध मिले, इन सब को एक एक कर्ष लेकर डाल देय,

उच्चैः प्रपततोश्चायोर्गजतोवाजिनस्तथा ॥ २३७ ॥
उष्ट्रतो लोष्टपाताञ्च पङ्गूनां पीठसर्पिणाम् ।
एकाङ्गशोषिणाञ्चैव तथा सर्वाङ्गशोषिणाम् ॥२३८॥
क्षतानां क्षीणशुक्राणामत्यन्तक्षयरोगिणाम् ।
हनुमन्याहतानाञ्च दुर्बलानां तथैव च ॥ २३९ ॥
शोषिणां नग्नजिह्वानां तथा मिन्मिनभाषिणाम् ।
अत्यन्तदाहयुक्तानां क्षीणानां वातरोगिणाम् ॥२४०॥
एतत्तैलं परं श्रेष्ठं विष्णुना परिकीर्त्तितम् ।
हिमसागरमाख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ २४१ ॥
ये वातप्रभावा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
शिरोमध्यगता ये च शाखामाश्रित्य ये स्थिताः ॥२४२
ते सर्वे प्रशमं यान्ति तैलस्यास्य प्रसादतः ।

इति हिमसागरतैलम् ।

वाट्यालकं पलशतं तत्समं दशमूलकम् ।
जलषोड़शिके पक्वा पादशेषं समुद्धरेत् ॥ २४३ ॥

जब पक चुके, तब उतार लेय, इससे हाथी, घोड़े अथवा ऊंट पर से गिरने से जो शरीर टूट जाय सो अच्छा होजाता है, एकाङ्ग शोष, सर्वाङ्ग शोष, घाव, वीर्य्यक्षय, क्षयरोग, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, दुर्बलता, शोष, नग्नजिह्व, मिन्मिनता, अत्यन्त दाह, वायुरोग, पित्तरोग, शिरोरोग, शाखावायु इस तेल से दूर होजाते हैं इसका नाम हिमसागर तैल हैं ॥ २३२ ॥ २४२ ॥

वाट्यालक सौ पल और दशमूल सौ पल इन दोनों

एतत् क्वाथे पचेत्तैलं द्वात्रिंशत्पलमेव च।
कल्कार्थं दीयते तत्र मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥२४४॥
कुष्ठमेला देवदारु शैलजं सैन्धवं वचा।
कक्कोलं पद्मकाष्ठञ्च शृङ्गी तगरपादिका ॥ २४५ ॥
गुडूची मुद्गपर्णी च माषपर्णी शतावरी।
नगजिह्वा श्यामलता शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ २४६ ॥
एषां तोलद्वयं भागं दत्वा तैलन्तु पाचयेत्।
एतत्तैलवरं नाम्ना वायुच्छायासुरेन्द्रकम् ॥ २४७ ॥
सर्ववातविकारेषु हितं पुंसाञ्च योषिताम्।
हीनशुक्राल्पवानाञ्च नारीणाञ्च विशेषत: ॥ २४८ ॥
स्रोतोविकारं हन्त्याशु वायुमाक्षेपसम्भवम्।
मर्मवातं श्रमकृतं गात्रकम्पादिकं तथा ॥ २४९ ॥
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च वातपित्तसमुद्भवम्।

को सोलह गुणे पानी में पकावे, जब पकते २ चौथाई रहजाय तब उतार कर छान लेय, फिर उस काढ़े में बत्तीस पल तिल का तेल डाले, और मंजीठ, लालचन्दन, कूट, इलायची, देवदारु, छरीला, सेन्धानमक, बच, शीतलचीनी, पद्माख, काकड़ासिंगी, तगर, गुरुच, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतावर, नगजिह्वा, नीलनी, सौंफ, और गधापुन्ना, इन सबको एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर तेल में डालकर पकावे, इस से स्त्री और पुरुषों को सब प्रकारके वातरोग, मर्ममें उत्पन्न हुए रोग, परिश्रमसे उत्पन्न हुये रोग, शरीर कम्प आदि रोग, हुचकी, खांसी,

अपस्मारे महोन्मादे हितं लेपे च भक्षणे ।
श्रीमद्गहननाथेन रचितं विश्वसम्पदे ॥ २५० ॥

इति वायुच्छायासुरेन्द्रतैलम् ।

माषस्यार्द्धाढ़कं देयं दशमूल्यास्तुलार्द्धकम् ।
बलामूलञ्च तस्यार्द्धं केतकीनां तथैव च ॥ २५१ ॥
दक्षमांसं पलं त्रिंशत् झिण्टिका पञ्चविंशतिः ।
जलद्रोणद्वये पक्वा पादशेषेऽवतारिते ॥ २५२ ॥
तिलतैलस्य च प्रस्थं पयो दत्वा चतुर्गुणम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ मञ्जिष्ठा चव्यकट्फलम् ॥२५३॥
व्याघ्री रास्ना कणामूलं मधुकं पुष्करं तथा ।
माषात्मगुप्ता सैरण्डा शताह्वा लवणत्रयम् ॥ २५४ ॥

सांस, वातपित्त से उत्पन्न हुये रोग, अपस्मार, ...रो उन्माद रोग दूर होजाते हैं। यह तेल खाने व ल...न में श्रेष्ठ है श्रीमान् गहनानन्द नाथने जगत् के कल्याण के लिये इसका नाम वायु छाया सुरेन्द्र तेल लिखा है ॥ २४३—२५० ॥

उड़द आधा आढक, दशमूल आधा तुला (५० पल) वरियारेकी जड़, दशमूल से आधी, केतकी जड़, वरियारे की जड़ के समान, मुर्गेका मांस बत्तीस पल, झिंटिक पचीसपल, इन सबको एकद्रोण पानी में डालकर पकावे, जब चौथाई रह जाय, उतार के छान लेय, फिर उस में एक प्रस्थ तिलका तेल, चार प्रस्थ दूध, जीवनीय वर्ग अर्थात् काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धी और वृद्धी, मंजीठ, चाभ, कायफल, कूट, रहसन पिपलामूल, जेठीमधु, पुष्करमूल, उड़द, कमाच, अरण्ड, सौंफ, तीनों

कृष्णाश्वगन्धा ह्यमृता यमानीन्दीवरा शटी।
नागरं मागधी मुस्तं वर्षाभू रजनीद्वयम्॥ २५५॥
शतावरी बृहत्यौ च एतैरक्षसमन्वितैः।
पक्षाघातेषु सर्वेषु अर्दिते च हनुग्रहे॥ २५६॥
मन्दस्मृतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे शिरोग्रहे॥ २५७॥
शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपबाहुके।
बाधिर्य्ये कर्णनादे च सर्ववातविकारनुत्॥ २५८॥
दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे विशेषतः।
हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात् सूतिकातङ्कनाशनम्॥२५९॥
त्वच्यं मांसप्रदञ्चैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम्।
अण्डवृद्ध्यान्त्रवृद्धिं वा वातरक्तञ्च नाशयेत्॥ २६०॥

इति महाकुक्कुटमांसतैलम्।

नमक, पीपल, असगन्ध, गुरिच, अजवाइन, इन्दीवरा, कचूर, सोंठ, पीपल, मोथा सफेद गदापुना, हलदी, दारुहलदी, शतावर और दोनों कटहली, इन सबको एक२ अक्ष कल्क बनाकर डाल दे और तेल पकावे, जब पक जाय, तब उतार लेय, इस तेलसे पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ, बधिरता, मन्दबुद्धिता, तीनो दोषोंसे उत्पन्न हुआ हस्तकम्प, शिरःकम्प, गात्रकम्प, शिरोग्रह, कलायखञ्ज, गृध्रसी, अपबाहुक, कर्णनाद, दण्डापतानक, और सूतिका रोग दूर हो जाते हैं, त्वचा, मांस, वीर्य्य, अग्नि और बल बहुत बढ़ जाते हैं। अन्त्रवृद्धि, अण्डवृद्धि और वातरक्त रोग, दूर होजाते हैं इसका नाम महाकुक्कुट मांस तेल हैं॥ २५२—२६०॥

मधुकं जीरकं रास्ना सैन्धवं शतपुष्पिका ।
यमानी मरिचं कुष्ठं विडङ्गं गजपिप्पली ॥ २६१ ॥
सौवर्चलञ्चाजमोदा बला षड्ग्रन्थिका तथा ।
ग्रन्थिकं शैलजं मांसी कर्षमेषां पृथक् पृथक् ॥२६२॥
विलीय पाचयेत्तैलं प्रस्थं रुवुकसम्भवम् ।
प्रस्थे नकुलमांसस्य क्वाथे च दशमूलजे ॥ २६३ ॥
प्रस्थे च काञ्जिकस्यापि मस्तुप्रस्थे तथैव च ।
सिद्धं तैलमिदं हन्ति कम्पवातं सुदारुणम् ॥ २६४ ॥
हस्तकम्पं शिरःकम्पं बाहुकम्पञ्च नाशयेत् ।
आमवातं सशूलञ्च सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ २६५ ॥
पानाभ्यञ्जनवस्तीभिर्नाशयेन्नात्र संशयः ।
आढ्यवातं कटीपृष्ठजानुजङ्घाश्रितं तथा ॥ २६६ ॥
सन्धिस्थं वातमाश्वेव जयेन्नकुलसंज्ञकम् ।
हारीतभाषितमिदं तैलं हितचिकीर्षया ॥ २६७ ॥
वैद्यानां सारभूतानां शतेनापि समुज्झितम् ।

जेठीमधु, जीरा, रास्ना, सेंधा, सौंफ, अजमाइन, मिर्च, कूट, विड़ङ्ग, गजपीपल, सौंचल, अजमोदा, वरियारा, पिपलामूल, चोरक छड़ीला, जटामासी इन सबको एक एक कर्ष डालकर एकप्रस्थ तेल अरंडका एकप्रस्थ नौलके मांसका काढ़ा, एकप्रस्थ दशमूलका काढ़ा, एकप्रस्थ कांजी, और एकप्रस्थ दही के तोड़ में मिला कर पकावे, इस तेल से हस्तकम्प, शिर कांपना, वायुकम्प, आमवात, सब उपद्रव सहित शूल, आढ्यवात, कमर, पीठ, जांघ और सन्धि में प्राप्त

वातव्याधिं निहन्त्याशु कम्पवातं विशेषतः ॥ २६८॥
अशीतिं वातजान्रोगान्नाशयेदाशु देहिनाम् ॥२६९॥

इति नकुलतैलम् ।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारी-
गोकण्टटुण्टकजटाकपिकच्छुतोयैः ।
कार्पासकास्थिशणवीजकुलत्थकोल-
क्वाथेन वस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥ २७० ॥
शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पाया च
सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरण्या ।
रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं
माषाख्यमेतदपबाहुहरञ्च तैलम् ॥ २७१ ॥
अर्द्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवात-
माक्षेपकं सभुजकम्पशिरःप्रकम्पम् ।

वायु तथा कम्प आदि अस्सी प्रकार के वातरोग शीघ्र नष्ट होजाते हैं, इसे खाने, लगाने और वस्तिकर्म्म में देय, इस उत्तम तैल का नाम हारीत मुनिने नकुल तैल रक्खा है ॥ २६१—२६९ ॥

उड़द, अलसी, इन्द्रयव, कुरैया की छाल, कटहली, गोखरू, टंटुक की जड़, कमाचके वीज, विनौलेकी मिंगी, सनके बीज, और वेर के काढ़े तथा वकरे के मांस के रस में डालकर सोंठ, पीपल, सौंफ, अरण्डकी जड़, गधापुना, प्रसारणी, रास्न, वरियारा, गुरुच और चिरायता, डालकर तैल पकावै इससे अपबाहुक, अर्द्धाङ्ग शोष, अपतानक, आढ्यवात, आक्षेप, भुजकम्प और शिरःकम्प रोग दूर होजाते हैं इसे सूंघने, शरीर में लगाने और वस्तिकर्म में प्रयोग

नस्येन वस्ति विधिना परिसेचनेन
हन्यात्कटीजघनजानुरुजं समीरान् ॥ २७२ ॥
इति माषतैलम् ।

माषप्रस्थं समावाप्य पचेत् सम्यग् जलाढ़के ।
पादशेषे रसे तस्मिन् क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २७३ ॥
प्रस्थञ्च तिलतैलस्य कल्कं दत्वाक्षसंमितम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् ॥२७४॥
रास्नात्मगुप्ता मधुकं वलाव्योषत्रिकण्टकम् ।
पक्षाघातार्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ २७५ ॥
मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वाच्यामपबाहुके ॥ २७६ ॥
शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्द्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ७७ ॥
इति माषतैलम् ।

करने से जङ्घा, कमर और पिण्डुलियों में उत्पन्न हुवे रोग दूर हो जाते हैं इसका नाम माषतैल है ॥ २७०—२७२ ॥

एकप्रस्थ उड़द, लेकर एक आढक पानी में पकावे जब चौथाई रह जाय, तब उतार कर छानले, फिर उससे चौगुना दूध एकप्रस्थ तिलका तेल, अष्टकवर्ग, सौंफ, सेन्धा, रहसन, कमाच, जेठी मधु, वरियारा, त्रिकुटा, और गोखरू इन सब को एक २ अक्ष लेकर के तेलमें डालदेय और पकावे, इस तेलसे पक्षाघात, अर्दित, भयानक कर्णशूल, कम सुनना, बहिरापन, तीनों दोषों से उत्पन्न हुवा तिमिर, हस्तकम्प, शिरःकम्प, विश्वाची, अपबाहुक, विशूची,

माषक्काथे बलाक्काथे रास्नाया दशमूलजे ।
यवकोलकुलत्थानां छागमांसभवे पृथक् ॥ २७८ ॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं चीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥२७९॥
रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकः ।
जीवनीयबलाव्योषैः पचेदचसमैर्भिषक् ॥ २८० ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽपबाहुके ।
वाधिर्य्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दारुणे ॥ २८१ ॥
विश्वाच्यामर्दिते कुब्जे गृध्रस्यामपतानके ।
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु लावणे च प्रयोजयेत् ॥ २८२ ॥
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्द्ध्वजत्रुगदापहम् ।
क्काथप्रस्थाः षडेवात्र विभक्त्यन्तेन दर्शिताः ॥२८३॥

इति बृहन्माषतैलम् ।

कलायखञ्ज और कण्ठमें उत्पन्न हुवे रोग दूर होजाते हैं इसे खाने, लगाने और वस्तिकर्म मे देना चाहिये इस का नाम भी माष तैल है ॥ २७३—२७७ ॥

उड़दका काढ़ा, वरियारे का काढ़ा, रास्ना का काढ़ा, दश-मूलका काढ़ा, इन्द्रजवका काढ़ा, वेरोंका काढ़ा, कुलथीका काढ़ा, और बकरे के मांसका रस इन सबको अलग २ एक एक प्रस्थ लेकर चौगुना दूध डालकर एक प्रस्थ तेल पकावे पकाते समय रासन, कमाच, सिन्धानमक, सौंफ, अरण्ड, मोथा, पहिले लिखा जीवनीय-गण, वरियारा, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन सबको एक २ अक्ष लेकर कल्क बना कर डाल देय ; इस तेल से हस्तकम्प, शिरःकम्प, बाहु-शोष, अपबाहुक, वाधिर्य्य, कर्णशूल, भयानक कर्णनाद, विश्वाची,

माषस्यार्द्धाढ़कं दत्वा तुलार्द्धं दशमूलतः ।
पलानि छागमांसस्य त्रिंशद् द्रोणेऽम्भसः पचेत् २८४
पूतशीते कषाये च चतुर्थांशावशेषिते ।
प्रस्थञ्च तिलतैलस्य पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २८५ ॥
आत्मगुप्ता रुवूकञ्च शताह्वा लवणत्रयम् ।
जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम् ॥२८६॥
सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्ना मधुकसैन्धवम् ।
देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगन्धा वचा शटी ॥२८७॥
एतैरक्षसमैर्भागैः साधयेन्मृदुनाग्निना ।
पक्षाघातेऽर्दिते वाते वाधिर्य्ये हनुसंग्रहे ॥२८८॥
कर्णमन्याशिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे ।

अर्दित, कुब्ज, गृध्रसी, अपतानक और कण्ठ से ऊपर के रोग दूर होजाते हैं इसे खाने, लगाने और पिचकारी में देय इसका नाम महामाष तेल है ॥ २७८—२८३ ॥

उड़द आधा आढक, दशमूल एक तुला, बकरे का मांस तीस पल इन सब को एकद्रोण पानी में पकावे, जब चौथाई रहजाय, तब उतार कर छान लेइ । उस रस में एक प्रस्थ तिल का तेल, चार प्रस्थ दूध, कमाच, अरण्ड, सौंफ, तीनों नमक, जीवनीयगण, मंजीठ, चाभ, चीता, कायफल, त्रिकुटा, पिपरा-मूल, रायसन, जेठीमधु, सेन्धा, देवदारु, गुरिच, कुट, असगन्ध, वच, और कचूर इन सब को एक एक अक्ष लेकर के तेल में डालकर मन्द मन्द अग्नि से तेल पकावे, इस से पक्षाघात, अर्दित, वाधिर्य्य, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्याशूल, शिरःशूल, त्रिदो-

पाणिपादे शिरोग्रीवा भ्रमणे मन्दचंक्रमे ॥ २८९ ॥
कलायखञ्जे पाङ्गुल्ये गृध्रस्यामपबाहुके ।
पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥ २९० ॥
तैलमेतत् प्रशसन्ति सर्ववातरुजापहम् ॥ २९१ ॥
इति महामिषमाषतैलम् ।

दशमूलाढ़कं पक्त्वा जलद्रोणेऽंघ्रिशेषिते ॥ २९२ ॥
तद्वन्माषाढ़कक्काथे तैलप्रस्थं पय:समम् ।
कल्कैरेतैश्च मतिमान् साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ २९३ ॥
अश्वगन्धा शटी दारु बला रास्ना प्रसारिणी ॥२९४॥
कुष्ठं परुषकं भार्गी द्वे विदार्य्यौ पुनर्नवा ।
मातुलुङ्गफलाजाज्यौ रामठं शतपुष्पिका ॥ २९५ ॥
शतावरी गोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।

इससे उत्पन्न हुवा तिमिर, हस्तकम्प, चरणकंप, शिर:कंप, मन्द-गति, कलायखञ्ज, पंगुता, गृध्रसी और अपवाहुक, आदि सब वायु रोग दूर होजाते हैं इसे पीने, सूंघने, लगाने, पिचकारी और कान में डालने को देय इसका नाम महामिषमास तैल है ॥ २८४—२९१ ॥

एक आढ़क दशमूल को एक द्रोण पानी में पकावे, जब चौथाई रहजाय, तब उतार कर छान लेय ; इसी प्रकार एक आढ़क उड़दोंका काढ़ा भी बनावे, इन दोनों काढ़ों में एकप्रस्थ तिलकातैल, एक प्रस्थ दूध, असगन्ध, कचूर, देवदारु,बरियारा, रायसन, गन्ध प्रसारणी, कूट, फालसा, बमनेटी, दोनों विदारी,

जीवनीयगणं सर्वं संहृत्यैवससैन्धवम् ॥ २९६ ॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय माषतैलमिदं महत् ।
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु लावणेषु प्रशस्यते ॥ २९७ ॥
पक्षाघाते हनुस्तम्भे अर्दिते सापतन्त्रके ।
अपबाहुकविश्वाच्योः खञ्जपाङ्गुल्ययोरपि ॥ २९८ ॥
शिरोमन्याग्रहे चैव अधिमन्थे च वातिके ।
शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णक्ष्वेड़े च दारुणे ॥ २९९ ॥
कलायखञ्जशमनं भैषज्यमिदमादिशेत् ॥ ३०० ॥

इति निरामिषमहामाषतैलम् ।

प्रसारणीशतं क्षुणं पचेत्तोयार्मणे शुभे ।
पादशेषे समं तैलं दधि दद्यात् सकाञ्जिकम् ॥३०१॥
द्विगुणञ्च पयो दत्वा कल्कान् द्विपलिकांस्तथा ।

गधापुन्ना, बिजौरा, जीरा, हींग, सौंफ, शतावर, गोखरू, पिपरामूल, चीता, जीवनीगण और सेन्धानमक इन सब का कल्क बना कर बुद्धिमान वैद्य मन्द मन्द आगि में पकावे, जब पक चुके तब पिचकारी, सूंघने, पीने और शरीर में लगाने को देय, इससे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक, अपबाहुक, बिश्वाची, खञ्ज, पंगुलता, शिरस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, वाताधिमन्थ, वीर्यक्षय, कर्णनाद, भयानक कर्णक्ष्वेड़, कलायखञ्ज, रोग दूर हो जाते हैं इसका नाम निरामिष महामाष तेल है ॥२९२॥३००॥

सौपल प्रसारिणी कूट कर एक द्रोण पानी में पकावे, जब चौथाई रहजाय, तब उतार कर छान लेय, उस रस में उस के

चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं बलाम् ॥३०२॥
शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारणपिप्पलीम्।
प्रसारण्याश्च मूलानि मांसी भल्लातकानि च ॥ ३०३॥
पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत्।
अशीतिं नरनारीणां वातरोगान् व्यपोहति ॥३०४
कुब्जा स्तिमितपङ्गुत्वं गृध्रसी खुड्कार्दितम्।
हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं चाशु नियच्छति ॥३०५॥

इति कुब्जप्रसारणीतैलम्।

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारिणीम्।
शतं ग्राह्यं सहचरात् शतावर्य्याः शतं तथा ॥३०६॥
बलात्मगुप्ताश्वगन्धा केतकीनां शतं शतम्।

समान तिलका तेल, दही और द्विगुना कांजी डालकर पकावे, पकाते समय चीता, पीपलामूल, जेठीमधु, सैन्धा, वरियारा, सौंफ, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, प्रसारणी की जड़, जटामासी और भिलावा इन सबको दो२ पल कल्क बनाकर डाले और मन्द २ अग्नि में पकावे, इस से कफ के रोग स्त्री और पुरुषों को हुए, कुब्ज, तिमिर, पंगुता, गृध्रसी, खुड्क, अर्दित, हनुस्तम्भ, पृष्टस्तम्भ और ग्रीवास्तम्भ आदि अस्सीप्रकार के वायुरोग दूर होजाते हैं इसका नाम कुब्जप्रसारिणी तेल हैं ॥३०१॥३०५॥

शरद ऋतुमें जड़ और पत्ते समेत प्रसारिणी उखाड़कर लावे, उसमेंसे सौपल लेय, सहचर सौपल, शतावर सौपल, वरियारा सौपल, कमाच सौपल, असगन्ध सौपल और केतकी सौपल,

पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवै(१)स्तैलाढ़कं विपक् ॥ ३०७ ॥
मस्तु मांसरसं चुक्रं पयश्चाढ़कमाढ़कम् ।
दध्याढ़कसमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ३०८ ॥
द्रव्याणान्तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलांशिका ।
तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम् ॥ ३०९ ॥
रास्ना सैन्धवपिप्पल्यौ मांसीमञ्जिष्ठयष्टिकाः ।
तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ॥ ३१० ॥
शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च ।
काकोली चीरकाकोली वचा भल्लातकं तथा ॥३११॥
पेषयित्वा समानेतान् साधनीया प्रसारिणी ।
नातिपक्कं न हीनञ्च सिद्धं पूतं निधापयेत् ॥३१२॥
दत्र यत्र प्रदातव्या तन्मे निगदतः शृणु ।

इन सब को कूट कर चौगुने पानी में पकावे, जब चौथाई रहजाय, तब उतार कर छान लेय, फिर एक आढ़क तेल, एक आढक दही का तोड़, एक आढक मांस का रस, एक आढ़क चुक्र, (कांजीभेद) एक आढ़क दूध और एक आढ़क दही डाले, उसी समय तगर, मैंनफल, कूट, नागकेशर, मोथा, तज, रासन, सेन्धा, पीपल, जटामासी, मंजीठ, जेठीमधु, मेदा, महा-मेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नख, सोंठ, देवदारु, काकोली, चीरकाकोली, भेलावा, वच, इन को आधा २ पल लेकर तेल में डाले और मन्द २ अग्नि में पकावे, बहुत न पकने पावे

(१) पूर्वोक्तप्रसारण्यादिकषाये: ।

कुब्जानामथ पङ्गूनां वामनानां तथैव च ॥ ३१३ ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः ॥३१४॥
वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् ।
स्त्रीमद्यक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३१५॥
वस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत् ।
प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान् विविधान् गदान् ॥३१६

इति सप्तशतिकाप्रसारिणीतैलम् ।

शाखा-मूल-दलैः प्रसारणितुलास्तिस्रः कुरण्टीतुले
छिन्नायाश्च तुले तुले रुबुकतोरास्नाशिरोषात्तुला (१) ।
देवाह्वाच्च सकेतकाद् घटशते निःक्वाथ्य कुम्भांशिके ।
तोये तैलघटं तुषाम्बुकलसौ दत्वाढकं मस्तुनः ॥२१७

और न कच्चा रहने पावें, तब उतार लेय, इस से कुब्ज, पांगु, वामन और धातरक्त आदि रोग अच्छे होजाते हैं।

जिसका एक शरीर सूख गया हो, जिसका चित्त वायु से नष्ट हो गया होय, जिस का वीर्य्य अधिक स्त्री प्रसङ्ग और अधिक मद्य पीने से नष्ट हो गया हो उन के लिये यह तैल बहुत अच्छा है, इसे सूंघने, लगाने और वस्तिकर्म में देय, इस से अनेक प्रकारके रोग नष्ट होजाते हैं इसका नाम सप्तशतिका गन्धप्रसारिणी तैल है ॥ ३०६ ॥ ३१६ ॥

शाखा जड़ और पत्ते सहित, प्रसारिणी तीनतुला, कुरइया दो तुला, गुरिच दो तुला, अरण्ड दो तुला, रासन एक तुला, सिरष एक तुला, देवदारु आधा तुला, केतकी आधातुला

(१) रास्नातुला शिरीषतुला च ।

शुक्ताच्छागरसात्तुलेऽचरसतः चीराच्च दत्वाढकम्।
पृक्का कर्कटजीवकाद्य विकषा काकोलिका कच्छुरा।
सूक्ष्मैला घनसारकन्टुकवलाकाश्मीरपुष्पैर्नखैः।
कालीयोत्पलपद्मकाह्वयनिशाकक्कोलकग्रन्थिकैः॥३१८
चाम्पेयाभयचोचपूगकटुकाजातीफलाभीरुभिः।
श्रीवासामयदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः॥
तैलाह्वीदकटुम्भराङ्घ्रिनलिकाहृस्वीरकैश्चोरकैः।
कस्तुरीदशमूलकेतकनतध्यामाश्वगन्धाम्बुभिः॥३१९॥
कौन्तीनागरसांशुगजवीफलानन्दुग्धानागरनागरक्पैः।
भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवङ्गान्वितैः॥
व्योषैर्भिन्नैर्मितैरिमि पचेन्मन्देन पावकेऽग्निना।

इन सबको सौ द्रोण पानीमें पकाकर काढ़ा बनावे, जब चौथाई रहजाय तब उतार लेय फिर एकद्रोण घी, एकद्रोण तैल, दो द्रोण तुषोदक, दो द्रोण मट्ठा, दो द्रोण शुक्त, दो द्रोण वकरे के मांसका रस, दो द्रोण ईखका रस और एक आढक दूध, डालकर पकावे, उसी समय (पक्का पूरनामक गन्धद्रव्य) काकटजीविका, मंजीठ, शुकशिम्बी, काकोली, कच्छुरा, छोटीइलायची, कपूर, वरियारा, केशर, नख, अगर, कमल, पद्माख, हलदी, शीतलचीनी, चोरक, नागकेशर, हर्र, चोक, सुपारी, कुटकी जायफल प्रियङ्गु, कस्तूरी, दशमूल, केतकी, तगर, ध्यान, (गन्ध तृण) असगन्ध, खस, रेणुका, रसौत, सलैकेफल, छोटीपीपल, सौंफ, कूट, भेलावां, हर्र, बहेड़ा, आमला, कमलकेशर, महाश्यामा, लौंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन सबको तीन २ पल लेकर कल्क बनाकर

पानाभ्यञ्जनवस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत् ३२०
सर्वाङ्गैकाङ्गगतं तथाऽवयवगं सन्ध्यस्थिमज्जागतम् ।
श्लेष्मोत्थानथ पैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधिनामयान् ३२१
धातून् बृंहयति स्थिरञ्च कुरुते पुंसां नवं यौवनम् ।
वृद्धस्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भप्रदम् ॥
पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं सूतेऽमुना भूरुहाः ।
सिक्ताः शोषमुपागताश्च फलिनः स्निग्धा भवन्ति स्थिराः
भग्नाङ्गाः सुदृढ़ा भवन्ति मनुजा गावो हयाः कुञ्जराः
॥ ३२२ ॥

इति एकादशशतिकमहाप्रसारणीतैलम् ।

समूलदलशाखायाः प्रसारिण्याः शतत्रयम् ।
शतमेकं शतावर्य्या अश्वगन्धाशतं तथा ॥ ३२३ ॥
केतकीनां शतञ्चैकं दशमूलाच्छतं शतम् ।

कूट, देवदारु, चन्दन, वच, छड़ीला, सेंधानोन, कटुभरा, नलिका, सफेदगधापुन्ना, चोरक डाल देय और मन्द२ अग्निमें पकावे, जब पक जाय, तब रोगीको पीने, लगाने, सूंघने और पिचकारीमें देय, इससे सर्वाङ्गवात, एकाङ्गवात, अर्धाङ्गवात, सन्धि, त्वचा और मज्जामें प्राप्त वात, कफ और पित्तसे उत्पन्न हुवे, अनेक प्रकारके रोग दूर होजाते हैं, धातुस्थिर होजाती है, बूढ़ा मनुष्य बलवान तरुण हो जाता है, बन्ध्या स्त्रीको पुत्र होता है, इस तेलको पीनेसे बुढ़ियाके भी पुत्र होता है, इससे सींचने से सूखा वृक्ष हरा भफलयुक्त और स्थिर होजाते हैं, शरीर टूटे मनुष्य तथा पशु बलवान और अच्छे होजाते हैं इसका नाम एकादशशतिका महाप्रसारिणी तैल हैं ॥ ३१७—३२२॥

जड़, पत्ते और शाखा सहित प्रसारिणी तीन सौपल, शतावर

वाट्यालकस्यापि शतं शतं सहचरस्य च ॥ ३२४ ॥
जल-द्रोण-शतं दत्वा शतभागावशेषितम् ।
ततस्तेन कषायेण कषायद्विगुणेन च ॥ ३२५ ॥
सुव्यक्तेनारनालेन दधिमस्त्वाढ़केन च ।
क्षीरशुक्तेक्षुनिर्य्यासच्छागमांसरसाढ़कैः ॥ ३२६ ॥
तैलद्रोणं समायुक्तं दृढ़े पात्रे निधापयेत् ।
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम् ॥३२७
भल्लातकं नतं शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शटी ।
वचा पृक्का प्रसारिण्याः पिप्पल्यामूलमेव च ॥ ३२८॥
देवदारु शताह्वा च सूक्ष्मैला त्वचवालकम् ।
कुङ्कुमं मदमञ्जिष्ठातुरष्कं नखिकागुरु ॥ ३१९ ॥
कर्पूरकुन्दरुनिशालवङ्गं ध्यामचन्दनम् ।
कक्कोलं नलिका मुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम् ॥ ३३०॥

सौपल, असगन्ध सौपल, केतकी सौपल, दशमूल सौपल, वाट्या-लक सौपल और कुरैया सौपल, इन सब को कूटकर सौ द्रोण पानी में पकावे, जब पकते २ एकद्रोण पानी रहजाय, तब उतार कर छान लें, फिर उस काढ़े में उस से द्विगुनी कांजी, दही, मट्ठा, दूध और एक आढ़क बकरे के मांस का रस डाले, पश्चात् एक द्रोण तेल डाल कर दृढ़ कड़ाही में भर कर भेलावां, तगर, सोंठ, पीपल, चीता, कचूर, वच, पृक्का, प्रसारिणी की जड़, पिप-रामूल, देवदारु, सौंफ, छोटी इलायची, तज, सुगन्धवाला, केशर, कस्तूरी, मंजीठ, तुरुष्क, नख, अगर, कपूर, कुन्दरू, हलदी, लौंग, गन्धतृण, चन्दन, शीतल चीनी, नलिका, मोथा, अतगर, कमल, तेज-

शटीहरेणुशैलेयश्रीवासञ्च सकेतकम्।
त्रिफला कच्छुरा भीरु सरलं पद्मकेशरम् ॥ ३३१ ॥
प्रियङ्गूशीरनलदं वीरकाद्यं पुनर्नवा।
दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम् ॥ ३३२ ॥
कटुकाजातिपूगानां फलानि शल्लकीरसम्।
भागान् त्रिपलिकान् दत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥३३३॥
विस्तीर्णे सुदृढ़े पात्रे पाक्यैषा तु प्रसारिणी।
प्रयोगः षड्विधश्वासरोगार्त्तानां विधीयते ॥३३४॥
अभ्यङ्गात्त्वग्गतं हन्ति पानात् कोष्ठगतं तथा।
भोजनात् सूक्ष्मनाड़ीस्थन्नस्यादूर्द्धगतं तथा ॥३३५॥
पक्काशयगते वस्तिर्निरुहः सर्वगात्रिके।
एतद्विवाड़वाश्वानां केशोराणां यथा मतम् ॥३३६॥
एतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि।

पात, कचूर, रेणुका, छड़ीला, राल, केतकी, हर्र, बहेरा, आमला, शुक्रशिंबी, प्रियंगु, सरल, कमल की केशर, प्रियंगु, खस, नेत्रवाला, वीरकादिगण, गधापुन्ना, दशमूल, असगन्ध, नागपुष्प, रसौत, कुटकी, चमेली, सुपारी और सलई, इन सब को तीन २ पल लेकर मिला देय, फिर बड़े और दृढ़ कड़ाह में भर कर आग पर चढा देय और धीरे २ पकावे, जब पक चुके तब उतार लेय इस के खाने से छः प्रकार के सांस रोग, लगाने से त्वचा के सब रोग, खाने से पेट के भीतर के सब बिकार, सूक्ष्म नाड़ियों के भीतर के रोग ऊपर के सबरोग, पिचकारी लेने से पक्काशय के सबरोग, सब शरीर के रोग दूर होजाते हैं, इस तैलसे घोड़ी, घोड़े, मनुष्य, हाथी और गौ आदि

अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः ॥ ३३७ ॥
सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिनः ।
वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ॥ ३३८ ॥
न प्रसूते च या नारी सापि पीत्वा प्रसूयते ।
अप्रजः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत् सुतम् ॥३३९
अशीतिं वातजान्रोगान् पैत्तिकान् श्लैष्मिकानपि ।
सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत् क्षिप्रमेव हि ॥ ३४० ॥
एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् ।
कृत्वा विष्णोर्बलिञ्चापि तैलमेतत् प्रयोजयेत् ॥३४१॥

इत्यष्टादशशतिकाप्रसारिणीतैलम् ।

समूलपत्रशाखाञ्च जातसारां प्रसारणीम् ।
कुट्टयित्वा पलशतं दशमूलशतं तथा ॥ ३४२ ॥

के सब रोग दूर होजाते हैं, इस से सींचने से सूखे हुए वृक्ष फिर उत्पन्न होजाते हैं, उन में शाखा, फल और फूल आने लगते हैं। बूढा मनुष्य भी तरुण होजाता हैं, बन्ध्या स्त्रीके पुत्र होता है, जिस मनुष्य के वीर्य्य में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति न होय इस के पीने से उसके भी पुत्र उत्पन्न होता है, अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकार के पित्तरोग, वीस प्रकार के कफरोग और अनेक प्रकार के सन्निपात रोग शीघ्र दूर होजाते हैं; इसही तेलसे अन्धक और वृष्णिवंशमें अनेक मनुष्य उत्पन्न हुवे थे। इस तेल को बनाते समय पहिले विष्णु की पूजा कर लेय; इसका नाम अष्टादशशतिका प्रसारणी तैल हैं॥ ३२३ ॥ ३४१ ॥

जिस प्रसारिणी के वृक्ष में सार उत्पन्न हो गया हो उस

अश्वगन्धापलशतं कटाहे समधिक्षिपेत् ।
वारिद्रोणे पृथक् कृत्वा पादशेषेऽवतारितम् ॥३४३॥
कषायसममात्रान्तु तैलमात्रां पचापयेत् ।
दध्नस्तथाढ़कं दत्वा द्विगुणञ्चाम्लकाञ्जिकात् ॥३४४॥
चतुर्द्रोणेन पयसा जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
शृङ्गवेरपलान् पञ्च त्रिंशद्भल्लातकानि च ॥ ३४५ ॥
द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकाच्च पलद्वयम् ।
यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् ॥ ३४६ ॥
सौवर्च्चलपले द्वे च मञ्जिष्ठायाः पलद्वयम् ।
प्रसारिण्याः पले द्वे च मधुकस्य पलद्वयम् ॥ ३४७ ॥
सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
एतदभ्यञ्जने श्रेष्ठं वस्तिकर्मनिरूहनैः ॥ ३४८ ॥
पाने नस्ये च दातव्यं न क्वचित् प्रतिहन्यते ।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥३४९॥

के पत्ते, जड़ और शाखा सोपल, दशमूल सोपल और असगन्ध सोपल इन सब को कूट कर कड़ाहमें डाले और एक द्रोण पानी डालकर पकावे, जब चौथाई रह जाय तब उतार कर छान लेय, फिर उस काढेके समान तेल, एक आढ़क दही, दो आढक खट्टी कांजी और चार आढक दूध, जीवनीयगण की औषधि एक एक पल, सोंठ पांचपल, तीसभिलावें, पीपलामूल दोपल, चीता दोपल, जवाखार दोपल, सेन्धा दोपल, सौंचल दोपल, मंजीठ दोपल, प्रसारिणी दोपल और जेठीमधु दोपल, इन सबको उस ही तेलमें डालकर मन्द २ अग्निमें पकावे, इस तेलको लगाने, खाने, सूंघने,

विंशतिः श्लैष्मिकांश्चैव सर्वानेतान् व्यपोहति ।
गृध्रसीमस्थिभङ्गञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ३५० ॥
अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं मन्दगामिताम् ।
त्वग्गताश्चैव ये वाताः शिरः सन्धिगताश्च ये ॥ ३५१ ॥
जानुसन्धिगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च ये ।
अश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः ॥३५२
प्रसारयति यस्मात्तु तस्मादेषा प्रसारणी ।
इन्द्रियाणाञ्च जननी वृद्धानाञ्च प्रसूयनी ॥ ३५३ ॥
एतेनान्धकवृष्णीनां वरं पुंसवनं महत् ।
एतत्प्रसारणीतैलं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ३५४ ॥
अपनयति जरां पलितं शोषयति
रुजामुत्पादयति तारुण्यम् ॥ ३५५ ॥
पक्षाघातं सर्वाङ्गगतं वातगुल्मञ्च नाशयेत् ।

वस्ती और निरूह वस्तीमें देय तो अस्सीप्रकारके वातरोग, चालीस प्रकार के पित्त रोग, बीस प्रकार के कफ रोग गृध्रसी, अस्थिभङ्ग, मन्दाग्नि, अरोचक, अपस्मार, उन्माद और विभ्रम रोग दूर होजाते जो मनुष्य वायु के कारण से शीघ्र न चलते हों जिन के त्वचा, सन्धि, जंघा, पैर अथवा पीठ में वायुस्थित हो, जो मनुष्य, घोड़ा, अथवा हाथी, वायु से व्याकुल हो वह भी इस तेल से शीघ्र अच्छे होजाते हैं। इस तेलके लगानेसे बूढ़े मनुष्यको इन्द्रियोंमें भी शक्ति आजाती है। इस तेलसे अन्धक और वृष्णिवंश की वृद्धि हुई थी। बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है बुढ़ापा दूर होता है खाल की झुर्री दूर होजाती हैं, बूढ़ा मनुष्य भी तरुण होजाता है।

एतदुपयुज्यमानः प्रसन्नवर्णेन्द्रियो भवेत् ॥ ३५६ ॥

इति त्रिंशतिप्रसारिणीतैलम्।

अस्य तैलस्य परं सप्तशतिकाप्रसारणीतैलम्।

शतत्रयं प्रसारण्या द्वे च पीतसहाचरात्।
अश्वगन्धैरण्डवला वरी रास्ना पुनर्णवा ॥ ३५७ ॥
केतकी दशमूलञ्च पृथक् त्वक् पारिभद्रकः।
प्रत्येकमेषान्तु तुला तुलार्द्धं किनिमात्तथा ॥ ३५८ ॥
तुलार्द्धं स्याच्छिरीषाच्च लाक्षायाः पञ्चविंशतिः।
पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत् ॥ ३५९ ॥
जलपञ्चाढ़कशते सपादे तत्र शेषयेत्।
द्रोणद्वयं काञ्जिकस्य षड्विंशत्याढ़कोन्मितम् ॥३६०॥
क्षीरदध्नोः पृथक् प्रस्था दशमस्त्वाढ़कं तथा।

इससे पक्षाघात, सर्वाङ्गवात और वातगुल्म का नाश होता है; इससे शरीर खुल जाते हैं इस लिये इसका नाम त्रिंशत् प्रसारिणी तेल हैं ॥ ३४२ ॥ ३५६ ॥

आगे जो तेल लिखते हैं उसका नाम सप्तशतिका प्रसारिणी तेल है वह इस से श्रेष्ट हैं।

तीन सौपल प्रसारिणी, दोसौपल पीली कुरेया की छाल, असगन्ध, अरण्ड, वरियारा, शतावर, रुद्दमन, गधापुर्ना, केतकी, दशमूल और नीम इन की छाल सौ सौ पल, किनिभ सौपल, सिरस पचास पल, लाख पचीस पल और लोध पचीस पल, इन सब को कूटकर एकमें मिलाकर सवा पांच सौ आढ़क पानीमें पकावे, जब पककर दोद्रोण पानी रह जाय तब उतारकर छान लेय, उस में कांजी छव्वीस आढ़क, दूध दशप्रस्थ, दही दशप्रस्थ, मट्ठा दशप्रस्थ,

इक्षोरसाढ़कौ चापि छागमांसतुलात्रये ॥ ३६१ ॥
जलपञ्चचत्वारिंशत् प्रस्थे पक्के तु शेषयेत् ।
सप्तदशरसप्रस्थान् मञ्जिष्ठाक्काथ एव च ॥ ३६२ ॥
कुडवोनाढ़कोन्मानो द्रवैरेभिस्तु साधयेत् ।
सुशुद्धतिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम् ॥ ३६३ ॥
आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्को भल्लातकं कणाम् ।
नागरं मरिचञ्चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम् ॥३६४॥
भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते ।
पथ्याक्षधात्र्यः सरलं शताह्वा कर्कटी वचा ॥ ३६५ ॥
चोरपुष्पी शटी मुस्तद्वयं पद्मञ्च सोत्पलम् ।
पिप्पलीमूलमञ्जिष्ठा साश्वगन्धा पुनर्णवा ॥ ३६६ ॥
दशमूलं समुदितं चक्रमर्दो रसाञ्जनम् ।
गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयोगणस्तथा ॥ ३६७ ॥
एषां द्विपलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते ।
देवपुष्पी नीलपत्रं शल्लकीरसशैलजे ॥ ३६८ ॥

ऊखका रस दो आढक, पैंतालीस प्रस्थ पानी में पका तीनतुला बकरे के मांसका रस सत्रह प्रस्थ, मजीठ का काढा, एक कुडव कम एक आढक, शुद्ध तिलका तेल एक प्रस्थ और एक द्रोण डाले, फिर भिलावा, पीपल, सोंठ और मिर्च छःछःपल, यदि भिलाव सहने योग्य न समझा जाय तो उसके स्थानपर लाल चन्दन डाले, हर्र, वहेड़ा, आमला, सरल, सौंफ, ककड़ासींगी, बच, चोरपुष्पी, कचूर, वनमोथा, नागरमोथा, पद्माख, कमल, पीपलामूल, मंजीठ, असगन्ध, गधापुन्ना, दशमूल, कसौंदी, रसौत, गन्धतृण, हलदी, जीव-

प्रियङ्गुशीरमधुरी मांसी दारु बला चला।
श्रीवासो नलिका खोटिः सद्मेजा कुन्दरुमुरा ॥३६९
नखीत्रयञ्च त्वक् पत्री पमरा पूति चम्पकम्।
मदनं रेणुका पृक्का मरुवञ्च पलत्रयम् ॥ ३७० ॥
प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते।
गन्धोदकन्तु त्वक् पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम् ॥३७१॥
प्रत्येकं सरलामूलं पलानि पञ्चविंशतिं।
अर्द्धावशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुकर्मणि ॥३७२॥
गन्धाम्बुचन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्यते।
कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक् कालीयककुङ्कुमम् ॥३७३॥
भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णी लताकस्तूरिका तथा।
लवङ्गागुरुकक्कोलजातीकोषफलानि च ॥ ३७४ ॥
एला लवङ्गं चुल्ली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम्।

नीयगण इन सबको डालकर पहिले पकावे, देवपुष्पी (पृक्का) बोलके पत्ते, सलई, कडीला, प्रियङ्गु, खस, मुरहर, जटामांसी, देवदारु, वरियारा, चला, राल, नलिका, खोटी, कोटीइलायची, कुन्दुरु, मुरहर, तीनों नखी, तज, तेजपात, पमरा, करंजुवा, नागकेशर, मोम, रेणुका, पृक्का और मरवा ये सब तीन २ पल डाल कर दूसरी वार पकावे, फिर तज, जावित्री, तेजपात, खस, मोथा ये सब और सरला की जड़ बीस २ पल कूट दशपल इन सबको पचीसप्रस्थ पानीमें पकावे, जब आधा रहजाय तब उतार कर छान लेय; और इस पानी को और चंदन के पानी को उसी तेल में डालकर तीसरीवार पकावे पकते समय केशर, कूट, तज, अगर, नागकेशर, सफेद चन्दन, चोरक, मुश्क-

कस्तूरी षट्पला चन्द्रोत्पलं सार्द्धञ्च गृह्यते ॥ ३७५ ॥
(१) वेधनार्थं पुनश्चन्द्रमादौ देयौ तथोन्मितौ ।
महाप्रसारणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्त्तिता ॥ ३७६ ॥
गुणान् प्रसारणीनान्तु वहत्येषा बलोत्तमान् ।
काञ्जिकं मानतो द्रोणं शुक्तेनात्र विधीयते ॥ ३७७ ॥
अत्र शुक्तविधिर्मण्डः प्रस्थः पञ्चाढकोन्मितम् ।
काञ्जिकं कुड़वौ दध्नो गुड़प्रस्थोऽम्लमूलकः ॥३७८ ॥
पलान्यष्टौ शोधितार्द्रात्पलं षोड़शिकं तथा ।
कणाजीरकसिन्धूत्थहरिद्रामरिचं तथा ॥ ३७९ ॥
द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनं स्थितम् ।
सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदावतार्य्य गृह्यते ।
तदा देयं चतुर्जातं पृथक् कर्षत्रयोन्मितम् ॥३८०॥

दाना, लौंग, अगर, शीतल चीनी, जावित्री, जायफल इलायची, लौंग और चुन्नी ये सब तीन २ पल कस्तूरी छः पल कपूर डेढ पल डाले इसमें कांजी शुक्त होने के कारण एक द्रोण पड़ती है, शुक्त अर्थात् लाहनके ऊपर कामाड़ एकप्रस्थ, कांजी पांच आढक, दही दो कुड़व, चोकको जड़ एकप्रस्थ, गुड़ एकप्रस्थ, शुद्ध अदरक आठ पल, पीपल, जीरा, सेंधा नमक, हलदी और मिर्च दोदो पल इन सबको चिकने घीके बरतन में भरकर आठ दिन तक रख देय तब उस के ऊपर से झाग उतार लेइ इसी का नाम शुक्त है उस को उस तेल में डाले सुगन्धि के लिये तीन २ कर्ष तज, तेजपात, इलायची और नागकेशर डाले इस तेल में पहिले लिखे गुण हैं यह

(१) [illegible]

गोधनस्यापि संस्कारो विशेषश्चात्र कथ्यते ॥३८१॥
आम्रजम्बुकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः ।
गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥ ३८२ ॥
चण्डीगोमयतोयेन यदि वा तिन्तिड़ीदलैः ।
नखं संक्वाथयेदेभिरलाभे मृण्मयेन तु ॥ ३८४ ॥
पुनरुद्धृत्य प्रक्षाल्य भर्जयित्वा निसेचयेत् ।
गुड़पथ्याम्बुनाद्येवं शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ३८५ ॥
इति नखीशुद्धिः ।
गोमूत्रे चालम्बुषके पक्त्वा पञ्चदलोदके ।
पुनः सुरभितोयेन वाष्पस्वेदेन स्वेदयेत् ॥ ३८६ ॥

तेल राजों के योग्य हैं इसका नाम महाराज प्रसारिणी तैल है ॥
॥ ३५७ ॥ ३८० ॥

इस तेल में जो औषधि डाली जाती है उन को शोधकर डालना चाहिये इस लिये आगे औषधि शोधनेकी विधी लिखते हैं आम, जामुन, कैथ, बिजौरानीम्बू और बेल इन पांच वृक्षों के कोमल नये २ पत्ते गन्धकर्म में सब स्थानों पर डालने चाहिये ॥ ३८१ ॥ ३८२ ॥

नख को भैंसके गोबर के रस में अथवा तिंतड़ीक के पत्तों के रस में अथवा केवल मिट्टी में पकावे, फिर धोकर गुड़, हर्र और पानी में भून लेद, तो निःसन्देह शुद्ध होजाता है इसी का नाम नखीशुद्धि है ॥ ३८३ ॥३८५॥

वच और हलदी को गोमूत्र और अलम्बुषक के काढ़े में पकाकर फिर पहले लिखे पांचो वृक्षों के पत्तों में पकावे, फिर

गन्धोग्रा शुद्ध्यते ह्येवं रजनी च विशेषतः ॥ ३८७ ॥

इति हरिद्रा वचा शुद्धिः ।

मुस्तकन्तु मनाक् क्षुण्णं काञ्जिके त्रिदिनोषितम् ।
पञ्चपल्लवतोयेन स्विन्नमातपशोषितम् ॥ ३८८ ॥
गुड़ाम्बुना सिच्यमानं भर्जयेच्चूर्णयेत्ततः ।
आजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्चेति शुद्ध्यति ॥ ३८९ ॥

इति मुस्तकशुद्धिः ।

काञ्जिके क्वथितं शैलं भृष्टा पथ्या गुड़ाम्बुना ।
सिञ्चेदेवं ततः पुष्पैर्विविधैरधिवासयेत् ॥ ३९० ॥

इति शैलजशुद्धिः ।

यथालाभमपामार्गस्नुह्यादिक्षारलेपितम् ।
वाष्पस्वेदेन संस्वेद्य पूतिं निर्लोमतां नयेत् ॥ ३९१ ॥

सुगन्धित औषधियों को भाफ देय तो निस्सन्देह शुद्ध होजाते हैं ॥ ३८६ ॥ ३८७ ॥

मोथेको थोड़ा कूटकर तीन दिन तक काजी में भीजा रहने देय, फिर पहिले लिखे पांचोपत्तों के पानी में पकाकर घाम में सुखा लेय, फिर गुड़ के पानी में भिगोकर भून लेय और चूर्ण बनाई लेय, पश्चात् बकरी के मूत्र और सहजने के रस में भावना देय, तो शुद्ध हो जाता है ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥

रसौत को कांजीमें पकाकर गुड़का पानी और हर्र मिला कर भूने, फिर सुगन्धित जल में भिगोकर सुगंन्धित फूलों से वासित करे ॥ ३९० ॥

खटासी को (रोहिषतृण) जहां तक मिल सके लटजीरा और थूहर आदि के खार से लेप कर के भाफ में पकावे और

टोलपाकं पचेत्पश्चात् पञ्चपल्लववारिणि ।
खलः साधुमिवोत्पीड्य ततो निस्नेहतां नयेत् ॥३६२
आजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्च पुनः पुनः ।
शिग्रुमूले च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् ॥ ३६३ ॥
पचेदेवं विशुद्धिश्च मृगनाभिसमो भवेत् ॥ ३६४ ॥

इति खाटासीशुद्धिः ।

तुरुष्कं मधुना भाव्यं काश्मीरञ्चापि सर्पिषा ।
रुधिरेणायसं प्राज्ञैर्गोमूत्रैर्ग्रन्थिपर्णकम् ॥
मधूदकेन मधुरी पत्रकं तण्डुलाम्बुना ॥ ३६५ ॥
या गन्धं केतकीनां वहति परिमलं वर्णतः पिञ्जराभा
स्वादे तिक्ता कटुर्वापरिलघुतुलना मर्दिता चिक्कणाभा

उस का रोवां दूर कर देय, फिर ऊपर लिखे पांच पत्तों के काढ़े में टोला यन्त्रकी रीतिसे पकावे, फिर निकालकर निचोड़ लेय और चिकनाई से रहित करै, फिर बकरी के मूत्र और सहजने के रस में अनेक भावना देय, फिर सहजने की जड़, केतकी के पत्ते, गोमूत्र, और फूलों में पकावै तो कस्तूरी के समान सुगन्धित होजाता है ॥ ३६१ ॥ ३६४ ॥

तुरुष्कको शहतमें ; केशरको घी में ; कूटको रुधिरमें ; चोरक को गोमूत्रमें ; खम्भारी को शहत मिले पानीमें और खम्भारी के पत्तोंको चावलके पानीमें भिगोवै तो शुद्ध होजाते हैं ॥३६५॥

जिस कस्तूरी में केतकीके फूलके समान सुगन्धि आती हो, जिसका रंग हरताल के रंग के समान हो, स्वाद कड़ुवा या

दग्धानीयाति भस्मं मिषिमिषि-
कुरुते चर्मगन्धा तु चान्ते ।
सा भद्रा लोभनीया वर मृग-
तनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा ॥ ३८६ ॥

अपरञ्च ।

पीतः किञ्चिल्लघुरतिशयं केतकीतुल्यगन्धः
स्निग्धोदग्धो मिषिमिषिकरो भस्मभावं न याति ।
ईषत्तिक्तः कटुरपि मनाक् चारगन्धानुविद्धः
सम्यक्शुद्धो मद इह महीपालयोग्यो मनोज्ञः ॥३८७

इति मृगनाभिः ।

पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ।
तत्रापि स्याद्यत्क्षुण्णं स्फटिकाभं तदुत्तमम् ॥३८८॥

तीता हो, तोलनेमें बहुत हलकी हो, हाथमें मलने से चिकनी जान पड़े, आग में जलाने से न जले, मिन मिन शब्द निकले, जलते समय चमड़ा जलने की ऐसी दुर्गन्धि आवे वही कस्तूरी राजोंके योग्य और अत्यन्त श्रेष्ठ कही है। जो कस्तूरी कुछपीली बहुत हल्की हो जिसमें केतकी की सुगन्धि आती हो, चिकनी हो, स्वाद कुछ तीता कुछ कड़वा हो, जिस के छूने से खारकी सुगन्धी चली जाय, वही राजोंके योग्य शुद्धकस्तूरी है३८६-३८७

पके हुवे कपूर से कच्चा कपूर बहुत ही श्रेष्ट है उस में भी जो तोड़ने से स्फटिक के समान चमके वह बहुत ही श्रेष्ठ है,

पक्वञ्च सदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तमम्।
भङ्गे मनागपि नचेन्निपतन्ति ततः कणाः॥ ३९९॥
हस्ते विघृष्य कर्पूरं रेखां हस्तस्य लक्षयेत्।
यदि सा दृश्यते विद्धि कर्पूरमतिभद्रकम्॥ ४००॥

इति कर्पूरम्।

मृगशृङ्गाकृतिः कुष्ठं कीटदोषविवर्जितम्॥ ४०१॥

इति कुष्ठः।

श्वेतचन्दनमत्यन्तस्निग्धं गुरु सुगन्धि च।
भवेद्वचन्दनं रक्तपीतसारं तदुत्तमम्॥
यत्तामगुरुमसारञ्च न भद्रं प्रवदन्ति तत्॥ ४०२॥

इति चन्दनम्।

काकतुण्डाकृतिः स्निग्धो गुरुश्चैवोत्तमोऽगुरुः॥४०३॥

पके हुये कपूर में जो चिकना और कुछ हरा हो वह बहुत ही श्रेष्ट है, जिस के तोड़ने से तिनका अलग न टूटे वह कपूर श्रेष्ठ है जिसका टुकड़ा तोड़ कर हाथ पर रखने से हाथ की रेखा दीखे वह कपूर श्रेष्ट है॥ ३९८—४००॥

जो कूट हरिणके सींगके समान हो और घुना न हो वह श्रेष्ट है॥ ४०१॥

जो सफेद चन्दन अत्यन्त चिकना, सुगन्धित, भीतरसे लाल, व पीला होय वह श्रेष्ठ है, जो सफेद व सार रहित हो वह अच्छा नहीं॥ ४०२॥

जो अगर कौवे की चोंचके समान काला, चिकना और

असार पाण्डुरं रूक्षं लघुञ्चाधममादिशेत् ।
नादेयं नाप्युपादेयं तित्तिरीपक्षकागुरुः ।
शाल्मलीकाष्ठसङ्काशो नैव ग्राह्यः कदाचन ॥४०४॥

इत्यगुरुः ।

पाण्डुरैः केशरैस्त्यक्तं रक्तं कुङ्कुममुत्तमम् ।
हीनं द्विरागि काश्मीरं खरपाण्डुरकेशरम् ॥ ४०५ ॥

इति केशरम् ।

खट्टासोऽनूपजः श्रेष्ठो वर्त्तुलो मांसलश्च यः ।
सम्मतो मध्यदेशीयो मध्यमो मरुजोऽधमः ॥ ४०६ ॥

इति खट्टासः ।

किञ्चित्पीता मुरा शस्ता मांसी पिङ्गजटाकृतिः ॥४०७

इति मुरा मांसी च ।

भारी हो वह उत्तम है, जो हल्का, रूखा, सफे , साररहित, नदी में उत्पन्न हुवा, तीतर के पंखके समान काला और सेमर की लकड़ीके समान हो वह उत्तम नहीं उसे औषधी में न डाले ॥ ४०३ ॥ ४०४ ॥

जिसका रंग सफेद न हो लाल हो, वह केशर श्रेष्ठ है, जिस में दो प्रकारके रंग हों और खरखरा हो वह उत्तम नहीं ॥ ४०५ ॥

जो खट्टास (गन्धद्रव्य विशेष) अनूप देश में उत्पन्न हुआ हो, गोल हो और मोटा हो वह श्रेष्ठ है, मध्यदेशका० उत्पन्न हुआ मध्यम और मारवाड़ का उत्पन्न हुआ अधम है ॥४०६॥

रेणुकोमुद्गतुल्यो यो भद्रः स सम्मतः सताम्।
स्थूलो मरिचसङ्काशो गन्धकर्मणि गर्हितः॥ ४०८॥
इति रेणुकः।

आनूपदेशसम्भूतो मुस्तः स्यादतिशोभनः।
मिश्रिते मध्यमः प्रोक्तो जाङ्गलस्त्वधमो मतः॥४०९॥
इति मुस्तकः॥

जातीफलं सशब्दञ्च स्निग्धं गुरु च शस्यते।
लघुकं शब्दहीनञ्च रूक्षाङ्गमतिनिन्दितम्॥४१०॥
इति जातीफलम्।

एला कक्कोलबीजाभा सा ग्राह्या कोद्रवाकृतिः।
या कक्कोलसमाकारा कर्पूररेणुसंयुता॥ ४११॥

जो मुरहर पीली हो और जो जटामांसी कुछ पीली कुछ लाल हो वह श्रेष्ठ है॥ ४०७॥

जो रेणुका मूंगके समान सुन्दर हो वह उत्तम है और जो मिर्चके समान मोटी हो उसे न डाले॥ ४०८॥

अधिक जल होनेवाले देशों में उत्पन्न हुवा मोथा उत्तम, मध्यमदेशका उत्पन्न हुआ मध्यम और जलरहित देशका उत्पन्न हुआ मोथा अधम है॥ ४०९॥

जायफल, शब्दयुक्त, चिकना और भारी उत्तम होता है, जो शब्द हीन और रूखा हो वह उत्तम नहीं॥ ४१०॥

जो मिर्च शीतलचीनीके समान हो अथवा कोदोके समान हो वह उत्तम है, जिसमें ये गुण न हो वह अच्छी नहीं। ऐसी

सरला सा त्रुटिः श्रेष्ठा विपरीता तु नेष्यते ।
यत्किञ्चित्पाण्डुरा श्यामा कीटदोषविवर्जिता ।
सा प्रियङ्गुर्मता भद्रा विपरीता तु निन्दिता ॥४१२
नखी पञ्चविधा ज्ञेया गन्धार्थं गन्धतत्परैः ॥ ४१३ ॥
काचिदुडुम्बरपत्राभा तथोत्पलदलायता ।
काचिदश्वखुराकारा गजकर्णसमा परा ॥ ४१४ ॥
वराहकर्णसङ्काशा गन्धकर्मणि गर्हिता ।
ग्रन्थिकः पाण्डुरः किञ्चित्कनिष्ठः सर्वसम्मतः ॥४१५॥
उत्तमः कृष्णवर्णो यः स्थूलोऽतीव च निन्दितः ।
दीर्घमूलं दृढं सूक्ष्ममुत्तमं गन्धसंयुतम् ॥ ४१६ ॥
देशे साधारणे जातं लामज्जं भद्रकं भवेत् ।

इलायची को कपूर में कुछ दिन रख कर औषधी में डाले जो प्रियंगु कुछ सफेद और काली हो, जिसको कीड़ोंने न खाया हो वह उत्तम है जिस में ये गुण न होय वह उत्तम नहीं ॥ ॥ ४११ ॥ ४१२ ॥

वैद्योंने सुगन्धि के जल में डालने के लिये पांच प्रकार के नख कहे हैं उन में कोई गूलर के पत्तेके समान, कोई कमल के पत्ते के समान, कोई घोड़े के खुरके समान, कोई हाथीके कान के समान और कोई सूवरके कानके समान होते हैं तिनमें सूवर के कान के समान नख अच्छा नहीं ॥४१३—४१५॥

जो चोरक सफेद हो वह अधम, मोटा बहुत अधम और काला बहुत ही श्रेष्ठ है ॥ ४१६ ॥

जो खस साधारण देश में उत्पन्न हुआ हो वह बहुत ही

मध्ये सारविहीना या सरसा कीटवर्जिता ॥४१७॥
नलिका सा भवेद्भद्रा विपरीता तु निन्दिता ।
निर्मलः कपिलः कच्छुः भिन्नको निर्गतो नवः ॥४१८
मध्यासमो मलसंयुक्तो वर्जितो गन्धकर्मणि ।
श्रीवासो भद्रकः प्रोक्तो मलकाष्ठविवर्जितः ॥४१९॥
इति श्रीवासः ।
लाक्षा च नूतना ग्राह्या मृत्तिकादिविवर्जिता ॥४२०
इति लाक्षा ।
पद्मकं सरलं भद्रं कीटदोषविवर्जितम् ॥ ४२१ ॥
इति पद्मकम् ।
जलदोषप्रहीणाश्च त्वक्पत्रञ्च तथैव च ॥ ४२२ ॥
इति त्वक्पत्रम् ।

श्रेष्ठ हैं। जो नलिका सार हो न हो, रसयुक्त हो और जिसमें कीड़े न लगे हों वह श्रेष्ठ है और इससे विपरीत गुणवाली उत्तम नहीं ॥ ४१७ ॥

जो कच्छु अत्यन्त निर्मल और कपिल रंगवाली हो, वह उत्तम है, परन्तु अत्यन्त कपिल न हो। जो राल अत्यन्त निर्मल और काठ रहित हो वह श्रेष्ठ है और जिस में कुछ मल हो वह मध्यम है। लाख मिट्टीसे रहित और नया उत्तम है। जो पद्माखना न हो वह श्रेष्ठ है ॥ ४१८—४२१ ॥

जिस पद्माखमें और तेजपात में जलका दोष न हो वह श्रेष्ठ है तेजपातके भी ये ही चिह्न है ॥ ४२२ ॥

सूक्ष्ममूलोवरः केशो नूतनः सरलस्तथा ।
नूतनं स्थूलमूलञ्च वर्जनीयं प्रयत्नतः ॥ ४२३ ॥

इति सरलः ।

कक्कोलकं शुभं विद्धि वेष्टितं सूक्ष्मया त्वचा ।
स्निग्धं गुरुकमत्यन्तमन्यथातीव निन्दितम् ॥ ४२४ ॥

इति कक्कोलम् ।

अत्युग्रापि सरागापि ग्रन्थिलापि च सम्मता ।
अन्तः शुचित्वमात्रेण वचा वाच्यत्वमुज्झति ॥४२५॥

इति वचा ।

द्विमुस्तं नूतनं पुस्कां मध्यापन्नां नवां विदुः ।
चोरपुष्पीं नवा श्यामामामनन्ति मनीषिणः ॥४२६॥

इति चोरपुष्पी ।

ग्राह्या प्रशोष्य सम्यक् चम्पककलिका प्र""पकलिकेव

जिस सरलकी जड़ पतली हो, नवीन हो, वह उत्तम है और जिसकी जड़ मोटी हो उसे औषधी में न डाले ॥ ४२३ ॥

जो शीतल चीनी, सूक्ष्म त्वचासे लिपटी हो वह उत्तम है जो चिकनी या भारी हो वह अच्छी नहीं ॥ ४२४ ॥

जो वच, बहुत तेज और कुछ लाल हो तथा जिसमें गांठे हों वह उत्तम है ॥ ४२५ ॥

जो चोरपुष्पी नवीन और काली हो वही श्रेष्ठ है, जो मोथा नवीन हो वही डाले ॥ ४२६ ॥

नागकेशर, चम्पाके समान सुन्दर और दिये की ज्योतिके

कीटादिकेन विहितमभिनवमिह केशरं ग्राह्यम् ४२७

इति केशरम् ।

सुसूक्ष्मकेशरा स्निग्धा मांसी पिङ्गजटाकृति ॥४२८॥

इति मांसी ।

सुगन्धि लघुरूक्षञ्च सुरदारु प्रकीर्त्तितम् ॥ ४२९ ॥

इति देवदारुः ।

आकृष्णमुत्तमं नूनं रक्तञ्चायञ्च मध्यमम् ।
आरक्तं मध्यमं विद्धि रक्तचन्दनकं द्विधा ॥ ४३० ॥

इति रक्तचंदनम् ।

हरिद्रा क्रियते स्थूला छेदे या कुङ्कुमच्छविः ॥४३१॥

इति हरिद्रा ।

समान प्रकाशित होय वही औषधियोंमें डालनी चाहिये परन्तु घुनी न हो ॥ ४२७ ॥

जिस जटामांसीमें छोटे छोटे केशर हों और जटाके समान पिङ्गलरङ्गवाली हो, वह श्रेष्ठ है ॥ ४२८ ॥

जो देवदारु, सुगन्धित, हलका और रूखा हो, वह बहुत श्रेष्ठ है ॥४२९ ॥

लालचन्दन दो प्रकार का होता है, एक अत्यन्त लाल और एक कुछ काला उनमें कुछ काला श्रेष्ठ है ॥ ४३० ॥

हलदी मोटी और भीतरसे केशरके समान मनवाली श्रेष्ठ होती है ॥ ४३१ ॥

केतकी यूथिका जाती चम्पकं चातिमुक्तकः ।
कदम्बो मल्लिका नागपुष्पश्च कुटजस्तथा ।
पाटला करुणी सैरी पुष्पैरेभिः समाचरेत् ॥ ४३२ ॥
वासनं कुसुमैरन्यैस्तथान्यैरतिशोभनैः ।
सौवर्चलन्तु केशाभं सैन्धवं स्फटिकप्रभम् ॥ ४३३ ॥

इति सौवर्चलम् ।

जवाकुसुमसङ्काशा मनोह्वा चोत्तमा मता ।

इति मनःशिला ।

सुवर्णवच्च विज्ञेयं स्वर्णमाक्षिकमुत्तमम् ॥ ४३४ ॥

इति स्वर्णमाक्षिकम् ।

श्रेष्ठं शिलाजतु ज्ञेयं यस्तु क्षिप्तं न शीर्यते ।
तोयपूर्णे यदा पात्रे प्रतान्ये च विरुध्यते ॥ ४३५ ॥

इति शिलाजतु ।

केतकी, जूही, चमेली, चम्पा, अतिमुक्तक, कदम्ब, मल्लिका, नागपुष्प, कुरैया, पांडर, करुण (वनमल्लिका) और सैरी इन फूलोंसे भी औषधियों को बसावे ॥ ४३२ ॥

जो सौंचर बालके समान काला हो और जो सेंधा खरीके समान सफेद हो सो श्रेष्ठ है ॥ ४३३ ॥

मैनसिल, गुड़हल के फूलके समान हो तो अच्छी है ॥

जो सोनामक्खी सोनेके समान चमकवाली हो वह उत्तम है ॥ ४३४ ॥

जो सिलाजीत पानी भरे बरतन में डालनेसे शीघ्र न गले वह श्रेष्ठ है ॥ ४३५ ॥

भाद्रव्यं कीर्त्तितं येषां विरुद्धत्वं न कीर्त्तितम्।
तेषां तद्विपरीतत्वाद् विरुद्धत्वञ्च लक्षयेत्॥ ४३६॥
एतेषामपरेषां च नवतो प्रत्नतोगुणः॥ ४३७॥
मांसी पत्रं देवदारु कौन्ती कनकपालकम्।
कान्तेला शोणितं चेति मिथो मित्रगणो मतः॥४३८॥
पमरापुरुपमल्लचोराम् श्वेतचन्दनम्।
नखी ग्रन्थोश्मपकञ्च देवपुष्पन्तु मध्यमम्॥४३९॥
श्रीवासतैलैसदकुन्दरुका-
मिपिद्विपदङ्ग इति प्रकाशितः।
तागक्रमात्तैलविधौ विधेयो
भवेदमीषां सकलार्द्धभागः॥ ४४०॥

इमने जिन औषधियोंके केवल गुण लिखे हैं और दोष नहीं लिखे उन गुणोंमे जो विरुद्ध हो वे दोष समझो॥ ४३६॥

इनको आदि लेकर और औषधियोंके दोष गुण भी ऐसे ही जानो, सब नवीन औषधियों में विशेष गुण होते हैं॥४३७॥

जटामांसी, तेजपात, देवदारु, रेणुका, नागकेशर, प्रियंगु, इलायची और रेणुका ये सब मित्र औषधी कहलाती है॥ ४३८॥

शल्ले, अगर, पूसमल्ल, चोरपुष्पी, सफेदचन्दन, नखी, चोरक, नागकेशर और लौंग, ये मध्यम गन्धद्रव्य कहाते हैं॥ ४३९॥

क्रमसे इन सब औषधियोंको मिलाकर तेलमें डाले ये गन्ध औषधी तेलसे आधी होनी चाहिये॥

राल, कस्तूरी, तेल और सौंफ ये भी गन्ध औषधी कहाती है॥ ४४०॥

हयखुर उत्पलपत्र करिकर्ण नखीत्रयम् ।
ग्राह्यं तत्रोत्तमा सदला मांसला स्निग्धा ॥ ४४१ ॥

महिषीगोमयजले तत्स्वेदनीया महिषीगोमयजलाभावे तिन्तिडीजलेन वा, ततः मृण्मयपात्रे वालुकायां भर्जयित्वा गुड़हरीतकीजलेन स्रावणीयम् । ततो रौद्रे शोषयित्वा सितचन्दनागुरुकल्केन कुङ्कुमतोलद्वयमितेन कुष्टामलकीदेवदारूणां प्रत्येकं द्विपलपरिमितेन कल्केन यत्नेन पुनः पुनर्मर्दयेत् । ततो गन्धोदकेन प्रक्षाल्य पुनः पुनरातपे शोषयेत् । ततो मल्लिकामालत्यादिकुसुमैरामृण्मयपात्रे अधः ऊर्द्ध्वं पुष्पं दत्वा संस्थाप्य पुनरुद्धृत्य ग्राह्यं तिसृणां प्रत्येकम् ॥ ४४२ ॥ इति नखीशुद्धिः ।

घोड़े के खुरके समान, कमल के पत्ते के समान और हाथी के कानके समान रूपवाली तीन नखी डालनी चाहिये इनमें भी जो मोटी और चिकनी हो सो श्रेष्ठ हैं ॥ ४४१ ॥

नखीको भैंसके गोबरके रसमें स्वेदन करे यदि गोबरमेंसे रस न निकले तो तिन्तडीकके पानीमें पकावे फिर मट्टीके बरतनमें गरम जल डालकर गुड़ और हरंका पानी डालकर भून लेद और फिर निकाल लेइ फिर तेज घाममें सुखाकर सफेदचन्दन, अगर और केशर दो दो तोला कूट, आमला और देवदारु दो दो पल, इन सबके कल्कमें घोटे, फिर बार बार सुगन्धित जलसे धोकर घाममें सुखावे फिर ऊपर लिखे मल्लिका

एवम्प्रकारेणैव समुद्रककर्कटस्य शुद्धस्य त्रिपलम्।
गोमूत्रेणेत्यादि।

पर्वरहिता ग्रन्थिप्रचुरतरा वा वचा ग्राह्या जर्जरीकृत्य गोमूत्रे मुण्डरीसहितजले च पक्का पुनरुद्धृत्य पञ्चपल्लवजलेन पचेत्। उद्धृत्य संशोष्य गन्धोदकेन प्रक्षाल्य शोषयित्वा तदनुगन्धोदकहण्डिकायां वचां प्रक्षिप्य पिधाय अधोज्वाला दातव्या इति वाष्पस्वेदः ॥ ४४३ ॥

ततश्च गोमूत्रे क्षणमेकं प्रक्षिप्य शोभाञ्जनवल्कलक्वाथेन प्रक्षाल्य गन्धोदकेन क्षालयेत्।
ततो मरुवकमल्लिकादिकुसुमैरधिवासयेत्।
ततः संचूर्ण्य श्वेतधुनाकुन्दुरुनखिकादिभिर्धूपयित्वा ग्राह्या ॥ ४४४ ॥　　इति वचाशुद्धिः।

आदि फूलोंके बीचमें रखकर मिट्टीके वरतनमें रक्खे इस प्रकार नख्खी शुद्ध होती है इसी प्रकार समुद्रका कीड़ा भी शोधा जाता है ॥ ४४२ ॥

अनेक गांठवाले अथवा गांठ रहित वचके छोटे छोटे टुकड़े करे, फिर मुण्डरी सहित पहिले लिखे पांच पत्तोंके जलमें पकावे फिर निकालकर सुखाकर सुगन्धित जलसे धोकर सुखावे फिर सुगन्ध जलसे भरी हण्डियामें डालकर मुंह वंदकरके पकावे; इस का नाम वाष्पस्वेद है, फिर क्षणमात्र गोमूत्र में रख कर सहजनेके वकलेके काढ़ेमें धोकर मरुवा और मल्लिकादि फूलोंमे

एवं हरिद्राया अपि अस्या विशेषशुद्धिः ।

मातुलुङ्गरसकाञ्जिकाभ्यां टङ्कणक्षार तोलकेन उत्स्वेदनीया यावद्रसशोषः ततो निर्मलतिलतैल-चतुष्पलानि गन्धोदकेन मृदग्निना दिनत्रयं ततो मध्ये वचावद्धूपिता सति धूपितभाण्डे दिनत्रयं संस्थाप्य ततः कुङ्कुमवर्णा भवेत् हरिद्रा ॥ ४४५ ॥

मुस्तकमित्यादि । मनाक् खण्डखण्डं कृत्वा काञ्जिके दिनत्रयं संस्थाप्य प्रक्षाल्य पञ्चपल्लवतोयेन स्वेदयेत् । अथातपे संशोष्य खोलके भृष्ट्वा चूर्णयेत् । ततश्छागमूत्रशोभाञ्जनजलेन भावयेत् । तदनु चम्पकादिकुसुमैरधिवासयेत् । ततः पश्चात् धूपयित्वा संचूर्ण्य ग्राह्यं त्रिपलम् ॥ ४४६ ॥ इति मुस्तकशुद्धिः ।

वासित करैं फिर पीसकर सफेदराल, कुन्दरु और नख आदि की धूप देय तब काममें लावै ॥ ४४३ ॥ ४४४ ॥

आगे हलदी की विशेष शुद्धी लिखते हैं, हलदी को नीम्बु के रस और कांजी में डालकर सुहागा और खार दो दो तोले डालकर जब तक रस सूखे तब तक पकावे फिर चारपल निर्मल तिलके तेल में सुगन्धि जल मिलाकर तीनदिन मन्दमन्द आगमें पकावे, फिर पीस लेय, फिर बचके समान धूप देकर सुगन्धित बरतन में भरकर तीन दिन तक रख छोड़े तो सुगन्धित और केशरके समान रंगवाली होजाती है, मोथे आदिको भी छोटे २ टुकड़े करके तीन दिनतक कांजीमें भिगो रक्खे, तब धोकर

शैलजं काञ्जिके पचेत्।

ततः प्रक्षाल्य पञ्चपल्लवदलेन वाष्पस्वेदेनमित्युपदेशः।
भृष्टहरीतकीजलेनाभिषिच्य सुगन्धिपुष्पैरधिवासयेत्।

अथवा—

काञ्जिके क्वथितं शैलं छागमूत्रेण भावितम्।
शिग्रुतोयेन क्षौद्रेण मर्दितं धूमयेत्ततः।
धूपितं लघुमज्जाभ्यां वासितं कुसुमैर्नवैः॥

शैलजं काञ्जिके निक्षिप्य पचेत् तदनु प्रक्षाल्य छागमूत्रेण भावयेत्। ततः शोभाञ्जनक्वाथे ततो मधुना मर्दयेत्। ततोऽगुरुधूमकाभ्यां धूपयित्वा कुसुमैरधिवासयेत्॥ ४४७॥ इति शैलजशुद्धिः।

ऊपर लिखे पांचपत्तों के रस में पकावे, फिर घाम में सुखाकर मिट्टीके वरतनमें भून लेय, फिर वकरेके मूत्र और सहजनेके रस में भिगोकर चम्पा आदि के फूलों से वासित कर के चूर्ण बना लेय, धूप देकर काम में लावे, इसकी मात्रा तीन पल है॥ ४४५॥ ४४६॥

शैलज को कांजीमें पकाकर धो डाले, फिर ऊपर लिखे पांचो पत्तोंके काढ़े में पहिले लिखी विधिसे वाष्पस्वेदन करे और भुनी हर्रके पानी में भिगोकर सुगन्धित फूलों से वासित करे अथवा कांजी में पकाकर वकरे के मूत्र में भिगो देय फिर सहजनेके रसमें और शहतमें घोटकर धूप देय और अगर, तथा रालका धुंआ देय अर्थात् है शैलज को पहिले कांजीमें

यथालाभमित्यादि । अपामार्गाम्बष्टास्नुहीक्षारैः लिप्ता सजलस्थाल्यभ्यन्तरे काष्ठाम्बु परिपिष्टक पक्त्वा निर्लोमतां नयेत् । तदनु वस्त्रेण पोटलं बद्ध्वा पञ्च-पल्लवतोयेन दोलावत्पचेत् । ततो गाढ़ं निष्पीड्य निःस्वेदतां नयेत् । ततश्छागमूत्रेण शोभाञ्जनक्वाथेन बहुधा भावयेत् ॥ ४४८ ॥ इति निकरशुद्धिः ।

तरुष्कमित्यादि । सिह्लकं प्रक्षाल्य मधुना वार-त्रयं भावयेत् । ततो गन्धोदकेन प्रक्षालयेत् ततः शोधितभूपेन धूपयेत् चम्पकादिकुसुमैरधिवासयेत् ॥ ॥ ४४९ ॥ इति शिलाशोधनम् ।

पकावे, फिर धोकर बकरीके मूत्रमें भिगोवे, फिर सहजने के काढ़ेमें, और पश्चात् घृतमें घोटकर, अगर और रालका धुंआं देकर सुगन्धित फूलोंसे वासित करै ॥ ४४०

लटजीरा, मंजीठ और थूहरके खारसे खट्टासीको लेपकर जल भरी हाड़ीके भीतर दो लकड़ी ऊपर रखकर और नीचेसे आंच देइ जब पक चुके तब उतार कर उसके रोयें दूरकर देय फिर कपड़ेमें पोटली बांधकर ऊपर लिखे पांचोंपत्तोंके जलमें दोलायन्त्रकी रीतिसे पकावे, फिर निचोड़कर पूछ डाले फिर बकरीके मूत्रमें और सहजनेके काढ़ेमें कईवार भिगोवे इस प्रकारसे शोधे ॥ ४४८ ॥

शिलाजीतको धोकर तीनबार घृतमें भिगोवे, फिर गन्धौ-षधियोंके जलसे धोकर घृत धूप देइ और पहिले लिखे सुगन्धित फूलोंसे वासित करै ॥ ४४९ ॥

कुङ्कुमं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य संशोष्य अर्कार्द्रदुग्ध-घृतभाण्डे कृत्वा तत्र कुङ्कुमं प्रक्षाल्य वस्त्रेण भाण्ड-मुखं रुद्ध्वा वाष्पस्वेदेन स्वेदयित्वा गङ्गाम्बुना प्रक्षाल्य पूर्वोक्तकुसुमैरधिवासयेत् ॥४५०॥ इति कुङ्कुमशुद्धिः।

अगुरु गन्धोदकेन प्रक्षाल्यातपे शोषणीयम्।
ततो विशुद्धकुमकुजलेनाप्लाव्य शोषणीयम् ॥

ततो गन्धोदकेन वारत्रयं प्रक्षाल्य संशोष्य ग्राह्यं त्रिपलम् ॥ ४५१ ॥ इत्यगुरुशोधनम्।

ग्रन्थिपर्णं गोमूत्रे विपाच्य प्रक्षाल्य पूर्वोक्तगन्धोदकेन प्रक्षाल्य संशोष्य कुसुमैरधिवासयेत् ॥ ४५२ ॥
इति ग्रन्थिपर्णशुद्धिः।

मधुरीं मधुमिश्रितजलेन प्रक्षाल्य पुनर्मधूदकेन वारत्रयं भावयेत्। पुनः संशोष्य पुष्पैरधिवासयेत् ४५३

केशरको गन्ध औषधियोंके जलमें धोकर बरतन में आग और ऋद्धि नामक औषधी का दूध भरके केशर उस में डालदे और बरतनका मुंह कपड़े से बांधकर वास्पस्वेद करै, परन्तु बरतन चौका होना चाहिये पश्चात् पहिले लिखे फूलों से वासित करै ॥ ४५० ॥

अगर को गन्ध औषधियोंके पानीमें धोकर घाममें सुखावे, फिर शुद्ध केशर के पानी में भिगोकर सुखा लेय फिर गन्धोदक में तीनवार सुखालें इसकी मात्रा तीनपल है ॥ ४५१ ॥

ग्रन्थिपर्णको गोमूत्र में पकाकर धोकर पहिले लिखे गन्धो-दक में भिगोवे और सुखाकर फूलोंसे वासित करै ॥४५२॥

तण्डुलाम्बुना मधुरीवत्तेजपत्रशोधनम् ॥ ४५४ ॥

कुष्ठं पञ्चदलस्विन्नं पुनः कुङ्कुमधूपितम् ।
वासितं कुसुमैरेभिः शुद्धिमाप्नोति निर्मलाम् ॥
पञ्चपल्लवक्काथेन कुष्ठं पक्का परिशोष्य मुर्वा कुन्दुरुभ्यां सन्धूप्य जात्यादिकुसुमैरधिवासयेत् ॥ ४५५ ॥

इति कुष्ठशोधनम् ।

ध्यामकं चूर्णितं शुद्धिं शर्कराजलसंप्लुतम् ।
घृतगुग्गुलधूपेन याति चन्दनवासितम् ।
गन्धतृणं चूर्णयित्वा शर्करामिश्रितजलेन प्रक्षाल्य परिशोष्य श्रीखण्डचन्दनपङ्केन मर्दयेत् ॥४५६॥

इति गन्धतृणशोधनम् ।

मधुरीको शक्कर मिले पानीसे धोकर उस ही पानीमें तीन भावना देय, फिर सुखाकर फूलों से वासित करे ॥ ४५३ ॥

मधुरी के समान तेजपात को भी चावल के पानी में शुद्ध करे ॥ ४५४ ॥

कूटको पांच पत्तों के काढ़े में पकाकर केशर की धूप देय और फूलों से वासित करे तो शुद्ध होजाता है अर्थात् पांचो पत्तोंके काढ़े में पकाकर सुखाकर मुरहर और कुन्दरूकी धूप देकर फूलोंसे वासित करे ॥ ४५५ ॥

गन्धतृण को चूरा करके घी और गूंगलकी धूप देय अर्थात् गन्धतृण को चूराकरके शक्कर मिले पानीसे धोकर चंदन घीसकर उसी में घोटे ॥ ४५६ ॥

कुन्दुरुश्चूर्णितोऽत्यर्थं कुङ्कुमेन च मर्दितः।
धूपितो गुड़सर्जाभ्यां वासितः शुद्धतितराम्॥

कुन्दुरुं गन्धेन प्रक्षाल्य शोषयित्वा कुङ्कुमपङ्केन मिश्रयित्वा गाढ़ं मर्दयेत्। अथ गुड़सर्जाभ्यां धूपयित्वा सुगन्धिकुसुमैरधिवासयेत्॥ ४५७॥

इति कुन्दुरुशोधनम्।

रेणुको भावितश्चादौ मधुना तक्रभावितः।
आतपे शोषयित्वैवं पुष्पैरप्यधिवासयेत्॥

रेणुकं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य मधूदकेन पुनर्भाव्यं आतपे संशोष्य गन्धकुसुमैरधिवासयेत्॥ ४५८॥

इति रेणुकशोधनम्।

क्षौद्रेण भावितं चोरपुष्पमातपशोषितम्।
धूपितं गुड़सर्जाभ्यां वासितं शुध्यति ध्रुवम्॥

कुंदरूको पीसकर केशरमें घोटकर गुड़ और रालको धूप देकर वासित करै अर्थात् कुन्दरूको सुगन्धित जलसे धोकर सुखाकर केशर में घोटे, फिर गुड़ और रालसे धूप देकर सुगन्धित फूलों से वासित करै॥ ४५७॥

रेणुकको पहिले शहत में, फिर मट्ठे में भिगोकर घाम में सुखावै, फिर सुगन्धित फूलोंसे वासित करै अर्थात् रेणुक को गन्धजलसे धोकर शहत और पानीमें भिगोकर घाममें सुखाकर सुगन्धित फूलोंसे वासित करै॥ ४५८॥

चोरपुष्प को शहतमें भिगोकर घाममें सुखाकर गुड़ और

चोरपुष्पं मधुना संनीयातपे शोषयित्वा गुड़-धूमकाभ्यां धूपयित्वा सुगन्धिकुसुमैरधिवासयेत् ४५८

इति चोरपुष्पशोधनम् ।

नवनीतखोटिं गन्धोदकेन प्रक्षाल्य संशोष्य शर्करोदकेन पुनर्भाव्यं प्रक्षाल्य संशोष्य संचूर्ण्य घृतगुग्गुलु-धूपेन धूपयित्वा जात्यादिकुसुमचन्दनाभ्यां वासयेत् ॥ ४६० ॥

इति नवनीतखोटिशोधनम् ।

सर्वेषामेव सुगन्धिद्रव्याणां गन्धवारिणा ।
प्रक्षाल्यातपे संशोष्य भर्जनं सेचनं गुड़ोदकेन ॥
शोधितं शोधितं द्रव्यं न कुर्य्यादेकपात्रतः ।
यस्माद्धि काकसंसर्गात् कृष्णो भवति कोकिलः ४६१

रालकी धूप देकर सुगन्धवाले फूलोंसे वासित . अर्थात् चोर पुष्प को शहत में भिगो, घाममें सुखा, फिर गुड़ और रालकी धूप देकर सुगन्धित फूलोंसे वासित करे तो शुद्ध होजाता है ॥ ४५८ ॥

नवनीत खोटीको गन्धोदकसे धोकर घाममें सुखावे, फिर शकर मिले पानीसे धोकर चूर्ण करके घी, गुड़ और गुग्गुल का धूप देकर पहिले लिखे फूल और चन्दनसे वासित करे ॥४६०॥

बुद्धिमान् वैद्य इन सब सुगन्धि द्रव्योंको सुगन्ध औषधियोंके पानीमें भिगोकर, सुखाकर, भूनकर, गुड़के पानीसे धोवे परन्तु कई औषधियों को एक बरतनमें न शुद्ध करें, क्योंकि कौवेके संगमें रहनेसे कोकिला भी काला होजाता है ॥४६१॥

अथ गन्धाम्बुसाधनमाह ।

तेजोवती-त्वक्-पत्नोशीर-नागकेशर-मुस्त-बालाभ्यां प्रत्येकं पञ्चविंशतिपलं गुड़स्य चतुस्तोलाधिकद्वाविंश पलं शतशरावपरिमितेन जलेन पक्त्वा अर्द्धावशेषं कुर्य्यात् ॥ एवं पाकद्वयं मध्यपाके तृतीयपाकार्थम् । अपरपाकमेकं गन्धद्रव्यं चालनार्थम् । द्वाभ्यां पाकत्रयं स्यात् ॥ ४६२ ॥

अथ चन्दनाम्बुशोधनम् ।

मलयजमुत्तममरुणं पीतमध्यमनुत्तमं पाण्डुः ।
प्रायेण विशेषगुणा सारत्वं कोटरो ग्रन्थिः ॥

कोरग्रन्थिगुरु रक्तवर्णम् एवं कुट्टितचन्दनस्य द्वात्रिंशत्पलं द्वात्रिंशत् शरावजलेन पक्त्वार्द्धावशेषं कुर्य्यात्

आगे गन्धोदक बनाने की विधि लिखते हैं ।

तेजबल की छाल, तेजपात, खस, नागकेशर, मोथा और सुगन्धवाला इन सबको पचीस पचीस पल लेकर एक कुड़व चार तोले बाईस पल और सौ शराव पानीमें पकावे, जब आधा रह जाय, तब उतार लेइ इस प्रकार दो वार पकावे, पहिला पाक गन्धद्रव्योंके धोनेके लिये हैं इस प्रकार तीन पाक होते हैं ॥ ४६२ ॥

आगे चन्दन का जल बनाने की विधि लिखते हैं ।

उत्तम मलयाचल का उत्पन्न हुआ सफेद कुछ लाल वीचमें पीला गांठरहित चन्दन अधिक गुणवाला होता हैं, उसी भारी लाल मगवा ले, गांठरहित चन्दन को कूटकर बत्तीस पल चूर्ण

इत्थं पाकद्वयं मध्यपादशेषपाकार्थं घृष्टचन्दनं वा गोलयित्वा दातव्यम् ॥ ४६३ ॥

इति महाराजप्रसारणीतैलम् ।

नकुलस्य च मांसस्य पचेत्प्रस्थं जलाढ़के ।
तत्समं दशमूलञ्च पक्वं माषबलान्वितम् ॥ ४६४ ॥
घृतप्रस्थं पचेत्तत्र चतुर्भागावशेषिते ।
शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धञ्च तत्समम् ॥ ४६५ ॥
अष्टौ वर्गाश्च काकोल्यौ जीवन्ती मधुयष्टिका ।
एला त्वचञ्च पत्रञ्च त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ ४६६ ॥
मुस्तकं नागजिह्वा च कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ।
सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ॥ ४६७ ॥

को बत्तीस शराव पानीमें पकावे, जब आधा रह जाय, तब, उतार लेय इस प्रकार दो पाक करै, अथवा घिसा चंदन को घिसकर डाल देइ, इसका नाम महाराज प्रसारणी तैल है ॥ ४६३ ॥

एक प्रस्थ नौलके मांसको एक आढ़क पानी में पकावे, उसी समय एक एक प्रस्थ दशमूल, उड़द और बरियारा भी छोड़ देइ, जब वह काढ़ा पकते पकते चौथाई रह जाय, तब उतार लेय, फिर छानकर गायका घी एक प्रस्थ, शतावर का रस एक प्रस्थ, गायका दूध काढ़े के समान और अष्टकवर्ग, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, जेठीमधु, इलायची, तज, तेजपात, त्रिकुटा, त्रिफला और मोथा, नागजिह्वा इन सबको एक एक कर्ष लेकर छोड़ दे और पकावे, इस घीसे सब प्रकार

पक्षाघाते महोन्मादे चाध्माने कोष्ठनिग्रहे।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाधिर्य्ये मूकमिन्मिने ॥४६८॥
ऊर्द्ध्वजत्रुगते वाते जङ्घापार्श्वादिसंस्थिते।
नकुलाद्यमिदं नाम्ना ऊर्द्ध्वजत्रु गदापहम् ॥ ४६९ ॥

नकुलाद्यं घृतम्।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गनखादिकम्।
पञ्चमूलीद्वयञ्चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४७० ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरञ्चैव शतावरी ॥ ४७१ ॥
छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत्।
अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्य्ये मूकमिन्मिने ॥४७२ ॥
जडगद्गदपङ्गूनां खञ्जे गृध्रसि कुब्जयोः।
पृथगर्द्धतुलां पञ्चमूलद्वन्द्वाजमांसयोः ॥ ४७३ ॥

के वातरोग, अपस्मार, पक्षाघात, भयानक उन्माद, आध्मान, दस्त रुकना, शिर कांपना, हाथ कांपना, बहरापन, गूगापन, जंघा और पसुली की पीड़ा, तथा कण्ठके ऊपर के रोग दूर होजाते हैं इसका नाम नकुलादिघृत है ॥ ४६४ ॥ ४६९ ॥

बकरी के मांसको त्वचा, सींग और खुर आदिसे रहित करके दोनो पञ्चमूल मिला करके एक द्रोण पानीमें पकावे, जब चौथाई पानी रह जाइ तब उतारकर छानलेइ उसमें एक प्रस्थ घी, जीवनीयगण, जेठीमधु, दूध, शतावर डालकर पकावे इससे अर्दित कर्णमूल, बहरापन, गूंगापन, अपतानक औ

निःक्काथ्यं सलिलद्रोणे क्काथे पादावशेषिते ।
अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ४७४ ॥

इति छागलाद्यं घृतम् ।

घृतारम्भे मन्त्रः । ओं कालि ! वज्रेश्वरि ! अमुकस्य फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा ॥ ४७५ ॥

स्नापयित्वा छागमादौ मधु दत्वा ललाटके ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा भिषगेनमुपालभेत् ॥४७६॥

छागमारणमन्त्रः ॥

ओं ह्रां ओं गां गणपतये स्वाहा ॥ ४७७ ॥

छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम् ।
अश्वगन्धा पलशतं वाट्यालकशतं तथा ॥ ४७८ ॥
घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः ।
क्षीरं स्नेहसमं दद्यात् शतावर्य्या रसं तथा ॥४७९॥

अपतन्त्ररोग दूर होजाते हैं, जड़, गदगद वचनवाले, पङ्गु, खञ्ज, कुबड़े और गृध्रसी रोगवालोंको बहुत श्रेष्ठ है, इसमें दोनो पञ्चमूल और बकरे का मांस आधी आधी तुला पड़ता है इसका नाम छागलादि घृत है ॥ ४७० ॥ ४७४ ॥

जब इस घीको बनाना आरम्भ करे तब पहिले मूल में लिखा मन्त्र पढ़ लेइ, बकरे को स्नान कराकर उसके माथे में शहत लगाकर वैद्य पूर्व अथवा उत्तरको मुंह करके उसका शिर काटे और मूलमें लिखा मन्त्र पढ़े ॥ ४७५—४७७ ॥

बकरे का मांस एक तुला, दशमूल सौपल, असगंध सौपल, वाट्यालक सौपल, इन सबको पानीमें पकाकर चौथाई रख

ताम्रपात्रे दृढ़े चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥४८०॥
जीवन्ती मधुकं द्राक्षा काकोल्यौ नीलमुत्पलम्।
मुस्तं सचन्दनं रास्ना पर्णिन्यौ द्वयशारिवे ॥ ४८१ ॥
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शटी।
दार्वी प्रियङ्गु त्रिफला नतं तालीशपद्मकौ ॥ ४८२ ॥
एला पत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम्।
मञ्जिष्ठा दाडिमं दारु रेणुकं सैलवालुकम् ॥४८३॥
विडङ्गं जीरकञ्चैव पेषयित्वा विनिःक्षिपेत्।
वस्त्रपूते च शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ४८४ ॥
निधापयेत् स्निग्धभाण्डे आर्द्रे वा भाजने शुभे।
अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्य्यमतःपरम् ॥ ४८५ ॥
देवदेवं नमस्कृत्य संपूज्य गणनायकम्।

लेले, फिर तांबेके दृढ़ पात्रमें डालकर वह रस एक आढ़क, घी एक आढ़क, दूध एक आढ़क, शतावरका रस, जीवन्ती, जेठीमधु, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलाकमल, मोथा, चन्दन, रास्ना, शालिपर्णी, पृष्णपर्णी, सरिवन, मेदा, महामेदा, कूट, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, त्रिफला, तगर, तालीश, पद्माख, तेजपात, शतावर, नागकेशर, जाविची, धनिया, मंजीठ, अनार, देवदारु, रेणुका, एलवालुका, विडङ्ग और जीरा, इन सबको एक २ शुक्तिकल्क करके छोड़ देय, फिर ठंढा होने पर एक प्रस्थ शक्कर छोड़कर सुन्दर चिकने बरतन में उठा रक्खे, फिर देवतों के देवतागणेश की पूजा करके एक अष्ट

पिबेत्पाचितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ॥४८६॥
सर्व्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ।
उन्मादे पक्षघाते च आध्माने कोष्ठनिग्रहे ॥ ४८७ ॥
कर्णरोगे शिरोरोगे वाधिर्य्ये चापतन्त्रके ।
भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोद्गारे चाक्षिपातजे ॥४८८॥
पार्श्वशूले च हृच्छूले वाह्यायामेऽर्दिते तथा ।
वातकण्टकहृद्रोगे मूत्रकृच्छ्रे सपङ्गुले ॥ ४८९ ॥
क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे कुब्जे चाध्मानमिन्मिने ।
अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथोर्द्ध्वगे ॥ ४९० ॥
आनाहेऽर्शोविकारेषु चातुर्थकज्वरेऽपि च ।
हनुग्रहे तथा शोषे क्षीणे चैवापबाहुके ॥ ४९१ ॥
दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा ।
जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे कफस्तम्भे मदात्यये ॥४९२॥
आढ्यवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च ।

रोगीको खिलावे, अनुपान रोगके अनुसार देय, इससे सब-प्रकारके वायुरोग, विशेषकर अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्टरोध, कर्णरोग, शिररोग, वहरापन, अपतन्त्रक, भूत उन्माद, गृध्रसी, उद्गार, पलकके रोग, पसुरी की पीड़ा, हृदय शूल, वाह्य आयाम, अर्दित, वातकंटक, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, पंगुलता, क्रोष्टु-शीर्ष, खञ्ज, कुब्ज, मिन्मिन, अपतान, अन्तरायाम, ऊपर चलनेवाला रक्तपित्त, आनाह, अर्श, चातुर्थिक ज्वर, हनुग्रह, शोष, क्षीणता, अपवाहुक, दंडापतानक, आक्षेपक, दाह, भग्नरोग, जीर्णज्वर, विषरोग, कुष्ट, कफस्तम्भ, मदात्यय, आढ्यवात, वातरक्त, एकाङ्ग-

एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ॥ ४६३ ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे जड़े भ्रमे।
क्षीणेन्द्रिये नष्टशुक्रे शुक्रनिःसरणे तथा ॥ ४६४ ॥
स्त्रीणां वातास्रपाते च पटले स्पन्दने दृशः।
एकाङ्गस्पन्दने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा ॥ ४६५ ॥
नगादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके।
अभिचारिकदोषे च धनसन्तापसम्भवे ॥ ४६६ ॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः।
शिरोमध्यगता ये च जङ्घापार्श्वादिसंस्थिताः ॥४६७॥
मातृग्रहाभिभूतस्य शिशुर्यश्च विशुष्यति।
प्रक्षीणबलमांसस्य न वर्त्मगमनक्षमः ॥ ४६८ ॥
घृतेनानेन सिद्धान्ति वज्रमुक्तिरिवासुरान्।
निहन्ति सकलान् रोगान् घृतं परमदुर्लभम् ॥४६९॥

वायु, सर्वाङ्गवायु, हस्तकम्प, शिरःकम्प, जिह्वास्तम्भ, जड़ता, भ्रम, इन्द्रियनाश, वीर्य्यक्षय, अधिकशुक्र बहना, स्त्रियोंका वातरक्त, आंखकी पलकके रोग, पलकफरकना, एक अङ्ग फरकना, सब अङ्गफरकना, पर्वतादि के गिरने से उत्पन्नरोग, मैथुन न करने से उत्पन्न हुवे रोग, अभिचार से उत्पन्न हुवे रोग, सब पित्त से उत्पन्न हुवे रोग, मस्तिष्क, जंघा और पसली के रोग, मातृ और ग्रहदोष से उत्पन्न हुवे रोग अच्छे होजाते हैं। जिस मनुष्यका मांसक बल और वीर्य्य नष्ट होगया हो, जो मार्गमें न चल सक्ता हो वो भी इस दुर्लभ घीव से अच्छा होजाता है, यह औषध रसायन है, इस से शरीरके तेज और अग्निकी वृद्धि होती है ; दांत वज्रके समान दृढ़

रसायनं वह्निबलप्रदञ्च
वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम् ।
दन्तावलीन्द्राश्वसमा स्यात्
दीर्घायुषं पुत्रशतं करोति ॥ ५०० ॥
स्त्रीणां शतं गच्छति वातिरेकं
न याति तृप्तिं सरसः समाङ्गः ।
अपुत्रिणी पुत्रशतं करोति
शतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥ ५०१ ॥
महद्घृतं नाम तु छागलाद्यं
विनिर्मितं वातनिसूदनञ्च ।
शिवं शुभं रोगभयापहञ्च
चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः ॥ ५०२ ॥

शृगालबर्हिणः पाके पुमांसं तत्र दापयेत् ।
मयूरी जम्बुकी छागी वीर्य्यहीनाः स्वभावतः ।
भाषितं काशिराजेन छागमेव नपुंसकम् ॥ ५०३ ॥

इति बृहच्छागलाद्यं घृतम् ।

होजाते हैं, मनुष्यकी बहुत अवस्था बढ़ती है, बड़ी अवस्थावाले सौ पुत्र होते है, मनुष्य सौ स्त्रियोंके पास जासक्ता हैं तौ भी तृप्त नहीं होता, बन्ध्याके सौ२ वर्षकी अवस्थावाले कामदेवके समान सुन्दर बलवान् सौपुत्र होते हैं ; भगवान हारीत मुनिने समस्त वायुरोगों के नाश करने के लिये यह घी बनाया था ॥ ४७८ ॥ ५०२ ॥

जिन औषधियों में स्यार और मोरका मांस डालना लिखा है तहां पुरुष होका डाले क्योंकि स्यारी, मोरनी और बकरी स्वभाव

रसकगन्धकलौहाभ्रं समं सूतांघ्रिहेम च।
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम् ॥ ५०४ ॥
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम्।
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ५०५ ॥
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम्।
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥ ५०६ ॥
क्षयमेकादशविधं पाण्डुरोगं प्रमेहकम्।
श्वासं शूलञ्च मन्दाग्निं हिक्काञ्चैवाम्लपित्तकम् ॥५०७
व्रणान् सर्वानाढ्यवातं विसर्पं विद्रधिं तथा।
अपस्मारं महोन्मादं सर्वान्मांस त्वगामयान् ॥५०८॥
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।

हो से वीर्य्यहीन होती है इसी लिये भगवान् काशिराजने नपुंसक बकरा डालना लिखा है। इसका नाम वृहच्छागलादि घृत है॥ ५०३॥

पारा, गन्धक, लोहा और अभ्रक एक एकभाग, सोना चौथा भाग, इन सबको खरल में डालकर घीकुवार के रससे घोटै, फिर अरण्ड के पत्तो में लपेट कर तीनदिन तक धानके ढेर में रक्खे, फिर उसे निकालकर हर्र, बहेरा, आमला और शहत के संग मिलाकर सब रोगों में दे, इस रसायन औषधि की मात्रा, अग्नि और बल के अनुसार कल्पना कर लेय; इससे ग्यारह प्रकार का क्षयरोग, पांडुरोग, प्रमेह, श्वास, शूल, मन्दाग्नि, हुचकी, अम्लपित्त, सब प्रकार के घाव, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि, अपस्मार, उन्माद, सब प्रकार के अर्श, त्वचा के रोग और बुढ़ापा आदि इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे बिजली गिरने से वृक्ष; इससे बल और

पौष्टिकं धन्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारणम् ॥
चतुर्मुखेन देवेन कृष्णात्रेयस्य सूचितम् ॥ ५०९ ॥
इति चतुर्मुखोरसः ।

पलैकं मूर्च्छितं सूतं व्योमसत्वञ्च कार्षिकम् ।
सुवर्णं तत्समं ज्ञेयं कन्यारसविमर्दितम् ॥ ५१० ॥
लौहं रूप्यं मृतं बङ्गं वाजिगन्धा लवङ्गकम् ।
जातीकोषं तथा क्षीरकाकोलीञ्च तदर्द्धकाम् ॥५११॥
काकमाचीरसेनैव सर्वं सम्मर्दयेद्दृढम् ।
पञ्चगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ५१२ ॥
क्षीरञ्च शर्करातोयमनुपानं प्रयोजयेत् ।
पक्षाघातार्दिते वाते सोद्गारे सापतानके ॥ ५१३ ॥
अङ्गभङ्गे तथा कुब्जे धनुस्तम्भे तथैव च ।
शिरसो घूर्णिते स्वेदे हस्तपादादिशीतले ॥ ५१४ ॥

आयु बढ़ती है तथा स्त्रियों के पुत्र होते हैं भगवान् ब्रह्माने यह औषधी कृष्णात्रेय मुनिको बतलाई थी, इसका नाम चतुर्मुख रस है ॥ ५०४—५०९ ॥

मूर्च्छित पारा एकपल, अभ्रक का सत्त एककर्ष, सोना एककर्ष, इन सबको घीकुवार के रसमें घोटे, फिर लोहा, चांदी, वंगकी भस्म, असगन्ध, लौंग, जावित्री और क्षीरकाकोली, यह सब आधा२ कर्ष डालकर मकोय के रस में घोटे, फिर पांचरत्ती की गोली बनाकर शक्कर और पानी के संग रोगी को खिलावे, इससे पक्षाघात, अर्दित, डकार, अपतानक, अङ्ग भंग, कुब्ज, धनुस्तम्भ, शिर घमना, पसीना, हाथ पैर ठंढे होने, मनघूमना, शरीर कांपना,

मनोविभ्रमकम्पे च आध्माने नेत्रवैकृते।
द्रापयेत् रसराजोऽयं वातव्याधिकुलान्तकृत्॥
नातःपरतरं श्रेष्ठं विद्यते सर्वकर्मणि॥ ५१५॥
इति रसराजः।

नागवल्लीबहुसुता विशाला तालमूलिका।
एषां पलोन्मितान् भागान् गृहीत्वा चूर्णयेत् सुधीः ५१६
केयुमूलञ्च कदलीमूलं तालस्य मस्तकम्।
खर्जूरमस्तकञ्चैव मृणालं मुस्तकं तथा॥ ५१७॥
सूचिपुष्पशिरश्चैव गुडूचीसार एव च।
काकोलीचन्दने द्वे च सैन्धवं मधुकं तथा॥५१८॥
केशरं मालतीपुष्पं मुचकुन्दस्य पुष्पकम्।
मधूरिका विदारी च कसेरुफलवल्कम्॥ ५१९॥
मृणालपुष्पं चौचञ्च शताह्वा
कर्पूरं शैलजं लौहमभ्रकम्॥
क्षीरकाकोलिकावङ्गं कपिबीजञ्च सर्वशः।

आध्मान और नेत्ररोग दूर होजाते हैं इसके समान दूसरी औषधी और नहीं है इसका नाम रसराज है॥ ५१०—५१५॥

पान, भू आंवला, इन्द्राणी, मूसली, इन सबको एक२ पल लेकर चूर्ण बनावे, केमुआकी जड़, केलेकी जड़, ताड़के फलका गूदा, खजूर का गूदा, खस, मोथा, सूचीपुष्प, गुर्चका सार, काकोली, सफेद चंदन, लालचन्दन, सेन्धानमक, जेठीमधु, नागकेशर, मालती के फूल, मुचकुन्द के फूल, मुरहर, गन्धविदारि, कसेरु, खस के फूल, चोच, सौंफ, कपूर, छड़ीला, लोहा, अभ्रक, क्षीरकाकोली वंग और

एतेषां कार्षिकैर्भागैर्मोदकं परिकल्पयेत् ॥ ५२० ॥
इति भैषज्यरत्नावल्यां वायुरोगचिकित्सा ।

अथ वातरक्ताधिकारः ।

तत्र तस्य विप्रकृष्टन्निदानमाह ।

कटुस्निग्धक्षारैरतिलवणशीतादिगुरुभिः
कुलत्थक्लिन्नान्नैर्जलजपलशुष्कातिरतिभिः ।
मुनिश्यावाम्बुभ्यामसिततिलभोज्यैश्च कुपितः
विरुद्धैः क्रोधाद्यैर्दिवसशयनैरात्र्यनशनैः ॥ १ ॥
सौवीरदधिकाञ्जीकमस्तुशुक्तसुरासवैः ।
विरुद्धाध्यशनैर्वायुः प्रतिकूलविहारिणाम् ॥ २ ॥

कमाच के बीज, इन सब को एक २ कर्ष डालकर लड्डू बनावे और वातव्याधियों में दे ॥ ५१६—५२० ॥
इति भाषाभैषज्यरत्नावलीमें वातरोग चिकित्सा अधिकार समाप्तः ।

वातरक्तनिदान भाषा प्रारम्भ ।

जब मनुष्य कड़वे, चिकने, निमके, भारी, ठण्डे, कुलथी, भीगे अन्न, जलमें उत्पन्न हुये जन्तुवों का मांस, सूखामांस, अधिक मैथुन, निष्पाव, अधिक जल, विरुद्ध भोजन, दिनमें सोना, रात्रिको न खाना, सौवीर, शुक्त, (इन दोनोंके अर्थ पहिले लिख आये हैं) दही, काञ्जी, मद्दा तथा और भी विरुद्ध वस्तुओंको सेवन करता है तब उसका वायु बिगड़ जाता है ॥१॥२

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतो वातरक्तं
स्थूलाशनान्दूषितभोजिनाञ्च ।
दाह्यन्नाद्यं सौख्ययुक्तस्य नुर्वै
व्याधिं घोरं वातरक्तं करोति ॥ ३ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह ।

दुष्टोवायुः सन्दहत्याशु रक्तं
तत्सन्दुष्टं पादयोश्चीयते वै ।
तस्मादेतद्वातरक्तं मुनीन्द्रैः
यस्मादस्मिन्वातरक्तं हि दुष्टम् ॥ ४ ॥
रक्तं शीघ्रं दूषितम्वायुना यद्
वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु तच्च ।
वायुर्दुष्टो दूषितेनासृजाढ्यो
भूयोरक्तं दूषयेच्चातितूर्णम् ॥ ५ ॥

हाथी, घोडे और ऊंटपर चढ़नेसे, अधिक खानेसे, जलन करनेवाले भोजन, खानेसे सुखी और मोटे मनुष्योंका वायु और रक्त बिगड़कर भयानक वातरक्त नामक रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

वही विगड़ा हुआ वायु रुधिरको जलाता है, तब वह जला हुआ रुधिर पैरोंमें आकर इकट्ठा होजाता है; इस रोगमें वायु और रुधिर दोनों विगड़ जाते हैं इस लिये मुनियोंने इसका नाम वातरक्त रोग कहा है ॥ ४ ॥

बिगड़ा हुआ रुधिर, बिगड़े हुवे वायुके मार्गोंको रोक लेता है, तब मार्ग रुकनेसे वायु अत्यन्त बिगड़कर फिर रुधिरको बिगाड़ता है और दोनों मिल जाते हैं ॥ ५ ॥

हस्तयोर्मूलमाश्रित्य कदाचित्पादयोर्द्वयोः ।
शीतोष्णात्प्रसरति वातासृक् सर्वदेहगम् ॥ ६ ॥

अथ पूर्वरूपमाह ।

कार्श्यं स्वेदा प्रवृत्तिश्च आलस्यं मन्दवह्निता ।
स्पर्शहानिश्च शैथिल्यं सन्धीनां पिड़िकास्तथा ॥७॥
स्पर्शहानिर्गुरुत्वञ्च दाहः कण्डूश्च पीडनम् ।
जङ्घाजानूरुहस्तांशपादगुल्फादिसन्धिषु ॥ ८ ॥
वर्णभेदो मण्डलानि पूर्वरूपमुदीरितम् ॥ ९ ॥

अथ वातरक्तस्य लक्षणमाह ।

वाताधिके शूलमथाङ्गकम्पः
शोथश्च रूक्षोऽसितवर्णयुक्तः ।
श्यावोऽथवा तोदयुतोऽतिदेहे
स्फूर्त्तिस्तथा स्यात् किल वृद्धिहानौ ॥१०॥

ये बिगड़े हुवे वायु और रुधिर कभी हाथमें और कभी पैरमें इकट्ठे होकर शीत और गर्मीके समान सब शरीरमें फैल जाते हैं ॥६

वातरक्त रोग होनेसे पहिले शरीर सूखना, पसीना न आना, आलस्य, मन्दाग्नि, स्पर्श न जान पड़ना, शिथिलता, सन्धियोंमें पीड़ा होना, शरीर भारी रहना, जलन, खुजली, सब शरीरमें पीड़ा, जांघ, पिंडुरी, हाथ, कन्धे, पैर और सन्धियोंमें पीड़ा होना, रङ्ग बदलना और शरीरमें लाल लाल मण्डल होना ये लक्षण होते हैं ॥७—९॥

जिस वातरक्त में वायु अधिक होता है उसमें, शूल, शरीर कांपना, सूजन, शरीर रूखा और काला होना अथवा थोड़ा काला होना, शरीरमें पीड़ा होनी, हर समय शरीर फरकना और

सन्ध्यङ्गुलीधमनिनाड़िशिरादिकानां
सङ्कोच एवं वपुषो ग्रहत्वम्।
शैत्यासहिष्णुत्वमतीव कम्पः
सुप्तिश्च पादेऽखिलरोमहर्षः॥ ११॥

अधिकरक्तस्वातरक्तमाह।

रक्ताधिके शोथरुजोऽतिघोरा-
ताम्रेन्द्रगोपप्रतिमश्च शोफः।
स्निग्धैश्च रूक्षैर्न हि शान्तिमेति
कण्डून्वितो क्लेदयुतोऽतिघोरः॥ १२॥

अथ पित्ताधिकस्वातरक्तमाह।

स्वेदोऽतिदाहो मदमोहसम्भवः
मूर्च्छा-पिपासारुचि-तोदविड्ग्रहाः।
शोथस्य पाकं किल शीघ्रमेति वै
स्पर्शासहत्वं भृशमुष्णतापि च॥ १३॥

थोड़े समयमें रोगका घटना, बढ़ना, सन्धि, अङ्गुली, नाड़ी, धमनी और शिरा आदिका सिकुड़ जाना, शरीर स्तम्भन होना, सर्दीका न सहा जाना, शरीर कांपना, पैरमें स्पर्श न जान पड़ना और सब शरीरोंके रोंये खड़े होना, ये लक्षण होते हैं॥ १०॥ ११॥

जिस वातरक्त में रुधिर अधिक होता है उसमें शरीर सूजना, भयानक पीड़ा, तांबे या वीरबहोटीके समान सूजनका रङ्ग, चिकनी और रूखी औषधियोंसे सूजन न उतरना, खुजली, पसीना ये लक्षण होते हैं; जिस वातरक्त में पित्त अधिक होता है उसमें अधिक पसीना आना, जलन, नशा, मूर्च्छा, घुमनी, प्यास, अरुचि, शरीर

अथ कफाधिकं वातरक्तमाह ।

शैत्यं गुरुत्वं करयोश्च सुप्तिः
कफाधिके द्वन्द्वभवेद्दयोश्च ।
दोषत्रयोत्थेऽखिलदोषचिह्नं
गात्रे खिलत्वे न तु वातरक्ते ॥ १४ ॥

अथोपद्रवानाह ।

शिरःपीडा-मूर्च्छा-श्वसन-कसनौ कोथतनुता
ज्वरो निद्रानाशो दहनसदनं देहगुरुता ।
पिपासा सन्धीनां तुदनमधिकं स्फोटबहुता
क्लमो ग्लानिर्मोहो भ्रमपवनरोधश्च बहुशः ॥ १५ ॥
हिक्का विसर्पपाकौ च तोदः स्याद् वातरक्तके ।
अन्येऽप्युपद्रवाः सन्ति दुर्बलस्य भवन्ति ये ॥ १६ ॥

में पीड़ा, विष्टा रुकना, सूजनका शीघ्र पकना और स्पर्श न सहा जाना ये लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

जिस वातरक्त में कफ अधिक होता है उसमें हाथठण्डे, भारी और सोयेसे रहते हैं। दो दोषोंसे उत्पन्न हुवेमें दोनोंके लक्षण और सन्निपातसे उत्पन्न हुवे में सब दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

शिरमें पीड़ा, मूर्च्छा, सांस, खांसी, दाफड़, ज्वर, नींद न आना, मन्दाग्नि, शरीर भारी रहना, सान्धियों में पीड़ा होना, फुड़िया, क्लम, ग्लानि, मूर्च्छा, घुमनी, वायु रुकना, हिचकी, विसर्प और शरीरमें पीड़ा होना आदि अनेक उपद्रव भी वातरक्त में होते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

साध्यत्वादिकमाह।

साध्यम्बिनोपद्रवैर्याप्यञ्चैकाङ्गगं पुनः।
असाध्यम्मोहसंयुक्तमुपद्रवयुतञ्च यत् ॥ १७ ॥

अथ लक्षणान्तरमाह।

एकदोषोत्थितं साध्यं याप्यं दोषद्वयोद्भवम्।
असाध्यं सन्निपातोत्थं सोपद्रवमथानवम् ॥ १८ ॥

इति वातरक्तनिदानम्।

अथ चिकित्सा।

वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि।
क्रुद्धः संदूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ॥ १९ ॥
उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वातशोणितम्।
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरन्त्वन्तराश्रयम् ॥ २० ॥

उपद्रव रहित वातरक्त साध्य, एक शरीरमें उत्पन्न हुआ कष्टसाध्य और जिसमें मूर्च्छा आदि उपद्रव होय सो असाध्य है ॥१७॥ एक दोषसे उत्पन्न हुआ साध्य, दो दोषसे उत्पन्न हुआ कष्टसाध्य और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ वातरक्त असाध्य है ॥ १८ ॥

आगे चिकित्सा लिखते हैं।

जब बढ़ा हुआ वायु बढ़े हुवे रक्त से मार्ग में रुक जाता है तब वातरक्त नामक रोग उत्पन्न होता है, वातरक्त दो प्रकारका होता है एक उत्तान, दूसरा गम्भीर, जो रक्त और मांसमें होय उसे उत्तान और जो अन्तरमें होय उसे गम्भीर कहते हैं ॥१९॥२०

आढ़क्यश्चणका मुद्गा मसूराः समुकुष्टकाः ।
यूषार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ २१ ॥
पुराणा यवगोधूमनीवाराः शालिषष्टिकाः ।
भोजनार्थे हिता गव्यं माहिषाजपयो हितम् ॥२२॥

हरीतकीः प्राश्य समं गुड़ेन
तिस्रोऽथवा पञ्च ततो गुडूच्याः ।
क्वाथोऽनुपीतः शमयत्यवश्यं
प्रभिन्नमाजानुजवातरक्तम् ॥ २३ ॥

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतसाधितम् ।
क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥२४॥
इति पटोलादिः ।

सम्पाकामृतवासानामेरण्डस्नेहसंयुतम् ।

वातरक्त रोगमें अरहर, चना, मूंग, मसूर और मौठ की बहुत घी पड़ी दाल,पुराने जौ,गेहूं,नीवार,(तृणधान्य) साठीधान, गौका दूध, भैंसका दूध और बकरी का दूध पथ्य है ॥२१॥२२॥

पांच या तीन हर्रें, समान गुड़ में मिलाकर खाय और ऊपर से गुरिचका काढ़ा पिये तो जङ्घा तक प्राप्त वातरक्त भी अवश्य ही दूर हो जाता है ॥ २३ ॥

परवर पत्ती, कुटकी, प्रियंगु, हर्रें, बहेड़ा, आवला और गुरिच का काढ़ा पीने से दाहयुक्त वातरक्त दूर होजाता है। इसका नाम पटोलादि क्वाथ है ॥ २४ ॥

अमलतास, गुरिच और वासे के काढ़े में अरण्ड का तेल

पीत्वा क्वाथमसृग्वातं क्रमात् सर्वाङ्गजं जयेत् ॥२५॥

इति सम्पाकादिः।

गोधूमचूर्णाजपयोघृतञ्च
स छागदुग्धोरुबुबीजकल्कः।
लेपे विधेयं शतधौत-सर्पिः
सेके पयश्चाविकमेव शस्तम् ॥ २६ ॥

गुडुच्याः स्वरसं चूर्णं कल्कं वा क्वाथमेव वा।
प्रभूतकालमासेव्यमुच्यते वातशोणितात् ॥ २७ ॥

इति गुडूचीयोगः।

लेपे पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः।

इति तिलयोगः।

निम्बामृताभयाधात्री प्रत्येकञ्च पलोन्मितम् ॥२८॥
सोमराजीपलं शुण्ठी विडङ्गगजाकणाः।

मिलाकर पीनेसे सब शरीर का वातरक्त दूर होजाता है इस का नाम सम्पाकादि क्वाथ है ॥ २५ ॥

गेहूं का चूर्ण, बकरीका दूध, घी, अथवा बकरी के दूध में पीसकर अरण्ड के बीज अथवा सौवार धोवा हुआ घी शरीर में लगावे और भेड़ के दूध से सेककरे ॥ २६ ॥

गुरिच का रस, उसका चूर्ण, कल्क अथवा काढ़ा बहुत दिन तक पीने से पुराना वातरक्त भी दूर होजाता है ॥ २७ ॥

भुने तिलको दूध में पीसकर लेप करने से वातरक्त दूर होता है ॥ २८ ॥

यमानी चोग्रगन्धा च जीरकं कटुकं तथा ॥ २९ ॥
खदिरं सैन्धवं क्षारं द्वे हरिद्रे च मुस्तकम् ।
देवदारु तथा कुष्ठं कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ॥ ३० ॥
सर्वं संचूर्णितं कृत्वा सूक्ष्मवस्त्रेण छाणयेत् ।
शाणमात्रन्तु भोक्तव्यं चिञ्चाक्काथं पिबेदनु ॥ ३१ ॥
मासमात्रप्रयोगेण भवेत् काञ्चनसन्निभः ।
वातशोणितमत्युग्रं श्वित्रमौडुम्बरं तथा ॥ ३२ ॥
कोठं चर्म्मदलाख्यञ्च सिध्मं पामां च [illegible]ताम् ।
कण्डूविचर्चिकाकारु दद्रुमण्डलकिट्टिमम् ॥ ३३ ॥
सर्वाण्येव निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
आमवातकृतं शोथमुदरं सर्वरूपिणम् ॥ ३४ ॥
प्लीहानं गुल्मरोगञ्च वायुरोगं सकामलम् ।
सर्वान् कण्डूव्रणांश्चैव हरते नात्र संशयः ॥ ३५ ॥

नीम, हर्र, बहेड़ा और आमला एक एक पल, बाकुची एक पल, सोंठ, विड़ङ्ग, पवाड़ के बीज, पीपल, अजमाइन, वच, जीरा, चिरायता, खैर, सेन्धानमक, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, मोथा, देवदारु और कूट, एक एक कर्ष इन सबको पीसकर कपड़े में छान लेय, फिर रोगीको एकशाण खिलाकर ऊपर से इमलीका काढ़ा पिला देय, इसे एक महीना पीने से रोगी का शरीर सोने के समान हो जाता है, और वातरक्त, श्वित्र, औदुम्बर, कोठ, चर्म्मदल, सिध्म, पामा, कंडू, विचर्चिका, काकु, दद्रु, मण्डल, किटिम, आमवातसे उत्पन्न हुआ शोथ, सब दोषों से उत्पन्न हुआ उदररोग, पिलही, गुल्म, वायुरोग,

एतन्निम्बादिकं चूर्णं प्राह नागार्जुनोमुनिः ॥ ३६ ॥

इति निम्बादिचूर्णम्।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां तैलं सिद्धं पयः समम्।
वातरक्तं निहन्त्याशु नात्र कार्य्या विचारणा ॥३७॥

इति स्वल्पगुडूचीतैलम्।

गुडूच्यास्तु तुलाक्वाथं जलद्रोणे विपाचयेत्।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३८ ॥
शतपुष्पाभयाव्योषरास्नाचन्दनमुस्तकम्।
अजमोदा हरिद्रे द्वे कुष्ठधान्यकपद्मकम् ॥ ३९ ॥
विडङ्गं तेजपत्रञ्च वचा मांसी कुचन्दनम्।
एषां द्विकार्षिकैः कल्कैर्विपचेन्मतिमान् भिषक्।

कामला, सब प्रकार की खुजली और सब प्रकार के व्रण इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे बिजली गिरने से वृक्ष, भगवान् नागार्जुन मुनिने इसका नाम निम्बादि चूर्ण लिखा है ॥२८॥३६

गुरिच के काढ़े में गुरिच का कल्क डालकर चौथाई तेल और उसके समान दूध डालकर पकावे; इस तेल से शीघ्र ही वातरक्त दूर होजाते हैं इसका नाम लघुगुडूची तेल है ॥३७

एक तुला गुरिच कूटकर एक द्रोण पानी में पकावे, जब चौथाई पानी रहजाय, तब उतारकर छान लेय; उसमें एक प्रस्थ तेल, सौंफ, हर्र, सोंठ, मिर्च, पीपल, रास्ना, चन्दन, मोथा, अजमोदा, हलदी, दारुहलदी, कूट, धनिया, पद्माख, विड़ङ्ग, तेजपात, वच, जटामासी और लालचन्दन इन, सबको

वातरक्तं निहन्त्याशु साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ४० ॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव तथैव सान्निपातिकम् ।
नाशयेत्तिमिरं घोरं गुडुचीतैलमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

इति मध्यमगुडुचीतैलम् ।

शतं छिन्नरुहायाश्च जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४२ ॥
क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात् कल्कानेतान् प्रयत्नतः ।
अश्वगन्धा विदारी च काकोल्यौ हरिचन्दनम् ॥४३॥
शतावरी चातिबला श्वदंष्ट्रा बृहती-द्वयम् ।
क्रिमिघ्नं त्रिफला रास्ना त्रायमाणा च शारिवा ॥४४॥
जीवन्ती ग्रन्थिकं व्योषं वाकुची भेकपर्णिका ।
विशाला ग्रन्थिपर्णश्च मञ्जिष्ठा चन्दनं निशा ॥४५॥

दो दो कर्ष कल्क बनाकर तेल में डालदेय और पकावे, इस से साध्य अथवा असाध्य, एक, दो अथवा तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ वातरक्त और तिमिररोग दूर होजाते हैं इसका नाम मध्यम गुडूची तेल है ॥ ३८ ॥ ४१ ॥

एकसौ पल गुरिच कूटकर एकद्रोण पानीमें पकावे, जब चौथाई पानी रहजाय, तब उसहीमें एकप्रस्थ तेल, चारप्रस्थ दूध, असगन्ध, बिलाईकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, पीलाचन्दन, शतावर, गुलशकरी, गोखुरू, दोनों कटहली, विड़ङ्ग, हर्र, बहेड़ा, आमला, रासन, त्रायमणा, सरिवन, अरनी, पिपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, वाकुची, ब्राह्मी, इन्द्रायण, चोरक, मंजीठ, चन्दन, हलदी,

शतावरी सप्तपर्णी च कार्षिकान्यथ कल्पयेत् ।
पानाभ्यञ्जननस्येषु वातरक्ते प्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥
वातरक्तमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु ।
हनुस्तम्भं प्रमेहञ्च कामलां पाण्डुतां जयेत् ॥ ४७ ॥
विस्फोटञ्च विसर्पञ्च नाड़ीव्रणभगन्दरम् ।
विचर्चिकां गात्रकण्डुं पाददाहं विशेषतः ॥ ४८ ॥
एतत्तैलवरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम् ।
आत्रेयनिर्मितं चैव बलवर्णकरं स्मृतम् ॥ ४९ ॥

इति वृहद्गुडुचीतैलम् ।

विषतरुफलमज्जप्रस्थयुग्मञ्च शिग्रु-
स्वरसलकुचवारिप्रस्थमेकैकशश्च ।
कनकवरुणचित्रापत्रनिर्गुण्डिकास्नुक्
स्वरसतुरगगन्धावैजयन्तीरसश्च ॥ ५० ॥

शतावर और छतिवन इन सबको एक एक कर्ष कल्क करके मिला देय और पकावैं, फिर वातरक्त में खाने और लगाने को देय इससे वातरक्त, उदावर्त, अठारह प्रकार के कुष्ट, हनुस्तम्भ, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, विस्फोटक, विसर्प, नाड़ीव्रण, भगंदर, विचर्चिका, खुजली और पाददाह रोग, दूर होजाते हैं, इस उत्तम तैलसे बुढ़ापा दूर होता है, भगवान आत्रेय मुनिने इसका नाम वृहद्गुडुचीतैल लिखा है ॥ ४२ ॥ ४९ ॥

नवीन कुचले की गिरी दोप्रस्थ, सहजने का रस दोप्रस्थ, लकुचका रस एकप्रस्थ, धतूरा, वरुना, चित्रवार, थूहर,

पृथगिति परिकल्प्य प्रस्थयुग्मेन युग्मे
विषतरुफलमज्जातुल्यतैलं विपक्कम् ।
लशुनसरलयष्टीकुष्टसिन्धूत्थयुक्तं
दहनतिमिरकृष्णाकल्कयुक्तं सुसिद्धम् ॥
हरति सकलवातान् घोररूपानसाध्यान्
प्रतिदिनमनुलेपात् सुप्तवातस्य जन्तोः ॥५१॥
कुष्ठमष्टादशविधं द्विविधं वातशोणितम् ।
वैवर्ण्यं त्वग्गतान् दोषान् नाशयत्याशु मर्दनात् ॥५२

इति विषतिन्दुकतैलम् ।

पुनर्णवा निशानिम्बं वार्त्ताकुर्बृहतीत्वचम् ।
कण्टकारी करञ्जञ्च निर्गुण्डी वृषमूलकम् ॥ ५३ ॥
अपामार्गं पटोलञ्च धुस्तूरं दाडिमीफलम् ।
जयन्तीमूलकं दन्ती प्रत्येकं कार्षिकद्वयम् ५४ ॥

असगन्ध और अरनी इनका दोदो प्रस्थ रस, डालकर कुचलेकी गिरीके समान तेल, लहसन, शरल काष्ट, जेटीमधु, कूट, संधानमक, चीता, तिमिर और पीपल का कल्क डालकर तेल पकावै, इस तेलको प्रतिदिन लगाने से घोर असाध्य वातरक्त दूर होजाता है। वात, अठारह प्रकारके कुष्ठ, दोनों प्रकारका वातरक्त, त्वचाका रंग विगड़ जाना और त्वचाके सब दोष दूर होजाते हैं इसका नाम विषतिन्दुक तेल हैं ॥५०॥५२॥

गधापुन्ना, हलदी, नीम, बैंगन, कटहली की छाल, छोटी कटहली, करञ्जुवा, सिनुवार, वासेकी जड़, लटजीरा, परवर,

त्रिफलानां प्रदातव्यं द्विकर्षञ्च पृथक् पृथक्।
दत्त्वा छिन्नरुहायाश्च द्वात्रिंशच्च पलानि च ॥ ५५ ॥
पाचयेद् भाजनं तोयं चतुर्भागावशेषितम्।
कटुतैलस्य च प्रस्थं दुग्धञ्च तत्समं भवेत् ॥ ५६ ॥
वासकस्वरसप्रस्थं मन्दमन्देन वह्निना।
गन्धः शटी च काकोली चन्दनं ग्रन्थिकं नखी ॥५७॥
पूतिकं केशरं कुष्ठं हन्त्यस्थिमज्जगं पुनः।
हस्तपादाङ्गुलीसन्धिगलितं स्फुटितं तथा ॥ ५८ ॥
कृष्णं श्वेतं तथा रक्तं नानावर्णं सदाहकम्।
पामां विचर्चिकां कण्डूं छाया त्वच्चैव कालिनीम् ५९

धतूरा, अनारका फल चरनोकी जड़, जमालगोटेकी जड़, ये हर्र, बहेड़ा और आंवला, ये सब दो दो कर्ष, गिलोय बत्तीसपल, डालकर एकद्रोण पानीमें पकावे, जब चौथाई पानी रहजाय तब उतार कर छानलेय, फिर उस रसमें एकप्रस्थ कड़वातेल, उसीके समान दूध और एकप्रस्थ वासेका रस, गंधद्रव्य कचूर, काकोली, चन्दन, पिपरामूल, नख, करञ्जुआ, नागकेशर और कूट इनका कल्क डालकर मन्द मन्द अग्नि में पकावे, इस तेलसे हड्डी, मज्जा में प्राप्त वातरक्त हाथ, पैरकी अंगुली, सन्धि, आदि शरीर गलने और फटने पर भी वातरक्त दूर होजाता है। चाहे काला हो या सफेद हो अथवा लाल हो या अनेक वर्णवाला और दाहयुक्त ही क्यों न हो इस तेलसे अवश्य ही दूर होजाता है, पामा विचर्चिका, कण्डू, छायात्वक्, कालिनी, मसूरिका, मंडल,

मसूरिकां मण्डलञ्च ज्वलनञ्च विसर्पकम् ।
नाड़ीव्रणं घर्महीनं गात्रवैवर्ण्यं दद्रुकम् ॥ ६० ॥
निहन्ति रक्तदोषञ्च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६१ ॥

इति रुद्रतैलम् ।

पुनर्णवा निशा निम्बं वार्त्ताकु दाड़िमीफलम् ।
बृहत्यो पूतिकामूलं वासकं सिन्धुवारकम् ॥ ६२ ॥
पटोलपत्रं धूस्तूरमपामार्गजयन्तिका ।
दन्ती वरा पृथक् सर्वं कर्षद्वयमितं पुनः ॥ ६३ ॥
विषस्य द्विपलं देयं पृथग्व्योषं पलत्रयम् ।
प्रस्थञ्च सार्षपं तैलं प्रस्थाम्बुविषपत्रकम् ॥ ६४ ॥
गुडुच्यास्तु चतुःषष्टिपलक्काथरसेन च ।
वारिप्रस्थेन पक्तव्यं महारुद्रमिदं शुभम् ॥ ६५ ॥

जलन, विसर्प, नाड़ीव्रण, पसीना न आना, शरीरका रंग बिगड़ जाना, दाद और रुधिर रोग ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्य्य निकलने से अन्धकार इसका नाम रुद्रतैल है ॥५३—६१॥

गधापुना, हलदी, नीम, बैंगन, अनार का फल, कटहली, बड़ी कटहली, करंजुवेकी जड़, वासा, सिनवार, परवरके पत्ते, धतूरा, लटजीरा, अरनी, जमालगोटे की जड़, हर्र, वहेड़ा और आमला, ये सब दो दो कर्ष विष दोपल, सोंठ तीनपल, मिर्चतीनपल, पीपल तीनपल, सरसों का तेल एकप्रस्थ, वासे के पत्तोंका रस एक प्रस्थ, गुरिच का काढ़ा चौसठ पल और जल एकप्रस्थ डालकर पकावे इस तेलसे अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुआ

वातरक्तं निहन्त्याशु नानादोषसमुद्भवम् ॥ ६६ ॥
अष्टादशविधं कुष्ठं हन्ति वर्णाग्निवर्द्धनम्।
क्रिमिदुष्टव्रणाञ्चैव दाहं कण्डूं निहन्ति च ॥ ६७ ॥
अस्वेदनं महास्वेदमभ्यङ्गादेव नश्यति ॥ ६८ ॥

इति महारुद्रतैलम्।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम्।
प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥६९
द्वात्रिंशच्छिन्नरुहपलानि देयानि यत्नेन।
विपचेदप्रमत्तो दर्व्या सङ्घट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ ७० ॥
अर्द्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात्।
अवतार्य्य वस्त्रपूतं पुनरपि सम्पादयेत्पात्रे ॥७१॥
सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य्य हिमोपलप्रख्ये।
त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षड़क्षपरिमाणम् ॥७२

वातरक्त, अठारह प्रकार का कुष्ट, कीडेयुक्त बिगड़ा हुआ घाव, जलन, खुजली, पसीना न आना और अधिक पसीना आना आदिरोग नष्ट होजाते हैं इसके लगाने से तेज और अग्नि बढ़ती है इसका नाम महारुद्र तेल है ॥ ६२—६८ ॥

भैंसेकी पुतली के समान अंगवाली गूगुल एकप्रस्थ लेकर, प्रमाण के अनुसार त्रिफले के पानी में भिगोय देय, फिर बत्तीस पल, गुर्च डालकर वैद्य, सावधान होकर पकावे और करछी से चलाता रहे, जब पानी आधा जल चुके तब उतारकर छान ले और फिर चूल्हे पर चढ़ाकर पकावे, जब गाढ़ा होजाय,

क्रिमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः ।
पलमेकञ्च गुडूच्या दत्वा संचूर्ण्य यत्नेन ॥ ७३ ॥
उपयुज्य चानुपानं यूषं तोयं सुगन्धि सलिलञ्च ।
इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥७४
तनुरोधिवातशोणितमेकजमथ द्वन्द्वजं चिरोत्थञ्च ।
जयति द्रुतपरिशुष्कं स्फुटितं चाजानुजञ्चापि ॥७५॥
व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपाण्डुमेहांश्च ।
मन्दाग्निञ्च विबन्धं प्रमेहपिड़काश्च नाशयत्याशु ॥७६
सततं निसेव्यमानः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान् ।
अभिभूय जरादोषं प्रयाति कैशोरकं रूपम् ॥७७॥
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थो जलमत्र षड़ाढ़कम् ।

तब त्रिफला आधापल, त्रिकुटा छः अक्ष, विड़ङ्ग आधापल, निसोत एककर्ष, जमालगोटे की जड़ एककर्ष, ग[illegible]व एकपल, डालकर उतार लेय और रोगीको खिलावे, ऊपर से मांस का रस या सुगन्धित जल पिलावे, इसको रोगी सब समय में खा सक्ता है और इच्छानुसार आहार और विहार कर सक्ता है, इससे पुराना अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुवा वातरक्त, सूखा हुवा वातरक्त, जंघा तक फूटा हुआ वातरक्त, घाव,खांसी,कुष्ट, गुल्म, श्वयथु, उदर रोग, पाण्डु, प्रमेह, मन्दाग्नि, विबन्ध, प्रमेह पिड़िका दूर होजाती हैं, प्रतिदिन खानेसे सबरोग नष्ट होकर बुढ़ापा दूर होजाता है, मनुष्य, तरुण हो जाता है ;. इससे गुग्गुल में त्रिफले की एक एक औषधि अर्थात् हर्र, बहेड़ा,

पाकायत्तं फलं पाके क्वाथे पाकप्रधानता ॥ ७८ ॥
तस्मात् क्वाथविधौ नित्यं यतितव्यं चिकित्सकैः ॥७९

इति कैशोरगुग्गुलुः ।

कर्षद्वयं पारदस्य लौहं गन्धश्च तत्समम् ।
लौहगन्धसमं चाभ्रं गुग्गुलं कुडवद्वयम् ॥ ८० ॥
अमृताया रसप्रस्थे रसप्रस्थे फलत्रिके ।
सान्द्रीभूते रसे तस्मिन् सर्वं दत्वा विचक्षणः ॥८१॥
त्रिकटु त्रिफला दन्ती गुडुची चेन्द्रवारुणी ।
विडङ्गं नागपुष्पञ्च त्रिवृता च सुचूर्णितम् ॥ ८२ ॥
प्रत्येकं कर्षमादाय सर्वमेकत्र कारयेत् ।
भक्षयेत् कोलमात्रन्तु छिन्ना क्वाथानुपानतः ॥ ८३ ॥

आमला, एकप्रस्थ पड़ती हैं और जल छः आढ़क पड़ता है, उत्तम पाक होने ही से औषधिका फल ठीक होता है इस लिये पाक ही प्रधान है अतएव वैद्य काढ़ा पकाने ही में अधिक ध्यान देय इसका नाम कैशोर गुग्गुल है ॥६८॥७९॥

पारा दोकर्ष, लोहा दोकर्ष, गन्धक दोकर्ष, अभ्रक चार-कर्ष,गुग्गुल दोकुड़व,गुरिचका रस एकप्रस्थ और त्रिफलेका रस एकप्रस्थ इन सबको आग पर चढ़ाके पकावे, जब गाढ़ा हो जाय तब सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, जमाल-गोटे की जड़, गुरिच, इन्द्रायणी, विड़ङ्ग, नागकेशर और निसोत इन सबको एक एक कर्ष चूर्ण करके उसमें छोड़ देय और रोगी को एक कोल खिलाकर ऊपर से गुरिच का काढ़ा पिला देय,

वातरक्तं महाघोरं स्फुटितं गलितं जयेत् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं क्रिमिरोगाश्मरी तथा ॥ ८४ ॥
भगन्दरं गुदभ्रंशं श्वित्रकुष्ठं सकामलम् ।
अपचीं गण्डमालाश्च पामाकण्डूविचर्चिकाः ॥ ८५ ॥
चर्मकीलं महादद्रुं नाशयेन्नात्र संशयः ।
वातरक्तविनाशाय धन्वन्तरिकृतः पुरा ॥ ८६ ॥
रसाभ्रगुग्गुलुः ख्यातो वातरक्ते मृतोपमः ॥ ८७ ॥

इति रसाभ्रगुग्गुलुः ।

पारदं गन्धकं लौहं घनं तालं मनःशिला ।
शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ८८ ॥
विडङ्गत्रिफलाव्योषमङ्गिष्ठिकाफणी पुनर्नवा ।
देवदारु चित्रकश्च दार्वी श्वेतापराजिता ॥ ८९ ॥

इससे भयानक वातरक्त, अठारह प्रकार का कुष्ठ, कृमिरोग, अश्मरी, भगन्दर, गुदभ्रंश, सफेद कुष्ठ, कामला, अपची, गण्डमाला, पामा, खुजली, विचर्चिका, चर्मकील और घोरदाद, आदिरोग दूर होजाते हैं ; यह औषधी वातरक्त के लिये अमृत के समान है, धन्वन्तरिने वातरक्तरोग दूर होनेके लिये यह औषधि बनाई थी इस का नाम रसाभ्रगुग्गुलु है ॥ ८० ॥ ८७ ॥

पारा, लोहा, गन्धक, अभ्रक, हरताल, मैनशिल, शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुल ये सब समान विड़ङ्ग, हर्र, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, अफीम, गधापुन्ना, देवदारु, चीता, दारुहलदी और सफेद कौआटोटी इन सबको समान लेकर चूर्ण

चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र भावयेत्।
त्रिफलाभृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥ ८० ॥
सम्भाव्य भक्षयेत् पश्चान्माषमात्रं दिने दिने।
कृत्वानुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचं समम् ॥ ८१ ॥
शाणमात्रं घृतैः कुर्य्यात् सर्ववातविकारनुत्।
वातरक्तं महाघोरं गम्भीरं सर्वजं जयेत् ॥ ८२ ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्ययम ॥ ८३ ॥
इति वातरक्तान्तकोरसः।

गरुत्वान् दरदस्तीक्ष्णं सर्वाख्यो वङ्गशक्तिके।
शुल्वञ्च गगनं फेणं रुधिरञ्च त्रिमेतकम् ॥ ८४ ॥
पातालनृपतिश्चैव वह्निमूलं सरामठम्।
त्रिकटुत्रिफलाशिग्रु चाजमोदा यमानिका ॥ ८५ ॥

बनावे, फिर इन सबको एक में मिलाकर तीन २ बार भंगरा और त्रिफले के काढ़े में भावना देय, फिर पांच २ मांसे खाने को देय और ऊपर से नीम के पत्ते फूल और छाल का एक मासेचूर्ण घी में मिलाकर खिलावे। इससे सब प्रकार के वात-रोग, वातरक्त, सब दोषों से उत्पन्न हुवा घोर गम्भीर वातरक्त, साध्यया असाध्य उपद्रवों के सहित दूर होजाता है इसका नाम वातरक्तान्तक रस है॥ ८८॥ ८३॥

सोनामाखी, ईंगुर, लोहा, पारा, बङ्ग, शक्ती (गन्धक) तांवा, अभ्रक, अफीम, गेरू, सोना, शीशा, चीते की जड़, हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, सहजना,

पिप्पलीमूलभार्गी च लशुनं जीरकद्वयम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९६ ॥
वातरक्तं महाकुष्ठं गलिताङ्गं त्रिदोषजम् ।
शोथं कण्डुञ्च रुधिरं सर्वमेतद्व्यपोहति ॥ ९७ ॥
मन्दानलामवातञ्च श्लेष्माणञ्च जलोदरम् ।
घ्राणाक्षिकर्णजिह्वानां सर्वरोगान्विनाशयेत् ॥९८॥
अत्र गरुत्वान् स्वर्णमाक्षिकं सर्वाख्योरसः ।
शक्तिका गन्धकं रुधिरं गैरिकम् ॥ ९९ ॥
पातालनृपतिः शीसकं त्रिलोचनं सुवर्णम् ॥ १००॥

इति द्वादशायसः ।

छिन्नोद्भवा कषायेण सेव्यं शुद्धं शिलाजतु ।

अजमोदा, अजवाइन, पीपलामूल, बम्हनेटी, लहसुन, जीरा, स्याहजीरा इन सबको अदरक के रस में घोट कर गोली बनावे, इससे वातरक्त, तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ गलितकुष्ट, शोथ, कण्डू, रुधिर के रोग, मन्दाग्नि, आमवात, कफरोग, जलोदर, नाक, कान और आंखके सब प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं ॥ ९४—९८ ॥

इस में गरुत्मान शब्दका अर्थ सोनामाखी, शक्तीका गन्धक, रुधिरका गेरू, पातालनृपतिका शीशा और त्रिलोचन शब्दका अर्थ सोना है। इसका नाम सर्वरस अथवा द्वादशायस है॥ ९९ ॥ १०० ॥

वातरक्त रोग में रोगीको पहिले वमन और विरेचन आदि

पञ्चकर्मविशुद्धेन वातरक्तप्रशान्तये ॥ १०१ ॥

इति शिलाजतुयोगः।

कुष्ठोक्तोऽप्यत्र दातव्यः श्रीमहातालकेश्वरः।
सर्वेश्वररस्य दातव्यस्तस्मिन् कुर्य्यादिमं विधिम् ॥१०२॥
रक्ताधिक्ये रक्तमोक्षः पादे बाहौ ललाटके।
कर्त्तव्यो रक्तरोगेषु कुष्ठिनाञ्च विशेषतः ॥१०३॥
बलिनो बहुदोषस्य वयस्थस्य शरीरिणः।
परं प्रमाणमिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥१०४॥
तालेन निहितं ताम्रं रसगन्धकसंयुतम्।
बहुधा पुटितं तालं वातरक्ते महौषधम् ॥ १०५ ॥

पांचों कर्मोंसे शुद्ध करके गुरिच के काढ़े के संग शुद्ध शिलाजीत खिलावे, इससे सब वातरक्त शान्त हो जाता है ॥ १०१ ॥

अथवा कुष्टाधिकार में लिखा महातालुकेश्वर अथवा सर्वेश्वररस देह ॥ १०२ ॥

यदि शरीर में बहुत रुधिर बढ़ गया हो तो हाथ अथवा शिर की नश छेद कर रुधिर निकाले, कुष्ट में विशेष कर रुधिर निकलना चाहिये ॥ १०३ ॥

अत्यन्त बलवान्, युवा और अधिक दोषवाले रोगीके शरीर से यदि रुधिर निकालना चाहे तो एकप्रस्थ से अधिक न होय अर्थात् दुर्बल रोगीके शरीर से इतनेसे भी कम रुधिर निकाले, यह रुधिर निकालने का अन्तिम प्रमाण है ॥१०४॥

तांबेके पत्रोंपर हरताल, पारा और गन्धकका लेप करे और आगमें फूंक देइ इस प्रकार कई बार लेप करे, और फूंके,

गुडूचीसारसंयुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः ।
वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वरोगहरं परम् ॥ १०६ ॥

सारकौमुदीधृतम् । सर्वसमलौहम् ।

गुडूचीलौहम् ।

दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ।
कटूष्णागुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ १०७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वातरक्तचिकित्साधिकारः ।

जब भस्म हो जाय तब वातरक्त रोग में खाने को देय अथवा अनेक आंचकी फुकी हरताल, रक्तपित्त रोग में परम औषध है ॥ १०५ ॥

गुरिच का सत्त, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, तज, तेजपात, इलायची और लोहा, इन सबको समान मिला कर खानेसे वातरक्तादि सब रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं, इसका नाम सारकौमुदी में सर्वसम लोह और कहीं२ गुडूची लोह भी लिखा है ॥ १०६ ॥

वातरक्तरोग में दिन में सोना, घाम में बैठना, परिश्रम मैथुन, कड़वा भारी, अभिष्यन्दी, नमका और खट्टा भोजन छोड़ देय ॥ १०७ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावली में वातरक्त चिकित्सा अधिकार समाप्त ।

अथोरुस्तम्भाधिकारः।

तत्रोरुस्तम्भस्य विप्रकृष्ट-सन्निकृष्ट-निदान-
सम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह।

गुरुशीतद्रवस्निग्धरूक्षोष्णाम्लनिषेवणैः।
जीर्णेऽजीर्णे प्रयासेन रात्रिजागरणैः श्रमैः॥ १॥
मेदः कफान्वितो वायुरामाढ्यः कुपितो भृशम्।
ऊरुमध्ये स्थितो जित्वा कफपित्ते बलाधिकः॥ २॥
स एव पूरयित्वाथ स्तिमितेन कफेन तु।
शक्थ्यस्थीनि प्रकुरुते ऊरुस्तम्भं सुदारुणम्॥ ३॥
तेन श्रान्तौ वेपमानौ शीतौ स्तब्धावसंज्ञकौ।
गुरू प्रस्फुटिताविव स्यातामूरू नरस्य तु॥ ४॥
ज्वरतन्द्रारुचिच्छर्दिगात्रमर्दनसंयुतौ।

जब मनुष्य अधिक भारी, ठंढी, पतली, चिकनी अथवा गर्मवस्तु खाता है, अन्न पचने या विना पचने पर अधिक परिश्रम करता है और रातको जागता है तब बिगड़ा हुआ वायु कफ और पित्तको अपने वश में करके, मेद, कफ और आमको संग ले कर जांघमें ठहर जाता है; तब जांघ को कफसे पूरित करके एक ओर को पैरों की हड्डीको स्तम्भित करके पूरित करता है, इस रोग में पैर थके रहते हैं, कांपते रहते हैं, ठंढे रहते हैं, स्तम्भन हो जाते हैं, चैतन्यता नष्ट हो जाती है, भारी रहते हैं और फूटने लगते हैं, ज्वर, तन्द्रा, अरुचि, वमन और

ऊरुस्तम्भः स विज्ञेय आढ्यवातोऽथवा हि सः ॥ ५ ॥

अथ पूर्वरूपमाह ।

ज्वरोऽतिनिद्रातृट्छर्दिर्ध्यानं स्तैमित्यमेव च ।
जङ्घासादो रोमहर्षः पूर्वरूपमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

तस्य रूपमाह ।

पादसुप्तिश्च सदनं वाताशङ्कातिगौरवम् ।
जङ्घोर्वोर्ग्लानिरत्यर्थं कष्टेनोद्धरणं पदोः ॥ ७ ॥
दाहः पीड़ा पादमध्ये स्पर्शस्याज्ञानमेव च ।
चलने चालने चैव गमने पीड़ने तथा ॥
असमर्थो नरस्तस्मिन् पादौ भग्नौ तु मन्यते ॥८॥

अथारिष्टमाह ।

यो वेपते दाहनिपीड़िताङ्गः
पीड़ार्दितो ना स्मृतिशून्यचेतः ।

शरीर में पीड़ा होती है, इस रोगका नाम ऊरुस्तम्भ और आढ्यवात है ॥ १—५ ॥

ऊरुस्तम्भरोग होनेसे पहिले ज्वर, अधिक निद्रा, प्यास, वमन, चिन्ता, जंघाओं की दुर्बलता, रोयें खड़े होने और ऐसा जान पड़ना कि अभी वमन होगा ये लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

इसमें पैर सो जांय, पैरों में पीड़ा होय, वायु निकलने की शङ्का बनी रहे, शरीर भारी रहे, जंघा और पिंडुरी में पीड़ा होय, पैर कष्टसे उठैं, दाह रहे, पीड़ा होय, स्पर्श न जान पड़े, चलने, पैर हटाने और छूनेमें मनुष्य असमर्थ हो जाता है ॥७॥८

जो रोगी ऊरुस्तम्भ रोगमें जलन से व्याकुल हो कर कांपे,

उपद्रवैश्चाप्यपरैस्तथाढ्यः
गच्छेत्स जन्तुः पुनरुद्भवाय ॥ ९ ॥

अथोरुस्तम्भचिकित्सा।

श्लेष्मणः क्षपणं यत्स्यान्न च मारुतकोपनम्।
तत्सर्वं सर्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १० ॥
तस्य न स्नेहनं कार्य्यं न वस्तिर्न विरेचनम्।
सर्वोरूक्षः क्रमः कार्य्यस्तत्रादौ कफ-नाशनः ॥११॥
पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः कार्य्यः क्रियाक्रमः।
शिलाजतुं गुग्गुलं वा पिप्पलीमथ नागरम् ॥१२॥
ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ १३ ॥
भल्लातकामृता शुण्ठी दारु पथ्या पुनर्णवा।

जिसके पैरमे हर समय पीड़ा बनी रहै, बुद्धिनाश हो जाय और भी अनेक उपद्रव होय वह नहीं जीता ॥ ९ ॥

आगे ऊरुस्तम्भरोग की चिकित्सा लिखते हैं—

बुद्धिमान् वैद्य ऊरुस्तम्भ रोग में ऐसी औषधी और पथ्य दे जिससे कफका नाश होय और वायु न बढ़ने पावे ॥ १० ॥

ऊरुस्तम्भ रोग में स्नेहन, वस्ती और विरेचनादिक कर्म्म नहीं किये जाते केवल कफनाशन रूखी औषधी पहिले दी जाती हैं, पीछे सब प्रकारकी वायुनाशक चिकित्सा होती है ॥ ११ ॥

शिलाजीत, गूगल, पीपल और सोंठ, इनसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर हो जाता है, इस औषधी के ऊपर दशमूल का काढ़ा अथवा गोमूत्र पियें ॥ १२—१३ ॥

पञ्चमूलोद्भयोर्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिवर्हणाः ॥ १४ ॥

इति भल्लातकादिः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलभल्लातक्काथ एव वा ।
कल्को वा समधुर्देय ऊरुस्तम्भविनाशनः ॥ १५ ॥
त्रिफला चव्यकटुकं ग्रन्थिकं मधुना लिहेत् ।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ १६ ॥
लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकान्वितम् ।
सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः ॥ १७ ॥

इति त्रिफलाचूर्णम् ।

पिप्पलीवर्द्धमानो वा माक्षिकेन गुडेन वा ।
स्नेहवर्जी पिबेदत्र चूर्णं षडूषणं नरः ॥ १८ ॥

भेलावां, गुरिच, सोंठ, देवदारु, हर्र, .पुन्ना और दोनों पञ्चमूल का काढ़ा पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोगका नाश होजाता है। अथवा पीपल, पीपलामूल और भेलावेंका काढ़ा या कल्क शहत मिलाकर सेवन करने से ऊरुस्तम्भ रोग दूर हो जाता है ॥ १४—१५ ॥

अथवा हर्र, बहेड़ा, आमला, चाभ, कुटकी और पीपलामूलका अवलेह बनाकर शहत मिलाकर खाय अथवा गोमूत्रके सङ्ग केवल गूगुल खाय ॥ १६ ॥

अथवा शहत मिलाकर सोंठ और त्रिफले का चूर्ण खाय, अथवा गर्मपानी के सङ्ग षडूषणचूर्ण पिये, अथवा गुड़ या शहत के सङ्ग वर्द्धमान पिप्पली खाय परन्तु चिकनाई न खाय॥१७।१८

हितमुष्णाम्बुना तद्वत् पिप्पल्यादिगणैः कृतम्।
क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक्॥ १९॥
गाढमूच्छादनं कुर्य्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम्।
धुस्तूरपत्ररसेन स्नुहीपत्ररसेन वा॥

सर्वं पिष्ट्वा गाढं प्रलिप्य वस्त्रादिना संवेष्ट्य बन्धयेत्॥ २०॥ इति क्षौद्रादिलेपः।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम्।
गुञ्जावीचश्च षड्निष्कं निष्कं जैपालवीजकम्॥२१॥
जयाजम्बीरधुस्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम्॥ २२॥
भावयित्वा वटी कार्य्या घृतैर्गुञ्जा चतुष्टयी।
गुञ्जाभद्रोरसो नाम्ना हिङ्गुसैन्धवसंयुतः॥ २३॥
शमयत्येव नो चित्रमुरुस्तम्भं सुदुर्जयम्॥ २४॥
इति गुञ्जाभद्रोरसः।

इति भैषज्यरत्नावल्यामूरुस्तम्भाधिकारः।

वैद्य शहत, सरसों और सांपकी वंवीकी मट्टीका ऊरुस्तम्भ रोगमें लेप करावे अर्थात् इन सब औषधियों को धतूरे या थूहर के पत्तोंके रसमें पीसकर कपड़ेसे बांध देय अथवा गर्म पानीमें पीसकर पिप्पल्यादिगण का लेप करावे॥ १९॥ २०॥

तीन निष्क शुद्धपारा, बारह निष्क शुद्धगन्धक, छः निष्क घुंघचीके वीज और एक निष्क जमालगोटेकी गिरी इन सबको एक२ दिन अरनी, जम्बीरीनीम्बू, मकोय और धतूरेके रसमें घोटे फिर चार चार रत्तीकी गोली बना ले, इसके खानेसे

दुःसाध्य ऊरुस्तम्भ रोग दूर होजाता है ; इसके सङ्ग हींग और संधानमक खानेको देय इसका नाम गुञ्जाभद्र है ॥२१—२४

इति भाषाभैषज्यरत्नावलीमें ऊरुस्तम्भरोगचिकित्सा अधिकार ।

अथामवाताधिकारः ।

तत्रामवातस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

मन्दवह्नेर्नरस्यातिमिथ्याहारविहारतः ।
व्यायामिनस्तथा स्निग्धभोजिनः पवनेन तु ॥ १ ॥
आमः सम्प्रेरितो याति कफस्थानं विशेषतः ।
तस्मात्स्पक्कोऽसौ याति धमनीर्दोषदूषितः ॥ २ ॥
स एवान्नरसोऽपक्कः अभिष्यन्द्यथ दूषितः ।
स्रोतांसि बहुवर्णाढ्याः पिच्छिलः कुरुते तदा ॥ ३ ॥
अग्निमान्द्यं गौरवञ्च हृद्रोगं सुदारुणाः ।
आमवात इति प्रोक्तो मुनिभिः शास्त्रपारगैः ॥ ४ ॥

आमवातनिदान की भाषा लिखते हैं ।

जब मन्दाग्निवाला मनुष्य नित्य ही स्वभाव से विरुद्ध भोजन और व्यवहार करता है, परिश्रम रहता है और चिकना भोजन करता है तब उसका वायु बिगड़कर आमको कफके स्थानपर लेजाता है, तब वो बिना पका हुवा आम सब नाड़ियों में प्रवेश करता है, तब उस ही बिगड़े हुए अन्नके रससे रसवाहिनी नाड़ियोंके मुख बन्द होकर शरीर भारी होजाता है, उससेही सब मार्ग बन्द होजाते हैं, अग्निमन्द होजाती है, शरीर भारी, चिकना

आमलक्षणमाह ।

आहारस्य रसोऽपक्व आमसंज्ञ उदाहृतः ।
स एवाजीर्णदो नित्यं सञ्चितो बहुरोगकृत् ॥ ५ ॥

आमवातस्य सामान्यं लक्षणमाह ।

एककाले प्रकुपितौ कफवातौ यदा भृशम् ।
त्वक्सन्धिकगतौ स्तब्धमङ्गं प्रकुरुतो बलौ ॥ ६ ॥
आमवातः स विज्ञेयो यस्मावातकफोद्भवः ॥ ७ ॥

अथ लक्षणान्तरमाह ।

गात्रपीड़ा ज्वरः सूक्ष्म आलस्यं मरुतस्तथा ।
अपाको गौरवं चैव अङ्गानां शून्यता तथा ॥ ८ ॥

अथ वाताधिकस्य लक्षणमाह ।

अग्निमान्द्यञ्च वैरस्यमालस्यमङ्गगौरवम् ।

और अनेक रङ्गवाला होजाता है शास्त्र जाननेवाले वैद्योंने उस ही भयानक रोग का नाम आमवात लिखा है ॥ १—४ ॥

भोजन के कच्चे रसको आम कहते हैं, उस ही के इकट्ठे होने से अजीर्ण आदि अनेक रोग होते हैं ॥ ५ ॥

जब एक ही समय में कफ और वात विगड़ जाते हैं और त्वक की सन्धि में स्थित होते हैं तब सब शरीर में स्तम्भन होजाता है इस ही वात कफ से उत्पन्न हुए रोगको आमवात कहते हैं ॥६॥७॥

शरीर में पीड़ा, ज्वर, प्यास, आलस्य, कच्चा वायु निकलना, शरीर भारी रहना और स्पर्श न जान पड़ना ये आमवातके सामान्य लक्षण हैं ॥ ८ ॥

जिस आमवात में वायु अधिक होता है उस में मन्दाग्नि, मुख

अनुत्साहश्च दाहश्च बहुमूत्रत्वमेव च ॥ ९ ॥
निद्रा शूलं तृषा मूर्च्छा भ्रमस्तन्द्रारुचिः क्लमः ।
जड़ता कुक्षिकाठिन्यमानाहं कूजनन्तथा ॥ १० ॥
उपद्रवा भवन्त्यन्ये तस्मिन्वाताधिकेऽधिकम् ।
यस्मिन्देहे मरुद्याति तत्र पीड़ा विशेषतः ॥ ११ ॥
गुल्फपादशिरःसन्धि हस्तपादादिवेदना ।
शोथश्च जायते घोर आमवाते मरुद्भवे ॥ १२ ॥

तस्यैव विशिष्टानि लक्षणान्याह ।

वातात्सशूलं स्तिमितं कफाच्च
कण्डून्वितं गौरवसंयुतञ्च ।
पित्तात् सदाहं खलु चोषयुक्तम्
आमादिवातं किल तद्वदवस्येत् ॥१३॥

का रस बिगड़ना, आलस्य, शरीर भारी रहना, उत्साह नाश होना, अधिक मूत्र आना, निद्रा, शूल, प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा, अरुचि, क्लम, शरीर जलन, इधर उधर न चलना, कोष्ट कठिन होना, आनाह और पेट में शब्द होना इत्यादि अनेक उपद्रव होते हैं और जिस शरीर में अधिक वायु जाता है, उसही शरीरमें अधिक पीड़ा होती है, एड़ी, पैर, शिर, सन्धि और हाथ में विशेष पीड़ा तथा सूजन होजाती है ॥ ८ ॥ १२ ॥

वायु से उत्पन्न हुये आमवात में शूल अधिक होता है। कफ से उत्पन्न हुएमें ऐसा जानपड़ता है मानों अभी वमन होगा, खुजली, शरीरों का भारीपन ये लक्षण होते हैं और पित्तसे उत्पन्न हुये में चूसने के समान पीड़ा होती है ॥ १३ ॥

साध्यत्वादिकमाह।

एकदोषोत्थितः साध्यो याप्योदोषद्वयोद्भवः।
सर्वदेहानुगोऽसाध्यः सन्निपातोत्थितस्तु यः ॥१४॥

अथामवातचिकित्सा।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च।
विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥ १५ ॥
आमवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते।
पटोलं गोक्षुरश्चैव वरुणं कारवेल्लकम् ॥ १६ ॥
यवकोद्रवशाल्यादि प्रपुराणं सतिक्तकम्।
लावादीनां तथा मांसं तक्रेण मस्तुना हितम् ॥१७॥
कार्पासास्थिकुलत्थिका तिलयवैरैरण्डमूलातसी
वर्षाभूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक्।

एक दोषसे उत्पन्न हुआ आमवात साध्य, दो दोषों से उत्पन्न हुआ कष्टसाध्य और सन्निपातसे उत्पन्न हुवा असाध्य है ॥१४॥

इत्यामवातनिदानभाषा।

आगे आमवातकी चिकित्सा लिखते हैं।

आमवात में लङ्घन, स्वेदन, अग्नि बढ़ानेवाली कडुई और तिक्त वस्तु, विरेचन, स्नेहपान और वस्तिकर्म करना उचित है ॥ १५ ॥

सब भोजन और पीनेकी वस्तुवों में पञ्चकोल अर्थात् पीपल पिपलामूल, चाभ, चीता और सोंठ का पकापानी अथवा चूर्ण मिलाले, खाने को परवल, गोखरू, वरुना, करेला, जौ, कोदों पुराने धान, तिक्तवस्तु और मट्ठा मिला लवा आदि का मांस पथ्य है ॥ १६ ॥ १७ ॥

बिनौले की गिरी, कुलथी, तिल, जौ, अरण्डकी जड़, अलसी

स्वेदस्थादिति कुर्परोदरशिरः स्फिक्पाणिपादाङ्गुली
गुल्फस्कन्धकटीरुजा विजयते सामाः शरीरानुगाः १८
एतानि समुदितानि एकैकशो वा संकुट्य काञ्जिकेन
संसिच्य वस्त्रेण पोटलद्वयं बद्धा दीप्ताग्निचुल्लापरि-
स्थितकाञ्जिकस्थाल्युपरिलिप्तसच्छिद्रशरावस्थं वाष्पतप्तं
एकैकमानीय वेदनास्थाने स्वेदयेत् ॥ १९ ॥

इति सङ्करस्वेदः ।

रूक्षस्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥ २० ॥
गोजलपिष्टं हिंस्राकेवुकशिग्रूद्भवं मूलम् ।
भाकुयुतं परिलेपात् सामः समीरणः कुत्र ।

गधापुन्ना, सनके वोज, इन सबमें कांजी मिलाकर अथवा एक एक में कांजी मिलाकर सेकनेसे, कन्धा, पेट, शिर, स्फिक, [कमरके नीचे] हाथ, पैर, अङ्गुली, एड़ी, कमर और शरीर से आमवात की पीड़ा दूर होनेके लिये स्वेदन करे, इससे ऊपर लिखे सब स्थानों की पीड़ा दूर होजाती है और आमवात भी नहीं रहता अर्थात् ऊपर लिखी सब औषधियों को मिलाकर अथवा एक एक को कांजीमें डालकर, कूटकर दो पोटली बनावे, फिर चूल्हे पर एक हण्डिया में भरकर कांजी चढ़ावे और उसके मुंहपर छेदयुक्त कसोरा ढक देय, नीचेसे आंच देइ, जब उस कसोरे के मुंह से भाफ निकलने लगे, तब एक पोटली उसके ऊपर रक्खे, जब वह गर्म होजाय, तब उससे रोगीका शरीर सेकें इतने में दूसरी पोटरी सेकें, इस पोटरीसे पीड़ाके स्थानको सेकें ॥ १८ ॥ १९ ॥

इसी प्रकार बालूसे भी स्वेदन करे, इसका नाम रूक्षस्वेद है॥२०

गायके मूत्रमें पिसे, रहसन, केवुक और दोनों सहजने की जड़

एषां समभागं गोमूत्रेण पिष्ट्वा सवेदनस्थाने लेपः ॥२

इति लेपः ।

शतपुष्पा वचा शिग्रु श्वदंष्ट्रा वरुणत्वचम् ।
सहदेवा च वर्षाभूः शटी च सहभाद्रली ॥ २२ ॥
सतकारीफलं हिङ्गु शुक्तकाञ्जिकपेषितम् ।
आमवातहरं श्रेष्ठं सुखोष्णं लेपनं हितम् ॥ २३ ॥

एतैः समभागैः शुक्तकाञ्जिकपिष्टै-
रीषदुष्णैर्लेपः शोथस्थाने ॥ २४ ॥

इति शतपुष्पादिलेपः ।

दशमूल्यमृतैरण्डरास्ना नागरदारुभिः ।
क्वाथोरुबुकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम् ॥ २५ ॥

इति दशमूलम् ।

और सांपके बिल को मिट्टी का लेप करनेसे आमवात दूर होजाता है अर्थात् इन सब औषधियों को समान लेकर गायके मूत्र में पीस कर जहां पीड़ा होय वहीं लेप करे । सौंफ, सहजना, वच, गोखुरू, वरुणवृक्ष की छाल, सहदेई, गधापुरना, कचूर, भाद्रली, धरनीके फल और हींग, इनको समान लेकर शुक्त और कांजी में पीसकर थोड़ा गर्म करके जहां पीड़ा होय वहां लेप करे, इससे आमवात दूर हो जाता है ॥ २१—२४ ॥

दशमूल, गुरिच, अरण्ड, रास्ना, सोंठ और देवदारु इनके काढ़े में ऐरंडका तेल मिलाकर पीनेसे भारी आमवात दूर हो जाता है ॥ २५ ॥

रास्नामृतारग्वध-देवदारु
त्रिकण्टकैरण्डपुनर्णवानाम् ।
क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं
जङ्घोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली ॥ २६ ॥

इति रास्नासप्तकम् ।

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम् ।
पिबेत् सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ २७ ॥

इति रास्नापञ्चकम् ।

रास्नापञ्चके रास्नासप्तके च उष्णो भेदार्थं
एरण्डतैलं प्रक्षिपन्ति वृद्धाः ॥ २८ ॥
दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा ।
कुक्षिवस्तिकटीशूले तैलमेरण्ड सम्भवम् ॥ २९ ॥

इति दशमूलम् ।

जंघा, पसुरी, पिंडुरी, कमर और पीठके शूलमें रास्न, गुरिच, किरवाला, देवदारु, गोखुरू, अरंड और गधापुनाके काढ़े में सोंउका चूर्ण मिला कर पिये इसका नाम रास्नासप्तक है ॥२६॥

रास्न, गुरिच, देवदारु, अरंड, और सोंठका काढ़ा पीने से सन्धि, हड्डी और सब शरीर में फैला हुवा आमवात दूर हो जाता है, इसका नाम रास्नापञ्चक है ॥ २७ ॥

इस रास्नापञ्चक में और ऊपर लिखे रास्नासप्तक में बूढ़े वैद्य दस्त आनेके लिये गर्म हो में अरंड का तेल मिला देते हैं ॥ २८ ॥

दशमूल के काढ़े में अथवा केवल सोंठके काढ़े में अरंडका

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः।
निहन्त्याऽसावेक एव एरण्डस्नेहकेशरी ॥ ३० ॥
इत्येरण्डतैलम्।

एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत्।
आमानिलार्त्तियुक्तो गृध्रसिहृद्वार्दितो नित्यम् ॥३१॥
इति हरीतकीयोगः।

भृष्टाद्यात् कटुतैलेऽन्नैः सक्षारग्वधपल्लवम्।
किम्वाम्लकाञ्जिके पक्वा खादेदामानिलापहम् ॥३२॥
इत्यारग्वधपत्रम्।

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत् सदा।
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ ३३ ॥
इति नागरचूर्णितम्।

तेल मिलाकर पीनेसे कोख, मूत्राशय और कमर का शूल दूर हो जाता है ॥ २९ ॥

शरीररूपी वनमें घूमनेवाले आमवातरूपी हाथीको मारने में एकला अरंडका तेल ही सिंहके समान है ॥ ३० ॥

जो रोगी प्रतिदिन विधिपूर्वक अरंडके तेल में मिलाकर हर्र खाता है, वह आमवात, गृध्रसी, हृद्रो और अर्दित रोगोंसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥

अथवा किरवाले के पत्ते कडुवे तेल में भूनकर अन्नके सङ्ग खाय अथवा खट्टीकांजी में पकाकर किरवाले के पत्ते खाय तो आमवात रोग दूर हो जाता ॥ ३२ ॥

अथवा प्रतिदिन कांजीके संग एककर्ष सोंठ का चूर्ण खाय

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनामारनालेन चूर्णितम् ।
पीत्वा विरिच्यते जन्तुरामवातहरं परम् ॥ ३४ ॥
इति विरेचनम् ।

सप्ताहं त्रिवृतश्चूर्णं त्रिवृत्क्वाथेन भावितम् ।
काञ्जिके न तु तत् पीतं रेचयेदामवातिनम् ॥३५॥
इति त्रिवृच्चूर्णम् ।

मानिमन्थस्य भागौ द्वौ यमान्यास्तद्वदेव हि ।
भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ३६ ॥
दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृताः शुभाः ।
मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ३७ ॥
पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्वस्तिजान् ग दान् ।

तो आमवात और कफवात के रोग दूर हो । हैं; इसका नाम नागरादि चूर्ण है ॥ ३३ ॥

निसोत, सेंधा और सोंठ पीसकर कांजीके संग पीने से विरेचन होता है और आमवात रोग दूर हो जाता है; इसका नाम त्रिवृतादि विरेचन है ॥ ३४ ॥

निसोत के चूर्णको निसोत के काढ़े में भिगोकर सातदिन तक पिये और ऊपर से कांजी पिये तो आमवात रोग दूर हो जाता है; इसका नाम त्रिवृच्चूर्ण है ॥ ३५ ॥

दोभाग मानिमन्थ, दोभाग अजवाइन, तीनभाग अजमोदा, पांच भाग सोंठ, बारह भाग हर्र, इन सब को पीसकर मट्ठा, कांजी और दहीके तोड़के सङ्ग पीनेसे अथवा गर्म जलके सङ्ग पीनेसे अथवा घीके सङ्ग पीनेसे आमवात, गुल्म, वस्ती और

प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनर्शांस्यानाहमेव च ॥ ३८ ॥
विबन्धं वातजान्रोगान् तथैव हस्तपादजान्।
वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

इति वैश्वानरचूर्णम्।

अजमोदामरिचपिप्पलिविडङ्गसुरदारुचित्रकशता
सैन्धवपिप्पलीमूलं भागान् वकस्य पालिकाः स्युः ॥
शुण्ठी दशपलिका स्यात् पलानि तावन्ति वृद्धदार
पथ्या पञ्चपलानि च सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य ॥ ४१ ॥
समगुड़वटकानदतश्चूर्णं वाप्युष्णवारिणा पिबतः।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकष्टाश्च ॥ ४२ ॥
विसूचिका प्रतितूनी हृद्रोगो गृध्रसी चोग्रा।
कटिवस्तिगुदस्फुटनं चैवास्थि जङ्घयोस्तीव्रम् ॥ ४३

हृदयके रोग, पिलही, ग्रन्थि, शूल, अर्श, अनाह, विबन्ध, वायु
उत्पन्न हुवे रोग, हाथ, पैरके सब रोग दूर होजाते हैं औ
वायुकी गती ठीक होजाती हैं, इसका नाम वैश्वानर चू
है ॥ ३६ ॥ ३९ ॥

अजमोद, मिर्च, पीपल, विड़ङ्ग, देवदारु, चीता, सौंप
सेंधा, पिपलामूल, ये सब एक एक पल, सोंठ दशपल, विधार
दशपल, हर्र पांचपल, इन सबको चूर्ण करके समान गु
मिलाके लड्डू बनावे, फिर रोगीको गर्म पानीके सङ्ग खिला
इससे आमवातसे उत्पन्न हुवे सब रोग, विसूचिका, प्रतितूणी
हृद्रोग, भयानक गृध्रसी, कमर, मूत्राशय, गुदा, हड्डी औ

श्वयथुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः ।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्य्यांशुविध्वस्तम् ॥४४॥

इत्यजमोदादिवटकः ।

शुण्ठी चूर्णस्य प्रस्थैकं यमान्याश्च पलाष्टकम् ।
जीरकस्य पलद्वन्द्वं धन्याकस्य पलद्वयम् ॥ ४५ ॥
पलैकं शतपुष्पाया लवङ्गस्य पलं तथा ।
टङ्कणस्य पलं ग्राह्यं मरिचस्य पलं भवेत् ॥ ४६ ॥
त्रिवृता त्रिफला क्षारपिप्पलीनां पलं पलम् ।
एतेषां सर्वचूर्णानां खण्डं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥४७॥
घृतेन गुडकीकृत्य मोदको मधुनाकृतः ।
शच्येलातेजपत्राणां कर्षं दद्याद्गुडत्वचः ॥ ४८ ॥
चतुर्भिरधिवासोऽस्य तोलैकं खादयेद्बुधः ।

जङ्घा का फूटना, सूजन, अङ्ग सन्धियों का सूजन आदि आम-वातके रोग इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्य्यके निकलने से अन्धकार, इसका नाम अजमोदादिवटक है ॥ ४०—४४ ॥

सोंठका चूर्ण एक प्रस्थ, अजवाइन का चूर्ण आठपल, जीरा दो पल, धनिया दो पल, सौंफ एक पल, लौंग एकपल, सुहागा एक पल, मिर्च एक पल, निसोत एक पल, त्रिफला एक पल, जवाखार एक पल और पीपल एक पल, इन सबका चूर्ण बना कर चौगुणा खांड़ मिलाकर, घी और शहत डालकर लड्डू बनावे, उसमें कचूर, इलायची, तेजपात और तज एक कर्ष डालकर सुगन्धित करे, फिर रोगी को एक तोला खिलावे

शरीरं वीक्ष्य मात्रास्य युक्त्या वावृटिवर्द्धनम् ॥ ४९ ।
आमवातप्रशमनः कटीग्रहविनाशनः ।
शूलघ्नो रक्तपित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः ॥ ५० ॥
श्रीमता चन्द्रनाथेन गुरुणा भाषितं मयि ।
श्रीमद्गहननाथोऽहं कृतवान् मोदकं शुभम् ॥ ५१ ॥
गजे त्वामगजेन्द्रोऽयमजीर्णबलमागतः ।
यथा सिंहो वने हन्ति दन्तिनं बलिनं शुभम् ॥ ५२ ॥
तथामवातकरिणं निहन्त्येष न संशयः ॥ ५३ ॥

इत्यामगजसिंहमोदकः ।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा ।
हिङ्गुत्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ ५४ ॥
शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।

अथवा रोगीका शरीर देखकर मात्रा की कल्पना कर लेइ, अथवा घटा बढ़ाकर मात्रा देइ, इससे आमवात, कटिस्तम्भ, शूल, रक्तपित्त और अम्लपित्त दूर होजाते हैं, श्रीमान् चन्द्रनाथने मुझगहननाथके ऊपर कृपा करके यह मोदक प्रकाशित किया था और मैंने जगत् में प्रकाशित कर दिया, जैसे सिंह हाथीको वनमें मार डालता है, वैसे ही यह मोदक अजीर्ण,बलयुक्त आमवातरूपी हाथीको मारकर दूर करता है, इसका नाम आमगजसिंह मोदक है ॥ ४५ ॥ ५३ ॥

लहसुन सौ पल, तिल एक कुड़व, हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, पांचो नमक, सौंफ, कूट, पिपरा

अजमोदा यमानी च धन्याकश्चापि बुद्धिमान् ॥५५॥
प्रत्येकन्तु पलञ्चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
घृतभाण्डे दृढे चैतत् स्थापयेत् दिनषोडश ॥ ५६ ॥
प्रक्षिप्य तैलमानीञ्च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च ।
खादेत् कर्षप्रमाणञ्च तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ ५७ ॥
आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रये ।
अपस्मारेऽनले मन्दे कासश्वासोदरेषु च ॥ ५८ ॥
उन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तोः प्रशस्यते ॥ ५९ ॥
सिद्धफलोऽयम् । इति रसोनपिण्डः ।

रसोनं पलशतं क्षुण्णं तदर्द्धं निस्तुषात्तिलात् ।
पात्रं गव्यस्य तक्रस्य पिष्ट्वा चैतानि संक्षिपेत् ॥ ६० ॥
त्रिकटु धान्यकं चव्यं चित्रकं गजपिप्पली ।

मूल, चीता, अजमोदा, अजवाइन और धनिया इन सबको एक एक पल लेकर चूर्ण बनावे और सोलह दिनतक आठपल तेल और आधा प्रस्थ कांजी मिलाकर घीके बरतन में रख छोड़े, फिर रोगीको जल अथवा मद्यके सङ्ग एक एक कर्ष खिलावे, इससे आमवात, सर्वाङ्गवात, एकाङ्गवात, अपस्मार, मन्दाग्नि, खांसी, सांस, पेटके रोग, उन्माद, शूल और वायुसे टूटे हुए शरीर तथा और भी सब रोग दूर होजाते हैं, इसका नाम सिद्धरसोन पिण्ड है ॥ ५४—५९ ॥

सौपल कुटा हुवा लहसुन, पचास पल भूसीरहित तिल, दोनोंको एक कुड़व गायका मट्ठा डालकर पीसे, फिर उस

अजमोदा त्वगेला च ग्रन्थिकञ्च पलांशिकम् ॥ ६१ ॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ पलांशं मरिचस्य च।
कुष्ठाजाज्योश्च चत्वारि मधुनः कुडवं तथा ॥ ६२ ॥
आर्द्रकस्य च चत्वारि सर्पिषोऽष्टौ पलानि च।
तिलतैलस्य तावन्ति शुक्तकस्यापि विंशतिः ॥ ६३ ॥
सिद्धार्थकस्य चत्वारि राजिकायास्तथैव च।
कर्षप्रमाणं दातव्यं हिङ्गुर्लवणपञ्चकम् ॥ ६४ ॥
एकीकृत्य दृढ़े कुम्भे धान्यराशौ निधापयेत्।
द्वादशाहात् समुद्धृत्य प्रातः खाद्यं यथाबलम् ॥ ६५ ॥
सुरां सौवीरकं सीधु क्षीरञ्चानुपिबेन्नरः।
जीर्णे यथेप्सितं भोज्यं दधिपिष्टान्नवर्जितम् ॥ ६६ ॥
एकमासप्रयोगेन सर्वान् व्याधीन् व्यपोहति।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ६७ ॥

में सोंठ, मिर्च, पीपल, धनियां, आभ, चीता, गजपीपल, अजमोदा, तज, इलायची और पिपरामूल एक एक पल, शकर आठ पल, मिर्च एक पल, कूट चार पल, जीरा चार पल, शहत एक कुड़व, अदरक का रस चार पल, घी आठ पल, तिलका तेल आठ पल, शुक्त बीस पल, सफेद सरसों चार पल, राई चार पल, हींग एक कर्ष और पांचो नमक एक कर्ष, इन सबको मिलाकर घड़ेमें भरे और धानके ढेरमें दवा दे, फिर बारह दिन बीतने पर निकाले और खिलावे, ऊपरसे मद्य, सौवीरक, सीधु [मद्य भेद] अथवा दूध पिलावे, जब औषधी पच जाय तब रोगी जो चाहे सो खाय परन्तु कोई भोजन, दही व पिट्ठी पड़ा न होय, इस औषधी को

विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव प्रमेहानपि विंशतिम् ।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि गुल्मं पञ्चविधं तथा ॥६८॥
श्वयथुं योनिशूलञ्च सर्वमाशु विनाशयेत् ॥ ६८ ॥
क्षतसन्ध्यस्थिभग्नानां सन्धानकरणः परः ।
दृष्टेर्लकरोहृद्य आयुष्यो बलवर्द्धनः ॥ ७० ॥
महारसोनपिण्डोऽयमामवातकुलान्तकः ।

सर्वमेकीकृत्य चण्डातपे शोषयित्वा स्निग्धभाण्डे संस्थाप्य धान्यराशौ द्वादशदिनानि स्थापयेत् ॥७१॥

इति महारसोनपिण्डः ।

वातारितैलसंयुक्तं गन्धकं पुरसंयुतम् ।
फलत्रययुतं कृत्वा पिष्टयित्वा चिरं रुजौ ॥ ७२ ॥
भक्षयेत् प्रत्यहं प्रातरुष्णातोयानुपानतः ।
दिने दिने प्रयोक्तव्यं माषमेकं निरन्तरम् ॥ ७३ ॥

एक महीना खानेसे अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस पित्त रोग, बीस कफरोग, बीस प्रमेह, छः बवासीर, पांचो गुल्म, श्वयथु और योनिरोग दूर होजाते हैं, टूटी हुई सन्धि जुड़ जाती है, दृष्टि, आयु, बल और अग्नि बहुत बढ़ जाती है, हृदय प्रसन्न होता है, इसके बनाने की यह विधि है कि सब औषधियों को मिलाकर तेज घाम में सुखावे, फिर चिकने बरतन में भरकर बारह दिनतक धानके ढेरमें दबा कर रख दे, इसका नाम महारसोनपिण्ड है ॥ ६०—७१ ॥

एरण्डके तेलमें गन्धक, गूगुल, हर्र, बहेड़ा और आमला, मिला कर कूटकर पिट्ठी बनावे, उसे बहुत दिनतक गर्म पानीके संग

आमवातं कटीशूलं गृध्रसीं खञ्जपङ्गुताम् ।
वातरक्तं सशोथञ्च सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥ ७४ ॥
शमयेद्बहुशो दृष्टमपि वैद्यैर्विवर्जितम् ॥ ७५ ॥

इति वातारिगुग्गुलुः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यमानी कारवी तथा ।
विडङ्गान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ ७६ ॥
चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम् ।
त्रिफला मुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ ७७ ॥
तालीशपत्रं पत्रञ्च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलम् ॥७८॥
संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।
अतोमात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ७९ ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।

खानेसे आमवात, कमरका शूल, गृध्रसी, खञ्ज, पङ्गुता, वातरक्त और दाहयुक्त क्रोष्टुशीर्ष नामक रोग दूर होजाते हैं, यदि अनेक वैद्य रोगीको छोड़ दें तो भी इस औषधीसे अच्छा होजाता है, इसकी मात्रा एक मासे की है, इसका नाम वातारि गुग्गुलु है ॥ ७२—७५ ॥

चीता, पिपलामूल, अजवाइन, सौंफ, विडङ्ग, अजमोदा, जीरा, देवदारु, चाभ, इलायची, सेंधा, कूट, रास्ना, गोखरू, धनिया, हर्र, बहेड़ा, आमला, मोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, खस, जौका खार, तालीशपत्र, और तेजपात, ये सब समान लेकर चूर्ण बनावे, इस चूर्णके समान गूगुल डालकर घोटे, फिर चिकने बर-

आमवाताढ्यवाताद्यान् क्रिमिदुष्टव्रणानि च ॥ ८० ॥
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ॥ ८१ ॥
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानपि ॥ ८२ ॥
इति योगराजगुग्गुलुः ।

त्रिकटुत्रिफलापाठा शताह्वा रजनीद्वयम् ।
अजमोदा वचा हिङ्गु हवुषा हस्तिपिप्पली ॥ ८३ ॥
उपकुञ्चि शटी धान्यं विडङ्गं सौवर्चलं तथा ।
सैन्धवं पिप्पलीमूलं त्वगेला पत्रकेशरम् ॥ ८४ ॥
फणिज्झकञ्च लोहञ्च स्वर्जिकञ्च त्रिकण्टकम् ।
रास्ना चातिविषा शुण्ठी यवक्षाराम्लवेतसम् ॥ ८५ ॥
चित्रकं पुष्करं चव्यं वृक्षाम्लं दाड़िमं त्वचं ।

तब में भरकर उठा रक्खे. इससे आमवात, आढ्यवात, क्रिमिरोग, बिगड़े हुये घाव, पिलही, गुल्म, पेटके रोग, आनाह, अर्श और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं। सन्धि अथवा मज्जामें गत वायु भी निकल जाता है. यह औषधी अमृतके समान है. इसका नाम योगराज गुग्गुलु है ॥ ७६—८२ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हड़, बहेड़ा, आमला, पाढ़ा, सौंफ, हल्दी, दारुहल्दी, अजमोदा, वच, हींग, खुरासानी अजवाइन, गजपीपल, कलौंजी, कचूर, धनिया, विड़नोन, सौंचल, सैंधानमक, पिपलामूल, तज, इलायची, तेजपात, नागकेशर, वनतुलसी, लोहा, सज्जी, गोखरू, रास्ना, अतीस, सोंठ, जवाखार, अमलवेत, चीता, पुहकरमूल, चाभ, तिन्तड़ीक, अनार, [illegible], असगन्ध,

अश्वगन्धा त्रिवृद्दन्ती बदरं देवदारु च ॥ ८६ ॥
हरिद्रा कटुका मूर्वा त्रायमाणा दुरालभा ।
विडङ्गं मृतवङ्गञ्च यमानी वासकाभ्रकम् ॥ ८७ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शोधितं गुग्गुलुञ्चैव सर्वचूर्णसमं नयेत् ॥ ८८ ॥
घृतेन पिष्टयित्वा च स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।
रसवातेन ये भग्ना कटिभग्नाश्च ये जनाः ॥ ८९ ॥
एकाङ्गं शुष्यते येषां कुष्ठं वा क्षिपतोत्तरम् ।
पादौ विस्तारितौ येषां येषां वा गृध्रसीग्रहः ॥ ९० ॥
सन्धिवातं क्रोष्टुशीर्षं वातं सर्वशरीरगम् ।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ९१ ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव हन्त्यवश्यं न संशयः ।
अयं बृहद्योगराजगुग्गुलुः सर्ववातहा ॥ ९२ ॥

इति बृहद्योगराजगुग्गुलुः ।

निसोत, जमालगोटे की जड़, बेर, देवदारु, हल्दी, कुटकी, मुरहर, त्रायमाणा, जवासा, विडङ्ग, वङ्गकी भस्म, अजवाइन, वासा और अभ्रक इन सब को एक एक भाग लेकर चूर्ण बनावे इस सब चूर्णके समान गूगुल डालकर और घी डालकर पीसे, फिर चिकने बरतन में भरकर रख देय, इससे गृध्रसी, क्रोष्टुशीर्ष, सब शरीरगत वायु, अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकार के पित्तरोग और बीस प्रकारके कफरोग अवश्य ही निःसन्देह दूर होजाते हैं, सन्निपात, एकाङ्ग शोष, पित्तसे उत्पन्न हुआ कुष्ठ और वातसे टूटी हुई

कुट्टितां गुग्गुलोर्मानीं कटुतैलपलाष्टकम् ।
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ ९३ ॥
पादशेषञ्च पूतञ्च पुनरेतद्विमिश्रयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विड़ङ्गा नरकेलिकम् ॥ ९४ ॥
गुडूच्याग्नि त्रिवृद्दन्ति चवी शूरणमानकम् ।
पारदं गन्धकञ्चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ ९५ ॥
सहस्रं कानकफलं सिद्धे संचूर्ण्य निक्षिपेत् ।
ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ ९६ ॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं वड़वानलसन्निभम् ।
धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ ९७ ॥
आमवातं शिरोवातं सन्धिवातं सुदारुणम् ।

कमर के रोग शीघ्र दूर होजाते हैं इसका नाम वृहद्योगराज गुग्गुल है ॥ ८३ ॥ ९२ ॥

आठपल, गूगुल और आठपल तेल इन दोनोंको मिलाकर कूटे; फिर हर्र, दोप्रस्थ, वहेड़ा दोप्रस्थ, आमला दोप्रस्थ, इन तीनोंको डेढ़ द्रोण पानी में पकावे, जब चौथाई पानी रहजाय, तब उतार कर छानले और यह काढ़ा उस गूगुल में मिलाय दे, फिर सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेड़ा, आमला, मोथा, विड़ङ्ग, नरियल, गुरिच, चीता, निसोत, जमालगोटे की जड़, चाई, सूरन, (जमीकन्द) पारा और गन्धक, ये सब एक एक शुक्ती और धतूरे के फल एक सहस्र इन सबको चूर्ण करके मिलाय देय, फिर रोगी को दोमासे खिलावे, ऊपर से गरम पानी पिलाय देय, इस से मन्द अग्नि भी वाड़वानल के समान तेज होजाती है, धातु, अवस्था,

जानुजङ्घाश्रितं वातं सकटीग्रहमेव च ॥ ९८ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च भग्नञ्च तिमिरोदरे।
अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ ९९ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं चयञ्च विषमज्वरम्।
प्लीहानं श्लीपदं गुल्मं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥१००॥
शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत्।
मेदःकफामसङ्घातं व्याधिवारणदर्पहा ॥ १०१ ॥
सिंहनाद इतिख्यातो योगोऽयममृतोपमः।

इति सिंहनादगुग्गुलुः।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यमानिका।
स्वर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विड़म् ॥१०२
वचाजमोदा मधुकं जोरकं पौष्करं कणा।
एतान्यर्द्धपलांशानि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् ॥१०३॥

बल और वीर्य्य बहुत बढ़ते हैं, आमवात, शिरोवात, भयानक गँठिया, जंघा और पिंडुरी में स्थितवायु, कटिस्तम्भ, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न, तिमिर, उदर रोग, अम्लपित्त, कुष्ट, प्रमेह, गुदानिकलना, पांचो प्रकार की खांसी, सांस, चय, विषमज्वर, पिलही, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, कफवृद्धी, अन्त्रवृद्धी, शूल और अर्शरोग दूर होजाते हैं, इस अमृत समान औषधिका नाम सिंहनाद गुग्गुल है इससे रोग रूपी हाथी का अभिमान नष्ट हो जाता है ॥ ८२ ॥ १०१ ॥

सेन्धा, हर्र, रहसन, सौंफ, अजमाइन, सज्जी, मिर्च, कूट, सोंठ, सौंचल, विड़नोन, वच, अजमोदा, जेठीमधु, जीरा, पुष्कर मूल

प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थाम्बु-शतपुष्पजम् ।
काञ्जिकं द्विगुणं दत्त्वा तथा मस्तु शनैः पचेत् ॥१०४
सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ।
पाने चाभ्यञ्जने वस्तौ कुरुतेऽग्निबलं भृशम् ॥१०५॥
वातार्त्तवङ्क्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे ।
शूले हृत्पार्श्वपृष्ठेषु कृच्छ्रेऽश्मरिनिपीड़िते ॥ १०६ ॥
वाह्यायामार्दितेऽनाहे अन्त्रवृद्धिनिपीड़िते ।
अन्यांश्चानिलजान् रोगान्नाशयत्याशु देहिनाम् ॥१०७
इति वृहत्सैन्धवाद्यं तैलम् ।

सैन्धवं देवकाष्ठञ्च वचा शुण्ठी च कट्फलम् ॥१०८
शताह्वा मुस्तकं चव्यं मेदे मलहरं त्रिवृत् ।
कुञ्जलस्य त्वचं बालं चित्रकं ब्रह्मयष्टिका ॥ १०९ ॥

और पीपल इन सबको आधा २ पल लेकर पिट्ठी बनावे, फिर एकप्रस्थ अरण्डका तेल, एकप्रस्थ सौंफका काढ़ा और द्विगुनी काञ्जी, तथा द्विगुना दही का तोड़ डालकर धीरे २ पकावै, इस तेलके खाने, लगाने और पिचकारीमें देनेसे बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धी होती है । आमवात, कटिवात, जंघावात, ऊरु-वात, सन्धिवात, शूल, पसुलीकी पीड़ा, पीठ की पीड़ा, हृदय शूल, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, वाह्यायाम, अर्दित, आनाह, अन्त्र-वृद्धि, ग्रन्थि और वायु के सबरोग दूर होजाते हैं, इसका नाम वृहत् सैन्धवादि तैल ॥ १०२ ॥ १०७ ॥

सैन्धानमक, देवदारु, वच, सोंठ, कांयफल, सौंफ, मोथा, चाभ, मेदा, महामेदा, किरवाला, निसोत, अमलबेत की छाल,

शटीविड़ङ्गमधुकं रेणुकातिविषारुवु।
अम्बष्ठी नीलिनी दन्तीमूलं मरिचमेव च ॥ ११० ॥
अजमोदा पिप्पली च कुष्ठं रास्ना च ग्रन्थिकम्।
एषां कर्षमितैः कल्कैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥१११॥
प्रस्थश्च कटुतैलस्य मूर्च्छितस्य यथाविधि।
एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गात् सर्ववातनुत् ॥ ११२ ॥
विशेषेणामवातेषु कटीजानूरुसन्धिषु।
हृत्पार्श्वसर्वगात्रेषु शूलञ्चैव विनाशयेत् ॥ ११३ ॥
वातश्लेष्मणि वाह्यायामान्त्रवृद्धौ भगन्दरे ॥ ११४ ॥
शस्तं नाड़ीव्रणान् सर्वान्नाशयत्यथ देहिनाम्।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥११५
सैन्धवाद्यमिदं तैलं सर्वामयनिसूदनम् ॥ ११६ ॥

इति द्वितीयं सैन्धवाद्यं तैलम्।

सुगन्धवाला, चीता, वच्चनेटी, कचूर, विड़ङ्ग, जेठीमधु, रेणुका, अतीस, अरण्ड, मंजीठ, नीली, जमालगोटे की जड़, मिर्च, अजमोदा, पीपल, कूट, रास्न और पिपलामूल, इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावें, उस कल्कको मूर्च्छित कड़वे तेलमें डालकर विधिपूर्वक धीरे धीरे मन्द मन्द अग्नि में पकावे, इस में एक प्रस्थ तेल पड़ता है, इस तेलके लगाने से सब प्रकार के वातरोग, विशेषकर आमवात, कमर और पिण्डरीका वायु, हृदयशूल, पसुरीको पीड़ा, हृदयकी पीड़ा, सब शरीर में स्थिर वायु, शूल, वात, कफसे उत्पन्न हुये रोग, वाह्यायाम, अन्त्रवृद्धि, भगन्दर और नाड़ीव्रण आदि अनेक रोग इस प्रकार नष्ट

रसगन्धकलौहार्कतुल्यटङ्गणसैन्धवान् ।
समभागे विचूर्णाथ चूर्णाद्द्विगुणगुग्गुलुः ॥ ११७ ॥
गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृताचूर्णमुत्तमम् ।
तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन वटिकां कुरु ॥ ११८ ॥
खादेन्माषद्वयञ्चैतं त्रिफलाजलयोगतः ।
आमवातारिवटिका पाचिका मोदका तथा ॥११९॥
आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च ।
यकृत् प्लीहोदराष्ठीलां कामलां पाण्डुरोगकम् ॥१२०
हलीमकञ्चाम्लपित्तं श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ ।
ग्रन्थिं शूलं शिरःशूलं वातरोगञ्च गृध्रसीम् ॥ १२१ ॥
गलगण्डं गण्डमालां क्रिमिकुष्ठं विनाशयेत् ।
विद्रधिं गर्दभानाहानन्त्रवृद्धिञ्च नाशयेत् ॥ १२२ ॥

इत्यामवातारिवटिका ।

होजाते हैं जैसे बिजली गिरने से वृक्ष । इसका नाम भी सैन्धवादि तैल है ॥ १०८—११६ ॥

पारा, गन्धक, लोहा, तांबा, सुहागा और सेन्धानमक इन सबको चूर्ण करके सबसे दूना गूगुल, गूगुलसे चौथाई निसोत और उसके समान चीतेका काढ़ा तथा घी डालकर दो दो मासे की गोली बनावे, फिर त्रिफले के काढ़े के संग एक एक गोली खाय, इससे आमवात, गुल्म, शूल, पेटके रोग, यकृत्, पिलही, अष्ठीला, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, अम्लपित्त, श्वयथु, श्लीपद, अर्बुद, ग्रन्थी, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला,

रसोगन्धो वरा वह्नि गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः।
एतदेरण्डतैलेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रपेषयेत् ॥ १२३ ॥
कर्षोऽस्यैरण्डतैलेन हन्त्युष्णजलपायिनाम्।
आमवातमतीवोग्रं दुग्धमुद्गादिवर्जयेत् ॥ १२४ ॥
इत्यामवातारिरसः।

शुद्धगन्धपलार्द्धञ्च मृतताम्रञ्च तत्समम्।
ताम्रार्द्धं पारदं देयं रसतुल्यं मृतायसम् ॥ १२५ ॥
सर्वं पञ्चाङ्गुलदले चालयेन्निपुणः कृतोः।
संचूर्ण्य पञ्चकोलस्य सर्वं क्वाथे विमर्दयेत् ॥ १२६ ॥
रौद्रे विंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश।

क्रिमि, कुष्ट, विद्रधि और अन्त्रवृद्धि रोग दूर होजाते हैं, दोष पचते हैं और दस्त आते हैं इसका नाम आमवातादि वटिका है ॥ ११७ ॥ १२२ ॥

पारा एक भाग, गन्धक दोभाग, त्रिफला चारभाग, चीता आठभाग और गूगुल सोलह भाग इन सबको अरण्डका तेल डालकर सूक्ष्म पीसे, फिर गर्मजल और अरण्डके तेलके संग एक कर्ष खाय तो भयानक आमवातरोग दूर होजाते हैं। खानेको पथ्य देय, इस रोगमें दूध और मूंग आदि अपथ्य हैं इसका नाम आमवातारि रस है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

शुद्ध गन्धक आधा पल, तांबेकी भस्म आधा पल, तांबेसे आधा पारा, पारेके समान लोहे की भस्म, इन सब को एरण्ड के पत्ते पर रखकर रगड़े, फिर पञ्चकोलके काढ़ेमें घोटे, इस प्रकार बीसवार घोटे, फिर दशवार गुरिचके रसमें घोटे और

भृष्टटङ्गणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ १२७ ॥
टङ्गणार्द्धं विडं देयं मरिचं विडतुल्यकम् ।
तिन्तडीबीजचूर्णन्तु सूततुल्यञ्च दन्तिका ॥ १२८ ॥
त्रिकटु त्रिफला चैव लवङ्गं चार्द्धभागिकम् ।
आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्त्तितः ॥ १२९ ॥
महाग्निकारको ह्येष आमवातकुलान्तकः ।
स्थूलानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकारकम् ॥ १३० ॥
अनुपानरसेनैव सर्वरोगकुलान्तकः ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु चामवातं सुदारुणम् ॥ १३१ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसा हिताः ।
भोजयेत् कण्ठपर्य्यन्तं चतुर्गुञ्जामितं रसम् ॥ १३२ ॥
कट्वम्लतिक्तरहितं पिबेत्तदनुपानकम् ।
शीघ्रं जीर्य्यति तत्सर्वं जायते दीपनः पर ॥ १३३ ॥

घाममें सुखा ले, फिर इसके तुल्य भुना हुवा सुहागा, सुहागेसे आधा विडनोन, विडनोन के समान मिर्च, पारेके समान तिन्तड़ीकके बीज, पारेके समान जमालगोटे की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला और लौंग आधा आधा भाग, इससे आमवात, चाहै साध्य हो, चाहै असाध्य हो, गुल्म, अर्श, संग्रहणी, शोथ और पाण्डुरोग दूर होजाते हैं, इसके समान अग्नि बढ़ानेवाली कोई औषधी नहीं है उसमें मांस और दूध आदि भारी और वीर्य्य बढ़ानेवाले भोजन कण्ठ पर्य्यन्त खिलाकर चार रत्ती यह रस खिला देय तो सब शीघ्र

अनेन सदृशो नास्ति वह्निसन्दीपनोरसः ।
गुल्मार्शो ग्रहणीरोग,शोथपाण्डूदरापहः ॥ १३४ ॥
सर्वतोभद्रश्चायमुच्यते । इति आमवातेश्वरोरसः ।
त्रिफलामुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं वचा ।
चित्रकं मधुकञ्चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १३५ ॥
अयश्चूर्णपलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव हि ।
आलोड्य मधुनोपेतं पलद्वादशकेन च ॥ १३६ ॥
प्रातर्विलिह्य भुञ्जाने जीर्णे तस्मिन् जयेद्रुजः ।
दुःसाध्यमामवातञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ १३७ ॥
जीर्णान्नसम्भवं शूलं श्वयथुं विषमज्वरम् ॥ १३८ ॥
इति त्रिफलादिलौहम् ।
वज्रपाण्ड्वादिलोहानां ग्राह्यं पञ्चपलं शुभम् ।
चूर्णं मृताभ्रकस्यापि लौहार्द्धं पारदं तथा ॥ १३९ ॥

हो पच जाता है इसमें कड़वा, तीता और खट्टा भोजन न करे, इसका नाम वातेश्वर अथवा सर्वतोभद्ररस है ॥ २५—३४ ॥

हर्र, बहेड़ा, आवला, मोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, विडङ्ग, पुष्करमूल, वच, चीता और जेठीमधु, ये सब एक२ पल, लोहचूर्ण आठ पल, गूगुल आठ पल, इन सबको एकमें मिलाकर बारह पल शहत डाले, फिर प्रातःकाल खाय और जब औषधी पच जाय, तब भोजन करे, इससे कष्टसाध्य आमवात, पाण्डुरोग, हलीमक, अजीर्ण से उत्पन्न हुआ शूल, श्वयथु और विषमज्वर दूर होजाते हैं; इसका नाम त्रिफलादिलौह है ॥ ३५—३८ ॥

त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या लौहाभ्रात् षोड़शैर्जलैः ।
पक्त्वाष्टभागशेषन्तु ग्राह्यं क्वाथजलं ततः ॥ १४० ॥
तेन लौहाभ्रचूर्णञ्च पुनः प्राच्यं समं घृतम् ।
शतावर्य्या रसञ्चैव चीरञ्च द्विगुणं रसात् ॥ १४१ ॥
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि ताम्रके ।
पचेत् पाकविधिज्ञस्तु वह्निना मृदुना शनैः ॥ १४२ ॥
सिद्धे च प्रक्षिपेदेतान् विड़ङ्गादि यथोदितान् ।
विड़ङ्गं नागरं धान्यं गुड़ूचीसत्वजीरकम् ॥ १४३ ॥
पलाशवीजं मरिचं पिप्पलीहस्तिपिप्पली ।
त्रिवृता त्रिफला दन्ती एला चैरण्डजं तथा ॥१४४॥
चविका ग्रन्थिकं चित्रं मुस्तकं वृद्धदारकम् ।
सर्वेषां चूर्णमेतेषां लौहाभ्रकसमं भवेत् ॥ १४५ ॥

वज्र अथवा पाण्डु आदि कोई लोहा एक , अभ्रक की भस्म एक पल, पारा आधा पल, त्रिफला छे पल, इस त्रिफले को लोहे और अभ्रकसे सोलह गुने पानीमें पकावे, जब आधा पानी रह जाय, तब उतार ले, फिर ऊपर लिखी औषधी इसके समान घी, दो भाग शतावर का रस और दो भाग दूध डाल कर लोहे अथवा तांबेकी कड़ाहीमें डालकर पकावे और लोहे की करछोसे चलाता जाय, जब पक चुके, तब विड़ङ्ग, सोंठ, धनिया, गुरिचका सत, जीरा, ढाकके वीज, मिर्च, पीपल, गज-पीपल, निसोत, त्रिफला, जमालगोटे की जड़, इलायची, एरण्ड, चाभ, पिपलामूल, चीता, मोथा और विधारा इन एक एक औषधियों को लोहे और अभ्रकके समान पीसकर डाले,

आमवातगजेन्द्रस्य केशरी विधिनिर्मितः ।
आमवातञ्च शोथञ्च अग्निमान्द्यं हलीमकम् ॥ १४६ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च हन्यादृद्रव्यं रसायनम् ।
अत्रानुक्तगन्धकमपि कज्जलिकायोग्यं दत्वा कुर्वन्ति ॥
१४७ ॥ इति विडङ्गादिलौहम् ।
जारितं पुटितं लौहचूर्णं पञ्चपलं शुभम् ।
गुग्गुलोश्च पलं पञ्च लौहार्द्धं मृतमभ्रकम् ॥ १४८ ॥
शुद्धसूतमभ्रसमं गन्धकं तत्समं भवेत् ।
त्रिगुणामयसश्चूर्णात् कृत्वा तां त्रिफलां पचेत् ॥१४९
द्विरष्टभागं पानीयमष्टभागावशेषितम् ।
तेन चाष्टावशेषेण पचेल्लौहाभ्रगुग्गुलून् ॥ १५० ॥
घृततुल्यं शतावर्य्या रसं दत्वा तथा शुभम् ।

इससे आमवात, शोथ, मन्दाग्नि, हलीमक, कामला और पण्डुरोग दूर होजाते हैं, यह रसायन औषधी आमवातरूपी हाथीको मारनेके लिये सिंहके समान है, इसमें गन्धक नहीं लिखा तौ भी कज्जल करने योग्य गन्धक डालना चाहिये, इसका नाम विड़ङ्गादि चूर्ण है ॥ ३९—४७ ॥

फुंका लोहे की भस्म पांच पल, गुग्गुल पांचपल, अभ्रक लोहेसे आधा शुद्ध पारा, अभ्रक, गन्धक, पारेके समान, और त्रिफला तिगुना, बारह गुने पानीमें डालकर पकावे, जब आठ भाग रह जाय, तब उसी काढ़ेमें लोहा, अभ्रक, गूगुल, काढ़ेके समान घी, एकप्रस्थ शतावर का रस और एक

प्रस्थं प्रस्थञ्च दुग्धस्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १५१ ॥
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि मृण्मये ।
ततः पाकविधिज्ञस्तु पाकसिद्धौ विनिक्षिपेत् ॥१५२॥
विड़ङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्वजीरकम् ।
पञ्चकोलं त्रिवृद्दन्ती त्रिफलैला च मुस्तकम् ॥१५३॥
सुचूर्णितञ्च प्रत्येकमेषामर्द्धपलं क्षिपेत् ।
रसस्य कज्जलीं कृत्वा ईषदुष्णे विमर्दयेत् ॥ १५४ ॥
उत्तार्य्य स्थापयेद्भाण्डे स्निग्धे चापि सुरक्षितम् ।
घृतेन मधुना पश्चान्मर्दयित्वानुपानतः ॥ १५५ ॥
गुडूचीनागरैरण्डं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
भक्षयेच्छुद्धदेहस्तु शुभेऽहनि सुवाचकः ॥ १५६ ॥

प्रस्थ दूध डालकर लोहे अथवा मिट्टीकी कड़ाईमें भरकर धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निमें पकावे और लोहे की करछी से चलाता जाय, जब पाकविधि जाननेवाला वैद्य जाने कियह पक चुका, तब विड़ङ्ग, सोंठ, धनिया, गुरिचका सत, जीरा, पीपल, पिपलामूल, चाभ, चीता, सोंठ, निसोत, जमालगोटे की जड़, हर्र, बहेड़ा, आमला, इलायची और मोथा, इन सबको आधा आधा पल पीसकर डाल दे, फिर पारे और गन्धककी कजली भी कुछ गर्म रहते ही छोड़ देय, फिर उतारकर चिकने बरतन में भरकर रक्षासे रक्खे। फिर रोगीको घी और शहतमें मिलाकर खिलावे, ऊपरसे गुरिच, सोंठ और एरण्डका काढ़ा पिलावे, रोगी वमन और विरेचनसे शुद्ध होकर शुभ दिनसे यह औषधी

आमवातमहाव्याधिविनाशायेष्टदेवता ।
सन्धिवातं कटीशूलं कुक्षिशूलं सुदारुणम् ॥ १५७ ॥
जङ्घापादाङ्गुलीशूलं गृध्रसीं हन्ति पङ्गुताम् ।
गुल्मशोथं पाण्डुरोगं सन्धिवातञ्च दुःसहम् ॥ १५८ ॥
आमवातगजेन्द्रस्य केशरी विधिनिर्मितः ॥ १५९ ॥
इति पञ्चाननरसलौहम् ।

दधि मस्तु गुड़क्षीरपोतकीमाषपिष्टकान् ।
वर्जयेदामवातार्त्तो मांसञ्चानूपसम्भवम् ॥ १६० ॥
अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिलाः ।
वर्जनीया प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ १६१ ॥
इति भैषज्यरत्नावल्यामामवातचिकित्सा समाप्ता ।

खाय और इष्टदेव की पूजा करे, इससे महाघोर आमवात, गठिया, कमर की पीड़ा, भयानक कोषकी पीड़ा, जांघ, पैर और अङ्गुलियोंका शूल, गृध्रसी, गुल्म, शोफ और पाण्डुरोग, दूर होजाते हैं, आमवातरूपी हाथीको मारनेके लिये ये औषधी सिंहके समान है ; इसका नाम पञ्चाननरसलोह है ॥४८—५९॥

आमवात रोगी, दही, मट्ठा, गुड़, दूध, जौ, उड़दकी पीठी, जल और जङ्गलमें उत्पन्न हुवे जन्तुओं का मांस, अभिष्यन्दी तथा भारी और चिकनी वस्तु न खाय ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावलीमें आमवात चिकित्सा अधिकार समाप्त ।

अथ शूलाधिकारः।

पृथग्दोषैस्तथा द्वन्द्वैः समस्तैरामदोषतः।
शूलोऽष्टधा प्रभुत्वेन पवनस्तेषु तिष्ठति ॥ १ ॥

अथ वातिकस्य विप्रकृष्टनिदानसम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणम्।

निद्रानाशातिव्यायामैरतिमैथुनशीतलैः।
शीताम्बुपानै रूक्षादिभोजनैराढकीमुखैः ॥ २ ॥
अजीर्णाध्यसनैस्तिक्त कषायैः शुष्कमांसकैः।
शुष्कशाकैः कोरदूष-मुद्गमासातिसेवनैः ॥ ३ ॥
वेगघातैः शोक-रोष-हास्यैर्वायुः प्रदूषितः।
जनयेच्छूलमत्युग्रं पृष्ठहृत्पार्श्वबस्तिसु ॥ ४ ॥

शूलरोग, वात, पित्त, कफ, द्वन्दु, सन्निपात ׳׳ . आम दोषसे उत्पन्न होनेके कारण आठप्रकारका होता है यद्यपि इस रोग में और दोष भी रहते हैं परन्तु वायुही प्रधान है क्योंकि विना वायुके शूलरोग उत्पन्न नहीं होता ॥ १ ॥

जो मनुष्य सोता नहीं, अधिक परिश्रम और अधिक मैथुन करता है, ठण्ढो वस्तु खाता है, अधिक ठंढापानी पीता है, रूखी अथवा अरहर आदि गर्मवस्तु खाता है, जिसे अजीर्ण बना रहता है, जो पहिला भोजन विना पचे दूसरा भोजन करता है, कसैले पत्र, सूखा मांस, सूखे साग, कोदो, मूंग, अधिक खाता है, मूत्रादि का वेग रोकता है, अधिक शोक या क्रोध करता है या अधिक हंसता है, उसका वायु बिगड़कर कमर, हृदय, पसुरी

सायंमुखे प्रभाते च तथा जीर्णे च प्रावृषि।
शूलो व्याधिर्भवेद्दुष्टो मुनिभिः सम्प्रकीर्त्तितः॥ ५॥

अथ तस्य लक्षणमाह।

मुहुः प्रकोपश्च मुहुश्च शान्तिं
प्रयाति संस्वेदनगात्रमर्दैः
संस्तम्भतोदैरथ विड्विबन्धैः
सम्मिश्रितो याति समं कवोष्णैः॥ ६॥

अथ हृच्छूललक्षणमाह।

पवनः कफपित्ताभ्यां निरुद्धो रससञ्चितः।
हृदयस्थः प्रकुरुते पीड़ां श्वासावरोधिनीम्॥ ७॥
हृच्छूलः स तु विज्ञेयो रसवायुप्रकोपजः॥ ८॥

अथ पार्श्वशूललक्षणमाह।

श्लेष्माणं पवनोऽत्युग्रो गृहीत्वा पार्श्वसंस्थितः।

अथवा मूत्राशयमें शूल उत्पन्न करता है, यह रोग प्रायः सन्ध्या, सवेरे, भोजन करते समय और वर्षातमें होता है॥ २—५॥

जो पीड़ा वार वार अधिक बढ़े और क्षण क्षण मात्रमें रोगीको पसीना और सब शरीर दबानेसे क्षणमात्रमें शान्त हो जाय, शरीर स्तम्भन होय, सुईसे छेदनेके समान पीड़ा होय, विष्टा रुक जाय, फिर गर्म वस्तुसे जो रोग शान्त होय, उसे शूलरोग कहते हैं॥ ६॥

जब रसयुक्त वायुको कफ और पित्त रोक लेते हैं, तब हृदयमें स्थित होकर शूलरोग उत्पन्न करता है, इस रोगमें रोगी का श्वास बन्द होजाता है, इसही रस और वायुसे उत्पन्न हुए रोग का नाम हृच्छूल है॥ ७॥ ८॥

शूचीभिरिव निस्तोदं पार्श्वयोः कुरुते भृशम् ॥ ९ ॥
पार्श्वशूलं तमेवाहुः आध्मानादिसमन्वितम् ।
अन्नाकांक्षा श्वासरोधो निद्रानाशश्च तत्र वै ॥१०॥

अथ वस्तिशूलमाह ।

मूत्ररोधात् प्रकुपितो वायुर्वस्तिसमाश्रितः ।
धमनीवस्तिमार्गेषु शूलमुग्रं करोति वै ॥ ११ ॥
मूत्रविष्टामरुद्रोधो वस्तिशूले प्रजायते ॥ १२ ॥

अथ पैत्तिकमाह ।

विदाहितीक्ष्णोष्णकुलत्थतैलैः
[illegible]तिभोज्यैस्तिलमाषयूषैः
सौवीरमद्याम्लकटुप्रगाढैः
क्रोधादिभिस्तापपरिश्रमैश्च ॥१३ ॥

जब पसुरीमें कफ वायुको रोक देता है, तब पसुरीमें सुईसे छेदनेके समान पीड़ा होती है, पेट फूलता है, भोजन करने की इच्छा नहीं होती और नींद नहीं आती, वैद्य उसे ही पार्श्वशूल रोग कहते हैं, जो मनुष्य सदा मूत्रके वेग को रोकता है, उस का वायु मूत्राशय में जाकर वहां की नाड़ियोंमें प्रवेश करके भयानक शूल उत्पन्न करता है, मूत्र और विष्ठा रुक जाता है, इस लिये इस रोग का नाम वस्तिशूल है ॥ ११ ॥ १२ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुवा शूल मनुष्य को तब होता है, जब अधिक दाह करनेवाले, तेज, गरम, कुलथी, तेल, खार, तिलका रस, उड़द का रस, कांजी, मद्य, मिर्च आदि पड़ी खटाई खाता है, अधिक क्रोध करता है, गर्मी सहता है, परिश्रम करता है, मद्य

सुराविकारैरतिमैथुनैश्च
विदग्धभोज्यै: कुपितं तु पित्तम्।
निशीथकाले घनसङ्क्षये च
मध्यन्दिने तत्प्रकरोति शूलम्॥ १४॥
तस्मिंस्तृषामूर्च्छननाभिपीड़ा:
दाहोऽरतित्वं भ्रमशोषकम्पा:।
भवन्ति नित्यं किल शान्तिमेति
मिष्टातिशीतैरतिभोजनैश्च॥ १५॥

अथ श्लैष्मिकमाह।

वल्लूरवारिजपलै: किल शीतभोज्यै:
आनूपमांसैरतिवेगघातै:।
क्षीरेक्षुशष्कुलिकिलाटकपिष्टजातै:।
अन्यै: स्वकोपजनकै: कुपित: कफस्तु॥१६॥

सम्बन्धी कोई वस्तु खाता है, अधिक मैथुन करता है और जले हुए भोजन करता है, तब उसका पित्त बिगड़ कर दो पहर, अर्धरात और आधी रात को शूल उत्पन्न करता है, इस शूलमें प्यास, मूर्च्छा, नाभिमें पीड़ा, दाह, अरुची, भ्रम, शोष और कम्प ये लक्षण होते हैं और ठंढी वस्तुओंसे शान्त होजाता है॥१४—१५

जब मनुष्य सूखामांस, जलमें उत्पन्न हुवे जन्तुओंका मांस, ठंढे भोजन, जलके तटमें उत्पन्न हुए जन्तुओं का मांस खाता है, अधिक मैथुन करता है, विष्ठा आदिके वेग रोकता है, दूध, ईख का रस, पुरी, किलाट और पीठीसे बने भोजन करता है अथवा

करोति शूलं सदनाङ्गमर्दौ
कासोऽरुचित्वं गुरुता तथाङ्गे ।
शिरो गुरुत्वं स्तिमितञ्च कोष्ठम्
तस्मिन् स चोष्णैः किल शान्तिमेति ॥१७॥
ऋतुपतेः समये शिशिरे तथा
दिनकरोदयफुल्लितपङ्कजे ।
असनतः परतः कुरुते गदं
किल कफः कुपितो वपुषि स्थितः ॥ १८ ॥

अथ द्वन्द्वजमाह ।

द्विदोषलक्षणैर्जुष्टं द्विदोषजमिमं विदुः ।
कष्टसाध्यः समुद्दिष्टः शूलो दोषद्वयोद्भवः ॥ १९ ॥

अथ सान्निपातिकमाह ।

शूलेऽथ यत्राखिलदोषरोष-
समुत्थिते चिह्नमिदन्तु सर्वम् ।

कफ बिगाड़नेके और काम करता है, तब उसका कफ बिगड़कर शूल उत्पन्न करता है, इस शूलमें मन्दाग्नि, सब शरीरमें पीड़ा, खांसी, कोई काम करने की इच्छा न होना, सब शरीर भारी रहना, विशेषकर पेट और शिर भारी रहना, ये सब लक्षण होते हैं, ये रोग गर्म्मवस्तुओंसे शान्त होता हैं, यह रोग प्रायः वसन्त, शिशिरऋतु प्रातःकाल और भोजन करनेके पीछे होता है ॥१६-१८

दो दोषोंसे उत्पन्न हुवे शूलरोग में दो दोषोंके लक्षण होते हैं, ये दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ शूल कष्टसाध्य है ॥ १९ ॥

जो शूल तीनों दोषोंके कोपसे उत्पन्न होता है, उसमें ऊपर

तं कष्टसाध्यं प्रवदन्ति वैद्या:
क्षाराग्निवज्रप्रतिमं विवर्ज्यम् ॥ २० ॥

अथ आमशूलमाह ।

आमोत्थिते च वमनं हृल्लासोऽरुचिरेव च ।
स्तैमित्यं गौरवं चिह्नं कफशूलस्थितं भृशम् ॥ २१ ॥

अथ आमशूलस्य देशविशेषेण दोषविशेषमाह ।

वस्तिस्थितं वात भवन्तु शूलं
पित्तोत्थितं नाभिगतस्य धीरा: ।
कफोत्थितं पार्श्वगतस्य कुक्षौ
समास्थितं हृद्गतमेव ते तु ॥ २२ ॥

कट्यां पार्श्वे तथा वस्तौ हृदये कफवातज: ।
कुक्षिहृन्नाभिमध्यस्थ: कफपित्तोद्भवस्तु स: ॥ २३ ॥

लिखे सब लक्षण होते हैं, यह क्षार, आग और वज्रके समान भयानक रोग वैद्योंने असाध्य कहा है, इसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ॥ २० ॥

आमसे उत्पन्न हुवे शूलमें वमन, ग्लानि, अरुचि, वमन होने की सम्भावना और शरीर भारी होना ये लक्षण होते हैं ॥ २१ ॥

जो आमशूल, मूत्राशय में होता है, वह वायुसे जो नाभि में होता है वह पित्तसे और जो पसुरी कोख और हृदय में होता है उसे कफसे उत्पन्न हुवा जाने ॥ २२ ॥

कमर, पसुरी, मूत्राशय और हृदय में जो एक बार शूल होता है वह कफ और वातसे और जो कोख, हृदय और नाभिके बीच में होता है वह कफ और पित्तसे उत्पन्न हुवा शूल है ॥ २३ ॥

आमशूलस्य लक्षणान्तरमाह ।

यदातिमात्रं सुस्वादु भुक्तं तत्कोष्ठसंस्थितम् ।
मन्देऽग्नौ स्थिरतां नीतं वायुना च द्रवीकृतम् ॥२४॥
विलम्बिकां तथाध्मानमानाहं हृद्रुहन्तथा ॥ २५ ॥
मूर्च्छातङ्कमतीसारं प्रभेदन्तनुते भृशम् ।
अविपाकभवं शूलं वैद्यैराद्यैः प्रकीर्त्तितम् ॥ २६ ॥

श्वसन-कास-वमि-ज्वर-वेदनाः
अरुचिता गुरुता पतनभ्रमाः ।
उदरगौरवहट् कथिता बुधैः
अनलसादयुतास्त उपद्रवाः ॥ २७ ॥

जब मनुष्य अधिक मीठा भोजन करता है और अग्निमन्द होती है, तब वही मीठा भोजन पेटमें स्थिर हो जाता है और वायु उसे पतला कर देता है ॥ २४ ॥

तब वही पतला हुवा अन्नविलंबिका, आध्मान, आनाह, और हृदय में पीड़ा उत्पन्न करता है ॥ २५ ॥

मूर्च्छा, शरीर कांपना, प्रमेह और अतिसार उत्पन्न हो जाता है, पुराने वैद्योंने इस ही का नाम आमशूल लिखा है ॥ २६ ॥

इस रोग में खांसी, सांस, वमन, ज्वर, शरीर में पीड़ा, अरुची, शरीर भारी रहना, अलस, भ्रम, पेटभारी रहना, प्यास, ये उपद्रव रहते हैं ॥ २७ ॥

अथ साध्यत्वादिकमाह।

साध्यः प्रदिष्टः किल चैकदोषः (१)
कृच्छ्रः प्रदिष्टो नयनोद्भवस्तु।
सर्वोद्भवोऽसाध्यतमो मुनीन्द्रै-
रुपद्रवैश्चापि युतो महद्भिः॥ २८॥

अथारिष्टमाह।

तृषा-मूर्च्छानाहो ज्वर-वमन-सर्वाङ्गगुरुता-
भ्रमो निद्रानाशोऽप्यरुचि-कृशता वीर्य्यलघुता।
भवत्येतच्चिह्नं वपुषि किल नुर्यस्य सकलं
न जीवेच्छूलार्त्तो स हि मुनिभिरुक्तं सुधिवरैः॥२९॥

अथ परिणामशूलमाह।

वायुः प्रदुष्टो निजकोपकारणैः
कफश्च पित्तं परिभूयदूषितः।

एक दोषसे उत्पन्न हुवा शूल, साध्य, दो दोषों से, उत्पन्न हुवा कष्टसाध्य और तीनों दोषों से उत्पन्न हुवा तथा उपद्रवों से युक्त शूल वैद्योंने असाध्य कहा है॥ २८॥

जिस शूल रोगीको प्यास, मूर्च्छा, आनाह, ज्वर, वमन, सब शरीर भारी रहना, भ्रम, नींद न आना, अरुचि, दुर्बलता वीर्य्यनाश, ये सब लक्षण होव, उसे जाने कि यह अब नहीं जीयेगा॥ २९॥

अब वायु अपने कारणों से बिगड़ कर कफ और पित्त को

(१) चैकदोषो दोषौ वर्जितम् म.।

शूलं तदा घोरतरङ्करोति
भुक्ते भवेत्तत्परिणामशूलम् ॥ ३० ॥

अथ लक्षणमाह ।

कम्पनं विड्विविधश्च आध्मानं स्निग्धशान्तता ।
आटोपः परिणामाख्ये शूले वातभवे भृशम् ॥ ३१ ॥
पित्तोद्भवे तृषा दाहोऽरतिः स्वेदाप्रवर्त्तनम् ।
शीतैः शान्तिं प्रयात्येव लवणाम्लसमुद्भवम् ॥ ३२ ॥
कफोद्भवेऽरुचिर्वान्तिः हृल्लासो लघुवेदना ।
तिक्तोष्णैः सुप्रयात्येव शान्तिं शूलम्भ॰ ॰ ानकम् ॥ ३३ ॥
द्विदोषोत्थे मिश्रचिह्नं सर्वोत्थे सर्वमीरितम् ॥ ३४ ॥

अपने वसमें कर लेता है, तब भोजन करने के पीछे पेटमें शूल उत्पन्न होता है, उस हीका नाम परिणाम शूल है ॥ ३०॥

परिणाम शूलमें शरीर कांपना, विष्टा रुक पेट फूलना, और चीकनी वस्तु खाने से शान्त रहना, ये लक्षण वायु अधिक होने से होते हैं ॥ ३१ ॥

जिस परिणाम शूल में पित्त अधिक होता है, उसमें प्यास, जलन, अरुची और पसीना न आना, ये लक्षण होते हैं ; ये शूल नमकी और खट्टी वस्तु खाने से होता है, तथा ठण्डी वस्तुवों से शांत होजाता है ॥ ३२ ॥

कफसे उत्पन्न हुवे परिणाम शूल में अरुची, हृल्लास और थोड़ी पीड़ा, ये लक्षण होते हैं ये शूल तिक्त और गर्म वस्तुवों से शांत होजाता है ॥ ३३ ॥

दो दोषोंसे उत्पन्न हुवे शूल में दो दोषों के लक्षण होते हैं

अथान्नद्रवशूलमाह।

पाकङ्गच्छति पाकान्ते यच्छूलञ्च भवेद्भृशम्।
पथ्येऽपथ्येऽथवा जन्तोस्तदन्नद्रवसंज्ञकम्॥ ३५॥

अथ चिकित्सा।

वमनं लङ्घनं स्वेद: पाचनं फलवर्त्तय:।
क्षारचूर्णानि गुड़िका: शस्यन्ते शूलशान्तये॥ ३६॥
पुंस: शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावह:।
पायसै: कृशरै: पिष्टै: स्निग्धैर्वापि शितोदकै:॥ ३७॥
वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं
स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूष:।

और सन्निपात से उत्पन्न हुवे शूल में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं॥ ३४॥

जो शूल अन्न पचते समय अथवा पचने के पीछे होता है, उसका नाम अन्न द्रवशूल है॥ ३५॥

आगे शूल रोगकी चिकित्सा लिखते हैं।

शूलरोग में वमन, लङ्घन, स्वेदन, पाचन, (फलवर्ती) खार, चूर्ण और वटी आदि औषधि देनी चाहिये॥ ३६॥

शूल से व्याकुल रोगीको पसीना देना, बहुत आवश्यक है, दूध, खिचड़ी, पिट्ठी, चिकनाई पड़ी और शक्कर पड़ा जल इन्हें गरम करके सेंके॥ ३७॥

वात से उत्पन्न हुवे शूल को, चिकनाई, सेन्धानमक, सोंठ,

समैन्धवव्योषयुतः सलावः
सहिङ्गु-सौवर्चल-दाड़िमाढ्यः ॥ ३८ ॥
इति कुलत्थयूषः ।

बला पुनर्नवैरण्डवृहतीद्वयगोक्षुरैः ।
सहिङ्गुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ३९ ॥
इति बलादिः ।

शूली निरन्नकोष्ठोऽह्निरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत् ।
हिङ्गुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥ ४० ॥
इति हिङ्ग्वादिचूर्णम् ।

तुम्बुरूण्यभया हिंगु पौष्करं लवणत्रयम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना वापि शूलगुल्मापतन्त्रकी ॥ ४१ ॥
इति तुम्बुर्यादिचूर्णम् ।

मिर्च, पीपल, हींग, सोंचल और अनार की खटाई पड़ा, कुलथी अथवा लवेके मांसका रस देने से शीघ्र नष्ट करते हैं ॥ ३८ ॥

वरियारा, गधापुन्ना, अरण्ड, कटहली, बड़ीकटहली और गोखुरू के काढ़े में हींग और नमक मिलाकर पीने से वात शूल शीघ्र दूर होजाता है ॥ ३९ ॥

वात शूलसे पीड़ित रोगी विना कुछ अन्न खाये गर्मजल के संग हींग, अतीस, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, सोंचल और हर्रका चूर्ण खाय इसका नाम हिंग्वादि चूर्ण है ॥ ४० ॥

अथवा धनिया, हर्र, सोंठ, हींग, पुष्कर मूल, सेन्धानमक,

यमानि हिंगुसिन्धूत्थचारसौवर्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिसूदनाः ॥ ४२ ॥

इति यमान्यादिचूर्णम् ।

विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
हिंगुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणः ॥ ४३ ॥

इति शुण्ठीयोगः ।

तद्वदेव यवक्वाथो हिंगुसौवर्चलान्वितः ।
सौवर्चलाम्लकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुड़िका वातशूलनुत् ॥ ४४ ॥

इति वटिका ।

बीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत् ।

कालानमक और सांभरनमक का चूर्ण गर्मपानी के संग खाय तो शूल, गुल्म और अपतन्त्रक रोग दूर होजाते हैं ॥ ४१ ॥

अजवाइन, हींग, सेंधानमक, जवाखार, सौंचल और हर्र का चूर्ण बनाकर खाय और ऊपर से मद्यके झाग पिये तो वात शूल दूर होजाता है ॥ ४२ ॥

अरण्ड की जड़ के काढ़े में सोंठ, हींग और काला नमक मिला कर पीनेसे वातशूल बहुत ही शीघ्र दूर होजाता है ॥४३

इन्द्रजव के काढ़े में हींग और सौंचल मिला कर पीने से वातशूल दूर होजाते हैं; जीरा, सौंचल, तितड़ीक और मिर्च इन सबको एक से दूसरी द्विगुणी लेकर नींबूके रस में घोटकर गोली बनावे, इस गोली से वात शूल बहुत शीघ्र दूर होता है ॥ ४४ ॥

जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ ४५ ॥
विल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्ल तुषाम्भसा ।
गुड़िकां भ्रमयेदुष्णां वातशूलविनाशिनीम् ॥ ४६ ॥

इति विल्वमूला ।

तिलैश्च गुड़िकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ।
गुडिका समयत्येषा शूलञ्चैवातिदुस्तरम् ॥ ४७ ॥

इति तिलवटिका ।

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः ॥ ४८ ॥
जीवन्ती मूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलनुत् ॥ ४९ ॥

इति वातशूलम् ।

गुडः शालिर्यवा चीरं सर्पिः पानं विरेचनम् ।

विजौरे नीम्बूकी जड़, को पीसकर घी के सङ्ग एक कर्ष खानेसे वातशूल दूर होजाता है ॥ ४५ ॥

वेलकी जड़, तिल और अरण्ड की जड़, इनको पीसकर गोली बनावे, इस गोलीको कांजी अथवा पहिले लिखे तुषोदक के सङ्ग मिलाकर पेटपर घुमानेसे वातशूल का नाश होता है, परन्तु गोलीको गरमकर लेय ॥ ४६ ॥

अथवा तिलका गोला बनाकर गर्म करके पेटपर घुमानेसे वातशूल दूर होजाता है ॥ ४७ ॥

अथवा मैनफल को कांजीमें पीसकर लेप करे अथवा जीवन्ती शाककी जड़का कल्क तेल में बनाकर खवावे तो वातशूल दूर होजाता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥५०॥

पैत्ते तु शूले प्रवसनं पयोऽम्बु-
रसैस्तथेक्षोः सपटोलनिम्बैः ।
शीतावगाहाः पुलिनाः सवाताः
कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि ॥ ५१ ॥
विरेचनं पित्तहरञ्च शस्तं
रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ।
सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं
योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः ॥ ५२ ॥
छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽथ शूले
घोरे विदाहे त्वतिकर्षिते च ।
यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां
पिबेत् सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥ ५३ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुवे शूलमें गुड़, धान, जौ, दूध, घी, विरेचन और जंगली जन्तुओं का मांस देय ॥ ५० ॥

दूध, पानी, ऊखका रस, परवर, नीमका रस, ठंढे पानीमें स्नान करना, सीतल वायुयुक्त नदीके तटपर बैठना, कांसेके बरतन में पानी भरकर पेटपर रखना, पित्तनाशक विरेचन, खरहा और लवेके मांस का रस, लावा और शहत खिलाना तथा और भी शहत पड़ी ठण्ढी ठण्ढी औषधी देनी उचित है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

वमन, पित्तज्वर, पित्तशूल, भयानक दाह और अत्यन्त

धात्र्या रसं विदार्य्या वा त्रायन्ती गोस्तनाम्बु वा ।
पिबेत् सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिसूदनम् ॥ ५४ ॥
इति योगाः ।

शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः ।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ ५५ ॥
इति शतावरीरसः ।

शतावरीसयष्ट्याह्ववाट्यालकसगोक्षुरैः ।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् ॥ ५६ ॥
इति शतावर्य्यादि ।

पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ।
तैलमेरण्डजं वापि मधुकक्काथसंयुतम् ॥ ५७ ॥
इति एरण्डतैलम् ।

दुर्बलता में सुख चाहनेवाला रोगी शहत मिलाकर जौकी यवागू पिये ॥ ५३ ॥

पित्तशूली आमले का अथवा विदारी या त्रायन्ती अथवा मुनक्का के रसमें शकर मिलाकर पिये तो पित्तशूल शीघ्र दूर होजाता है ॥ ५४ ॥

शतावरके रसमें शहत मिलाकर प्रातःकाल पीनेसे दाह और शूलादि सब पित्तविकार दूर होजाते हैं ॥ ५५ ॥

शतावर, जेठीमधु, वाट्यालक और गोखरू इन सबका काढ़ा बनाकर ठंढा करके, गुड़, शहत, शकर मिलाकर पीनेसे पित्तशूल शीघ्र दूर होजाते हैं ॥ ५६ ॥

जेठीमधु के काढ़े में केवल अरण्ड का तेल मिलाकर पीनेसे दाह, पित्तरोग, शूल और रक्तरोग दूर होजाते हैं ॥ ५७ ॥

शूलं पित्तोद्भवं हन्ति गुल्मं पैत्तिकमेव च।
प्रलिह्यात् पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥५८॥
इति पित्तशूलम्।

श्लेष्मात्मके छर्दनलङ्घनानि
शिरोविरेकं मधु-सीधुपानम्।
मधूनि गोधूमयवानपिष्टान्
सेवेत रूक्षान् कटुकांश्च सर्वान् ॥ ५९ ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं (१) सरामठम्।
सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलनिवारणम् ॥ ६० ॥
इति पञ्चकोलम्।

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम्।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ६१ ॥
इति बिल्वमूलादि।

आमलेके चूर्णमें शहत मिलाकर खानेसे पित्तसे उत्पन्न हुवा शूल और गुल्म दूर होजाता है ॥ ५८ ॥

कफसे उत्पन्न हुए शूलमें वमन, लङ्घन और शिरोविरेचन देय, मद्य अथवा सीधु (मद्यविशेष) खानेको देय, खानेको शहत, विना पिसे गेहूं और जौके भोजन और सूखी तथा कड़वी वस्तु देय ॥५९

तीनों नमक और हींग मिला पञ्चकोल का चूर्ण गर्मजलके सङ्ग खानेसे कफसे उत्पन्न हुआ शूल दूर होजाता है ॥ ६० ॥

बेलकी जड़, अरण्ड की जड़, चीता, सोंठ, हींग और सेंधा नमक का चूर्ण खानेसे शूल शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ६१ ॥

---

(१) पिप्पली पिप्पलीमूल चव्य-चित्रक नागरैः। कोलमात्रैर्यथोमिलात् पञ्चकोलमितीरितम्।

हिङ्गुसौवर्चलं शुण्ठी पथ्या च द्विगुणोत्तरा ।
एतच्चूर्णं कटी-कुक्षि-पार्श्व-हृद्वस्ति-शूलनुत् ॥ ६२ ॥
इति श्लेष्मशूलम् । इति हिंग्वादि ।
आमशूले क्रिया कार्य्या कफशूलविनाशिनी ।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्धनम् (१) ॥ ६३ ॥
दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुःसमम् ।
चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ६४ ॥
इति चतुःसमचूर्णम् ।
समाक्षिकं बृहत्यादि (२) पिबेत् पित्तानिलात्मके ।
व्यामिश्रं वारिधं कुर्य्यात् शूले पित्तानिलात्मके ॥ ६५ ॥
इति बृहत्यादि ।

हींग एकभाग, सोंचल दोभाग, सोंठ चार भाग और हर्रं आठ भाग, इनका चूर्ण बनाकर खानेसे कमर, कोख, पसुरी, हृदय और मूत्राशय की पीड़ा तथा कफसे उत्पन्न हुआ शूल दूर होजाता है ॥ ६२ ॥

आमशूल में कफशूल के समान चिकित्सा करे और ऐसी औषधी देय जो अग्निके तेजको बढ़ावे और आमको पचा सके ॥ ६३ ॥

अजवाइन, सेंधा, हर्रं और सोंठ इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे इससे शूल और मन्दाग्नि का नाश होता है, इसका नाम चतुस्समचूर्ण है ॥ ६४ ॥

पित्त और वायुसे उत्पन्न हुये शूल में बृहत्यादिगण के काढ़े में शहत मिलाकर रोगी को खिलावे ॥ ६५ ॥

(१) चपेर्बलस्य न तथा बलस्य चेति विग्रहः ।
(२) पूर्वोक्तोऽयंगणः ।

पित्तजे कफजे चापि क्रिया या कथिता पृथक्।
एकीकृत्य प्रयुञ्जीत क्रियां तां कफपित्तजे ॥ ६६ ॥
रसोनं मधुसंमिश्रं पिबेत् प्रातः प्रकाङ्क्षितः।
वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्ति वह्निदीपनम् ॥ ६७ ॥
इति रसोनकल्कः।
शङ्खचूर्णं सलवणं हिङ्गुव्योषसमन्वितम्।
उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ६८ ॥
इति शङ्खचूर्णम्।
गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम्।
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥६९॥
इति गोमूत्रादि।
दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृङ्गं गोघृतेन सह पीतम्।

कफ और पित्तसे उत्पन्न हुवे शूल में पित्त और कफ शूल में लिखी चिकित्सा करे ॥ ६६ ॥

कफपित्तसे उत्पन्न हुवे शूल में लहसुन के कल्क में शहत मिलाकर प्रातःकाल खाय तो वात कफसे उत्पन्न हुआ शूल शीघ्र दूर हो जाता है और अग्नि बहुत बढ़ जाती है ॥ ६७ ॥

शङ्ख के चूर्ण में नमक, हींग, सोंठ, मिर्च और पीपल मिलाकर गर्मपानी के संग खाने से सन्निपात से उत्पन्न हुवा शूल दूर हो जाता है ॥ ६८ ॥

शुद्ध गोमूत्रमें मण्डूर, हर्र, बहेड़ा और आमला इन की चूर्णको गोमूत्रमें भिगो कर शहत और घीके संग खानेसे तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुवा शूल दूर हो जाता है ॥ ६९ ॥

हृदयनितम्बशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥७०॥
इति हरिणशृङ्गभस्म ।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटु वैदलम् ।
वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ ७१ ॥
वमनं तिक्तमधुरैर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
वस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ॥ ७२ ॥
नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ।
उग्रं परिणतिशूलं तस्योपैति सप्तरात्रे ॥ ७३ ॥
इति नागरादि ।

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।
पङ्क्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥७४॥
इति शम्बुकभस्म ।

हरिण के सींग को जलाकर भस्म कर लेय, फिर उस भस्मको गायके घीके संग खानेसे चूतर और हृदयका शूल इस प्रकार नष्ट होजाता है, जैसे—आग लगने से सूखा काठ, इस औषधी को ऐसे फूंके कि धुंवां न निकलने पावे ॥ ७० ॥

शूलरोगी, परिश्रम, मैथुन, मद्य, नमक, कडुवा भोजन और दाल न खाय विष्टादिका वेग रोकना, शोच और क्रोध भी छोड़ दे ॥७१

वमन, विरेचन, वस्तिकर्म और तीते तथा मीठे भोजन परिणामशूल में पथ्य हैं ॥ ७२ ॥

जो रोगी सोंठ, तिल और गुड़ में दूध मिलाकर सातदिन तक खाता है, उसका घोर परिणाम शूल भी शान्त हो जाता है ॥ ७३ ॥

घोंघा (खोखना) की भस्म गर्मपानी के संग पीनेसे उस ही

निर्मांसीकृतशम्बूकभस्ममाषमेकं द्वयं वा।
घृताक्तमुखकुहरेण उष्णाम्बुना गोलयित्वा पेयम्।
दध्नाऽनूनसरेणाद्यात् सतीलयवशक्तुकान्॥ ७५॥
इति शम्बूकभस्म।

अचिरान्मुच्यते शूलान्नरोऽन्नपरिवर्जनात्।
तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूकभस्मनः॥ ७६॥
द्विभागगुड़संयुक्तां गुड़ीं कृत्वाक्षभागिकाम्।
शीताम्बुपानात् पूर्वाह्णे भक्षयेत् क्षीरभोजनः॥७७॥
सायाह्ने रसकं (१) पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात्।
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि॥ ७८॥
इति तिलादिवटिका।

अमय पंक्तिशूल इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे विष्णुको देखके राक्षस, इसका नाम शम्बूक भस्म है॥ ७४॥

खोखने (घोंघे) का मांस निकाल कर भस्म कर लेय, फिर घी खाकर अथवा उस भस्मका गोला बनाकर उसके ऊपर घी लगाकर खाय और ऊपरसे गरम पानी पी लेय, खानेको दहीके तोड़ में मिला कर सतोल अथवा जौका सत्तू खाय, इसका नाम भी शम्बूकभस्म योग है॥ ७५॥

मनुष्य केवल लङ्घन करनेसे भी शीघ्र शूलरोग से छूट सक्ता है॥ ७६॥

तिल, सोंठ, हर्र, एक२ भाग खोखने की भस्म एकभाग, इन सबको एक में मिला कर दुगुना गुड़ डालकर एक२ अक्ष की

(१) रसकं मांसरसम्।

अम्बूकं यूषणञ्चैव पञ्चैव लवणानि च।
समांशा गुड़िकाः कार्य्याः कलम्बकरसेन च॥ ७९॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तद्यथाबलम्।
शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात्॥ ८०॥

इति शम्बूकादिगुड़िका।

पलानि चिञ्चाक्षारस्य पञ्च पञ्च पलानि च।
लवणानां क्षिपेत् प्रस्थद्वयं जम्बीरवारिणः॥ ८१॥
पलद्वादशशङ्खस्य भस्मीभूतं क्षिपेत् पुनः।
पूर्वत्रयेण संमर्द्य हिङ्गुव्योषचतुष्पलम्॥ ८२॥
रसामृतसुगन्धानां (१) पलार्द्धञ्च पृथक् पृथक्।

गोली बनावे, फिर एक गोली खाकर ठंढापानी पी लेय, दो पहरको दूधसे भोजन करे, फिर मत्स्य।को मांसके रस के संग भोजन करे तो रोगी कष्टसाध्य परिणामशूल और पुराने शूलसे छूट जाता है, इसका नाम तिलादि वटी है॥ ७७—७८॥

खोखना, सोंठ, मिर्च, पीपल और पांचो नमक, इन सबको समान ले कर कलम्बका के रसमें घोट कर गोली बनावे, फिर प्रातःकाल अथवा भोजन के समय बलके अनुसार मात्रा खाय तो परिणाम शूल शीघ्र नष्ट हो जाता है॥ ७९॥ ८०॥

इमली का खार पांच पल, पांचोनमक, पांच२ पल, इन सब को पीसकर दो प्रस्थ जम्बीरी निम्बू के रस में भिगो देय, फिर शङ्ख को भस्म बारह पल, हींग चार पल, त्रिकुटा चार पल, पारा

(१) गन्धकस्य।

दद्यात् समस्तं संमर्द्य जम्बीराम्बे दिनत्रयम् ।
वदरास्थिप्रमाणेन गुड़िकाः कारयेद्भिषक् ॥ ८३ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय तोयमुष्णं पिबेदनु ॥ ८४ ॥
शूलञ्च सर्वंगुल्मञ्च अजीर्णं परिणामजम् ।
अन्त्रशूलं पङ्क्तिशूलं हृच्छूलञ्च विशेषतः ॥ ८५ ॥
कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं पृथग्वातादिसम्भवम् ।
आमशूलमुदावर्त्तं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ८६ ॥
इति शङ्खरसगुड़िका ।

यः पिबति सप्तरात्रं शक्तूनेकान् कलाययूषेण ।
स जयति परिणामजं शूलं चिरमपि किमुतनूतनजम्
॥ ८७ ॥

लौहचूर्णं वरायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा ।
परिणामशूलं शमयेत्तन्मण्डलं वा प्रयोजितम् ॥८८॥
इति लौहचूर्णम् ।

आधापल, सोंगियाविष आधा पल, गन्धक आधा पल, इन सब को जम्बीरी निम्बू के रसमें डाल कर तीन दिन घोटे, फिर बेर की गोठली के समान गोली बांधे, रोगीको एक गोली खिलाकर ऊपरसे गर्मपानी पिलावे, इससे सब प्रकार के शूल, गुल्म, अजीर्ण, परिणामशूल, अन्त्रशूल, पंक्तिशूल, हृदयशूल, हृदयशूल, पसुलीका शूल, वातशूल, पित्तशूल, कफशूल, आमशूल और उदावर्त्त रोग दूर हो जाते हैं, इसका नाम शङ्खवटी रस है ॥ ८१—८६ ॥

जो मनुष्य सात दिनतक उड़द के रस में मिलाकर केवल सत्तू खाय। उसका पुराना शूल भी दूर होता है और नए शूल कि तो बात ही क्या है? ॥ ८७ ॥

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रोमकं विड़म् ।
दन्ती लौहरजःकिट्टं त्रिवृत्सूरणं समम् ॥ ८९ ॥
दधि गोमूत्रपयसा मन्दपाकविपाचितम् ।
तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ९० ॥
जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीत मांसादिघृतसाधितम् ।
नाभिशूलं प्लीहशूलं यकृद्गुल्मकृतञ्च यत् ॥ ९१ ॥
विद्रध्यष्ठीलिकां हन्ति कफवातोद्भवं तथा ।
शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्ति तत्परम् ॥ ९२ ॥
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकृन्मतम् ॥ ९३ ॥

इति सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

नारिकेलं सतोयञ्च लवणेन प्रपूरितम् ।

लोह चून को त्रिफले, घी और शहत में मिला कर खानेसे परिणामशूल दूर होजाता है ॥ ८८ ॥

समुद्रनोन, सेंधानमक, जवाखार, सज्जीखार, कालानमक, खारीनोन, [विड्नोन, जमालगोटे की जड़, लोहचूर्ण, लोहे की कीट, निसोत और सूरन इन सबको समान लेकर दही, गोमूत्र और गायके दूधमें मिलाकर थोड़ा पकावे, फिर अग्नि और बलके अनुसार खाकर ऊपरसे गर्म पानी पिये, चाहे अन्न पचे वा न पचे किन्तु घीमें पका मांस खाना उचित है इससे नाभिशूल, पिलही, यकृत् और गुल्मसे उत्पन्न हुआ शूल, विद्रधि, अष्ठीला, कफ और वातसे उत्पन्न हुवा शूल दूर होजाता है, इसके समान शूल और परिणामशूल की औषधी और कोई नहीं है, इसका नाम समुद्रादिचूर्ण है ॥ ८९—९३ ॥

पानी समेत नरियल में नमक भरे, फिर उसे आगमें पका ले

विपक्कमग्निना सम्यक् परिणामजशूलनुत् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सन्निपातिकम् ॥८४॥
इति नारिकेलचूर्णम् ।

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयश्चूर्णसमं लिहन् ॥ ८५ ॥
मधुसर्पिर्युतं सम्यग् गव्यं क्षीरं पिबेदनु ।
छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम् ॥ ८६ ॥
आनाहं मूत्रसङ्गञ्च शोथञ्चैव निहन्ति वै ॥ ८७ ॥
इति सप्तामृतलोहम् ।

सपिप्पली गुडं सर्पिः पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे ।
विनिहन्त्यम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम् ॥ ८८ ॥
इति पिप्पलीघृतम् ।

क्वाथेन कल्केन च पिप्पलीनां
सिद्धं घृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम् ।

और चूर्ण बनाले इस चूर्णके खाने से वात, पित्त और सन्निपात से उत्पन्न हुवा शूल दूर होजाता है ॥ ८४ ॥

जेठीमधु, हर्र, वहेड़ा, आमला, लोहचूर्न इन सबको समान लेकर घी और शहत में मिलाकर खाय और ऊपर से गायका दूध पीवे तो वमन, तिमिर, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, गुल्म, आनाह, मूत्र कृच्छ्र और शोथ रोग दूर होजाते हैं इसका नाम सप्तामृत लोह है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

गुड, पीपल और घी इनको चौगुने दूध में मिलाकर पकावे, इन के खाने से अम्लपित्त और परिणाम शूल दूर होजाता है इस का नाम पिप्पली घृत है ॥ ८८ ॥

पीपल के काढ़े और कल्क मे घी पकाकर शहत के सङ्ग

क्षीरानुपानस्य निहन्त्यवश्यं
शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञकम् ॥ ९९ ॥

इति पिप्पलीघृतम् ।

बीजपूरकमैरण्डं रास्नां गोक्षुरकं बलाम् ।
पृथक्पञ्चपलान् भागान् यवप्रस्थसमायुतान् ॥१००॥
वारिद्रोणेन संसाध्यं यावत् पादावशेषितम् ।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्वाक्षसम्मितम् ॥ १०१ ॥
तुम्बुर्वभया व्योषं हिङ्गुसौवर्चलं विडम् ।
सैन्धवं यावशूकञ्च स्वर्जिकामम्लवेतसम् ॥ १०२ ॥
पुष्करं दाड़िमञ्चैव वृक्षाम्लं जीरकद्वयम् ।
मस्तुप्रस्थद्वयं दत्वा सर्वं मृद्वग्निना पचेत् ॥ १०३ ॥
घृतमेतत् प्रशंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ।

खाय और ऊपर से दूध पिये तो बढ़ा हुआ परिणा शूल अवश्य ही दूर होजाता है इसका नाम पिप्पलीघृत है ॥ ९९ ॥

विजौरानीम्बू, अरण्ड, रासन, गोखरू, बरियारे की जड़ ये सब पांच२ पल, जौ एक प्रस्थ, इन सबको कूटकर एकद्रोण पानी में मिलाकर पकावे, जब चौथाई रहजाय, तब उतार कर छानले। फिर उसमें एकप्रस्थ घी डालकर एक २ अक्ष नीचे लिखी औषधि डालकर पकावे, धनिया, हर्र, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, सोंचर, विड्नोन, सेन्धा, जवाखार, सज्जीखार, अमिलवेत, पुष्करमूल, दाड़मी, अनार, तिन्तड़ीक, सफेद जीरा, और कालाजीरा, इनसब को कल्क बनाकर दो प्रस्थ मट्ठा मिलाकर पहिलो औषधियों में मिलावे, और मन्द२ आगमें पकावे, इससे सन्निपातसे उत्पन्न हुआ,

वातशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहापहं परम् ॥ १०४ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अङ्गशूलञ्च नाशयेत् ।
बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ १०५ ॥

इति बीजपूराद्यघृतम् ।

कोल-ग्रन्थिक-शृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितम्
मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्वाथसान्द्रीकृतम् ।
तत्खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुक्
जेतुं वातकफामयान् परिणतौ शूलञ्च शूलानि च ॥१०६

इति कोलादिमण्डूरम् ।

लौहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रार्द्धाढ़के पचेत् ।
क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पङ्क्तिशूलहरं परम् ॥ १०७ ॥

इति क्षीरमण्डूरम् ।

शूल दूर होजाता है, वातशूल, यकृतशूल, गुल्मशूल, प्लीहशूल, हृदयशूल, पसुरी और सब शरीर में उत्पन्न हुवा शूल भी शीघ्र दूर होजाता है, इससे बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है ॥ १००—१०५ ॥

बेर, पिपरामूल, सोंठ और पीपलका खार इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे और उस सबके समान मण्डूर डालकर आठगुने गोमूत्र में पकावे जब पकते २ गाढ़ा होजाय, तब उतार लेय, इसे भोजन से पहले, पीछे और बीच में खाय, चिकना भोजन करै, इससे वात कफके रोग और सबप्रकारके शूल दूर होजाते हैं ॥१०६

आठपल लोहे कीकीट को आधे आढ़क गोमूत्र में पकावे, फिर उसे दूध में पकाकर खाने से पंक्तिशूल दूर होता है ॥१०७॥

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ।
नवभागानि चैतानि लौहकिट्टसमानि च ॥ १०८ ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्वा मूत्रार्द्धकगुड़ान्वितम् ।
शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डमा[illegible]म् ॥ १०९ ॥
स्निग्धे भाण्डे विनिःक्षिप्य भक्षयेत् कालमात्रया ।
प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितम् ॥ ११० ॥
योगोऽयं शमयत्याशु पङ्क्तिशूलं सुदारुणम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मन्दाग्नितामपि ॥ १११ ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं क्रिमिगुल्मोदराणि च ।
नाशयेदम्लपित्तञ्च स्थौल्यञ्चापि नियच्छति ॥ ११२ ॥
वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च ।
पंक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञितः ॥ ११३ ॥

बिडङ्ग, चीता, चाव, त्रिफला, त्रिकुटा, ये सब एक एक भाग और इन सब के समान लोहेकीकीट मिलाकर द्विगुने गोमूत्र, और आधे गुड़में डालकर धीरे २ मन्द आगि में पकावे, जब पकते पकते पिण्डसा होजाय, तब उतारकर चिकने बरतन में भरकर रखछोड़े, फिर प्रातःकाल एककोल खाय, फिर वात, पित्त, और कफ से उत्पन्न हुए, शूल में क्रमसे भोजन के पहिले, पीछे और बीचमें खाय तो इस औषधिसे भयानक पंक्तिशूल, कामला, ग्रहणी रोग, शोथ, मन्दाग्नि, अर्श, पाण्डुरोग, क्रमिदोष, गुल्म, पेट के रोग, अम्लपित्त और अधिक मोटा होना आदि रोग दूर होजाते हैं। इसमें सूखे साग, दाह करनेवाले भोजन, खटाई और कड़वी-वस्तु अपथ्य है, तारादेवीने जगत् के शूल रोगियोंको कल्याण करने

शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः ॥ ११४ ॥

इति ताराम‌ण्डूरगुडः ।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम् ।
शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा ॥ ११५ ॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः ।
विपचेत् सर्वमेकत्र यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥ ११६ ॥
सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा ।
वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम् ॥ ११७ ॥
निहन्त्येव नियोगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ॥ ११८ ॥

इति शतावरीमण्डूरम् ।

मण्डूरस्यातितप्तस्य वराक्वाथप्लुतस्य च ।
चूर्णीकृत्य पलान्यष्टौ शतावररसस्य च ॥ ११९ ॥
दध्नश्च पयसश्चाष्टावामलक्या रसस्य च ।
चतुःपलं घृतस्यापि शाणमात्रं विनिःक्षिपेत् ॥१२०॥

के लिये यह पंक्ति शूलान्तक गुड़मण्डूर बनाया था कोई २ इसे ताराम‌ण्डूर गुड भी कहते हैं ॥ १०—११४ ॥

शुद्ध मंडूरका चूर्ण आठपल, शतावर का रस आठपल, दही, दूध चार २ पल, गायका घी चारपल, इन सब को एक में मिलाकर जब पकते २ पिण्डसा होजाय, तब भोजन से पहले और पीछे खाय तो वात और पित्तका शूल और परिणाम शूल शीघ्र दूर होजाते हैं ॥ ११५ ॥ ११८ ॥

मण्डूरको आग में तपाकर त्रिफले के काढे में बुझावे, फिर उसी मण्डूरका चूर्ण आठपल, शतावरका रस, दही और दूध आठ

सिद्धे प्रत्येकमेतेषामजाजीधान्यमुस्तकम् ।
त्रिजातककणा पथ्या उपयुक्तं निहन्ति च ॥१२१॥
शूलं दोषत्रयोद्भूतमम्लपित्तञ्च दारुणम् ।
अरुचिञ्च वमिञ्चैव कासश्वासञ्च नाशयेत् ॥ १२२ ॥

इति बृहच्छतावरीमण्डूरम् ।

सद्यो लौहमलाज्यमाक्षिकसिताभागा समा मानतः
पात्रे ताम्रमये दिनान्तमथितं संस्था तपे ।
पश्चात्तद्घनतां प्रणीय रजनीमेकां व स्थापयेत्
पात्रे ताम्रमये निधेयमथवा पात्रे भाविते ॥१२३
पश्चान्माषचतुष्टयं प्रतिदिनं जग्ध्वा जलं शीतलं
पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्दभोज्यैर्नरैः ।

आठपल, आंवलेका रस चारपल और चा पल घी डालकर पकावै, फिर जीरा, धनिया, मोथा, तज, तेजपात, इलायची, पीपल और हर्र, मिला देय, इससे सन्निपात से उत्पन्न हुवा शूल, भयानक अम्लपित्त, अरुची, वमन, खांसी और सांस रोग दूर होजाते हैं, इसका नाम बृहच्छतावरीमण्डूर है ॥ ११८—१२२ ॥

उसी समय निकला हुवा लोहे का मैल, शहत और चीनी समान लेकर लोहे के बरतन में डालकर एकदिन मथे और मथ कर घाम में सुखा लेय, जब गाढा होजाय, तब एकरात ओस में रक्खे, इसे ताम्बे अथवा घी लगे बरतन में भी बना सक्ते हैं, फिर चार मासे खाकर ऊपरसे ठंढा पानी पीये । इसे भोजनके पहिले, बीचमें और बीच में खाय और इच्छानुसार भोजन करे, इस से शूल,

जेतुं शूल-हुताशमान्द्य-कसनश्वासाम्लपित्तज्वरो-
न्मादापस्मृतिमेहसर्वजठराजीर्णादिसर्वारुजः ॥१२४॥

इति चतुःसममण्डूरम्।

कुडवं पथ्या चूर्णं द्विपलं गन्धाश्म लौहकिट्टञ्च।
शुद्धरसस्यार्द्धपलं भृङ्गस्य रसं सकेशराजस्य ॥ १२५ ॥
प्रस्थोन्मितञ्च दत्वा लौहपात्रे लौहेऽथ दण्डसंघृष्टम्।
शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यञ्च भाजने स्निग्धे १२६
उपयुक्तमेतदचिरान्निहन्ति कफपित्तजान्रोगान्।
शूलं तथाम्लपित्तं ग्रहणीञ्च कामलामुग्राम् ॥ १२७ ॥

इति रसमण्डूरम्।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य।

मन्दाग्नि, खांसी, सांस, अम्लपित्त, ज्वर, उन्माद, अपस्मार, प्रमेह, पेट के सब रोग और अजीर्णादि दोष दूर होजाते हैं इसका नाम चतुस्सममण्डूर है ॥ १२३—१२४ ॥

एक कुडव तांबेका चूर्ण, गन्धक और लोहकीट एक एक पल, शुद्धपारा आधापल, इन सब को लोहे के बरतन में डालकर एक प्रस्थ घमिरे और काले घमिरे के रस में घोटे, परन्तु घोटने का डण्डा भी लोहे का होवे, जब सूखजाय, तब चिकने बरतन में भर कर रख छोड़े, रखने से पहिले घी और शहत, मिला देय ; फिर इस के खानेसे शीघ्र ही कफपित्तके रोग, शूल, अम्लपित्त, कामला और भयानक ग्रहणीरोग दूर होजाता है। इसका नाम रसमण्डूर है ॥ १२५—१२७ ॥

आंवलेका चर्ण आठपल, लोहेका चर्ण चार पल, जेठीमधु दोपल,

यष्टीमधुकरजस्य द्विपलं दद्यात्पटे घृष्टम् ॥
अत्र अमृता आमलकीति भानुदासः अन्ये गुडूचीमाहुः
॥ १२८ ॥

अमृता क्वाथेन तच्चूर्णं भाव्यञ्च सप्तसप्ताहम् ।
चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥१२९

घृतमधुना संयुक्तं भक्तादौ मध्यतस्तथान्ते च ।
त्रीण्यपि वारान् खादेत् पथ्यं दोषानुबन्धेन ॥१३०॥

भक्तस्यादौ शमयति घोरान् पित्तानिलोद्भूतान् ।
मध्येऽन्ने विष्टम्भं जयति नृणां विदह्यते चान्नम् ॥१३१

पानान्नकृतान् दोषान् भक्तान्ते शीलितं जयति ।
एवं जीर्य्यति चान्ने शूलं नृणां सुकष्टमपि ॥ १३२ ॥

हरति च सहसा युक्तो योगश्चायं जरत्पित्तम् ।
चक्षुष्यः पलितघ्नः कफपित्तसमुद्भवान् ज .त ॥१३३॥

इति धात्रीलौहम् ।

करञ्जुवा दो पल, इन सबको पीसकर कपड़े में छानकर गिलोय के काढे में सातवार सात दिन तक घोटे, फिर तेज घाम में सुखा कर पीसकर नये घड़े में भर दे, फिर प्रतिदिन प्रातःकाल घी और शहत में मिलाकर खाय, इस औषधि को भोजन के पहिले, पीछे और बीच में खाय, अथवा दिनमें तीनवार खाय, पथ्य दोषके अनुसार दे, भोजन से पहिले खाने से वात, पित्त के रोग, बीच में खाने से विष्टा रुकना, घोर अजीर्ण और भोजन के पीछे खाने से खाने पीने के दोष दूर होजाते हैं, इससे अन्न पचता है, घोर शूल और कफपित्त से उत्पन्न हुवे रोग दूर होजाते हैं, नेत्र बलवान्

षट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुड़वं तथा।
पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं दद्यात्पादावशेषितम्॥ १३४॥
शतमूलीरसस्याष्टावामलक्यारसस्तथा।
तथा दधि पयो भूमिकुष्माण्डस्य चतुष्पलम्॥१३५॥
चतुष्पलं सर्पिरिक्षुरसं दद्याद्विचक्षणः।
प्रक्षेपे जीरधन्याकं त्रिजातं करिपिप्पली॥ १३६॥
मुस्तं हरितकी चैव लौहमभ्रं कटुत्रिकम्।
रेणुकं त्रिफला चैव तालीशं नागकेशरम्॥ १३७॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैश्चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत्।
भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः॥ १३८॥
तोलकं भक्षयेच्चानु पेयं नित्यं पयस्तथा।

होते हैं, और रोगी बूढा नहीं होता, इस औषधि में भानुदासिने अमृता शब्दका अर्थ आमला और सबने गुरुच लिखा है, इसका नाम धात्री लोह है॥ १२८—१३३॥

शुधा हुवा मण्डूर छः पल, जौ एक कुड़व, इन दोनोंको आधे प्रस्थ पानीमें डालके पकावे, जब पकते पकते चौथाई पानी रह जाय, तब उतारकर छानले, फिर उसमें शतावरका रस आठ पल, आमले का रस आठ पल, दही आठ पल, दूध आठ पल, भूकुमड़ेका रस चार पल, घी चार पल और ऊखका रस चारपल डालकर पकावे, जब पकते पकते गाढा होजाय, तब जीरा, धनिया, तज, तेजपात, इलायची, गजपीपल, मोथा, हर, लोहा, अभ्रक, सोंठ, मिर्च, पीपल, रेणुका, हर्र, बहेड़ा, आंमला, तालीस और नागकेशर, इन सबको एक एक कर्ष चूर्ण करके छोड़ दे, फिर सावधान होकर भोजन के पहिले, पीछे और बीचमें एक तोला खाकर ऊपर से दूध पीवे,

शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ १३९ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
परिणामभवं शूलमन्नद्रवभवं तथा ॥ १४० ॥
द्वन्द्वजानपि शूलांश्च अम्लपित्तं सुदारुणम् ।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम् ॥ १४१ ॥

इति धात्रीलौहम् ।

शतावरीरसप्रस्थे प्रस्थे च सुरभीजले ।
अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्रीरसस्य च ॥ १४२ ॥
लौहमलपलान्यष्टौ शर्करापलषोड़श ।
दत्वाज्यकुड़वं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १४३ ॥
सिद्धशीते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत् ।
विड़ङ्ग-त्रिफला-व्योष-यमानी-गजपिप्पली ॥ १४४ ॥
द्विजीरकं घनं लौहमभ्रं कर्षद्वयं पृथक् ।

इस से शीघ्र असाध्य वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुवे, आठ प्रकारके शूल, परिणामशूल, अन्न द्रव शूल, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ शूल और भयानक अम्लपित्त रोग दूर होजाता है, इस शूल नाशक उत्तम औषधि का नाम धात्रीलोह है ॥ १३४—१४१ ॥

शतावर का रस एक प्रस्थ, गायका मूत्र एक प्रस्थ, बकरी का दूध एक प्रस्थ, आमलेका रस एक प्रस्थ, इन सबको एकमें मिलावे, फिर आठपल लोहा, सोलह पल शक्कर और एक कुड़व घी डालकर मन्द अग्नि में धीरे धीरे पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब विडङ्ग, हर्र, वहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवाइन, गजपीपल, सफेदजीरा, कालाजीरा, मोथा, लोहा और अभ्रक,

खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः ॥ १४५ ॥
शूलं सर्वभवं हन्ति पित्तशूलं विशेषतः।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षि वस्ति गुदे रुजम् ॥१४६॥
कासं श्वासं तथा शोथं ग्रहणीदोषमेव च।
यकृत् प्लीहोदरानाह राजयक्ष्मविनाशनम् ॥ १४७ ॥
विष्टम्भमामं दौर्बल्यमग्निमान्द्यञ्च यद्भवेत्।
एतान्रोगान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४८ ॥

इति शर्करालौहम्।

स्विन्नपीड़ितकुष्माण्डात्तुलार्द्धं भृष्टमाज्यतः।
प्रस्थार्द्धं खण्डतुल्यन्तु पचेदामलकीरसात् ॥ १४९ ॥
प्रस्थे कुष्मिन्नकुष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन्।
दार्व्यापाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत् ॥१५०॥

ये सब दो दो कर्ष पीसकर छोड़ दे, फिर भोजन के पहिले अग्नि और बल के अनुसार रोगी को खिलावे, इस से सन्निपात से उत्पन्न हुवा, शूल, विशेष कर पित्तशूल, हृदय, पसुरी, कोख और गुदा की पीड़ा, खांसी, सांस, शोथ, ग्रहणीरोग, यकृत, पिलही, पेट के रोग आनाह, राजयक्ष्मा, विष्टम्भ, आमदोष, दुर्बलता और मन्दाग्नि रोग इस प्रकार दूर हो जाते हैं, जैसे सूर्य्य निकलने से अन्धकार; इसका नाम शर्करा लोह है ॥ १४२—१४८ ॥

कुम्हड़े को उबालकर उसका पानी निकाल दे, फिर आधे तुला उसके टुकड़े लेकर घीमें भूने, फिर आधा प्रस्थ खांड और आमले का रस डालकर पकावे, उस में एकप्रस्थ कुम्हड़े का रस छोड़ दे, फिर कर्छू से चलाता रहे, जब पकते पकते

द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च ।
पलं तालीशधन्याकचातुर्ज्जातकमुस्तकम् ॥ १५१ ॥
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च ।
पंक्तिशूलं निहन्त्येतद् दोषत्रयकृतञ्च यत् ॥ १५२ ॥
छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च श्वासं कासमरोचकम् ।
हृच्छूलं पृष्ठशूलञ्च रक्तपित्तञ्च नाशयेत् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम् ॥ १५३ ॥

इति खण्डामलकी ।

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पल[illegible] पाचितं खण्डतुल्यम् ।
निजपयसि तदेतत् प्रस्थमाते विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान् क्षिपेच्च ॥ [illegible]४ ॥

गाढ़ा हो जाय तब दो दो पल पीपल, जीरा, [illegible]ठ, मिर्च ; एक पल तालीस, धनिया, तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, मोथा, एक कर्ष छोड़े, जब ठण्ढा हो जाय, तब आधाप्रस्थ सहत मिला दे, इस औषधीसे तीनों दोषों से उत्पन्न हुवा पंक्तिशूल, अम्लपित्त, मूर्च्छा, खांसी, श्वास, अरोचक, हृदय, पसुरीकी पीड़ा और रक्तपित्त रोग दूर होजाते हैं, इस रसायन औषधी का नाम खण्डामलकी है ॥ १४८—१५३ ॥

पीसा हुवा नारियल एक कुड़व ले कर एक पल घीमें भूने फिर इतना ही खांड डालकर एकप्रस्थ नारियल का पानी डालकर पकावे, जब पकते पकते गुड़के समान गाढ़ा होजाय,

धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरान्
शाणं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्णं ।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं च सकलां पुरुषत्वकारि ॥ १५५ ॥

इति नारिकेलखण्ड: ।

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्कराप्रस्थसम्मिता ।
तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पि: पञ्चपलानि च ॥ १५६ ॥
शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं क्षीरमेव च ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं पात्रे मृदग्निना पचेत् ॥ १५७ ॥
तुगा त्रिकटुकं मुस्तं चातुर्ज्जातं सधान्यकम् ।
द्विकणा जीरकञ्चैव कर्षयुग्मं पृथक् पृथक् ॥ १५८ ॥

तब धनिया, पीपल, मोथा, वंशलोचन, दोनों जीरे, तज, तेजपात, इलायची और नागकेशर एक एक शाण चूर्ण करके छोड़े इससे अम्लपित्त, अरुची, क्षय, रक्तपित्त, शूल और सब प्रकारका वमन रोग दूर हो जाता है और वीर्य्य बढ़ता है; इस का नाम नारियलखण्ड है ॥ १५४—१५५ ॥

पीसा हुवा नारियल आठ पल, शकर एकप्रस्थ इन दोनोंको एक कुड़व नारियल के पानी में मिलाकर पकावे, उस में पांच पल घी, सोंठका चूर्ण एक कुड़व, दूध आधाप्रस्थ डालकर बरतन में मिलाकर मन्द अग्निमें धीरे धीरे पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा हो जाय, तब वंशलोचन, त्रिकुटा, मोथा, तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, धनिया, पीपल, गजपीपल और जीरा

श्लक्ष्णचूर्णं विनिःक्षिप्य स्थापयेद्भाजने मृदः ।
खादेत्प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥ १५८ ॥
सर्वदोषभवं शूलमेकजं द्वन्द्वजं तथा ।
परिणामभवं शूलमम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥ १६० ॥
बलपुष्टिकरं हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम् ।
रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ।
धन्वन्तरिकृतञ्चैतन्नारिकेलरसायनम् ॥ १६१ ॥

इति वृहन्नारिकेलखण्डः ।

नारिकेलफलप्रस्थं सुपिष्टं भर्जितं घृते ।
प्रस्थे प्रस्थं समादाय शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम् ॥ १६२ ॥
द्विपालं नारिकेलाम्बु तत्समं क्षीरमेव च ।
धात्र्याश्च स्वरसप्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न[illegible] त् ॥ १६३
एकीकृत्य पचेत्सर्वं शनैर्मृद्वग्निना भिष[illegible] ।

दो कर्ष चूर्ण करके मिला दे और मिट्टीके बरतन में भर दे, फिर प्रतिदिन एक शाण खाय और जो इच्छा हो सो भोजन करे इससे एक एक अथवा सब दोषोंसे उत्पन्न हुवा शूल, परिणामशूल, अम्लपित्त, दुर्बलता, रक्तपित्त, वमन, हृद्रोग दूर हो जाते हैं और वीर्य्य बढ़ता है, इस औषधिका नाम धन्वन्तरीने नारिकेल रसायन लिखा है ॥ १५६—१६१ ॥

पीसा हुवा नरियल एक प्रस्थ लेकर घीमें भूने, फिर एक प्रस्थ सोंठका चूर्ण और दो कुड़व नरियलका जल और दो कुड़व गायका दूध, आमलेका रस एक प्रस्थ और एक प्रस्थ खांड डाल

सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णमेषां सुशोभनम् ॥ १६४ ॥
कटुत्रयं चतुर्जातं प्रत्येकञ्च पलोन्मितम् ।
धात्री जीरकयुग्मञ्च धान्यकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ १६५ ॥
गुगा पयोदचूर्णानि त्रिकर्षाणि पृथक् पृथक् ।
चतुष्पलानि मधुनः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ १६६
शिवं प्रणम्य सगणं धन्वन्तरिमथापरम् ।
कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं मुद्गयूषं पिबेदनु ॥ १६७ ॥
अम्लपित्तं निहन्त्युग्रं शूलञ्चैव सुदारुणम् ।
परिणामभवं शूलं पृष्ठशूलञ्च नाशयेत् ॥ १६८ ॥
अन्नद्रवभवं शूलं पार्श्वशूलं सुदुस्तरम् ।
अग्निसन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम् ॥ १६९ ॥
मूत्राघातानशेषांश्च रक्तपित्तं विशेषतः ।

कर एकमें मिलाकर धीरे धीरे मन्द अग्निमें पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब उतारकर ठण्ढा करले, फिर सोंठ, मिर्च, पीपल, तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, ये सब एक एक पल, आमला दो पल, जीरा, धनिया, वंशलोचन और मोथा, ये सब तीन तीन कर्ष चूर्ण बनाकर छोड़ दे, फिर चारपल शहत मिलाकर चिकने बरतन में भरकर रख दे, फिर गणेश, शिव और धन्वन्तरिको प्रणाम करके एक कर्ष रोगीको खिलावे ऊपर से मूंगका रस पिला दे, इससे घोर अम्लपित्त, भयानक शूल, परिणाम शूल, पीठकी पीड़ा, अन्नद्रवशूल, पसुरी की भयानक पीडा, सब प्रकारके मूत्राघात, विशेषकर रक्तपित्त,

पीनसञ्च प्रतिश्यायं नाशयेन्नित्यसेवनात् ॥ १७० ॥
रोगानीकविनाशाय लोकानुग्रहहेतवे ।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं नारिकेलामृतं शुभम् ॥ १७१
अत्र नारिकेलफलप्रस्थ द्वात्रिंशत्पलमार्द्रत्वात् ।
शुण्टीचूर्णस्य पुनः षोडशपलमेव प्रस्थसाम्यात् ॥१७२
पात्रं चतुःषष्टिपलं द्विपात्रम् अष्टाविंशत्यधिकशतपलं स्यात् किन्तु द्रवद्वैगुण्येन नारिकेलजल-दुग्ध-धात्री-रसा ग्राह्याः ॥ १७३ ॥
अल्पबोध बोधार्थं पत्रौ च क्रियते ॥ १७४ ॥

इति नारिकेलामृतम् ।

चतुःपलं हरीतक्यास्त्रिवृतायाश्चतुष्पल ।
चतुर्जातं समुस्तञ्च तालीशं जीरकं ॥ १७५ ॥

पीनस आदि सब रोग दूर होजाते हैं। अग्नि, बल और वीर्य्य की वृद्धि होती है, इस औषधीको जगत्के कल्याण के लिये अश्विनीकुमारोंने बनाया था। पीसे हुवे नरियल का फल एक प्रस्थ लिखा है परन्तु गीला होनेके कारण दो पल पड़ता है और सोंठ, उसी क्रमसे सोलह पल डाला जाता है, पात्रका अर्थ चौंसठ पल है, दो पात्रका एकसौ अट्ठाइस पल हुवा, परन्तु गीली औषधी पड़ती है, इस लिये नारियल का जल और आमले का रस इतना ही डाले, इस औषधी का नाम नारिकेलामृत है ॥ १६२—१७४ ॥

हर्रे चारपल, निसोत चारपल, तेजपात, इलायची, तज,

जातीकोषं लवङ्गञ्च लौहमभ्रञ्च टङ्कणम्।
प्रत्येकं कर्षमानेन श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ १७६॥
प्रस्थेन गव्यदुग्धस्य पचेन्मृदग्निना भिषक्।
शर्कराया दशपलं पाकसिद्धिविधानवित्॥ १७७॥
दार्वीप्रलेपावस्थायां क्षिपेच्चूर्णं विचक्षणः।
पूजयेद्भास्करं शम्भुं द्विजातीनभिवादयेत्॥ १७८॥
शूलमष्टविधं हन्ति अम्लपित्तं सुदुर्जयम्।
अन्नद्रवभवं शूलं कासं श्वासं तथा वमिम्॥ १७९॥
कान्ति पुष्टिकरो हृद्यो बलमेधाग्निवर्द्धनः।
ख्यातो हरीतकीखण्डः सर्वशूलनिकृन्तनः॥ १८०॥

इति हरीतकीखण्डः।

खित्वा पूगफलं दृढं परिणतं पक्त्वा च दुग्धाम्बुभिः

नागकेशर, मोथा, तालीश, जीरा, जाविची, लौंग, लोहा, अभ्रक, सुहागा, इन सबको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण बनावै, फिर इस चूर्णको एक प्रस्थ गाय के दूध में मिलाकर मन्द मन्द आग में पकावे, उसी में पाक विधि जाननेवाला वैद्य दशपल शक्कर डालदे, जब पकते पकते करछी में लगने लगे, तब ऊपर लिखा चूर्ण डालदे, फिर शिव, सूर्य्य और ब्राह्मणों को दण्डवत् करके पीछे रोगी खाय, इससे आठ प्रकारका शूल, कष्टसाध्य अम्लपित्त, अन्नद्रव शूल, खांसी, सांस, वमन और सबप्रकार के शूल दूर होजाते हैं, तेज, पुष्टी, बल, बुद्धि और अग्निकी वृद्धि होती है। इसका नाम हरीतकी खण्ड है॥ १७५—१८०॥

प्रक्षाल्यातपशोषितं वसुपलं ग्राह्यं ततश्चूर्णितात् ।
तत्सर्पिः कुडवे विपाच्य हि वरी धात्रीरसो द्वाञ्जली
द्वे प्रस्थे पयसः प्रदाय विपचेन्मन्दं तुलार्द्धांसिताम् १८१
हैमाम्भोधर चन्दनं त्रिकटुकं धात्री पियालास्थिजौ
मज्जानौ त्रिसुगन्धि जीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजा ।
जातीकोषफले लवङ्गमपरं धान्याक-कक्कोलकं
नाकूली नगराम्बु वारणशिफा भृङ्गाश्वगन्धे तथा १८२
सर्वं द्वाक्षमितं विचूर्ण्य विधिना पाके तु मन्दे ततः
प्रक्षिप्याथ विघट्टयन्मुहुरिदं दार्व्यावतार्य्य क्षणात् ।
सिद्धं वीक्ष्य विधारयेद्धवहितः स्निग्धेऽथ मृद्भाजने
खादेत्प्रातरिदं जरामयहरं वृष्यं बुधः कार्षिकम् १८३

उत्तम दृढ़ सुपारी लेकर कूट डाले, फिर उस चूर्णको दूध और पानी में पकावे, फिर धोकर घाम में सुखाले, सूखा हुवा चूर्ण आठपल लेकर दो कुड़व, घी, सतावर का रस और आमलेका रस दो दो अञ्जली, दूध दो प्रस्थ, चीनी आधीतुला, इन सबको मिला के मन्द मन्द आग में पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब नागकेशर, मोथा, चन्दन, सोंठ, मिर्च, पीपल, आमले कि गिरी, चिरौंजी, तज, तेजपात, इलायची, सफेद जीरा, कालाजीरा, सिंघाड़ा, वंशलोचन, जावित्री, जायफल, लौंग, धनिया, शीतल चीनी, रहसन, तगर, खस, गजसिफा, घमिरा और असगन्ध इन सबको दो दो कर्ष लेकर चूर्ण बनावे, जब वह पाक गाढ़ा होजाय, तब डालदे, फिर करछी से चलाता रहे, जब पक चुके, तब उतार कर मिट्टी के चिकने बरतन में रख दे, फिर बुद्धिमान रोगी बुढ़ापा और

शूलाजीर्णगुदप्रवाहरुधिरं दुष्टाम्लपित्तं वमेत्
यक्ष्मक्षीणहितं महाग्निजननं तट्छर्दिमूर्च्छापहम् ।
पाण्डुघ्नं बलवर्णपुष्टिकरणं गर्भप्रदं योषिता
मेतत्पूगरसायणं प्रदरनुद्विषमूत्रसन्धापहम् ॥१८४॥

इति पूगखण्डः ।

प्रस्थैकं पूगचूर्णस्य पयसश्चाढकं क्षिपेत् ।
शर्करायाः पलशतं घृतस्य कुड़वद्वयम् ॥ १८५ ॥
चातुर्जातं त्रिकटुकं देवपुष्पं सचन्दनम् ।
मांसी तालीशपत्रञ्च बीजं कमलसम्भवम् ॥ १८६ ॥
नीलोत्पलं तथा वांशी शृङ्गाटं जीरकं तथा ।
विदारीकन्दजञ्चैव रजो गोक्षुरसम्भवम् ॥ १८७ ॥

सब रोग दूर होनेके लिये प्रतिदिन प्रातःकाल एक कर्ष खाय, इस से शूल, अजीर्ण, अर्श, अम्लपित्त, राजयक्ष्मा, क्षीणता, मन्दाग्नि, प्यास, वमन, मूर्च्छा और खुजली, आदि रोग दूर होजाते हैं। बल, वर्ण और पुष्टीको वृद्धि होती है, इससे स्त्रियों का प्रदर रोग दूर होजाता है और गर्भ होता है, इसका नाम पूगखण्ड है ॥ १८१—१८४ ॥

सुपारीका चूर्ण एक प्रस्थ लेकर एक आढक दूध में पकावे, पकते समय एकपल शक्कर और दो कुड़व, घी, डाल दे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, चन्दन, जटामांसी, तालीसपत्र, कमलगट्टे की गिरी, नीलोफर वंशलोचन,

शतमूलीरजश्चैव मालतीकुसुमं तथा ।
धात्रीचूर्णं समं कर्षं कर्पूरं शुक्तिमानतः ॥ १८८ ॥
मन्देऽग्नौ विपचेद्वैद्यः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
खादेच्च प्रातरुत्थाय कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ १८९ ॥
छर्द्यम्लपित्तहृद्दाहभ्रममूर्च्छापहं नृणाम् ।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठमामवातविनाशनम् ॥ १९० ॥
मेहमेदोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च गुदजं रुधिरं जयेत् ॥ १९१ ॥
रेतोवृद्धिकरं हृद्यं पुष्टिदं कामदं तथा ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १९२ ॥
नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मणि ॥ १९३ ॥

इति पूगखण्डः ।

सिंघाड़ा, जीरा, विदारीकन्द, गोखरू, शतावर, चमेलीके फूल और आमला, इन सबको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण बनावे, संग ही आधापल कपूर डाले और मन्द आग में पकावे, फिर चिकने बरतन में रखदे, और रोगी को प्रातःकाल एक कर्ष खिलावे, इस से अम्लपित्त, वमन, हृदयका दाह, भ्रम, मूर्च्छा, सब प्रकारका शूल, आमवात, प्रमेह, मेदरोग, पिलही, पाण्डुरोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, रक्तातिसार, अर्श आदि रोग दूर होजाते हैं, वीर्य्य, पुष्टी और मैथुन की इच्छा बढ़ती है, बन्ध्याको भी पुत्र होता है, बूढ़ा मनुष्य भी जवान होजाता है, इसके समान कोई वाजीकरण औषधि नहीं है, इसका नाम पूगखण्ड है ॥ १८५—१९३ ॥

द्विपलं तिन्तिड़ीक्षारं तथापामार्गसम्भवम् ।
शम्बूकभस्मसंयुक्तं लवणस्य समं तथा ॥ १९४ ॥
चतुर्णां समभागाः स्युस्तुल्यश्च लौहचूर्णकम् ।
चूर्णं संपिष्य खल्लादौ कारयेदेकतां भिषक् ॥ १९५ ॥
शूलस्यागमवेलायां खादेन्माषद्वयं नरः ।
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ १९६ ॥

इति वैश्वानरलौहम् ।

कृत्वा गजपुटं दत्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
सम्पुटं चूर्णयेत् श्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् ॥ १९७ ॥
भक्षयेत्सर्वशूलार्त्तो हिङ्गु शुण्ठी सजीरका ।
वचा मरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ॥ १९८ ॥
असाध्यं साधयेच्छूलं श्रीशूलगजकेशरी ॥ १९९ ॥

इति शूलगजकेशरी ।

तिंतिड़ी का खार दो पल, अपामार्ग का खार दो पल, घोंघे की भस्म दो पल, इन चार रोंके समान लोहे का चूर्ण डालकर खरल में घोटकर एक करदे, जब जाने कि अब शूल उठेगा, तब ही रोगीको एक मासे खिलादे, इस से आठों प्रकार के साध्य, असाध्य, शूल, निःसन्देह दूर होजाते हैं, इस का नाम वैश्वानर लोह हैं ॥ १९४—१९६॥

हींग, सोंठ, जीरा, वच और मिर्च, इनको संपुट में बन्द करके गजपुटमें फूंकदे, जब आप से आप ठंडा होजाय, तब संपुटके समेत चूर्ण करले, तब पानपर रखकर दोरत्ती खिलावे.

रसगन्धकलौहानां पलार्द्धेन समन्वितम् ।
टङ्कणं रामठं शुण्ठी त्रिकटु त्रिफला शटी ॥ २०० ॥
त्वगेला पत्रतालीशं जातीफललवङ्गकम् ।
यमानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ २०१ ॥
माषिका वटिका कार्य्या छागीदुग्धेन पेषिता ।
गणेशं योगिनीं शम्भुं हरिं सूर्य्यं प्रपू च ॥ २०२ ॥
शीततोयानुपानेन छागीदुग्धेन वा नः ।
एकैका भक्षिता चेयं वटिका शूल ज्ञणी ॥ २०३ ॥
शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरज्वरम् ।
अष्ठीलानाहमेहांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ २०४ ॥
अम्लपित्तामवातांश्च कामलां पाण्डुरोगकम् ।

अथवा गरम जलके संग एक कर्ष खिलावे, इससे साध्य, असाध्य सबप्रकार के शूल दूर होजाते हैं; इसका नाम शूल गजकेशरी रस है ॥ १८७२—१८८ ॥

पारा, गन्धक और लोहा, ये आधा आधा पल; सुहागा, हींग, सोंठ, त्रिकुटा, त्रिफला, कपूर, तज, इलायची, तालीश-पत्र, जायफल, लौंग, अजवाइन, जीरा और धनिया इन सब को एक एक तोला डालकर बकरी के दूध में पीसकर एक एक मासेकी गोली बनावे, फिर गणेश, योगिनी, शिव, विष्णु और सूर्य्य की पूजा करके एक गोली खिलावे, ऊपर से ठंडापानी या बकरी का दूध पिलादे, इस एक एक गोलीके खानेसे आठों प्रकार का शूल, पिलही, गुल्म, ज्वर, अष्ठीला, आनाह, प्रमेह, मन्दाग्नि अरुचि अम्लपित्त, आमवात, कामला, पाण्डुरोग,

गुरुणा चन्द्रनाथेन वटिकैषा प्रकीर्त्तिता ॥ २०५ ॥
संसारलोकरक्षार्थं विचिन्त्य परिनिर्मिता ॥ २०५ ॥

इति शूलवज्रिणीवटी ।

त्रूषणत्रिफलामुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा ।
एकैकशः समोभागस्तदर्द्धं रसगन्धयोः ॥ २०६ ॥
लौहाभ्रकविड़ङ्गानां भागस्तु द्विगुणां भवेत् ।
एतत्सर्वं समादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ २०७ ॥
त्रिफलायाः कषायेण गुड़िकां कारयेद्भिषक् ।
तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु ॥ २०८ ॥
निहन्ति परिणामोत्थमम्लपित्तं वमिं तथा ।
अन्नद्रवभवं शूलं सन्निपातसमुद्भवम् ॥
सर्वशूलं निहन्त्याशु शुष्कदार्वनलो यथा ॥ २०९ ॥

इति शूलान्तको रसः ।

दूर होजाते हैं, जगतकी रक्षा के लिये चन्द्रनाथ गुरूने बहुत विचार कर यह गोली बनाई थी इसका नाम शूलवज्रणी वटी है ॥ २००—२०५ ॥

त्रिफला, मोथा, निसोत, चीता ये सब तीन तीन भाग, पारा और गन्धक, आधा आधा भाग ; लोहा, अभ्रक और विडङ्ग दो दो भाग इन सबको मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य चूर्ण बनावे, फिर त्रिफले के काढ़े में घोटकर गोली बनावे, रोगीको प्रातःकाल एक गोली खिलाकर ऊपर से पानी पिलावे, इस से परिणाम शूल, अम्लपित्त, वमन, अन्नद्रव शूल आदि सब शूल इस प्रकार नष्ट होजाते

विड़ङ्गमुस्तत्रिफलागुडूची
दन्तीत्रिवृच्चित्रककटुत्रिकञ्च ।
प्रत्येकमेषां पिचुभागचूर्णं
पलानि चत्वार्य्ययसोमलस्य ॥ २१० ॥
गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य
यद्वायसस्तानि चिराटिकायाः ।
कृष्णाभ्रकाच्चूर्णपलं विशुद्धं
निश्चन्द्रकं श्लक्ष्णमतीव सूतात् ॥ २११ ॥
पादोनकर्षं स्वरसेन खल्ल-
शिलातले मन्युमनीदलस्य ।
संमर्द्य यत्नादतिशुद्धगन्ध-
पाषाणचूर्णेन पिचून्मितेन ॥ २ ॥
युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्वा
सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात् ।

हैं, जैसे आग लगने से सूखाकाट इसका नाम शूलान्तक रस है ॥ २०६—२०९ ॥

विडङ्ग, मोथा, हर्र, वहेड़ा, आमला, गुरिच, जमालगोटे की जड़, निसोत, चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल इन सबको एक एक पल लेकर चूर्ण बनावे, और उसमें चार पल लोहेकी कीट मिलाकर गोमूत्र में शुद्ध करें, अथवा पुराना लोहेका चूर्ण और चिरायता डाले, फिर शुद्ध काले अभ्रक की चन्द्रक रहित भस्म एकपल, पारा एकपल, इन सबको खरल में डालकर मनूमती के पत्तों के अर्कमें घोटे, फिर शुधे हुवा गन्धको एक अच्छ भर लेकर पत्थर पर पिसे, फिर पेली ओस घी मिलाकर घी और शहत में घोट

संस्थापयेत् स्निग्धविशुद्धभाण्डे
ततः प्रयोज्यास्य रसायनस्य ॥ २१३ ॥
प्राङ्माषकौ द्वावथवा त्रयो वा
गव्यं पयो वा शिशिरं जलं वा।
पिबेदयं योगवरः प्रभूत-
कालप्रणष्टानलदीपकस्य ॥ २१४ ॥
रोगेषु हन्यात्परिणामशूलं
शूलं तथान्नद्रवसंज्ञकञ्च।
यक्ष्माम्लपित्तं ग्रहणीप्रदुष्टिं
जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम् ॥ २१५ ॥
न सन्ति ते यान्न निहन्ति रोगान्
योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः ॥ २१६ ॥
परिणामशूलेऽतिप्रशस्तम्।

इति श्रीविद्याधराभ्रम्।

कर चिकने बर्तन में रखदे, फिर इस रसायन औषधि को दो या तीन मासे से खाना प्रारम्भ करे, ऊपर से गाय का दूध या ठण्ढा पानी पीवे, इससे बहुत दिनकी नष्ट हुई, अग्नि तेज होजाती है, परिणाम शूल, अन्नद्रव शूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, ग्रहणी रोग, जीर्णज्वर और भयानक रक्तपित्त रोग दूर होजाता है, ऐसा कोई रोग नहीं है जो इस उत्तम औषधि से दूर न होसके, विशेष कर परिणामशूल के लिये बहुत ही उत्तम है। इसका नाम विद्याधर अभ्रक है ॥ २१०—२१६ ॥

अभ्रं गन्धं रसं लौहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम् ।
सर्वमेतत्समाहृत्य यत्नतः कुशलो भिषक् ॥ २१७ ॥
आज्यपलद्वादशके दुग्धे वत्सरसञ्ज्ञके ।
पक्त्वा चिपेदव चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥
विड़ङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च ॥ २१८ ॥
पिष्ट्वा पलोन्मितानेतान् तथा संमिश्रितान्नयेत् ।
तत्तु पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः ॥ २१९ ॥
आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ।
घृतेन मधुना मर्द्यं भक्षयेन्माषकावधि ॥ २२० ॥
क्रमेण वर्द्धयेत्तच्च समाहित मनाः सदा ।
अनुपानञ्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा ॥ २२१ ॥
जीर्णान्ने हितशाल्यन्नं मुद्गमांसरसादिभिः ।
रसायनाऽविरुद्धानि अन्यान्यपि च कारयेत ॥ २२२ ॥

अभ्रक, गन्धक, पारा और लोहा ये सुधे हुवे एक एकपल इन सबको एकमें मिलाकर एक बरस पुराने बारह पलघी और दूधमें डालकर पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब नीचे लिखी औषधियों को कपड़े में छानकर छोड़ दे, विडङ्ग, हर्र,*बहेड़ा, आमला, चीता, सोंठ, मिर्च, और पीपल इन सबको एक एक पल पीसकर छोड़े। फिर अच्छे दिन गुरु और सूर्य्यको पूजा करके घी और सहत में मिलाकर दो मासा खाय, फिर सावधान होकर क्रमसे बढ़ाता जाय, ऊपर से गायका दूध या नरियल का पानी पीये, जब यह औषधि पचजाय, तब मूंग अथवा और किसी पथ्य

——— * [illegible] और भी स्वभाव के अनुकूल पथ्य

हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च आमवातं कटीग्रहम् ।
गुल्मशूलं शिरःशूलं यकृत् प्लीहानमेव च ॥ २२३ ॥
अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च योगेनानेन साधयेत् ॥ २२४ ॥

चतुःसमलौहम् ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां शूलाधिकारः समाप्तः ।

अथोदावर्त्ताधिकारः ।

ततोदावर्त्तस्य विप्रकृष्टन्निदानमाह ।

विगमूत्रजृम्भापवनक्षुत्क्षवोद्गाररोधनैः ।
श्वास-तृषा-छर्दि-निद्रा-धृत्योदावर्त्तसम्भवः ॥ १ ॥

या औषधि खाय, इससे हृदय, पसुरी और कमरकी पीड़ा, आमवात, गुल्म, शूल, शिरकी पीड़ा, यकृत्, पिलही, मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ठ, खांसी, सांस, विचर्चिका, अश्मरी, और मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होजाते हैं इसका नाम चतुःसम लौह है ॥ २१७—२२४ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावली में शूल चिकित्सा अधिकार समाप्तः ।

उदावर्त्तनिदान भाषा लिखते हैं ।

विष्टा, मूत्र, जम्भाई, वायु, भूख, छींक, श्वास, प्यास, वमन और नींद इनके रोकनेसे उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है॥ १ ॥

उदावर्त्तस्य सामान्यं रूपमाह ।

यत्रोर्द्ध्वं जायते वायोरावर्त्तः स चिकित्सकैः ।
उदावर्त्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ॥ २ ॥

अथ क्रमेण लक्षणान्याह ।

तत्रापाननिग्रहजमाह ।

अपाने निहते वाते आध्मानं जठरे रुजः ।
वातविण्मूत्ररोधश्च अन्ये वातोद्भवा गदाः ॥ ३ ॥

अथ विड्निरोधजमाह ।

शूलन्तथाटोपपुरीषसङ्गौ
वायुस्तथोर्द्ध्वं किल याति जन्तोः ।
मुखात्पुरीषं सुनिरेति नित्य
विड्वेगघाते जठरेऽतिपीड़ा ॥ ४ ॥

अथ मूत्रनिग्रहजमाह ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते नरस्य
वस्तौ ध्वजे वङ्क्षणयोश्च पीड़ा ।

जिस रोगमें वायु ऊपरको चले वैद्योंने उसका नाम उदावर्त्त लिखा है इस रोग में वायु प्रधान है ॥ २ ॥

वायुको रोकनेसे पेट फूलता है, पेटमें पीड़ा होती है, वायु, विष्टा और मूत्र रुक जाते हैं और भी वायुके अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

विष्टा रोकनेसे पेटमें पीड़ा होती है, शूलरोग होजाता है, पेट फूलता है, वायु ऊपरको चलने लगता है और मुख विष्टा आने लगता है ॥ ४ ॥

शिरोऽतिपीड़ा नमनं च चिह्ना-
न्येतानि पूर्वैः कथितानि वैद्यैः ॥ ५ ॥

अथ जृम्भानिरोधजमाह ।

जृम्भानिरोधे शिरसोऽतिपीड़ा
मन्या गलस्तम्भनमक्षिदाहः ।
नासा मुखोत्थाः पवनोद्भवास्तु
रोगास्तथान्ये श्वसनप्रसूताः ॥ ६ ॥

अथाश्रुनिरोधजमाह ।

आनन्दशोकोद्भवमश्रुपूरम्
रुणद्धि यो नाऽस्य शिरोगुरुत्वम् ।
नेत्रामयास्तीव्रतरा भवन्ति
सपीनसा वातप्रकोपजाताः ॥ ७ ॥

अथ हिक्कानिरोधजमाह ।

हिक्का-वेग-निरोधे तु मन्यास्तम्भो गलग्रहः ।

मूत्र रोकनेसे मूत्राशय, लिङ्ग, अण्डकोश और शिरमें पीड़ा होती है, तथा सब शरीर पीड़ासे व्याकुल होजाता है ॥ ५॥

जम्भाई रोकनेसे शिरमें पीड़ा, मन्यास्तम्भ, गलस्तम्भ, आंख में जलन, नाक और मुखमें अनेक वायुरोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ ६ ॥

जो मनुष्य आनन्द अथवा शोकसे उत्पन्न हुई आंसुवोंको रोकता है, उसका शिर भारी होजाता है, नेत्रमें भयानक रोग उत्पन्न होते हैं और पीनस रोग उत्पन्न होजाता है ॥ ७ ॥

हिंचकी रोकने से मन्यास्तम्भ, गला इधर उधरको न चलना,

शिरःपीड़ा चेन्द्रियाणां दौर्बल्यं चार्द्धभेदकम् ॥ ८ ॥

उद्गारनिरोधजमाह ।

कण्ठस्य वदनस्यापि तोदः कूजश्च पूरणम् ।
वाताप्रवृत्तिर्वातोत्था गदा उद्गाररोधजाः ॥ ९ ॥

अथ वमनरोधजमाह ।

वान्ति-घाते शोथकण्डूकुष्ठारुचिविसर्पताः ।
हृल्लासज्वरकोठाश्च प्रभवन्ति तथाऽपरे ॥ १० ॥

अथ शुक्रनिरोधजमाह ।

मूत्राघातो मूत्रकृच्छ्रं वेदना वस्ति मुष्कयोः ।
मूत्ररोधश्च निहते वीर्य्यवेगेऽश्मरी तथा ॥ ११ ॥

अथ क्षुधाघातजमाह ।

नेत्रदौर्बल्यमरुचिः भ्रमस्तन्द्राङ्गगौरवम् ।
क्षुधाभिघाते भवति श्रमश्च क्लम एव च ॥ १२ ॥

शिरमें पीड़ा, आधाशिसी और इन्द्रियों की दुर्बलता, ये लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

डकार रोकनेसे कण्ठ और मुंह, भरासा जान पड़ता है, पीड़ा होती है, वायु आना बन्द होजाता है तथा और भी अनेक वात रोग होजाते हैं ॥ ९ ॥

वमन रोकनेसे शरीर में सूजन, दाफर, खुजली, कुष्ट, अरुची, विसर्प, हल्लास और ज्वर आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १० ॥

वीर्य्य रोकने से मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, मूत्र रुक जाना और मूत्राशय तथा अण्डकोशमें पीड़ा, ये लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

भूख रोकनेसे घूमनी, जम्भाई, आलस्य, थकाई, शरीर का भारी पन और नेत्रोंकी दुर्बलता ये लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

अथ तृष्णानिरोधजमाह।

कण्ठशोषश्च हृदये व्यथा तृष्णानिरोधजे ॥ १३ ॥

अथ श्वासनिरोधजमाह।

श्वासरोधेति श्रान्तत्वं हृद्रोगो गुल्म एव च ॥ १४ ॥

अथ निद्रानिरोधजमाह।

जृम्भा गुरुत्वमङ्गानां शिरःपीड़ाङ्गगौरवम्।
जड़ता चापि भवति निद्रावेगनिरोधजे ॥ १५ ॥

अथासाध्यलक्षणमाह।

क्लिष्टं क्षीणं वमन्तञ्च तृषाढ्यं मतिमान् भिषक्।
शकृच्छर्दियुतं जह्यादुदावर्त्तातुरं शुभम् ॥ १६ ॥

अथ चिकित्सा।

त्रिवृत् सुधापत्रतिलादिशाकः
ग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम्।

प्यास रोकने से कण्ठ सूखता है और हृदय में पीड़ा होती है ॥ १३ ॥

श्वास रोकने से थकाई, हृद्रोग और गुल्म होजाता है ॥ १४ ॥

नींद रोकने से जम्भाई, शरीरों का भारीपन, शिरमें पीड़ा, जड़ता अर्थात् किसी वस्तुका ज्ञान न रहना, ये लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥

जो बुद्धिमान् वैद्य अपना कल्याण चाहै सो पुराने, दुबले, वमन और प्याससे युक्त तथा जिसे वमन में विष्टा आता होय, उस उदावर्त्त रोगी को छोड़ दे ॥ १६ ॥

अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भि-
र्द्यात् प्रसन्ना गुडसीधुपायी ॥ १७ ॥
आस्थापनं मातरुजे स्निग्धस्विन्नस्य शस्यते ।
पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥ १८ ॥
खण्डपलं त्रिवृता सममुपकुल्या कर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम् ।
प्राग्भोजने च समधु विड़ालपदकं लिहेत्प्रातः ॥१९॥
एतद्गाढ़पुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् ।
स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नाराचको नाम्ना ॥ २० ॥
इति नाराचचूर्णम् ।
सूतगन्धकतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ।

आगे उदावर्त्त रोगकी चिकित्सा लिखते हैं ।

उदावर्त्त रोग में रोगी निसोत, सुधापत्र, तिलादिकादिका साग, गांव, जल और अधिक जलवाले देश में उत्पन्न हुवे जन्तुवों के मांस का रस जौकी रोटी और भी विष्टा, वायु को ... कनेवाला पथ्य खाय और गुड़का मद्य पिवे । १७ ॥

वायु से उत्पन्न हुवे उदावर्त्त रोग में पहिले रोगीके शरीर को चिकना करके पसीना देकर आस्थापन वस्तु दे, विष्टासे उत्पन्न हुवे उदावर्त्तरोग में आनाह रोग में लिखो चिकित्सा करे ॥ १८ ॥

खांड़ एक पल, निसोत दो पल, पीपल एक कर्ष, इन सबका चूर्ण बनाकर सहत में मिलाकर भोजन से पहिले और पीछे एक विड़ाल पद खाय, ये औषधि अत्यन्त बढ़े पित्त और कफमें दे, यह मीठा चूर्ण राजों के खाने योग्य है, इसका नाम नाराच चूर्ण है ॥१९॥२०॥

पारा और गन्धक एक एक भाग, मिर्च एक भाग, सुहागा,

टङ्कणं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत् ॥ २१

सर्वतुल्यानि बीजानि दन्तीनां निस्तुषाणि च।

स्नुहीक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ २२ ॥

नारिकेलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः।

तत्कल्कं पाचयेत्क्षिप्रं खल्लयित्वा निधापयेत् ॥२३॥

तन्मध्यनाभिलेपेन राजयोग्यं विरेचनम्।

वटिकालेपमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥ २४ ॥

तद्गन्धघ्राणमात्रेण विरेको जायते ध्रुवम् ॥ २५ ॥

इति नाराचरसः।

त्रिवृत् कृष्णा हरीतक्यो द्विचतुःपञ्चभागिकाः।

गुड़िका गुड़तुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः ॥ २६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदावर्त्ताधिकारः।

पीपल और सोंठ दो दो भाग और इन सबके समान छिलका रहित जमाल गोटा, इन सब को तीनदिन तक थूहर के दूध में घोटे, फिर नरियल में भरकर गजपुट में फूंक दे, फिर खरल में घोटकर उठा रक्खे, इसका नाभी में लेप करने से विरेचन होता है, एक गोली लेपने से दश दस्त होते हैं, और सूंघने से भी उसी समय दस्त होजाता है इसका नाम नाराच रस है ॥ २१—२५ ॥

निसोत, पीपल, हर्र ये सब औषधि क्रम से २। ४ और ५ भाग लेकर उतना ही गुड़ डालकर, गोली बनावे, उस गोली के खाने से दस्त होता है ॥ २६ ॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावली में उदावर्त्त अधिकारः।

अथानाहाधिकारः।

अथानाहनिदानम्।

अपक्वमन्नन्त्वथवाविपक्वं
सुसञ्चितं कोष्टगतं मरुद्यदा।
सन्दूष्य दुष्टः किल बद्धरूपं
करोति चानाहमुदाहरन्ति तम्॥ १॥

अथामजमानाह।

आमोत्थिते भवेत्तृष्णा प्रतिश्याय: शिरोगदाः।
गुरुत्वं शूलदाहौ च हृत्स्तम्भश्चापि जायते॥ २॥

अथ विष्टासञ्चयजमाह।

पुरीषे सञ्चिते कोष्टे स्तम्भो मूर्च्छा शकृद्वमिः।
कटि पृष्ठरुजस्तीव्राः श्वासः कासश्च पीड़नम्॥३॥
आमाशयस्य भवति तथालसकलक्षणम्।

आनाह निदान का भाषा लिखते हैं।

जब वायु पके अथवा विना पके पेट में इकट्ठे हुवे अन्न को विगाड़ कर गांठ के समान कर देता है, तब वैद्य उसे ही आनाह रोग कहते हैं॥ १॥

आम से उत्पन्न हुवे, आनाह रोग में प्यास प्रतिश्याय शिरको पीड़ा, शरीर भारी रहना, शूल, जलन और हृदय में स्तम्भन ये लक्षण होते हैं॥ २॥

विष्टा से उत्पन्न हुवे आनाहरोग में मूर्च्छा, कमर और पीठ में

पक्वाशये वेदना च हृत्पार्श्वग्रहणं तथा ॥ ४ ॥

अथ चिकित्सा ।

त्रिवृद्धरीतकी श्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत् ।
स्नुहीमूलस्य चूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ५ ॥
वर्त्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ।
मधूनि गुडे वा पक्वा पाय्वीरिताङ्गुष्ठपरिमाणा ॥६॥
वर्त्तिरियं दृष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता ।
आनाहोदावर्त्तप्रशमनी जठरगुल्मनिवारिणी च ॥७॥
सर्षपः श्वेतः मदनफलमेकं त्रिकट्वादीनां मिलित्वा-
कर्षः मधुनः पलं पक्वा वर्त्तिः कर्त्तव्येत्येके ॥ ८ ॥

पीड़ा, सांस, खांसी, विष्ठाका वमन, पक्वाशय, हृदय और पसुरी में पीड़ा ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

आगे आनाह रोग की चिकित्सा लिखते हैं ।

निसोत, हर्र और पीपल इन औषधियोंको समान लेकर थूहरके दूध में भिगोकर खाय, अथवा गर्म पानी के संग थूहर की जड़का चूर्ण खाने से आनाह रोग दूर होजाता है ॥ ५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधा नमक, सरसों, घरका धुंवा, कूट और मैनफल को पीसकर सहत में मिलाकर अथवा गुड़ में पका कर अंगूठे के समान मोटी वत्ती बनाकर उस के ऊपर घी लगाकर धीरे धीरे गुदा में रखने से आनाह, उदावर्त्त, पेट के रोग और गुल्मरोग दूर होजाते हैं ; इस में सरसों सफेद, एक मैनफल और त्रिकुटा आदि औषधि मिलकर एक कर्ष पड़ती है इन सब को एक पल सहत में पकाकर वत्ती बन ले, कोई कोई कहते हैं कि

त्रिकट्वादिद्रव्यं संगृहीत्वा गुड़े दत्वा पक्वा वर्त्ती-
कार्य्येति केचित् ॥ ८ ॥ इति त्रिकट्वादिवर्त्ती ।

इति भैषज्यरत्नावल्यामानाहाधिकारः ।

अथ गुल्माधिकारः ।

तत्र गुल्मस्य विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानपूर्वकं
सामान्यं लक्षणमुपदिशति ।

मिथ्याहारविहाराद्यैः दूषिताः पवनादयः ॥
ग्रन्थिरूपं कोष्टमध्ये चलं वाप्यथवाऽचलम् ॥ १ ॥
नाभेरूर्द्धं हृदोवस्तु दूषयित्वा मलन्तु ते ।
कुर्वन्ति ग्रन्थिरूपन्तु सगुल्मः पञ्चधा . ॥ २ ॥

त्रिकुटा आदि औषधियों को लेकर गुड़ में . . . आकार वर्त्ती बनावे,
इस वर्त्तीकी परीक्षा करी गई है, इसका नाम त्रिकुटादि वर्त्ती
है ॥६—८॥

आगे गुल्म निदानका भाषा लिखते हैं ।

जब मनुष्य स्वभाव से विरुद्ध आहार, व्यवहार करता है, तब वात, पित्त और कफ बिगड़कर पेट में चल अथवा अचल गांठ उत्पन्न कर देते हैं वह बिगड़े हुये मलकी गांठ नाभी के ऊपर और हृदयके नीचे होती है, इस ही रोगका नाम वैद्योंने गुल्म कहा है यह रोग पांच प्रकार का होता है ॥१॥२॥

अथ पञ्चधत्वं विवृणोति।

वातपित्तकफैः सर्वै रक्ततश्चापि जायते।
नराणाञ्चैव नारीणां दोषैरत्यन्तमूर्च्छितैः॥ ३ ॥

अथ रजोभवमाह।

रजसा चापि नारीणां संरुद्धेनास्य सम्भवः।
असृग्भवस्ततोऽन्यस्तु नराणां चापि योषिताम्॥४॥

अथ लक्षणान्तरमाह।

अन्त्रकूजनमानाह आटोपारुचिविभ्रमाः।
मूत्रकृच्छ्रपुरीषत्वमूर्द्ध्वं वातश्च पूर्वतः॥ ६ ॥

अथ वातिकस्य निदानमाह।

विषमशीतलरूक्षनिषेवणैः
पवनमूत्रपुरीषनिरोधनैः।

वातिक, पैत्तिक, कफ से उत्पन्न हुवा, सन्निपात से उत्पन्न हुवा और रुधिर से उत्पन्न हुवा, येही गुल्म के पांच भेद हैं, ये रोग स्त्री और पुरुष दोनों को होता है॥ ३॥

जब स्त्रियोंको मासिक धर्मरुक जाता है, तब उसही इकट्ठे हुवे रजसे पेट में गुल्म उत्पन्न होजाता है, इसको रजो गुल्म कहते हैं और रुधिरसे उत्पन्न हुवा, गुल्म दूसराही है, जो स्त्री और पुरुष दोनों को होता है॥ ४॥

गुल्मरोग होनेके पहिले आंतामें शब्द होता है, पेट फूलता है, अरुची बनी रहती है, चित्त घूमता रहता है, विष्टा और मूत्र बहुत कष्ट से आता है और वायु ऊपरको चलता है॥६॥

अतिशुचातिमलक्षयतस्तथा
भवति गुल्मकर: पवनो बली ॥ ७ ॥

अथ लक्षणमाह ।

श्यावारुणं यस्य वपुः समन्तात्
शोषस्तथास्ये शिशिरोज्वरश्च ।
हृत्पार्श्वकुक्ष्यंश शिर:सुपीड़ा
स्थानस्थितो पीड़ित सर्वगात्र: ॥ ८ ॥
जीर्णेऽधिकं यस्य मरुत्प्रकोपो-
भुक्ते च शान्तिं लभतेऽल्पमात्राम् ।
वातोद्भवन्तस्य विनिर्दिशन्ति
गुल्मन्तु वैद्या: किल शुद्धविद्या: ॥ ॥

जब मनुष्य विषम अर्थात् बे समय या कम अथवा ज्यादे, भोजन करता है, ठण्डा, रूखा, भोजन करता है, विष्ठा, वायु और मूत्र को रोकता है, बहुत सोच करता है, तब उसका मल नष्ट होने के कारण वायु गुल्मरोग उत्पन्न करता है ॥७॥

जिस रोगीका शरीर कुछ काला और लाल होजाय मुंसुड़े जूड़ी, बुखार आवे, हृदय पशुरी, कोख, कन्धा और शिर में पीड़ा होय जो रोगी बैठा बैठा भी पीड़ा से व्याकुल होजाय, जिसका रोग भोजन पचने पर बढ़े और भोजन करने के पीछे कुछ शांत होय, उसको वैद्योंने वात गुल्म रोग कहा है ॥८॥९॥

अथ पैत्तिकनिदानमाह ।

तीक्ष्णोष्णकट्वम्लविदाहिभोज्यैः
क्रोधातिसेवा रवितापमद्यैः ।
दुष्टन्तु पित्तं प्रकरोति गुल्मं
स्वहेतुभिः सङ्कुपितं तथान्यैः ॥ १० ॥

अथ रूपमाह ।

तृष्णा ज्वरः स्वेदबहुत्वभङ्गे
सर्वाङ्गसादश्च तथोष्णता च ।
दाहोऽथ तस्मिन् किल जीर्णताङ्गते
भुक्ते च जीर्य्यति सदा खलु पित्तगुल्मम् ॥११

अथ श्लैष्मिकमाह ।

शीतैस्तथा स्वप्नविपर्य्ययैश्च
स्निग्धैश्च भोज्यैरतिमात्रसेवितैः ।

जो मनुष्य तेज, गर्म, कड़वे, खट्टे और जलन करनेवाले, भोजन करता है, बहुत क्रोध करता है, घाम में बैठता है, और मद्य पीता है, तथा और और भी पित्त विगाड़ने के काम करता है, तब उसका पित्त बिगड़कर गुल्मरोग को उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

पित्त से उत्पन्न हुवे, गुल्म में प्यास, ज्वर, अधिक पसीना आना, सब शरीर में पीड़ा और सब शरीर गर्म रहना, ये सब लक्षण होते हैं, जब भोजन पच जाता है, तब अधिक दाह होता है और भोजन करने से शान्त होजाता है ॥११॥

श्लेष्मातिदुष्टः प्रकरोति गुल्मं
सन्दूष्यकोष्टं त्वचनं हृदोधः ॥ १२ ॥

अथ रूपमाह ।

गुरुत्वमङ्गे वपुषोऽतिसादो
मन्दाग्निता शीततनुत्वमास्ये ।
उद्गारबाहुल्यमतीव शौक्ल्यं
कफोद्भवे लिङ्गमुदाहरन्ति ॥ १३ ॥

अथ त्रिदोषजस्य लक्षणान्तरमाह ।

घनन्दारुणं चोन्नतञ्चाश्मतुल्यं
महादाहपीडान्वितञ्चोग्ररूपम् ।
शरीराग्नि तेजोहरं मानवानां
त्रिदोषोद्भवं गुल्मरूपं वदन्ति ॥ १४ ॥

जब मनुष्य ठंडे भोजन करता है, सोने का नियम तोड़ देता है, ज्यादे चिकनाई खाता है, तब कफ बिगड़कर पेटको बिगाड़कर हृदय के नीचे गुल्म उत्पन्न करता है, यह गुल्म अचल होता है ॥ १२ ॥

कफ से उत्पन्न हुवे, गुल्म में सब शरीर भारी होजाता है, शरीर में पीड़ा होती है, अग्निमन्द होजाती है, सब शरीर ठण्डा रहता है, मुख सफेद होजाता है और डकार बहुत आती हैं ॥ १३ ॥

सन्निपात से उत्पन्न हुवा, गुल्म पत्थर के समान कड़ा, भयानक और ऊंचा होता है, इस में जलन और पीड़ा बहुत

अथार्त्तवरक्तजमाह।

नवप्रसूता युवती सुकाले
अपथ्यसेवा निरतामगर्भम्।
सृजेदथो या परिगृह्य वायुः
तस्यास्तु रक्तं प्रकरोति गुल्मम्॥ १५॥

पैत्तस्य गुल्मस्य समानलिङ्गं
तत्रापरं चिह्नमथो निबोध।
संस्पन्दनं शूलमगर्भलिङ्गैः
समन्वितो रौधिर एव नार्य्याः॥ १६॥

अथासाध्यलक्षणमाह।

दाहान्वितो नरो यस्तु बलनाशाग्निमन्दता।
समन्वितो घनो यस्य उन्नतो गुल्म एव च॥ १७॥

होती हैं। इस के होने से शरीर का तेज और अग्नि नष्ट हो जाती हैं॥ १४॥

जब स्त्री उचित समय पर सन्तान उत्पन्नकर चुकती है अथवा जिसका कच्चा गर्भ गिरजाता है और वह अपथ्य भोजन करने लगती है, तब उसका वायु विगड़कर रुधिर को इकट्ठा करके गुल्म उत्पन्न करदेता है॥ १५॥

इस गुल्म में सब पित्त गुल्म के लक्षण मिलते हैं, ये गर्भ के समान फरकता है और कोई गर्भका लक्षण इस में नहीं मिलता इसमें शूल भी होता है॥ १६॥

जिस गुल्म रोग में जलन आदि होय, जिस में बल और अग्नि नष्ट होजांय, जिस में गुल्म बहुत ऊंचा और करा

शूलाविष्टो जीर्णरोगी शिरासन्ततगात्रवान् ।
हृल्लासारुचिकासार्त्ति ज्वरच्छर्द्यग्निमार्दवैः ॥ १८ ॥
तृषाक्षुत्साशवमथुप्रतिश्यायादिभिस्तथा ।
अन्नद्वेषातिमूढत्व पादहृन्नाभिशोथवान् ॥ १९ ॥
न जीवेद्गुल्मरोगी तु चिरगुल्मी तथैव च ॥ २० ॥

अथ चिकित्सा ।

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ।
बृंहणं यद्भवेत्सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ २१ ॥
सिद्धमेकादशविधं शृणु मे गुल्मभेषजम् ।
स्नेहनं स्वेदनञ्चैव निरूहमनुवासनम् ॥ २२ ॥

होय, रोगी शूल और अजीर्ण से व्याकुल होय, शरीरका मांस सूख गया होय, हल्लास, अरुची, खांसी, पीड़ा, ज्वर, वमन, अग्नि कोमल होना, प्यास, मुंसे कफ गिरना, भूख नाश होना, प्रतिश्याय, भोजन न करना, मूर्च्छा, पैर, हृदय और नाभी में सूजन आना इन लक्षणों से युक्त गुल्म रोगी और जिसे बहुत दिनका गुल्म होय, वह नहीं जीता ॥ १७—२० ॥

आगे गुल्मरोग की चिकित्सा लिखते हैं ।

गुल्म में लङ्घन, अग्नि बढ़ानेवाली चिकनी, गर्म और वायु को निकालनेवाली औषधि दे, जो वस्तु बलको बढ़ा सके, सो सब गुल्म रोगों में पथ्य है ॥ २१ ॥

आगे हम गुल्म रोग के लिये ग्यारह सिद्ध औषधि कहते हैं ।

स्नेहन अर्थात स्नेहवस्ती, पसीना, निरूहण, अनुवासन, विरे-

विरेकवमने चोभे लङ्घनं बृंहणं तथा ।
शमनञ्चावसेकञ्च शोणितस्याग्निकर्म च ॥ २३ ॥
कारयेदिति गुल्मानां यथारम्भं चिकित्सितम् ॥२४॥
इति हारीतः ।

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः
सर्वशो विधिवदाचरितव्या ।
मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं
दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ २५ ॥

स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये ॥२६॥

अथ स्वेदगुणमाह ।

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम् ।
भित्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्मान् व्यपोहति २७

चन, वमन, लङ्घन, बृंहण, संशमन, रुधिर निकालना और अग्नि-कर्म ये औषधि गुल्मके लिये दोषोंके अनुसार देनी चाहिये ये हारीत में लिखा है ॥ २२—२४ ॥

गुल्म रोग में वैद्य सब प्रकार से ऐसा उपाय करे, जिस में वायु शांत रहे, क्योंकि इस रोग में वायु शान्त रहने से और दोष थोड़े कर्म से भी शान्त होजाते हैं ॥२५॥

जब वैद्य रोगीको स्नेह कर्म करचुके, तब पसीना आनेकी औषधि दे, चिकने शरीरवाले रोगीको दिया हुवा पसीना सब मार्गोंको कोमल करके वायु को शान्त करके बन्धन काटकर गुल्मरोग को दूर कर देता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

कुम्भीपिण्डेष्टका स्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक् ।
उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥२८॥
स्नानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः ।
स्वेदोऽनुलोमनञ्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ २९ ॥
पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था धान्वजा रसाः ।
खडाः(१)सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ॥३०॥
मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाड़िमं विड़सैन्धवम् ।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ ३१ ॥
नागरार्द्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च ।
तिलस्यैकं गुड़पलं क्षीरेणोष्णेण पाययेत् ॥ ३२ ॥

बुद्धिमान् वैद्य घड़ा, पिण्ड अथवा ईंटसे सेककर पसीना दे, अथवा थोड़े गरम, शाल्वण आदिसे उपनाहन कर्म करे, रोगी को स्नान करावे, हाथके वीचकी नाड़ी छेदकर रुधिर निकाले। गुल्मरोग में पसीना और वायु निकालने को औषधि देना चाहिये, वायु नाशक कुलथी आदिके काढ़े और धानुज के रस में यवागू पकाकर दे, अथवा पञ्चमूल काढ़े में पकाकर खड़ दे तो गुल्म रोग दूर होजाता है। नींबू के रस में हींग अथवा अनार के रस में विडनोन या सैन्धा नमक मिलाकर खाने से अथवा ऊपर लिखी औषधियों को मद्य के भाग के संग पीने से वातगुल्म की पीड़ा दूर होजाती है ॥ २८—३१ ॥

सोंठ आधापल, भूसीरहित तिल दो पल और गुड़ एक

(१) यूषविशेषः यथा, "तक्रं कपित्थं चाङ्गेरी मरिचाजाजी चित्रकैः सुपक्वः खड़यूषः स्यात्" इत्यादि ।

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम्।
तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः॥ ३३॥
साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम्।
एवन्तु साधिते क्षीरे स्तोकमप्यत्र दीयते॥ ३४॥
सर्जिका कुष्ठसहितः क्षारः कैतकिजोऽपि वा।
तैलेन पीतः शमयेद्गुल्मं पवनसम्भवम्॥ ३५॥

आवस्थिकक्रियासूत्रमाह।

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिश्चूर्णादि चेष्यते।
पित्ते विरेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम्॥३६॥
स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम्।

पल, इन सब को गरम दूध के संग पीनेसे वातगुल्म दूर होता है, अथवा मद्यके झाग के संग अरण्डका तेल पीवे, अथवा दूध के संग अरण्डका तेल पीये तो वातगुल्म रोग दूर हो जाता है॥ ३२॥ ३३॥

चारपल सुथे सूखे लसुनको दूधमें डालकर पकावे, फिर थोड़ासा रोगीको पिला दे अथवा केतकीके खारमें कूट और सज्जी मिलाकर खानेसे और अरण्ड का तेल पीनेसे वातगुल्म रोग दूर होजाता है॥ ३४॥ ३५॥

जब वातगुल्म रोग में कफ बढ़ जाय, तब चूर्ण आदि खिला कर वमन कराना चाहिये; जब पित्त बढ़ जाय तब विरेचन दे और जो रुधिर अधिक होय तो रुधिर निकाले॥३६

यदि पित्तगुल्म चिकनो और गरम ...

रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ॥ ३७ ॥
काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् ।
स्नेहितं स्रंसयेत् पश्चाद्योजयेद् वस्तिकर्मणा ॥ ३८ ॥
स्निग्धोष्णजे पित्तगुल्मे कम्पिल्लं मधुना लिहेत् ।
पक्वे तु व्रणवत्कार्य्यं व्याधिशोधनरोपणम् ॥ ३९ ॥
स्वयमूर्द्ध्वमधो वापि स चेद्दोषः प्रवर्त्तते ।
द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान् ॥ ४० ॥
लङ्घनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ संधुक्षिते ।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिना ॥ ४१ ॥

विरेचन और जो रूखी तथा गरम वस्तुवोंसे उत्पन्न हुवा हो तो दोष शान्त होनेके लिये घी पिलावे ॥ ३७ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुवे गुल्मरोग में काकोल्यादि, महातिक्तादि और वासादिगणमें पका घी पिला कर कोठा चिकना करके विरेचन दे, पीछे वस्तिकर्म्म करे ॥ ३८ ॥

यदि चिकनी और गर्म वस्तुवोंसे पित्तगुल्म उत्पन्न हुवा हो तो शहत में मिला कर कमीला खिलावे और जो गुल्म पक जाय तो उसे घावकी समान चीरकर दूषित पीव और मांस निकालकर घाव भरने की चिकित्सा करे ॥ ३९ ॥

यदि वह दोष आपसे आपही अर्थात् किसी औषधिके बिना ही नीचे या ऊपर को प्रवृत्त होजाय अर्थात् वमन या विरेचन होने लगे तो वैद्य रोगी को दूसरे उपद्रवोंसे रक्षा करता रहे और बारह दिनतक कुछ औषधि न दे ॥ ४० ॥

कफसे उत्पन्न हुवे गुल्मरोग में जब लङ्घन, वमन और

मन्दोऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता।
सोत्क्लेशतऽरुचिर्यस्य सगुल्मो वमनोपगः ॥ ४२ ॥
मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्।
गुडिकाचूर्णनिर्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम् ॥४३॥
तिलैरण्डातसीवीजसर्षपैः परिलिप्य च।
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ ४४ ॥
यमानीचूर्णितं तक्रं विड़ेन लवणीकृतम्।
पिबेत्सन्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ॥ ४५ ॥
व्यामिश्रदोषे व्यामिश्रः सर्व एव क्रियाक्रमः।
सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ ४६ ॥

पसीना देनेसे अग्नि तेज होजाय तो खार और कड़वी औषधियोंमें पका घी पिला दे ॥ ४१ ॥

यदि अग्नि मन्द हो, पीड़ा कम हो, पेट भारी हो, पेंट में पीड़ा हो और अरुचि हो तो रोगी को वमन करावे ॥४२॥

यदि अग्नि मन्द हो, वायु विगड़ा हो और कोठा चिकना हो तो कफगुल्म में गोली, चूर्ण और काढ़ा दे ॥ ४३ ॥

तिल, अरण्ड, अलसीके वीज, और सरसों पीस कर पेट पर लेप करे और ऊपरसे वरतन गर्म करके सेके ॥ ४४ ॥

मट्ठे में अजवाइन और विडनोन डालकर पीनेसे अग्नि तेज होती है विष्टा, मूत्र और वायु सुखसे निकलते हैं ॥ ४५ ॥

दो दोषोंसे उत्पन्न हुवे गुल्मरोग में दो दो दोषोंको और सन्निपातसे उत्पन्न हुवे में तीनों दोषोंको नाश करने की चिकित्सा करे ॥ ४६ ॥

वचाऽभया विडाः शुण्ठी हिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकाः ।
द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात् ॥ ४७ ॥
चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम् ।
शूलार्शः श्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ ४८ ॥
यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्च्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्या गुल्मशूलनिसूदनाः ॥ ४९ ॥
हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हवुषामभयां शटीम् ।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ५० ॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् ।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ५१ ॥

वच दो भाग, हर्र तीन भाग, विडनोन छः भाग, सोंठ चार भाग, हींग एक भाग, कूट आठ भाग, चीता सात भाग और अजवाइन पांच भाग, इन सब का चूर्ण बना कर मद्य आदिके सङ्ग पीनेसे गुल्म, आनाह, पेटके रोग, शूल, अर्श, सांस, खांसी और मन्दाग्नि रोग दूर होजाते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अजवाइन, हींग, सेंधानमक, जवाखार, सोंचल और हर्र, इनके चूर्ण को मद्यके सङ्गमें पीनेसे गुल्म और शूल दूर होजाते हैं ॥ ४९ ॥

हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाढ़ा, खुरासानी अजवाइन, कचूर, अजमोदा, अजगन्धा, तिन्तड़ीक, अम्लवेत, अनारदाना, पुष्करमूल, धनिया, जीरा, चीता, वच, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, सोंचल और चाव, इन सब का चूर्ण बना कर

चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनल्पयम्।
प्रागभक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा॥ ५२॥
पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रेषु गुदयोनिरुजासु च॥ ५३॥
ग्रहण्यर्शो विकारेषु प्लीह्नि पाण्डामयेऽरुचौ।
उरोविबन्धे हिक्कायां श्वासे कासे गलग्रहे॥ ५४॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा।
बहुशो गुडिकाः कार्य्याः कार्षिकाः स्युस्ततोऽधिकाः ५५
गुडिकापक्षे एषां समभागचूर्णं सप्तदिनं
लेम्बुरसेन भावयित्वा गुडिकाः कार्य्याः॥ ५६॥

इति हिङ्ग्वादिचूर्णम्।

हिङ्गु पुष्करमूलानि तुम्बुरुणी हरीतकी।

प्रतिदिन भोजन के पहिले गर्मपानी अथवा मद्यके सङ्ग पिये, इससे पसुरी, हृदय, मूत्राशय की पीड़ा, वात और कफसे उत्पन्न हुवा गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदा और योनीके रोग, ग्रहणी, अर्श, पिलही, पाण्डु, अरुची, हृदयविबन्ध, हिचकी, श्वास, खांसी और गला रुकना ये रोग दूर होजाते हैं॥ ५०—५४॥

इस चूर्णको सात दिनतक नींबूके रसमें भिगो कर एक कर्षकी गोली बनावे; इस गोलीके खानेसे और भी अधिक लाभ होता है इसमें सब औषधि समान पड़ती हैं इसका नाम हिंग्वादिचूर्ण है॥ ५५॥ ५६॥

श्यामा विडं सैन्धवञ्च यवक्षारं महौषधम् ॥ ५७ ॥
यवक्वाथोदकेनैतद्घृतभृष्टान्तु पाययेत् ।
तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ ५८ ॥
वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवं साम्लवेतसम् ।
यवक्षारं यमानीञ्च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ५९ ॥
एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम् ।
भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्वृद्धिं करोति च ॥ ६० ॥
एषां समभागेन मिलितं चूर्णं माषचतुष्टयम्
उष्णजलेन प्रातःपेयम् ॥ ६१ ॥

इति वचादिचूर्णम् ।

हिङ्गूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजी-
हरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।

हींग, पुष्करमूल, धनिया, हर्रे, निसोत, विडनोन, सैन्धानोन, जवाखार, सोंठ इन सब औषधियों को घी में भूनकर इन्द्रजौ के काढ़े के संग पिलावे तो गुल्म, शूल और दस्त रुकना आदि रोग दूर होजाते हैं इसका नाम भी हिंग्वादि चूर्ण है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

बच, हर्रे, हींग, सेन्धा, अम्लवेत, जवाखार, और अजवाइन इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे, फिर इस चूर्णको प्रातःकाल गर्मपानी के संग चार मासे खाय तो सब प्रकार का गुल्म, शूल, दस्त रुकना और मन्दाग्निरोग सात ही दिन में दूर होजाते हैं इस का नाम वचादि चूर्ण है ॥ ५९—६१ ॥

हींग, खुरासानी अजवाइन, विडनोन, सोंठ, जीरा, हर्रे,

भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं
गुल्मोदराजीर्णविसूचिकासु ॥ ६२ ॥

इति हिंग्वादिचूर्णम्।

लवङ्गदन्तीत्रिवृतायमानी
शुण्ठीवचाधान्यकचित्रकानि।
फलत्रयं मागधिका च कट्वी
द्राक्षा चवी गोक्षुर यावशूकम् ॥ ६३ ॥
एलाजमोदा कुटजस्य बीजं
विधाय चूर्णानि समान्यमीषाम्।
खादेत्ततः पाणितलं हिताशी
कोष्णं जलं चानुपिबेत् प्रयत्नात् ॥ ६४ ॥
निहन्ति गुल्मं सरुजं सदाह-
मर्शांसि शोथांश्च तथामवातम्।

पुष्करमूल, कूट इन सबको एक से दूसरी दूगनी लेकर चूर्ण बनावे इस चूर्ण से गुल्म, अजीर्ण और विसूचिका रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम हिंग्वादिचूर्ण है ॥ ६२ ॥

लौंग, जमालगोटे की जड़, निसोत, अजवाइन, सोंठ, वच, धनिया, चीता, हर्र, बहेड़ा, आंवला, पीपल, कुटकी, मुनक्का, चाव, गोखरू, जवाखार, इलायची, अजमोद और इन्द्रजौ इन सब को समान लेकर चूर्ण बनावे, फिर एक कर्ष प्रतिदिन रोगी को खिलावे, ऊपर से गर्मपानी पिलावे और पथ्य भोजन करावे, इस से गुल्म, शूल, दाह, शोथ, आमवात, अर्श, सब प्रकार के पुराने

सर्वोदराण्येव चिरोत्थितानि
चूर्णं लवङ्गादिकमाशु सिद्धम् ॥ ६५ ॥
इति लवङ्गादिचूर्णम्।

शटी पुष्करमूलञ्च दन्ती चित्रकमाढ़कीम्।
शृङ्गवेरं वचाञ्चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ६६ ॥
त्रिवृतायाः पलञ्चैकं कुर्य्यात्त्रीणि च हिङ्गुणः।
यवक्षारं पले द्वे तु द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ६७ ॥
यमान्यजाजी मरिचं धान्यकञ्चेति कार्षिकम्।
उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि ॥ ६८ ॥
मातुलुङ्गरसे चैता गुडिकाः कारयेद्भिषक्।
तासामेकां पिबेद्द्वे वा तिस्रो वाऽथ सुखाम्बुना ॥६९॥
अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाथवा।
एषा काङ्कायनेनोक्ता गुडिका गुल्मनाशिनी ॥७०॥
अर्शो हृद्रोगशमनी क्रिमिणाञ्च विनाशिनी।

पेट के रोग शीघ्र दूर होजाते हैं इसका नाम लवङ्गादि चूर्ण है॥ ॥६२—६५॥

कचूर, पुष्करमूल, जमालगोटेकी जड़, चीता, अरहरकी जड़, सोंठ और वच ये सब एकपल, निसोत एक पल, हींग तीन पल, जवाखार दो पल, अम्लवेत दो पल, अजवाइन, जीरा, मिर्च और धनियां एक कर्ष, कलौंजी, अजमोदा ये दोनों आठ कर्ष इन सब को नींबू के रस में घोट कर गोली बनावे, फिर रोगीको एक, दो या तीन गोली खिलाकर गर्मपानी, कांजी, मद्य, औषधिका काढ़ा, घी अथवा दूध पिला दे, इससे गुल्म, अर्श, हृद्रोग और क्रमिरोग दूर

गोमूत्रयुक्ता शमयेत्कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ ७१ ॥
क्षीरेण पित्तगुल्मञ्च मद्यैरम्लैश्च वातिकम्।
रक्तगुल्मे च नारीणा(१)मुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥७२॥
इति कात्यायनगुडिका।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका।
स्नुहिक्षीरं विडङ्गानि घृतं दशमनुच्यते ॥ ७३ ॥
एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत्।
अस्य मात्रां पिबेत्काले पलार्द्धेन च सम्मिताम् ॥७४॥
गुणोदकञ्चानुपिबेद्विरेकार्थं पिबेन्नरः।
पिबेद्यवागूं सर्पिषा पेयां वा क्षीरसाधिताम् ॥ ७५ ॥
रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक्।

होजाते हैं, यदि इसे गोमूत्र के संग खाय तो पुराना कफसे उत्पन्न हुआ गुल्म दूर होजाता है, दूध के संग पीने से पित्तगुल्म और मद्य या कांजी के संग पीने से वात गुल्म दूर होजाता है, यदि स्त्री के पेट में रक्तगुल्म होजाय तो इस गोलीको ऊंटनीके दूधके संग पिलावे, यह कात्यायन मुनी की कही गोली है, इस के लिये इसका नाम भी कात्यायन वटी है ॥ ६७—७२ ॥

चीता, हर्र, बहेड़ा, आमला, जमालगोटे की जड़, निसोत, कटहली, थूहरका दूध, विडङ्ग और घी इन सबको एक एक कर्ष लेकर एक कुडव घी में पकावे, फिर विरेचन के लिये इस औषधि को आधा पल खाकर ऊपर से गर्मपानी पिये।

खानेको दूधमें पकी घी पड़ी यवागू, अथवा पेयादे या जंगली

(१) नारीणां रक्तगुल्मे उष्ट्रीक्षीरं प्रयोज्यम्।

वातगुल्ममुदावर्त्तं प्लीहार्शो ब्रध्नकुण्डलम् ॥ ७६ ॥
ग्रहणीं दीपयेन्मन्दां कुष्ठदोषांश्च नाशयेत्।
नाराचकमिदं सर्पिः ख्यातं नाराचसन्निभम् ॥ ७७ ॥

इति नाराचघृतम्।

हवुषा-व्योष-पृथ्वीका-चव्य-चित्रक-सैन्धवैः।
साजाजी पिप्पलीमूल-दीप्यकैः पाचयेद् घृतम् ॥७८॥
सकोलमूलकरसं सक्षीरदधिदाड़िमम्।
तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ ७९ ॥
योन्यर्शो ग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान्।
पार्श्वहृद्वस्तिशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ८० ॥

इति हवुषाद्यं घृतम्।

जन्तुवों के मांस के रस के संग भोजन करावे, बुद्धिमान् वैद्य रोगी को भोजन करावे, इस औषधि से वायु से उत्पन्न हुए गुल्म, उदावर्त्त, पिलही, अर्श, ब्रध्नकुण्डली, ग्रहणी दोष और कुष्ट दोष शीघ्र दूर होजाते हैं इसका नाम नाराच घृत है ये रोगों में बाणसा लगता है ॥ ७३—७८ ॥

खुरासानी अजवाइन, सोंठ, मिर्च, पीपल, कलौञ्जी, चाव, चीता, सेन्धा, जीरा, पिपलामूल, अजवाइन, इन औषधियों को डालकर घी में पकावे, पकते समय बेरकी जड़ का रस, दूध और अनारका रस छोड़ दे, जब पकते पकते केवल घी रहजाय, तब उतार ले, इस घी से वातगुल्म, शूल, आनाह, विष्टा रुकना, योनि रोग, अर्श, ग्रहणी दोष, सांस, खांसी, अरुचि, ज्वर, पसुरी, हृदय और मूत्राशय की पीड़ा ये रोग दूर होजाते हैं इसका नाम हवुषादि घृत है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

पिप्पल्याः पिचुरध्यर्द्धो दाडिमाद्द्विपलं पलम्।
धान्यात्पञ्चघृतात् शुण्ठ्याः कर्षः क्षीरं चतुर्गुणम्॥८१
सिद्धमेतद्घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरम्॥ ८२॥

इति पञ्चपलं घृतम्।

रोहिणी कटुका मुस्तं त्रायमाणा दुरालभा।
कल्कस्तामलकी वीरा जीवन्ती चन्दनोत्पलम्॥८३॥
रसस्यामलकीनाञ्च क्षीरस्य च घृतस्य च।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्वा सम्यग्विपाचयेत्॥ ८४॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पैत्तिकं ज्वरम्।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद्घृतोत्तमम्॥ ८५॥
पलोल्लेखगते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते।
चत्वारिंशत्पलन्तेन तोयं दशगुणं भवेत्॥ ८६॥

इति त्रायमाणा घृतम्।

पीपल डेढ़पल, अनार दो पल, धनिया एक पल, घी पांच पल, सोंठ एक कर्ष, इन सब को चौगुने दूध में पकावे, जब पक चुके, तब खाने से वातगुल्म, योनिशूल, शिरकी पीड़ा, अर्श और विषमज्वर का नाश करता है इसका नाम पञ्चपल घृत है॥८२॥
रोहिणी, कुटकी, मोथा, त्रायमणा, जवासा, भूआमला, काकोली, हर, चन्दन और कमल इन सबको आमले के रस, दूध और घी में डालकर पकावे, घी, दूध, आमले का रस आठ पल डाले, इस से पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विषमज्वर, पित्तज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्टका नाश होजाता है इस औषधी में एक पल,

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
पलिकैः सयवक्षारैः सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८७ ॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहा कासज्वरापहम् ॥ ८८ ॥

इति क्षीरषट्पलकं घृतम् ।

धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्गं पाययेद्घृतम् ।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८९ ॥

इति धात्रीषट्पलकं घृतम् ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ९० ॥
तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्ती समं गुडम् ।

प्रमाण लिखा है, इस लिये कोई औषधि दुगनी नहीं पड़ती सब औषधि से दश गुणा अर्थात् चालीस पल पानी पड़ता है इसका नाम त्रायमाण घृत है ॥ ८३—८६ ॥

पीपल, पिपलामूल, चाव, चीता, सोंठ और जवाखार इन सब को एक एक पल लेकर एक प्रस्थ घी और एक प्रस्थ दूधमें पकावे, इस से कफ, गुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, पिलही, खांसी और ज्वर दूर होजाती है इसका नाम क्षीरषट्पलक घृत है ॥ ८७—८८ ॥

आमले के रस में ऊपर लिखी छः औषधियों में घी पकावे, फिर शक्कर में मिलाकर खाय तो सन्निपात गुल्म दूर होजाता है इसका नाम धात्री षट्पलक घृत है ॥ ८९ ॥

एक द्रोण पानी में पचीस पल हर्र, पचीस पल जमालगोटे की जड़ और पचीस पल चीता डालकर पकावे, जब पकते पकते सातभाग पानी जल जाय, तब उतार कर छान ले, फिर पचीस

ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णात् तैलाच्चापि चतुःपलम् ॥९१॥
पलमेकं कणाशुण्ठ्योः सिद्धे लेहे च शीतले।
क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ९२ ॥
ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम्।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमलामयः ॥ ९३ ॥
प्लीहश्वयथुगुल्मार्शो हृत्पाण्डुग्रहणीगदाः।
शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥ ९४ ॥
इति दन्तीहरीतकी।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं जीरकद्वयम्।
यमानीद्वयभूनिम्बं त्रिवृद्दन्ती च निम्बकम् ॥ ९५ ॥
सर्वेषां कार्षिकं भागं सैन्धवं कर्षमभ्रकम्।

पल गुड़, वही पचीस हर्र, निसोत, तेल चार पल, पीपल, सोंठ एक पल डालकर पकावे, जब अवलेह होजाय, तब उतार ले, फिर ठण्डा होने पर चारपल सहत और एक पल चातुर्जात अर्थात् तज, तेजपात, इलायची और नागकेशर डाले, फिर एक हर्र खाकर एक पल अवलेह चाटे, तब कोठा चिकना होजाता है और सुख से विरेचन होता है, सब मल के दोष निकल जाते हैं, पिलही, शोथ, गुल्म, अर्श, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, विषमज्वर, कुष्ट और अरोचक रोग दूर होजाते हैं, इसका नाम दन्तीहरीतकी है॥ ८०—८४ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, मोथा, विडङ्ग, सफेद जीरा, कालाजीरा, खुरासानी अजवाइन, अजवाइन, चिरायता, निसोत, जमालगोटेकी जड़ और नीमकी छाल ये सब औषधी एक

खण्डस्य षोड़शपलं प्रस्थञ्च त्रिफलाजलम् ॥ ९६ ॥
जम्बीराणां रसं दद्यात् पलं षोड़शकं तथा ।
पाच्यं सर्वं प्रयत्नेन लौहं दत्वा पलद्वयम् ॥ ९७ ॥
सिद्धे पाके पुनर्देयं घृतं पलचतुष्टयम् ।
सर्वरोगेषु संयोज्यं महामृतरसायनम् ॥ ९८ ॥
गुल्मं पञ्चविध हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं जीर्णज्वरं तथा ॥ ९९ ॥
रोगान् सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१००॥

इति रसायनामृतलोहम् ।

पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्गणं समम् ।
तोलद्वयमितं भागं यवक्षारञ्च तत्समम् ॥ १०१ ॥
मुस्तकं पिप्पली सुण्ठी मरिचं गजपिप्पली ।
हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेत् सुधी ॥१०२॥

एककर्ष सेन्धा नमक एककर्ष, अभ्रक, एक कर्ष, खांड़ एकपल, त्रिफलेका पानी एक प्रस्थ और जम्भीरी नींबूका रस सोलह पल, इन सबको एकमें मिलाकर और दो पल लोहा डालकर सावधानी से पकावे, जब पक चुके तब ठण्डा होने पर चारपल घी डाले।

इस रसायन औषधिसे पांचों प्रकारका गुल्म, यकृत्, पिलही कामला, पाण्डुरोग, शोथ और जीर्णज्वर आदि रोग इस प्रकार दूर होजाते हैं, जैसे सूर्य्य निकलने से अन्धकार। इस औषधी का नाम रसायनामृत लोह है ॥ ९५—१०० ॥

पारा, गन्धक, हरताल, तांबा, सुहागा, ये सब दो दो तोला और जवाखार इन सब के समान; मोथा, पीपल, सोंठ, मिर्च,

सर्वमेकीकृतं पात्रे भावना क्रियते ततः।
पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥१०३॥
तत् पुनश्चूर्णयेत्पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम्।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥ १०४ ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
द्वन्द्वजञ्च निहन्त्याशु वातगुल्मं विशेषतः ॥ १०५॥
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ॥ १०६ ॥

इति गुल्मकालानलो रसः।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं टङ्गणं कटुकं वचाम्।
द्विक्षारं सैन्धवं कुष्टं त्रूषणं सुरदारु च ॥ १०७ ॥
पत्रमेलां त्वचं नागं खादिरं सारमेव च।
गृहीत्वा समभागेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १०८ ॥

गजपीपल, हर्र, वच और कूट इन सबको एक एक तोला डालकर बुद्धिमान् वैद्य चूर्ण बनावे, फिर पित्तपापड़ा, मोथा, सोंठ, लटजीरा और पापचेलिक के रस में भावना दे और खूब बारीक पीसले तब रोगीको हर्र के चूर्ण के संग चाररत्ती खिलावे तो वात, पित्त, कफ, सन्निपात और दो दो से से उत्पन्न हुवा गुल्म बहुत शीघ्र दूर होजाता है गहननान्द नाथने जगतके कल्याणके लिये इस रस का नाम गुल्म कालानल लिखा है ॥ १०१—१०६ ॥

अभ्रक, लोहा, पारा, गन्धक, सुहागा, सोंठ, वच, जवाखार, सज्जीखार, सेन्धा, कूट, त्रिकुटा, देवदारु, तेजपात, इलायची, तज, नागकेशर और खैर इन सबको समान लेकर चूर्ण बनावे; फिर

जयन्ती चित्रकोन्मत्तकेशराजदलं तथा ।
निष्पीड्य स्वरसं नीत्वा भावयेत्कुशलो भिषक् ॥१०९॥
चतुर्गुञ्जा प्रमाणेन वटिकाः कारयेत्ततः ।
उत्थाय भक्षयेत्प्रातरनुपानं जलं पयः ॥ ११० ॥
गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथञ्चैव सुदारुणम् ॥१११॥
हलीमकं रक्तपित्तं मन्दाग्निमरुचिं तथा ।
ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥ ११२ ॥

इति वृहद्गुल्मकालानलो रसः ।

मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम् ।
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम् ॥ ११३ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च ।

अरणी, चीता, धतूरा और काले घमिरे के पत्तोंका रस निकालकर बुद्धिमान् वैद्य इस औषधीको भावना दे, फिर चाररत्ती की गोली बनावे और रोगीको सवेरे एक गोली खिलाकर ऊपर से पानी या दुध पिलादे, इस औषधि से पांचों प्रकार का गुल्म, यकृत्, पिलही, कांवला, पाण्डुरोग, भयानक शोथ, खलिमक, रक्तपित्त, मन्दाग्नि अरुचि ग्रहणीरोग दुर्बलता जीर्णज्वर और विषमज्वर का नाश होता है इसका नाम वृहद्गुल्मकालानल रस है ॥ १०८—११३ ॥

पारे और तांबे की भस्म, गन्धक, सोनामाखी, इन सबको समान लेकर उतना ही जवाखार मिला कर एक दिन तक चीते के रस में घोटे, फिर पानमे रखकर रोज दो रत्ती खाय,

वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिवाड़वः ॥११४॥

इति शिखिवाड़वोरसः ।

शुद्धसूतस्तथा गन्धो नागवङ्गौ मनःशिला ।
निशादरञ्च त्रिक्षारं लौहं शुल्वं तथाभ्रकम् ॥११५॥
एतानि समभागानि स्नुहीक्षीरेण मर्दयेत् ।
चित्रकं वासकं दन्ती क्वाथेनैकेन (१) मर्दयेत् ॥११६
दिनैकन्तु प्रयत्नेन रसो नागेश्वरो मतः ।
गुल्मं प्लीहपाण्डुशोथानाध्मानञ्च विनाशयेत् ।
भक्षयेन्माषमेकन्तु पर्णखण्डेन गुल्मवान् ॥ ११७ ॥

इति नागेश्वररसः ।

अथ रक्तगुल्मे ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे ।

इससे वायुसे उत्पन्न हुवा, गुल्म बहुत शीघ्र दूर होता है, इसका नाम शिखिवाड़व रस है ॥ ११४—११५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शीसा, रांग, मैनशिल, नौसादर, जवाखार, सज्जीखार, भूलीकाखार, लोहा, तांबा और अभ्रक इन सबको समान लेकर थूहरके दूधमें घोटे, फिर चीता, यवासा अथवा जमालगोटे की जड़ के काढ़े में एक दिन तक घोटे, फिर पान में रखकर रोगीको एक मासा खिलावे, इससे गुल्म, पिलही, पाण्डुरोग, शोथ और आध्मान रोग दूर होजाते हैं इसका नाम नागेश्वर रस है ॥ ११५—११७ ॥

(१) क्वाथ्यतमेन ।

स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥११८
शताह्वा चिरविल्वत्वक् दारु भार्गी कणोद्भवः ।
कल्कः पीतो हरेद्गुल्मं तिलक्काथेन रक्तजम् ॥११९॥
तिलक्काथो गुड़व्योषहिङ्गुभार्गीयुतो भवेत् ।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥१२०॥
सक्षारं त्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेद्रक्तगुल्मिनी ।
पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ॥ १२१ ॥
उष्णैर्वा (१) भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरो हितः ।

जिस स्त्रीके गर्भ के समय में कुछ उलटपुलट होता है उस के पेट में रक्तगुल्म होता है इसको पहिले स्नेहन और स्वेदन क्रिया करके चिकनी औषधियों से विरेचन दे ॥ ११८ ॥

शतावर, करंजुवे की छाल, देवदारु, वम्हनेटी और पीपलका कल्क बनाकर तिलके काढ़े के संग पीने से रक्तगुल्म दूर हो जाता है ॥ ११९ ॥

गुड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग और भारंगी इन सब औषधियों को तिल के काढ़े के संग पीने से रक्तगुल्म दूर होजाता है और जिस स्त्रीको ऋतु न होती होय तो होने लगती है ॥ १२० ॥

रक्तगुल्मवाली स्त्री जवाखार, सोंठ, मिर्च और पीपलके संग मद्य पीवे, अथवा ढाकके खार के पानी में पका घी खाय ॥ १२१ ॥

अथवा वैद्य रक्तगुल्मको गर्म औषधियोंसे काटकर निकाले

(१) उष्णाद्रव्यैः।

न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम् ॥ १२२ ॥
क्षारेण (१) युक्तं पललं (२) सुधाक्षीरेण वा पुनः।
रुधिरे तु प्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरी क्रिया ॥ १२३ ॥

भल्लातकात् कल्ककषायपक्वं
सर्पिः पिबेच्छर्कराया विमिश्रम्।
तद्रक्तगुल्मं विनिहन्ति पीतं
बलासगुल्मं मधुना समेतम् ॥ १२४ ॥

पारदांशकतुल्यञ्च गन्धं जैपालपिप्पली।
आरग्वधफलान्मज्ज वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ १२५ ॥
धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये।
चिञ्चादलरसञ्चानुपथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ १२६ ॥

इति पञ्चाननरसः।

फिर रुधिर रोकने को औषधि दे, यदि उन औषधियों से गुल्म न कटे तो योनी शुद्ध होने को औषधि करे ॥ १२२ ॥

अथवा ढाकके काढ़े में मिलाकर तिलका कल्क खिलावे, या थूहर के दूध में मिलाकर खिलावे, यदि इन औषधियों से रुधिर बहुत निकलने लगे तो रक्तपित्तकी चिकित्सा करे ॥१२३

भिलावे के काढ़े में पके हुवे घी में शक्कर मिलाकर खाने से रक्तगुल्म दूर होता है और उसही में शहत मिलाकर खाने से कफ गुल्म का नास होजाता है ॥ १२४ ॥

पारा, तूतिया, गन्धक, जमालगोटा, पीपल और किरवाले के

(१) पलाशादीनाम्। (२) तिलपिष्टम्।

वल्लूरं (१) मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम् ।
न खादेच्चानुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥१२७॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गुल्माधिकार समाप्तः ।

अथ हृद्रोगाधिकारः ।

तत्र हृद्रोगविप्रकृष्टन्निदानमाह ।

श्रममैथुनकट्वम्ल गुरूष्णाति कषायकैः ।
मार्गश्रमैश्चातिभोज्यैश्चिन्तनैर्भीतितस्तदा ॥ १ ॥
हृद्रामयाः पञ्चप्रोक्ता वातिकः पैत्तिकस्तदा ।
श्लैष्मिकः सन्निपातोत्थः कृमिजश्चेति पञ्च ते ॥ २ ॥

फलकी गिरी इन सबको थूहरके दूधमें भिगोवे, फिर आमलेके रसके संग खार ऊपर से इमली के पत्तोंका रस पीवे और दही, भात खाय तो रक्तगुल्म का नाश होजाता है इसका नाम पञ्चानन रस है ॥ १२५—१२६ ॥

गुल्मरोगी सूखामांस, मूली मछली, सूखे शाग, दाल और मिठे फल न खाय ॥ १२७ ॥

इति भाषाभैषज्यरत्नावली में गुल्म अधिकार समाप्तः ।

हृदरोगका निदानका भाषा लिखते हैं ।

परिश्रम अधिक मैथुन, कड़वे, खट्टे, भारी, गरम और कषैले भोजन करने, अधिक मार्ग चलने, अधिक भोजन करने, से बहुत चिन्ता और बहुत डरसे मनुष्य के शरीर में पांचप्रकार

(१) शुष्कमांसम् ।

तत्र तस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह ।

दोषाः प्रकुपिता जन्तोः रसं सन्दूष्य हृद्गताः ।
हृदि व्यथां बहुविधां हृद्रोगं कुर्वते भृशम् ॥३॥

अथ वातिकमाह ।

वातोत्थे हृदये पीड़ा तोदभेदसमन्विता ।
दीर्य्यते मथ्यते जन्तोः हृदयं स्फोट्यते तथा ॥ ४ ॥

अथ पैत्तिकमाह ।

मुखशोषः क्लमो दाहस्तृष्णा व्याकुलताऽरतिः ।
खेदो धूमायनञ्चोषः पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ५ ॥

के हृद्रोग उत्पन्न होते हैं, वातसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे और पेट में कीड़े उत्पन्न होजाने से ये हो पांच प्रकार के हृद्रोग कहाते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

जब पहिले कहे कारणोंसे विगड़कर वात, पित्त और कफ मनुष्य के हृदय में प्रवेश करते हैं, तब हृदय में अनेक प्रकार की भयानक पीड़ा उत्पन्न होती है, वैद्योंने उसी का नाम हृद्रोग लिखा है ॥ ३ ॥

वातसे उत्पन्न हुये हृद्रोग में हृदयमें सुईसे छेदने के समान, शस्त्र से काटने के समान, अस्त्रसे चीरने के समान, मथने के समान और फाड़ने के समान पीड़ा होती है ॥ ४ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुये हृद्रोगमें मुख सूखता है, आलस्य, जलन, प्यास, व्याकुलता, भ्रम और अनिच्छा होती है । अधिक पसीना आता है, धुएं के सहित डकार आती हैं और सींगी खींचने के समान पीड़ा होती है ॥ ५ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह ।

स्तम्भोऽरुचिः कफस्रावो गुरुता मुखमिष्टता ।
मन्दाग्नित्वञ्च जड़ता कफोत्थे कफजा रुजः ॥ ६ ॥

अथ सान्निपातिकमाह ।

विद्याद्वैद्यस्तु हृद्रोगं सर्वलिङ्गैस्तु सर्वजम् ॥ ७ ॥

अथ क्रमिजस्य विप्रकृष्टनिदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह ।

हृद्रोगी मूढ़धीर्यस्तु नरोऽतिदोषकोपनम् ।
गुड़ं पयस्तिलांश्चैव ग्रन्थिस्तस्य भवेद्धृदि ॥ ८ ॥
रसस्य शटितत्वेन तत्र स्यात् क्रमिसम्भवः ॥ ९ ॥

अथ लक्षणमाह ।

अरुचिस्तुदनं तमस्तथा
हृदिशूलं कफसंस्रवोऽरतिः ।

कफसे उत्पन्न हुये हृद्रोग में शरीर स्तम्भन, अरुची, मुखसे कफ गिरना, शरीरोंका भारीपन, मुंह मीठा र[illegible], अग्निमन्द होना, जड़ता तथा और भी कफ से उत्पन्न हुये शीत आदि विकार होते हैं ॥ ६ ॥

सन्निपात से उत्पन्न हुये हृद्रोग में ऊपर लिखे सबरोगों के चिह्न मिलते हैं ॥ ७ ॥

जो मूर्खहृद्रोग होने पर भी दोषोंको बढ़ानेवाले भोजन करता है, गुड़, दूध और तिल आदि भोजन करता है, उस के हृदय में एकगांठ पड़जाती है, फिर उस में रस सड़ने के कारण कोड़े पड़जाते हैं, यही क्रमिज हृद्रोग कहाता है, क्रमिज हृद्रोग में अरुचि, सुई से छेदने के समान पीड़ा, अन्ध-

क्रमिजे तु वदन्ति वै बुधाः
नयनश्यावरुचित्वमुत्क्रमः ॥ १० ॥

अथ हृद्रोगस्य उपद्रवानाह ।

पिपासा-स्थानसंसादः भ्रमो शोषो मुखस्य तु ।
उपद्रवा अमी ज्ञेया हृद्रोगे क्रमिसम्भवे ॥ ११ ॥

अथ चिकित्सा ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमातुरम् ।
द्विपञ्चमूलीक्काथेन सस्नेहलवणेन च ॥ १२ ॥
पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
सौवर्च्चलमथो शुण्ठी अजमोदा च चूर्णितम् ॥ १३ ॥

कारमें जानेके समान ज्ञान, हृदय में शूल, मुखसे कफ गिरना, अरति और आलस्य ये चिह्न होते हैं, तथा रोगी के नेत्र काले होजाते हैं ॥ १० ॥

प्यास जिस स्थान में उत्पन्न होती है, उस में पीड़ा, भ्रम, मुख सूखना ये क्रमिज हृद्रोग के उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

आगे हृद्रोग की चिकित्सा लिखते हैं ।

हृद्रोग में यदि रोगीकी वायु अधिक बढ़ा होय तो पहिले चिकनी औषधि खिलाकर वमन करावे, वमन कराने के लिये दोनों पञ्चमूल काढ़े में निमक मिलाकर खिलावे ॥ १२ ॥

पीपल, इलायची, वच, हींग, जवाखार, सेन्धानिमक, सौंचल, सोंठ और अजमोदा, इन सबको चूर्ण करके नींबू, आदि खट्टे फलोंका रस मिलाकर रोगीको खिलावे, ऊपर से

पलं धान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः ।
पाययेत् शुद्धदेहस्तु स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ १४ ॥
नागरं वा पिबेदुष्णं कषायञ्चाग्निवर्द्धनम् ।
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ १५ ॥
श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत् ।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः (१) शृतम् ॥ १६ ॥
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥१७॥
शीताः प्रदेहाः परिसेचनानि
तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।

कांजी या कुलथिका काढ़ा, दही, मद्य, आसव या कोई चिकनाई पिलावे ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथवा सोंठ का गरम काढ़ा पिलावे इस से अग्नि बढ़ती है, खांसी, सांस, वायुरोग, शूल और हृद्रोग नाश होता है ॥१५

खरणी, जेठीमधु, शहत, चीनी, गुड़ और पानी इन सब औषधियों को काकोल्यादि गणके काढ़े में मिलाकर पित्त से उत्पन्न हुवे, हृद्रोग में पीये ॥ १६ ॥

पित्त ज्वर में लिखे घी और काढ़े भी पीये ॥१७॥

ठण्डे उपटन ठण्डी सब औषधि और विरेचन ये भी पित्त से उत्पन्न हुवे हृद्रोग में पथ्य है, मुनक्का, चीनी, शहत और

(१) काकोल्यादिभिः ।

द्राक्षा सिता क्षौद्रपरूषकैः स्यात्
शुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ १८ ॥
पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन
यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीं च ॥ १९ ॥
अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥ २० ॥
घृतेन दुग्धेन गुडाम्बुना वा
पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं
हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ २१ ॥
वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते।
वातहृद्रोगनुच्चूर्णं पिप्पल्यादिञ्च पाययेत् ॥ २२ ॥

फालसा ये सब वस्तु खाने पीनेकी पित्त नाशक वस्तु शरीर शुद्ध होने पर पित्त से उत्पन्न हुवे हृद्रोग में दें ॥१८॥

अथवा जेठीमधु और कुटकी पीसके सर्वतके संग पीवे ॥१९॥

अर्जुन वृक्षकी छाल के काढ़े में दूध पकाकर पीनेसे हृद्रोग दूर होजाता है, इसी प्रकार सफेद दूब, पञ्चमूल, वरियारा अथवा जेठीमधुमें पके दूधसे भी हृद्रोगका नाश होता है ॥२०॥

जो रोगी घी, दूध और गुड़ में अर्जुन वृक्षकी छाल मिला कर पिवे, वह हृद्रोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्त से छूटकर बहुत दिन जीता है ॥ २१ ॥

कफ से उत्पन्न हुवे हृद्रोग में पहले रोगीको वच और

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्या-
दन्नञ्च सर्वेषु हितं विधेयम् ।
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव
कार्य्यं त्रयाणामपि कर्मशस्तम् ॥ २३ ॥
चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेन समायुतम् ।
हृच्छूलं श्वासकासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ २४ ॥
तैलाज्यगुड़विपक्वं गोधूमपार्थजं वापि ।
पिबति पयोऽनु च स भवेज्जित
सकलश्वासकासहृद्रामयः पुरुषः ॥२५॥
मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
हृद्रोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम् ॥ २६ ॥

नीमका काढ़ा पिलाकर वमन करावे, फिर वात हृद्रोग में लिखे चूर्ण और पिप्पल्यादि गणका काढ़ा पिलादे ॥ २२ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुवे हृद्रोग में पहिले लंघन देकर फिर तीनों दोषों के अनुसार पथ्य दे, फिर हीन, उल्वण और मध्यभेद से दोषोंको देखकर दशा के अनुसार चिकित्सा करे। ॥ २३ ॥

पुष्करमूल के चूर्ण में शहत मिलाकर खानेसे हृदयका शूल सांस, खांसी, क्षय और हिचकी रोग दूर होते हैं ॥ २४ ॥

तेल, घी, गुड़, इनको पकाकर अथवा गेहूंका चूर्ण पकाकर खाने से और ऊपर से दूधपीने से सब प्रकार की खांसी, सांस और हृद्रोग दूर होजाता है ॥ २५ ॥

नागबला की जड़को दूध में पीसकर पीने से अथवा इस

रसायनपरं बल्यं वातजित् माषयोजितम्।
सम्वत्सरप्रयोगेन जीवेद्दर्षशतं ध्रुवम्॥ २७॥

हिङ्गूग्रगन्धा विडविश्वकृष्णा
कुष्ठाभया चित्रक यावशूकम्।
पिबेत्स सौवर्च्चलपुष्कराढ्यं
यवाम्भसा शूलाहृदामयघ्नम्॥ २८॥

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारयोजितम्।
कासं श्वासञ्च हृद्रोगं गुल्मशूलञ्च नाशयेत्॥ २९॥
पाठां वचां यवक्षारमभयां साम्लवेतसम्।

ही प्रकार अर्जुन वृक्ष की छाल पीने से खांसी, सांस और हृद्रोग दूर होजाता है॥ २६॥

इस औषधि को एक एक मासेसे एक वर्ष तक खाने से मनुष्य से सौ वर्ष तक जीता है, कोई रोग नहीं होता, बुढ़ापा नहीं आता, बल बढ़ता है और वातरोगों का नाश होता है॥ २७॥

हींग, खुरासानी अजवाइन, विडनोन, सोंठ, पीपल, कूट, हर्र, चीता, जवाखार, सोंचल और पुष्कर मूल इन सब का चूर्ण बनाकर खाने और ऊपरसे जौंका पानी पीनेसे शूल और हृद्रोग का नाश होता है॥ २८॥

दशमूल के काढ़े में नमक और जवाखार मिला कर पीने से हृद्रोग, खांसी, सांस, शूल और गुल्म का नाश होता है॥ २९॥

पाढ़ा, वच, जवाखार, हर्र, अम्लवेत, जवासा, चीता, सोंठ

दुरालभा चित्रकञ्च बूषणञ्च फलत्रयम् ॥ ३० ॥
शटीं पुष्करमूलञ्च तिन्तिड़ीकं सदाडिमम् ।
मातुलुङ्गस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ३१ ॥
सुखोदकेन मद्यैर्वा प्लुतान्येतानि पाययेत् ।
अर्शः शूलञ्च हृद्रोगं गुल्मञ्चाशु नियच्छति ॥ ३२ ॥
पुटदग्धमश्मपिष्टं हरिणविशाणं सर्पिषा पिवतः ।
हृत्पृष्ठशूलमुपशममुपायात्यचिरेण कष्टमपि ॥ ३३ ॥
क्रिमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ।
दध्ना च पललोपेपं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ ३४ ॥
सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ।
विड़ङ्गाढ्यैर्धान्याम्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

मिर्च, पीपल, हर्र, वहेड़ा, आमला, कचूर, पुष्करमूल, तिन्तड़ीक, अनारदाना और बिजौरे नींबू की जड़ इन सबका चूर्ण बनाकर थोड़े गरमपानी अथवा मद्यमें मिलाकर पिलावे, तो ववासीर, शूल, हृद्रोग, गुल्म, शीघ्र दूर होजाते हैं ॥ ३०—३२ ॥

हरिणके सींगको गजपुट में फूंककर और शिलपर पीस कर घीमें मिलाकर खानेसे हृदय और पीठ की पीड़ा दूर होजाती हैं ॥ ३३ ॥

जिसके पेटमें कीड़े पड़ने से हृदय में पीड़ा होती है इसे चिकनाई मिलाकर मांस और भात खिलावे अथवा तीन दिन तक दही मांस और भात खिलावे, फिर पीछे विरेचन दे ॥ ३४ ॥

सुगन्धवाली औषधियों में जीरा, नमक, शकर, विडङ्ग और कांजी मिलाकर खिलावे ॥ ३५ ॥

क्रिमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम्।
हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात् क्रिमयो नृणाम् ॥३६॥
यवान्नं वितरेच्चास्मै सविडङ्गमतःपरम् ॥ ३७ ॥

मुख्यं शतार्द्धञ्च हरीतकीनां
सौवर्च्चलस्यापि पलद्वयञ्च।
पक्कं घृतं वल्लभकेति नाम्ना
हृल्लासशूलोदरमारुतघ्नम् ॥ ३८ ॥

इति वल्लभकं घृतम्।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्य्यकत्तृणाम्।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ ३९ ॥
कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदो जीवन्ति जीरकैः।
शतावर्य्यर्द्धि मृद्वीका शर्करा श्रावणी विसै ॥ ४० ॥
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वापि पित्तहृद्रोगशूलनुत्।

क्रिमीहृद्रोग में गोमूत्र में विड़ङ्ग और कूट मिलाकर पीनेसे हृदयके कीड़े गुदा मार्गसे गिर जाते हैं ॥ ३६ ॥

रोगीको विड़ङ्ग मिलाकर जौ की रोटी खिलावे ॥ ३७ ॥

उत्तम हर्र पचास, सौंचल दो पल, इन दोनोंको घीमें डालकर पकावे, फिर इस घीके खानेसे हृल्लास, शूल और पेटके वायुका नाश होता है, इसका नाम वल्लभघृत है ॥ ३८ ॥

गोखरू, खस, मजीठ, वरियारा, खम्भारी, गन्धतृण, दाभकी जड़, पृथक्पर्णी, ढाक, ऋषभक, शालपर्णी, कमाचके वीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, शतावर, ऋद्धी, मुनक्का, शक्कर, गधापुषा, कमलकी जड़, इन सबको एक प्रस्थ घीमें डालके पकावे,

मूत्रकृच्छ्र प्रमेहार्शः श्वासकासक्षयापहम् ॥ ४१ ॥
धनुस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः ॥ ४२ ॥

इति श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ।

घृतं बला नागबलार्जुनाम्बु-
सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्त-
कासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ॥ ४३ ॥

इति बलाद्यं घृतम् ।

पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं
शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ ४४ ॥

इत्यर्ज्जुनघृतम् ।

इति भैषज्यरत्नावल्यां हृद्रोगाधिकारः समाप्तः ।

इस घीके खानेसे पित्तसे उत्पन्न हुवा हृद्रोग, शूल मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, सांस, खांसी और क्षयरोग का नाश होता है, स्त्री, मद्यपीनेवाले, बोझ उठानेवाले, धनुष खींचनेवाले और मार्ग चलनेसे थके हुवे मनुष्योंको इसके खानेसे बहुत बल बढ़ता है ॥३९—४२॥

बरियारा, गुलशकरी, खस, अर्जुन और जेठीमधु, इन सबको चार गुणे घीमें पकावे, इस घीके खानेसे हृद्रोग, शूल, घाव, रक्तपित्त, खांसी और बढ़ा हुवा वातरक्त दूर होजाता है, इसका नाम बलादि घृत है ॥ ४३ ॥

अर्जुनवृक्ष को कल्क बनाकर उस ही का रस डाल कर घी पकाकर खानेसे सब प्रकार का हृद्रोग दूर होजाता है ॥ ४४ ॥

भाषाभैषज्यरत्नावली में हृद्रोग चिकित्सा अधिकार समाप्त ।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः।

मत्स्यांनूपाध्यशनरतिभिः तीक्ष्णकट्वम्लयोगैः
रूक्षैर्मद्यप्रयोगैर्द्रुतगमनतरपृष्ठयानैरथोग्रैः।
तापैरन्नातिभोज्यैर्दिनकरकिरणैर्मार्गसेवातिघोरैः
मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ किल वपुषि महाकष्टदानि पृथक्
स्युः॥ १॥

तस्य सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणमाह।

वातादय स्त्रयो दुष्टा मिलिता अथवा पृथक्।
वस्तेर्मुखमथाश्रित्य मूत्रमार्गं निरुध्य च॥ २॥
यदा तिष्ठन्ति कष्टाद्धि तदा मूत्रयतीह ना॥ ३॥

मूत्रकृच्छ्रनिदान का भाषा लिखते हैं।

जो अधिक मछरी, जलके किनारे में उत्पन्न हुवे जन्तुवों का मांस, तेज और गरम वस्तु खाता है, रूखे भोजन करता है, अधिक मद्य पीता है, दौड़कर चलता है, घोड़े, हाथीके ऊपर अधिक चढ़ता है, आग तापता है, प्रमाणसे अधिक खाता है, सूर्य्यकी किरण में बैठता है, पहला भोजन न पचने पर दूसरा भोजन कर लेता है, अधिक पैरों चलता है, उसके शरीर में आठ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होते हैं॥ १॥

जब वात, पित्त और कफ मिलकर अथवा शरीर में अलग अलग बिगड़ते हैं तब वस्ति अर्थात् मूत्राशयके मुखमें जाकर मूत्रके मार्गको रोक देते हैं, तब मनुष्य को मूतने में बहुत कष्ट होता है, वैद्योंने इसी रोगका नाम मूत्रकृच्छ्र लिखा है॥ २॥ ३॥

अथ वातिकमाह।

लिङ्गवस्त्यण्डकोशेषु पीड़ा वातोत्थिते समा।
वारंवारं मूत्रयति स्वल्पं स्वल्पं गदातुरः॥ ४॥

अथ पैत्तिकमाह।

पित्तोत्थितेऽरुणं मूत्रं दाहतोदसमन्वितम्।
पीतं वा रुधिराक्तं वा नरो मूत्रयति भृशम्॥ ५॥

अथ श्लैष्मिकमाह।

श्वेतं कफोत्थिते मूत्रं पिच्छिलं शीतमेव च।
लिङ्गवस्तिगुरुत्वञ्च शेफसस्तब्धता तथा॥ ६॥

अथ सान्निपातिकमाह।

वातपित्तकफकृच्छ्रलक्षणं सर्वमेव तु
यत्र संदृश्यते वैद्यैः ससर्वज उदाहृतः॥ ७॥

वातसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में लिङ्ग और अण्डकोशमें वायुसे उत्पन्न हुई पीड़ा उत्पन्न होती हैं, रोगीको वार वार, धीरे धीरे और थोड़ा थोड़ा मूत्र होता है॥ ४॥

पित्तसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में दाह और पीड़ा होती हैं, मूत्रका रङ्ग लाल या पीला होजाता है और मूत्रके सङ्ग रुधिर भी आता है॥ ५॥

कफसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में मूत्र चिकना और ठण्ढा आता है, लिङ्ग और मूत्राशय भारी होजाते हैं और लिङ्ग कड़ा हो जाता है॥ ६॥

सन्निपातसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में ऊपर लिखे वात, पित्त और कफके सब लक्षण मिलते हैं॥ ७॥

अथ शल्यजमाह ।

मूत्रवाहिशिराच्छेदात् क्षताद्वा क्षतसम्भवम् ।
मूत्रकृच्छ्रं प्रभवति चिह्नं वातोद्भवोपमम् ॥ ८ ॥

अथ पुरीषजमाह ।

विष्टावेगातिरोधात्तु वायुर्दुष्टः शरीरिणाम् ।
वातशूलमथाध्मानं मूत्ररोधं करोति च ॥ ९ ॥

अथ शुक्रजमाह ।

वीर्य्यवेगेऽभिहते मूत्रवेगे तु धारिते ।
वस्तौ ध्वजेऽतिपीड़ा स्याद् वीर्य्याक्तं मूत्रमेव च ॥१०॥

अथाश्मरीजमाह ।

अश्मरीसम्भवे कृच्छ्रे कष्टान्मूत्रयतीह ना ।
शर्कराजमपि प्रोक्तं सुश्रुतेनैवमेव तु ॥ ११ ॥

जिस नाड़ीसे मूत्र वहता है उसके कटने से अथवा उसमें किसी प्रकार का घाव होनेसे भी मूत्र कृच्छ्ररोग उत्पन्न होता है, उसके लक्षण वातिक मूत्रकृच्छ्र के समान होते हैं ॥ ८ ॥

जो मनुष्य सदा विष्टाके वेगको रोकता है, उसका वायु बिगड़ कर अनेक प्रकारके शूल उत्पन्न करता है, मूत्राशय को फुला देता है और मूत्रको रोक देता है, जिस मनुष्य को मूत्रकृच्छ्ररोग हुवा हो उसे अश्मरी अर्थात् पथरीरोग भी होजाता है, उसके होनेसे मनुष्य को बहुत कष्ट से मूत्र आता है, सुश्रुत में शर्करा रोगसे उत्पन्न हुवा मूत्रकृच्छ्र रोग भी लिखा है, अश्मरी और शर्कराके विशेष लक्षण उनके निदान में मिलेंगे, यहां सामान्य

अथ शर्करालक्षणमाह ।

अश्मरीप्रथमं या तु कालेऽतीते तु शर्करा ।
सैव प्रोक्ता भिषक् श्रेष्ठैः सुश्रुताद्यैर्महर्षिभिः ॥ १२ ॥
पित्तात्संपाचिता वाताच्छोषिता श्लेष्मणा पुनः ।
क्षरन्ती शर्करा प्रोक्ता कष्टदा प्राणनाशिनी ॥ १३ ॥

अथ शर्कराया उपद्रवानाह ।

कुक्षिशूलं वह्निमान्द्यं मूर्च्छा हृत्पीडनन्तथा ।
मूत्रकृच्छ्रं वेपनञ्च शर्करोपद्रवा अमी ॥ १४ ॥

अथ चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्ति
स्वेदो(१)पनाहो(२)त्तरवस्ति(३)सेकान् ।

रूपसे कहते हैं, पहिले जो रोग अश्मरी कहाता है अर्थात् जिसे पथरीरोग कहते हैं, वही पथरी कुछ समय बीतने पर जब पित्तसे पक जाती हैं, वायुसे सूख जाती हैं और कफसे धातुके समान होजाती हैं, तब मूत्रके सङ्ग निकलने लगती हैं, वैद्य उसे ही शर्करारोग कहते हैं ॥ ६—१३ ॥

कोखमें पीड़ा, मन्दाग्नि, मूर्च्छा, हृदय में पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र और शरीर कांपना ये शर्करा के लक्षण हैं ॥ १४ ॥

आगे मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा लिखते हैं ।

वायुसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में शरीर लगा की औषधी, स्नेह-वस्ति, निरूहवस्ति, स्वेदन, उपनाहन, उत्तरवस्ति और परिसेक

(१) स्वेदपूर्वकः सुश्रुतेरितत्वात् । (३) वातघ्नैः ।
(२) सुश्रुतोक्तविधिना ।

स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्
दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १५ ॥
(१)सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहाः
(२)ग्रैष्मो विधिर्वस्ति पयोविरेकाः।
द्राक्षा-विदारीक्षुरसैर्घृतैश्च
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्य्याः ॥ १६ ॥
क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं
स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः।
तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैल-
मभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १७ ॥
सर्वं त्रिदोषप्रभवे च वायोः
स्थानानुपूर्व्या (३) प्रसमीक्ष्य कार्य्यम्।

दे, इन सब कर्मोंमें शालपर्णी आदि वायु नाशक औषधियों का रस दें ॥ १५ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्रमें परिसेक और शरीरमें लगाने को ठण्ढी औषधी दे, उत्तरवस्ति, विरेचन और जो कुछ गर्म ऋतुमें करना उचित है, सो सब कर्म करें, मुनक्का, विदारीकन्द और ऊखके रसमें पकाकर घी खिलावे ॥ १६ ॥

कफसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में खार, गर्म और तेज औषधी और वैसे ही खाने पीने को पथ्य भी दे, पसीना, वमन और निरूह-वस्ति दे, खाने को जौ की रोटी, मट्ठा, कड़वी औषधी और तैल दे, शरीर में लगाने को भी यही सब वस्तु दे ॥ १७ ॥

---

(१) शीतलौषधलेपन। (२) उष्णक्रिया। (३) मलस्थानक्रमेण।

त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं विरेकः
पित्ते कफे स्यात्पवने च वस्तिः ॥ १८ ॥
तथाभिघातजे कुर्य्यात्सद्यो व्रणचिकित्सितम् ।
स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्ग वस्तयः स्युः पुरीषजे ॥ १९ ॥
क्रिया हिता त्वश्मरिशर्करायां
या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥ २० ॥
लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ।
वृष्यैर्बृंहितधातूत्थे विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ २१ ॥
यन्मूत्रकृच्छ्रे विहितन्तु पैत्ते
तत् कारयेच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥ २२

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषोंका बलाबल विचार कर वायुके स्थानोंका क्रम देखकर चिकित्सा करे, यदि तीनोंमें पित्त अधिक होय तो वमन, कफ अधिक हो तो विरेचन और जो वायु अधिक होय तो वस्तिकर्म करे ॥ १८ ॥

चोटसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में व्रणके समान चिकित्सा करे।

विष्टासे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में स्वेदन, चूर्ण, अभ्यञ्जन और वस्तिकर्म करे ॥ १९ ॥

अश्मरी और शर्करा में भी वायुसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र के समान चिकित्सा करे ॥ २० ॥

वीर्य्य रुकनेसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में शहत मिलाकर शिलाजित खाय, अधिक वीर्य्य बढ़नेसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में उत्तम स्त्रियोंके सङ्ग रहे ॥ २१ ॥

रुधिरसे उत्पन्न हुवे मूत्रकृच्छ्र में पित्तमूत्रकृच्छ्र के समान चिकित्सा करे ॥ २२ ॥

कुष्माण्डकरसं पीत्वा सयवक्षारशर्करम्।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत शीघ्रञ्च लभते सुखम्॥ २३॥
कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम्।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम्॥ २४॥
इति तृणपञ्चमूलम्।
एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम्॥ २५॥
इति पञ्चतृणक्षीरम्।

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकास-
दुरालभा प्रस्तरभेदपथ्या।
निघ्नन्ति पीडां मधुनाश्मरीञ्च
सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम्॥ २६॥
इति त्रिकण्टकादिः।

कुम्हड़े के रसमें जवाखार और शक्कर मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है और रोगी सुखी होजाता है॥ २३॥

कुश, काश, सेठे की जड़, दाभ और ऊखकी जड़ इन सब औषधियों का नाम तृणपञ्चमूल है, इनके काढ़े से मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है और मूत्राशय शुद्ध होता है॥ २४॥

ऊपर लिखे तृणपञ्चमूल में दूध पकाकर पीनेसे रक्तमूत्र-कृच्छ्र दूर हो जाता है॥ २५॥

गोखरू, अमलतास, दाभ, कास, जवासा, पाषाणभेद, और हर्र, इन सब के काढ़े में शहद मिलाकर पीने से अश्मरी रोग दूर होता है और मरता हुवा मूत्रकृच्छ्र रोगी भी अच्छा हो जाता है॥ २६॥

क्काथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्रं तथा रक्तं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥२७॥
इति गोक्षुरादिः ।

धात्री द्राक्षा विदारी च यष्ट्याह्वं गोक्षुरं तथा ।
एभिः कषायं विपचेत्पिबेत्पीतं सशर्करम् ॥ २८ ॥
अपि योगशतासाध्यं मूत्रकृच्छ्रं जयेल्लघु ॥ २९ ॥
इति धात्र्यादिः ।

धात्री द्राक्षा च यष्ट्याह्वं विदारी सविकण्टका ।
दर्भेक्षुमूलमभया क्काथयित्वा जलं पिबेत् ॥ ३० ॥
ससितं मूत्रकृच्छ्रघ्नं रुजा दाहहरं परम् ॥ ३१ ॥
इति वृहद्धात्र्यादिः ।

गोखरूके बीजके काढ़े में जवाखार मिला र पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और रुधिर मूत्रकृच्छ्र बहुत शीघ्र दूर हो जाता है; इसका नाम गोक्षुरादि क्काथ है ॥ २७ ॥

आंवला, दाख, विलाईकन्द, जेठीमधु और गोखरू इनके काढ़े में शक्कर मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है चाहे सैकड़ों औषधियों से भी अच्छा न हुवा होय तौभी इससे अच्छा होजाता है; इसका नाम धात्र्यादि कषाय है ॥२८॥२९॥

आंवला, दाख, विलाईकन्द, जेठीमधु, गोखरू, दाभ, ऊखकी जड़ और हर्र इन सबका काढ़ा पकाकर पीनेसे पीड़ा और जलनयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है, इस काढ़े में शक्कर मिलाले; इसका नाम भी धात्र्यादि काढ़ा है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् ।
प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः सशूलो मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ ३२ ॥
इति वातिके कृच्छ्रेऽमृतादिः ।

शतावरी काश कुश श्वदंष्ट्रा
विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम् ।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्करात्तं
पिबन् जयेत् पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ३३ ॥
इति शतावर्य्यादिः ।

गुड़ेन मेलकं वृष्यं भ्रमघ्नं तर्पणं परम् ।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ३४ ॥

एर्वारुवीजं मधुकं सदार्वि
पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन ।

गुरिच, सोंठ, आमला, असगन्ध और गोखरू, इन सबका काढ़ा बना कर पीनेसे शूलके सहित वायुसे उत्पन्न हुवा मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है ; इसका नाम अमृतादि क्वाथ है ॥३२॥

सतावर, काश, कुशकी जड़, गोखरू, विलाईकन्द, ऊख की जड़, धानकी जड़ और कसेरू, इनके काढ़े को ठण्ढा करके शहत और शक्कर मिलाकर पीनेसे पित्तसे उत्पन्न हुवा मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है ; इसका नाम शतावर्य्यादि क्वाथ है ॥ ३३ ॥

ऊपर लिखी औषधियों में गुड़ मिलाकर लड्डू बनाकर खानेसे वीर्य्य बढ़ता है, तृप्ती होती है, भ्रम, रक्तपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं ॥ ३४ ॥

दार्वीं तथैवामलकीरसेन
समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ ३५ ॥
हरीतकी गोक्षुरराजवृक्ष
पाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् ।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं
कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ ३६ ॥
इति हरीतक्यादिः ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरु
कर्कारुकेक्षुरसकेन सिद्धम् ।
सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रपेयं
कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥ ३७ ॥
इति त्रिकण्टकाद्यं घृतम् ।

ककड़ीके बीज, जेठीमधु और दारु हलदी, इनको पीसकर चावल के पानी के संग पीनेसे अथवा दारुहलदी या आमले के रसके संग शहत मिलाकर पीनेसे पित्तसे उत्पन्न हुआ मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है ॥ ३५ ॥

हर्र, गोखरू, अमलतास, पाषाणभेद और जवासेके काढ़े में शहत मिलाकर पीनेसे दाह, पीड़ा और विबन्ध के सहित मूत्रकृच्छ्र रोग दूर हो जाता है ; इसका नाम हरीतक्यादि क्वाथ है ॥ ३६ ॥

गोखरू, अरण्ड, कुशकी जड़, प्रियंगू, भूराकुमढ़ा इन सब को ऊखके रस में डालकर पकावे और पकते समय इस गुड़से

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रविनाशनः ।
सूर्य्यावर्त्तभवं वीजं श्लक्ष्णं दृशदि पेषितम् ।
व्युषितोदकसम्पीतं कृच्छ्रं हन्ति सुदारुणम् ॥ ३८ ॥
मधुना च यवक्षारं मूत्रकृच्छ्राश्मरीहरम् ॥ ३९ ॥
सगन्धकयवक्षारं शर्करा तक्रतः पिवेत् ।
मूत्रकृच्छ्रादिमुच्येत साध्यासाध्यान्न संशयः ॥ ४० ॥
नारिकेलोद्भवं पुष्पं तण्डुलोदकसंयुतम् ।
रक्तजं मूत्रकृच्छ्रं हि पीतं हन्ति न संशयः ॥ ४१ ॥
शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्रकम् ।
दुरालभा यवक्षारं वीजं गोक्षुरजं शिवा ॥ ४२ ॥

आधा घी डाले, इस घीसे मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और मूत्राघात दूर हो जाते हैं ; इसका नाम त्रिकण्टकादि घृत है ॥ ३७ ॥

एक भाग जवाखार और एक भाग शक्कर मिलाकर खाने से सब प्रकार का मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है अथवा सूर्य्यमुखी के वीजको पत्थर पर वारीक पीसकर वासीपानी के संग पीने से भयानक मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होजाता है ॥ ३८ ॥

शहत में मिलाकर जवाखार खाने से मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी का नाश होता है ॥ ३९ ॥

गन्धक, जवाखार, शक्कर और मठे में मिलाकर पीनेसे साध्य अथवा असाध्य मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है ॥ ४० ॥

चावल के पानी में नारियल का फूल मिलाकर पीनेसे रुधिर से उत्पन्न हुवा मूत्रकृच्छ्र निःसन्देह दूर होजाता है ॥४१॥

शुद्ध पारा एक भाग, गन्धक एक भाग, लोहा एक भाग, वङ्ग,

समांशं भावयेत्सर्वं कुष्माण्डफलवारिणा ।
पञ्चतृणभवक्काथे रसे गोक्षुरजे तथा ॥ ४३ ॥
संपिष्य वटिकाः कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
मधुना भक्षयेल्लिह्यान्मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ४४ ॥
उडुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ।
लेहयेन्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ ४५ ॥
अजाक्षीरं भवेत्पथ्यं शर्करेक्षुरसो हितः ॥ ४६ ॥

इति तारकेश्वरः ।

सूतं स्वर्णञ्च वैक्रान्तं गन्धतुल्यं विमर्द्द्य ।
चाण्डालीराक्षसीद्रावैर्द्दिनयामान्ते तु गोलकम् ॥४७॥
शुष्कं बद्ध्वा पुटेच्चाहः करीषाग्नौ महापुटे ।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैर्मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ ४८ ॥

इति मूत्रकृच्छ्रान्तकः ।

अभ्रक की भस्म, जवासा, जवाखार, गोखरूके बीज और आमला इन सब को समान लेकर कुम्हड़े के रस, पञ्चतृण अर्थात् कुशा, काश, ऊखकी जड़, दाभकी जड़ और रामशरकी जड़के काढ़े और गोखरूके काढ़ेमें भिगोकर, पीसकर घुंघचीके समान गोली बनावे, फिर एक गोली को शहत में घोलकर खाय, ऊपरसे एक कर्ष पके हुवे गूलरका चूर्ण शहत में मिलाकर खाय तो मूत्रकृच्छ्र का नाश होजाता है, इसमें बकरी का दूध, ऊखका रस और शक्कर पथ्य है, इसका नाम तारकेश्वररस है ॥ ४२—४६ ॥

पारा, सोना, गन्धक और वैक्रान्तमणि इन सबको एक एक भाग लेकर पंचगुरिया और राक्षसीके रसमें दोपहर घोटकर गोली

विदारी गोचुरं यष्टी केशरञ्च समं पचेत्।
तत्कषायं पिवेत्चौद्रे रसभस्मयुतं पुनः॥ ४९॥
मूत्रकृच्छ्रहरं ख्यातं सप्ताहात्पित्तसम्भवम्॥ ५०॥
इति मूत्रकृच्छ्रहरः।
इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः।

अथ मूत्राघाताधिकारः।

उर्द्धं तथाधःपवनादयस्तु
नाभेः प्रविष्टाः खलु मूत्रघातान्।
कुर्वन्ति ते कुण्डलिका समानाः
त्रयोदशैव भ्रमिता प्रदुष्टाः॥ १॥

बना ले, फिर गजपुटमें वनकण्डे की आंचमें फूंक दे, इस रसको शहत में मिलाकर खानेसे मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होजाता है, इसका नाम मूत्रकृच्छ्रान्तकरस है॥ ४७॥ ४८॥

विलाईकन्द, गोखरू, जेठीमधु और नागकेशर, इन सबको समान लेकर काढ़ा.पकावे, इस काढ़े में पारेकी भस्म और शहत मिलाकर पीनेसे सात ही दिनमें पित्तसे उत्पन्न हुवा मूत्रकृच्छ्र दूर होजाता है; इसका नाम मूत्रकृच्छ्रहररस है॥ ४९॥ ५०॥

इति भाषा-भैषज्यरत्नावली में मूत्रकृच्छ्राधिकार समाप्त।

मूत्राघात निदान का भाषा लिखते हैं।

जब वात, पित्त और कफ अपने अपने कारणोंसे बिगड़कर नाभीके नीचे और ऊपर कुण्डलके समान गोल होकर घूमते हैं तब तेरह प्रकार का मूत्राघात रोग उत्पन्न होता है॥ १॥

तत्र वातजस्य लक्षणमाह ।

वेगाभिघातैरतिरूक्षसेवनै:
मरुत्प्रदुष्टः किल वस्तिसंस्थितः
अल्पं मुहुर्मूत्रयतीह तेन या
तं वातजातं प्रवदन्ति पण्डिताः ॥ २ ॥

अथाष्ठीलामाह ।

वातः प्रदुष्टो गुदसंस्थितस्तु
रुद्धा शकृन्मूत्रमथापि जन्तोः ।
तीव्राञ्च विण्मूत्रनिरोधिनीञ्च
अष्ठीलिकां घोरतरां करोति ॥ ३ ॥

अथ वातवस्तिमाह ।

विधारयेद्यो निजमूत्रमार्गं
वस्तेर्मुखन्तस्य रुणद्धि वातः ।
कृच्छ्रात्ततो मूत्रयति प्रगाढं
हृद्वस्ति-कुक्ष्यादिकवेदनाढ्यः ॥ ४ ॥

जब मूत्र रोकने और अधिक रूखा भोजन करने के कारण वायु विगड़कर मूत्राशय में चला जाता है, तब मनुष्य वार वार थोड़ा थोड़ा मूतता है, पण्डितोंने इसे ही वातसे उत्पन्न मूत्राघात कहता है ॥ २ ॥

जब वायु विगड़कर गुदामें स्थित होता है, तब मनुष्यके विष्टा और मूत्र बन्द होजाते हैं, अनेक प्रकारकी भयानक पीड़ा उत्पन्न होती हैं ; इसीका नाम अष्ठीला रोग हैं ॥ ३ ॥

जो मनुष्य सदा मूत्र को रोकता है, उसके मूत्राशय को वायु

वातवस्तिः स विज्ञेयः कष्टसाध्यो महागदः ॥ ५ ॥

अथ मूत्रातीतमाह ।

मूत्रं धारयतो जन्तोः तच्छीघ्रं न प्रवर्त्तते ।
मूत्रमुत्सृजतो वापि मन्दमायाति वा न वा ॥ ६ ॥
वस्तिपीडा समायुक्तो मेढ्रवङ्क्षणपीड़ितः ।
मूत्रातीतः सविज्ञेयो दुष्टमारुतकोपजः ॥ ७ ॥

अथ मूत्रजठरमाह ।

मूत्रवेगे हते जन्तोः कुपितोऽपानमारुतः ।
उदरं पूरयित्वानुरधोनाभेर्भृशं वली ॥ ८ ॥
आध्मानं कुरुते पीड़ां तन्मूत्रजठरं स्मृतम् ॥ ९ ॥

अथ मूत्रोत्सङ्गमाह ।

मणौ वस्तौ च नाले च मूत्रं यस्य प्रसज्यते।

रोक देता है, तब मूत्र आनेमें बड़ा कष्ट होता है, हृदय, मूत्राशय और कोख में पीड़ा होती है, इस कष्टसाध्य रोग का नाम वातवस्ति रोग है ॥ ४ ॥ ५ ॥

जो मनुष्य मूत्रको रोकता है, उसको फिर शीघ्र मूत्र नहीं आता अथवा धीरे धीरे आता है अथवा नहीं आता, इस रोगमें मनुष्यके लिङ्ग, मूत्राशय और अण्डकोश में पीड़ा होती हैं, इस वायुसे उत्पन्न हुवे रोगका नाम मूत्रातीत है ॥ ६ ॥ ७ ॥

जो मनुष्य मूत्रके वेगको रोकता है उसका वायु बिगड़कर पेट फुला देता है और नाभीके नीचे घूमकर अनेक प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न करता है। इसरोग का नाम मूत्रजठर है ॥८॥९॥

जिस मनुष्य के मणी, मूत्राशय और सेवनी में मूत्रक

प्रवृत्तं रुधिराढ्यं वा शनैरल्पं प्रवर्त्तते ॥ १० ॥

सतोदं तोदरहितं दुष्टमारुतसम्भवम् ।

मूत्रोत्सङ्गन्तमेवाहू रोगं रोगविशारदाः ॥ ११ ॥

अथ मूत्रचयमाह ।

वस्तिस्थिते वातपित्ते क्लान्तरूक्षस्य देहिनः ।

मूत्रनाशं प्रकुरुतः समूत्रचयसंज्ञितः ॥ १२ ॥

अथ मूत्रग्रन्थिमाह ।

वस्तेर्मुखेऽभ्यन्तरतः क्षुद्रामलकसन्निभः ।

स्थिरश्चातीव कठिनः अश्मरीतुल्यरूपवान् ॥ १३ ॥

सहसोत्थितो मूत्रग्रन्थिः स एव मुनिभाषितः ।

तोददाहसमायुक्तोऽसृग्जातः कष्टसाधनः ॥ १४ ॥

आता है तब मनुष्यको धीरे २ रुधिर सहित आता है, कभी पीड़ा होती है और कभी नहीं भी आता वैद्यशास्त्र जाननेवाले इसे मूत्रोत्सङ्ग रोग कहते हैं ॥ १०—११ ॥

जब थके हुवे और रूखे शरीरवाले मनुष्य के मूत्राशय में वात और पित्त प्रवेश करते हैं, तब मनुष्य का मूत्र नष्ट होजाता है उसे हो मूत्रचयरोग कहते हैं ॥ १२ ॥

जब वस्तो अर्थात् मूत्राशयके मुख में छोटे आंवलेके समान गांठ पड़जाती है, तब मूत्र रुकजाता है, वैद्य उसे मूत्रग्रन्थि रोग कहते हैं ॥ १३ ॥

यह मूत्र ग्रन्थि एकवार उत्पन्न होती है अर्थात् धीरे धीरे नहीं बढ़ती इस में पीड़ा और दाह होते हैं, यह कष्टसाध्य रोग रुधिर से उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथास्मादश्मर्य्याः भेदमाह ।

अश्मरीक्रमशो वृद्धा पित्ताधिक्यसमुद्भवा ।
सहसोत्थित एवायं रक्ताधिक्य समुद्भवः ॥ १५ ॥
पित्तासृजोरानुकूल्यादश्मरीतुल्यलक्षणः ।
कथितो मूत्रग्रन्थिस्तु रक्तवातकफोद्भवः ॥ १६ ॥

अथ मूत्रशुक्रमाह ।

मूत्रवेगयुतो जन्तुर्मैथुनं कुरुते यदा ।
तदास्य वीर्य्यं वातेन ऊर्द्ध्वं नीतं प्रचालितम् ॥ १७ ॥
मूत्रकाले तदेवास्य स्थानात्प्रच्यावितं भृशम् ।
भस्मयुक्ताम्बुसदृशं निरेत्येव प्रवर्त्तते ॥ १८ ॥
मूत्रशुक्रं तमेवाहुः व्याधिं वातसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

प्र० अश्मरी और मूत्रग्रन्थिमें क्या भेद है? उत्तर, अश्मरी धीरे धीरे क्रमसे बढ़ती है और मूत्रग्रन्थि एकदार सहसा ही उत्पन्न होती है अश्मरी पित्तकी अधिकता से होती है, और मूत्रग्रन्थि रुधिर की अधिकता से होती है, इस लिये यह दूसरा रोग है और अश्मरी दूसरा रोग है। परन्तु पित्त और रुधिरके गुण मिलते हैं, इस लिये मूत्रग्रन्थि और अश्मरी के लक्षण भी मिलजाते हैं मूत्रग्रन्थि रुधिर, वायु और कफसे उत्पन्न होती है ॥१५—१६॥

जो मनुष्य मूत्रके वेगको रोककर मैथुन करता है, तब उसका वायु वीर्य्यको लेकर ऊपर को जाता है तब वही वीर्य्य मूत्रके संग अपने स्थानसे चलकर निकलने लगता है, उस समय मूत्र राख मिले पानी के समान होने लगता है, वैद्य इस ही वायु से उत्पन्न हुये रोग को मूत्रशुक्र कहते हैं ॥१७—१८॥

अथोष्णवातजमाह ।

व्यायामजैरध्व परिश्रमैश्च
पित्तं प्रदुष्टं पवनादिरूढम् ।
वस्तिं समासाद्य गुदञ्च मेढ्रम्
दहन्नधो रक्तयुतन्तु मूत्रम् ॥ २० ॥
पीतं हरिद्रासदृशन्त्वथापि
प्रस्रावयेत्कोपयुतं सुकष्टात् ।
तमुष्णवातं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
व्याधिं महाघोरतरस्वरूपम् ॥ २१ ॥

अथ मूत्रसादमाह ।

पित्तं कफो वा पवनेन द्वावपि
सन्दूषितौ रक्तयुतं घनं सितम् ।
मूत्रं स्रवेतां रुधिरेण संयुतं
पीतं सदाहं त्वतिकृच्छ्रतोऽपि च ॥२२॥

जो मनुष्य बहुत कसरत करता है, बहुत मार्ग में चलता है, उसका वायु और पित्त बिगड़कर मूत्राशय, लिंग और गुदा में प्रवेश करके घोर दाह उत्पन्न करके पीला, हलदी के रस के समान मूत्र लाता है, उस रोगीका मूत्र गर्म होता है इस लिये इस रोगका नाम उष्णवात कहा है ॥ २०—२१ ॥

जब पित्त, कफ, अथवा दोनों वायुसे बिगड़ जाते हैं, तब गाढ़ा, रुधिर सहित और काला मूत्र होता है अथवा अत्यन्त

तन्मूत्रसादं प्रवदन्ति वैद्याः
समस्तवर्णेष्वपि यत्र मूत्रम्।
शुष्कं घनीभूतमतीव मन्दं
प्रवर्त्तते यत्र च गाढ़रूपम् ॥ २३ ॥

अथ विड्विघातजमाह।

ऊर्द्धं नीतं शकृद्यस्य वायुना दुर्बलस्य नुः।
मूत्रमार्गे तदेवास्य स्थिरी भवति तेन तु ॥ २४ ॥
शकृद्गन्धं मूत्रयति विड्विघातन्तु तं वदेत् ॥ २५ ॥

अथ बस्तिकुण्डलमाह।

द्रुतचलनप्रयासैर्वेगघाताभिघाते-
रतिशयकुपितस्तु बस्तिरूर्द्ध्वं प्रवृत्तः।
भवति किल सदा वै गर्भतुल्यः स्थिरश्च
स्रवति न हि च मूत्रं मन्दमल्पं सर्वदा ॥२६॥

कष्टसे दाह सहित पीला मूत्र आता है, वैद्य उसे ही मूत्रसाद रोग कहते हैं इस में सबदोषों का रङ्ग दीखता है, मत्रगाढ़ा, सूखा और थोड़ा थोड़ा आता है ॥ २२—२३ ॥

जो मनुष्य विष्टाके वेगको रोकता है, उस दुर्बल मनुष्यके विष्टाको वायु ऊपर लेजाता है, तब वही विष्टा मूत्रके मार्ग में जाकर रुक जाता है, तब रोगी को जो मूत्र आता है, उस में विष्टाकी दुर्गन्ध आती है। वैद्य उस रोगको विड्विघात कहते हैं ॥ २४—२५ ॥

जब शीघ्र चलने, अधिक परिश्रम करने और चोट लगने

दाहौषाचोषाः खलु पित्तजाते
उद्वेष्टनं स्तम्भनमङ्गपीड़ा ।
दाहश्च शूलं पवनात्मके तु
श्लेष्मोद्भवे गौरवमग्निमान्द्यम् ॥ २७॥

असाध्यं घोररूपन्तु वज्रक्षाराग्निसन्निभम् ।
वस्तिकुण्डलनामानमाहुर्वैद्यविशारदाः ॥ २८ ॥

अथ तस्यैवासाध्यत्वमाह ।

कफरुद्धं यदा रन्ध्रं नरो विभ्रान्तचक्षुषः ।
पित्तोद्भुतश्वाससयुक्तो नैव सिध्यत्यसौ गदः ॥ २९ ॥

से वायु बिगड़ जाता है, तब वह मूत्राशय को उसके स्थान से निकाल कर ऊंचा कर देता है, उस समय मूत्राशय पेटमें गर्भ के समान ऊंचा होजाता है, तब मनुष्य का मूत्र बंद होजाता है, वैद्य इसेही वस्तिकुण्डल रोग कहते हैं, वही वस्तिकुण्डल रोग जब वायुसे उत्पन्न होता है, तब उस शरीर में पीड़ा और दाह होकर शूल उत्पन्न होता है, पित्तसे उत्पन्न हुवे में दाह, गर्मी, और सिंगी खींचनेके समान पीड़ा होती है, कफसे उत्पन्न हुवे में भारीपन और मन्दाग्नि ये लक्षण होते हैं, यह घोर रोग वज्र, खार और अग्नि के समान है, इसका नाम वस्तिकुण्डल रोग है ॥ २६—२८ ॥

जब मूत्राशय का मार्ग कफ से बन्द हो जाता है, रोगी के नेत्र फैल जाते हैं, पित्त बढ़जाता है, श्वास आने लगता है, तब यह रोग असाध्य होजाता है ॥ २९ ॥

अथ चिकित्सा।

मूत्राघातान् यथा दोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत्।
वस्तिमुत्तरवस्तिञ्च दद्यात् स्निग्धविरेचनम्॥ ३०॥
कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम्।
धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते॥ ३१॥
यवक्षारं गुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम्।
रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम्॥ ३२॥
सपत्रफलमूलस्य क्वाथं गोक्षुरकस्य च।
पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्राघातादिरोगनुत्॥ ३३॥

नलकुशकाशेक्षुशिफां क्वथितां
प्रातः सुशीतलितां ससिताम्।

आगे मूत्राघात की चिकित्सा लिखते हैं।

मूत्राघातरोग में दोषों के अनुसार मूत्रकृच्छ्र में लिखे रस ही देय, वस्ती, उत्तरबस्ती और चिकनी औषधियों से विरेचन देय॥ ३०॥

ककड़ी के एक अक्ष बीज के कल्क में सैन्धानमक मिला कर कांजी के संगपीने से मूत्राघात रोग दूर होजाता है॥३१॥

जवाखार में गुड़ मिलाकर फूल और फलों के संग पीनेसे मूत्राघात, शर्करा और अश्मरी रोगका नाश होता है॥३२॥

गोखुरु के फल, पत्ते और जड़के काढ़े में शहत और शक्कर मिलाकर पीने से मूत्राघात आदि अनेक रोग दूर हो जाते हैं॥ ३३॥

चरक में लिखा है कि नल, दाभ, काश और, ऊखकी जड़

पिवत: प्रयाति नियतं
मूत्रग्रह इत्युवाच चरक: ॥ ३४ ॥

बिम्बीमूलन्तु संपिष्टं काञ्जिकेन समन्वितम् ।
नाभिलेपनमात्रेण मूत्ररोधं निहन्ति च ॥ ३५ ॥
मूत्रे विपन्ने कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् ।
कुष्माण्डकरसो वापि पेय: सक्षारशर्करः ॥ ३६ ॥
जलेन खादिरं बीजं मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं रुद्रजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थकृत् ॥ ३७ ॥
शृतशीतपयोन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
पिवेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णावातविनाशनम् ॥ ३८ ॥
गोधावल्यामलं घृततैलगोरसोन्मिश्रितम् ।

सवेरे इन के ठंडे काढ़े में शक्कर मिलाकर पीने से निश्चय मूत्राघात का नाश होता है ॥ ३४ ॥

कुन्दरू की जड़को पीसकर कांजी में मिलाकर नाभी में लेप करने से मूत्राघात का नाश होता है ॥३५॥

मूत्राघात में पीसा हुवा, कपूर लिङ्गके भींतर रखने से अथवा कुम्हड़े के रसमें जवाखार और शक्कर मिलाकर पीनेसे लाभ होता है ॥ ३६ ॥

जल के संग खैरके बीज अथवा मट्ठे के संग रुद्रजटाकी जड़ पीने से मूत्राघात और अश्मरी रोगका नाश होता है ॥३७॥

चन्दन को पीसकर चावल के पानी और शक्कर में मिला कर पीने से और पका हुवा ठंडा पानी और ठण्डे ऊखके रससे गर्मवायु का नाश होता है रोगी ठंडे भोजन करे ॥ ३८ ॥

पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संरोधम् ॥ ३९ ॥
वराम्ललवणोपेतं सूतं यश्च पिबेन्नरः।
तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ४० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्राघाताधिकारः समाप्तः।

अथाश्मर्य्यधिकारः।

पृथग्दोषैः शुक्रजाता चतस्रस्ता स्मृता बुधैः।
अश्मर्य्यः कथितास्तासु कफः प्रायः प्रभुर्मतः ॥ १ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह।

कुपितः पवनः कफं यदा
सह वीर्य्येण निशोषयेत्तदा।

गरेड़ुवा, आमला, घी, तेल और मठा मिलाकर पीने से बहुत दिनका रुका हुवा मूत्र उसी समय होने लगता है ॥३९॥

जो मनुष्य त्रिफला और निमकके संग पारेकी भस्म खाय, उसके तेरहों प्रकारके मूत्राघात दूर होजाते हैं ॥ ४० ॥

इति मूत्राघात चिकित्सा समाप्त।

अथ अश्मरी अधिकार का भाषा लिखते हैं।

अश्मरी अर्थात् पथरीरोग चारप्रकारका होता है, वात से पित्तसे कफसे और वीर्य्य से उत्पन्न हुवा इनचारों अश्मरियों में प्रायः कफ ही प्रधान रहता है, अर्थात् विना कफके कोई अश्मरीनहीं होती ॥ १ ॥

क्रमतः परिवर्द्धिताश्मरी
कथिता वैद्यवरैर्महर्षिभिः ॥ २ ॥

अथास्यानेकदोषसंश्रयत्वमाह।

नैकदोषोद्भवाप्येका ह्यश्मरी कथिता बुधैः।
उल्वणत्वेन दोषाणां तासु चिह्नानि निर्दिशेत् ॥३॥

अथासाम्पूर्वरूपमाह।

आध्मानं पीड़नं वस्तेर्मूत्रेऽजजलगन्धता।
अरुचिर्मूत्रकृच्छ्रञ्च पूर्वन्तु भवति ज्वरः ॥ ४ ॥

अथ सामान्यरूपमाह।

तासु सर्वासु पीड़ा स्यादधो नाभेस्तु पीड़नम्।

जब वायु विगड़कर कफको संग में लेकर वीर्य्यको सुखा कर एकगांठ वना देता है, तब वही गांठ पित्तके तेजसे सूखती सूखती धीरे २ पत्थर के समान होजाती हैं, वैद्य उसे ही अश्मरी रोग कहते हैं ॥ २ ॥

अश्मरी कभी भी एकदोष से उत्पन्न नहीं होती, परन्तु जिस दोष के अधिक लक्षण दिखलायी देते हैं, उसी से उत्पन्न हुई कही जाती है। जैसे वातके लक्षण अधिक होने से वाताश्मरी कहाती है ऐसे ही सबोंको जानों ॥ ३ ॥

जिस में पेट फूलजाय, वस्ति में पीड़ा होय, मूत्रमें वकरे के मूत्र के समान दुर्गन्धि आती हो, उसको वातसे उत्पन्न हुई, अश्मरी जानों इस में अरुची और मूत्रकृच्छ्र ये लक्षण पहिले होते हैं ॥ ४ ॥

जिस रोग में सामान्यता से पीड़ा और नाभी के नीचे घोर

सेवन्याः छिन्नधारञ्च मूत्रम्भवति देहिनः ॥ ५ ॥
किञ्चित्किञ्चिद्रक्तवर्णं गोमेदकमणिप्रभम्।
कदाचित्तद्यपायात्तु सुखं मूत्रयतीव ना ॥ ६ ॥
तद्घर्षणात्सरक्तन्तु मूत्रं कृच्छ्रेण वर्त्तते।
सद्यः प्राणहरो ह्येष यतमुक्तानि वैद्यराट् ॥ ७ ॥

अथ वातोल्वणमाह।

वातोत्थायां नरो मेढ्रं करैर्मृद्नाति पीड़यन्।
नाभिं स्पृशति चात्यर्थं मुहुर्मुह्यति पीड़ितः ॥ ८ ॥
दन्तान् खादति वाताढ्यं शकृन्मुञ्चति विन्दुशः।
रूक्षा श्यावा कण्टकाढ्या अश्मरी साऽनिलोल्वणा ॥९॥

पीड़ा, से वनीमें पीड़ा, मूत्रकी धार टूट २ कर आना, थोड़ा २ लाल मूत्र होना, अथवा गोमेदक मणिके समान मूत्र होना, मुंह से पथरी हटने से मूत्र सुखसे होना, घिसने पर अत्यन्त कठिनता से मूत्र होना और मूत्र के संग रुधिर आना, ये लक्षण हो उसे अश्मरी रोग कहते हैं ॥ ५—७ ॥

वातसे उत्पन्न हुई पथरी रोग में मनुष्य पीड़ा के मारे लिंग को हाथ में लेके मलता हैं, नाभीको वार २ दवाता है, वार २ मूर्छित होता है और वार वार चैतन्य होता है, दांतों को कट कटाता है, वार वार पीड़ा से व्याकुल होकर बूंद बूंद विष्टा-त्याग करता है, जिस में पथरी रूखी, काली और खुर्दरी होती है, उसे वात से उत्पन्न हुई, अश्मरी कहते हैं ॥८।९ ॥

अथ पैत्तिकीमाह ।

अश्मर्यां पित्तजातायां दह्यते पच्यते तथा ।
उष्मणेव सदा वस्तिः चोषयुक्तो भृशं तथा ॥ १० ॥
काचस्फटिकसंकाशा रक्ता पीता सिताऽरुणा ।
अश्मरी तत्र भवति कष्टदातु यमोपमा ॥ ११ ॥

अथ श्लैष्मिकीमाह ।

वस्तिः शीतो गुरुः श्लेष्मजातायां तोदसंयुतः ।
विशाला चिक्कणा चौद्रसवर्णा चाश्मरीसिता ॥१२॥

शुक्राश्मरीमाह ।

शुक्रजाता भवेत्सा तु नराणां वीर्य्यधारणात् ॥ १३ ॥

पित्त से उत्पन्न हुई, पथरी पकती है, जलती है, गर्मी बढ़ती है, मूत्राशय में चूसने के समान पीड़ा होती है, चारों ओर दाह होता है, उसके भीतर पथरी भिलावें की गुठली के समान लाल, पीली, सफेद और प्रातःकाल के सूर्य्य के समान होती है, यह अश्मरी रोग साक्षात् यमराज के समान है ॥ १० ॥ ११ ॥

कफ से उत्पन्न हुई अश्मरी में मूत्राशय ठण्डा, भारी और पीड़ा सहित होता है, इसके भीतर पथरी सफेद, बड़ी, चिकनी और शहत के समान रंगवाली होती है ॥ १२ ॥

वीर्य्य से उत्पन्न हुई अश्मरी वीर्य्य रोकने से उत्पन्न होती है ॥ १३ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह ।

सन्धारिते वीर्य्यमथो नरस्य
स्थानच्युतं मेहनमुष्कमध्ये ।
संशोषयित्वा पवनस्तु ग्रन्थिं
करोति सा चाश्मरि शुक्रजाता ॥ १४ ॥

अथ लक्षणमाह ।

तस्यां दाहो मूत्रकृच्छ्रञ्च शोफः
पीड़ा घोरा मुष्कयोर्मेहने च ।
उत्पन्नायां शुक्रमेत्येव नाशं
नित्यं घोरा शर्करा-तुल्यरूपा ॥ १५ ॥

अथाश्मरी एव शर्करा भवतीत्याह ।

सैव भिन्ना यदा घोरा अश्मरी शर्करोदिता ॥ १६ ॥

जब मनुष्य गिरते हुए वीर्य्य को रोकता है, तब वही वीर्य्य लिंग और अण्डकोष के बीच में जाकर वायुसे सूखकर गांठ के समान होजाता है, वैद्य उसे ही शुक्राश्मरी रोग कहते हैं ॥ १४ ॥

उस शुक्राश्मरी रोगमें जलन, मूत्रकृच्छ्र, सूजन, लिंग और अण्डकोष में पीड़ा और वीर्य्यका नाश होना ये लक्षण होते हैं, यह भयानक रोग हर समय एकसा ही बना रहता है इसकी पीड़ा शर्करा के समान होते हैं ॥ १५ ॥

अश्मरी अर्थात् पथरी ही पहिले कही रीति से शर्करा होजाती है ॥ १६ ॥

शर्करायाः पातमवरोधञ्च सहेतुकमाह ।

खण्डशो मरुता भिन्ना अनुलोमे निरेति या।
मूत्रेण सह सा प्रोक्ता शर्करा शास्त्रपारगैः ॥ १७ ॥

अथोपद्रवानाह ।

कृशता दुर्बलत्वञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
कुक्षिपीड़ा पाण्डुता च वमनं हृदयव्यथा ॥ १८ ॥
पिपासा चोष्णवातश्च दश ज्ञेया उपद्रवाः ॥ १९ ॥

अथारिष्टमाह ।

शूनमुष्को बद्धमूत्रो पीड़या पीड़ितो भृशम् ।
अश्मरीशर्कारारोगी नैव जीवति कर्हिचित् ॥ २० ॥

अथ चिकित्सा ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ।
यवक्षारगुड़ं दत्वा क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।

शर्करा रोग में वही पथरी टूटकर वायु के वेग से मूत्र के संग बहने लगती है ॥ १७ ॥

मांस नाश होना, बलनाश होना, अग्निमन्द होना, अरुचि, कोख में पीड़ा, शरीरका पाण्डुरंग होना, वमन, हृदय में पीड़ा होना, प्यास और उष्णवात ये अश्मरीके दश उपद्रव हैं ॥१८—१९

जिस अश्मरी रोगी के अण्डकोश शून्य होगए हों, मूत्र न आता हो और पीड़ासे बहुत व्याकुल हो वह नहीं जीता ॥२०

आगे अश्मरी चिकित्सा लिखते हैं ।

बनेकी छाल, गोखुरु और सोंठ, इनके काढ़े में जवाखार और

अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥२१॥

इति वरुणादिः ।

वारुणं वल्कलं शुण्ठी वीजं गोक्षुरसम्भवम् ।
तालमूली-कुलत्थञ्च कुशादिपञ्चमूलकम् ॥ २२ ॥
शर्कराक्षारसंयुक्तं क्वाथयित्वा जलं पिवेत् ।
अश्मरी मूत्रकृच्छ्रघ्नं वस्तिमेहन शूलनुत् ॥ २३ ॥

इति वृहद्वरुणादिः ।

सगुड़ो वरुण क्वाथस्तत्कल्केनाथवान्वितः ।
शिग्रुक्वाथोऽथवात्युष्णो हन्त्याशु सरुगश्मरीम् ॥२४॥
त्रिकण्टकस्य वीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
अजाक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिभेदनम् ॥ २५ ॥

गुड़ मिलाकर पीने से बहुत दिनकी पुरानी वातसे उत्पन्न हुई अश्मरी भी नष्ट होजाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

वन्ने की छाल, सोंठ, गोखरु के वीज, मूसली, कुलथी और पहिले लिखा पञ्चतृण इन के काढ़े में, शक्कर और जवाखार मिलाकर पीने से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, तथा मूत्राशय और लिंग की पीड़ा का नाश होता है इसका नाम वृहद्वरुणादि क्वाथ है ॥ २३ ॥

वन्ने के काढ़े में उस ही का कल्क मिलाकर पीने से अथवा खूब गरम सहंजने का काढ़ा पीने से वायु से उत्पन्न हुई, अश्मरी शीघ्र दूर होजाती है इन दोनों काढ़ों में गुड़ मिला ले ॥ २४ ॥

प्रपिबेत्तालमूल्या वा कल्कं व्युषितवारिणा ।
तेनैवाथ गवाक्ष्या वा त्र्यहादश्मरिपातनम् ॥ २६ ॥

यो नारिकेलकुसुमं सक्षारं
वारिणा पिष्टाः पिबति तस्यैका ।
हा देव पतत्यश्मरी घोरा ॥ २७ ॥

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं
सशर्करं शीतलि यावशूकम् ।
वीजानि कुष्माण्डकगोक्षुराभ्यां
घृतं पचेद्वै वरुणस्य तोये ॥ २८ ॥

दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं
मूत्राभिघातञ्च समूत्रबन्धम् ।

गोखरू के वीज पीसकर शहत और वकरी के दूधके संग पीनेसे सात ही दिन में पथरी रोग दूर होजाता है ॥२५॥

मूसली के काढ़े अथवा वासी पानी के संग मुशली का कल्क पीने से अथवा वासी पानी के संग इन्द्राणी का काढ़ा पीने से तीन ही दिन में अश्मरी रोग दूर होजाता है ॥२६॥

प्रातःकाल पानी में पीसकर जवाखार मिलाकर नरियल का फूल खाने से अश्मरी दूर होजाती है ॥ २७ ॥

कुल्थी, सेन्धा निमक, शक्कर, विडंग, शीतल चीनी, जवाखार, गोखरू के वीज और कुम्हड़े के बीज, इन सब को घी और वर्ने के काढ़े में डालकर पकावे, उस घी से कष्टसाध्य, पथरी रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और मूत्रबन्ध रोग, इस प्रकार

एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं
प्ररूढ़वृक्षानिव वज्रपातः ॥ २९ ॥

इति कुलत्थाद्यं घृतम्।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३० ॥
वरुणं कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम्।
अमृता चाश्मजं देयं बीजञ्च त्रपुषोद्भवम् ॥ ३१ ॥
शतपर्वतिलक्षारं पलाशक्षारमेव च।
यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकानि समारपेत् ॥३२॥
अस्य मात्रां पिवेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया।
जीर्णे तस्मिन् पिवेत्पूर्वं गुड़ं जीर्णन्तु मस्तुना ॥३३॥
अश्मरीं शर्कराञ्चैव मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत् ॥ ३४ ॥

इति वरुणघृतम्।

नष्ट होजाते हैं, जैसे बिजली गिरने से बड़े बड़े वृक्ष ॥ २८—२९ ॥

एक तुला बने की छाल कूटकर एकद्रोण पानी में पकावे, जब पकते पकते चौथाई पानी रहजाय, तब उतारकर छानले, फिर इस काढ़े का एकप्रस्थ घी डालकर पकावे, पकते समय बने की छाल, केला, नींम की छाल, पहिले लिखा तृण पञ्चमूल, गुरिच, पाषाण भेद खीरे के बीज, शतपर्व, तिलका खार, ढाकका खार और जूहिकी जड़, इन सबको एक एक कर्ष कल्क बनाकर छोड़ देय, जब पक चुके, तब उतार कर छान लेय, फिर देश और ऋतु का विचार करके रोगी को इसकी मात्रा खिलावे, जब यह

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतुरसोपमम् ।
श्वेता पुनर्णवा वासारसैः श्वेतापराजितैः ॥ ३५ ॥
प्रतिद्रवं त्र्यहं मर्द्यं शुष्कं तद्भाण्डसम्पुटे ।
स्वेदयेद् दोलिकायन्त्रे संशुष्कं तं विचूर्णयेत् ॥३६
रसः पाषाणभिन्नः स्याद् द्विगुञ्जश्चाश्मरीं हरेत् ।
भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन पाययेत् ॥ ३७ ॥
कुलत्थक्वाथसम्प्रोतमनुपानं सुखावहम् ॥ ३८ ॥

इति पाषाणभिन्नः ।

तिलापामार्गं कदली पलाशामलकाण्डकान् ।
दग्ध्वा तद्भस्मतो जन्तुर्वस्त्रपूतञ्च कारयेत् ॥ ३९ ॥
तत्पचेत्तोयशेषान्तं ततश्चूर्णं द्विगुञ्जकम् ।

घी पच जाय, तब गुड़ मिलाकर मट्ठा पिलावे, इस से अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र का नाश होजाता है, इसका नाम वरुणादि घृत है ॥ ३०—३४ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शिलाजीत एकभाग, गन्धक एकभाग, इन सबको सफेद गधापुन्ना, वासा और सफेद कौवाटोटी के रस में तीन दिन घोटकर उस ही उसके रस में दोलायन्त्र में स्वेदन करके सुखाकर पीस लेय, फिर भूआमले का फल और इन्द्राणी पीसकर उसमें दो रत्ती यह रस मिलाकर खिलावे, अथवा कुलथी के काढ़े के संग पिलावे तो अश्मरीरोग दूर होजाता है ; इसका नाम पाषाणभिन्न रस है ॥ ३५—३८ ॥

तिल, लटजीरा, केला, ढाक और आमले की लकड़ी काटकर आग में जलावे, फिर उस की राखको पानी में घोलकर कपड़े में छान ले फिर उसको आग पर चढ़ाकर पकावे, जब सब पानी

पाययेदविमूत्रेण शर्कराश्मरिजिद्भवेत् ॥ ४० ॥
छागमूत्रेणेति रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

इत्यानन्दयोगः ।

इति भैषज्यरत्नावल्यामश्मर्य्यधिकारः समाप्तः ।

अथ प्रमेहाधिकारः ।

तत्र निदानमाह ।

दधिजलगुड़भोज्यैः शुक्तमिश्रैर्व्यवायैः
जलतटचरमांसैर्ग्राम्यमांसादियूषैः ।
उदकचरपलोत्थैर्यूषवर्गैः कफस्तु
मनुजवपुषि दुष्टो मेहहेतुः प्रविष्टः ॥ १ ॥

जल चुके, तब कड़ाही में से खार खुरचले, फिर भेड़के मूत्र के संग दो रत्ती खाने से शर्करा और अश्मरी रोग दूर हो जाते हैं। रसेन्द्र चिन्तामणि में लिखा है कि इस रसको बकरे के मूत्रके संग पीवे ॥ ३९—४० ॥

इति भाषा भैषज्यरत्नावली में अश्मरी चिकित्सा समाप्त ।

आगे प्रमेहाधिकार का भाषा लिखते हैं।

दही, जल, गुड़, शुक्त, जल में उत्पन्न हुये, अनूप देश में और गांव में उत्पन्न हुये जन्तुओं के मांसका रस खाने से अधिक मैथुन करने से अत्यन्त बिगड़ा हुवा कफ प्रमेहरोग को उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

अथ सम्प्राप्तिमाह ।

कफः सव्यम्मेदो रुधिरमथ सन्दूष्य परितः
परिक्लिन्नं कृत्वा जनयति हि मेहानपि तथा ।
ततः पित्तं वातो कुरुत इह मेहानपि रुषा
परिक्षीणे तस्मिन् वपुषि नितरां विंशतिविधान् ॥२॥

अथासाध्यत्वगणनाञ्चाह ।

याप्यास्तु षट् पित्तभवाः प्रमेहाः
दशोदिताः श्लेष्मभवास्तु साध्या ।
चत्वार उक्ताः पवनोद्भवास्तु
असाध्यरूपा मुनिभिः पुराणैः ॥ ३ ॥

अथ दोषदूष्यविवेकमाह ।

श्लेष्मा च पित्तं मरुदुग्रवेगः
रक्तञ्च मेदो रुधिरञ्च रेतः ।
मज्जानमेवं पललञ्च दूष्यं
भवन्ति ते मेहकराः शरीरे ॥४

जब कफ विगड़ कर मांस, रुधिर और मेदाको विगाड़ कर गीलाकर देता है, तब प्रमेह रोग उत्पन्न करता है, फिर कफ नष्ट होने के पश्चात् वात और पित्त भी विगड़कर प्रमेह उत्पन्न करते हैं प्रमेह रोग वीस प्रकार का होता है ॥ २ ॥

पित्त से उत्पन्न हुये छः प्रकार के प्रमेह कष्टसाध्य, कफसे उत्पन्न हुये दश साध्य और वायुसे उत्पन्न हुये चार प्रकारके प्रमेह असाध्य होते हैं इस प्रकार बीस प्रमेह हुए ॥ ३ ॥

अथ पूर्वरूपमाह।

माधुर्य्यमास्ये करपाददाहः
आलस्यमेवं मुखलिप्तता च।
द्विजेषु चातीव मलप्रगाढाम्
मेहे भविष्यति भवन्त्यपि लक्षणानि ॥५॥

सामान्यं लक्षणमाह।

स्वेतद्रवातिमूत्रत्वं तस्य रूपमुदीरितम् ॥ ६ ॥

अथ भेदानाह।

गात्रमूत्राक्षिवर्णादि भेदैर्भेदा उदीरिताः।
दोषाणां चैव दूष्याणान्नैव भेदोऽत्र कीर्त्तितः ॥ ७ ॥

अथ उदकमेहमाह।

शीतमच्छं चातिमात्रं शुक्लं वारिनिभं नरः।
मेहत्युदकमेही तु पिच्छलं तरलं सितम् ॥ ८ ॥

वात, पित्त और कफ, रुधिर, मांस, मेदा, वीर्य्य और मज्जाको दूषित करके प्रमेहरोग को उत्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥

प्रमेहरोग होने के पहिले मुखका स्वाद मीठा होजाता है, हाथ पैरों में जलन होती हैं, आलस्य आता है, दांतों में बहुत मैल जम जाता है ॥ ५ ॥

जिस रोग में सफेद और अत्यन्त पतला अधिक मूत्र आवे, उसे प्रमेहरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

प्रमेहरोग में वातादिक दोष और धातुवोंके [illegible] शरीर, मूत्र और मूत्र के रंग से जानना चाहिये ॥ ७ ॥

इक्षुवारिनिभं मिष्टं इक्षुमेही प्रमेहति ।
सान्द्रं पर्य्युषिताकारं सान्द्रमेही प्रमेहति ॥ ९ ॥
मद्यतुल्यमधोगाढ़ं सुरामेही प्रमेहति ।
पिष्टमेही पिष्टतुल्यं रोमहर्षसमन्वितः ॥ १० ॥
वीर्य्ययुक्तं वीर्य्यतुल्यं शुक्रमेहे न मेहति ।
सिकतासदृशं नित्यं मलान्तेन प्रमेहति ॥ ११ ॥
मधुरञ्चातिमात्रञ्च शीतलं शीतमेहवान् ।
मन्द मन्दं शनैर्मेही शनैरल्पं प्रमेहति ॥ १२ ॥
सूत्रयुक्तं तथा तुल्यं लालामेहे च चिक्कणम् ।
क्षारमेही क्षारतुल्यं चोषदाहसमन्वितः ॥ १३ ॥

उदक मेहमें सफेद, निर्मल, ठण्ढा, अधिक चिकना और जलके समान मूत्र आता है ॥ ८ ॥

इक्षु मेह में ऊख के रस के समान रंगवाला और मीठा मूत्र आता है, सान्द्रमेह में गाढ़ा और वासी पानीके समान मूत्र होता है ॥ ९ ॥

सुरामेह में मद्य के समान और गाढ़ा मूत्र आता है, पिष्ट मेह में पीठी के समान गाढ़ा मूत्र होता है और रोगी के रोंये खड़े होजाते हैं ॥ १० ॥

शुक्र मेह में वीर्य्य मिला, वीर्य्य के समान रङ्गवाला और गाढ़ा मूत्र होता है, सिकता मेह में बालू के समान रङ्गवाला मूत्र होता है ॥ ११ ॥

शीत मेह में मीठा ठण्ढा और प्रमाण से अधिक मूत्र होता है, शनैर्मेह में धीरे धीरे और थोड़ा मूत्र होता है ॥ १२ ॥

लालामेह में चिकना सूतयुक्त मूत्र होता है, यह मूत्र राल के

नीलं स्यान्नीलमेहे तु कालमेहे मसीसमम् ।
कटुकं हरितं पीतं हरिद्रा मेहवान्नरः ॥ १४ ॥
अरुणारसतुल्यन्तु मञ्जिष्टा मेहवान्नरः ।
वसायुक्तं वसातुल्यं वसामेही प्रमेहति ॥ १५ ॥
मज्जमेही मज्जयुक्तं मज्जतुल्यं प्रमेहति ।
चौद्रमेही चौद्रतुल्यं रुक्षञ्च मधुरं स्रवेत् ॥ १६ ॥

प्रमत्तनागेन्द्र इवातिमात्रं
गाढं मुहुर्मूत्रविहीनमेवम् ।
हस्तिप्रमेही किल मेहतीह
सहालसीकञ्च तथाप्यजस्रम् ॥ १७ ॥

अथ प्रकफप्रमेहोपद्रवानाह ।

अरुचिररतिनिद्रा श्वासकासा विपाकाः
कफजनितप्रमेहे छर्दनं पीनसञ्च ।

समान होता है, चारमेह में दाह और चूसने के समान पीड़ा होती है, और खार के समान मूत्र आता है ॥ १३ ॥

नीलमेह में नीला । कालामेह में स्याही के समान काला और हरिद्रा मेह में कड़वा हरा और पीला मूत्र होता है ॥ १४ ॥

मंजिष्टा मेह में मंजीठ के रस के समान और वसामेह में वसा मिला और वसा के समान मूत्र होता हैं, मज्जा मेह में मज्जा मिला और मज्जा के समान रंगवाला मूत्र आता है, मधुमेह में सहतके समान रंगवाला, रूखा और मीठा मूत्र होता है ॥१५॥१७

अरुची, अनिच्छा, नींद, सांस, खांसी, अन्न न पचना, वमन और पीनस ये कफ, प्रमेह के उपद्रव हैं। अतिसार, जलन, प्यास,

अतिसरणविदाहौ तृड्ज्वरो मूर्च्छनञ्च
करचरणविदाहो बस्तिमेढ्रे च पैत्ते ॥ १८ ॥
श्वसन-कसनशोषाः शूलमानाह कम्पौ
हृदयगदविकारः वातजाते प्रविष्टाः ।
भवति तु किल चिह्नं यत्र सर्वं मुनीन्द्रैः
स किल सकलजातो मेहरोगः प्रदिष्टः ॥ १९ ॥

अथ अरिष्टमाह ।

निजोपद्रवसंयुक्तं अतीव प्रस्रुतन्तथा ।
पीड़या सहितं जह्यात् मेहिनं वैद्यशास्त्रवित् ॥२०॥

अथान्यदरिष्टमाह ।

ज्वरकासौ सवीसर्पौ छर्दिमूर्च्छासमन्वितौ ।
निहतो मानवं मेहे दुर्बलं चिररोगिणम् ॥ २१ ॥

ज्वर, मूर्च्छा, हाथ, पैर, लिंग और मूत्राशय में जलन होना ये पित्त प्रमेह के उपद्रव हैं। सांस, खांसी, मुख सूखना, शूल, पेट फूलना, शरीर कांपना और हृदय में अनेक प्रकार की पीड़ा होना ये वात प्रमेह के उपद्रव हैं, जिस प्रमेह में ऊपर लिखे, सब उपद्रव होंय, वैद्योंने उसे सन्निपात प्रमेह कहा है ॥ १८॥१९ ॥

जिस को जिस दोष से उत्पन्न हुवा प्रमेह हो और उस ही के उपद्रव भी हों और जिसे वीर्य्य बहुत गिरता हो वैद्य उस की चिकित्सा न करे, जिस पुराने प्रमेह रोगीको ज्वर, खांसी, विसर्प, वमन, मूर्च्छा और दुर्बलता ये चिह्न हों, वैद्य उसे जानले कि यह ऐसे ... नहीं जीयेगा ॥ २०—२१ ॥

अथासाध्यत्वमाह।

चिरप्रमेही कुलरोगवान्वा
असाध्यरूपः किल शुक्रमेही।
रोगास्तु सर्वे: कुलजाह्यसाध्याः
मुनीन्द्रवर्य्यैः कथिताः प्रधानैः ॥ २२ ॥

अथ मधुमेहमाह।

ये पूर्वं कथिता मेहास्ते सर्वेऽप्यचिकित्सिताः।
मधुमेहत्वमासाद्य यान्त्यसाध्यत्वमाशु वै ॥ २३ ॥
मधुमेहः चौद्रतुल्यो द्विविधः स प्रकीर्त्तितः।
क्रुद्धे वायौ परिक्षीणे धातौ दोषवशं गते ॥ २४ ॥
प्रयान्ति मेहाः सर्वे हि मधुमेहत्वसञ्ज्ञता।
तस्मिं क्षणे क्षणे जन्तुः चौद्राभं मेहतिभृशम् ॥ २५ ॥
यदा सर्वेषु मधुरं चौद्रतुल्यञ्च मेहति।
लभन्ते वै तदा सर्वे मधुमेहत्वमेव ते ॥ २६ ॥

जिसे प्रमेह रोग बहुत पुराना हो अथवा जिस के वंशमें प्रमेह रोग चला आता हो उसे असाध्य जानें और शुक्रमेह भी असाध्य है वंश में उत्पन्न हुये सब रोगों को वैद्य असाध्य कहते हैं ॥ २२ ॥

हमने जो बीसप्रकार के प्रमेह कहे, वे सब पुराने होने पर मधुमेह होकर असाध्य होजाते हैं, मधुमेह शहत के तुल्य होता है, वह दोप्रकार का होता है, एक के लक्षण पहिले कहि आए, दूसरा वीर्य्यक्षीण होने पर अथवा जब धातु दोष के वशमें होजाती है, तब कोई मेह क्यों न हो वही मधुमेह होजाता है, वह मधु-

अथ चिकित्सा ।

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः

कृशस्तथान्यः परिदुर्बलश्च ।

संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्य्यं

संशोधनं दोषबलाधिकस्य ॥ २७ ॥

ऊर्द्धं तथाधश्च मलेऽपनीते

मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्य्यम् ।

संशोधनं नार्हति यः प्रमेही

तस्य क्रिया संशमनो विधेया ॥ २८ ॥

ये विष्किरा ये प्रतुदा विहङ्गा-

स्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः ।

मेह होने पर रोगी क्षण २ भर में शहत के समान मू   है, तब वही सब प्रमेह मधुमेह के नाम से प्रसिद्ध होजाते हैं ॥ १३—२६॥

आगे प्रमेह चिकित्सा लिखते हैं ।

जगत् में कोई ऐसे प्रमेह रोगी दीखते हैं जो मोटे और बल-वान् हैं और बहुत से ऐसे भी प्रमेह रोगी हैं कि जो पतले और दुर्बल हैं, उन दोनों में से दुबले को बल बढ़ाने को और जिस को बहुत दोष बढ़ा होय, उसे संशोधन औषधि देय ॥२७॥

जब नीचे और ऊपर के मार्गों से वैद्य प्रमेह रोगीको शुद्धकर चुके अर्थात् वमन और विरेचन दे चुके, तब सन्तर्पण औषधि देय, जो प्रमेह रोगी वमन और विरेचन देने योग्य न होय उसे संशम न औषधि देय ॥ २८ ॥

जो विष्किर (१) और प्रतुद (२) पक्षी हैं, उनके अथवा जङ्गलीजन्तु

(१) जो पक्षी अपने खानेको इधर उधर फैलाकर खांय जैसे मुर्गा ।

मन्दाः कषायाः रसचूर्णलेहा

मसूरमुद्गा लवकश्च भक्ष्याः ॥ २९ ॥

श्यामाक-कोद्रवोद्दाल-गोधूम-चणकाढ़की।

कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥३०॥

जाङ्गलं तिक्तशाकञ्च यवान्नञ्च श्रमो मधु।

रूक्षमुद्वर्त्तनं गाढ़ं व्यायामो निशि जागरः।

यच्चान्यच्छ्लेष्मपित्तघ्नं वहिरन्तश्च तद्धितम् ॥ ३१ ॥

सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः ॥ ३२ ॥

कषायस्त्रिफला दारुमुस्तकैरथवा कृतः।

त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ॥ ३३ ॥

त्रिफला लोह शिलाजतु पथ्याचूर्णञ्च नागसकैकम्।

वोंके मांसके रसके संग भोजन करावे, अथवा मसूर और मूंग आदि हलकी दाल देय, औषधि, काढ़ा, रस और चूर्ण भी देय ॥२९॥

प्रमेहरोग में पुराने समाई, कोदो, वनकोदो, उद्दालक, गेहूं, चना, अरहर और कुलथी पथ्य हैं ॥ ३० ॥

जङ्गली जन्तुवों का मांस, तीते साग, जौ, परिश्रम, महत, रूखे उपटन, कसरत, रात में जागना तथा और भी भीतर और वाहर के कफ नाशक कर्म पथ्य है ॥ ३१ ॥

आमले के रस में हलदी का चूर्ण और महत मिलाकर पीने से सब प्रमेहोंका नाश होता है ॥ ३२ ॥

हर्र, वहेड़ा, आमला, देवदारु और मोथे का काढ़ा अथवा हर्र, बहेड़ा, आमला, देवदारु और दारुहलदीके काढ़े में महत मिला कर पीनेसे सब प्रकार का प्रमेह रोग दूर हो जाता है ॥ ३३ ॥

हर्र, वहेड़ा, आमला, लोहा, शिलाजीत और हर्र ये सब एक एक

मधुनामरास्वरस इव सर्वान्मेहान्निवारयति ॥ ३४ ॥
प्रत्येकं त्रिफलादिचतुर्णां चूर्णं मधुना लेह्यम् ॥३५॥
इति चत्वारोयोगाः ।

पीतः सरो गुडुच्यास्तु मधुना तत्प्रमेहनुत् ।
शतावर्य्या रसं नीत्वा क्षीरेण सह यः पिबेत् ।
प्रमेहा विंशतिस्तस्य क्षयं यान्ति न संशयः ॥ ३६ ॥
आमदुग्धं समजलं यः पिबेत् प्रातरुत्थितः ।
निःसंशयं शुक्रमेहः पुराणस्तस्य नश्यति ॥ ३७ ॥
पलाशपुष्पं तोलैकं सितायाः अर्द्धतोलकम् ।
पिष्टं शीताम्भसा पीतं मेहं हन्ति न संशयः ॥ ३८ ॥

दूसरेसे आधि औषधी लेकर चूर्ण बनावे, उस चूर्णमे अथवा आमले के स्वरस में शहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकार का प्रमेह रोग दूर होजाता है ॥ ३४ ॥

त्रिफला, लोहा, शिलाजीत, और हर्र इन एक एक के चूर्ण को शहत में मिलाकर खाने से प्रमेहरोग दूर होजाता है ॥ ३५ ॥

गुरिच के रस में शहत मिलाकर अथवा शतावर के रस में दूध मिलाकर पीने से बीसों प्रकार का प्रमेह रोग निःसंदेह दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल कच्चे दूध में पानी मिलाकर पीये उसका पूराना शुक्रमेह भी निःसंदेह दूर होजाता है ॥ ३७ ॥

ढाकका फूल एक तोला, मिसरी आधा तोला, इन दोनों को पीसकर ठंडे पानी के संग पीने से प्रमेहरोग दूर होजाते हैं ॥ ३८ ॥

स्फाटिकं चूर्णमादाय नारिकेलोदरे क्षिपेत् ॥ ३९ ॥
तत्फलं पङ्कमध्ये तु स्थापयेदेकरात्रकम्।
प्रातरानीय सजलं चूर्णं पेयं प्रयत्नतः ॥ ४० ॥
अनेन चिरकालीनो मेहो नश्यति निश्चितम्।
व्यायामजातमखिलं भजन् मेहान् व्यपोहति ॥४१॥
पादत्रच्छत्ररहितो भिक्षाशी मुनिवद्यतः।
योजनानां शतं गच्छेदधिकं वा निरन्तरम् ॥
मेहान् जेतुं वा न वापि नीवारामलकाशनः ॥४२॥
कुशः काशो वीरणश्च कृष्णेक्षुः खगडस्तथा ॥ ४३ ॥
एषां दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ४४ ॥

फटिक के चूर्ण को नरियल में भर दे, फिर उस नरियल को एक रात कीचड़ में दबाकर रख देय, फिर प्रातःकाल उसका पानी और चूर्ण पीये तो बहुत पुराना प्रमेह रोग भी दूर होजाता है अथवा केवल कसरत करने से ही सब प्रकार का प्रमेह रोग दूर होजाता है ॥ ३९—४१ ॥

जो मनुष्य मुनियों के समान भीख मांगता हुवा, जूता, छाता, छोड़कर चारसे कोष घूमे उसका प्रमेहरोग दूर होजाता है, अथवा केवल तीनोधान और आमला खाय तो भी प्रमेह रोग दूर होजाता है ॥ ४२ ॥

कुश, कास, खस, काले ऊखकी जड़ और खगडा इन सब को दश दश पल लेकर एक द्रोण पानीमें पकावे, जब पकते

खण्डप्रस्थं समादाय लेहवत्साधु साधयेत् ।
अवतार्य्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ४५ ॥
मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारु त्रपुषं तथा ।
शुभामलकपत्राणि त्वगेला नागकेशरम् ॥ ४६ ॥
वरुणा-मृता प्रियङ्गुश्च प्रत्येकमक्षसम्मितम्
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथा...री: ॥४७॥
वातिकान् पैत्तिकांश्चापि श्लैष्मिकान् सान्निपातिकान् ।
हन्त्यरोचकमत्युग्रं बलपुष्टिकरं परम् ॥ ४८ ॥

इति कशावलेहः ।

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु ।
पिबेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथा बलम् ॥ ४९ ॥

पकते सातभाग पानी जलजाय, तब उतार कर छानले, फिर उस में एकप्रस्थ खांड़ डालकर अवलेह के समान पकावे, फिर नीचे उतार कर जेठी मधु, ककड़ी के बीज, भूरे कुम्हड़े के बीज, खीरेके बीज, वंशलोचन, आमलेके पत्ते, तज, इलायची, नागकेशर, वन्ना, गुरिच, और प्रियंगू इन सबको एक एक अक्ष पीस कर छोड़ देय, इस अवलेह से बीसों प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, वात, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न हुवे, प्रमेह और भयानक अरोचक रोग भी दूर होजाते हैं, इसका नाम कुशावलेह है ॥ ४३—४८ ॥

सालसारादिगण के काढ़े में शिलाजीत को भिगो कर और उस ही में पीस कर बल के अनुसार खाय, इस प्रकार

आङ्गलानां रसैः सार्द्धं तस्मिन् जीर्णे च भोजनम्।
कुर्य्यादेवं तुलां यावदुपयुञ्जीतमानवः ॥ ५० ॥
मधुमेहं विहायासौ शर्करामश्मरीं तथा।
वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ ५१ ॥

इति शिलाजतुप्रयोगः।

माक्षिकं धातुमप्येवं युञ्जानस्याप्ययं गुणः।
शालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनतां गते ॥ ५२ ॥
दन्ती-लोध्र-शिवां कान्तलौहताम्ररजः क्षिपेत्।
घनीभूतमदग्धञ्च प्राश्य मेहान् व्यपोहति ॥ ५३ ॥

इति शालसारादिलेहः।

दाडिमस्य तु बीजानि क्रिमिघ्नस्य च तण्डुलाः।

एक तुला तक बढ़ाता जाय, जब यह पच जाय, तब जंगली-जन्तुओं के मांस के रस के संग भोजन करे, इस के खाने से मनुष्य मधुमेह, शर्करा और अश्मरी से छूट कर, बलवर्ण से युक्त होकर, निरोग होकर एकसौ वर्ष तक जीता है ॥ ४८ ॥ ५१ ॥

ऐसे ही सोनामाखी खाने से भी यही गुण होता है, सालसा रादिगण के काढ़े को पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब उस में जमालगोटे को जड़, लोध, आमला, कान्तलोह और ताम्बे का चूर्ण डालकर उतार ले, इसके खाने से मेहरोग दूर होजाता है इसका नाम शालसारादि लेह है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अनार के बीज, वायविडङ्ग के चावल, हलदी, शाव, जीरा,

रजनी चविका जाजी त्रिफला नागरं कणा ॥ ५४
त्रिकण्टकस्य बीजानि यमानी धान्यकं तथा।
वृक्षाम्लं चपला कोलं सिन्धूत्थसमायुतम् ॥५५॥
कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
पाने भोज्ये च दातव्यं सर्वर्त्तुषु च मात्रया ॥ ५६ ॥
प्रमेहान् विंशतिविधान् मूत्राघातांस्तथाश्मरीम्।
कृच्छ्रं सुदारुणाञ्चैव हन्यादेतन्न संशयः।
विबन्धानाह शूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम् ॥ ५७ ॥
दाड़िमाद्यं घृतं नाम्ना अश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥५८

इति दाड़िमाद्यं घृतम्।

चतुःषष्टिपलं पक्वदाड़िमस्य सुकुट्टितम्।
चतुर्द्रोणं जलं दत्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥ ५९ ॥
क्वाथेन वस्त्रपूतेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दाड़िमं चविकाजाजी क्रिमिघ्नं रजनीद्वयम् ॥ ६० ॥

हर्रे, बहेड़ा, आमला, सोंठ, पीपल, गोखरु के बीज, अजवाइन, धनिया, तिन्तड़ीक, पीपल, बेरकी गिरी और सेन्धा निमक इन सब को एक एक अक्ष कल्क बनाकर एक प्रस्थ घी पकावे। इस घी को सब ऋतुवों में खाने और पीने से बीसों प्रकार के प्रमेह, अनेक प्रकार के मूत्राघात, अश्मरी, भयानक मूत्रकृच्छ्र विबन्ध, आनाह, शूल, कामला और ज्वरका नाश होता है यह दाड़िमादि घृत अश्विनीकुमारोंने बनाया था ॥५४॥५८॥

पके हुवे चौसठपल अनार को कूटकर चार द्रोण पानी